

डाक्टर हरेकृष्ण महताब
रजत-जयन्ती समिति के अध्यक्ष
तथा जयन्ती ग्रथ के मुख्य-सपादक

वर्तमान दोनो एक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करेंगे। भारत के दूसरे समस्त क्षेत्रो की ही भाँति उडीसा भी विभिन्न कार्य-क्षेत्रो मे अपनी महत्ता की अक्षुण्ण परम्परा निरतर बनाये रखेगा। यदि कोणार्क का मदिर खण्डहरो में है तो हीराकुड उस अक्षुण्ण परम्परा की रक्षा के लिए प्रस्तुत हुआ है। यदि पुराना भुवनेश्वर विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया है तो नयी राजधानी उसी परम्परा की रक्षा के लिए पुन जन्म ले रही है।

यदि आर्य-पूर्व सभ्यता कालान्तर में कबीलो की आबादी तक सीमित थी तो आज कबीलो में फैल रही नयी सभ्यता उडीसा द्वारा उत्पन्न समन्वयात्मक सस्कृति को बनाये रखेगी। इस परिचय पुस्तिका द्वारा, जिसे मै जनता को प्रस्तुत कर रहा हूँ, उडीसा शेष भारत के समक्ष आत्म-अभिव्यक्ति करना चाहता है। राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा के द्वारा उडीसा ने शेष भारत से अधिकाधिक बहुमूल्य सामग्री एकत्रित करने का प्रयास किया है। समय आ रहा है जब कि सभी क्षेत्रीय इतिहास और सस्कृतियाँ, चाहे उनका स्थान अतीत में जो भी रहा हो, उस कण्ठहार के अनेक रत्न बनने जा रहे है जो भारतमाता के लिए तैयार किया जा रहा है। सर्वत्र भारत का इतिहास और सस्कृति का ही प्रभाव रहेगा और क्षेत्रीय परम्पराएँ भारत का गौरव-पूर्ण अग बनेंगी। यह लक्ष्य हिन्दी भाषा में सिद्ध किया जाना है जिसके प्रचार का कार्य राष्ट्र-भाषा-प्रचार सभा ने अपने हाथो में लिया है। विगत २५ वर्षो में जो कार्य किया गया है वह प्रशसनीय है और अब भी बहुत कुछ कार्य करना शेष है।

मै निम्न महानुभावो को धन्यवाद देता हूँ।

१ डा० आर्तवल्लभ महाति
२ श्री अनसूयाप्रसाद पाठक
३ श्री गुरुचरण महान्ती
४. श्री भागीरथी महापात्र
५ श्री राजकृष्ण बोस
६. श्रीमती विनीता पाठक
७ श्री गोपीनाथ साहु
८ श्री शिवराम उपाध्याय

जिन्होंने सम्पादकमण्डल में रह करके श्रम किया है, ग्रन्थ के सफल प्रकाशन के लिए अपना सारा समय दिया है और जिन-जिन सज्जनो ने अनुवाद किया है उनको भी मै धन्यवाद देता हूँ। उडीसा की राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति के प्राण श्री अनसूयाप्रसाद पाठक द्वारा प्रदत्त सहायता का उल्लेख किये विना मै अपने कर्तव्य पालन में विफल रहूँगा। इस परिचय ग्रन्थ के मुद्रण तथा कार्यालय-सबधी कार्य में जिन्होने सहायता प्रदान की है, उनको मै धन्यवाद देता हूँ।

हरेकृष्ण मेहताब
मुख्य सपादक

तो कोई पत्तो पर, किसी ने काठ की लेखनी वनाई तो किसी ने लोहे की। यह प्रथा आज याद रखने के लिए पुनीत कामो में बर्ती जाती है।

शास्त्रो ने—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ने—जो जगत्-रचना के कारणस्वरूप है, किस प्रकार से जन को जनमाया, इसका प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य नही है। जिस प्रकार नर-नारी का सयोग जन–जग का हेतु माना जाता है, उसी प्रकार दार्शनिक लोग पुरुष और प्रकृति की कल्पना करने पर भी यह नही बतला गये कि अमुक प्रकृति से अमुक पुरुप के औरस से अमुक नर और अमुक नारी का जन्म हुआ है और यह जग -जन उन्ही की सतान है। इतना होते हुए भी यह कल्पना से, अनुमान-प्रमाण से मान लेना होगा कि एक नर और एक नारी थी, उन्ही से एक के वाद दो, दो के वाद तीन और तीन के बाद चार-पाँच, दस-सौ-हजार-करोड तक की सख्या विश्व मे जन की पहुँच गई है। ऐसा न होता तो एक प्रकार की कामना, एक प्रकार की रुचि, एक प्रकार के काम, एक प्रकार के हाथ-पाँव, नाक-कान, मुख-शिर आदि न होते। उसमें भिन्नता जरूर हुई होती।

उक्त आनुमानिक कल्पना के वल से यह कहा जा सकता है कि विश्व भर के मानव एक समय एक ही दम्पति की सतान थे। जैसे जैसे सख्या वढती गई वैसे वैसे उनका फैलाव होता गया। इस प्रकार जग में जन के कलबलाने से ससार मुखरित हो गया। यह विशाल विश्व एक घर बन गया। यह विशाल जनता वही विचरण करने लगी, अपना स्थान वनाने लगी, ऊबड-खावड भूमि को समतल करने लगी, और अब यह ध्रुवलोक, मगल तथा चाँद, सूर्य तक जाने की चिन्ता करने लगी। इससे जान पडता है कि लोग पहले जा चुके होगे और आज की यह चेष्टा उसी पुराने सस्कार का फल है।

ससार भर के मानव एक ही है, एक ही माता-पिता की सतान हैं, एक ही प्रकार की भाषा वोलते हैं, एक प्रकार की चिन्ता करते हैं, एक प्रकार के आनन्द, सुख-दुख का अनुभव करते है, भाव व्यक्त करते है, चलते-फिरते-देखते है, उठते-बैठते-खाते है, वार्ते करते है। यह निर्विवाद सत्य है।

## मानव की अभिरुचि

सभी मानवो की अभिरुचि एक है। सभी अपने लिए सोचते है। अच्छा खाना, अच्छा पहिनना और अच्छे घर में रहना—ये तीन वातें मुख्य है, इसके लिए अर्थात इसकी पूर्ति के लिए नाना उपाय किये जाते है।

आज जो मानव करता है वही तो साहित्य है अर्थात् मानव का जीवनचरित्र ही साहित्य है। इस जीवनचरित्र मे जो मानव-मगलकर विचार होते है, चिन्तन होता है जिससे प्राणिमात्र का हित होता है वही साहित्य कहलाता है।

ससार के सामने मानव ने नाना समस्याएँ खडी कर दी है। उसके स्वार्थ है, इससे साहित्य का उद्देश्य सफल नही होता। साहित्य का तो काम है समान रूप से सभी का हित-सावन करना, मगलमयी कामनाओ को जन्म देना।

है। आज के मानव की तात्त्विक दार्शनिक अभिरुचि भी अद्भुत है। दुनिया के मानव हमारे भाई हैं और एक ही परिवार के हैं। हम खायें और सारा परिवार भी खाये, यह चिन्ता नही है और न ऐसी चिन्ता करने की अभिरुचि ही है।

मानव के चरित्र का चित्र तो साहित्य है, यह कहा गया है। इस उक्ति के अनुसार आज की सारी अभिरुचि भी साहित्य है। किसी वस्तु का निर्माण ही कला है। लेकिन जब हम इस बात पर विचार करने लगे हैं कि जिससे लोक का कल्याण हो, जिससे लोक में सुन्दर भावो का आदान-प्रदान हो, वही साहित्य है। फिर इस बात को तौलना पडता है कि आज विश्व में जितनी भाषाएँ है, उनका जो साहित्य है, वह लोककल्याणमूलक है कि नही। जहाँ तक विचार करके देखा जाता है वहाँ तक तो यही नजर आता है कि आज उन्नत कहलानेवाली भाषाओ के पास यह गुण है ही नही, जिससे लोककल्याण किया जा सके। कुछ उपन्यास, कहानियाँ, नाटक तथा जीवन-चरित्र और समालोचना तथा आजकल के मारण अस्त्र बनाने के तरीक बाली पुस्तको के लेखन और प्रकाशन से तो उत्तम साहित्य नही माना जा सकता। उत्तम साहित्य का काम सजीवनी बूटी बनाना है। आज के साहित्य में सजीवनी बूटी बनाने के उपाय नही है। जहाँ यह नही है वहाँ वह साहित्य और उसकी भाषा भी शून्य है। राक्षसी वृत्तिवाली है। उनसे मानव का कभी कल्याण-साधन हो नही सकता। जिससे जनगण का कल्याण न हो उसको अपनाना वैसा ही श्रम है जैसा प्रेम को सजीव रखने के लिए महादेव सती के शव को लिये भ्रमण करते थे। शरीर का जो अश जहाँ गिरा वही वह पूजा पाने लगा, शक्ति की आराधना होने लगी, तीर्थ बन गया, लोग जाने लगे। उसी में प्राण-प्रतिष्ठा समझ ली गई।

जो लोग यह कहते हैं कि जिस भाषा में एटम बम बनाने की कला है वही उन्नत है, उत्तम है, वही कलामय है वे भूल करते हैं। जिस भाषा और साहित्य के शब्दो में इतनी शक्ति थी कि एक चुल्लू भर पानी से सारे ससार का प्रलय किया जा सकता था और उसी शब्द से ससार को बचाया भी जा सकता था वह ताकत आज इस एटम बम की भाषा मे कहाँ है?

कहा जाता है कि जिस देश का साहित्य जितना उन्नत होता है, उस देश की, जाति की उन्नति उतनी ही उत्तम होती है। उसीसे उसकी उन्नति कूती जाती है। परन्तु आज यहाँ इस पर जरा-सा गौर करने तथा विचारने का समय है। प्रश्न उठता है, जाति की उन्नति तथा उसके साहित्य की उन्नति का मापदण्ड क्या होना चाहिए? क्या हजारो की सख्या में उपन्यास, कहानी, नाटक, प्रबन्ध आदि का प्रकाशन साहित्य की उन्नति है? बडे बडे रेल-इजन, वायुयान, जनध्वसात्मक मारण-यत्र, बम तथा इसी प्रकार का चिन्तन ही साहित्य की उन्नति है? या वशिष्ठ जैसे तपस्वी ऋषि-मुनियो की आत्मशक्ति का प्रकाश साहित्य की उन्नति की पराकाष्ठा है या विश्वामित्र के शस्त्रो की चरम परीक्षा की परिणति उन्नति का मूल है?

हम जो बात कहना चाहते है, यह है कि आज दुनिया में जो कुछ हो रहा है वह विश्वामित्र के शस्त्रो की चरम परिणति है। नकली शक्ति का सचय हो रहा है। वशिष्ठ के आत्मबल की परीक्षा नही है। इस ओर तो लोग सोचते ही नही। इसीलिए न तो वे उन्नत है, न चिन्तनशील,

वनता था और किस प्रकार वनाया जा सकता है। जव एक वार वनाया जा सका है तो क्या कारण है कि वह काम अव नही हो सकता। केवल अपने ऊपर विश्वास, अपनी चिन्ताधारा, शुद्ध कामनाओ की आवश्यकता है। आत्मविश्वास और उसकी आराधना, उसका चिन्तन और आह्वान किये बिना निरे आत्मविश्वास से कोई काम नही होता। जो यह कहते है कि अग्रेजी भाषा का साहित्य उन्नत है, उनको अपने आप पर विश्वास नही है। वे राक्षसी शक्ति के उपासक है। लेकिन शक्ति की उपासना में भी भिन्नता है। शक्ति की उपासना विश्वामित्र ने भी की थी और इतनी बडी शक्ति अपने पास जमा कर ली थी कि एक नया लोक, नया आकाश, नये ग्रह आदि वनाने लगे। इतना होते हुए भी उसने अपने में अभाव पाया। उसके दिल में वशिष्ठ की शक्ति खल रही थी। अभी तक वशिष्ठवाली शक्ति उसको प्राप्त नही हो पाई थी। जब वह सोचता था कि एक ही आशाछडी के घुमाने से वशिष्ठ ने मेरी सारी शक्ति को श्रीहीन कर दिया तो वह पागल वन जाता। उसने सोचा, मेरी सारी शक्ति वेकाम है। मुझे तो वशिष्ठ जैसी शक्ति चाहिए तो वह सारा राजपाट त्याग, चला वशिष्ठ जैसी शक्ति की तलाश में, ज्ञान की आराधना में।

आज इस ओर किसी का ध्यान नही जाता। अपने चिन्तन का वल लोगो के पास नही है। लोग पढते अधिक है, बोलते ज्यादा है, गुनते कम है। आज लोग शेक्सपियर के नाटको को शेली की काव्य-कलापूर्ण सौन्दर्यमय कविता को भले ही याद करते रहें, लेकिन भारतीय महाशक्तिशाली ज्ञानी-मुनियो की वाणी को याद नही करते। जिस भाषा में उक्त वाणी गुम्फित है, उसे आज मृत भाषा कहकर छोड देते है—उसे हास्य का साधन वना रक्खा है। जो आज यह कर सकता है वही ज्ञानी, पण्डित और दिव्य ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ माना जाता है, बुद्धि का भण्डार माना जाता है। लोग उसी को आदर्श मानने लगते है। बातें भले ही गले के नीचे न उतरें लेकिन इस वाणी के अन्धविश्वासी बन बैठते है कि जरूर उसमें कुछ होगा तभी न ऐसा कहा है। यही है अज्ञान की चरम सीमा, अन्धविश्वास और देश को रसातल पहुँचानेवाले विचार।

हमारे भारतीय साहित्य की परम्परा और नीति भिन्न है, सस्कृति भिन्न है और सोचने का तरीका भी भिन्न है। भारतीय सस्कृति कही भी यह नही वतलाती कि केवल हमी शान्ति से, सुख से जीवन यापन करें। यहाँ तो हजारो, लाखो साल से यही नारा बुलन्द होता चला आता है और आज भी गान्धीजी कहते है—

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु खभाग् भवेत्।।

उनकी कामना थी कि सारा विश्व सुख-शान्ति से रहे। इसीलिए वे शाम-सवेरे इसी मन्त्र का जाप करते-कराते थे। उनकी आन्तरिक कामना थी कि विश्व के मभी मानव एक परिवार की तरह रहे, किमी के साथ कोई हिंसा-द्वेष न रखें। प्रेम से निवास करें, भाई-चारे का सम्वन्ध रखे।

, कहाँ तो ये महान् कामनाएँ, उद्यम, चेष्टाएँ और कहाँ यह "मैं हूँ" और "वलवान् हूँ", "मेरी वातें सव मानें, नही मानोगे तो मार डालूंगा।" हमारे यहाँ उसी का नाम दानवी शक्ति

राष्ट्रभाषा

# रजत-जयन्ती ग्रन्थ

उत्कल प्रान्तीय
राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा
कटक

अर्धनारीश्वर, या कपिल मुनि की कल्पनानुसार पुरुष प्रकृति मनु और श्रद्धा के औरस से सारे ससार की रचना की कल्पना की गई है उसी के साथ इस वेद का भी जन्म हुआ होगा और तव ऋग्वेद इन लोगो के सन्निकट आया होगा।

हम कह आये है कि जिस समय ससार के निर्माण की कल्पना किसी ईश्वरी शक्ति ने की होगी उस समय एक पुरुष और एक प्रकृति यो दो पैदा हुए होगे। उनकी जनसख्या की वृद्धि से विश्व का फैलाव हुआ होगा और नाना द्वीप, देश, प्रान्त, जिले, नगर, गाँव वने होगे। कर्मकार जातियाँ बनी होगी केवल व्यवस्था की दृष्टि से—काले, गोरे आदि भेद का श्रेणी-विभाजन ईश्वर का तो कदापि नही है।

आज ससार में जो कुछ होता है वह केवल अज्ञान की निशानी है और जो उस पर नजर करते है और उसी को विश्व का ज्ञान मानते है, ज्ञान का अपमान करते है। ज्ञान कही भी यह नही कहता है कि एक वचे और वाकी तिल तिल कर मरे। लेकिन आज का पाश्चात्य साहित्य हमको यही सिखाता है। उसमे उदारता के उदात्त भाव नही है और विचार भी नही है। एक लेखक ने ठीक ही भाव व्यक्त किया है —

स्वार्थ जीता है, प्रवल है,
समय चलता है, कामनाएँ भी चलती है, चला करती थीं।
परन्तु हाँ,
तव में और अव में अन्तर आ गया है।
कामनाएँ खिच गई है।
द्वन्द्व चलता है, चला करता था,
साधुता और असाधुता में स्वार्थ में, किन्तु, तव
साधुता प्रवल थी, जीतती थी।
परन्तु आज,
असाधुता तगडी वन गई है।
साधुता हारी हा! गिर पडी है।
स्वार्थ जीता है, प्रबल है।

इस ससार में स्वार्थ का प्रभाव कव से हुआ है, इसका पता लगाना कठिन काम है, परन्तु इतना तो मान लेना पडेगा कि इसका जन्म भी मानव-जन्म के साथ ही हुआ है। प्रथम लोग ज्ञानी होते थे। वे इस स्वार्थ के वश में नही आते थे। सन्तोष से रहते थे।

मानव-जाति की उत्पत्ति हिमालय की तराई में हुई होगी। वहाँ से लोग चारो ओर फैलने लगे। योरोपीय द्वीपपुजवाला मानव समाज धीरे धीरे अपना सव कुछ वदलकर विचरने लगा। नाना जगलो को पार करके वे आगे वढने लगे होगे। उस समय आर्य सभ्यता की निगाह में वे सभी जानवर मे थे। शायद इसी के वल से वहाँ के साहित्यिको ने मानव की उत्पत्ति की कल्पना भालू और वनमानुष से की होगी, परन्तु यह ज्ञान कूपमण्डूक-सा है।

तेज असिधार थी कि जो बोला जाता था वही होता था। 'ऐसा हो जा', बस फिर उसी क्षण वैसा होता था। उस अध्यात्म-शक्ति-पुज का एकत्रीकरण कही भी देखने को नही मिलता। उसके बाद भी जब हम त्रेता युग में आते हैं तो भी उस अध्यात्म शक्ति की साधना और एकीकरण पाते है और अत्युत्तम रूप में। आज जिस विज्ञान की शक्ति से ध्रुव और चन्द्र तक जानेवाले वैज्ञानिक अपनी छाती ऊँची करके चलते है, उस समय आदमी आसानी से जा सकता था।

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में एक कथा है, तुलसीदास ने भी लिखा है—सीता जी चित्रकूट के जगल में निवास करती थी। एक दिन वे मन्दाकिनी नदी के किनारे एक शिला पर जा बैठी। उनका सौन्दर्य देखकर इन्द्रपुत्र जयन्त काक का वेश बनाकर आया और उसने सीता के चरणो पर चोच से आघात किया।

सीता चरण चोच हति भागा।
मूढ मन्दमति कारण कागा॥

रामचन्द्र जी उसके इस काम को सहन नही कर सके। उन्होने सीक का बाण बनाकर मारा। अब आगे आगे कौवा जयन्त, और पीछे पीछे बाण।

प्रेरित मन्त्र ब्रह्मशर धावा।
चला भाजि वायस भय पावा।
ब्रह्मधाम शिवपुर सब लोका॥

वह स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तक गया। जहाँ जहाँ गया, बाण उसके पीछे था। अन्त मे जयन्त आकर राम के चरणो पर गिर पडा। बाण आया पर उसने जयन्त को नही छुआ। वह राम की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा।

आज जिन राकेटो की चर्चा है, यहाँ उसके साथ क्या तुलना की जा सकती है? इसके साथ ही यह भी साबित है कि उत्तरी ध्रुव की ओर यहाँ के निवासी आसानी से जा सकते थे और इस आवा-जाही में यह अनुमान लगाया जाता है कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव की ओर से आये। अनुमान के बल पर ऋग्वेद जैसे अभूतपूर्व ग्रन्थ का भी काल निर्णय करने लगे जो कि उस आदि-पुरुष हिरण्यगर्भ से निकला। ऋग्वेद जैसे ग्रन्थो में ज्ञान की अभूतपूर्व चर्चा है। उसी से विश्व आज यहाँ तक पहुँचा है। उसके पहले तो कही कोई ग्रन्थ था ही नही। वही एकमात्र ज्ञानालोक पाने का साधन था।

किसी वस्तु को ठीक तौर से जानना विज्ञान है लेकिन छिद्रान्वेषण करना बुरा है। आजकल जितने भी ऐतिहासिक हुए है, छिद्रान्वेषी ज्यादा थे। किसी वस्तु को हेय दिखाना उनका काम था। उदाहरण लीजिए—भारत के विद्वान् वैज्ञानिक ऋषि-मुनि जगली थे। राम बेवकूफ थे। इसी-लिए उनको दशरथ ने घर से निकाल दिया था—आदि आदि। लेकिन राम के हृदय के महत्त्व का अन्वेषण नही किया गया। उनको महान् आत्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी ऋषि-मुनि भी क्यो पुरुषोत्तम

यह ताकत नही थी कि उस रोष को रोके। आत्मसमर्पण के सिवा दूसरा चारा ही नजर नही आता था। जिसको जो जो दण्ड वे दिया करते, नतशिर हो स्वीकार करना पडता और प्रार्थना करने के वाद मुक्ति का जो उपाय बतलाया करते उनके लिए वही करणीय हुआ करता। यह घटना आज की नही है, इसलिए हम इसको यो ही नही उडा सकते। भारतीय ज्ञानधारा जिस समय उत्तालतरगित हो अन्तर्वेगवती प्रवाहित होती थी, सारी घटना और कहानियाँ उसी समय की है।

एक जमाना था वह जव हिमालय गिरि और विन्ध्य गिरि उम आत्मचिन्तन, आत्मज्ञान और आत्मशक्ति-सचय का केन्द्र स्थान था। इनको विद्या के पीठ भी कह सकते है। जितने भी ज्ञानी-विज्ञानी, ऋषि-मुनि हुए है, यही से उन्होने अध्यात्मवाद को पहचाना है, अधिदैवत्व को जाना है और यही से आधिभौतिक का उत्तम ज्ञान लाभ किया था और स्वर्ग, मर्त्य, पाताल को एक करने का विज्ञान प्राप्त किया था, शक्ति पाई थी।

आज का पाश्चात्य साहित्य केवल भौतिक-चिन्तन करके अपनी ताकत का ढोल तो पीटता है परन्तु वाकी और भी दो अपूर्व शक्तियो के अधिकार का उसे ज्ञान नही है, जिनके सामने यह भौतिक ताकत कुछ भी नही है। पाश्चात्य वैज्ञानिक ने अपने को भौतिक विषयो के ज्ञान में इतना लिप्त कर रखा है कि उधर ध्यान ही नही जाता। आज भौतिक पदार्थ से कितनी शक्ति सचित हो सकती है, इसकी होड लगी है और विज्ञान की यही चरम सीमा समझी जा रही है। वशिष्ठ की एक हुकार में क्या शक्ति थी, इसका अध्ययन करने की न तो लालसा है, न इच्छा ही और न उतना श्रम करने की शक्ति या साहस ही।

आज एकान्त में पन्द्रह मिनिट बैठना मुश्किल हो जाता है जब कि उस समय लोग वर्षो एक ही आसन पर वैठकर तत्त्व की खोज में और प्राप्त करने में विता दिया करते थे। खान-पान की चिन्ता गौण समझी जाती थी। प्राण-अपान वायु को एकीकरण करके लोग मल-मूत्र की क्रिया को भी रोक करके आसन पर बैठ जाते सो बैठ जाते। आज इस क्रिया को रोकना वडी टेढी खीर है, हालाँकि भारतीय योगशास्त्र ने इसे आसान वतलाया है। और किस प्रकार क्या क्या किया जा सकता है, इसका मार्ग दिखलाया है, उसके लाभ वतलाये है। सफलता के वाद उसको क्या क्या कहा जाता था, यह भी बतलाया है। श्रेणी विभाजन कर दिया है कि अमुक योगी युक्त योगी कहलायेगा और अमुक युजान योगी कहलायेगा। इस विभाजन में विष्णु को युक्त योगी माना गया है। कारण, उनका ज्ञान नित्य प्रवर्तमान ज्ञान है। ससार में कहाँ क्या होता है, वे जानते थे, देखते थे। युजान योगी का अधिकारी महादेव को माना गया है। इसलिए उन्होने ध्यान लगाने के वाद सती का सीता-रूप धारण करना जान लिया था। उनको इस काम के लिए ध्यान लगाना पडा था।

इन्ही सव कारणो से इन तीन देवो—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—को सारी दुनिया का शासक माना गया है। निर्माण विभाग ब्रह्मा के अधीन है, पालन-पोषण करना विष्णु के और दण्ड देना आदि अदालती काम महादेव के। यह सर्वसम्मत विधान था और है। सारी दुनिया मे यही नियम जारी है। रहन-सहन, हवा-पानी, ध्वनि आदि के कारण नामो में विभिन्नता है। ये वाते

बार मानवो ने उसे प्राप्त किया है तो फिर भी प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु पथ साफ करना होगा——सुन्दर पथ निर्माण करना होगा। उसके लायक चिन्तन करना होगा।

मानव-चरित्र की सुन्दर अभिव्यक्ति और अनुभूति का सग्रह ही साहित्य है। इसलिए कहा गया है कि साहित्य जाति को उन्नति के शिखर पर चढा सकता है और गिरा भी सकता है। आज जरूरत है उन्नति के शिखर पर ले जानेवाले साहित्य के निर्माण की। केवल दूसरो के सरगम पर ताली पीटना बुद्धिजीवी का लक्ष्य नही है। इसमें शक नही कि अगर भारतीय साहित्य का एक सघ शुद्ध चिन्तन करे और एकलव्य के समान किसी भी वस्तु-विज्ञान को अपने ज्ञान का गुरु मान ले तो साधना की सफलता अनिवार्य होगी। कारण भारतीय परम्परा यही बतलाती है कि जितने भी ऋषि-मुनि हुए हैं, अपने बाहुबल से ही हुए हैं। उनको स्थान मिला करता था, गुरुओ का सत्सग मिलता था। इशारा मिलता था कि इस रास्ते पर चलते जाओ——जिसको खोजते हो, समय पर अवश्य मिलेगा। और अन्त में मिला भी है। इसलिए अमुक इतना विद्वान् है, ज्ञानी है, उत्तम है——का ढोल पीटना बन्द होना चाहिए और साधना के बल पर चलना चाहिए। उस पर और अपने पर विश्वास करना चाहिए। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा——'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' कर्म करो, कर्म करना मानव का धर्म होना चाहिए। फल की आशा न कर केवल कर्म करते चलो।' कर्म का फल कभी असफल नही जाता है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का मूल उद्देश्य यही है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर उत्कल के साथ सबधित सम्पृक्त सश्लिष्ट सभी विषयो की चर्चा की है। अगर इसी प्रकार सभी प्रान्त राष्ट्रभाषा में अपनी अपनी रुचि और उपलब्ध साहित्यिक सामग्री एकत्रित करके एक ग्रन्थाकार में प्रकाशित करने की अभिलाषा रखें तो यह उद्यम भारतीय भाषा-साहित्य-भण्डार में एक अमूल्य वस्तु माना जायगा।

जहाँ तक हो सका है, इस सग्रह में कोई विषय नही छोडा गया है। इसकी उपयोगिता और आवश्यकता अगर आगे अनुभव कर सके तो यह एक बडा भारी काम होगा और शुद्ध स्वाधीन चिन्तन होगा। यह एक प्रकार का स्वचिन्तित उद्यम है। अपने में आत्मबल होना चाहिए। दूसरे की ओर देखने से 'दूर का ढोल सुहावना होता है' वाली कहावत ही हाथ लगती है। उससे न तो अपना कल्याण होता है, न दूसरे का, उल्टे हानि होती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, आत्मविचार मात्र है। तर्क की कसौटी पर कसने और बाल की खाल निकालने के लिए नही है।

जय हिन्द!

अनसूयाप्रसाद पाठक

वहाँ मुरारि त्रिपाठी सर्वप्रथम मेरे पण्डा बने। उन्ही की कृपा से मैंने जगन्नाथ जी की मूर्ति के समीप जाकर पैर छुए जिसके लिए हजारो का सौदा हुआ करता है। उनका साथ मेरे लिए अत्यत उपयोगी सिद्ध हुआ। उन्ही से सुना—गोपबधु स्वागत-समिति के प्रधान मत्री है। ओडिशा में काग्रेस महासभा का जो अधिवेशन होनेवाला है, उसका सारा काम हिंदी में होगा, अग्रेजी में नही—गोपबाबू की यही आतरिक कामना है। इसीलिए स्वयसेवको को हिंदी सिखाई जा रही है। कम से कम वे लोग इतना तो अवश्य ही सीख लें कि काम पडने पर उचित निदर्शन कर सकें और उसके लिए उन्हे अग्रेजी की शरण न लेनी पडे। त्रिपाठी जी की, इन बातो से मुझे अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य की गभीरता का अनुमान सहज ही में हो गया। साथ ही गोपबाबू की हिंदी-निष्ठा ने मुझे नई प्रेरणाओ और महत्त्वाकाक्षाओ से भर दिया।

दूसरे दिन सायकाल गोपबाबू ने बुलाया। वे मानो मत्रपूत शब्दावलियो में कहने लगे—पुरी काग्रेस पर ही भारत की स्वाधीनता निर्भर है। यही पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति होगी। इसलिए मेरी इच्छा है कि राष्ट्रभाषा हिंदी में ही लोग बोलें, लिखें और समझें। कम से कम बातचीत में हम अग्रेजी की दासता से तो मुक्त रहें। यह कितनी लज्जा की बात है कि हम चले है स्वराज्य लेने किंतु पास कोई अपनी भाषा नही। हम लोग अग्रेजी बोलते है। विदेशी भाषा में सोचनेवालो के लिए देश की स्वतत्रता से क्या लाभ ? यह स्वराज्य नही गुलामी है, गुलामी। इस प्रकार लगभग १५ मिनट तक वे बोलते रहे। मुझे लगा कि स्वतत्र भारत के लिए वे हिंदी को ही उपयुक्त समझते है। अब तक मैं भाषा के इस महत्त्वपूर्ण पद से अनभिज्ञ था। स्वाधीनता-सग्राम में अभी नया रगरूट भरती हुआ था। उनके शब्दो में जादू था। मुझमें अपूर्व शक्ति, ओज और उत्साह भर गया। मै राष्ट्रभाषा के प्रेमी-प्रचारक के नाते ओडिशा नही आया था। यहाँ आने का मेरा एकमात्र उद्देश्य पुरी-काग्रेस को देखना था। सोचा था कि हिंदी सिखाने के बहाने सुविधापूर्वक काग्रेस का अधिवेशन देख सकूँगा। किंतु गोपबाबू के इन गभीर और ओजस्वी शब्दो ने मुझे कुछ और ही सोचने को बाध्य कर दिया।

मुझे अपने कर्तव्य-पालन का आदेश मिला। काग्रेस के सेवा दल के स्वयसेवक हिंदी सीखने लगे। वह दृश्य ही अपूर्व था। स्वाधीनता के लिए अपने प्राणो की बलि देनेवाले सपूतो का वह जमघट, जिसमें राष्ट्रीयता का उन्माद छाया हुआ था, राष्ट्रभाषा-ज्ञान के लिए अथक परिश्रम करने लगा। हिंदी का राष्ट्रीय गगन गानो की ध्वनि से गूँजने लगा। भाषणो, आदेशो और लिखित कार्य-वाहियो के द्वारा राष्ट्रभाषा की नीव में कितना प्रेम डाला जा रहा था, यह अनुमान करने की बात है। हिंदी के प्रति प्रेम, उत्साह और सीखने की लगन अनुपम थी। तिरगे झडे के नीचे एक ध्येय और एक भाषा के सयोग ने बलिदानियो को एक सूत्र में लाने की अपूर्व क्षमता प्रदान की थी।

एक दिन, शाम के समय, सहसा श्री गोपबधु जी चौधरी ने सबसे कहा—गाधी जी गोलमेज कान्फ्रेंस से असफल होकर लौट रहे है, नेहरू जी नजरबद कर लिये गये है। ऐसा लगता है कि लडाई छिड गई है। यह काग्रेस अब नही होगी। जिन्हें अपने घर जाना हो, वे रुपये

फिरने में भी एक प्रकार की अशान्ति सी मालूम होती थी। भारत के जनसाधारण में मुर्दनी सी छाई हुई थी। मै मित्रो के साथ कटक पहुँचा। विचित्र हाल था। फरवरी-मार्च के महीने में काठजोडी ने हम लोगो को अपनी सिकता-शय्या में स्थान दिया, क्योकि खुले आम हमें रक्षण प्रदान कर सरकार के कोपभाजन वनने की विपत्ति कौन मोल लेता ? अस्तु, काग्रेस की भावी सफलता और पलायन की कामना लेकर हम लोग वही रहने लगे। नौकरशाही सरकार के कठिन आदेशो के कारण सबधियो और परिवारवालो से मिलना भी पाप था। इसलिए अवसर पाकर भाई-भाई, पिता-पुत्र छिपकर मिलते और वाते करते।

वास्तव में काठजोडी ही ऐसी उदार मिली जिसने हमें खुलकर आश्रय दिया। दिन भर की कठिनाइयो और परेशानियो से निवटने के वाद वह हमे अपनी सैकत शय्या पर थपकियाँ दे-देकर सुलाती, फिर पौ फूटने तक हम लोग निद्रा देवी के स्निग्ध-अचल में डूबे रहते। उठने पर उसी विस्तृत रेती पर राष्ट्रभाषा की कक्षाएँ आरभ होती जहाँ तर्जनी की कलम से सैकत पट्ट पर अक्षर लिखे और सिखाये जाते थे।

मैं निरतर ऐसे जीवन से ऊब रहा था, और उत्कल छोडकर जाने को सोच रहा था कि श्रीयुत हरेकृष्ण महताव जी जेल से छूटकर कटक आये। ओडिशा छोडने की बात उनके सामने रखी। उन्होने पूछा—"आप डर तो नही गये हैं ?" मैंने झट उत्तर दिया—"नही, डरूँगा क्यो ?" "तो यही डटे रहो, और लोगो को राष्ट्रभाषा सिखाना जारी रक्खो।" सेनापति का यह आदेश मिल गया। अव तो जाने मे बुजदिली थी। अतएव लाख सकट झेलकर जमे रहने का मैंन दृढ निश्चय किया।

हम लोग नित्य भोजन के लिए श्री राधामोहन जी महापात्र के घर जाते थे। लगभग ६० आदमियो को छिपछिप कर भोजन कराते थे। मै थोडे ही दिनो में श्री राधामोहन जी महापात्र की फूस की झोपडी में रहने लगा। इस प्रकार रोटी और आश्रय की चिंता मिट गई। कपडो की परवाह थी नही, काम चलाने भर को काफी थे। उस समय की दयनीय स्थितियाँ आज भी जव-तव आँखो के सामने नाचने लगती है। यदि मै राधामोहन महापात्र की कृपापूर्ण सेवा-भावना और देशभक्ति को भुला दूँ तो मुझसे बढकर अविनीत और कौन होगा। विशेषकर उनकी श्रद्धेय माता के उपकारो का स्मरण कर मेरा सिर श्रद्धा और विनय मे झुक जाता है। मै लगातार डेढ वर्ष तक उनकी उस झोपडी में रहा जहाँ वे नित्य ही मुझे प्रेमपूर्वक भोजन कराया करती थी। उन्होने कई महीनो तक दूध और पीठे खिलाये थे। मै जिस झोपडी में रहता वह आज भी वही है। लेकिन जहाँ राष्ट्रभाषा पढाया करता था उस झोपडी के स्थान पर दो-मजिली पक्की कोठी वन गई है।

अव राष्ट्रभाषा का काम वढ गया था। घूम-घूमकर घर-घर पढाना नित्य का काम था। पढनेवालो में अधिक सख्या महिलाओ की थी। लोगो में वडा उत्साह था। जहाँ-जहाँ जाता, स्नेह पाता, जलपान पाता, यश पाता, सहानुभूति पाता, और लोगो की श्रद्धा। देश-कार्य के नाते मै अपने उस काम को अत्यत पुनीत मानने लगा था।

गैर हूँ—ऐसा मुझे आभास तक नही हुआ। माताओ और वहनो की निगाहें मेरे प्रति हमेशा पूर्ण सहानुभूति की होती थी।

१९३४ का साल आया। हिंदी के अध्यापन और प्रचार के फलस्वरूप उस साल हिंदी साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा में ७ परीक्षार्थी बैठे। इधर हरिजन-कार्य के लिए महात्मा गाधी उत्कल आये। पुरी में उनके पथ-प्रदर्शन से नया उत्साह आ गया था। उनका काम तो सदा ऐतिहासिक होता था। उन्होने पैदल भ्रमण आरभ किया और इसका नाम रक्खा "हरिजन-पद-यात्रा।"

गाधी जी की हरिजन-पदयात्रा का समाचार पाकर मैंने उनसे मिलने का निश्चय किया और चल पडा। मैंने यह यात्रा दो उद्देश्यो से की थी। एक तो उन्हे सभा की आर्थिक दशा का परिचय कराना था, दूसरा गाधी जी के द्वारा परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थियो को प्रमाणपत्र और पुरस्कार दिलाना था।

उस दिन सबेरे ९ वजे गाधी जी का पुरी के पश्चात् प्रथम पडाव साक्षी-गोपाल में था। मै वही गया। महादेव भाई से गान्धी जी से मिलने का समय माँगा। उन्होने साफ इन्कार कर दिया, पर मुझे तो मिलना था उनसे। मैंने देखा, गाधी जी एक झोपडी में भोजन कर रहे है। मीरा वहन परोस रही है। द्वार का पर्दा जरा सा उठाया और सामने हो गया। गाधी जी ने मेरी ओर देखा। मैंने कहा— मै यहाँ हिंदी का प्रचार करता हूँ। आप से मिलकर कुछ वातें कहूँगा। गाधी जी ने कहा—कल सुवह जब हम लोग पैदल चलेंगे, रास्ते में वातें होगी। फिर हाथ जोडे और लौट आया। यह किसी को मालूम नही था। मै आकर चुपचाप एक आम के पेड की छाया में वैठ गया। मन कहता—अरे चल घर, यह जरा सी बात उनको याद भी रहेगी। वुद्धि कहती—नही, रुक जाओ, उन्होने कहा जो है। अगर याद रखें, वुलायें तो! इसी ऊहापोह में रात बीती, सबेरा हुआ। प्रार्थना हुई, जलपान हुआ, चलने की तैयारी हुई। ठीक समय पर गाधी जी झोपडी से निकल पडे।

मै यात्रियो की पाँचवी पक्ति में था। साक्षी-गोपाल के गोइडे से गये ही थे कि गाधी जी ने गोपवन्धु जी चौधरी से पूछा—उत्कल में जो हिंदी का प्रचार करते है, उनको बुलाओ। नाम तो वतलाने का समय ही मुझे नही मिला था। उनके पूछते ही मै उपस्थित हो गया। मैंने अपनी उक्त दोनो वातें उनसे कही। आपने कहा—पुरस्कार तो कटक में दे दूँगा, लेकिन दूसरी वात जो अर्थ से सवध रखती है, उसके लिए तुमको भद्रख जाना होगा। वहाँ कलकत्ते से वसन्तलाल जी आ रहे है। वात तय कर दूँगा। मैंने कहा—ये पहरेवाले मुझे जाने दे तव न? आपने कहा—मैं कह दूँगा और जब तुम देखना कि मेरे पास वसन्तलाल है तो बेरोक चले आना।

गाधीजी कटक आये। शाम के समय काठजोडी नदी के मैदान में सभा का आयोजन हुआ। वही प्रमाणपत्र और पुरस्कार देना था। गाधी जी से सभा की स्थापना के उद्देश्य और उसके सभापति तथा मत्री आदि का परिचय कराया गया। उन्होने प्रसन्नतापूर्वक राष्ट्रभाषा वोलते हुए प्रमाणपत्र और पुरस्कार दिये, लेकिन पुरस्कार को दानस्वरूप मांग लिया। हरिजन

के शब्द सुनाई पडे। मै अनसुनी करता गया। आध घटे के बाद ऊपर के छज्जे से देखा, पुलिस घर घेरे खडी है। सख्या में ८० के होगी। इन्सपेक्टर ने पुकारा—'द्वार खोलो।' 'क्यो?' मैने ऊपर से ही पूछा। उत्तर मिला—जल्दी खोलो, नही तो द्वार तोड दिया जायगा।

नीचे आया, द्वार खोला। सामने खडा हो गया। 'सर्च करने का आर्डर है'—मेरी ओर आर्डर को वढाते हुए इन्सपेक्टर ने कहा। 'मै अग्रेजी नही जानता। इसमें क्या लिखा है?' अनुवाद सुनाया—यहाँ बम है, इसी प्रकार का साहित्य तथा शस्त्र है, यह स्थान वागियो का एक वडा अड्डा है।

नियमानुसार मैंने भी चालीस आदमियो की तलाशी ली और अन्दर जाने दिया। तलाशी शुरू हुई। ऊपर-नीचे कागजपत्र, सारी किताबो के पन्ने, जिल्दें, कुँवा, पायखाना सभी देखा गया। ६ बजे से १२ तक तलाशी होती रही। दुबारा ऊपर जाकर इन्सपेक्टर ने उस कागज को देखा जो मेरी लिपि में लिखा हुआ था। मुझसे पूछा—यह कौन सी लिपि है?—'हिंदी' मैंने कहा। एक विहारी जमादार को दिखाकर पढवाया। उसने पढा—स० र० स० म। इन्सपेक्टर—इसमें क्या लिखा है? जी, एक वारावाटी के बारे में लिखा है। उसे मासिक में भेजना है, छपने के लिए।

'पढो तो', इन्सपेक्टर ने पूछा। मैंने वारावाटी, जैसे पहले देखा था वैसे ही पढ गया। पढते समय इन्सपेक्टर मेरी ओर गौर से देख रहा था। तत्पश्चात् निजी पत्र लेकर वह सभी के साथ गया। शर्तनामा रह गया। यह शुभ हुआ। २४ घटे पहले विपिन वाबू अणखिया, श्री नवकृष्ण चौधरी के फार्मवाले घर, पहुँचाये जा चुके थे। पहुँचने की खबर मुझे ४ वजे राधाश्याम तथा बकिम ने दे दी थी। इनको मैंने हाल ही में भरती किया था। विपिन वाबू को पकडवानेवाले को १० हजार रुपये का सरकारी इनाम था।

राष्ट्रभाषा सभा का नाम कटक में भी फैल गया। मेरे परिचित हिंदी-शिक्षार्थी खबर लेने आते। मैं सारा समाचार बतला नही सकता था। मै खुश था कि मैंने आज वडे काम से मुक्ति पाई है। सभा के प्रति लोगो की सहानुभूति वढी। लोग समझने लगे कि मै भी किसी वडे क्रान्तिकारी दल के साथ हूँ। राष्ट्रभाषा की व्यापकता के लिए यह एक वहुत ही उत्तम कार्य हुआ।

कलकत्ते से ४० रुपये मिले, तो पुरी में भी एक प्रचार केन्द्र खोल दिया गया। वीस रुपया मासिक मै खर्च करता था। यह मेरे लिए वहुत काफी था। भोजनादि में १५) से ज्यादा खर्च नही होता था। सारा काम खुद ही कर लेता था। मै अव सोचता हूँ कि मेरा वह जीवन कितना साधु और पवित्र था।

घर-घर हिंदी पढाता। श्रीमती रमा देवी जी रोज नया घर वतलाती। उनके घर में लडकी-लडके हिंदी पढने आते तो मै जा पहुँचता था। सवेरे से लेकर रात ८ वजे तक राष्ट्रभाषा-प्रचार का चक्र चलता रहता था।

१९३६ में ब्रह्मपुर मे भी एक केन्द्र खुल गया। कलकत्ते की सहायता वढ गई था जनवरी के प्रथम सप्ताह मे। गाधीजी को उत्कल में राष्ट्रभाषा के वार्षिक कार्य की सूचना देता



कटक में श्री० पाठकजी का पहला आवास स्थान
सन् १९३? ई०



श्री० पाठकजी के प्रथम आश्रयदाता कांग्रेसकर्म
श्री० राधामोहन महापात्र

ीचे ) श्री हरेकृष्णजी महताब गान्धी राष्ट्रभाषा भवन का
शिलान्यास कर रहे हैं । १८-१-१९४८



( ऊपर ) राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस की एक झाँकी ( नीचे ) राष्ट्रभाषा प्रेस का जिल्दसाज विभाग

















( ऊपर ) हाथ से बने कागज का कारखाना ( नीचे ) राष्ट्रभाषा प्रेस के कर्मचारियों का नि

तैयार नही था। कही आने-जाने पर तथा पत्रादि में नाम की खोज की जाती। आखिरकार चगुल में आ ही गया। मै जेल गया, साथ में वनमाली मिश्र भी थे। कटक से ब्रह्मपुर जेल ले जाये गये। यहाँ पर भी हमारा वही पुराना काम रहा, राष्ट्रभाषा पढाना। नजरवद रहने के कारण सारी सुविधाएँ थी, कागज, कलम-पेन्सिल का यहाँ अभाव नही था।

यहाँ दलबन्दी खूब थी। कम्युनिस्ट एक किनारे की झोपडी में रहते। जो उधर जाता, उस पर कडी निगाह रखी जाती। लेकिन हमें तो बिना भेद-भाव के राष्ट्रभाषा सिखानी थी, सो हम उन्हें भी सिखाते रहे। कितनो के भाव टेढे देखे, कितनों की नाक-आँखें सिकुडी देखी। पर राष्ट्रभाषा सभा का तो काम था बिना भेद-भाव के हिंदी सिखाना। मै तदनुसार कार्यमग्न रहा।

यह क्रम जारी रहा बराबर २–३ साल तक। फिर प० वनमाली मिश्र जी बीमार पड गये और ऐसा पडे कि जेल से छूटने पर भी एक साल खाट नही छोडी।

सन् १९४५ में मुझे जेल से छोडा गया। निकलते ही यह प्रतिवध मिला कि ओडिशा में नही रह सकते। यह मेरे लिए असम्भव था। यह आज्ञा मैंने नही मानी। फिर जेल गया, लेकिन फिर उसी आदेश के साथ छोड दिया गया। इस समय सभा के मत्री प० लिंगराज जी मिश्र थे। उनके परामर्श से मै इच्छापुर चला गया। यह अज्ञातवास था। लेकिन मेरे लिए पूर्ण साधना का दिन वास्तव में यही था। यही मैंने रवीन्द्र-साहित्य तथा शरत्-साहित्य पढा। दिन भर पढता-लिखता। शाम को घूमने जाता। स्टेशन जाता, कितनी ही सुन्दर-असुन्दर मूर्तियो को देखता। इसी बीच सभा के सपर्कित पत्रादि का उत्तर भी देता था।

किंतु इच्छापुर का वातावरण मुझे अच्छा नही लगा। मुझे ऐसा लग रहा था कि मै यहाँ फिसल जाऊँगा। सभा का काम अब मैं यहाँ से देखता। मित्रो को तथा प्रचारको को लिखता। सभा अव मुझे अधिक प्यारी लगने लगी थी। इच्छापुर से कलकत्ते चला गया। वही से सभा के उत्सव की तैयारी की। एक सज्जन को सभापति बनाकर भेजा। मेरे मन में यह करुणा जागती रही कि इतने दिनो वाद सभा के समारोह में मैं सम्मिलित नही हो रहा हूँ।

१९४६ में काग्रेसी सरकार वनी। मै फिर ओडिशा आया। कलकत्ते की अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा के मत्री ने चुनौती दी। उनका कहना था कि अगर हिंदी के साथ-साथ उर्दू पढाओगे तो सहायता दी जायगी, अन्यथा सहायता बन्द। मुझे उनकी यह बात पसद नही आई। रुपये की कीमत मेरे सामने उतनी नही थी, जितनी सिद्धात की। मैंने श्री हरेकृष्ण जी महताव, श्री नवकृष्ण जी चौधरी, प० लिंगराज जी मिश्र, सभा के सभापति स्वामी विचित्रानन्द दास से परामर्श किया और अपनी राय जाहिर की। मैंने कहा—कटक में मेरे इतने घर है। अगर एक वक्त भोजन एक घर में करूँ तो वही फिर लौट आने के लिए दो मास लगेंगे। उसी समय ओडिशा के प्रधान मत्री वने श्रीयुक्त हरेकृष्ण जी महताव और शिक्षामत्री वने प० लिंगराज मिश्र। रुपये की कमी पूरी हो गई। वार्षिक तीन हजार मिलने लगे।

प० लिंगराज जी के शिक्षा-मत्री वनने से सभा के काम में अच्छी प्रगति हुई। तीन हजार से दस हजार रुपये की सरकारी सहायता मिलने लगी और ओडिशा के सभी स्कूलो में हिंदी अनि-

सभा का कार्य बढती पर है। उसकी बढती में जितने सज्जनो का हाथ है उनमें डा० हरेकृष्ण महताब भी हैं। आपने अपने आनद को यो व्यक्त किया था—'मुझे ऐसा लगा मानो मैं बम्बई से लौटकर किसी राजा के भवन में जा रहा होऊँ, हालाँकि राजसी ठाट-बाट का यहाँ नामो-निशान नही है।'

गाधी राष्ट्रभाषा-भवन बनता है। उसमें काम करने की अनेक प्रवृत्तियाँ हैं, जिसमें प्रति सप्ताह साहित्य-गोष्ठी प्रधान है। यह मुझे अभिमान है ही, कारण सभा बालिग हो गई है। ७ परीक्षार्थियो के स्थान पर आज उसके १८० परीक्षा-केन्द्र हैं और साल में १४ हजार से अधिक व्यक्ति परीक्षा में बैठते हैं।

इस राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा के रजत-जयती उत्सव के आयोजन से मेरे मन में यह भावना जागी है कि विश्वसाहित्य में कुछ भी नही है, जो है वह ध्वसमूलक है, जो ध्वसमूलक है वह नाशवान् है और जो नाशवान् है वह कुछ भी नही है। अगर होता तो दुनिया में जो 'मैं खाऊँ' की नीति बरती जाती है और एक को देखकर दूसरा गुर्राता है वह न होता। इस रजत-जयन्ती साहित्यिक गोष्ठी से अगर असली तत्त्व निकल सका तो भारत का भारतीय साहित्य दुनिया मे चमकेगा, अनुकरणीय होगा।

खोकर इस विशाल वन में समा गईं। इस प्रकार, इस विस्तृत भारतीय समाज में विविधताओ का मिलन हुआ, समन्वय की खोज हुई। भारत ने विविधता को स्वीकार कर एक ओर समाज में ऐसी व्यवस्था की रचना की, जिसमें प्रत्येक वर्ग उसका अभिन्न अग बन गया और दूसरी ओर भारतीय धर्म को इतना उदार बना दिया कि उसमें सभी को स्थान मिल गया। आध्यात्मिक क्षेत्र में ईश्वरवाद, अनीश्वरवाद, आत्मवाद, अनात्मवाद आदि अनेक वादो के पीछे भारतीय धर्म की उसी अपनत्व भावना, उदारता और लचीलेपन का रहस्य छिपा हुआ है। समन्वय की उदार भावना भारत की अपनी विशेषता रही है और यही वह भावना है जो भारत जैसे विशाल भूखड को एकता के सूत्र में पिरोये हुए है।

भारत की अखडता युगो पुरानी है। स्नान करते समय एक भारतीय जिस श्लोक का पाठ करता है उसमें सम्पूर्ण भारत की नदियो—गगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, आदि के जल का स्मरण किया गया है।

गगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु॥

ये नदियाँ किसी प्रान्त-विशेष को ही नही वरन् सम्पूर्ण भारत को जीवन दान देती है।

यह ठीक है कि मध्ययुग में भारत की राष्ट्रीय भावना शिथिल हो गई थी परन्तु आगे चलकर श्री शकराचार्य जैसे महापुरुषो ने उसकी अखडता की पूरी रक्षा की थी। हमारे चार धाम (बदरीनाथ, पुरी, द्वारका और रामेश्वरम्) भारत की चारो सीमाओ पर खडे हुए मानो हमारी अखडता की रक्षा करने के लिए प्रहरी का काम कर रहे है।

किन्तु इस अखडता को पहचानने के लिए सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है, क्योकि उसके मूल स्वरूप को पहचाने बिना ऊपरी तथ्यो से सत्यान्वेषण नही किया जा सकता। राष्ट्र के विभिन्न प्रान्तो के लोक-जीवन से परिचित व्यक्ति को भी कम आश्चर्य नही होता, जब वह देखता है कि भारतीय एकता के अत्यत सूक्ष्म ततु लोक-जीवन की छोटी से छोटी बात में विद्यमान है। इन्ही सूक्ष्मताओ को देखकर कहा जाता है कि भारतवर्ष की एकता उसकी अनेकताओ मे छिपी हुई है।

उत्थान और पतन जीवन और जगत् का शाश्वत क्रम है। इसमे व्यक्ति, जाति, समाज, राष्ट्र आदि सभी आ जाते है। पिछली कई शताब्दियो से भारत पतन के दिन देखता आया था। विदेशी आक्रमण, देश-वासियो के झूठे अहम्, कलह, ईर्ष्या, अशिक्षा और अविवेक ने एकता तथा उन्नति के सभी द्वार अवरुद्ध कर दिये थे। विदेशी शासन ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए यहाँ फूट का बीज बोया जो विद्वेष के वातावरण में फूलता-फलता गया। शताब्दियो की कठोर दासता अभागे भारत के लिए अभिशाप बन कर आई। किन्तु रात्रि का अन्धकार कितना ही गहरा क्यो न हो, उषा की अरुणिमा उसे चीरकर मुसकाती ही है। परिवर्तन का चक्र कभी नही रुकता, अवनति के बाद उन्नति का पथ प्रशस्त होता ही है।

"हर एक पढे-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का–हिन्दू को सस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओ को अरबी और कुछ मुसलमानो और पारसियो को सस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहनेवाले हिन्दुस्तानी को तामिल भी सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू मुसलमानो के विचारो को ठीक रखने के लिए वहुतेरे हिन्दुस्तानियो को दोनो लिपियाँ जानना जरूरी है। ऐसा होने पर हम अपने आपस के व्यवहार से अग्रेजी को निकाल वाहर कर सकेंगे।"

अब यह सोचकर हम चकित रह जाते है कि आज से ५० वर्ष पहले गाधी जी ने देश की राष्ट्रीय भाषा के सबध में अपने कैसे उदार विचार प्रकट किये थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वदेश लौटने पर जब गाधी जी ने देखा कि उन्ही भारतीयो के द्वारा, जिनकी ये मातृभाषाएँ है, भारतीय भाषाओ की उपेक्षा हो रही है, तब उनके स्वदेशाभिमानी हृदय को चोट लगी। अग्रेजी का सब कही बोलबाला देखकर वे राष्ट्रभाषा के अभाव का अनुभव और अधिक तीव्रता से करने लगे। अग्रेजी के महत्त्व को समझते हुए भी वे उसे राष्ट्रीय भाषा का स्थान देने के लिए कदापि तैयार न थे।

सन् १९१७ में भडौंच में हुई दूसरी "गुजरात शिक्षा-परिषद्" में अपने सभापति-पद से दिये गये भाषण में राष्ट्र की भाषा-समस्या पर गाधी जी ने अपने तर्क-पूर्ण विचार निम्न शब्दो में व्यक्त किये थे।

"कुछ विद्वान् मानते है कि अग्रेजी राष्ट्रीय भाषा वन चुकी है। किन्तु अगर हम गहराई से इस विषय पर सोचें तो पता चलेगा कि अग्रेजी राष्ट्रीय भाषा नही बन सकती, न बननी चाहिए।"

इसी भाषण में आपने राष्ट्रीय भाषा अथवा राष्ट्रभाषा के लिए नीचे लिखे गुणो का होना आवश्यक वताया था—

१—अमलदारो के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।

२—उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।

३—यह जरूरी है कि भारतवर्ष के वहुत से लोग उस भाषा को वोलते हो।

४—राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।

५—उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर जोर नही देना चाहिए।

गाधी जी ने अपने अकाट्य तर्कों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि अग्रेजी भाषा मे इनमें से एक भी लक्षण नही, और ये सभी गुण हिन्दी भाषा में विद्यमान है इसलिए यदि इस देश की कोई भाषा राष्ट्रभाषा वन सकती है, तो वह हिन्दी ही है।

हिन्दी के सबध मे अपनी यह राय प्रकट करने के पहले गाधी जी ने इस देश की अन्य

उन्हें घृणा नही थी, हाँ, भारतीय भाषाओ के प्रति उनके हृदय में अपेक्षाकृत अधिक प्रेम था और हिन्दी को तो वे अन्तर-प्रान्तीय व्यवहार की भाषा मानते थे।

सन् १९२७ की घटना है। गाधी जी सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर रहे थे। स्थान-स्थान पर उन्हे अभिनन्दन-पत्र दिये जा रहे थे पर जब वे देखते कि चाहे जो प्रात हो, अभिनन्दन-पत्रो की भापा अग्रेजी ही रहती है तब उन्हें अत्यत मानसिक क्लेश होता था। उन्होने 'हिन्दी नवजीवन' में इस विषय पर निम्न टिप्पणी लिखी थी—

"इस बार दौरे में मुझे जो अभिनन्दन-पत्र मिले हैं, वे अधिकाश अग्रेजी में ही थे। झरिया में भी कोयले की खानो के मजदूरो की ओर से मुझे अग्रेजी में मानपत्र दिया गया। उस सभा में हजारो मजदूर थे। अग्रेजी समझनेवालो की सख्या तो ५० से कम रही होगी। यह मानपत्र बँगला में लिखा जा सकता था और मेरी खातिर उसका अनुवाद हिन्दी अथवा अग्रेजी में किया जा सकता था।

मैं उम्मीद करता हूँ कि वे दिन आ रहे हैं जब किसी सभा की कार्रवाई ऐसी किसी भाषा मे होने पर, जिसे सभा के अधिकाश लोग न जानते हो, लोग उस सभा से उठकर चल देंगे।

जो बात मैने झरिया के लिए कही है वही आन्ध्र देश, तामिलनाड, केरल और कर्नाटक के लिए भी है। मै उनकी कठिनाइयो को जानता हूँ, मगर अब कोई छ साल से उनके बीच हिन्दी का प्रचार करने के लिए एक सस्था "दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा" काम कर रही है। अत इन प्रदेशो के निवासियो को प्रयत्न कर के हिन्दी सीख लेनी चाहिए।

मैंने द्राविड देश के लिए हमेशा छूट दी है और जब कभी उन्होने चाहा है, अपना भाषण अग्रेजी में दिया है। मगर मै यह सोचता हूँ कि अब वह समय आ गया है जब उन्हें सार्वजनिक सभाओ के लिए अग्रेजी का आसरा छोड देना चाहिए। सच पूछो तो हिन्दी सीखने से इनकार करके हमारे अग्रेजीदाँ नेता ही जनसमूहो मे हमारी शीघ्र प्रगति के रास्ते में रोडे अटका रहे है। हिन्दी तो द्रविड देशो मे भी तीन महीनो के भीतर सीख ली जा सकती, अगर उसे रोज तीन घटे का समय दिया जाय। हिन्दुस्तान के २० करोड आदमी जिस हिन्दी को समझते है उस हिन्दी को न सीखने के लिए आलस्य और अनिच्छा को छोड कर दूसरा कोई बहाना हो ही नही सकता।"

प्रान्तीय भाषा हिन्दी और अग्रेजी का भारतीय जीवन मे क्या स्थान हो सकता है, इस विषय में गाधी जी ने गहरी चिंतना की थी और वे इस निर्णय पर आये थे कि "अगर हिन्दुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा के पद के लिए हिन्दी को ही स्वीकार करना पडेगा। क्योकि हिंदी को जो स्थान प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को नही मिल सकता। हिन्दू मुसलमान दोनो को मिलाकर करीब २२ करोड मनुष्यो की भाषा थोडे-

है। यहाँ उसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नही। सक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि लगभग एक सदी से हिन्दी-उर्दू का एक अवाछित झगडा इसके मूल में रहा है और इस झगडे को वढाने में विदेशी शासको का हाथ कम नही रहा।

यद्यपि भाषा के साथ धर्म का कोई विशेष सबध नही किंतु हिन्दी और उर्दू के इस झमेले में धर्म ने भी हस्तक्षेप किया है। न जाने कितने मुसलमानो ने हिन्दी की अपूर्व सेवा की है। रहीम, रसखान, ताज आदि के नाम तो सहज गिनाये जा सकते हैं। उसी प्रकार न जाने कितने हिन्दुओ ने उर्दू साहित्य को समृद्ध किया है। साहित्य का क्षेत्र इतना सकुचित नही है कि जिसे तुच्छ फिरका-परस्ती गन्दा कर सके। वास्तव में भाषा एक ही थी, जो देवनागरी में लिखने पर हिन्दी, और फारसी लिपि में लिखने पर उर्दू कहलाई। व्यक्ति जिस वातावरण मे पलता, वढता और रहता है, उसकी भाषा में उसी वातावरण के शब्दो का आधिक्य हो जाता है। हिन्दी और उर्दू भाषा में भी शब्दो की दृष्टि से जो अन्तर दिखाई देता है उसका यही रहस्य है। यदि इन शैलियो के पृष्ठपोपको ने सस्कृत और अरबी-फारसी के शब्दो से भरकर उसे दुरूह और कृत्रिम न बना दिया होता तो आज इनमें इतना वडा अन्तर न होता। उर्दू शैली के अनुयायियो ने तो न केवल अरवी-फारसी के लफ्जो को वहुत वडी सख्या में अपनाया वल्कि उन्होने उसके व्याकरण तक को अपना लिया। फल यह हुआ कि मकान और कागज का वहुवचन मकानो और कागजो न वनकर मकानात, कागजात वन गया। इस विभेद का दुष्परिणाम यह हुआ कि ये दोनो शैलियाँ पडितो और मौलवियो की शैलियाँ वन गई और साहित्य दो विभागो में बँट गया। यहाँ पर यह वताने की आवश्यकता नही कि सरल और प्रचलित शब्दो का प्रयोग करनेवाली स्वाभाविक जनभाषा जनता के व्यवहार का माध्यम पूर्ववत् वनी रही।

गाधी जी ने जनभाषा के इसी रूप की व्यापकता को अच्छी तरह समझा था, इसीलिए जव राष्ट्रभाषा की समस्या खडी हुई तो उन्होने स्पष्ट शब्दो में कहा—

"जनभापा या राष्ट्रभाषा तो जनता की ही भाषा हो सकती है, केवल पडितो, विद्वानो या मौलवियो की भाषा कदापि नही।" इसलिए उत्तर भारत की सरल जनभाषा को चाहे हिन्दी कहें या उर्दू, गाँधी जी के मत से वह देश की राष्ट्रभाषा वनने की अधिकारिणी थी। हिन्दी भापा वे उसे कहते थे जिसे उत्तर मे हिन्दू और मुसलमान वोलते है, जो न तो सस्कृतमयी है और न एकदम फारसी शब्दो से लदी हुई।

ससार में देखा गया है कि नाम के आग्रह को कम महत्त्व नही दिया जाता। जहाँ तक राष्ट्रभापा के रूप का सवध है, दो मत नही हो सकते, किंतु भाषा के नाम और उसकी लिपि को लेकर आगे चलकर दो स्पष्ट मत वने, और उन्होने उग्र रूप धारण कर लिया।

प्रश्न यह है कि गाधी जी ने इन समस्याओ को किस ढग से हल करना चाहा था और वे इस कार्य मे कहाँ तक सफल हुए थे ?

एक ही भापा की दो शैलियो मे अन्तर वढता गया, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दो नाम, हिन्दी और उर्दू प्रचलित हो ही चुके थे। जव राष्ट्रभापा का प्रश्न उठा तो हिन्दी

# कृतज्ञता-ज्ञापन

राष्ट्रभाषा-प्रचारसभा २५ साल की होगी तो उसके उपलक्ष में एक उत्कल का पूर्णांग परिचयात्मक ग्रन्थ निकाला जायगा। उसमें उत्कल की कोई प्रवृत्ति छूटे नही, इस वात का खयाल रहेगा। यह सुझाव आने के वाद सभा की कार्यकारिणी समिति के सभ्यो ने सोत्साह प्रस्ताव को स्वीकार किया। उसका आयोजन आरम्भ हो गया। लेखको से लेख माँगे गये और उन लोगो ने प्रसन्नता के साथ समय पर लेख दिये भी। अनुवादको ने श्रम किया, टाइप करनेवाले ने भी श्रम किया। पण्डित श्यामनारायण तिवारी ने लेखो को आमूल पढकर सुपाठ्य वनाया हैं। पण्डित लल्लीप्रसाद पाडेय ने ग्रन्थ के सम्पादन में अपना अमूल्य समय लगाया है। इस वय में राष्ट्रभाषा-ग्रन्थ के लिए आपने वहुत श्रम किया है। साथ ही श्री वाचस्पति पाठक को भी भुलाया नही जा सकता जिन्होने इस आयोजन में योग्य व्यक्ति तथा वस्तुएँ लाकर इस ग्रन्थ को सजाने तथा सुन्दर वनाने में पूरा सहयोग दिया है।

सभा इन सभी महानुभावो को सहर्ष धन्यवाद देती है।

—सयोजक

"हिन्दी उर्दू का यह सवाल बारहमासी बन गया है। हालाँकि उसके बारे में बहुत बार अपने विचार जाहिर कर चुका हूँ, और उन्हें फिर से प्रकट करना पुनरावृत्ति ही होगी, फिर भी इस बारे में जो कुछ मानता हूँ उसे बिना किसी दलील के सीधे-सादे रूप में देना ठीक होगा।

मेरा विश्वास है कि—

१—हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू शब्द उस एक ही जबान के सूचक है, जिसे उत्तर भारत मे मुसलमान और हिंदू दोनो बोलते है, और जो देवनागरी या फारसी लिपि में लिखी जाती है।

२—इस भाषा के लिए उर्दू शब्द शुरू होने से पहले हिन्दू मुसलमान दोनो इसे हिन्दी कहते थे।

३—हिन्दुस्तानी शब्द भी बाद मे (यह मै नही जानता कि कब से) इसी भाषा के लिए इस्तेमाल होने लगा है।

४—हिन्दू मुसलमान दोनो को यह भाषा उसी रूप मे बोलने की कोशिश करनी चाहिए, जिसमे उत्तर भारत के ज्यादातर लोग इसे समझते है।

५—अनेक हिन्दू और बहुत से मुसलमान सस्कृत और फारसी या अरबी के ही शब्दो का व्यवहार करने का आग्रह करेंगे। यह स्थिति हमें तब तक बरदाश्त करनी पडेगी, जब तक हमारे बीच एक दूसरे के तईं अविश्वास और अलहदगी का भाव बना हुआ है। पर जो हिन्दू किसी खास तरह के मुसलिम खयालात को जानना चाहेंगे, वे फारसी लिपि मे लिखी हुई उर्दू का अध्ययन करेंगे, और इसी तरह जो मुसलमान हिन्दुओं की किसी खास बात का ज्ञान हासिल करना चाहेंगे उन्हें देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी का अध्ययन करना होगा।

६—अन्त में जाकर जब हमारे दिल घुल-मिल जायेंगे और हम सब अपने-अपने प्रान्त के बजाय हिन्दुस्तान पर गर्व का अनुभव करने लगेंगे, और मुख्तलिफ धर्मो को एक ही वृक्ष के विभिन्न फलो के रूप में जानने और तदनुसार उस पर अमल करने लगेंगे, तब हम प्रान्तीय भाषाओ को प्रान्तीय काम-काज के लिए कायम रखते हुए एक ही सामान्य लिपिवाली सामान्य भाषा पर पहुँच जायेंगे।

७—किसी प्रात या जिले अथवा जनता पर एक भाषा या हिन्दी के एक रूप को लादने का जतन करना देश के सर्वोत्तम हित की दृष्टि से घातक है। आम भाषा के सवाल पर विचार करते समय धार्मिक भेद-भावो का ख्याल नही करना चाहिए।

८—रोमन लिपि न तो हिन्दुस्तान की सामान्य लिपि हो सकती है, और न होनी चाहिए। यह तो हमारी फारसी और देवनागरी के बीच ही हो सकती है। और इसके अपने मौलिक गुणो को अलग रख दे, तो भी देवनागरी ही सारे हिन्दुस्तान की सामान्य लिपि होनी चाहिए, क्योकि विविध प्रातो मे प्रचलित ज्यादातर लिपियाँ मूलत देव-

गाधी जी की यही इच्छा आगे चलकर हिंदुस्तानी-प्रचार सभा के रूप में साकार हुई। उनकी प्रेरणा से काका साहब कालेलकर की देखरेख में इस सस्था ने काम प्रारम्भ किया। देवनागरी और उर्दू दोनो लिपियो को समान आदर देकर इस सस्था ने कार्य प्रारभ किया और चाहा कि देशवासी दोनो लिपियों को अनिवार्य रूप से सीखे। किन्तु देश की वदलती हुई परिस्थितियो मे, देश की जनता का सहयोग इस सस्था को प्राप्त न हो सका। दोनो लिपियो की अनिवार्यता को किसी ने स्वीकार नही किया।

भाषा के साथ लिपि का घनिष्ठ सबध होता है। एक भाषा की प्राय एक ही लिपि रहा करती है। गाधी जी ने जिस हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद दिया, उसके लिए उन्होने दो लिपियो का जिक्र किया था जो नागरी और फारसी लिपियाँ है।

सच तो यह है कि उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही गाधी जी ने इन दो लिपियो की वात कही थी। दो लिपियो की कठिनाइयो को वे स्वय अच्छी तरह समझते थे। इसीलिए तो उन्होने एक स्थान पर लिखा था—

> "लिपि की कुछ तकलीफ है। मुसलमान भाई अरबी लिपि में ही लिखेंगे, हिंदू नागरी लिपि में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनो को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारो को दोनो लिपियो का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। अन्त मे जिस लिपि में ज्यादा सरलता होगी उसकी विजय होगी।"

गाधी जी चाहते थे कि भारत की सभी प्रातीय भाषाओ की एक ही लिपि हो जाय। आज तो भारत में जितनी प्रातीय भाषाएँ है, लगभग सब की भिन्न-भिन्न लिपियाँ है। केवल मराठी और हिंदी की एक ही लिपि देवनागरी है।

गाधी जी ने एक स्थान पर लिखा था—

> "लिपि-विभिन्नता के कारण प्रान्तीय भाषाओ का ज्ञान आज असभव-सा हो गया है। वगाली लिपि मे लिखी हुई 'गीताजलि' को सिवा वगालियो के और पढेगा कौन ? पर यदि वह देवनागरी लिपि में लिखी जाय तो उसे सभी लोग पढ सकते हैं।"
>
> "हमें अपने वालको को विभिन्न प्रातीय लिपियो को सीखने का व्यर्थ कष्ट नही देना चाहिए। यह निर्दयता नही तो और क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तामिल, तेलगु, मलयाली, कानडी, उडिया और वगाली इन छ लिपियो को सिखाने मे दिमाग खपाने को कहा जाय। आज कोई प्रातीय भाषा सीखना चाहे तो लिपियो का यह अभेद्य प्रतिवध ही उनके मार्ग में कठिनाई उपस्थित करता है।"

स्पष्ट है कि गाधी जी देवनागरी लिपि के पक्के हिमायती थे और भारत की राष्ट्रलिपि के स्थान पर उन्हे वैठाना चाहते थे। गावी जी कथनी से पहले करनी पर जोर देते थे। देवनागरी लिपि के प्रचार के लिए उन्होने कुछ काम भी किया था। उनकी ही प्रेरणा से नवजीवन प्रकाशन,

की स्थापना हुई। इस सस्था ने हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी के लिए देवनागरी और उर्दू दोनो लिपियो को स्वीकार किया और अपनी परीक्षाओ में दोनो का जानना अनिवार्य माना।

यह वह समय था जब देश मे अत्यत वेग से परिवर्तन हो रहा था जिसकी कल्पना किसी ने स्वप्न में भी नही की थी। देश स्वतत्र हुआ, पर साथ ही साथ देश के दो टुकडे भी हो गये। जो कट्टर मुसलमान थे उन्होने पाकिस्तान स्थापित करके ही माना। अनिच्छा रहते हुए भी राष्ट्र के कर्णधारो को देश का यह दुखद विभाजन स्वीकार करना पडा।

इस घटना के कारण उर्दू भाषा और उर्दू लिपि का पक्ष निर्बल पड गया। हिंदुस्तानी-प्रचार सभा को जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त न हो सका और दूसरी ओर देवनागरी लिपि द्वारा राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार करनेवाली राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धा की सेवाएँ जनता के अनुकूल पडी।

गाधी जी की कल्पना के अनुसार दोनो लिपियो को स्वीकार करनेवालो में कई का विश्वास उससे डिग गया। हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा के सस्थापक सदस्यो में एक ने गाधी जी को पत्र में लिखा—

"१५ अगस्त १९४७ के बाद से लिपि के बारे में मेरे ख्याल बिलकुल बदल गये और अब पक्के हो गये हैं।"

"जब तक हिन्दुस्तान अखड था और अखड रखने की उम्मीद थी, तब तक नागरी लिपि के साथ उर्दू लिपि को चलाना उचित, बल्कि जरूरी मानती थी। आज हिन्दुस्तान, पाकिस्तान दो जुदे राज्य बन गये। (मुसलमानो की निगाह में तो दो जुदे राष्ट्र) हिंदुस्तानी हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा, नागरी हिंदुस्तान की खास और मान्य लिपि—फिर नागरी के साथ उर्दू के गठबन्धन की क्या जरूरत ? अब मेरा दृढ विश्वास हो गया है कि हिंदुस्तान पर उर्दू लिपि लादने में इतना ही नही कि कोई फायदा नही, बल्कि सख्त नुकसान है।"

उपरोक्त कथन के साथ अकाट्य तर्क भी उपस्थित किये गये थे, परन्तु गाधी जी के उच्चाशय और उन्नत आदर्श के समक्ष वे ठहर न सके। देश के टुकडे हो जाने के पश्चात् भी वे अपने उच्च धरातल से नीचे न उतरे। उनका यह कथन उनकी महत्ता का परिचायक था—

"हम दो लोग (नेशन) नही हैं। दो लोग मानने में हम हिन्दुस्तान को बडा नुकसान पहुँचायेंगे। कायदे-आजम भले दो लोग मानें, और ऐसा माननेवाले भले हिंदू भी हो, लेकिन सारी दुनिया गलती में फँसे तो क्या हम भी फँसे ? ऐसा कभी नही हो सकता।"

"अगर राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है, तो उसे दोनो लिपियो मे लिखने की छूट होनी चाहिए । मैं नही चाहता कि हिंदुस्तान के चालीस करोड को दोनो लिपियाँ सीखनी है। ऐसा अवश्य है कि जो सारे मुल्क में फिरता है, जिसको अपने सूबे की ही नही, बल्कि सारे मुल्क की सेवा करनी है उसे दो लिपियाँ सीखनी चाहिए, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान।"

शक्ति के साथ राष्ट्रभाषा के सबध में जो उद्गार प्रकट किये थे, वे सदा स्वर्णाक्षरो में लिखे जायेंगे और हमारा चिरकाल तक मार्गदर्शन करेंगे।

> "राष्ट्रभाषा के विना राष्ट्र गूँगा है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र का जीवन है। बिना राष्ट्र-भाषा के भारत पूर्ण स्वाधीन नही माना जा सकता है, वह स्वाधीनता अधूरी ही रहेगी। इसलिए राष्ट्रभाषा सीखना सभी का परम कर्तव्य होना चाहिए। जो ऐसा नही करते, वे अपने कर्तव्य से पीछे रह जाते है।"



मृत्तिका के पार्थक्य-भेद से ओडिशा को साधारणत निम्नाकित तीन प्राकृतिक विभागो में विभक्त किया जा सकता है यथा—समतल प्रदेश, तराई प्रदेश और पार्वत्य प्रदेश।

समतल प्रदेश—ओडिशा का पूर्वी भाग समतल प्रदेश है। इसे दो भागो मे वाँटा जा सकता है—(१) समुद्रकूलवर्त्ती त्रिकोण भूमि और (२) पश्चिमी समतल भूमि।

(१) वगाल की खाडी से मिला हुआ भाग जो कई नदियो के द्वारा लाई हुई मिट्टी, कीचड तथा वालू से वना है, वही—समुद्र के किनारे से दो से छह मील तक—देश के भीतर फैली हुई कूलवर्ती त्रिकोण भूमि है। इसके यथेष्ट प्रमाण मौजूद है कि यह अचल वहुत पहले समुद्र के अतल गर्भ मे था। भूतत्त्ववेत्ताओ का अनुमान है कि यह टार्सियारी (तृतीय) के समय में अपने वर्तमान रूप में आया है। आर्थिक दृष्टि से यह अचल थोडा अनुन्नत है। दलदलो से भरे हुए इस प्रदेश में वहुत सी नदियाँ, नाले और हिंताल के पेड दिखाई पडते है। इसके अतिरिक्त वहुत से वालू के ढूह भी है। यह ओडिशा के वाढ-पीडित क्षेत्र के अतर्गत है। इस अचल को तीन भागो में वाँटा जा सकता है। (क) सुवर्णरेखा और बुढावलग की त्रिकोण भूमि इसके उत्तरी भाग में अवस्थित है। वगोपसागर का इतिहास-प्रसिद्ध तूफान इसी क्षेत्र से गुजरा था जिसके कारण धन-जन की महान् क्षति हुई थी। आजकल भी समय-समय पर भयानक तूफान चला करते है। पहले यहाँ सिंचाई की कोई सुविधा न थी, अत अनावृष्टि के कारण वहुत सी फसले नष्ट हो जाती थी। किंतु अव वाँध, नहर आदि के वन जाने के वाद वह आशका कुछ सीमा तक घट गई है।

(ख) मध्यवर्त्ती अचल। यह वैतरणी, व्राह्मणी और महानदी की त्रिकोण भूमि से गठित है। यही प्रदेश ओडिशा के त्रिकोण अचलो मे सवसे अविक वडा और चौडा है। सिंचाई की अच्छी सुविधा के कारण यहाँ खेती खूव अच्छी होती है। अत यहाँ की आवादी भी काफी घनी है। कभी-कभी महानदी की वाढो से अत्यत भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। जाजपुर, कटक और पुरी की त्रिकोण भूमि के अचल इसी के अतर्गत है।

(ग) ऋषिकुल्या की त्रिकोण भूमि। यह विशेष चौडी नही है और उत्तर मे चिलका झील के द्वारा पुरी के त्रिकोण भूमि-क्षेत्र से अलग होती है। इस अचल में पर्याप्त वर्पा नही होती है। व्रह्मपुर क्षेत्र की त्रिकोण भूमि इसके अतर्गत है।

(२) समतल अचल का पश्चिमी भाग समुद्र के घरातल से २०० से ५०० फुट तक की उँचाई पर है। यह अचल साधारणतया ओडिशा की नदियो की उपत्यकाओ से गठित है। वाढ के समय नदियो के द्वारा लाई मिट्टी वहकर यहाँ जमा होती है। ऊँची भूमि के कारण यहाँ नदियाँ परस्पर विछुड गई है। अत यह प्रदेश निरवच्छिन्न नही है। उपकूल अचल की तुलना मे यह उतना उर्वर नही है। ऐसे अचल सावारणत मयूरभज, केन्दुझर, ढेंकानल, कटक, पुरी और गजाम जिलो में देखे जाते है। इसके अतिरिक्त महानदी की उपत्यका में भी हम ऐसी समतल भूमि देख सकते है।

ओडिशा की नदियाँ उत्तर भारत की नदियो की तरह न तो वडी है और न नौका चलने के उपयुक्त ही है। वरसात में ये पानी से अच्छी तरह भर जाती है किंतु गरमी में सूख भी जाती है। इनमे वहुत कम पानी रह जाता है। इन नदियो में बरसात में कमोवेश वाढें भी आती है। ओडिशा की नदियो में महानदी, ब्राह्मणी, वैतरणी, सुवर्णरेखा, बुढावलग, सालन्दी, ऋषिकुल्या, वशधारा, नागावली, इन्द्रावती, कोलाव और माछकुण्ड आदि उल्लेखनीय है।

महानदी ओडिशा की नदियो में सबसे वडी है। हीराकुद में इस नदी पर बाँध वनाकर विद्युत्-शक्ति पैदा की जा रही है। इससे सिंचाई भी की जाती है। माछकुण्ड नदी के डुडुमा जलप्रपात से भी वैद्युतिक शक्ति पैदा की जाती है। इसमें कोई सदेह नही कि महानदी तथा माछकुण्ड की योजनाएँ पूरी होने पर देश का महान् कल्याण होगा।

ओडिशा की सवसे वडी झील चिलका है। यह एक सकीर्ण जलपथ के द्वारा समुद्र से सलग्न है। कटक में अशुपा और पुरी में सर नामक झीलें भी है। किंतु सर झील आजकल उथली हो गई है। केवल वरसात में ही इसमें पानी एकत्रित हुआ मिलता है। अशुपा और चिलका से प्रतिदिन वहुत अधिक परिमाण में मछलियाँ पकडी जाती है जो विभिन्न स्थानो को भेजी जाती है।

ओडिशा में गरम पानी के कई स्रोत भी है। अट्री नामक सोता खोद्दा से ८ मील की दूरी पर है। इसका पानी काफी गरम होता है और इससे हमेशा गन्धक की भाप निकलती रहती है। 'तप्त पानी' ब्रह्मपुर से ३५ मील की दूरी पर है। इसका जल अट्री के पानी से भी अधिक गरम होता है। पानी की उष्णता १९६° (फा०) है। आठमल्लिक के समीप तथा कालाहाँडी जिले के वाशकेला मे भी दो और गरम जल के सोते है। इनके अतिरिक्त ओडिशा के विभिन्न जिलो में कई जल-प्रपात भी है। इनमें डुडमा (कोरापुट), खण्डधार (सुन्दरगढ), वडघाग्रा और सानघाग्रा (केन्दुझर), प्रधानपाट (सवलपुर), रावणधार और खण्डवालधार (कालाहाँडी), पुटुडि और केण्डामारी (वौद्ध), बरेही पाणी (मयूरभज) आदि मुख्य जलप्रपात है।

ओडिशा की जलवायु ऋतुओ पर निर्भर करती है। यहाँ की वार्षिक औसत-वृष्टि ६०" है और वर्षा सामान्यत जुलाई से अक्तूवर तक होती है। सर्दी के दिनो में प्राय वर्षा नही होती। गर्मियो के दिनो में कभी-कभी तेज तूफान के साथ वर्षा होती है। इसके अतिरिक्त ऋतु-परिवर्तन के समय वगाल की खाडी में कभी-कभी इसी तरह वर्षा हो जाया करती है। मार्च से जून तक अर्थात् ग्रीष्मकाल में समुद्र के तटवर्ती प्रदेशो में गर्मी अधिक नही मालूम पडती। इस समय मैदानो तथा तराइयो में अधिक गर्मी पडती है। सवलपुर इलाके में तो गर्मी का तापमान ११८° तक पहुँच जाता है। ऊँचे पर्वतीय अचलो में गर्मी कम पडती है। जून से अक्तूवर तक वर्षा ऋतु है। ओडिशा में १० से १५ जून के मध्य मानसून प्रवाहित होने लगता है जिसके फल-स्वरूप वर्षा आरभ हो जाती है। १५ अक्तूवर के वाद भाप भरी हवाएँ ओडिशा से निकल जाती हैं परन्तु कभी-कभी इसका व्यतिक्रम भी होता है।

ओडिशा मे दो तरह के मानसून चलते है। एक तो दक्षिणी-पश्चिमी मानसून है जिससे वालेश्वर, कटक, पुरी और कोरापुट आदि जिलो में वृष्टि होती है और दूसरा है उत्तरी-पूर्वी

१४६ लाख लोगो म से ९७ लाख लोग पिछडी हुई श्रेणी (Backward) के है। इनमें अनेक जातियो-उपजातियो के भी लोग सम्मिलित है। पिछले कई वर्षों की जनगणना के अनुसार इस प्रात की जनसख्या में निरतर वृद्धि हो रही है। किंतु सपूर्ण भारत की जनवृद्धि की अपेक्षा यहाँ की वृद्धि बहुत कम है। जनसख्या की इस निरतर वद्धि के अनुसार प्राकृतिक सपत्ति की उत्पादन-क्षमता मे अनुपातत जो वृद्धि होनी चाहिए, नही हो रही है। यही कारण है कि अनेक प्रयत्नो के बावजूद न तो यहाँ के रहन-सहन का स्तर ही ऊँचा हो पाता है और न जीवन-मान ही उन्नत हो पा रहा है। अत जन्म की तुलना से मृत्यु अधिक होती है और लोग अल्पायु बनते जा रहे हैं।

यहाँ के अधिकाश लोग गाँवो मे रहते है जहाँ उत्तम जीवन धारण के लिए कोई सुविधा नही है, इसलिए वे शहरो में भाग आते हैं। फलत प्राचीन शहर जन-बहुल होते जा रहे हैं और शहरो की उन्नति के लिए प्राय कोई योजना न होने के कारण उनकी दशा दिनों-दिन खराब होती जा रही है।

ऊपर ओडिशा की भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। अब हमें यह भी देखना है कि उसके विभिन्न अचलों में बसनेवाले लोगो ने अपने जीवनयापन के लिए कौन-कौन से पेशे अपनाये हैं।

समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रो मे रास्ता या घाट की विशेष सुविधा नही है। बरसात में यह भाग प्राय पानी में डूबा रहता है। तब लोक नौकाओ से जाते-आते है, क्योकि यह अचल असख्य नदी-नालो से विखडित है। यहाँ के लोग बडे कष्ट-सहिष्णु होते है। खेती भी अच्छी नही होती, इसलिए लोग खेती करने के साथ-साथ समुद्र और नदियो से मछली पकडकर जीवन यापन करते हैं। ये लोग कुशल नाविक होते है और अधिक कपडे लत्तो का व्यवहार नही करते। इन्हें जीविकोपार्जन के लिए नाना प्रकार की असुविधाओ का सामना करना पडता है, अत यहाँ अधिक लोग भी नही रहते। इसके विपरीत ओडिशा का समतल अचल सबसे अधिक समृद्धिशाली है। ओडिशा के प्राय अधिकाश बडे-बडे शहर इसी बीच मे बसे हुए है। यहाँ की आबादी घनी है और साक्षरो की सख्या भी अधिक है। तराई और पहाडी क्षेत्रो में विशेषकर आदिवासी लोग रहते है। ओडिशा के कटक, पुरी और बालेश्वर जिले को छोडकर शेष सभी जिलो में आदिवासियो की विभिन्न जातियाँ निवास करती है। ये लोग देखने में हट्टे-कट्टे और कठोर परिश्रमी होते हैं। खेती अच्छी न होने के कारण ये लोग जगल से फल-मूल सग्रह करते है। आदिवासी श्रेणी के अनेक लोग खेत या खदानो में मजदूरी करके कालयापन करते है। जगल में रहने के कारण इन लोगो ने अपने को आस पास के वन्य वातावरण के अनुकूल बना लिया है। इन लोगो की उन्नति के लिए सरकार काफी व्यय कर रही है। ऐसे प्रदेश और वहाँ के आदिवासी ओडिशा के अन्य प्रदेशो और जनसमूहो की अपेक्षा अनुन्नत है।

ब्रिटिश काल में ओडिशा की उन्नति का ध्यान नही दिया गया। बहुत सी रियासतो के कारण भी शिक्षा का विशेष प्रसार नही हो पाया था। शिल्प-प्रतिष्ठानो के न होने से लोग खेती पर निर्भर रहने या दूसरे राज्यो मे जाकर मजदूरी करने के लिए बाध्य होते थे। अत सामान्य

# ओड़िशा का पुरातत्त्व

## श्री परमानन्द आचार्य

ओडिशा का क्षेत्रफल ६०००० वर्गमील से अधिक है। इसमें तेरह जिले है। इसकी भौगोलिक स्थिति बहुत ही विचित्र है। सारा देश वनो, पर्वतो से पूर्ण है। यह बगोपसागर के पश्चिमी तट पर स्थित है, इसलिए इसकी उपकूल भूमि का पूर्वांश गजाम, पुरी, कटक, और बालेश्वर जिलो में बँट गया है। इसके पश्चिमी पार्वत्य अचल से निकली हुई ऋषिकुल्या, महानदी, ब्राह्मणी, वैतरणी, सालदी, बुढाबलग और सुवर्णरेखा आदि नदियाँ अपनी शाखा-प्रशाखाओ सहित बगोपसागर में मिल गई है। इनमें ऋषिकुल्या, वैतरणी, सालदी, बुढाबलग, और सुवर्णरेखा आदि नदियो की शाखा-नदियाँ न होने से, इन सबके मुहानो में त्रिकोण भूमि नही बनी है। सिर्फ महानदी और ऋषिकुल्या की शाखा-प्रशाखाओ द्वारा पुरी और कटक जिले की त्रिकोण भूमि निर्मित हुई है।

नदियाँ और पर्वत सदा से मानव-सभ्यता पर सबसे ज्यादा प्रभाव डालते आये है। ओडिशा के लिए भी यही बात है। यह राज्य भारत के पूर्व में है, इसलिए इसके निकटवर्ती अचल की मानव-सभ्यता नदी-मार्ग से यहाँ आई थी। यह कब और किस युग में आई थी, इसका पता नही है, इसलिए इसका पुरातत्त्व दो प्रधान भागो में बँट गया है। पहला है प्रागैतिहासिक, और दूसरा ऐतिहासिक। प्रागैतिहासिक युग में लिपि-व्यवहार का पता नही चलता है, लेकिन ऐतिहासिक युग का आरभ लिपियो के व्यवहार पर ही स्थापित है। ओडिशा में आविष्कृत सबसे प्राचीन लिपियाँ अशोक के धंउली और जउगड शिलालेखो मे है। इनका समय ई० पू० तीसरी शताब्दी है। इसके पूर्व की लिपियुक्त मानव-सभ्यता का पता आज तक नही चला है, इसलिए यह नही मानना चाहिये कि इस देश में इसके पहले की सभ्यता का निदर्शन-मूलक पुरातत्त्व ही नही था। आशा है, निकट भविष्य में प्राग्मौर्य युग की सभ्यता के निदर्शन ओडिशा में मिल जायेंगे।

### प्रस्तर युग

पुरातत्त्व और भूतत्त्वविदो का मत है कि प्रस्तर-युगीन मानव नदी-गर्भ से प्राप्त सबसे प्राचीन अस्त्र तैयार करने में समर्थ हुआ था। इन प्रस्तर-अस्त्रो के द्वारा हमें तत्कालीन मानव के, हस्तशिल्प की कुशलता का तो पता चलता ही है, साथ ही उसके मस्तिष्क की चिताधारा भी व्यक्त होती है। आज पृथ्वी में जिस मानव ने सभी प्रकार के जीव-जन्तुओ पर अपना अधिकार जमा लिया है, उसकी प्रथम अभिव्यक्ति हस्तकार्य और मस्तिष्क के सचालन के द्वारा ही हुई थी। मनुष्य

के चित्र मध्य प्रदेश के अन्तर्गत रायगढ के चित्र और विहार के अन्तर्गत चक्रधरपुर (सिंहभूमि जिला) के चित्र समसामयिक है।

ताम्र युग के अवसान के वाद सिंधु उपत्यका तथा वैदिक युग में ओडिशा की क्या दशा थी, इसका ठीक पता नही चलता। वैदिक युग में आर्य सभ्यता के प्रसार से भारत में एक अद्भुत परिवर्तन उपस्थित हुआ। उस समय के लोग लोहास्त्र व्यवहार करते थे। उत्तर भारत में इसके व्यवहार का ठीक प्रमाण नही मिलता है, लेकिन वैदिक साहित्य में अयस् शब्द का प्रयोग हुआ ह जिसका अर्थ धातु है अर्थात् लोहा, ताँबा आदि सभी धातुओं का नाम अयस् है। विशेषज्ञो और गवेषको की राय है कि ऋग्वेद के अयस् शब्द का अर्थ ताँबा है। किंतु यजुर्वेद और अथर्ववेद के श्याम-अयस् शब्द का अर्थ लोहा ही है, फिर भी अयस् शब्द का अर्थ केवल धातु है। प्राचीन ओडिशा के सुवर्ण-रेखा और ब्राह्मणी के मध्यवर्ती अचल में ताँबे और लोहे की कई खानें थी। अत यह स्थान आर्यों का वासस्थान था। आर्य सभ्यता की किंवदन्तियाँ पुराणो में कहानी के रूप में आई है। इन गल्पो के अनुसार पूर्व भारत में जो राज्य गठित हुए थे उनमें से कलिंग, उड्र और उत्कल नाम के तीन राज्य आज भी ओडिशा के अन्तर्भुक्त है। आर्य-सभ्यता के प्रसार के निदर्शन के रूप में इन तीन जातिवाचक और भौगोलिक शब्दो के सिवा दूसरे कोई भी निदर्शन ओडिशा मे आज तक नही मिले है।

भारत के दो विख्यात धर्मस्थापक बुद्ध और महावीर के जन्म और मृत्यु के बारे में कोई निश्चित और लिखित प्रमाण नही है। फिर भी विश्वास योग्य किं-दतियो पर निर्भर होकर मान लिया गया है कि गौतम बुद्ध का जन्म ईसा पूर्व ५६३ और निर्वाण ईसा पूर्व ४८३ में हुआ है। इसी प्रकार यह भी मान लिया गया है कि महावीर का जन्म ईसा पूर्व ५४० और देहान्त ईसा पूर्व ४६७ में हुआ है। जैन धर्म के आदि-सस्थापक तीर्थंकर प्रथम पार्श्वनाथ महावीर के आविर्भाव के २५० वर्ष पूर्व जीवित थे।

किंवदतिमूलक वौद्ध ग्रथादि से मालूम होता है कि बुद्ध का एक दाँत कलिंग की राजधानी में आया था इसलिए राजधानी का नाम दतपुर पड गया था। आज तक इस दतपुर की भौगोलिक अवस्थिति के निर्णीत न होने से इस किंवदती के समर्थन का कोई प्रात्नतात्त्विक आधार नही है।

## ऐतिहासिक युग का पुरातत्त्व

(१) **मुद्रा**—भारत के प्रत्येक स्थान से प्राप्त प्राचीन रौप्य मुद्राओ के प्रकृत नाम अज्ञात है, फिर भी आज तक की मिली हुई अनेक चिह्नो से युक्त वर्तुलाकार, वर्गाकार या आयताकार रौप्य मुद्राओ को मुद्रातत्त्व के पडितो ने चिह्न युक्त (Punch Marked) मुद्रा नाम दिया है। यह आज तक निर्णीत नही हो मका है कि भारत की प्राचीन मुद्राओ—निष्क या कार्षापण—से उनका क्या मवध है। इनके वाद हमें ओडिशा से केवल कुशाण सम्राटो की ताम्रमुद्राएँ मिलती है। इनके द्वारा प्रचलित की गई स्वर्णमुद्राएँ यहाँ नही मिली है। हाँ, यहाँ के कई स्थानो से गुप्त सम्राटो की मुद्राएँ अवश्य मिली है किन्तु वे मव की मव कुमार गुप्त की ही है। थोडे दिन हुए, वालेश्वर के

किंतु इन सभी प्राचीन कीर्तियो से अगर लिपियुक्त निदर्शन मिले होते तो वे समय-निरूपण में विशेष सहायक होते।

आज इस वीसवी शताव्दी के मध्य भाग में हम जिस ओडिशा वर्णमाला का व्यवहार करते है उसका पढना जिस प्रकार हमारी १०-१२ पीढी पूर्व के मनुष्यो के लिए आसान नही है उसी प्रकार हमारे पूर्वजो के लेख भी आजकल आसानी से नही पढे जा सकते। अक्षर-माला की आकृति के विकास-क्रम की आलोचना को यूरोपीय पडितो ने पालोग्रैफी नाम दिया है। प्रत्येक शताव्दी की आविष्कृत लिपियो की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस शताव्दी की किस लिपि में क्या परिवर्तन हुआ था।

सवलपुर इलाके के विक्रम खोल नामक पहाड पर एक प्रकार का चिह्न खोदा गया है। ये सव कभी भी स्वत निर्मित नही है, अर्थात् प्राकृतिक नही है। कई विशेषज्ञो का मत है कि ये सव प्राचीन लिपियाँ है। अगर ये लिपियो के रूप में पढ ली जायँ, तो 'विक्रम खोल' की लिपि ही ओडिशा की प्राचीनतम लिपि के रूप में गिनी जायेगी।

आज तक की आविष्कृत और पठित लिपियो में ओडिशा के पुरी जिले के अन्तर्गत घउलि और गजाम जिले के अन्तर्गत जउगड के दोनो शिलालेख अशोक के हैं। इसमें ओडिशा की सबसे प्राचीन लिपि का निदर्शन है। मौर्य सम्राट् अशोक के आदेश से ईसा पूर्व २५७ में ये दोनो गिरि-अनुशासन खोदे गये थे। अशोक के कई गिरि-अनुशासन और स्तभ-अनुशासन भारत के विभिन्न स्थानो में मिले है जो इसी लिपि में लिखे गये है। इस लिपि का नाम ब्राह्मी है और यही सपूर्ण भारत में मौर्य युग की एकमात्र व्यवहृत लिपि थी। आधुनिक स्वाधीन भारत के अतिरिक्त मौर्य साम्राज्य की तरह भारत में कभी भी एक लिपि का व्यवहार नही था। आशा है कि हमारे देश की सरकार सारे भारत मे एकमात्र देवनागरी लिपि को स्वाधीनता के चिह्नस्वरूप शीघ्र चलायेगी।

ओडिशा में ब्राह्मी लिपि का द्वितीय निदर्शन भुवनेश्ववर के पास खडगिरि और उदयगिरि के गह्वरो और प्राकृतिक हाथीगुफा की गिरि-लिपि है। हाथीगुफा की गिरि-लिपि वास्तव में एक ऐतिहासिक लिपि है। इसमें सम्राट् खारवेल के तेरह वर्षों के कार्य-कलाप का वर्णन है। पता नही चलता कि यह कव लिखी गई थी। फिर भी यह सभी मानते है कि खड-गिरि और उदय-गिरि की गुफाओ के कारुकार्य ईसा पूर्व प्रथम या द्वितीय शताव्दी के है।

ओडिशा मे ईसा पूर्व प्रथम शताव्दी के मध्यभाग से ६ठी शताव्दी के मध्य भाग तक के छ सौ वर्षो के अन्दर लिपितत्त्व का कोई भी निदर्शन नही मिला था। थोडे दिन पहले, भद्रक के आसपास के एक अचल से एक शिलालेख और गडिवेढ की मुद्रा की लिपि तथा पुरीकुशल नाम की मुद्रा में व्यवहृत लिपि के सिवा इस समय की दूसरी कोई लिपि आविष्कृत नही हुई है। इन लिपियो से पता चलता है कि जिस प्रकार भारत के हर भाग में लिपियो का विकास हुआ है, ठीक उसी प्रकार ओडिशा मे भी हुआ था।

६ठी शताब्दी मे भारत के गुप्त साम्राज्य का प्रभाव ओडिशा पर भी पडा था। सुमडल,

# सूची-पत्र



रत्नगिरि से प्राप्त बुद्ध-मस्तक



भूमिस्पर्श-मुद्रा में बुद्धमूर्त्ति (रत्नगिरि, कटक)



बुद्धदेवजी का मस्तक ( रत्नगिरि )



अवलोकितेश्वर ( उदयगिरि, कटक )



बुद्धदेवजी का मस्तक ( रत्नगिरि )



अवलोकितेश्वर ( उदयगिरि, कटक )



भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध ( ललितगिरि, 'कटक' )



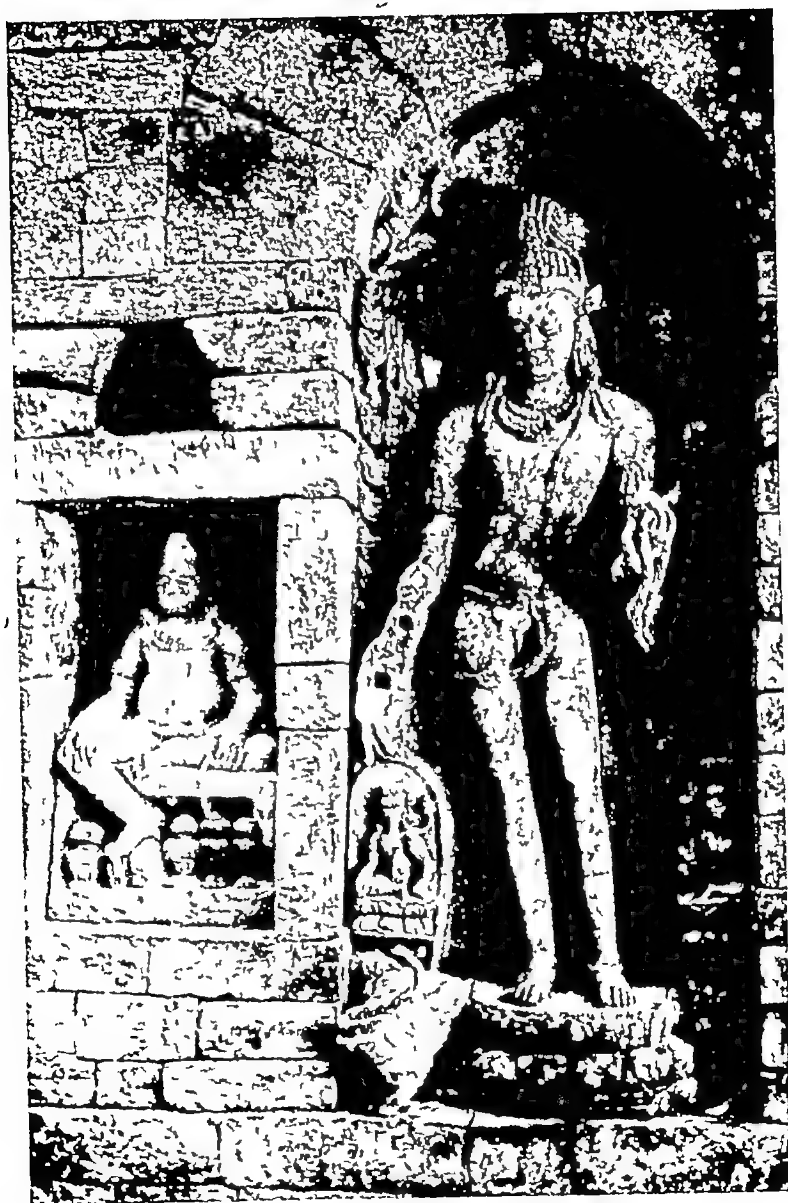




भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध ( ललितगिरि, 'कटक' )







मञ्जुश्री ( ललितगिरि, कटक )

### गगवंश

सन् १११२ में गगवशी राजा चोल गगदेव ओडिशा के सार्वभौम राजा बने। उनकी प्रधान कीर्ति पुरी का जगन्नाथ मदिर है। सन् १११२ से १४३४ ई० तक के ३२३ वर्षों तक गगवशी राजाओ ने मुसलमानो से ओडिशा की स्वाधीनता बचाई थी। इस वश के अनेक ताम्रपत्र मिले है। स्वय राजाओ और उनके राजत्वकाल में खोदे गये अन्यों के अनेक शिलालेख मदिरो में प्राप्त होते है।

### सूर्यवंश

सन् १४३५ में सूर्यवश के राजा कपिलेन्द्र या कपिलेश्वर देव ओडिशा के सिंहासन पर बैठे। इसके पहले वे अतिम गग राजा के प्रधान कर्मचारी थे। इस वश के तीन राजे प्रतिपत्ति-शाली थे। इस समय ओडिशा का साम्राज्य सबसे बडा था तथा गगा से लेकर कावेरी नदी तक फैला हुआ था। समुद्र के निकटवर्ती अचलो में ओडिशावासियो का प्राधान्य था। इस वश के राजाओ के अनेक ताम्रपत्र और शिलालेख मिले है।

### भोई वश

गोविंद विद्याधर नामक एक प्रधान राजकर्मचारी सूर्यवश के अतिम राजा प्रतापरुद्र के पुत्रो की हत्या करके ओडिशा के सिंहासन पर बैठा था। इस वश ने सन् १५३३ से १५५९ ई० तक शासन किया था। इस वश के राजाओ की भी कई समसामयिक लिपियाँ है। ओडिशा की स्वाधीनता लुप्त होने के बाद इस वश के राजा रामचद्र देव ने मुगल राजत्व के प्रारम्भ में खोर्दा में भोई वश की स्थापना की थी। इस वश के वशधर आज भी पुरी-राजा नाम से प्रसिद्ध है।

### चालुक्य वश

ओडिशा के अतिम स्वाधीन राजा मुकुन्द देव सन् १५५९ में ओडिशा के सिंहासन पर बैठे। वे चालुक्य वशी थे। उनके राजत्व-काल के थोडे से शिलालेख मिलते है। सन् १५६८ में बगाल' के अफगानो ने मुकुन्द देव की हत्या कर ओडिशा पर अधिकार कर लिया था। बाद में लिपि-तत्त्व का अभाव न होने पर भी उनका उल्लेख यहाँ नही किया गया है।

### भास्कर्य्य

धउली पहाड पर ठीक अशोक की गिरि लिपि के ऊपरी भाग में निर्मित हाथी का सिर ओडिशा का प्राचीनतम मानव-खोदित भास्कर्य्य है। इसके बाद हम पुरी जिले के उदयगिरि और खडगिरि नामक पहाडो की गुफाओ में खोदे हुए मनुष्य, पशु-पक्षी, और वृक्ष-लताओ के चित्र पाते है। इन सबका समय ईसा पूर्व पहली या द्वितीय शताब्दी है। डा० कृष्णचद्र

उनके द्वारा लिखित और सन् १९४९ की 'ओडिशा रिव्यू' में प्रकाशित उनके भुवनेश्वर नामक लेख से अनेक बातो की जानकारी होती है। पुरी जिले से प्राप्त हरिपुर की चौसठ योगिनी की मूर्तियाँ और काकर अचल की विष्णु की मूर्तियाँ तथा ईंटो के मदिर, थोडे दिन हुए, प्रकाश में आये हैं। कटक के गिरित्रय—रत्नगिरि, उदयगिरि और ललित गिरि—के बौद्ध भास्कर्य के अध्येता स्वर्गीय रमाप्रसाद चन्द द्वारा लिखित तथा भारत सरकार के आर्किओलाजिकल डिपार्टमेंट से प्रकाशित मेमोरीज आव् आर्किओलाजिकल सर्वे आव् इडिया नामक ग्रन्थ से सारी बातो की जानकारी मिल जाती है। चन्द महाशय ने इस ग्रथ में जाजपुर और पुरी की मातृका एव बौद्ध मूर्तियो के विषय में भी लिखा है। इस ग्रथ में ओडिशा के भौमयुग के भास्कर्य के विषय में अनेक बातें बताई गई हैं। कटक जिले के अन्तर्भुक्त नरसिंहपुर, बडाम्बा, और आठगड इलाके मे भास्कर्य और स्थापत्य के अनेक निदर्शन मिले है। नरसिंहपुर की बणेश्वर, नासिके, बौद्ध तारा की मूतियाँ लाल पत्थर से बनी हुई है। तारा की मूर्ति पटना म्युजियम मे है। बडाम्बा के सिंहनाथ मदिर का कारुकार्य भौमयुग की कीर्तियों के समान है। थोडे दिन हुए, कटक जिले के सदर सबडिविजन से अनेक नई मूर्तियाँ और मदिर आविष्कृत हुए है। मूर्तियो में महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं। इनमे से एक नूआगा और दूसरी बटेश्वर में है। ऋषिमठ से प्राप्त मूर्तियाँ भी उल्लेख योग्य है। ईंटो से निर्मित मदिर की चर्चा स्थापत्य में की जायगी। बालेश्वर इलाके के नाना स्थानो और गाँवो में ९वी या १०वी शताव्दी की निर्मित विभिन्न धर्मों की अनेक मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। लेकिन नीलगिरि सवडिवीजन के अयोध्या गाँव मे वौद्ध तात्रिक और महायान पन्थ की अनेक मूर्तियाँ एक साथ मिलती हैं। मयूरभज इलाके के खिचिंग में १०वी या ११वी शताव्दी के ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्म की अनेक मूर्तियाँ दिखाई पडती है। इन सव मूर्तियो की गठनभगिमा ऐसी सुदर है कि विशेषज्ञो ने इसके भास्कर्य को ओडिशा के भास्कर्य के वीच में एक स्वतत्र विकास माना है। खिचिंग के मदिरो की चर्चा 'स्थापत्य' मे की जायगी। ढेकानाल जिला ब्राह्मणी नदी की पार्वत्य उपत्यका में अवस्थित है। इस जिले के तालचेर के पास सरिंग ग्राम के अनतशायी विष्णु की मूर्ति का निर्माण, ब्राह्मणी नदी के वीच, पत्थरो से हुआ है। इसका निर्माण-काल ९वी शताव्दी माना गया है। इस मूर्ति की लवाई ४२ फुट है। तालचेर से १८ मील की दूरी पर 'भीमकुड' गाँव के अनतशायी सरिंग की मूर्ति भी अनेक सामान्य प्रभेदो के वावजूद उल्लेखनीय है। मूर्ति की लवाई ५० फुट है। सरिंग मूर्ति में विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति दिखाई गई है। लेकिन भीमकुड की मूर्ति में यह नही है। ब्राह्मण धर्म की ऐसी विराट् मूर्ति सारे भारत में कही नही है। महीशूर से प्राप्त खुमटेश्वर की जैन मूर्ति की लवाई ५७ फुट है। खुमटेश्वर और भीमकुड में यह अतर है कि एक की मूर्ति खडी हुई है, और दूसरे की लेटी हुई है।

वलांगीर और कालाहाडि जिले के भास्कर्य काफी कौतूहलजनक हैं। इनमे तेल नदी की उपत्यका की सभ्यता प्रमाणित होती है। सोनपुर सव डिवीजन के वौद्धनाथ मदिर का विमान नष्ट हो गया है लेकिन इसकी मुखशाला भग्नोन्मुख होने पर भी स्थापत्य और भास्कर्य की दृष्टि से

ताओ की कल्पना की गई है। बौद्ध धर्म के देवी-देवताओ की सख्या अगणित है। जैन धर्म के देव-देवियो की सख्या भी कुछ कम नही है। इसके पर्य्याप्त प्रमाण है कि ओडिशा में ७वी शताब्दी से लेकर १४वी शताब्दी तक बौद्ध, जैन, और ब्राह्मण धर्म के देव-देवियो की मूर्तियो का प्रचलन विशेष रूप से था।

## मंदिर स्थापत्य

समयानुसार उत्तरी भारत के बौद्ध स्तूपो के स्थापत्य ने उत्कलीय मदिरो के विशिष्ट शिखर का आकार धारण किया था। ऐसा विश्वास कर लेनें पर भी इसके विकास-क्रम के प्रमाणो का अभाव है, फिर भी ऐसे प्रमाण हमें मिले हैं। भुवनेश्वर के रामेश्वर मदिर के पास लक्ष्मणेश्वर, भरतेश्वर, शत्रुघ्नेश्वर, स्वर्णजालेश्वर आदि कई मदिर ओडिशा के प्राचीनतम मदिर हैं। इनमें जगमोहन या मुखशाला नही है। परशुरामेश्वर, शिशिरेश्वर, मार्कण्डेश्वर, बेताल और मोहिनी आदि मदिरो में मुखशाला नही है। इसलिए माना गया है कि उन सबका निर्माण कुछ बाद में हुआ है। ये सब शिखरयुक्त मदिर हैं। शिखर-गठन के अनुसार मदिर के स्थापत्य को नागर, कलिंग, द्राविड और वेसर आदि चार भागो मे बाँटा गया है। लेकिन इन चारो श्रेणियो को यूरोपीय पडितो ने आदि भारतीय और द्राविड नामक दो भागो में ही बाँटा है। अनुमान है कि इन सब मदिरो का निर्माण-काल ७वी सदी के मध्य भाग से लेकर ८वी सदी के अत तक है। इनमें से कई मदिरो मे ग्रहो की मूर्तियाँ नही हैं। लक्ष्मणेश्वर और परशुरामेश्वर में नवग्रहो के स्थान पर अष्ट ग्रह ही हैं। हर एक ग्रह के नाम भी पत्थर पर खोदे गये हैं। मुखशाला के गठन से मालूम होता है कि ये परवर्ती काल मे निर्मित हुए थे। अष्टग्रहो मे राहु तो है पर नवाँ ग्रह केतु नही है। मुक्तेश्वर मदिर में कुल नौ ग्रह हैं, इसलिए अनुमान है कि मुक्तेश्वर मदिर का निर्माण परवर्ती काल अर्थात् १०वी सदी के बीच हुआ था। राजाराणी मदिर में नवग्रह के साथ अष्टदिक्पालो की मूर्तियाँ भी हैं। इन अष्टदिक्पालो की मूर्तियाँ लिंगराज और ब्रह्मेश्वर मदिरो में भी हैं। ब्रह्मेश्वर मदिर के शिलालेख के अनुसार उसका समय ११वी सदी का तीसरा चरण माना गया है। लिंगराज मदिर ब्रह्मेश्वर मदिर से कुछ पुराना है।

खिचिंग के मदिरो का निर्माण परशुरामेश्वर मदिर के बाद का होने पर भी ये सब बौद्ध गड्‌बा के मदिरो के समान हैं। मुखशाला का अभाव मदिर स्थापत्य का एक विशेषत्व है। ये सब पत्थर निर्मित-मदिर स्थापत्य के निदर्शन हैं। पुरी और कटक जिले के उपकूलवर्ती अचल मे पत्थर कम मिलता है, इसलिए शिल्पियो ने ईंटो से 'रेख देउल' तैयार करके मदिर स्थापत्य मे एक अभिनय सौन्दर्य की सृष्टि कर दी है। ८म, ९म, और १०म शताब्दी के बीच में ओडिशा के चारो ओर मदिर स्थापत्य का अद्‌भुत विकास हुआ था। इसमें सदेह बिलकुल नही है। इस विकास की चरम अभिव्यक्ति भुवनेश्वर के लिंगराज मे हुई है। मालूम होता है कि भुवनेश्वर के लिंग-राज मदिर और पुरी के जगन्नाथ मदिर के निर्माणकाल में लगभग एक शताब्दी का अन्तर है। दोनो मदिरो के गठन-कौशल मे प्राय कुछ पार्थक्य नही है। दुर्भाग्यवश जगन्नाथ मदिर में अधिक

जगन्नाथ मदिर में भोगमडप बनाया था। पुरुषोत्तम देव का ७ अक १४७०–७१ ई० के साथ समान है। भुवनेश्वर के लिंगराज और अनत वासुदेव मदिर में भी भोगमडप है। और यह सव १४७० के वाद निर्मित हुए हें, इसमें सदेह नही है। लिंगराज और जगन्नाथ मदिर में नाट्य मदिर और भोगमडप तैयार होने के कारण इन दोनो मदिरो के निचले भाग में जो परिवर्तन हुआ है, यह आज भी देखा जाता है। इस समय जगन्नाथ मदिर की चहारदीवारी के अन्दर होते हुए 'पातालेश्वर' और 'ईशानेश्वर' के दोनो मदिर मिट्टी में गड गये हें।

पहले लिखी हुई आलोचना से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पहले ओडिशा में सिर्फ विमान या मदिर थे। इसके वाद मदिर या विमान के साथ जगमोहन या मुखशाला जोडा गया। इसके वाद लिंगराज, अनत वासुदेव और जगन्नाथ मदिरो मे नाट्य मदिर और भोगमडप तैयार हुए।

इस तरह ओडिशा के मदिर-स्थापत्य-विकास के लिए ८वी शताव्दी से लेकर १५वी तक लवे ८०० वर्ष लगे थे।

**राजधानी यागड**—धउली और जौगढ अनुशासन से मालूम होता है कि अशोक के काल में उत्तर ओडिशा में कलिंग की राजधानी तोषली थी और दक्षिण ओडिशा में राजधानी सोमपा थी। धउली के आस-पास आधुनिक शिशुपाल गढ में और जउगड में मौर्ययुग के ऐतिहासिक उपादान अवश्य मिलते हें, परन्तु इन दोनो स्थानो से समसामयिक अकाट्य प्रमाण नही मिला है। इस तरह खारबेल की लिपि में लिखा हुआ है कि कलिंग नगर की भौगोलिक अवस्था आज तक स्थिर नही हुई है। यह मालूम नही है कि १ सदी से लेकर ७ ई० तक के समय में ओडिशा की राजधानी कहाँ थी। कोगद शैलोद्भव राजाओ की राजधानी थी इसकी स्थिति का भी पता नही है कि इमकी अवस्थिति कहाँ है। अनुमान किया जाता है कि गजाम जिले के गजान्यल को उस समय शायद कोगद कहा करते थे। समसामयिक लिपि से जाना जाता है कि भौम राजाओ के शासन-काल मे विरजा या जाजपुर में राजधानी थी। लेकिन वहाँ खोदाई न होने के कारण उस समय की राजधानी के वारे में कुछ पता नही लगता है। भौमवश के अवसान के वाद कई छोटे-छोटे राजवशो के ताम्रपत्रो मे उनकी राजधानी का उल्लेख है। उनमे से कितनो की भौगोलिक अवस्थिति मालूम हुई है। यथा—उत्तरी ओडिशा में भजो की राजधानी खिजिंग-कोट या मयूरभज जिले की आधुनिक खिचिंग में थी। लेकिन दक्षिण ओडिशा में भज राजाओ की राजधानी धृतिपुर या खजलि की अवस्थिति आज तक अविदित है। स्तम्व राजाओ की राज-धानी कोदालक या आधुनिक ढेकानाल जिले के आलुको में थी।

सोमवशी-केशरी राजाओ की राजवानी सुवर्णपुर (आधुनिक वलागीर जिले के सोनपुर) और विनीतपुर (आधुनिक विनका) और ययाति नगर मे थी। मालूम होता है कि सुवर्णपुर का नाम वाद मे ययाति नगर हुआ होगा। सोमवशी राजाओ ने ओडिशा के उपकूल अचल को अपने अधिकार में करने के वाद जाजपुर में राजधानी स्थापन करके उसका नाम अभि-नव ययाति नगर रखा था। सोमवशीयो ने चउदवार मे भी एक सामयिक राजवानी की स्थापना की थी। मादला पाजि की किंवदती से मालूम पडता है कि १२वी शताव्दी के प्रारम्भ में या



विष्णुमूर्त्ति, खिचिङ्ग



है। स्वाधीन ओडिशा की उत्तरी सीमा में अब वग प्रदेश के अन्तर्भुक्त मेदिनीपुर इलाके का गगनेश्वर दुर्ग-प्राचीर अब भी अक्षुण्ण है। यहाँ एक छोटा दुर्ग था। इस दुर्ग की दीवार में कपिलदेव के समय का एक शिलालेख है। लेकिन यह लिपि इस तरह छील दी गई है कि बिलकुल पढी नही जा सकती है। गगनेश्वर राईवणिआ दुर्ग से लगभग १५ मील उत्तर में अवस्थित है। दक्षिण ओडिशा के दुर्गों में लगलबेणी दुर्ग गजाम के आ गड के तालुके में है। इस दुर्ग का ध्वसावशेष आज भी है। इसका आधुनिक नाम आठगड है। अग्रेजो के अधिकार करने तक ओडिशा में सब दुर्गों की अवस्था अच्छी थी। इसके बाद ये सब व्यवहार और मरम्मत के अभाव के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। प्राचीन ओडिशा की देशरक्षा-पद्धति का इतिहास जानने के लिए दुर्गों का इतिहास एकात उपादान है।



में भी केवल 'स' का व्यवहार मिलता है। लेकिन वैयाकरणो द्वारा उल्लिखित नाट्य साहित्य की मागधी में केवल 'श' का व्यवहार दिखाई पडता है।

नाट्य साहित्य की मागधी में और कई लक्षण हैं जो घउली और जउगड की भाषा में नही मिलते हैं। यथा—

द्य ∠ य्य (घउली और जउगड मे, सस्कृत अद्य ∠ अज)
न्य् ∠ञ्ञ ( ,, ,, ,, ,, ,, अन्य-अन्न)
श्च का प्रयोग ( ,, ,, छ का प्रयोग)
सयुक्त व्यजन के प्रारभ में 'स' का सरक्षण यथा—हस्ते = (सस्कृत हस्त )

इसके स्थान पर गिरनार में 'अस्ति' का प्रयोग है लेकिन घउली, जउगड में यह नही है।

जैन धर्मशास्त्र की अर्द्ध मागधी के साथ घउली जउगड का प्राच्य भाषा का ऐक्य नही है।

नाटको[1] में व्यवहृत साहित्यिक मागधी के उपरोक्त तीन लक्षण है यथा—'र' के स्थान में 'ल' का होना, 'ष' और 'स' के स्थान में 'श' का होना और अकारात पुल्लिग शव्द का कर्तृ-कारक एक वचन में 'ए' का प्रयोग। यह विहार के, योगीमारा गुफा के, 'सुतनुका' शिलालेख मे दृष्टिगोचर होता है।

ईसा पूर्व प्रथम शताव्दी के लगभग के लिखे खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख की भाषा अशोक की घउली, जउगड में व्यवहृत प्राच्य भाषा की परिणति नही है। यह पाली-सदृश भाषा है।

खारवेल के इस लेख मे अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ व्यवहृत हैं। 'ऐरेन' शव्द के वैकल्पिक पाठ मे 'ऐ' एक ही वार देखा जाता है। पद में कही-कही सस्कृत 'ऋ' और कही 'अ', किसी में 'इ' और अत्यत विरल 'रु' (यथा-वृक्ष रुख) का प्रयोग हुआ है। इसमें निम्नाकित व्यजन वर्ण भी व्यवहृत हुए हैं। क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ट, ठ, ड, त, थ, द, ध, प, व, भ।

अनुनासिक—ञ, ण, न, म और अनुस्वार।
अन्तस्थ—य, र, ल, व, ह, (मात्र ळ का व्यवहार नही है)
ऊष्म—केवल स (श और ष के स्थान में भी)

जैन प्राकृत में पद के अतिम अक्षर और वीच में 'ओ' के स्थान पर कभी-कभी 'ए' हो जाता है लेकिन खारवेल के लेख और पाली में कही भी 'ओ' की जगह 'ए' का प्रयोग नही है। पाली और अर्द्धमागधी में सस्कृत 'र' के स्थान मे 'ल' के न होने की प्रवृत्ति के साथ खारवेल के लेख का

---

१ नाटको में निम्न स्तर के लोगो द्वारा परवर्ती मागधी प्राकृत का व्यवहार हुआ है। यह मगध देश में व्यवहृत भाषा के पूर्ण प्रतिविंव रूप में ग्रहणीय नहीं है, अर्थात् यह मगध के राजा और व्राह्मणो की भाषा नहीं है।

ान ओ दोहा" के (दूसरे सस्करण) पृ० ७६ में चौरासी नाथो या 'सिद्धो' में से ७५ लोगों का ाम गिनाया है। उनमें से गोरखनाथ, मीननाथ, चौरंगीनाथ, सबरनाथ, और जलधर के नामो का उल्लेख अमरकोष नामक प्राचीन ओडिया तालपत्र पोथी के प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में है।[1] इसमें मस्त्यन्दनाथ (लुई का दूसरा नाम) का भी नाम मिलता है।

हरप्रसाद ने 'बौद्धगान ओ दोहा' की भूमिका में स्वीकार किया है कि चर्यापद के कई पदकर्ता और 'दोहाकार' ओडिशा के साथ सपृक्त थे। जैसे—"मयूरभज में उनकी (लुई की) पूजा होती थी।[2] 'एक पदकर्ता का घर ओडिशा में है' उनके गीत ओडिया में लिखे गये हैं। बँगला पद में जहाँ क्रिया के वाद 'ल' रहता है वही इसमें 'ड', जैसे—हम 'गाहिल'—'गाइड'। अत इसे ओडिशा भाषा का पद मानते हैं।" [3,4]

ओडिया भाषा के द्वितीया एक वचन का विशिष्ट अनुसर्ग (Post Position) 'कु' और षष्ठी एक वचन का अनुसर्ग 'र' क्रमश कृष्णाचार्य और शवरीपाद के चर्या-गान में मिलते हैं। यथा—

अविद्या करिकुँ दम अकिलेसें ९।५
आधुनिक ओडिया में होगा = अविद्या करिकुदम अकिलेसे।
तइलावाडिर पासँर जोन्हावाडी उमेला ५०।४
(आधुनिक ओडिया में होगा = तइला वाडिर पाशरे जन्हवाडी उँइला।)

चर्यापद की भाषा के साथ ओडिया भाषा का कितना घनिष्ठ सपर्क है, यह निम्नांकित मौलिक पदो और उनके ओडिया अनुवाद से स्पष्ट हो जायगा।

---

(प्राची नदीकूले)—शून्यसहिता, अच्युतानद दास (१५-१६वीं शती, गर्गवट्टक द्वितीय स०, पृ० ७९)।

१ यह पोथी अध्यापक वशीधर महान्ति के पास है।

२ बौद्धगान ओ दोहा, स० हरप्रसाद शास्त्री, भूमिका पृ० १५।

३ वही, पृ० १७।

४ कृश्नाचार्य तेगुरे मनर जाय गाय ताहा के भारतवासी वलिया गिया छे। केवल एक जायेगाय लेखा—तिनि ब्राह्मण ओडिशा हजिते आगत, से ओ आवार तर्जमाकार महापडित कृष्न, तिनि ग्रन्थकार नहेक। पृ० २४ ओडिशार राजा इन्द्रभूति वज्रयोगिनी उपासना प्रचार करेन, ताहार कन्या लक्ष्मीकरा ॲअविषये ताहाके विशेप सहायता करिया छिलेन ॲव सस्कृते अनेक पुस्तक लिखिया छिलेन।

शवरीश्वर या सवर सेहि दलेॲर लोक छिलेन। पृ० २९, ओडिशा निवासी तेली पेर एकखानी दोहाकोष छिल पृ० ३४।

शक्ल पक्ष, दिन पचमी सनिवार"—(शनिवार) युरुज (१) मेलाणदय (१) करिला पट्ट (१) स्थिति।

ओडिया हिस्टारिकल रिसर्च जर्नल, खड २, सख्या २ जुलाई १९५३ में प्रकाशित एक अन्य ओडिया शिलालेख भी यहाँ उल्लेख योग्य है। समय का निर्देश न होने पर भी लिपितत्त्व और भाषातत्त्व की दृष्टि से यह ११वी या १२वी शताब्दी का हो सकता है । यह बालेश्वर से पडित राजगुरु के द्वारा जनवरी १९५३ में प्राप्त हुआ था। उन्होने इसका पाठोद्धार भी किया है जो इस प्रकार है—'देव कही भगति करुण अछन्ति, भोकुमार शेण।' आधुनक साहित्यिक ओडिया में 'भोकुमार सेण देव (देव) की भक्ति कर रहे हैं।'

इसके वाद दूसरे प्राचीन लेखो की भाषा के लिए 'ओ.डया लिपितत्त्व' शीर्षक प्रबन्ध के सूचित सभी ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। पुरी शकरानन्द मठ से १९३६ ई० मे प्राप्त ताम्रपत्र मे ओडिया भापा के लिए 'झकार', खड ७, ११ सख्या, पृ० १०१४-१६ द्रष्टव्य है। ओडिया भाषा के खुदे प्राचीन लेखो के गभीर अध्ययन के लिए देखिए लेखक का ग्रन्थ 'ए स्टडी आव अर्ली ओरिया इस-क्रिप्शन।'

ओडिया भाषा के क्रम-विकास पर खोज करनेवाले लोगो को पूर्वोक्त उत्कीर्णित लेखो के सिवा निम्नोक्त प्राचीन गद्य-खड भी देख लेना चाहिए —[1]

रुद्र सुधानिधि ले०—नारायण नन्द अवधूत

| | | |
|---|---|---|
| १ | स्वामी (समय लगभग १३वी शताब्दी) | |
| २ | सोमनाथ व्रतकथा | |
| ३ | सुदशाव्रतकथा | |
| ४ | वीजगणित की ओडिया टीका— | मागुणी पाणि (पाठी ?) |
| ५ | ब्रह्मगीता | वलराम दास |
| ६ | तुलाभिणा | जगन्नाथ दास |

---

१ प्राचीन ओडिया गद्य और पद्य के निदर्शन के लिए द्रष्टव्य—

(क) प्राचीन ओडिया गद्य-पद्यदर्श—डा० आर्तवल्लभ महान्ति।

(ख) टिपिकल सेलेक्शन आव् ओरिया लिट्रेचर—तृतीय भाग, कलकत्ता विश्व-विद्यालय।

लगभग ९-१० सदी के त्रिकाड शेप (पुरुपोत्तम देव) में अनेक तद्भव और देशज शव्द देखने को मिलते हैं। ओडिशा हिस्टरिकल रिसर्च का खड २, सख्या दो देखना चाहिए। सारला दास की नित्यानि गुरुवार व्रतकथा भी है।

इस प्रवन्ध में उल्लिखित कई साहित्यिक गद्य और पद्य ग्रन्थ के नामो के लिए लेखक डा० आर्तवल्लभ महान्ति और श्री केदारनाथ महापात्र का ऋणी है।

## ओड़िया वर्णमाला

### स्वरवर्ण

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ह्रस्व | अ | इ | या इ | उ | ऋ | ऋ | ऌ | | |
| | १ | ३ | ३ | ५ | ७ | ७ | ९ | | |
| दीर्घ | आ | ई | ई | ऊ | ॠ | ॠ | ॡ | ए | ओ |
| | २ | ४ | ४ | ६ | ८ | ८ | १० | ११ | १२ |
| सन्ध्यक्षर | ऐ | | | औ | | | | | |
| | १३ | | | १४ | | | | | |

साधारणत यह माना जाता है कि 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' है। लेकिन वास्तव में 'अ' और 'आ' के वीच गुणगत पार्थक्य होने के कारण 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' नही माना जा सकता है। ८,९,१० नम्बर के स्वर-चिह्न साधारणत ओडिया में व्यवहृत नही होते । इनके सिवा दूसरे स्वर व्यजन के वाद आने पर सक्षिप्त रूप ग्रहण करते हैं। यथा क् के वाद आने मे क्रमश क, का, कि, या कि, की, कु, कू, कृ, के, कै, को, कौ हो जाता है।

| | अल्पप्राण | महाप्राण | सघोष अल्पप्राण | सघोष महाप्राण | अनुनासिक |
|---|---|---|---|---|---|
| कण्ठ्य | क | ख | ग | घ | ङ |
| तालव्य | च | छ | ज | झ | |
| मूर्धन्य | ट | ठ | ड | ढ | ण |
| दन्त्य | त | थ | द | घ | न |
| ओष्ठ्य | प | फ | व | भ | म |

### अन्तस्थ वर्ण

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| य | य(उच्चारण में ज) | र (कंपित) | ल (पार्श्विक) | ल (ताडित) |

व श ष स ह

अन्तस्थ वर्णो के अन्त में 'क्ष' एक अक्षर के रूप में गृहीत होता है। वास्तव में यह एक युक्त वर्ण है।

### उच्चारण-वैशिष्ट्य

स्वर वर्ण 'ऋ' (र+उ) 'रु' के रूप में उच्चारित होता है। इसलिए ओडिया भाषा में 'ऋ' नही है। प्राचीन ओडिया में 'ल' को 'ऌ' के रूप में लिखते थे। इसलिए ओडिया में (ऌ) का भी अस्तित्व नही है।

### शब्दरूप

### कारक और उसका चिह्न

सस्कृत व्याकरण के अनुसार ओडिया में निम्नलिखित कारक हैं—कर्ता, कर्म, करण, सप्रदान, अपादान, अधिकरण। सम्बध पद क्रियान्वयी न होने के कारण कारक पदवाच्य नही है। कर्ता के एक वचन में कोई भी विभक्ति या चिह्न अपरिहार्य नही है। कर्ता के बहुवचन में ए,—माने। गुडाक आदि चिह्न लगाते हैं। पहले दोनो साधारणत मननशील प्राणी के प्रति प्रयुज्य हैं। दूसरे कारकों में जो चिह्न लगते हैं वे तीन प्रकार के हैं (१) अपभ्रश से दाय-स्वरूप प्राप्त—ए—उ।

(२) अनुप्रयोग (Post Position)

(३) अनुप्रयोगस्थानीय शब्द। निम्न उदाहरण हैं —

| कारक | कारक-विभक्ति | अनुप्रयोग | अनुप्रयोगस्थानीय |
|---|---|---|---|
| कर्म | — | कु,के* | * |
| करण | ए | रे | देभि, द्वारा आदि |
| सप्रदाय | — | कु,के* | पाँइ,लागि,काजे* |
| अपादान | उ | रु, नु* | ठु, ठारु, ठानु* |
| | | | उपेक्षा, हालिकि, चाहिं, |
| सवन्धपद | — | र, न,* | —— |
| अधिकरण | ए | रे, ने* | ठि, ठारे, थि, ठाने* |

तारकाकित चिह्न पश्चिमी ओडिया मे प्रचलित हैं। ये विभक्तियाँ अनुप्रयोग-स्थानीय शब्द के एकवचन में सज्ञा के अव्यवहित के बाद लगती हैं। बहुवचन में अनुप्रयोग और अनुप्रयोगस्थानीय शब्द-क-(कर) या मानक के साथ न लगाये जाकर सज्ञा के साथ लगाये जाते हैं।

### सर्वनाम

नीचे लिखे सर्वनाम ओडिया मे व्यवहृत होते हैं—

| | एकवचन | वहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम वैयक्तिक | मुं, मुंभि* | आमे, (आम्भे) आमे-माने, आम्-माने* |
| द्वितीय वैयक्तिक | -तु, तुभि, (असम्मानात्मक) | तुमे (तुम्मे) तुमे-माने-तुम, माने* |
| तृतीय वैयक्तिक— | | |
| दूरनिर्देशक | से, हे | से माने, हेमाने* |
| सद्-मपर्कवाचक | | |

| | | |
|---|---|---|
| म० पु०–ए० वचन —करु, थाउ, अछु | —अछु | —अछु |
| ब० व० —कर, थाअ, अछ | अछ | अछ |
| अन्य पु०–ए० व०–करइ, करे, थाइ, थाए, अछि | अछि | अछि |
| ब० व०–करति, थाति, अछति | अछति | अछति |

अतीत–काल–

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम पु०–ए० व० करिलि, कलि | करु-थिलि | करि-थिलि |
| ब० व०–करिलु, कलु | थिलु | करि-थिलि |
| मध्यम पु० एक० व०–करिलु, कलु | थिलु | थिलु |
| ब० व०–करिल, कल | थिल | थिल |
| अन्य पु०–ए० व०–करिला, कला | थिला | थिला |
| ब० व०–करिले, कले | थिले | थिले |

भविष्यत्काल–

| | | |
|---|---|---|
| प्र० पु०–ए० व०–करिबि, | थिबि | थिबि |
| ब० व०–करिबु | थिबु | थिबु |
| म० पु०–ए० व०–करिबु | थिबु | थिबु |
| ब० व०–करिब | थिब | थिब |
| अ० पु०–ए० व०–करिब | करु-थिब | करिथिब |
| ब० व०–करिबे | थिबे | थिबे |

सम्भाव्य–

| | | |
|---|---|---|
| प्र० पु०–ए० व०–करति | थाति | थाति |
| ब० व०–करतु | थातु | थातु |
| म० पु०–ए० व०–करतु | थातु | थातु |
| ब० व०–करत | थात | थात |
| अ० पु०–ए० व०–करता | थाता | थाता |
| ब० व०–करते | थाते | थाते |

आभ्यासिक–

| | | |
|---|---|---|
| प्र० पु०–ए० व० | थाइ | थाइ |
| ब० व० | थाउ | थाउ |

### मिश्र क्रिया

हिन्दी की भाँति ओडिया में भी विभिन्न प्रकार की मिश्र क्रियाए व्यवहृत होती ह। यथा —सभाव्य-देखिपारइ, समाप्तिसूचक—थोइदिअ, अचानक भावसूचक (Indicating Suddenness) कहि पकाइले, वसि पडिले ।

**क्रियात्मक-विशेषण—**(Participles)

ओडिया में क्रियात्मक-विशेषण को प्रधानत तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है। यथा —वर्तमान क्रियात्मक-विशेषण, अतीत क्रियात्मक-विशेषण, भविष्यत् क्रियात्मक-विशेषण।

पहले का उदाहरण—थासुं, थाअुण, थाआन्ता ।

दूसरे का—कश, करिला, (कला) करिथिला ।

तीसरे का—करिवा, करिथिवा, (अतीत अर्थ में) ।

सप्रतिबध (Conditional) क्रियात्मक-विशेषण—उन्होने कहा या किया, मैं करूँगा। यह अव्यय स्वरूप है ।

**क्रियात निपात**

ओडिया में क्रिया के अत मे *'णि'* का प्रयोग कई विशिष्ट अर्थों में होता है। जैसे—'कलाणि'।



ओडिशा के निम्नाकित सभी अभिलेख पूर्ववर्ती ब्राह्मी में लिखे गये है—

१—पुरी जिले के धउली और गजाम जिले के जउगड में सम्राट् अशोक द्वारा पर्वत पर उत्कीर्णित अनुशासन (ई० पू० दूसरी श०)।

२—पुरी जिलातर्गत भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि में स्थित सम्राट् खारवेल का हाथी-गुफा शिलालेख और उनके सबधियो के छोटे-छोटे लेख आदि (लगभग ई० पू० प्रथम शताव्दी)।

खारवेल-कालीन अभिलेखो मे पूर्ववर्ती ब्राह्मी के जितने अक्षर है उनमें मौलिक अक्षरो के वहुत से परिवर्तन मिलते है। आठवी शताब्दी के राजाओ के भद्रकवाले अभिलेख में कुशाण ब्राह्मी के अक्षर देखे जाते है। लिपितत्त्व की दृष्टि से इस क्षुद्र शिलालेख को तीसरी शताव्दी का कहा जा सकता है। यह एपिग्राफिया इडिका के २९वें खड के २३वें भाग में प्रकाशित हुआ है।

उत्तरी भारत के गुप्त सम्राटो तथा उनके अधीनस्थ और समसामयिक राजन्यवर्ग के प्राप्त शिलालेखो मे लिपि-विकास की परवर्ती अवस्था दृष्टिगोचर होती है। इसलिए गुप्तकाल के उत्तर भारतीय शिलालेखो की लिपि को गुप्तलिपि कहा जाता है। ल, ष, ह आदि कई अक्षरो के आधार पर इस लिपि को प्राच्य और पाश्चात्य—इन दो भागो में विभक्त किया जा सकता है।

ओडिशा के [illegible]म्नाकित अभिलेखो में गुप्तलिपि मुख्य रूप से व्यवहृत हुई है—

(१) कालाहाडि से प्राप्त महाराज तुष्टिकर का ताम्रपत्र। सन् १९४७ में यह तत्कालीन गडजात कालाहाडि से पाया गया है और ओडिशा के वलागिर पाटणा से प्रकाशित होने वाली कलिग ऐतिहासिक गवेषणा समिति की पत्रिका में प्रकाशित भी हुआ है।[1] इसमे वर्ष का उल्लेख नही है, फिर भी लिपितत्त्व की दृष्टि से इसे लगभग चतुर्थ शताव्दी का कहा जा सकता है।

(२) २५० गुप्ताव्द (५६९-७० ई०) का धर्मराज का ताम्रपत्र। यह गजाम जिलातर्गत जउगड के समीपवर्ती सुमडल ग्राम के निकट एक स्तूप से आविष्कृत हुआ है। इसका सर्व प्रथम उल्लेख व्रह्मपुर से प्रकाशित मनोरमा नामक सस्कृत पत्रिका के खड १ अक १ मे पहले-पहल हुआ था।[2]

(३) २६० गुप्ताव्द (५७९-८०) का 'सोरो' से प्राप्त महाराज शभुयश का ताम्रपत्र। यह वालेश्वर जिले के सोरो नामक स्थान के निकट अन्य तीन ताम्रपत्रो के साथ प्राप्त हुआ था।[3]

(४) २८० गुप्ताव्द (५९९ ई०) का लोकविग्रह का कणासताम्रपत्र। यह पुरी जिले के कणास ग्राम से प्राप्त हुआ है और ताम्रपत्र के चित्र के साथ इसका विवरण ऐतिहासिक गवेपणा समिति की पत्रिका के जनवरी १९५० के अक मे प्रकाशित हुआ था।

---

१ सितवर, दिसवर, १९४७, द्वितीय खड, सख्या २ और ३।

२ एपिग्राफिया इडिका, भाग २८, पृ० ७९।

३ वही, भाग २३, पृ० १९७।

# दो शब्द

उडीसा की राष्ट्रभापा-प्रचार समिति न केवल हिन्दी-प्रचार की ही सस्था है, वल्कि प्रथम श्रेणी की सास्कृतिक सस्था भी है जिसका विकास पिछले २५ वर्षों के दौरान में हुआ है। वास्तव में आरभ से ही यह विचार किया गया था कि यह सभा उडीसा राज्य के सास्कृतिक विकास में सक्रिय भाग लेने के लिए एक सास्कृतिक सस्था के रूप में कार्य करे। किसी भापा का प्रचार-मात्र न तो पर्याप्त कार्य होता है और न उससे अभीष्ट उद्देश्य की अच्छी तरह पूर्ति ही होती है। किसी भापा को लागू करने का सर्वोत्तम तरीका यही है कि जिस भापा को लागू करना अभीष्ट हो उसके द्वारा सास्कृतिक जीवन पर दृष्टिपात किया जाय। चूंकि उडीसा की राष्ट्र-भाषा-प्रचार सभा सास्कृतिक कार्यों को करने में सक्रिय रूप से सलग्न है, इसलिए वह हिन्दी भापा को जनता की एक वडी सख्या तक पहुंचाने में समर्थ हो सकी है, अन्यथा वह यह काम करने मे असमर्थ रहती। जव राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति के रजतजयन्ती समारोह के अवसर पर एक परिचय पुस्तिका प्रकाशित करने का निश्चय किया गया, उस समय हमने सोचा कि यह सामान्य रूप से प्रकाशित न की जाय, वल्कि उसमें उडीसा राज्य के इतिहास और जीवन के विभिन्न पहलुओ पर, प्रख्यात विद्वानो के लेख भी शामिल किये जायँ जिससे हिन्दी में प्रकाशित यह परिचय पुस्तिका आगामी कतिपय वर्षों के लिए एक प्रामाणिक साहित्य के रूप मे काम आ सके। विद्वानो ने लेख दिये भी। इस कृपा के लिए मैं उनका आभार मानता हूँ।

मै उन अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वानो की सहायता पाने में समर्थ हो सका हूँ। जिन लोगो ने मुख्य मम्पादक के रूप में काम करने के लिए कृपापूर्वक मेरा चुनाव किया, सम्पादक-मण्डल की नियुक्ति की गई और प्रत्येक सम्पादक ने इस प्रकाशन को सफल वनाने के लिए शक्तिभर कार्य किया। न केवल लेखको ने ही विभिन्न विपयो पर लेख लिखने का कष्ट किया, वल्कि सम्पादको ने भी प्रस्तुत लेखो को जाँचने, सम्पादित करने और प्रकाशनार्थ अन्तिम रूप देने के लिए काफी समय दिया है। मुख्य सम्पादक के रूप में मैंने भी अपने कार्य के लिए, जो मुझे सौंपा गया था, आव-श्यकतानुसार अधिक से अधिक समय दिया है। मेरे प्रयत्नो से कोई ठोस परिणाम निकला है या नही, इसका निर्णय करना तो अव जनता का ही काम है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, अन्यत्र उडिया भापा में इस तरह का कोई प्रकाशन नही हुआ है जिसमें उडीसा के जीवन एव इतिहास के विभिन्न पहलुओ पर लेख लिखे गये हो। यह प्रकाशन हिन्दी मे है जिसे जनता को प्रस्तुत करने का सम्मान मुझे प्राप्त हुआ है। यह अपने ढग का राष्ट्रभापा में प्रथम प्रयत्न है।

भारत के अन्य प्रत्येक भाग की तरह, उडीसा का भी अपना समृद्ध इतिहास है। अतीत के इतिहास के अतिरिक्त, आधुनिक विकास भी तीव्र गति से हो रहा है। निस्सन्देह, अतीत और

(२) द्वितीय महाभव गुप्त का सवलपुर का कुदो पल्ली फलक (Plates), (ई० आई० ४, पृ० २५४-कीलहार्न द्वारा सपादित) ७वी शताब्दी के मध्य उत्तरी भारत के पूर्व मे जो अनेक प्रकार की सूक्ष्मकोणी वर्णमालाएँ प्रचलित थी उन्होने आगे चलकर १०वी शताब्दी के अन्तिम चरण में कई विशिष्ट लक्षण धारण कर लिये। इन लक्षणो में आधुनिक बगीय लिपि का आभिमुख्य प्रकाशित होता है। इसलिए इसे प्रत्नबगीय कहते हैं।

ओडिशा मे परवर्ती सोमवशी राजाओ और गगवशी सम्राटो के सनद (आज्ञापत्र) तथा उनके समसामयिक लेखो में यह लिपि देखने को मिल जाती है। (११वे शतक से १५वे शतक के पहले भाग तक)।

सस्कृत और ओडिशा भाषा के अनेक अभिलेखो में 'प्रत्नबगीय' लिपि[1] व्यवहृत हुई है। ओडिया भाषा और 'प्रत्नवगीय' लिपि में लिखे हुए निम्नोक्त अभिलेख उदाहरण योग्य हैं —

(१) चिकाकोल जिला के उरजा गाँव से आविष्कृत अनत वर्मा का शिलालेख।[2] यह अब तक अप्रकाशित है। इसका समय सन् १०५१ है। इसमें 'प्रत्नबगीय' के साथ परवर्ती कलिंग लिपि मिल गई है।

(२) भुवनेश्वर से प्राप्त नरसिंह देव का २२ सवत्सर का लिखा हुआ तामिल-ओडिया शिलालेख है। इसका समय १३वी अथवा १४वी शताब्दी है।[3]

(३) बलागीर-पटणा जिले के सोनपुर नगर से आविष्कृत भानुदेव का शिलालेख। यह १३वी शताब्दी का मालूम पडता है।[4]

'प्राचीन ओडिया लिपि' ओडिया में 'प्रत्नवगीय' का परवर्ती विकास स्तर है। ऊपरी भाग की अनुप्रस्थ रेखा की वक्रता इसका विशिष्ट लक्षण है। १४वें से १६वें शतक के बीच लिखे

---

१ 'प्रत्नवगीय' (Proto-Bengali) यह नाम व्यापक नहीं है। इसे प्रत्न ओड़िशा भी कहा जा सकता है। यह नाम सतोषजनक नहीं है, क्योकि उत्तरी भारत के प्रारभिक मध्य-युगीन गुप्त साम्राज्य के बाद के अभिलेखो की लिपि ने उत्तरी पूर्वी भारत में (ओडिशा, वग, उत्तरी विहार, और आसाम में) विवर्तित होकर एकमात्र लिपि का आकार धारण कर लिया। इस लिपि को भारतीय लिपितत्त्व के स्थापक व्युहलर ने प्रत्न-वगीय (Proto-Bengali) कहा है। 'वगोपसागर' शब्द के समान अब यह रूढ़ अर्थ में गृहीत होता है। डाक्टर दिनेशचन्द्र सरकार ने अलबरूनी के अनुसार 'देख सखौ' का अनुवाद, 'अलबेरूनी', भारतीय संस्करण, पहला खड, १७३ पृष्ठ) इस लिपि को गौडी कहा है। मैं इस 'प्रत्नवगीय' को पारिभाषिक शब्द रूप में ग्रहण कर के व्यवहार करूँगा।

२ देखो—आर्किओलाजिकल रिपोर्ट आव साउथ इडियन एपिग्राफी, १९३०, पृ० ५, खड ३।

३ जे० ए० एन० बी० (एन० एस०) खड २०, पृ० ४३।

४ इडियन लिग्विस्टिक्स, खड १७, पृ० ४७, १९४७।

परीक्षा की है और द्वितीय फलक के ६, ८ और २१, २२ स्तम्भो मे व्यवहृत अक्षरो को उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया है।

उन्होने भी गजाम-चिकाकोल अचल की परवर्ती कलिंग लिपि के विषय में आलोचना करके ७वें पत्र के १९वें और ८वें पत्र के १०वें तथा १२वें स्तम्भो से इस वर्णमाला का उदाहरण दिया है। लेकिन व्युहलर के ग्रन्थ में ओडिशा के दूसरे खोदित लेखो का उल्लेख नही मिलता है, यहाँ तक कि इसमें ओडिया लिपि का नाम भी नही है।

गौरीशकर हीराचद ओझा ने १९१८ ई० में प्रकाशित (दूसरा सस्करण) अपने 'प्राचीन लिपिमाला' नामक ग्रन्थ के ७९वें और १३१वें पृष्ठ मे सूचना दी है कि ओडिया लिपि की उत्पत्ति प्रत्नवगीय लिपि से हुई है।

राखालदास वनर्जी ने सन् १९१९ में प्रकाशित 'वगीय लिपि की उत्पत्ति' नामक अपनी पुस्तक के ६, ११, १२, २७ और २२, ८३ पृष्ठो में ओडिशा के कई अभिलेखो का उल्लेख करते हुए लिखा है कि आधुनिक धावमान (Cursive) ओडिया लिपि १४वी शताब्दी के वाद वगीय लिपि से उत्पन्न हुई थी।

पी० एल० पाल ने सन् १९३६ में इडियन हिस्टरिकल क्वार्टर्ली के १२वें खड के ३०९वें और ३३४वे पृष्ठो में अपने 'वगीय लिपि का विकास' नामक लेख में ओडिशा के तीन अभिलेखो की चर्चा की है।

एस० एन० चक्रवर्ती ने भी १९३८ के जे० आर० ए० एस० वी० के चौथे खड के ३५१वें से ३९१वें पृष्ठ तक अपने 'वगीय वर्णमाला का विकास' नामक लेख में ओडिशा से आविष्कृत दो अभिलेखो की चर्चा की है। इनमें एक नयपाल देव का इर्दा (वालेश्वर) फलक है। इसमें सवसे पहले 'प्रत्नवगीय' लिपि का निदर्शन मिलता है।

ओडिया लिपि के विषय में ओझा और वनर्जी की उक्ति पुष्कल आलोचना और उदाहरण-मूलक फलको की सहायता से पुष्ट न होने के कारण ग्रियर्सन ने वग भाषा के साथ ओडिया को भी प्राच्य आर्यभारतीय गोष्ठी के अन्तर्भुक्त किया है किन्तु सन् १९३२ मे फिर लिखा कि ओडिया लिपि 'प्रत्न-वगीय' लिपि से नही जन्मी है। यह नागरी लिपि से वनी है।[1]

अनुमान है कि इस मत-प्रकाशन में ग्रियर्सन ने आर्य भारतीय भाषाओ के तुलनात्मक व्याकरण लेखक का अनुसरण किया होगा।

प्राचीन ओडिया के उत्कीर्णित लेखो के अनुसधान से पता चलता है कि मध्य युग की ओडिया लिपि (जो लिपि आज ओडिया लिपि में विवर्तित हुई) के निम्न तीन उत्पत्तिस्थल हैं।

१—प्रत्न-वगीय (प्राच्य लिपि)।

२—नागरी (प्रतीच्य और उदीच्य लिपि)।

३—परवर्ती कलिंग लिपि (दक्षिणी लिपि)।

---

१ दे०, इडियन एटिक्वेरी, १९३२, परिशिष्ट १३४।

अव आस पास के प्रदेशो में व्यवहृत लिपियो की तुलना में ओडिया लिपि के कई साधारण तथ्य उपस्थित किये जा रहे हैं।

ब्राह्मी से वनी हुई दूसरी वर्णमालाओ की अपेक्षा ओडिया वर्णमाला में प्राचीन ब्राह्मी अक्षर के मौलिक सादृश्य सरक्षित हैं। इस सबध मे 'ठ' ओ मातृका और 'इ' अक्षर का उदाहरण दिया जा सकता है। तृतीय शताब्दी की ब्राह्मी का 'ठ', ओडिया में विलकुल वैसे ही है। बग, आसाम, मिथिला की लिपियो की 'ई' और नागरी 'इ' की अपेक्षा ओडिया 'इ' का रूप अधिक प्राचीन है।

नागरी में ख, ग, ण, श आदि कई अक्षरो में अनुप्रस्थ (Horizontal) और ऊपरी रेखा (Top-Stroke) हैं। लेकिन 'प्रत्न-बगीय' के इन अक्षरो में ये रेखाएँ नही हैं। 'प्रत्न-वगीय' का यह लक्षण इससे उत्पन्न बँगला, असामी, मैथिली और ओडिया लिपियो में भी है।

जिन अक्षरो के ऊपरी भाग की आकृति वृत्ताश की तरह है उनके साधारणत दो भाग या अश हैं। एक ऊर्ध्वभाग, दूसरा अघोभाग। अघोभाग अक्षर का प्राकृत और ऊर्ध्वभाग आलकारिक रूप है तथा अधिक स्थान घेरता है।

ओडिया वर्णमाला के अनेक अक्षरो में लव रेखा (Vertical) दिखाई पडती है। लेकिन घ, ष, स, म्प आदि कई अक्षरो मे एक शृग या वक्रदड के रहने पर भी किसी अक्षर में प्रकृत अनुप्रस्थ रेखा Horizontal Stroke) नही है। अधिकाश अक्षर के वाईं ओर गोलाकार और दाहिनी ओर लव रेखा है।

कई स्थलो में लव रेखा प्रकृत अक्षर के दाहिने और नीचे होती है। (उदाहरण के लिए क, ज, द, व, ह)। लेकिन अन्य स्थलो में लव रेखा ऊपर को फैलती तथा ऊपर होती हुई वृत्ताश के साथ मिलकर ऊपर को कुछ लवी हो जाती है।

अक्षरो की आकृति में ये लव रेखाए ब्राह्मी से लेकर 'प्रत्न-वगीय' के वीच विद्यमान विभिन्न स्तरो या अवस्थाओ में उत्पन्न हुई हैं। केवल ह की लव रेखा ने 'प्रत्न-वगीय' स्तर के वाद विकास किया है। कई स्थानो मे यथा, ञ और र मे, 'प्रत्न-वगीय' स्तर की लव रेखा वृत्ताश मे रूपान्तरित हुई है। 'प्रत्न-वगीय स्तर मे अनेक अक्षरो का अघोभाग कोणयुक्त था। ओडिया मे ये सब क्रमश वृत्ताकार होने लगे।

'प्रत्न-वगीय' मे सावारणत अक्षर थोडे दीर्घ हैं। अनुप्रस्थ ऊर्ध्व रेखा का ऊर्ध्व-वृत्ताश मे रूपान्तरित होने के कारण अक्षरो का ऊपरी भाग विकसित हुआ है। इसकी क्षति-पूर्ति के लिए ओडिया अक्षर के अघोभाग को छोटा वनाना पडा। इसलिए कई अक्षरो की आकृति मे वडा परिवर्तन हुआ। यथा—द, ढ, और ह।

खुदे हुए ओडिया लेखो से पता चलता है कि अक्षरो की गति क्रमश वृत्त और सवृत्त (without opening) आकार की ओर रही है।

लोहे की कलम से तालपत्र पर लिखे जाने के कारण ओडिया लिपि में उपरोक्त लक्षणो की सभावना भी सिद्ध हो जाती है।

✪

ओडिशा के जगल तथा उच्च मालभूमि में जो प्राचीन भाषाएँ व्यवहृत थी, वे आज तक लुप्त नही हुई है। जगलो और पहाडो में वसनेवाली जातियाँ आज जो भाषाएँ वोलती हैं, उनकी अभिव्यक्ति के लिए ऐसी किसी लिपि का आविष्कार नही हुआ है जो उनके द्वारा उच्चरित सारे स्वरो को ठीक-ठीक उपस्थित करने में समर्थ हो। इसलिए आशका है कि लिपि तथा साहित्य-लेखन क्रिया के अभाव के कारण वह अधिक दिन तक न टिक सकें। पडोसी प्रदेशो की उन्नत भाषाओ के प्रभाव में आकर क्रमश उन भाषाओ के आदिम अधिवासी दूसरी भाषाओ का आश्रय लेंगे तब वे भाषाएँ लुप्त हो जायेंगी। पृथ्वी के इतिहास में ऐसे उदाहरण विरल नही हैं।

पहले कहा जा चुका है कि गुप्त युग में अर्थात् ईसा की चतुर्थ शताब्दी में और उसके कुछ पूर्व भारत के विभिन्न स्थानो से उच्च जातियाँ आकर कलिंग मे वसने लगी थी। उनमें उच्च श्रेणी की जातियो का सम्मान तथा अधिकार समाज मे खूब वढा। उनका मुख्य काम था अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह। उनके साथ जो कायस्थ या लेखक श्रेणी यहाँ आई, वह मुख्यत राजकीय काम में नियुक्त होकर सम्मानित हुई। वे वैदिक रीति से वर्णाश्रम धर्म के आश्रित थे और उस सभ्यता का प्रचार तथा प्रसार करना ही उनका प्रिय कार्य था।

अव यह प्रश्न हो सकता है कि उपरोक्त उच्च शिक्षित श्रेणियो ने ईसा की तृतीय शताब्दी के पहले कलिंग मे क्यो नही निवास किया था ? मानव धर्मशास्त्र या मनुसहिता में लिखा गया है कि अग, वग, कलिग आदि विन्ध्याचल के दक्षिण पार्श्ववर्ती राज्यो में भ्रमण करने से ब्राह्मण पतित होगे। सभवत उस समय वे राज्य वैदेशिक या विधर्मी जाति द्वारा अधिकृत थे जो वैदिक धर्म की विरोधी थी। इसलिए धर्मशास्त्र ने उन स्थानो मे जाने के लिए निषेध किया है। लेकिन तृतीय शताब्दी के वाद कलिंग तथा दक्षिण में यही परिस्थिति न रही। दक्षिण के वर्णाश्रम-धर्मी

पथ द्वारा दूर द्वीपो में जाकर वहाँ उपनिवेश स्थापित करने के भी प्रमाण हैं। उनकी यात्रा कलिंग से आरभ होती थी। उस समय कलिंग के माठर वशीय राजाओ की राजधानी सिंहपुर थी। यद्यपि आज तक उसका ठीक-ठीक स्थान-निरूपण नही हुआ है तो भी यह महेन्द्र गिरि से बहुत दूर नही थी। प्राचीन काल से इस पर्वत के पास एक बदरगाह था। इसका नाम वारुणा था। अब इसको वारुआ कहते हैं।

पहले-पहल यही से कलिंग का नौ-वाणिज्य दूर-दूर देशो में प्रसारित हुआ था। इसलिए यहाँ जलयात्रा करनेवाले निपुण नाविक निवास करते थे। †

अब भी वारुआ की समस्त जनसख्या में से ८० प्रतिशत से अधिक लोग मत्स्य-जीवी या मछुआ देखे जाते हैं। सभवत ५वी या ६ठी शताब्दी मे उन नाविको की सहायता से कुछ यात्री कलिंग से जाकर पूर्वी द्वीपपुज में रहने लगे। इसमें सदेह नही है कि जिन 'क्लिगो' ने यामा, वाली, वोर्णियो आदि द्वीपो में उपनिवेश स्थापन किया था, वे सव कलिंगवासी ही हैं। सभवत माठर वशी राजाओ ने बाद में वहाँ जाकर अपनी राजधानी के नामानुसार सिंहपुर नामक बदरगाह का निर्माण और ब्राह्मण धर्म का प्रचार किया था। भारतीय भाषा, साहित्य और कला के साथ यहाँ की लिपि भी उन द्वीपों में प्रचारित हुई थी। कलिंग में प्रचलित ६ठी या ७वी शताब्दी की लिपि पश्चिमी यामा से प्राप्त दो सस्कृत शिलालेखो से प्राप्त हुई है।* इन शिलालेखो में राजा पूर्णवर्मा का नाम भी मिलता है। उस द्वीप के 'केबोनकोपि' (Kebon-kopı) नामक स्थान से ऐसी ही एक और लिपि मिली थी। अनुमान है कि उन सभी लिपियो का काल ५वी से ७वी शताब्दी तक है। उस समय कलिंग मे माठर वशी और गग वशी राजाओ का निरकुश शासन स्थापित था। सभवत प्रथमोक्त वश के किसी राजा या राजा के भाई ने कलिंग से जाकर यामा द्वीप में उपनिवेश की स्थापना की थी।

वास्तव में, माठर वशी राजा अपने को 'पितृपादभक्त' और 'परमभागवत' उपाधि से भूषित कर भारत और दक्षिणाञ्चल की सस्कृति, भाषा और लिपि के बीच एकता स्थापित करने में समर्थ हुए थे। उन्होने उत्तर भारत में प्रचलित वर्णाश्रम धर्म, और तत्सबधी ग्रन्थो को दक्षिण भारत में जनप्रिय बनाने के लिए लिपि भी उसी तरह बनाई थी। इस समन्वय मूलक उच्चमनोवृत्ति ने ही एक दिन उन्हें काफी दूर पूर्वी द्वीपपुज में उपनिवेश स्थापन करने को उत्साहित किया था। कई प्रत्नतत्त्वविद् पडितो के मत में भारत से यामा, वाली, वोर्णियो आदि द्वीपो में जो लोग गये थे, वे सव पाण्ड्य, चोल, चेर, और पल्लव देश के रहनेवाले थे। लेकिन कलिंग और क्लिग से जुडी प्राचीन किंवदन्तियो के प्रत्याख्यान में आज तक कोई भी समर्थ नही हुआ है।

---

† १७वीं सदी तक यह बदरगाह चालू था। यात्रीगण यहाँ से नाव द्वारा पुरी-जगन्नाथ तक जाते थे। इसका उल्लेख "गगावशानुगृहीत" नामक एक सस्कृत काव्य में है।

*पूर्वी द्वीपपुज में प्रचलित किंवदती के अनुसार उनकी आदिम जाति कलिंग बदरगाह से वहाँ गई थी।

ऊपर कहा जा चुका है कि ईसा की दूसरी शताब्दी के बाद उत्तरी भारत से उच्च शिक्षित ब्राह्मण-धर्मावलम्बी सप्रदाय के लोग कलिंग के रास्ते दक्षिण की यात्रा करते थे। उस समय गगा-यमुना के सगमस्थल से दक्षिण भारत को जाने का पथ सुगम था। इसलिए उन्हें मध्य भारत के लबे जगलो को पार नही करना पडता था। जिस प्रकार उनकी इस यात्रा के लिए कलिंग के माठर और गगवशी राजा सर्वदा आग्रही रहते थे, वैसे ही कोशल के समसामयिक शरभपुरीय, नल और पाडु वश के राजा भी उनकी सहायता किया करते थे। कलिंग के राजाओ के साथ दाक्षिणात्य का वैवाहिक और सामाजिक सपर्क होने के कारण, वे उन उत्तरी भारत के नवागत पडितों को आदर के साथ ग्रहण करते थे। इससे कलिंग में आर्य भारतीय सस्कृति तथा द्रविड सस्कृति का विनिमय सभव हुआ। गजाम के कलिंगा घाट से होकर महेन्द्र के निकट स्थान मे उपस्थित होने के कारण उन आर्य भारतीय ब्राह्मणो को आग्रही करने के लिए उन्होने सभवत महेन्द्र गिरि पर एक पुण्यतीर्थ क्षेत्र भी स्थापित किया था। वहाँ गगवशीय राजाओ के कौलिक देवता गोकर्णेश्वर महादेव प्रतिष्ठित हुए हैं। अनेक ताम्रपत्रो में उनके नाम का भी उल्लेख हुआ है। एक ओर उत्तरी भारत के साथ दक्षिण के सयोग-स्थल होने और दूसरी ओर बारुणा-बदर होकर सिहल तथा पूर्वी द्वीपपुज के साथ सपर्क होने के कारण महेन्द्र प्रदेश एक प्रधान सास्कृतिक और धार्मिक केन्द्र में परिणत हो गया था। तभी से कलिंग-शासन इस प्रकार दृढ रूप से स्थापित हो गया कि एक ही राजवश (गगवश) के अधीन यह निरवच्छिन्न रूप से ८ सौ वर्षों के लबे समय तक कायम रह सका था।

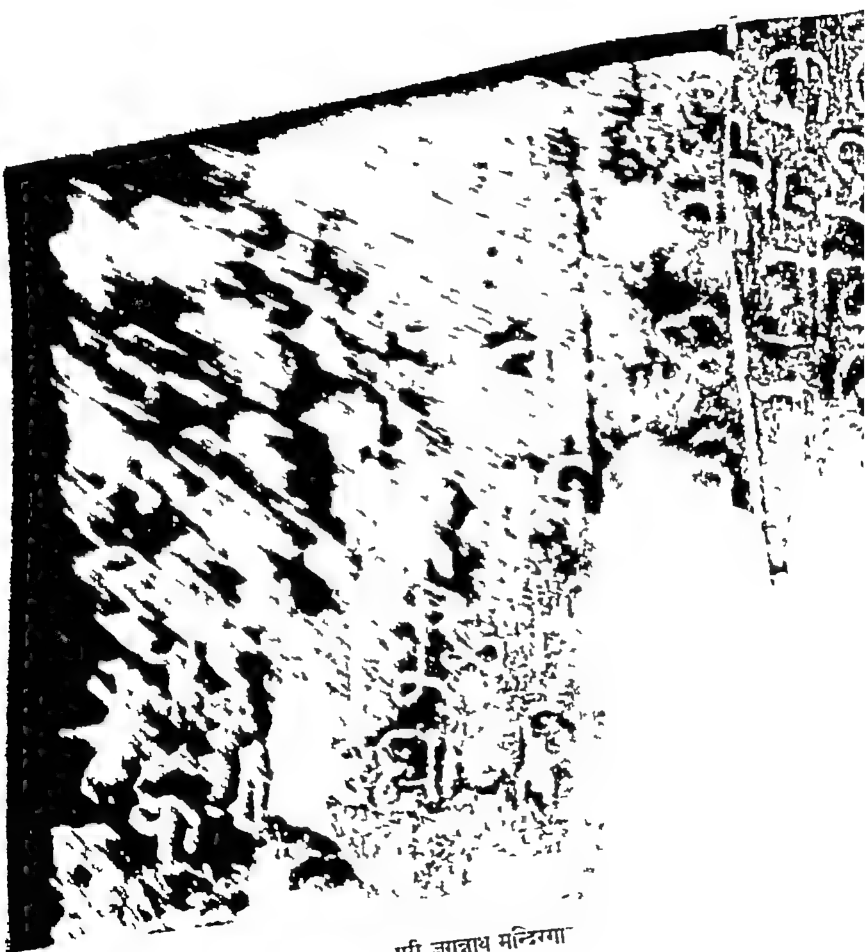
यह भारत के दूसरे किसी प्रदेश में सभव नही हुआ है। पहले मध्य भारत से कलिंग के उपकूल को जानेवाले लोगो के प्रधान यान बैल, घोडे और हाथी थे। कलिंग विशालकाय हाथियों के लिए विख्यात था। यहा 'दडक' और महाकातार नामक दुर्भेद्य और दिगतव्यापी वन थे, जहाँ सउरा और कध नामक पहाडी जातियो के लोग रहते हैं। अतिथि-सत्कार उनके जातीय जीवन की एक विशेषता है। यदि हठात् कोई विदेशी यात्री उनके गाँव में पहुँचता है, तो वे अपनी सारी शक्ति और सबल से उसकी परिचर्या करते हैं। और दूसरे गावो में जाने के लिए सारी सुविधाएँ कर देते हैं। इन अशिक्षित आदिवासियो में ऐसा अद्भुत गुण कैसे आया? सभवत प्राचीन राजाओ ने उत्तरी भारत के पडितो की निरापद यात्रा के लिए उन पहाडी प्रजाओ को इस प्रकार का कुछ उपदेश या आदेश दिया था। धीरे-धीरे वह एक सामाजिक रीति में परिणत हो गया। वे रक्षणशील अशिक्षित जातिया आज भी उस नियम का पालन निष्ठा के साथ करती हैं। इस विषय मे विचार करते समय हमारी दृष्टि एक स्थानीय आचार की ओर भी चली जाती है। यह है कार्त्तिक मास में ओडिशा के गृहो और देवमदिरो के सामने "आकाशदीप" की प्रथा। ओडिशा की प्राकृतिक परिस्थितियो पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि आश्विन के बाद वर्षा प्राय समाप्त हो जाती है। इस समय यात्रीगण विदेश से ओडिशा को आने लगते हैं। सभवत रात के समय नवागत यात्रियो को ठीक स्थान मे पहुँचाने के लिए एक बडे बाँस के ऊपर एक दीपक रखने की विधि अत्यत प्राचीन काल मे इस देश मे प्रचलित थी। "वर्तिस्तभ"

फैलती हुई वह लिपि कुछ समय तक बेगि के विष्णुकुडिन् राजाओ के द्वारा आदृत हुई थी। ८वीं शताब्दी में उत्तरी ओडिशा में भौम-कर राजवश का शासन था। वे पहले बौद्धधर्म के पृष्ठपोषक थे किन्तु वाद में उन्होने ब्राह्मण धर्म ग्रहण कर लिया था। उनका प्रथम वासस्थान भारत का पूर्वांचल था। उस समय आसाम और नेपाल का कुछ अश लेकर "प्रागज्योतिष" नामक एक राज्य स्थापित हुआ था। राजप्रशस्तियो के अनुसार वहाँ के नरक, भगदत्त आदि ख्यातनामा राजे भौमवश के आदि-पुरुष थे। अभी यह लिपि प्रकाशित नही हुई है।

८वी शती में इस वश की एक शाखा ने ओडिशा में आकर उत्तरी ओडिशा अर्थात् तोषली राज्य के विरजा (आधुनिक याजपुर) को अपनी राजधानी वनाया। दक्षिणी तोषली के अन्तर्गत कोगद नामक राज्य के शैलोद्भव राजाओ को हटाकर वे जब दक्षिण में ऋषिकुल्या तक समस्त ओडिशा पर अधिकार जमाने लगे थे, उस समय महेन्द्र अचल के प्रवल पराक्रमी गगवशी राजा उनके प्रतिवेशी थे। यद्यपि दोनो राजवशो में धर्म का अनैक्य था तो भी उनमें सास्कृतिक विनिमय की कोई बाधा नही पडी। अत कई गगवशी राजाओ के द्वारा सुदूर पूर्वी भारत की प्रचलित लिपि को भौमो से आहरण करने का प्रमाण मिलता है। उदाहरण के लिए गगवशी राजा चणकदानार्णव के वडखिमुडि ताम्रशासन में जो लिपि व्यवहृत हुई है, ठीक वैसी ही लिपि भौमवश की रानी दडि महादेवी के अनुशासन में देखने को मिलती है। अत ८वी शताव्दी से लेकर ९वी शताव्दी के वीच ओडिशा के लिपि-क्षेत्र में एक और सस्कार आरभ हुआ। तव से ओडिशा में पूर्वी भारत की लिपि की छाया और लेखनशैली विशेष रूप से दिखाई पडती है। सोमवशी तथा गग-गजपतियो के शासन-काल मे इसने परिमार्जित आकार लेकर आधुनिक ओडिया-लिपि की लेखन-शैली को अधिक स्पष्ट कर दिया। ११वी या १२वी शताव्दी में कलिग के गगवशी राजा वज्रहस्त और चोल गगदेव अपने शिलालेखो में दक्षिणी लिपि के साथ पूर्वी भारत की लिपि की साम्य-रक्षा में असमर्थ हो गये थे। इसलिए विशाखा, पाटणा और कोर्णि से प्राप्त चोल गगदेव के दो ताम्रपत्रो में दो प्रकार की लिपियाँ अलग-अलग ढग से व्यवहृत हुई हैं। इनकी भाषा सस्कृत है, और ये १००३ शकाव्द में लिखी गई हैं। वज्रहस्त देव ने अपने ताम्रपत्रों में दोनो प्रकार की लिपियो का व्यवहार किया है। द्वितीय प्लेट के अन्तर्गत ६ठी पक्ति से यह वात मालूम पडती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कभी कलिग के राजाओ ने उत्तरी भारत की लिपि के साथ दक्षिणी भारत की लिपि की एकता के लिए काफी चेष्टा की थी। लेकिन १२वी शतान्दी के वाद दक्षिणी लिपि की आकृति और लेखनशैली में ऐसा अतर पड गया कि किसी भी तरह उत्तरी और पूर्वी भारत के साथ इसका सबध रखना सभव न हो सका। इसलिए गगवशी राजा लोग ताम्र-पत्रो और शिलालेखो में प्रत्येक शैली की लिपि को भिन्न-भिन्न रूप में व्यवहार करने को मजबूर हुए। तत्पश्चात् १२वी शताव्दी में सोमवशी शासन की समाप्ति के वाद जव गगवश के राजाओ ने "गजपति" उपाधि धारण कर उत्तरी-ओडिशा के साथ दक्षिणी ओडिशा या कलिग को मिलाया तव उनकी राजधानी महानदी के तट पर स्थित वाराणसी कटक में स्थापित हुई। तव से ओडिया

प्राचीन तालपत्र पोथियों पर ओड़िआ लिपि तथा चित्रकारी के नमूने



पुरी जगन्नाथ मन्दिरगा

## ★ उत्कल की प्राचीन लिपि ★



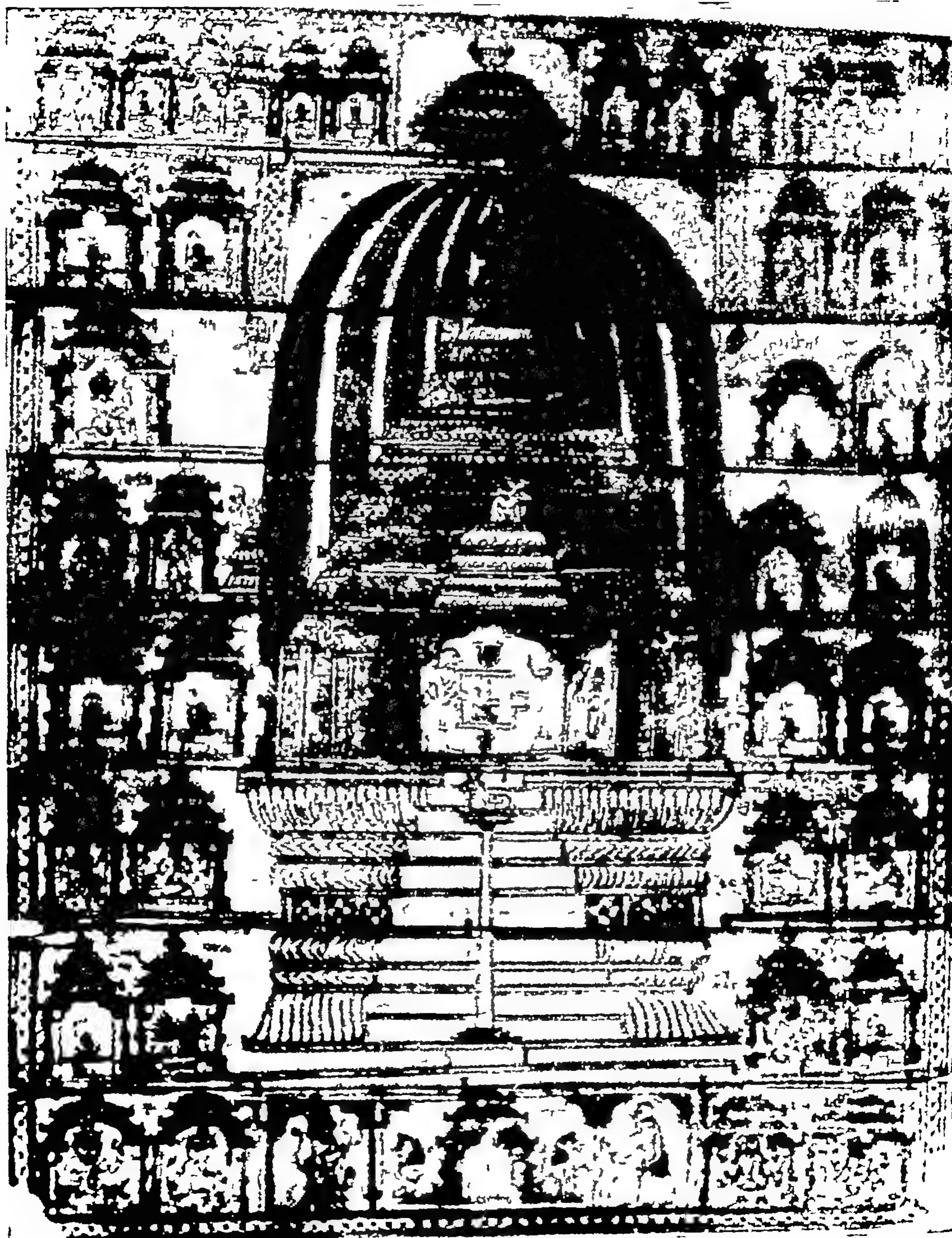
पुरी जगन्नाथ मन्दिरगात्र में खोदित प्राचीन ओडिआ लिपि

# प्रस्तावना

मानव जिस समय मानव-पदवाच्य हुआ था उस समय का शृखलाबद्ध इतिहास उपलब्ध न होने से मानवो की जनसख्या में वृद्धि तथा उसके क्रम-विकास का परिचय नही मिलता और न यही उपलब्ध है कि जो मानव आज पृथिवी की पीठ पर अकडकर चलता-फिरता है, आराम करता है, आमोद-प्रमोद से जीवन विताता है, खाना विना मरता और कलपता है, धनी और गरीव मे श्रेणी सघर्प करता है और सोचता है कि मै एक मानव हूँ, सबसे श्रेष्ठ हूँ, शक्तिशाली हूँ, सभी प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न हूँ, इसलिए वाकी के सारे मानव मेरी वात मानें, आदि विपयो के प्रति आकर्षण-विकर्षण सघर्षण का विकास कैसे हुआ था और उसके क्या क्या कारण है ? इस विपय मे दो मत हैं। एक पौराणिक विचारधारा का मत है, दूसरा तात्त्विक दर्शनशास्त्र का मत है। लेकिन ये भी आरभ काल का वृत्तान्त नही वतलाते।

एक का मत है—किसी समय ससृति के आरम्भ में जहाँ केवल पानी था, तेज था, पवन, आकाश और पृथिवी थी वहाँ एक आदिपुरुप परब्रह्म परमात्मा जो अतल नीरनिधि में एक पत्ते पर लेटे लेटे दुनिया की नीरवता का मजा लूट रहा था, शान्ति से असीम अक्षय एकान्तवास का सरस आनन्द ले रहा था, कि इसी समय उसकी कल्पना हुई 'मै अकेला हूँ, वहुत वन जाऊँ।' अतएव नाभि से ब्रह्मा निकल पडे। उन्होंने भी आँखे खोली, देखा, इस ससार में एकाकी जीवन-यापन करना वहुत ही कठिन काम है। ब्रह्मा ने मानस पुत्रो की, मनु की कल्पना की। मानसिक कल्पना मे श्रद्धा निकली और कल्पना सफल हुई। इस प्रकार से परस्पर भाव, भाषा तथा साकेतिक प्रयोजन का काम चल निकला। अतएव यही मे भाषा वन गई होगी, पारस्परिक काम चल निकला, ऐसा मान लेना होगा। अन्यथा परस्पर भावो का आदान-प्रदान करना असभव हो जाता। इन्ही मानस महाप्रभु ने एक के वाद एक सृष्टि की कल्पना की, पचभूतो की रचना की, अणु-परमाणु की विवेचना करके जगत्-जन की रचना को एक साहित्यिक रूप दिया। 'अन्नवै प्राणा' कहा, 'एकोऽह द्वितीयो नास्ति' की अद्वैत रचना की।

इस प्रकार से धीरे धीरे चिन्ता, कल्पना, ज्ञानी ध्यानी मुनियो के मुख से मुखरित होने लगी। प्रथम तो वह चिन्ता श्रवण-रन्ध्रो में प्रवेश करती और विराम किया करती थी, अँगडाइयाँ लेती, फिर एक के मुख से दूसरे के श्रवणो तक जाती रही। परन्तु जैसे जैसे यह दुनिया विशाल, लम्वी होती गई और इतनी लम्वी हो गई कि कण्ठ-स्वर-शक्ति की पहुँच के वाहर हो गई तो भाषा की लिपि की सूरत के साथ कलम तथा पृष्ठो की आवश्यकता पडी। कोई पेडो की छाल पर लिखना



# ओड़िया ध्वनितत्त्व का संक्षिप्त विवेचन

## श्री गोलोकबिहारी धल

ओडिशा के लोगो की मातृभाषा ओडिया है जो यहाँ के डेढ़ करोड लोगो की भाषा तो है ही, इसके अलावा इसके पडोसी प्रदेश—यथा बग, विहार, मध्य प्रदेश तथा आध्र के कुछ भागो के लोग भी इसे बोलते और समझते हैं। एक ऐसे विस्तृत अचल की जो वोलचाल की भाषा हो उसकी एकाधिक उपभाषाएँ होना स्वाभाविक है। इनमें से कुछ विशेष उल्लेखनीय हे, जैसे—सबलपुरी, वालेश्वरी, गजामी आदि। इन विभिन्न उपभाषाओ में व्यवहृत ध्वनियो में फर्क रहने पर भी वे आपस मे अवोध्य नही हैं। इस दृष्टि से शुद्ध सबलपुरी भाषा दूसरो के लिए अवश्य अवोध्य है। कटक और उसके आसपास के शिक्षित लोग जिस भाषा का उपयोग स्कूल, कालेज और कचहरी में करते हैं तथा जो पुस्तको मे लिखी जाती है, वही ओडिशा की प्रामाणिक भाषा है। इस लघु निवध में इसी प्रतिमित या प्रामाणिक भाषा के ध्वनि-सवधी विवरण पर विचार किया गया है।

ओडिया भाषा के ध्वनितत्त्वो पर सम्यक् विवेचन और पूर्ण विवरण देते समय हमें सभी उपभाषाओ के ध्वनितत्त्वो की भी पूरी परख होनी चाहिये। लेकिन उन सभी के प्रति आवश्यक और आधिकारिक जानकारी की कमी तथा निवध की सक्षिप्तता के कारण, प्रामाणिक ओडिया के ध्वनितत्त्वो का पूर्ण विवेचन नही उपस्थित किया जा सकता।

जैसे, अग्रेजी कहने से दक्षिणी इंगलैंड की भाषा का वोध होता है, हिंदी कहने से खडी वोली समझी जाती है, वैसे ही इस प्रवन्ध की आलोचित भाषा को प्रामाणिक ओडिया ही समझना चाहिये। लेखक ने अपने उच्चारण की सहायता से उसका विश्लेषण किया है। अन्य लेखक जिसे ओडिया भाषा कहते हैं उसका, इस प्रवध की दृष्टि से, प्रामाणिक ओडिया भाषा से इतना निकटतम सवध है कि उसे एक उपभाषा कहने के लिए अवसर नही है। ओडियाभाषी अचल का कोई भी व्यक्ति उस भाषा को आसानी से समझ सकता है।

ओडिया ध्वनितत्त्व के विषय में कहने के पूर्व कुछ विषयो की ओर विज्ञ पाठको का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। पहला तो यह है कि ध्वनि-सबधी प्रवन्ध में ध्वनि-लिपियो का व्यवहार करना आवश्यक है। किंतु मुद्रणालयो में ध्वनि-लिपियो के अभाव के कारण उसका व्यवहार नही किया जा सकता, फिर भी इसे स्वीकार करना ही होगा कि इसके विना ध्वनियो के अत्यत सूक्ष्म भेद समझाना आसान नही है। इसलिए प्रचलित देवनागरी अक्षरो की सहायता से जितना किया जा सकता है, उतना किया गया है। दूसरा विषय यह है कि एक साहित्यिक पत्रिका के पाठको के लिए ओडिया ध्वनितत्त्व के विषय में जितना कहना चाहिये तथा उनकी कौतूहल की

PLATE-II

| ...ings | A अ | ka क | kha ख | ga ग | cha छ | ja ज | ṭa ट | ḍa ड | ṇa ण | ta त | tha थ | da द | dha ध | na न | pa प | bha भ | ma म | ya य | ra र | ḷa ळ | va व | śa श | sa स | ṣa ष | ha ह | Century A.C. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ...dbhava | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 7th |
| ... of the time of Unmatta-Kesari | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 8th |
| ...makara | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 9th |
| ...ka Ganga (A) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 9th |
| (B) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 9th |
| Śvetaka Gaṅga | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 9th |
| ...ga of Kaliṅga-nagara (A) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 10th |
| (B) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 10th |
| ...ija | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 11th |
| ...churi | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 12th |
| ...ina | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 13th |
| Ganga & II (Two types of letters) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 13th & 14th |
| ...a of Bengal | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 12th |
| Kāmarūpa (Asam) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 12th |
| ...eva, Suryavamśi | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 15th |
| ...n the time of Akbar | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 16th |
| letters | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 20th |

नोट—जिस कोष्ठक में सिर्फ दो ध्वनि-सकेत दिये गये हैं, उनमें से पहला अघोष है और दूसरा सघोष। जिस कोष्ठक में चार सघोष दिये गये हैं उनमें से तीसरा और चौथा क्रमश पहला और दूसरे का महाप्राण-रूप है। जैसे—प अघोष है और ब सघोष, "फ" "प" का महाप्राण है और "य" "व" का महाप्राणरूप है। कोष्ठक मे दिये गये ध्वनि-सकेत (फ भ), ओडिया ध्वनि-पद्धति में गृहीत न होने पर भी कही-कही व्यवहृत होते हैं।

पहले कहा गया है कि इस लेख मे ध्वनि को आधुनिक चार्ट के अनुसार दिया गया है, लेकिन चार्ट की ध्वनियो को "क" से "भ" तक भारतीय पद्धति के क्रम से अर्थात् क, ख, ग, घ आदि के अनुसार उपस्थित किया गया है।

**ओडिया व्यजन**

**व्यंजनों के कुछ ध्वनि-सबधी तथ्य**

(क) बलाघात-युक्त अग्रेजी की पी, टी, के, (P, T, K) आदि अघोष ध्वनियो के उच्चारण में जैसे एक-सी महाप्राणता सुनाई पडती है, वैसे ही ओडिया प, ट, क, आदि के उच्चारण करते समय सुनाई पडती है।

(ख) ओडिया सघोष ध्वनि व, ड, ग, आदि को उच्चारण करते समय जितना घोष रहता है उतना अग्रेजी वी, डी, जी, (B D G) आदि ध्वनियो में नही होता। अग्रेजी डी (D) ओडिया ट के समान सुनाई पडता है। इसलिए एक अग्रेज द्वारा डे (*Day*) कहते समय मेरे एक वन्धु ने टे (Tie) जैसे सुना था। यह लेखक की प्रत्यक्ष अनुभूति है। काइमोग्राफ चित्र की सहायता से इस सत्य की परीक्षा की गई है।

(ग) ओडिया महाप्राण ध्वनियों में से ख, ठ, थ, फ, प्रत्येक अलग-अलग ध्वनि-यूनिट है, दो ध्वनियो का योग या मिश्रण नही। ऐसी ध्वनियो का उच्चारण करना अग्रेजो के लिए कठिन होता है। वे "Top+Hat" उच्चारण कर सकते हैं लेकिन "तफात" शब्द के पी+यच (P+H) ध्वनियो की मिश्रित ध्वनि "फ" का उच्चारण नही कर पाते। ख, ठ, आदि ध्वनियाँ अन्य भारतीय भाषाओ की तरह ओडिया भाषा में भी हैं।

(घ) सयुक्त व्यजन के स्थान पर प्रथम व्यजन का पूर्ण उन्मोचन हो जाता है। अग्रेजी ऐक्ट (Act) शब्द में "क" का पूरा उन्मोचन नही होता, लेकिन ओडिया "रक्त" शब्द में "क्" का उन्मोचन हो जाता है। ओडिया भाषा का आक्षरिक गठन (Syllabic structure) सावारणत उन्मुक्त होने के कारण "रक्त" शब्द में "क्" का सिर्फ उन्मोचन ही नही होता वल्कि कभी-कभी एक पूर्ण अक्षर "क" में वदल जाता है।

(ङ) व्यजनों का जो उदाहरण दिया गया है उसमें कोई ध्वनि शब्द के आरभ मे है तो कोई अन्त मे। यहाँ स्थानाभाव के कारण प्रत्येक ध्वनि के प्रत्येक स्थान का उदाहरण नही दिया जा सका। अपनाये गये विदेशी शब्दो में तथा कुछ विशिष्ट स्थानो को छोडकर शब्दात मे ओडिया व्यजन नही दिया जाता।

उच्चारण भी शुक्ल ल की तरह ही करते हैं। ओडिया के कुछ शब्दो में महाप्राण ल भी सुनाई पडता है। जैसे-वलिहआ (एक आदमी का नाम)। ओडिया भाषा में ल ध्वनि के वहु-प्रयुक्त होने पर भी साधारणत अपढ आदमी ल के स्थान पर न का प्रयोग कर देते हैं जैसे—लुण नुण (नमक), लुगा नुगा (कपडा)। ल का उदाहरण—लता (लता)।

ळ—यह एक पार्श्विक मूर्द्धन्य ध्वनि है। इस ध्वनि के कारण ओडिया भाषा तेलुगु, तामिल, द्राविड, मराठी आदि भाषाओ के साथ सवधित मालूम पडती है। बँगला, आसामी, हिंदी भाषा में यह ध्वनि नही सुनाई पडती। इस ध्वनि का उच्चारण करते समय जिह्वा ऊपर मुडकर कठोर तालु के साथ चिपक जाती है और उसके एक कोने से हवा वाहर निकल जाती है। हिंदी छात्रो के लिए यह ध्वनि बहुत कठिन है। वर्षों तक अभ्यास करने के बाद भी वे ळ को र अथवा ड की तरह उच्चारण करते है। तेलुगु, तामिल और मराठी भाषाओ मे इस ध्वनि का व्यवहार अधिक होता है। यह ध्वनि शब्द के आगे कभी नही आती तथा ह के साथ ल् ह के रूप मे भी उच्चरित होती है।

जैसे—कळ्हिआ (झगडालू)।

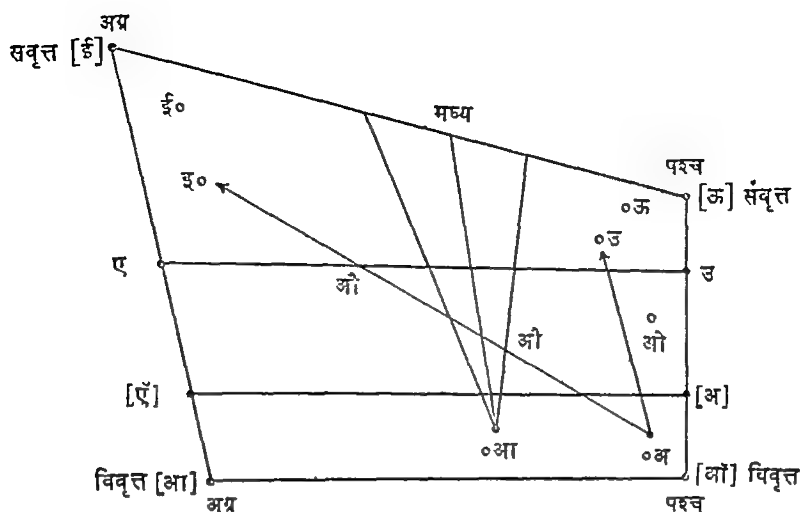
उदाहरण—कळा (काला)।

ड—यह मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनि, हिंदी की तरह ओडिया भाषा मे भी सुनाई देती है। र का उच्चारण करते समय जिह्वाग्र वर्त्स्य पर अनेक वार आघात करता है। लेकिन इस ध्वनि के उच्चारण मे जिह्वा की नोक ऊपर उठकर एक वार ही वर्त्स्य पर आघात करती है। ऊपर उठकर जिह्वाग्र के जोर से नीचे फिसलने से इसे उत्क्षिप्त कहते हैं। यह ध्वनि शब्द के आगे कभी नही सुनाई पडती। ह के साथ मिलकर यह ढ़ के रूप मे उच्चरित होती है। जैसे—वढि (वाढ)। उदाहरण—वड (वडा)।

स—यह दन्त्य-सघर्षी ध्वनि, हिंदी तथा अग्रेजी के स की तरह सुनाई पडती है। ओडिया मे अर्थात् सार्थक सघर्षी ध्वनियाँ वहुत कम सिर्फ दो ही हैं। उनमें से एक 'स' है। इस ध्वनि के उच्चारण के समय, जिह्वा का अगला भाग ऊपर के दाँतो के साथ चिपक जाता है। जिह्वा के दोनो किनारे नाव की तरह ऊपर उठ जाते हैं। ऊपर के दाँत और जिह्वाग्र के वीच एक गोलाकार रन्ध्र होता है। उसी रन्ध्र से होकर हवा जव वेग से प्रवाहित होती है तव स ध्वनि सुनाई पडती है। अगर हम चाहें तो इस ध्वनि को लम्बे अरसे तक स् स् स् स् के रूप में उच्चारण कर सकते हैं। ओडिया मे स, श, ष ऐसे तीन सकार लिखे जाने पर भी वस्तुत. दन्त्य स का उच्चारण ही सुनाई पडता है। एक ध्वनि के एकाधिक सकेत होने के कारण ओडिया विद्यार्थी स, श, ष लिखने में भूल करते हैं।

उदाहरण—साधारण (सामान्य)।

ह—यह काकल्य-सघर्षी ध्वनि है। इस ध्वनि के उच्चारण के समय स्वरयन्त्र की स्थिर दोनो स्वर-तन्त्रियाँ खुली रहती हैं और एक आघात के साथ हवा मुख-रन्ध्र से होकर निकल जाती




**ओडिया स्वर-त्रिकोण**

[ ] इस चिह्न के बीचवाले संकेत मानस्वर के परिचायक हैं।

० यह चिह्न ओड़िया स्वरों के संभावित क्षेत्र के सूचक हैं।

↑ यह चिह्न युक्त स्वरों के गतिपथ का सूचक है।

अ—यह एक पश्चस्वर है। मानस्वर (अ) की अपेक्षा यह निम्नतर है। हिंदी में इसके समान अग्रीकृत अन्य कोई ध्वनि नहीं है। अंग्रेजी Not, Got आदि शब्दों की ध्वनि से यह सामान्य उच्चतर और अग्रीकृत है। इसके उच्चारण में दोनों ओष्ठ उदासीन मालूम पडते हैं। ओडिया लोगों की यह एक विशिष्ट ध्वनि है जिसके कारण वे हिंदीवालों से अलग मालूम पडते हैं। यद्यपि इस अ के कारण ओडिया और बँगला परस्पर संपृक्त मालूम पडती हैं, तो भी बँगला अ का उच्चारण करते समय ओडिया अ की अपेक्षा ओष्ठ को कुछ अधिक गोल करना पडता है। इसलिए हिंदीवाले बँगला का मजाक उडाते समय ओष्ठ को गोल करके 'अनेक' शब्द को 'ओनेक' के रूप में उच्चारण करते हैं। ओडिया स्वर-पद्धति में अ का विशेष स्थान है, क्योंकि ओडिया शब्दों के अन्त में अगर दूसरा कोई स्वर न हो, तब ओडिया लोग जहाँ अन्य स्वर नहीं हैं, उस स्थान में अ का ही उच्चारण करते हैं। इसलिए हम द्राविडों की तेलुगु भाषा के जितने निकट हैं, अपने साथ संपृक्त बँगला, आसामी, हिंदी आदि भाषाओं में हम उतनी ही दूर पड जाते हैं। उदाहरण के लिए घर शब्द को लें तो पता चलता है कि उसे हिंदी और बँगला भाषी "घर" उच्चारण करते हैं और ओडिया घ+अ, र+अ के रूप में उच्चारण करते हैं। ओडिया भाषा की यह अपनी विशेषता है। कई जगह शीघ्रता से बोलते समय यह पश्चस्वर (अ) एक केंद्रीय उदासीन स्वर (6) में बदल जाता है। ओडिया भाषा में "अ" इतना स्पष्ट है कि मेरी ८॥ साल की लडकी मंजुश्री

है। लिखित-प्रतिमित ओडिया-भाषाभाषी उच्चारण करते समय दीर्घ ह्रस्व उ में कोई प्रभेद नही रखते। यथा—कूल (किनारा), कुल (वश)।

ए—यह अवृत्ताकार अग्रस्वर है। यह अर्द्धसवृत्त (ए) तथा अर्द्धविवृत (ए) के बीच थोडी पश्चात्कृत ध्वनि है। हिंदी और अग्रेजी से इसका विशेष भेद नही है। कही-कही इस ध्वनि को दीर्घ उच्चारण किया जा सकता है।

ओ—यह वृत्ताकार पश्चस्वर पश्चमानस्वर 'ओ' और 'अ' के बीचवाली एक अग्रीकृत तथा शिथिल ध्वनि है। प्रामाणिक अग्रेजी में ऐसी ध्वनि नही है। स्काच भाषा में इसके समान ध्वनि है। हिंदी में भी ऐसी ध्वनि सुनाई पडती है। इस ध्वनि का दीर्घ उच्चारण भी कही-कही सुनाई देता है।

ऐ—यह एक सयुक्त स्वर है जिसमें जीभ "अ" से "इ" के स्थान पर गति करती है। इस प्रकार के सयुक्त स्वर की ध्वनि प्रामाणिक हिंदी अर्थात् खडी बोली में नही सुनाई देती। लेकिन लखनऊ तथा उसके पूर्वी हिंदी क्षेत्रो में यह ध्वनि सुनाई देती है। हिंदी की "ए" मात्रा को ओडिया जब अपने ढग से उच्चारण करते है तब खडी बोली भाषियो को अच्छा नही जँचता। जैसे हिंदी शब्द "कैलाश" को खडी बोली वाले "केलाश" के समान उच्चारण करते है। ओडिया लोग उसे "कइलास" की तरह उच्चारण करते है और पकडे जाते है कि वे ओडिया है। शिक्षितो द्वारा इस उच्चारण के ठीक से उच्चारित होने पर भी अशिक्षित दो पूर्ण स्वर अ+इ की तरह उच्चारण करते है।

औ—यह एक सयुक्त स्वर है। इसमें जिह्वा "अ" से "उ" के स्थान पर गति करती है। हिंदी "ऐ" और ओडिया "ऐ" में जैसा सबध है ठीक वैसा ही हिंदी "औ" और ओडिया "औ" में है। अर्थात् हिंदी के "औ" को खडी बोली वाले एक "दीर्घ" अ की तरह स्वल्प वृत्ताकार उच्चारण करते है। लेकिन ओडिया सयुक्त अ+उ की तरह उच्चारण करते है। अशिक्षित लोग "ओडिया" "औ" को अ+उ की तरह उच्चारण करते है।

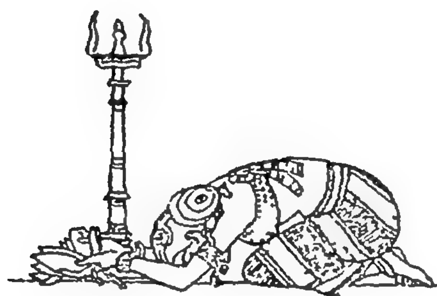
ओडिया लेखन-पद्धति मे सस्कृत रीति के अनुसार केवल ऐ, औ दो सयुक्त स्वर स्वीकार किये गये है। लेकिन इसमें सदेह नही है कि भाषा में और भी अधिक सयुक्त स्वर है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द नीचे दिये गये है। धीरे से उच्चारण करने मे ये दो पूर्ण स्वर की भाँति मालूम पडते है।

उदाहरण—इ आ—बढिया
इ उ—शिउली
ए उ—केउट
आ उ—पाउणा
उ आ—आपुआ

ओडिया भाषा मे तीन सयुक्त स्वर भी मिलते है। जैसे बइआ (अइया) लेकिन दो अक्षरो वाला विशिष्ट शब्द होने के कारण उसे तीन सयुक्त स्वरो का मिलाप नही कहा जा सकता।

से घरकु जाउछि—
(वह घर जाता है)
से घरकु जाउछि ?
(क्या वह घर जाता है ?)

इस बलाघात और स्वर-लहर के विचार में विशेष ध्यान देने के कारण हिंदी विद्यापीठ के डाइरेक्टर डाक्टर विश्वनाथप्रसाद धन्यवाद के पात्र है।





प्रधान पाट — देवगढ़, सम्बलपुर





विन्दु सरोवर, भुवनेश्वर



साहित्य में स्वार्थपूर्ण विचार पहले नही थे। मनीषी एकान्त जीवन विताते थे, शुद्ध अनन्त चिन्तन करते थे वे अमोघ अमूल्य अचिन्त्य अव्यक्त शक्ति की साधना में रत रहते थे। उनको न तो ससार की चिंता थी, न खान-पान और परिवार की खोज करने की। उनका तो जगल की जडी-वृटियो-पत्तो से निर्वाह होता था।

यही कारण है कि वे ऐसी शक्ति के अधिकारी वने कि आज भी लोग आश्चर्य करते है। एक मुनि के मुख से जो निकल पडता वही सत्य हो जाता। आज का यह विज्ञान उस विज्ञान की शिक्षा नही दे रहा है—कल्पना भी नही करता।

उपनिपद में एक कथा है —

राजा जनक ने यज्ञ में सभी पण्डितो को वुलाया था। यज्ञ की समाप्ति पर दक्षिणा दे विदा किया और जाते समय कहा—'आप लोग जाते है। मेरे पास एक गाय है। जो अपने को सर्वोत्तम ज्ञानी मानता हो वह इस गाय को ले जाय।' सभी एक दूसरे का मुख ताकते रहे, परन्तु याज्ञवल्क्य ने गाय की रस्सी थाम ली।

पण्डितो ने रोका--हमारी वातो का उत्तर दो, तव न सर्वोत्तम पण्डित कहलाओगे और गाय के लेने के अधिकारी होगे।

वातें छिड गई। प्रश्न किये गये। उत्तर मिला। गार्गी ने भी प्रश्न किया। उसको साफ सुन्दर सन्तोषजनक उत्तर मिला। और एक ने फिर प्रश्न किया। याज्ञवल्क्य ने कहा—झूठे प्रश्न करोगे तो सिर कटकर नीचे गिर जायगा। वही हुआ, सिर नीचे लोटने लगा। सव ने देखा, सकपका गये।

कहने का अभिप्राय यह है कि वह विज्ञान आज कहाँ है। और ऐसा विज्ञान है जो ध्वस तो कर सकता है परन्तु निर्माण उसके वूते की वात नही रही। तो वह क्यो पूजा जाता है ?

आज ससार में जो सवसे भयानक वात है वह यह है कि उसमें सूर्य तक जाने की ताकत तो है, एक मिनिट में पृथ्वी के चारो ओर चार वार दौड जाने की वेगवती गति है लेकिन सारी दुनिया के मानव को एक करने की ताकत आज के इस विज्ञान में नही है। अगर होती तो जो आज मानव मानव के प्रति ईर्ष्या, द्वेप और लोभ की मनोवृत्ति लिये विचरण कर रहा है, न होती। आज जो एक दूसरे को दवाकर शासन करने की अभिरुचि होती है, न होती। आज जो सारी दुनिया की सपत्ति जमा करके—मै खाऊँ और वाकी के सारे विश्व के जन भूखो मरें—आज स्वय ही श्रेष्ठ वनने की अभिलाषा भी न होती।

आज तो केवल हृ ड ह ती है शस्त्र वनाने के लिए। आज की लडाई भी वल की नही है। जो जितने जनो को कत्ल कर सके, गाँव, नगर का ध्वसावशेप दिखा सके, वही वडा है, ज्ञानी है, धनी है और महाशक्तिशाली कहलाता है।

मानव की यह अभिरुचि राक्षसी अभिरुचि है। यह अभिरुचि न तो सत्यमय है, न सुन्दर ही है, और न मगलमय ही। और जो सत्य, सुन्दर और मगलकर नही है वह कुछ भी नही है। परन्तु आज की दुनिया भी विचित्र है। जो सत्य नही, सुन्दर नही और शिव नही वही सव कुछ

है तथा उनकी भाषा विभाषा के रूप में वोली जाती है।[1] ओडिशा की सस्कृति पर प्राचीन आदिवासी तथा द्राविड सभ्यता का यथेष्ट प्रभाव पडा है। यहाँ के मुख्य देवता "जगन्नाथ" के आविर्भाव के मूल मे ओडिशा के शवर जाति के सपर्क की जनश्रुति गुंथी हुई है। अत ओडिशा की प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृति पर आदिवासी या आष्ट्रोएशिआटिक, द्राविड और आर्य सस्कृतियो का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने मार्कण्डेय कर के प्राकृत-सर्वस्व नामक ग्रन्थ की समीक्षा मे कहा है कि ओडिया के साथ शवर, शौरसेनी और उड्र देश मे प्रचलित देशी भाषा के समिश्रण होने से औड्री भाषा का जन्म आ है।[2] इसकी पुष्टि में उन्होने प्राकृत-सर्वस्व के औड्री दोहो को उद्धृत किया है।

प्राकृत वैयाकरण रामशर्मा के मतानुसार चाण्डालिका, शावरी, आभीरिका, द्राविडिका, तथा औड्री ये सभी मागधी भाषाये है तथा उसके प्रकार-भेद मात्र है।[3] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ओडिआ भाषा के जन्म तथा विकास के मूल में आदिवासी , द्रविड और आर्य भाषाओ का महत्त्वपूर्ण और अटूट सहयोग सवध है।

प्राचीन ओडिया पर आदिवासी तथा द्राविड भाषाओ के प्रभाव के सवध में विद्वानो का मत है कि वाप, वेटा, चटाई, गोड, पेट, खुण्ट, भेडा, वोका, चाउल, चुला, ढेला, डगा, हाड, काला, मोटा, राण्डी आदि आदिवासी भाषा से प्रभावित शब्द है।[4] इस दृष्टि से सान्ताली, हो, उराउँ, कुइ, शवर आदि आदिवासी भाषाओ का प्रभाव भी ओडिआ भाषा पर पडा है।[5]

वैसे ओडिआ भाषा के साथ द्राविड भाषाओ का कुछ भी सवध नही है, फिर भी द्राविड भाषा का प्रभाव यत्र-तत्र देखा जा सकता है। इसका कारण यह है कि द्राविड देशो के साथ ओडिशा का पूर्व काल से कुछ अशो में सास्कृतिक तथा राजनैतिक सबध चला आ रहा था। इसके अतिरिक्त दोनो देशो में व्यावसायिक सवध भी था। इतिहास-प्रसिद्ध ओडिशा के गगवश का शासन द्राविड शासन था। अत सवध और सपर्क के कारण ओडिआ मे उनके शब्दो का आदान स्वाभाविक ही है। कई शब्द तो ऐसे भी है जो द्राविड भाषा से आकर ओडिया में अत्यत प्रचलित हो गए है, जैसे—पले (तामिल), सिन (उ-सान-तेलुगु), कोल-इ (उ-कोइलि कानारी), अगाडु (तेलुगु)

---

१. शबराभीर-चडाल-शबरद्राविणोड्रजा '—नाटयशास्त्र हीनावने चरणाच विभाषा' सम्प्तकीर्तितता।

२. जे० आर० ए० एस० १९१८ पृ० ४९८।

३. देव यशोआ णदण करमइ करुणा लेश। एत्तिके यमउ अच्छउइ पिट्टइ सब्ब किलेश, इत्यादि।

४. नॉन आर्यन एलिमेंट ऑन हिंदी, ए० १८७२, प्राकृत सर्वस्वम् भट्टनाथस्वामी, पृ० १०५।

मुण्डा एफीनिटीज ऑफ बेंगाली—डा० साहिवुल्ला पी० ए० आई० ओ० सी० पी०

५ आदिवासी सस्कृति, वंशीधर महान्ति (भाषा सबंधी लेख द्रष्टव्य)।

अधस>हेठ्ठ>हेठ, रश्मि>रस्सी>रसी, स्थूल>थोर>थोर, मुख>मुह>मुह, गाथा>गाहा>गाहा, मनुष्य>मणूस>मणस, मेघ>मेह>मेह, कथयति>कहइ>कहइ शोभते>शोहइ>शोहइ, शृगाल>सिआल>सिआल, व्याकुल>वाउल>वाउल, देवर> दिअर>दिअर, प्रतिहारी>पढिहारी>पढ़िहारी, प्रथम>पढुम>पोढुहाँ, वृन्त>वेण्ट>वेण्ट, गभीर>गहीर>गहीर, धर्म>ध्रम>ध्रम, वुद्ध>वुध्र>वुध्र आदि ।

इस प्रकार रक्षणशील प्रकृति के कारण ओडिया का रूप अपनी सहोदरा भाषाओ की अपेक्षा अधिक प्रकृत है। जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है, इसकी यह रक्षणशील प्रकृति जो उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण है, सपर्क मे आने वाली अनेक भाषाओ के शब्दो को अपनाकर उसको उसी रूप में प्रचलित रहने देने में सहायक होती रही है।

प्राचीन काल से जगन्नाथ धाम का धार्मिक महत्त्व होने के कारण ओडिशा भारतीय सस्कृति का मिलन केन्द्र रहा है। आज यदि प्राचीन ओडिया ग्रन्थो के पन्ने उलटे जाँय तो उसमे सूरदास, कबीरदास, मीरावाई, तुलसीदास, विद्यापति, चण्डीदास और बँगला पद्य लेखको की सुमधुर पदावलिया प्राप्त होगी। अत यह कहना ठीक ही होगा कि प्राचीन ओडिया के साथ प्राचीन हिन्दी, प्राचीन मैथिली, प्राचीन बँगला तथा प्राचीन आसामी का व्यापक सवध है।

बँगला काव्यो में भी ऐसे बहुत से शब्द पाये जाते हैं जिनका ओडिया से पूर्ण सवध है। चण्डीदास की कवितावली के ये शब्द—आम्हर, मोते, मोर, मोहर, तोते, तारे, करन्ति, करसि, हाथ, नखपान्ति, बडाइ, नेत, आचम्बित, अनुपामा, युगति, मोक, तिरि, मयाण, मदन, शाली इत्यादि आधुनिक बँगला मे प्रचलित नही हैं। किन्तु आधुनिक ग्रामीण ओडिया भाषा तथा प्राचीन साहित्य के लोकप्रिय शब्द हैं।[1]

जगलो, पहाडो, नदियो और पर्वतो से घिरा हुआ ओडिशा प्रदेश बहुत दिनों तक एक दुर्भेद्य किले के समान शत्रुओ के आक्रमण से बचा हुआ था। ओडिशा पर मुसलमानो का पहला आक्रमण सन् १५६८ ई० मे हुआ। इसलिए तब तक ओडिया भाषा पर मुसलमानी अथवा यावनिक शब्दो का प्रभाव बहुत कम पडा था। सन् १५६८ ई० के पूर्व कही एक-आध मुसलमानी शब्द मिलते हैं। जैसे चतुर्थ नरसिंह देव के भुवनेश्वर वाले शिलालेख में "कीला" एक यावनिक शब्द है।

प्राचीन ओडिया पर विशेष प्रभाव पडा है "व्रज भाखा" या ब्रजबोली का। आलोचको के मतानुसार ब्रजबोली प्रधानत अवहट्ट और मैथिली के विकृत रूप पर प्रतिष्ठित है। ब्रजबोली के सबध में डा० सुकुमार सेन का कहना है कि इस भाषा की अभिव्यक्ति बँगला तथा ओडिया में एक ही समय में हुई थी। ओडिशा में ब्रजबोली भाषा के प्रधान प्रवर्तक हैं रामानन्द। सेन महाशय ने रामानन्द राय के "चरितामृत" के निम्न पद का उद्धरण दिया है—"पहिलहि राग नयनभङ्ग भेल"। यह पद सन् १५०४–१५११ ई० के बीच किसी समय लिखा गया था। अतएव

---

१. दे० श्री वसन्तराय द्वारा सम्पादित चण्डीदास पदावली का मुखबन्ध।

सीमित है। अत इन लोगो के दोहे एक समय तथा एक ही अचल में लिखे हुए नही जान पडते।

सातवी शताव्दी तक उड्डियान पीठ ओडिशा मे तान्त्रिक पीठ के रूप मे ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। सिद्ध इन्द्रभूति ने "प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि" ग्रन्य में उड्डियान के देवता वुद्धरूपी जगन्नाथ जी की स्तुति की है।[1] इसके अतिरिक्त ओडिया धर्मग्रन्थो मे श्रीक्षेत्र के जगन्नाथ जी का वर्णन वुद्ध-अवतार के रूप मे किया गया है और प्राचीन चित्रो में इसी प्रकार का चित्रण भी है। कालिका पुराण मे तान्त्रिक उड्डियान पीठ को उड्र पीठ और वहाँ की देवी कात्यायिनी को विमला देवी तथा देवता को जगन्नाथ माना गया है।[2]

उड्डियान-पीठ के रूप मे इस क्षेत्र का वडा महत्व था। वज्रयानी ग्रन्थो मे उड्डियान या ओडिशा के राजा इन्द्रभूति और उनकी वहन लक्ष्मीकरा तान्त्रिक सिद्ध के रूप मे विदित है। तिव्वतीय तान्त्रिक ग्रन्थ सववी विवरणो से पता चलता है कि पद्मसम्भव ने उड्डियान से तिव्वत जाकर तान्त्रिक वौद्धधर्म का प्रचार किया था।

वैष्णव धर्म तथा अन्यान्य धार्मिक और साम्प्रदायिक मतभेदो के कारण ओडिशा से तान्त्रिकता का लोप हो चुका है, फिर भी प्राचीन ओडिआ साहित्य मे इसका पर्याप्त उल्लेख है। तात्रिक वौद्ध पीठो के अवशेष अव भी ओडिशा में देखने को मिल जाते है। उदयगिरि, ललितगिरि, रत्नगिरि आदि स्थानो से असख्य तान्त्रिक वौद्ध देवी-देवताओ की मूर्तियो तथा वौद्ध स्तूपो के अवशेष मिले है। ओडिशा के विभिन्न स्थानो मे भी इस तान्त्रिक वौद्ध स्थापत्य के यथेष्ट निदर्शन मिलते है जिससे प्रमाणित होता है कि कभी तान्त्रिक वौद्ध धर्म की सहजयान तथा वज्रयान शाखायें ओडिशा में विशेष लोकप्रिय थी। वैष्णव धर्म के प्रचार तथा प्रसार के फलस्वरूप तान्त्रिक वौद्ध धर्म के लुप्त होने पर भी प्राचीन ओडिआ साहित्य, धार्मिक रीति नीति, प्राचीन वौद्ध स्थापत्य, अनेक कहानियो तथा जनश्रुतियो से इसका आभास अभी तक मिलता है।

वौद्धगान ओ दोहा की भाषा से प्राचीन ओडिया भाषा के स्वरूप का परिचय मिलता है। अस्तु, यह कहना भूल नही है कि ओडिया भाषा का प्राचीन रूप उसमें विद्यमान है। पइठ, भणइ, वइठा, परिच्छा, विआण, वापुडा, सासु, पुच्छइ, काहेरे, कीस, कुडिआ, तोहर, खेलहुँ, शाली, नणन्द, घुमइ, पडन्ते, वुडन्ते, नाचन्ति, होइ, देइ, होन्ति, तइलावाडी, वाँझ, वलद, सअल, आदि

---

१ प्रणिपत्य जगन्नाथ सर्वजनवराच्चितम्
सर्वबुद्धमयसिद्धि व्यापिन गगनोपमम्—(प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि अ—२२६। गा उःसि)

२. उड्रपीठ पश्चिमतु तथ मोड्रेश्वरीं शिवाम्
कात्यायिनीं जगन्नाथमोड्रेशच्चप्रपजयेत्।
कालिका पुराण अ ६४। श्लोक ४३।४४

सवधी जनश्रुतियो से मालूम पडता है कि कभी ओडिशा मे नाथधर्म का विशेष स्थान था। ऐसा लगता है कि आज ओडिशा के गाव-गाँव में 'राउल' पदवी धारी जितने शिवपूजक हैं वे नाथधर्म की रावल शाखा के अवशेष मात्र हैं।[1]

ओडिशा में गोरखनाथ के गाये हुए अनेक भजन प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त "सप्ताग योगधारण" नामक पुस्तक में गोरखनाथ जी के भजन सग्रहीत हैं। ओडिआ में लिखित "शिशुवेद" नामक एक और पुस्तक मिली है जिसकी भाषा बहुत प्राचीन है। सारला महाभारत तथा पचसखा साहित्य में शिशुवेद का नाम कई पदो मे मिलता है। इससे पता चलता है कि यह ग्रन्थ महाभारत के पहले का है तथा बहुत प्राचीन है। ग्रन्थ की भाषा से अनुमान लगाया जाता है कि यह तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया है। इस दृष्टि से उसके निम्नाकित अश द्रष्टव्य हैं—

"एक ये होइ दुइ अलग विलग
निरहु निरन्तर मेहु अलग
सिपुमुना मध्ये सयोति प्रकाश
वदन्ती नाये येटि सिद्धकर विशुआस" (२)
उदे गिरि असिगिरि पुन्य गिरि मेला
हस्ती चराइ प्रार्वत माला
येवणे से हस्ति महारस खाइ
वेनि पन्छि छेदिले गगने सम्भाइ।७। शिशुवेद (पाण्डुलिपि)

इसके अतिरिक्त नाथधर्म-सवधी एक पाण्डुलिपि ग्रन्थ "अमर कोष गीता" भी विचारणीय है। इसके भजनो में भी गोरखनाथ का नाम मिलता है। ग्रन्थ जिस तरह प्राचीन है इसकी लिपि भी उसी तरह प्राचीन है। इस पुस्तक में विभिन्न सिद्धाचार्यों के नाम मिलते हैं पर खेद की बात है कि इस पुस्तक के केवल दो-तीन पृष्ठ ही मिलते हैं। नाथ गुरुओ के विभिन्न प्रसगो में से कुछ निम्न हैं —

वन्दइ आदि नाथ गोरेख धारिआ
वन्दइ मक्ष देलि नाथ अनन्त दरिया।
वन्दइ चउरगी नाथ नीतक्रम धारि
वन्दइ गोरेख नाथ ब्रह्मचारी।

---

प्रवन्ध फाछेणि फटिरे नाइ गजि
करेण जपामालि अजपा लयभजि।
स्फटिकर मुद्रा पुराइ वेनि कर्णे
पद्मासने सेहु वसिले विलपने।—वनपर्व पृष्ठ १५५ पाण्डुलिपि।

१ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी· "रावल शाखा" पृ० १५६-६१

या सन् १०५१ निर्धारित किया है। इस शिलालेख में ओडिया तथा तेलुगु का ममिश्रण है। यद्यपि इस शिलालेख मे ओडिया भाषा का पूर्ण विकास नही मिलता किंतु बहुत से ओडिया शब्दों की क्रिया, कर्ता तथा विभक्तियों के विकसित रूप देखने को मिल जाते हैं। यह उरगिम शिलालेख के रूप में परिचित है।

भाषा की दृष्टि से प्रथम नरसिंह देव के समय का (१२४९ ई० का) भुवनश्वर का शिलालेख मूल्यवान है। इसके एक तरफ प्राचीन ओडिया भाषा तथा दूसरी तरफ तमिल भाषा मे विषय वस्तु प्रकाशित है। उसमे लिखित स, श्री, प, ध, र, इ और ह आदि वर्ण आधुनिक वर्णों के समान हैं और उसकी भाषा लोक भाषा है। किंतु तत्परवर्ती केन्दुली ताम्रपत्र मे लिखित ओडिया अभिलेख की भाषा काफी विकसित मालूम पडती है। यह चौथे नरसिंह देव के समय की (सन् १३८४) भाषा है। इसमें स्थान विशेष पर सस्कृत का प्रभाव पडा है। फिर भी यदि साधारण रूप से ताम्रपत्र में प्रयुक्त भाषा पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि तब तक ओडिया भाषा पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। ताम्रपत्र की लिपि भी ओडिया ही है "चैत्रमासि शुक्ल (क्ले) पक्षे त्रयोदश्या (तिथौ) रविवारे वाराणसी कटके विश्वक् शुर्मा (भ?) वेदक (?) समये श्री चरणे भितरे नवर कन्या मण्डप वाकिआए विजय समये दुआर परीक्ष गडेश्वर जेना वुढालेका लाण्डु सनिमिश्र भण्डुजि (रि) आ थाउ (उ) पौर परीक्ष महापात्र नरेन्द्र देव चक्रवर्ती महापात्र नरहरि दास प्रहराज महाप (पा) त्र श्रीपति मगल राज गोचरे आ (अ) ववारिला न्याए पोरो श्रीकरण सपनेश्वर महासेनापति वइदी महासेनापति मुदलेन महापात्र नरहरि दास प्रहराज कइक किनरि ग्राम र नाम विजयनरसि (०) ह पुर चतु सीमा समाक्रा० (का)न्त शासन करि देष्या कलास्वर उत्तर श्चतुसीमा किनरि ग्रामर नाम विजय नरसिंहपुर।"[1]

सीमाचल के लक्ष्मी नृसिंह मन्दिर मे प्रथम भानुदेव के समय (सन् १२७१) के जो लेख मिले हैं उनमें ओडिया भाषा का लौकिक स्वरूप मिलता है। कल्ला, वीरभाणु, होइ, एहारि, जाहार, एहाकर, कल्ले, तोहर, तिनिकि आदि बहुत से शब्द ओडिया भाषा के स्वरूप का निश्चय करते हैं। इस ओडिया शिलालेख में दक्षिणाचल की आंचलिक भाषा का प्रभाव पडा है। शिलालेख की कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं—

"तिनि भाग चित्तन मोखरि अर्जिला न्याये एहाकु अधिक भागे सएनेकरि एहाकु दुइभाग ए पाच भाग कि सबुह जे जाहार भागे स्राहि स्राहि सदिवाए। एहाँकर मुखरिपण व्रिति ए पचर मध्ये जे खदि शोयिसे चतुर्क्तन भोग करिवा" इत्यादि।[2]

द्वितीय नरसिंह देव के समय (ई० १२४९) भुवनेश्वर के शिलालेख में भी हमें प्राचीन

---

1 The Kenduli Copper Plate Grant Edited by S N Rajguru O H R J Vd V P 42

२ एन अर्ली इंसक्रिप्शन् : डॉ० के० बी० त्रिपाठी, ओ० एच० आर० जे०, भा० १, सं० ३, पृ० २०२

इन शिलालेखों और ताम्रपत्रों से ओडिया लिपि के भी विकास-क्रम का पता चलता है। द्वितीय नरसिंह देव (सन् १२९६) के केन्दुपाटना ताम्रपत्र-शासन से पता चलता है कि त्रयोदश शताब्दी तक ओडिया लिपि विकास-पथ पर थी। इसके विकास पर विचार करते हुए डा० त्रिपाठी का कहना है कि प्रोटो-ओडिया या कलिंग लिपि ११वी से १४वी और प्राचीन ओडिया लिपि १४वी से १६वी तथा आधुनिक ओडिया लिपि १६वी शताब्दी से आज तक की तीन अवस्थाओं में विकसित हुई है।[1]

प्राचीन ओडिया शिलालेख के इतिहास मे अशोक के जउगढ तथा धउलि शिलालेख और ई० पू० दूसरी शती के कलिंगाधिपति खारवेल के शिलालेख की जो धारा चली है उसमे विकास की विभिन्न अवस्थाएँ निहित है। इसके अतिरिक्त शिलालेख, ताम्रपत्र, प्रमाणपत्र आदि ने ओडिया गद्य साहित्य के विकास में यथेष्ट दान दिया है। संस्कृत के कई अभिलेखो के अतिरिक्त प्राचीन ओडिया शिलालेख तथा दानपत्र गद्य मे लिखे गये है।

प्राचीन ओडिया साहित्य की आलोचना करते समय व्रतकथाओ की उपेक्षा नही की जा सकती। पता नही, कितने युगो से ओडिशा की लोक-कथाओ, लोकोक्तियो, कहावतो, प्रवादो, प्रवचनो, डाको और कृपिवचनो, लोकगीतो, लोक-संगीतो आदि की धारा प्रवाहित हो रही है। प्रत्येक भारतीय प्रादेशिक साहित्य मे यह धारा मिलती है। समय के वक्ष पर प्रवाहित लोक-साहित्य रूपी यह निर्झरिणी धीरे-धीरे विराट् तथा कमनीय साहित्यधारा की सृष्टि करने मे सहायक हुई है। फिर भी साहित्य के इतिहास मे इसका काल निरूपण करना कठिन है। भाषा की प्राचीनता के अनुसार कई व्रत-कथाओ तथा गद्यकाव्यो का आनुमानिक समय निर्द्धारण किया गया है।

इसके अतिरिक्त कीमियागिरी, यन्त्र, मन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, शिल्पशास्त्र, गो-चिकित्सा-शास्त्र, चाणक्य-नीति के श्लोकों आदि की गद्य व्याख्या में प्राचीन ओडिया गद्य साहित्य का परिचय मिल सकता है। अत्यंत प्राचीन काल से ओडिशा के जगन्नाथ मन्दिर मे 'मादला' पंजिका का प्रचलन है। उसमे मन्दिर और विभिन्न राजाओ के राजकाल के विषय मे बहुत कुछ लिखा है। कई आलोचको के मतानुसार 'मादला' पंजिका बहुत प्राचीन है। पंडित सूर्यनारायण दास ने "ओडिया साहित्यर परिचय' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह पंजिका चोल गंग देव के समय से अर्थात् ११ वी शताब्दी से चालू है।[2] परन्तु ऐतिहासिक इस पर एकमत नही है। भवानी-चरण बंद्योपाध्याय के "पुरुषोत्तम चन्द्रिका" (ई० १८४४) नामक ग्रन्थ से मालूम पडता है कि भोइ वंश के राजा रामचन्द्र देव ने द्वितीय अंक (राजकाल के प्रथम वर्ष) में वटेश्वरमहान्ति को "मादला" पंजिका लिखने का आदेश दिया था। सम्भव है, इन्ही रामचन्द्र देव के काल से ही मादला पंजिका लिखी जाने लगी हो, क्योंकि रामचन्द्र देव के समय तथा परवर्तीकाल की घटी

---

1 The Palaeography of Early Oriya Inscription Dr. K B Tripathi, O H R J. Vol IV, p. 19

२. ओडिया साहित्यर परिचय, पृ० ४७।

पडती है। और कही-कही साधारण गद्य रीति का अनुसरण किया गया है। यह योग तथा दार्श-निक मतवादो के विश्लेषण में जिस प्रकार पाण्डित्य से पूर्ण है वैसे ही सुन्दर भावोद्दीपक भी है। जैसे "साक्षमते कहइ। देह इन्द्रियादि हूँ विरक्त होइ आत्मा मुक्त स्वरूपे सर्वदा अछि बोलि विचारिले। ये पदहि निराश दुःख सेटि। केवल भावे अनेक काल न थाइ। अनेक काल एहि मते थिलेहें एहित दुःख। पातजलिमत बोलि किछि हिँ नाहिँ। ज्ञान हिँ नोहइ। चैतन्य हिं माया। सेटि बोलि एमन्त विचारिवा किछि हिं न विचारिवा। किछि हि न जाणिलेत जन्तु प्रायेक होइ। अज्ञान लक्ष होइले हे एहित भस्म होइला। श्रेयत नोहिला मीमासा मत बोलइ। कर्मे करि ईश्वर आपण होइ बोइले कर्मे दुख महाश्रम। ए दुख कि सहि होइ। सहि होइ। नाहि ईश्वर होइ। ईश्वर चिह्नित वृषभ गोटिये चढि डम्बरु गोटिये बजाउ थाइ। घर करि कइलास कन्दरे रहि थाइ। काम क्रोधे थान्ति। सेवा कला लोककु पुत्र दाराकु ममताथाइ। प्रलय मानकरे दुख सहि देहगोटिये थेनि अचल समादिरे वसिथाइ। एहित दुखहि सेटि एथि विफल होइला। वैशेषिक मत बोलइ। जगत जाक केमन्त गोटिये जन्तु पराएक होइ अछि। परमेश्वर त ए एथिरे कि सुअ पाइ होइला। कौमारिमत बोइला। ए ब्रह्माण्ड स्वरूप पुरुष जे विष्णु। एहार पाताल माने चरण। समुद्र माने पेट। वडवानल जे गोछि अन्तरीक्ष शरीर। उपर सात लोक मुकुट। चन्द्र सूर्य चक्षु। पाताल विम्वर नासिका अणचास पवन निश्वास। धर्म श्रोता। जम जिह्वा। सरस्वती वचन। ब्रह्मा इन्द्र दुइ भुज। परमात्मा विष्णु। मन ईश्वर। चौषठी महामाया। एमन्ते आत्मा परमेश्वर बोलि कल्पि एहाकु भाविवा। एहाकु भावना सिद्ध करि ब्रह्माण्ड जेते देह गोटिये पाइला। पाइले विफल होइला। तदन्तरे पाशुपत माने बोलन्ति। जगत शिव शक्ति होइ। त केमन्त प्राये होइ। चन्द्र शक्ति सूर्य शिव। मन शक्ति चैतन्य शिव। चैतन्य शक्ति मन शिव। एव भूत प्रकारे मन शिव करि। जगत चिन्ता एमन्त करि कल्पि मरूथिले कि कार्य होइवटि। न्याय शास्त्र मते बोलइ। परमेश्वर हिं से अछि। आन वस्तुनाहिं। एहि कि होइलाटि। येंवे परमेश्वर अछि अन्य नाहि। एहार दुःख भाव कि पाईं। परमेश्वर थिले न थिले एहार हानि वृद्धि नाहि। जीवत न पासोरिला तर्कशास्त्र मते बोलइ। आकाशर प्राये आत्मा। सर्वाप्तमय सदानन्द, सर्व सम्पूर्ण होइ पुरि अछि। एमन्त बोलि आत्माकु आकाश मत करि। आकाशकु ध्याय करि आकाश खण्डे होइलाटि एहि कि भाव होइला। तहु अन्तरे बौद्धमत बोलन्ति देह थिले से कार्य ए देह सुखमानकर सदन। ए थिले हें एणे कि कार्य पुणि आत्मा व्यक्ति एत किछिहि नोहइ। त आत्मा मिछ होइला। भोग त विचारिले नरक। एतेके एणे कि कार्या त आत्महत मत बोलइ। आत्मा टि सत्य स्वरूप। चैतन्य होइ शक्ति गोटाये होइले हे अबा कि कार्य चैतन्य जाणिमा पदार्थ। एमन्त होइले जाणि जाणि मला। अनेक काल जाए। त एहि कि सुख। कापालिक मत बोलइ। देह सिद्ध होइ आसनकु उठइ। एथि त धर्म कथा नाहिं। चढइ प्राये होइ आकाश मण्डले बुलुथिले होइलाटि ए ईश्वर स्वरूप भ्रम सिना। तदन्तरे लौकिक मत बोलइ। प्राण पवनकु निरन्तरे जागिथाइ। ए छार होइ लाहिटि। जगि जगि महाश्रम पाइ मरिब। तदुपरि वृद्धानुशासन मत बोलइ। जीब ब्रह्म होइकरि जीव ब्रह्म बोइले हे जीव गोटाकु, ब्रह्म बोलि भासुथाइ। ए सुख हिं होइलाटि। पाषण्ड मते बोलन्ति, देह आत्मा

कामाग नाशन कैवल्य वर प्रद। कैवल्य स्वरूप। कुधर नलिनी
कुच कुम्भ कुम लेपन। कर कमल कलित कामिनी कदम्ववन्दिन
कुलटाकुल कण्ट का कलित कोमल कामागना हरप खण्डन
कालिन्दी कुमुद वन्धु मुख चुम्वन। कार्तिकेश्वर सेवित चरण
पकज। कुशधर कमलापति वन्दित चरण। करावप कुल कुमुद।
कमल कलाधर। किरीटी कुण्डल कुण्डली शोभित शिर। कुरग कोठार शोभित कर
कामरूप धर। कामप्रद। कामकल्प द्रुम।
कामरूपिणी पीन कठिन कुच कलस कठोर कमल कर मर्दित।
कठोर कमल कर मर्दित। कठोर हृदय। करुणाकूपार। कुण्डलिनी
शक्ति भेदित। कालि मुख ककारन्ते ककल्य ककरादित दन्त।
कलित कमल कोपकर कलानिधि। कमल नयन दिव्य स्वरूप
कुटिल वर्जित। कुटिलजटाजूट मण्डित शिर। काचन शैल
विलसित। कामादि वरण विवर्जित। काएकाइक विवर्जित।
कामधेनु। कारुण्य कला कल्य कलेवर। कमठ पृष्ठ कठोर
शूलधर। कुमारी वरप्रद। कुमारी गण पूजित। कालान्तक।
कलामुख। कमलापति सेवित। कलाविवर्जित। देव जय जय शिव शम्भो।१।"[1]

कही कही रुद्र सुधानिधि के पद-विन्यास पर गीतगोविन्द का प्रभाव पडा है। ओडिशा कभी शैव धर्म का एक प्रधान धर्मपीठ था। इसके पर्याप्त प्रमाण हैं, एकाम्र-कानन, भुवनेश्वर के सूची शिल्प शोभित सैकडो शिव मन्दिर तथा प्राची नदी के तीरवर्ती अनेक शिव मन्दिर। लगता है, अवधूत मतावलम्बी नारायणानन्द ने इसी एकाम्र क्षेत्र में रहकर, इस अमूल्य ग्रन्थ की रचना की थी। काव्य के अधिकाश स्थानो मे वाक्यालकार "त" का प्रयोग मिलता है जो कि अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थो में नही है। काव्य में प्रयुक्त निम्नाकित शब्द प्राचीन ओडिया भाषा के प्रामाणिक स्वरूप की घोषणा करते हैं—लूलि, सुशुम्णा, उच्छाहा, मुख्य (मोक्ष) ज्ञातिका, धउर्य, तिदश (त्रिदश) कुछित, सुपाति, होअन्ता, चितोइला, जाणिमा, सबुहुँ, हादे, घिला (देला), दिला, दुहिन्ति, केउण, जेउण, हाथ, तपमानन्त आदि।

इसके अतिरिक्त गद्य में अनुस्वार का प्रयोग बहुत ही अधिक है जो कि प्राचीनता का एक विशिष्ट निदर्शन है। इस प्रकार रुद्र सुधानिधि, भाषा, विभाव तथा धार्मिक विचार की एक प्राचीन रचना है। श्रीयुक्त प्रह्लाद प्रधान ने अपने रुद्र सुधानिधि सबधी प्रबन्ध[2] में यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि रुद्र सुधानिधि गद्य रचना नही है। किन्तु उपरोक्त उदाहरण के अनुसार

---

१. रुद्रसुधानिधि—पृष्ठ २९-३०

२ रुद्रसुधानिधि—श्री प्रह्लाद प्रधान, 'झकार' १०वा वर्ष १ म सख्या पृष्ठ १२।

विवाह-वेदी पर बैठे शिव जी खाँसते-खाँसते दम ले रहे हैं और इतने जोर से साँस ले रहे हैं कि उनका सिर नीचे झुक जाता है। इतने दरिद्र योगी हैं कि अपना न कोई उत्तम यान है न वाहन। एक बूढे बैल पर चढकर आये हैं विवाह करने। केवल इतना ही नही, कभी बूढा बडी मुश्किल से दाँत मीज कर एक दो बातें कह देता है। बातचीत करते समय उसकी आँत खिच जाती है। मुख पोपला हो गया है। मुख पर गाडी भर मूँछ-डाढी है। पार्वती की सखियाँ कहती हैं कि अगर इस प्रकार के विकृत शरीर वाले पुरुष को कोई रात में देखे तो डर जायगा। दाढी-मूँछ साफ करने के लिए क्या इसे नाई नही मिलते हैं?

खूँ खूँ खास साहसेण पेलुअछि घइ
खर निश्वास वुढार माथ लागे भूइ
खण्डिया योगीर सगे नाहि जान तार
खण्डिया वलद वुढा वान्धिछि पाखर
निसतेण कहे कथा निकुटिण दान्त
न आसइ वाणी तार दुहि होए अन्त।
निश दाढी रुचि ताकु न मिले भण्डारी
निशा काले ये देखले भये डरि पारि[1]

प्राचीन ओडिशा के गीति-साहित्य के क्षेत्र में चौतिशा एक मूल्यवान् मणि के समान हैं। भाव और भाषा-सपद से पूर्ण हजारो चौतिशाएँ आज भी ओडिशा के लोक-मुख से काफी आदर के साथ गाई जाती हैं। प्रेम, मिलन, विरह, भक्त का करुण आत्मनिवेदन, भजन, नायक-नायिकाओ का पत्र, ऋतु-वर्णन के साथ ही कठिन योगतत्त्व तथा दार्शनिक-चिंता आदि विषयो का विचार भी चौतिशा में सन्निविष्ट होता है।

यह चौतिशा कभी इतनी लोकप्रिय हो गई थी कि परवर्ती समय में उसे "कलसा वाणी" के नाम से विभिन्न चौतिशा तथा छन्दो में व्यवहृत किया जाने लगा था। हमें प्राकृत छन्द-ग्रन्थ से "कलस" नामक छन्द का परिचय मिलता है। सारला महाभारत बहुत-सी लोकोक्तियो से परिपूर्ण है। महाकवि सारला दास न भी महाभारत के मध्यपर्व में चन्द्रावती तथा शाम्वकुमार के परिणय-प्रसग मे ठीक वत्सादास के समान परिणय-वर्णन किया है। यहाँ तक कि वशिष्ठ, मार्कण्डेय तथा दुर्वासा आदि ऋषियो ने भी विवाह-वेदी पर "कलसा" पाठ किया है।[2]

"वेदमन्त्र युगते ये पढन्ति कलसा
वशिष्ठ मारकण्ड आवर दुर्भासा
(प्राचीनगद्यपद्यादर्श मुखवन्ध)

---

१. प्राचीनगद्यपद्यादर्श—पृष्ठ ७६-७७
२. साहित्य ओ सस्कृति—कलसार काल निरूपण प्रबन्ध द्रष्टव्य।

गजपति कपिलेन्द्र देव के राजकाल में उनका आविर्भाव हुआ था। उन्होंने अपने महाभारत में इसे स्पष्ट रूप से लिखा है—

"कलिकाल व्वसिण भोगेण कोटि पूजा
प्रणमिते सटन्ति श्री कपिलेश्वर महाराजा।"
(महाभारत आदि पर्व पृ० ५)

कपिलेन्द्र देव ने १४३५–१४६५ तक शासन किया था। ओडिशा के इतिहास का यह एक गौरवमय अध्याय है। खारवेल के राज्य को छोड दिया जाय तो ओडिशा के इतिहास में कपिलेन्द्र देव का राज्य द्वितीय स्वर्णयुग है। इनके राजकाल में ओडिशा राज्य गगा से लेकर गोदावरी तक फैला हुआ था। सूर्यवशी सूर्यरूपी सम्राट् कपिलेन्द्र देव के राजकाल मे ही ओडिया भाषा तथा साहित्य का पद्म पूर्ण रूप से विकसित हुआ था। सारला दास के पूर्व ओडिया भाषा का जो स्वरूप था वह समृद्ध अथवा विराट् नही है। सारला दास की रचनाओ की विशेषता यह है कि उनकी भाषा तथा ग्रन्थ की विषय-वस्तु में ओडिया भावो की जीवन्त अभिव्यक्ति मिलती है।

सारला महाभारत तथा उनके अन्यान्य ग्रन्थो की भाषा इतनी परिपुष्ट शुद्ध ओडिया है जिसके द्वारा भाषातत्व का विभव प्रतिफलित होता है। पहले के समान गग राजाओ के राजकाल में भी सस्कृत भाषा तथा साहित्य का समधिक आदर था। किन्तु प्राकृत भाषा साहित्य के पुरोधा स्वरूप सूर्यवशी कपिलेन्द्र के राजकाल मे सारलादास के आविर्भाव ने ओडिया साहित्य में एक नूतन युग का निर्माण किया। इसका एक ज्वलत प्रकाश कपिलेन्द्र देव के ओडिआ शिलालेखो की भाषा से सुस्पष्ट है। सारलादास-साहित्य के अनुध्यान से ओडिया भाषा की प्रतिप्रत्ति तथा वैचित्र्य देखने को मिलता है। उन्होने अपने महाभारत में मध्यपर्व के श्रीकृष्ण के गुरु सन्दीपनी ऋषि के घर पढने के प्रसग में श्रीकृष्ण की चौसठ प्रकार की भाषा-शिक्षा तथा भारतीय भाषाओ में से ग्यारह लिपियो की शिक्षा के विषय में भी लिखा है। यथा—ओडिया, तेलागी, नागरि, दक्षिणी कनाउज, गउडी, रामहाटी, आदि भाषा[1] सारला साहित्य मे प्राकृत का अपभ्रश स्वरूप किस प्रकार आ गया था, निम्नाकित कई शब्दों से उसका पता चल जायगा—

द्रपिष्ट, श्रुतिले, जेवण, जेउण, मुहास, कणय, मयाण, महेंसासुर, कइ (कु) कहसि, करसि

---

१. ओडिया तेलंगि ये नागेरि दक्षिणी
कनाउज आहरण गउडो आचक्रायणी।
विरचि रामहाटी महाभाखा
डाहाल वेलाल आदि येते पचम रेखा।
दक्षिण मन्दिर ये कामेरि भारथि
भाखा उदेश ये कलेक श्रीपति
"येकादश अक्षर भाखा चउषठि" (मध्यपर्व पाण्डुलिपि पृ० ८०३)

न वहुजनहिताय ही हैं, न उनके द्वारा आविर्भूत साहित्य ही जनमगलकर हो सकता है। इस दिशा मे तो भारतीय साहित्य ही सर्वोपरि है। यह आज की नही, अनादि काल से चली आती भावनाएँ है, चिन्तन है। गाधीजी ने जो कुछ किया है और कहा है वह भारतीय साहित्य की सीख से, भारतीय सस्कृति की प्रेरणा से कहा है। उसमें नवीनता नही है। नवीनता है नाना वाधा-विघ्नो के रहने पर भी अपने खयाल, अपने चिन्तन से जन-मगलकर काम करते जाना। गाधीजी ने जिस अहिंसा का प्रयोग आज इस आसुरी शक्ति के सम्मुख किया है नया है, प्रयोग करने का ढग नया है। इन शब्दो में जो भाव है, जो अर्थ है, जो त्रैकालिक सुन्दर शक्ति निहित है उसको गाधीजी ने प्रकाश कर दिया है—इस 'अहिंसा परमो धर्म' को गाधीजी ने पाया है केवल भारतीय साहित्य से। इसमें विश्व के जन की कामनाएँ है, प्रेम है 'सारा जहाँ एक है' की पुकार है, दुनिया भर के मानवो की कामना एक है—खानपान, भाव, भाषा, व्यक्ताभिप्राय, चाल-चलन एक है, वेशभूषा एक है। सारे मानव की गठनप्रणाली समान है। सभी सामने देखते है। पीछे की ओर से कोई नही देखता है। नाक से कोई नही खाता, कान से नही सूँघता है। सभी की कामना है भरपेट भोजन की, वस्त्र की और घर की, वाकी विलास की सामग्री और प्रसाधन की। जो कुछ आज होता है, वह अपने लिए ही होता है। केवल अपनी ही चिन्ता साहित्य की दुर्वलता है। साहित्य अगर चाहता, उसमें सामर्थ्य होता तो वह कहता—जैसे कि भारतीय साहित्य चाणक्य के मुख से वोला है —

आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञान नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीना पशुभि समाना ।

विश्व एक है। पवन, पानी, भूमि, तेज और आकाश एक है। जव इसमे भिन्नता नही है, फिर यह खुदगर्जी क्यो कि 'मै ही खाऊँ और सव भूखो मरें', 'मै शासक वनूं और सव शासित हो।' यह कामना क्यो ? किसके लिए ? कितने दिनो के लिए ? यह प्रश्न किसी भाषा साहित्य ने प्रस्तुत नही किया है। जो कुछ किया है, वह खर के समान भारवाहक वनकर किया है। स्वार्थ और लोभ ने मिल करके अखाडा वनाया है। यह साहित्य की उन्नति का लक्षण नही है और न उन्नत साहित्य का ढग ही है। उन्नत मानना भी भूल है। उच्चस्तरीय चिन्तन के न तो ढग हैं, न माने ही। भारतीय साहित्य के विधाताओ ने चार युग (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) वतलाये है, कर्म की श्रेणियाँ की है। कलियुग इस श्रेणी की चौथी सीढी है। अगर साहित्य चाहेगा तो फिर सत्ययुग आ जायगा, दुनिया में अमन चैन रहेगा, उन्नत साहित्य की रचना हुआ करेगी। क्या साहित्यिक इस दिशा में सोचेंगे ?

साहित्य आदमी को देवता वना सकता है और राक्षस भी। आज के विश्व साहित्य मे राक्षस वनाने का हुनर तो है, लेकिन देवता वनाने की कला उसमे नही है। यही कारण है कि आज दुनिया वारूद के गोले पर वसी है। जरा भी उसमें गरमी आई कि फटा और फिर सभी समाप्त। आज का साहित्य वारूद वनाने में लगा है, पलीते वनाये जा रहे है।

ससार के आदमियो के लिए यह सोचने की वात है। वे देखें कि आदमी किस प्रकार देवता

सस्कृत महाभारत की विषय-वस्तु तथा उसके क्रम के साथ सारला महाभारत का व्यतिक्रम है। ऐसा लगता है, कवि ने सस्कृत महाभारत को श्रवण कर वाद मे अपनी कल्पना से नूतन महाभारत की रचना की है।

ययातिके प्रसग मे कवि ने लिखा है कि उन्होने अपने राज को, नौ भाग कर अपने नौ वेटो मे वाँट दिया था। उनके ज्येष्ठ पुत्र ओडियाणी रानी के पुत्र थे। वाद में प्रवीर ओडिशा का राजा वना था। इन्ही के समय मे हर एक गाँव की सीमा निर्धारित हुई थी तथा 'नल' में पृथ्वी का मापना शुरू किया गया था।

कवि ने गगा के प्रसग में एक देहाती, झगडालू, ओडिआणी के चरित्र की रूप-रेखा दी है। इस तरह हरएक नारी-चरित्र मे देहाती ओडिआणी का चाल-चलन पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ है। इसमें अनेक अद्‌भूत उपाख्यान भी हैं। जैसे—पराशर, शान्तनु और भूरिश्रवा तीन भाई हैं। सत्यवती पराशर की स्त्री है। (उनकी शादी शान्तनु के साथ नही हुई थी) शान्तनु की चित्र-प्रतिमा के साथ आलिंगन के कारण स्खलित होने पर चित्रवीर्य और विचित्रवीर्य का जन्म हुआ था। सत्यवती और द्रोण का जन्म और चरित्र आदि आदिपर्व में वर्णित है। शान्तनु के प्रति गगा की कुत्सित गालियाँ और पीटने की चेष्टा आदि उनकी उग्रता के परिचायक हैं। शान्तनु और गगा के वीच में प्रण हुआ था कि जब शान्तनु गगा को गाली देंगे तो वे नही रहेगी। शान्तनु के सामने गगा ने एक एक करके छहो वेटो को वैंठकी से काट दिया था। लेकिन जब नवजात सातवें वेटे को मारने के लिए गगा उद्यत हुईं तो शान्तनु ने उन्हे गागी कहकर गालियाँ दी। इसलिए गगा उन्हें छोडकर पानी में अन्तर्हित हो गईं। धृतराष्ट्र ब्रह्मराक्षस और गाधारी अुआसी कन्या थी। दोनो के विवाह प्रसग आने पर धृतराष्ट्र की कन्या और गाधारी के पति ने प्राण त्याग दिये। व्यास जी की कथा के अनुसार गाधारी का साहाडा वृक्ष के साथ विवाह हुआ और साहाडा वृक्ष के जल जाने से उनका दोष छूट गया और धृतराष्ट्र ने गाधारी के साथ विवाह किया। साहाडा वृक्ष का माहात्म्य एक सुन्दर आख्यान में वर्णित है।

याजपुर की वैतरणी नदी के पास शिववाहन साँड के सिर पर साहाडा का पत्ता गिरा। इससे साँड ने अमृत भोजन मिलने की वात शिव से कही और कपिलास पर्वत पर शिव के आगमन में विलव होने के कारण पार्वती भोजन करने लगी। उसी वक्त शिव का डमरू-स्वर सुनाई पडा इसलिए उन्होने अपनी खाद्य-सामग्री वृषभ के कुड मे डाल दी। शिव की आज्ञा पाकर नन्दी ने वृषभ को भोजन न देकर गोशाला में बाँध दिया। क्षुधातुर वृषभ अपने कुड से अमृत खाद्य आकठ भोजन कर आनद से सो गया। शिव द्वारा वृषभ से पूछने पर उसने कहा कि शास्त्र की वात कभी झूठ नही हो सकती। शिव ने पार्वती से सारी बातें कह सुनाईं और साहाडा वृक्ष का माहात्म्य स्वीकार किया।

सस्कृत महाभारत के भीम-चरित्र की अपेक्षा सारला महाभारत का भीम-चरित्र अत्यन्त विचित्र है। भीम जब जन्म लेकर शतशृग पर्वत पर सो रहे थे उस समय पैर की सबसे छोटी अँगुली से लगकर शतशृग पर्वत के सारे शृग खण्ड-विखण्ड हो गये। जितना भी पकाया जाता,

को युद्धक्षेत्र में एक खम्भे के ऊपर रख दिया। केवल वेलाल सेन ने ही शुरू से लेकर अन्त तक महाभारत युद्ध देखा था। इसके अलावा वावना भूत चरित तथा राउुल की मन्त्र शक्ति से भूतो को वाँधना भी इस पर्व का एक सुन्दर उपाख्यान है। खाण्डव वन मे श्रीकृष्ण का नवगुजर वेश तथा भीष्मपर्व स्थित गीता मे अर्जुन को दिये गये उपदेश—जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, और भक्ति योग का उल्लेख नही है। सिर्फ अर्जुन का सामान्य निर्वेद और उसका परिहार है। संस्कृत महाभारत के शातिपर्व और अनुशासन पर्व का विषय यहाँ विलकुल नही है। लेकिन शाति-पर्ववाले शाम्ब की शापमुक्ति के विषय मे कोणार्क तीर्थ का महात्म्य वर्णित है। अश्वमेध पर्व में वसुकल्प ग्रहण चरित, कदम्वासुर उपाख्यान, श्रीकृष्ण का अश्वमेध यज्ञ, नीलगिरि मे दारु प्रतिष्ठा, स्वर्गारोहण पर्व मे युधिष्ठिर का याजपुर में अवस्थान तथा हरिसाहु की लडकी मुहानी के साथ विवाह, भारदा वृत्तान्त, आरडक दैत्य वध, सत्यम्वा-चरित, गदापर्व मे दुर्योधन का अपने मृत पुत्र लक्ष्मण कुमार के शव पर अँधेरी रात्रि मे रक्त नदी पार होना आदि अनेक विपयो में सारला दास का निजत्व प्रकाशित हुआ है। मोटे तौर पर सारला दास महाभारत मे प्रधान विपय-वस्तु का ग्रहण होते हुए भी, अनेक नूतन उपाख्यान भी हैं।

१५वी शताब्दी के सामाजिक तथा सास्कृतिक इतिहास का एक विशद विवरण इस सारला महाभारत में देखने को मिलता है। महाभारत की सामरिक साज-सज्जा में, ओडिया सैनिको की वेशभूषा, दुर्ग-निर्माण की प्रणाली, विभिन्न मल्ल-युद्ध, अग्र और पश्चात् सैन्य दलो का विराट् समारोह तत्कालीन विभिन्न अस्त्रो-शस्त्रो का वर्णन आदि द्वारा उस समय के ओडिशा का गौरवमय चित्र उपस्थित होता है। कपिलेन्द्र देव के दिग्विजय के इतिहास का एक अस्पष्ट आलेख महाभारत के विभिन्न स्थानो में प्रकारान्तर में दिखाई देता है। कोण्डाभिदु, गोलकुण्डा, विजयनगर आदि ऐतिहासिक दुर्ग तथा स्थानो का नामोल्लेख तथा ओडिया सैनिको की युद्ध-यात्रा का आभास है। मोटे तौर पर कहा जाय तो सारला महाभारत ओडिया साहित्य की एक विराट् वीरगाथा है। कपिलेन्द्र देव के गोपीनाथपुर शिलालेख में भी तत्कालीन वीरता का उत्तुग प्रकाश हुआ है तथा वह भी तत्कालीन साहित्य मे प्रतिविम्बित हुआ है।[1] इसके अतिरिक्त महाभारत के विभिन्न स्थानो में सैन्यो की वेशभूषा का वर्णन है। वह प्राचीन ओडिशा के सामरिक गौरव का यथेष्ट परिचय देता है।[2] सैन्यवाहिनी प्रसग में आई वडकुमार जेना, राउत, पात्र, देसाउर, कटुआल,

---

१. कर्णाटोज्जास सिंह कलवरग जयो मालव ध्वसशील
जघालो गौडमर्दी भ्रमरवर नृपोध्वस्त डिल्लीन्द्र गर्व।६।
यस्योच्छैर्वाजिराजि विकट खुर पुटोद्घाटित क्षौणी पृष्ठ
प्रादुर्भूत प्रभूत क्षितिकण निकरैर्लक्ष माणे प्रमाणे।७। शिलालेख पृ० ४-५

२ शुकल पागेक स मथारे बान्धिला।
शुकल पाछोटि अण्टारे बेढ़ाइला।
खण्डातरुआर कटिरे लगाइ

ईसा के द्वितीय शतक के द्वितीयार्द्ध के परवर्ती काल से अर्थात् नागार्जुन के समय (१०वी शताब्दी) से इसी शून्यवाद की धारा वहती आ रही है।[1] इस प्रकार की शून्य साधना की धारा ओडिया सन्त-साहित्य में भी है। सारला दास ने अपने महाभारत में जिस सहज, निरजन अणाकार पुरुष, और "निराकार पुरुष" की सूचना दी है वह महायान वौद्ध धर्म के शून्यवाद के प्रभाव के कारण है।[2]

कई स्थानो मे नाथ-धर्म सवधी आचार-विचार तथा अघोरी सिद्ध और कौलो की वेश-भूषा, खानपान विषयक वर्णन किये गये हैं। सावारणत शाक्त धर्म के अनेक देवी-देवता और तान्त्रिकता के प्रचुर व्यवहार के साथ विभिन्न धर्मों का एक विस्तृत इतिहास भी सारला की कृतियों में देखने को मिलता है।

ओडिशा की सामाजिक रीतिनीति और चालचलन की दृष्टि से सारला महाभारत ओडिआ साहित्य का एक अद्वितीय ग्रन्थ है। महाभारत के पद पद मे ज्योतिष शास्त्र का प्रचुर प्रयोग है। जिस किसी भी युद्ध के प्रसग, यात्रा, जन्म, मृत्यु, याग-यज्ञ यहाँ तक कि खाने-पीने और सोने में भी ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दिन, वार, वर्ष, नक्षत्र, योग, करण आदि का विस्तृत आभास दिया गया है। मालूम होता है कि कवि के मन में ज्योतिष शास्त्र के प्रति आसक्ति थी। कामशास्त्र की चर्चा भी महाभारत के विभिन्न स्थानो मे है।

गृहस्थ का यथाविधि स्त्री-सहवास, चन्द्र-चाल तथा अन्यान्य कामशास्त्र-सवधी-वर्णन, विवाह, व्रत, ओषा, ओडिशा की तत्कालीन वेश-भूषा, कृषि-सवधी नियम-पद्धति, तत्कालीन राजस्व, सैकडो खान-पान, नौ-वाणिज्य, शिल्प और स्थापत्य, विभिन्न व्याधि तथा उसके प्रतिकार की विधि, राजा, राज्य, नगर, राज्यशासन-प्रणाली, दुर्ग, मन्दिर और गृह-निर्माण-विधि, विभिन्न परिमाण और नाप-प्रणाली, ओडिशा की अनेक नदियो, पर्वतो, देवालयो, गाँव, हाट, वाट आदि समस्त विषयो के वर्णनो से महाभारत समृद्ध है। ओडिशा की एक कहावत के अनुसार ढेंकिशालरु आरम्भ करि ढेंकानाल पर्यन्त—छोटी मोटी वस्तु से लेकर बडे तक का चित्र इस ओडिया महाभारत मे है।

### चण्डी पुराण

सारला दास की अन्य एक रचना चण्डीपुराण है। यह भी दाण्डि वृत्त में ही लिखा गया है। कथावस्तु की दृष्टि से यह मार्कण्डेय पुराण के महिषासुर-वध उपाख्यान पर आधारित है। फिर भी महाभारत के समान ही इसमें भी काल्पनिकता का पूर्ण समावेश है। सारला दास शाक्त धर्मावलम्वी थे। चण्डी पुराण में उस धर्म का उत्कर्ष प्रतिपादित हुआ है। कालिका पुराण में

---

१. तान्त्रिक बौद्धसाधना और साहित्य—श्रीनगेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृष्ठ ५०

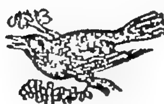
२. सारला महाभारत रे शून्यवाद—श्री वशीधर महान्ति। समाज-गोपबन्धु श्राद्ध सख्या १९५६, पृष्ठ ८२-८४

पाँच दिन तक युद्ध करने पर भी रामचन्द्र रावण को परास्त नही कर सके। देवताओ ने कहा कि सीता के अतिरिक्त उन्हे कोई नही मार सकता। चित्रसेन गन्धर्व द्वारा जानकी को रथ मे बैठाकर लाते समय सिहवाहिनी कात्यायनी ने उन्हें असुरो के वध के लिए पुष्प धनु तथा पच शर प्रदान किया। युद्ध मे देवी ने केवल अपनी मोहिनी मूर्ति ही रावण को दिखाई है।

नव यउवन देवी देलेक देखाइ
पचुशर बाण गुणरे बसाई।
धनु मन्त्र पढि जनेक कुमारी
असुर उपरकु विन्धिले शर धरि।
बिलका रामयण पाडुलिपि पृ० २०१

विषम और भयावह युद्ध के अवसान के बाद जनसाधारण के सुख और शाति से जीवन-निर्वाह के लिए सारला दास ने बिलका राज्य को समप्रधान करने के उद्देश्य से भूमि से बंधुरता और आवर्जना 'मई' द्वारा दूर किया था। उस राज्य के कटक-स्वरूप असुर श्रेष्ठ सहस्र शीर्ष की मृत्यु के बाद जनसाधारण की भाँति रामचन्द्र ने सीता के साथ जीवन के प्रधान उपयोगी खाद्य उत्पादन के लिए श्रम किया है। अर्थात् कवि ने राम और सीता के द्वारा भूमि को जोतने तथा समतल करने के लिए उन्हे 'मइ' पर बिठाया है। कृषि द्वारा उत्पन्न खाद्य पर मनुष्य-जीवन निर्भर करता है। यह मानव का प्रधान कर्तव्य है। यही बात प्रकारान्तर से आख्यान द्वारा बतायी गई है।

सारला साहित्य में भाषा और भाव का जो सरल, सहज, सामजस्य परिलक्षित होता है, वह अन्यत्र विरल है। यह कहना अत्युक्ति-पूर्ण न होगा कि उनकी भाषा में ओजस्विता और सर्वार्थ प्रकाश-शक्ति तथा ओडिया सस्कृति और सभ्यता का उच्च निदर्शन है।



शिव परमब्रह्म, आशुतोष तथा वरदाता हैं। उत्कलीय हिंदू परिवार की गृहिणियाँ उन्हे प्रसन्न करने के लिए इसी सोमनाथ व्रत का पालन करती हैं तथा पुरोहित इसी कथा को पढकर उन्हे सुनाया करते हैं। उत्कल मे कई भिन्न भिन्न व्रत तथा व्रतकथाएँ प्रचलित हैं पर सोमनाथ व्रतकथा उनमे प्राचीन है। नीचे सोमनाथ व्रतकथा के जो अंश उद्धृत हैं, उन्हे रुद्रसुधानिधि के वाद, ओडिया प्राचीन गद्य के नमूने के रूप में ग्रहण किया जा सकता है—

"परमेश्वर कहन्ति, देवि शुणन्ति। शुण देवि पार्वति
मालव बोलि देश, तहिं पाटलि बोलि नग्र, तहि वीर विक्रमाजित
वोलि राजा। से राजा महाप्रतापी। से कटकर अनेक महिमा।
घरे घरे सुवर्ण कलस वसान्ति। धवलमये पुर, अति सुन्दर।
सुवर्ण कलस ऊपरे नेत पताका उडान्ति। चउराशि हाट वसान्ति।
मेढ, मण्डप, अटलि, देउल, जगती, कूप, पुष्करिणी अति अल्प
लोके वसान्ति। हस्तिकर घण्टा रव, घोडाकर खिरीसिरारव
पादान्तिकर मुख राव। चतुरंग वल, नवकोटि भण्डार। अनेक
राजा माने से राजाकु खटन्ति।"

## भुवनेश्वर शिलालिपि (१३ शताब्दी)

"स्वस्त श्री वीरनरनार सीघ देवश प्रव्रघमाने वीजे राजे सम्वत ११ श्राहि कात्त्रीक क्रीष्ण ७ रबीवारे श्री कीत्तिवास खेत्र सीधेश्वर मठर वडनरसीघ देवकर आश कामार्थ पूर्वके वाघमरा वारवाटी भूमि एकादश रूद्र भाषा देवा भूमि समघे तपराज माहामुनी। दुग्गा भट आचार्य के वधा कला। ए माढ सत देढ १५० उत्रेश्वर नाएककर तह घेतल्ला ए माढ दश धान्य पौटी त्रि सेक तपराज माहामुनी। ए दुइ धान्य सुना दुग्गा भट्टे उत्रेश्वर नाएकके देइ अक कला॥"

१३वी शताब्दी के इस शिलालेख की भाषा से सोमनाथ व्रतकथा की भाषा अधिक उन्नत तथा विकसित है।

सारला दास के वाद ओडिया गद्य साहित्य की भाषा के नमूने के लिये इन उद्धृतांशो को ग्रहण किया जा सकता है।

**मार्कण्डदास**—महाकवि सारलादास के बाद ओडिया साहित्य में मार्कण्डदास जी की मधुर तान सुनाई पडती है। ओडिशा में मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र तथा लीला-पुरुष श्री कृष्णचन्द्र का चरित प्राय प्रत्येक कवि की कविता का विषय रहा है। आदि महाकवि के वाद मार्कण्ड दास ने विष्णु के अवतारी श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्णचन्द्र दोनो के विषय में रचनाएँ की हैं।

उनके द्वारा रचित "केशव कोइली" उत्कल के गाँव गाँव में समादृत है। वसन्तागमन के समय कोयल अपने मधुर कू-कू कूजन से अपूर्व आनन्द की सृष्टि करती है। नरनारियो के हृदय

को कम से कम सौ पचास वर्ष लग ही जाते हैं। इस दृष्टि से अनुमान किया जाता है कि महापुरुष जगन्नाथ दास ने ३० वर्ष की उम्र में ही "अर्थ कोइली" की रचना की थी। तब "केशव कोइली" की रचना अवश्य ही सन् १४२२ में हुई होगी।

अर्जुनदास—ये प्रसिद्ध महाकाव्य "रामविभा" के रचयिता हैं। इनका जन्म सन् १४२०-१४३० के मध्य में किसी समय हुआ था। अनुमान है कि इस समय के जितने छन्दवद्ध काव्य हैं, उनमें रामविभा प्राचीन है। अर्जुनदास के परवर्ती कवि नरसिंह सेण, देवदुर्लभ दास और वृन्दावन दास आदि अनेक कवियो ने अपने काव्यो के कई छन्दो को "रामविभा" छन्द के अनुसार गाने का निर्देश किया है। अत यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि उनके समय तक उत्कल में रामविभा काफी प्रसिद्ध और जनप्रिय हो चुका था। इनमें ऐसी कई कयाओ का उल्लेख है जिसके मूल गीत आज तक अप्राप्त हैं। इसमे 'मढिआल, आम्मेवन, मेहु, कानन्त, प्रतन्त, आदि कई प्राचीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं। परवर्ती कवियो की रचनाओ में धीरे-धीरे ये शब्द लुप्त हो गये हैं।

अर्जुन दास का कहना है कि श्री जगन्नाथ अवतारी थे। उनका मत है कि उन्होने श्री रामचन्द्र के रूप में अवतार ग्रहण किया था। काव्य के प्रथम छन्द में उन्होने श्री जगन्नाथ जी की निम्न स्तुति की है—

अवनोछलेण जगन्नाथ होए जात।
दशरथ नृपतिर होए चारि पुत्र॥

काव्य में वात्सल्य, करुण, वीर आदि कई रसो का समावेश हुआ है किंतु उसमें शृंगार रस की ही प्रधानता है। उदाहरणार्थ कुछ अश उद्धृत किये जा रहे हैं—

**कौशल्या जी का कारुण्य**

किस कहिलु वावू रघुमणि। मुत कातर हेउअछि शुणि।
तोर एका पलके देह लागि। क्षणे छाडिले मोर निद्रा भागि।
तु ये मृगया जाइथाउ वन। अधवाटरे थाए मोर मन।
मुँहि केमन्ते तोते देबि छाडि। मोर शिरे आकाश पड़ु माडि।

**श्री रामरूप वर्णन**

नील जलधर कान्ति। रुचिर शरीर भान्ति।
नयन कमल फुल। रूपे अतुल्य ये।
पिन्धिण पीत दुकूल। मउलि माधवी चूल
कटकरे परबेश। मदन वेश ये।
सगरे सानुज वाल, बामे बान्धे बीरबर।
शरीर स्फटिक वर्ण नील वसन ये।

**दामोदरदास**—ये कपिलेन्द्र देव के समसामयिक तथा "रसकुल्या चौतिशा" नामक प्रसिद्ध काव्य के रचयिता है। इस चौतिशा मे श्रीकृष्ण के लिए श्री राधा का नवानुराग, उच्चाट, उद्वेग और दूती के द्वारा दोनो के मिलन आदि का वर्णन है। दामोदर कवि ने श्री राधा के नवानुराग को सुललित और परिमार्जित भाषा द्वारा एक दक्ष चित्रकार की भांति चित्रित किया है। चौतिशा की भाषा से यह अच्छी तरह क्रमानुसार प्रकट हो जाता है कि ओडिया भाषा किस प्रकार शनै शनै कमनीय रूप धारण कर रही थी। इस रचना मे रसो का आधिक्य है, इसीलिए कवि ने इसे रसकुल्या चौतिशा नाम दिया है।

इसमे प्रयुक्त वृत्त कवि की अपनी सृष्टि है जो ओडियासाहित्य के लिए सर्वथा अभिनव प्रयोग है। बाद के कवियो ने इस रचना का अनुसरण किया है और आधुनिक युग में भी कवि इस जनप्रिय वाणी को अपनाते चले आ रहे हैं। रसकुल्या चौतिशा के नामानुसार ही इस वृत्त का भी नामकरण हुआ है।

इसके पूर्व वच्छादास के कलसा वृत्त के विषय मे कहा जा चुका है। ओडिया सगीत मे मूर्च्छनामय गीत रचना के लिये ही भाषा के श्रेष्ठ कवियो ने कलसा तथा रसकुल्या जैसे वृत्तो का आविष्कार किया है। अपनी सगीतात्मक विशिष्टता के कारण ओडिया के ये वृत्त स्वभावत स्वत स्फूर्त एव अभिव्यजक हैं।

परवर्ती ओडिआ का मधुर साहित्य इन वाणियों के उद्भावको का चिरऋणी है।

रसकुल्या की निम्नलिखित पक्तियाँ द्रष्टव्य है —

चल सहचरी ! चान्द चहट चउवर्ग दानी नीप निकट
चचलापतिक पाशे जणाइ चाण्डे घेनिआ पहण्ड मणाइ।
चतुरानन जा दास गो
चन्द्रशेखर पलेक न टलइ चाहिं चक्रधर वेश गो।

कई समालोचको का मत है कि चैतन्यदेव के आगमन के पूर्व राधाकृष्ण की प्रेमसबधी कविताएँ नही लिखी गई थी। किंतु कवि दामोदर की चौतिशा इस धारणा को निर्मूल सिद्ध करने मे पर्य्याप्त है।

**नीलाम्बरदास**—दामोदर दास की तरह ये भी कपिलेन्द्र देव के समसामयिक हैं। ये जैमिनी भारत, पद्मपुराण, रुद्रस्तुति तथा देउल तोला के रचियता है। इन्होने जैमिनी भारत तथा पद्मपुराण में कई उपाख्यान अपनी कल्पना से और कई उत्कल की परम्परा से लेकर लिखे हैं। उनकी रचनाओ की भाषा सरल, तरल तथा सावलील है। इन्होने केवल श्रीकृष्ण लीला गान ही किया है। इनकी रचनाओं में श्री राधा-कृष्ण की युगल रस-माधुरी का भरपूर चित्रण है।

वकिम चाहाणी तार अजन नयन
दुइ पाख जने देखि होइबे उच्छन्न।

एते बोलि अलेख मायाकु जात कला
से माया जात होइ कल्प लता धइला।
प्रथमे आकारेक ये धइले निराकार
निराकार तहुँ आकार धइला वेदवर।
ब्रह्माकर तहुँ ये आवर सृष्टि माने
तहुँ आकार रूपे होइले लोक रक्षापाल गणे।
एमन्त भावे अरूप रूप प्रकाशिला
से रूपरे आसि अलेख गुपते लीला कला।

**विष्णु गर्भ**

रख रख बोलन्ते एक ज्योति प्रभा मण्डल
प्रलय जलरे आसि होइला मते स्थल।
येउँ रूपे कइवर्त्त जलरे मीन धरे
से ज्योति प्रभा कला मोते सेहि परकारे।
से ज्योति प्रभा हेला येसने महाजाल
छाणि करि मते नेइ लगाइला कूल।
देखि आचम्बित जे होइलि मनर
मोते लागिला जेसन स्वप्नर आकार
स्वप्ने देखि जेह्णे अदभूत कर्ममान
चेति वसिले जेसन नुहइ परमाण।

चैतन्य दास के मतानुसार विष्णुगर्भ में समा जाना ही काल और माया के प्रभाव से पूर्ण मुक्ति पाना है। परवर्ती युग में महिमा गोसाईं ने अलेख तत्त्व को ग्रहण कर महिमा धर्म का प्रचार किया है। पर महिमा धर्मावलम्बी चैतन्य दास उनके सृष्टि तत्त्व को न मानकर हिन्दू पुराणो के सृष्टितत्त्व को मानते हैं। यह एक ज्वलत दृष्टात है कि काल के प्रभाव में पडकर अलेख पन्थी हिन्दूपुराणाश्रयी हो गये थे।

चैतन्य दास प्रणीत "निर्गुण माहात्म्य" उनके धर्ममत और प्रतिभा दोनो का परिचायक है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि बुद्ध ही अलेख (परम ब्रह्म) के अवतार हैं। अन्य अवतारो ने अपनी करनी के लिए प्रायश्चित्त किया है पर बुद्ध नित्य, शुद्ध और पूर्ण थे। विष्णुगर्भ पुराण तथा निर्गुण माहात्म्य पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महायान धर्ममत तथा वैष्णव धर्म मतो में समन्वय स्थापन करने के लिए साधक चैतन्य दास ने लेखनी उठाई थी। शायद उसके पहले बौद्ध धर्मावलम्बी और बाद में हिन्दू वैष्णव धर्म की ओर झुकने वाले अनेक लोगो ने चैतन्य दास द्वारा प्रतिपादित तत्त्व के अनुसार ही अपनी अपनी धर्म धारणा को नियत्रित किया था। उन लोगो के लिये इसी प्रकार के ग्रन्थ की आवश्यकता थी। आज तक निराकारवादी महिमा धर्मियो के बीच

**वालिगांदास**—ये भी एक सिद्ध बौद्ध योगी थे। इन्होने 'आगत भविष्य" के नाम से एक पुस्तिका लिखी हैं जिसमें भविष्य में घटनेवाली घटनाओ को रहस्यवादी ढग से लिखा गया है। भाषा सरल तथा बोधगम्य है।

## पंच सखा या पच महापुरुष

बलरामदास, जगन्नाथदास, अच्युतानन्द दास, यशोवन्त दास तथा अनतदास।

उत्कल में प्रतापरुद्र देव के राज्यकाल मे वैष्णव धर्म का अभ्युदय हुआ था। प्रताप रुद्रदेव सूर्यवशी राजा थे। उनका राजकाल सन् १४९५ से १५४० ई० तक था। उन्ही के समय में श्री चैतन्य देव का उत्कल में शुभागमन हुआ था जिन्होने २५ वर्षो तक पुरुषोत्तम क्षेत्र मे निवास किया था। उन्ही के कारण उत्कल में शुद्धा-भक्ति की धारा पनपी थी। कहा जाता है कि उत्कल में पहले से ही बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रभाव था और उसी से प्रभाव ग्रहण कर कवि चैतन्यदास ने विष्णुगर्भ पुराण तथा निर्गुण माहात्म्य की रचना की थी। बौद्धधर्म की वज्रयान शाखा का प्रभाव भी उत्कल में था। इसलिए शुद्ध भक्ति की धारा के अतिरिक्त योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा धारा भी प्रवाहित हुई। गोरख, मल्लिका, वीरसिंह और वालिगांदास आदि इसी योगमिश्रा या ज्ञान-मिश्रा भक्ति-धारा से प्रभावित थे। बलरामदास, जगन्नाथदास, अच्युतानन्द दास, यशोवन्तदास और अनन्तदास मे प्रत्येक सिद्ध योगी तथा कवि थे। साधनपन्थ तथा गुरुमन्त्र में थोडा बहुत प्रभेद होने पर भी ये सब योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति धारा के सुदक्ष परिचालक थे। इस प्रकार इन्होने बौद्धगान ओ दूहा युग से लेकर पचदश शताब्दी तक उत्कल में प्रचलित जातीय परम्परा पर पूर्ण प्रकाश डाला है।

किन्तु ये उत्कलीय शुद्धाभक्तिधारा के उपासक नही थे। इससे उन्हे कोई विरोध था। ये योगनिष्ठ साधक थे। इनमें और योगमिश्रा तथा ज्ञानमिश्रा भक्ति साधना में इतना साम्य था कि वे उत्कल में पचशाखा (एक महावृक्ष के पाँच अग) के रूप में विख्यात हो गये, यह मानकर कि शुद्धाभक्ति में योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति की परिणति एक परम गति ही है, उन्होने श्री चैतन्य को गुरुरूप में ग्रहण किया। इसीलिए श्री चैतन्यदेव ने उनकी साधना तथा सिद्धि को खुले रूप में स्वीकार किया। वे चैतन्यदेव के पचशाखा के रूप मे विख्यात हो गये। इस पचशाखा के धर्म मत से उस समय की तान्त्रिक ब्राह्मण मडली ऊब गई थी। उन लोगो ने राजा के सम्मुख जाकर पच सखा के योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा धर्म की निन्दा की और उनकी सिद्धि के प्रति उनके मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया। तब प्रतापरुद्रदेव ने अनेक बार उनकी कठिन परीक्षा ली और उन्हे योग्य पाकर वे उनकी सिद्धि के प्रति संदेह-रहित हो गये। यही नही, वे उन्हें गुरु के समान मानकर सम्मान देने लगे। उन्ही पच सखाओ के समय से आज तक उत्कल में शुद्धाभक्ति के साथ ही साथ योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्तिधारा अखण्ड रूप से प्रवाहित हो रही है। उत्कल के वैष्णव धर्मावलम्वी या तो शुद्धाभक्ति पथ के आश्रयी या योगमिश्रा तथा ज्ञानमिश्रा पन्थ के आश्रयी हैं। ब्रिटिश युग के पूर्व ओडिया का धार्मिक साहित्य इसी के प्रभावानुसार दो भागो मे बँट गया था।

पुरुषोत्तमे येते गति । से कथा छाडि अन्य रीति ।
हरे राम कृष्ण छाडिले । हरे कृष्ण राम भाविले ।
युगल गायत्री छाडिले । काम गायत्री आश्रे कले ।
हरि मन्दिर त्याग कले । कवि तिलक आराविले ।
छाडि जगन्नाथ मूरति । मदन मोहने पीरति ।
कलप तरु आश्रे छाडि । कदम्ब तले थान्ति पडि ।

उपरोक्त विषयो को दृष्टि में रखकर हमे पचसखा साहित्य तथा उसमे स्थित धर्म भाव के विषय में विचार करना पडेगा। पचसखा युग केवल उत्कल में ही नही, उत्तर भारत मे भी नूतन धर्मोदय का युग है। इस विषय में कवीर, नानक, सूरदास और तुलसीदास का पुष्कल धार्मिक साहित्य स्मरण योग्य है।

**वलरामदास**—ये पचसखाओ में सवसे ज्येष्ठ थे। उनका जन्म सन् १४७२ ई० मे हुआ था। उनके पिता का नाम सोमनाथ महापात्र तथा माता का नाम जम्वुवती था। सोमनाथ उत्कल के गजपति महाराज के अन्यतम मत्री थे।

वलरामदास ने योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति साधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी। चैतन्य-देव के उत्कल पहुँचने के पूर्व वलराम कुछ प्रसिद्धि पा चुके थे। चैतन्य के आगमन के वाद उनके निर्देशानुसार उन्होने अन्यतम महापुरुष जगन्नाथ दास को दीक्षा प्रदान की थी। वलरामदास की भक्ति-विह्वलता देखकर श्री चैतन्य देव उन्हें मत्त वलराम दास कहते थे। उत्कल के गजपति प्रतापरुद्र देव के राज-दरवार में उन्हें कई परीक्षाओ में उत्तीर्ण होने के लिए अपनी सिद्धि तथा अलौकिक शक्ति का प्रमाण देना पडा था।

वलरामदास ने वहुत सी कविताएँ की तथा ग्रन्थ लिखे हे। यथा—जगमोहन रामायण, श्रीमद्भगवद् गीता, वेदान्त सार, वट अवकाश, भाव समुद्र, गुप्तगीता, व्रह्माड भूगोल, बेढा परिक्रमा, कमल लोचन चौतिशा और कान्त कोइली।

जगमोहन रामायण एक श्रेष्ठ कृति है। यह सारला महाभारत के सदृश दाण्डिवृत्त मे लिखा गया है। अर्थात्—दो दो प क्तियो मे एक पद होते हुए भी उनमें वर्ण-सख्या समान नही है। पहले कहा जा चुका है कि बौद्धगान ओ दूहा से ही धर्म साहित्य रचना के लिए इस वृत्त का प्रयोग चला आ रहा है। अनुमान है कि सस्कृत के दण्डक वृत्त से दाण्डितवृत्त शब्द निकला है।

जगमोहन रामायण सस्कृत के वाल्मीकी रामायण का अनुवाद नही है। यह हिंदी के तुलसी रामायण तथा तामिल के कम्व रामायण के समान एक स्वतत्र रचना है। विषय वस्तु अवश्य ही मूल रामायण से गृहीत है, फिर भी उसकी वहुत सी कथाओ को कवि ने अपनी कल्पना से वढाया घटाया है। जगमोहन रामायण-उत्कलीय जीवन के साथ इस प्रकार से सबद्ध है मानो वलरामदास उसमें ओडिया जाति के हृदय की वात लिपिवद्ध कर गये हो। उत्कल में यह अभी तक अपने ढग का बेजोड रामायण है। परवर्ती युग में कृष्णमोहन पटनायक आदि कई कवियो ने मूल रामायण

है। दानवी शक्ति से और आशाएँ क्या की जा सकती हैं? अगर सभी शुभ चिन्तन करें तो दैवी और आसुरी शक्ति का भेद ही न रहे। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि दैवी शक्ति जैसी है वैसी दानवी शक्ति भी है। शक्ति एक होने पर भी प्रयोग और प्रणाली में अन्तर है। दैवी शक्ति में सत्य है, शिव है, सुन्दर है परन्तु आसुरी शक्ति में इससे उल्टा है। उसमें ध्वस की प्रधानता है, निर्माण की चिन्ताशक्ति वह नही है। निर्माण का चिन्तन ही ईश्वरीय चिन्तन है।

भारतीय साहित्य की मौलिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने पर तमाम विश्व दाँतो तले अँगुली दवाता है। यह जग मानी वात है कि ऋग्वेद की रचना दुनिया में सर्वप्रथम रचना है। यह रचना किसने की, यह किसी को भी मालूम नही। लेकिन दूरदर्शी मनीषियो ने यह अपने दिव्य ज्ञान से मालूम कर लिया है कि यह रचना मानवी नही, वल्कि ईश्वरी है—ईश्वर के मुख से निकली है। इसीलिए आर्यों ने ऋग्, यजु और साम को ईश्वरी वाणी माना है। इस ज्ञान के प्रकाश के वाद से ही सत्य का आविर्भाव होता है। यही सत्य परम ब्रह्म परमात्मा है। इस सत्य की व्याख्या और ताकत की विवेचना जितनी भारतीय साहित्य में की गई है, शायद ही कही की गई हो। इसी सत्य से वेद-ज्ञान-का प्रकाश जग-मन में फैला है। वेदो के ज्ञान-विज्ञान की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्री सम्पूर्णानन्द जी ने लिखा है—वेदो में हमारे समाज की वहुमूल्य सास्कृतिक निधि मौजूद है। भगवद्गीता वडा ही उत्तम ग्रन्थ है। परन्तु इन दो मन्त्रो की, जो यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में आते हैं, व्याख्या के सिवा और क्या है? ईशावास्यमिद सर्वं-यत्किंचित् तेन त्यक्तेन भुजीथा मा गृध कस्यस्विद् धनम्। कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा। एव त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे।"

आपका मत है कि सारी भगवद्गीता का सार इन्ही दो श्लोको में है तो फिर चार वेदो के विशाल ग्रन्थ की निधि की कल्पना की जा सकती है। उसी गीता की इज्जत सारे ससार में है और उसे सर्वोत्तम माना गया है।

सारे सस्कृत वाङ्मय से पता चलता है कि भारत कहाँ था और दुनिया कहाँ थी। वेद (ज्ञान) का प्रकाश फैला, उपनिषद् तथा दर्शन का प्रभाव पडा। उस समय दुनिया कहाँ थी, आज हम कहाँ हैं और जग कहाँ है?

पाश्चात्य विद्वानो ने वेदो का काल चार हजार वर्ष पूर्व माना है। इसी को लोकमान्य वाल गगाधर तिलक ने १० हजार वर्ष माना है। डा० सम्पूर्णानन्द ने इनको भी शका से परे नही रखा है। कारण सारा वाग्वितण्डा अनुमान के वल पर है। पाश्चात्य विद्वानो ने सारा विषय अनुमान के वल पर तय किया है। उन लोगो ने सत्य की खोज नही की। जो पाश्चात्य लेखको ने लिखा है उसे सत्य मान लिया गया।

भारतीय सस्कृत वाङ्मय और खासकर वढा तत्कालीन चिन्तन, उनका ज्ञान, उनकी मगलमयी लोक-कल्याण कामनाएँ है कि सभी आनन्द से रहें। यह सुन्दर आशीर्वाद केवल एक ही व्यक्ति या जाति-विशेष के लिए नही है, उसमें समग्र विश्व शामिल है। इस कामना में एक परिवार-सा हृदय काम करता है। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि जिस हिरण्यगर्भ से

ग्रन्थ है। वलराम दास श्री गुण्डिचा उत्सव मे भाव-विभोर होकर अशुचि शरीर से ही श्री जगन्नाथ जी के रथ पर चढ गये थे। इससे पण्डो तथा गजपति महाराज के अनुचरो ने उन्हे धक्का देकर निकाला था। हजार-हजार व्यक्तियो के वीच अपमानित तथा विताडित होकर वलरामदास ने समुद्र के किनारे वालू में रथ वनाकर योग-वल से तीनो मूर्तियो की स्थापना की थी। फलस्वरूप श्री गुण्डिचा यात्रा वन्द हो गई। वाद में गजपति महाराज ने श्री जगन्नाथ जी के स्वप्नादेश से वलरामदास के अपमानकारियो को दण्ड दिया था और स्वय जाकर वलरामदास से क्षमा याचना की थी। इसके अनतर रथ चलने लगा था। अपमान तथा व्यथित हृदय से वलराम दास जी ने श्री जगन्नाथ जी को जो जो करुणावाणी सुनाई थी वह ७४८ पदो मे विशिष्ट भाव-समुद्र नामक ग्रन्थ के रूप मे प्रकट हुई है। नीचे नमूने के तौर पर कुछ पद उद्धृत किये गये हैं —

तिनि पुर मध्ये तुहि विकाउ
सवुरि दु ख वेदनाहि फेउ।
नाथ तू सवुरि अमूल्य गण्ठि।
कोटि युग रे तु न पडु फिटि
हरिहो
भक्त जनकर कण्ठर हार
वलिआ दास चिन्ते निरन्तर ॥३५३॥
नीलकन्दरे तो प्रसन्न मुख
दर्शने खण्डइ सकल दु ख
नाथ मुं आन न जाणइ तोरे
तु एका दया करियिवु मोरे।
हरिहो
तोह पाद पद्मे नित्य मो आश
एते मागुछि वलराम दास ॥३५४॥
हरिहो
मोहर पाप सवु दूर जाउ
तोहर मन जे मो तहिँ थाउ
नाथ तू ए कथा आन नकर
तोहर वाना शरण पजर
हरिहो
बौद्ध कलकि नाना रूप हेउ
बलरामकु पादरे खटाउ ॥३५५॥
हरिहो

गीतानाम चन्द्रिका आदि कई छोटे-बडे ग्रन्थो की रचना की है। ये सभी उत्कल के जनप्रिय ग्रन्थो मे गिने जाते हैं।

महापुरुष जगन्नाथ का ओडिआ भागवत मूल सस्कृत भागवत का आक्षरिक अनुवाद नही है। भागवत पाठको के लिये मनोरजनार्थ उन्होने विष्णु, पद्म, ब्रह्मवैवर्तादि पुराणो के विशेष चरितो के उसी प्रकार नाम देकर मूल भागवत के चरितो के स्थान पर अनुवाद करके लिखा है। इस प्रकार वहुत अशो में ओडिआ भागवत सस्कृत भागवत से भिन्न है और लोगो के मन को सुख पहुँचाता है। ओडिआ की जिस आदि प्रतिमिति को सर्वप्रथम दामोदरदास ने "रपकुल्या चौतिशा" की रचना में किया था वह जगन्नाथ दास के हाथो मँजकर पूर्ण परिपुष्ट हो गयी। परवर्ती काल में कविसम्राट् उपेन्द्र भज ने 'दिव्य अदिव्य पद रे मानस मोहिव' (दिव्यादिव्य पदो द्वारा मन को मोह लेने वाली भाषा) कहकर उनके काव्य भाषा के जो आदर्श कहे हैं उन सभी को जगन्नाथदास ने ओडिआ भागवत मे चरितार्थ किया था। उत्तर भारत में सन्त तुलसीदास कृत रामचरित-मानस जिस तरह जनप्रिय है उसी तरह या उससे भी अधिक उत्कल में जगन्नाथ कृत भागवत है। उत्कल के देहातो में घर घर 'भागवत गादि' पूजित है। उत्कल के धार्मिको के लिये "गादिगृह" ही आलोचना पीठ-पाठचक्र या आलोचनाचक्र का स्थान है। पहले ओडिआ भागवत के कई अश प्राथमिक शिक्षा के अपरिहार्य अग के रूप में गृहीत थे। अभी तक मृत्युशय्या के पास भागवत पाठ मुक्ति-पथ की पहली सीढी माना जाता है। इस भागवत में प्रयुक्त गुज्जरीवृत्त, नवाक्षरी भागवत वृत्त के नाम से प्रसिद्ध है। ओडिआ जातीय जीवन पर जगन्नाथ दास का अपूर्व प्रभाव है।

महापुरुष जगन्नाथदास योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति साधना के आश्रयी थे। पाषण्ड-दलन, तुलाभिणा आदि छोटी-छोटी पुस्तकें उसी तत्त्व का प्रचार करती हैं। ये जनप्रिय ग्रन्थ हैं।

**महापुरुष अच्युतानन्ददास**—श्री अच्युतानन्द दास का जन्म सन् १५०३ ई० मे कटक जिलातर्गत नेमाल के निकट तिलकणा ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम दीनवन्धु खुण्टिया तथा माता का नाम पद्मावती था। ग्यारह वर्ष की उम्र में ही उन्हें आश्चर्यजनक रूप से ब्रह्मोपलब्धि हुई थी तथा गीता, भागवत, मत्र, यत्र, तत्र आदि के तथ्य उनके समक्ष अपने आप प्रकाशित हो गये थे। उन्होने नित्यानन्द महाप्रभु से दीक्षा ली थी तथा अपने चेलो के साथ ढोल मजिरा बजा-बजाकर भारत के सारे तीर्थों का परिभ्रमण किया था। पूर्वोक्त महापुरुषो के समान ये भी सिद्ध महायोगी थे और गगा से लेकर गोदावरी तक के ग्वाला वश के दीक्षागुरु थे। आज तक उनके वशधर इस पद के अधिकारी हैं। कृष्ण के प्रति उनकी अगाध भक्ति ने ही उन्हें गोपाल (ग्वाला) वश के प्रति आकृष्ट किया था। अन्यान्य सखाओ के समान वे शून्य भजन में विश्वास रखते थे और पिण्ड ब्रह्माण्ड के शीर्ष स्थान अर्थात् कपोल को परमात्मा का स्थान मानते थे।

उन्होने छोटे बडे सब मिलाकर एक लाख धर्म ग्रन्थ लिखे थे। उनमें ३६ सहिता, ७८ गीता, २७ वशानुचरित के साथ हरिवश, १६ उपवश, १०० मालिका और बहुत सी कोइली, चउतिशा, टीका, विलास, उगाल, गुज्जरी, निर्णय और भजन आदि ह।

शिशु की उपाधि प्रदान की थी। उसी दिन से वे लोकमुख से भी शिशु अनन्त के नाम से जाने जाते हैं। अनन्तदास की अवधूत कथाओ से यह स्पष्ट हो चुका है कि पहले सन्त लोग मिट्टी को सोना, सोना को मिट्टी तथा कटे अग वाले व्यक्ति को अग प्रदान कर सकते थे। ऐसी सत्य कहानियो का नाम चौरागी कहानी है। इसके द्वारा उस काल के योग-वल का प्रभाव सूचित होता है। अनन्त के कई भजन, चउतिशा तथा गल्प उत्कल में प्रचलित हैं। अन्यान्य रचनाओ में उदय वाखर, छत वाखर तथा टीका वाखर एव आगत चुम्वक मालिका प्रधान हैं। सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ "हेतूदय भागवत" है। इसमे उनके द्वारा प्रतिपादित मुख्य मुख्य दार्शनिक तत्त्वो का समावेश हुआ है (अन्यान्य महापुरुषो के समान इनके ग्रन्थों में भी योग, तन्त्र, वेदान्त आदि तथ्यो का वर्णन मिलता है। हेतूदय भागवत मे उन्होने लिखा है कि विष्णु का श्रेष्ठ रूप ही मनुष्य के अभ्यन्तर में विद्यमान है। श्री जगन्नाथ वुद्ध के अतिरिक्त और कोई नही है। गोपी-प्रेम ही मुक्ति-लाभ का एक-मात्र उपाय है और योग-साधना ही प्रेम की नदी है।

उत्कल में परम्परागत सन्यास धर्म, जैनधर्म तथा वौद्ध धर्म के प्रभाव से योग, शुद्धाभक्ति मार्ग तथा वैष्णव धर्म से आगत ऐकान्तिक भक्ति का सम्मिश्रण हुआ था। पचसखा उसी सन्यास धर्म के समर्थ प्रतिनिधि हैं। उत्कल मे उनकी परम्परा तथा उनके रचित ग्रन्थो का प्रभाव अभी तक है। वे श्री जगन्नाथ जी को परम अवतारी तथा राम-कृष्ण आदि को अवतार मानते थे। उनका विश्वास है कि श्री जगन्नाथ सोलहो कलाओ से सम्पन्न हैं और केवल उनकी एक कला से सम्पन्न नन्द-वाल हैं। यह शास्त्र-विरुद्ध वात नही है। क्योकि महाभारत में अनुगीता कथन के समय श्री कृष्ण ने स्वय कहा है कि योगावेश के द्वारा उन्होने परम ब्रह्म की पूर्ण कलाओ को प्राप्त करके श्रीमद्भगवद्गीता की चर्चा की है। किन्तु अनुगीता-कथन के समय वे कलाएँ उनके पास नही थी। भागवत दशम स्कन्ध की द्वारकालीला मे यह स्पष्ट लिखा है कि ब्राह्मण की मृत सन्तानो को जिलाने के लिए श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर, महाव्योम मे स्थित, परमब्रह्म धाम को गये थे तथा परमब्रह्म के आदेश से मर्त्यलीला ग्रहण की थी। इसलिये पच सखाओ के साहित्य में "मानव कृष्ण" हैं। नित्य कृष्ण, मर्त्य ब्रजधाम की रास लीला, गोलोक धाम की नित्यरास लीला के विषय मे पच सखाओ ने जो कुछ लिखा है उसमें शास्त्रीय आधार है। श्री जगन्नाथ वही नित्यकृष्ण या नित्यराम हैं। पद्मपुराण में भी पुरुषोत्तम क्षेत्र को दशावतार क्षेत्र (अर्थात् जिनसे दश अवतार सभूत हैं उन्ही दशावतारी श्री जगन्नाथ जी का क्षेत्र) के रूप में वर्णित है। पच्च सखाओं के परवर्त्ती कवि देवदुर्लभ दास तथा दीनकृष्णदास भी इसी मत के अनुगामी थे।

**विप्रनारायणदास**—ये पचसखाओ के समसामयिक थे। इनका हरिवश सस्कृत हरिवश का अविकल अनुवाद नही है। कहा जाता है कि अच्युतानद को इस हरिवश के पढने का अवसर नही मिला अतएव उन्होने स्वय हरिवश की रचना की थी।

**राय रामानन्द**—ये जाति के 'करण' तथा शुद्धाभक्ति मार्ग के विशिष्ट प्रतिनिधि थे। श्री चैतन्यचरितामृत के महाप्रभु और राय का सवाद प्रसिद्ध है। रामानन्द द्वारा सस्कृत मे लिखित श्री जगन्नाथ वल्लभ नाटक प्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थ है। इनकी कृष्ण-लीला-सवधी व्रजवोली की पदा-

ने अपने प्रसिद्ध काव्य लावण्यवती को इसी उपाभिलाप छन्द मे लिखा है। नीचे दिये गये उद्धृतांश तुलनीय हे —

पलक तेजिण उठिला सुमुखी सपन सकेत पाइण
आहा प्राणनाथ केणे गलु वोलि उच्च स्वरे करे कारुण्य
दइव, देखाइ निधि हरिनेलु
शिशु कुमारी मुं किछि न जाणइँ किपाइँ मोते एहा कलु

(उपाभिलाप)

चेति चतुरी चाहिंला निशि नाशे पाशे नाहिं दिव्य तरुण
मारि हृदे हान नाथ नाथ वोलि अति उच्चे कला कारुण्य
खोजे अधीरे। चेतना हत से विधिरे
शेज लेउटाइ कवरी फिटाई कर भरि कुच सन्धिरे।

(लावण्यवती)

शिशुशकर की निम्न पक्तियाँ जयदेव के गीत गोविन्द के समान हें—

ईषित आज्ञा रे जार पाशे आसि परिचार अवनी शयन विके पाण्डुर गण्ड
येबे अछि अनुराग भिड मोरे भुज युग अपराध अनुरूपे करह दड
करुरुह दशन क्षत, येणे रोष छाड हुए हरष जात ॥

× × × × ×

ए तोर सन्देश पाइ विलम्व मुं करि नाहिं विफल मउने कि के हेठ वदन
तु मोर देह जीवन तु मोर भूषण मान तु मोर इन्द्रि विषय मनसदन
तु मोहर मुकुट शिरे। तु मोर सुकृत फल सुख सागरे ॥
तु मोर चारुचन्दन तु मोर शिर वन्दन तु मोर मदन जलनिधि तरणी
तु मो गले वनमाल तु मोहर वीर्यवल तु मोर भव विभव सुख सरणी
तु मोहोर सबु रमणी। मुं तोहर परिचार कि के न गणि

(शिशु शकर)

सत्य मेवासि यदि दति मयि कोपिनी देहि खर नयन खर घ्यातम्
घटय भुज वन्धन जनय रदखण्डन येन वा भवति सुखजातम्
त्वमसि मम भूषण त्वमसि मम जीवन० त्वमसि मम भव-जलधिरत्न
भवतु भवतीहमयि सततमनुरोधिनी तत्र मम हृदय मति यत्नम्।

(गीत गोविन्द)

**लक्ष्मण महान्ति**—ये शिशुशकर दास के समसामयिक थे। इन्होने १२ छन्द वाले उर्मिला नामक विशिष्ट छन्द में काव्य रचना की है। काव्य की कथावस्तु भविष्य पुराण से

उदाहरण—

ए महा ग्रीष्म ऋतु वैशाखर शेष
वहिला झजा-पवन कृशानु वताश ।
पाचिले आम्व पणस तातिले सलिल
जलिला शरीर मो टलिला कलेवर ॥०॥
मु गो मलि मलि मलि मलि
कान्त मो उपेक्षि गले कउँ दोष कलि ।

× × ×

रिषभ सम्पूर्ण सखि आषाढर अते
श्रावण प्रवेश गो जलद ऋतु होन्ते ।
गाजिले गगने मेहु साजिले वरषा ।
कि जाणि निविड घोर अन्धकार निशा ॥
घडघडि उपरे पडइ चड चडि ।
चडचडि उपरे निर्घात पडे माडि,
विजुलि झमके गो चमकि उठे हिया
केसने वचिवि मोर कोले नाहिं नाहा ॥

(रहस्य मजरी)

**द्वितीय बलरामदास**—द्वितीय बलरामदास मुकुन्द देव के (१५५१-१५५९) शासन-काल में वर्तमान थे। उन्होंने कृष्णलीला, रामलीला और गुप्त गीता लिखा है। ये भी पचसखा मत के अनुयायी थे।

**दीनबन्धुदास**—दीनबन्धु दास १६वी शताब्दी के अन्त के कवि हैं। "छान्द चारु प्रभा" तथा " राधाकृष्ण-लीलामृत" उनकी प्रधान कृतियाँ हैं। ये शुद्धाभक्ति मार्गी थे। इनकी प्रत्येक रचना भक्ति तथा निष्ठा से लबालब है। ये उच्च कोटि के वैष्णव सन्त थे।

**दामोदर चम्पतिराय**—श्री दामोदर चम्पतिराय रामचन्द्र देव (१५७०-१६०९) के समसामयिक थे। उन्होने ब्रजबोली में श्रीकृष्णचरित लिखा है।

आदि राग—

घन घन गर्जन अम्बर घोर
चउदिगे चमकइ बिजुलि जोर
अहर्निश झाम्पइ मत्त मयोर
धुनि शुणि हियरा कम्पइ मोर
अबहु बिसरि गये नागर भोर

उपस्थित किये गये हे । इसकी कथावस्तु श्रीमद्भागवत और पद्मपुराण से ली गई है। किन्तु जनता के उपभोग के लिये इसे कवि ने ऐसे मधुर छन्दो से भूपित किया है कि इसमें उत्कलीय काव्य कला की पूरी मौलिकता झलकती है । नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

रुक्मिणी रूप वर्णन—

कुटिल कुन्तल नीळ कवरी भार। तहिंकि समान काहिं हेव मयूर।
भ्रमर विलाप करे विपिने याइ, चामरी चामर अधोभागे लुचाइ॥
उपरे मोति जालिका रचिला सेहू, तारागण घोटिला कि नवीन मेहु।
रजिला मीउन्थि सीमन्तिनी रतन, मदन मार्गण मार्ग देखि जेसन॥
तथिर उपरे वाली सिन्दुर रजे, रविकि वन्धन जाणि अन्धार पुजे
ताहार मुखकु कि उपमा भूतल। देखि कलानिधि कला क्षीन मण्डल॥
दर्पण अटइ अति जड कठिण। ताहाकु उपमा किम्पा देव मुखेण।
कमल मुद्रित निशाकालेण हुए। रुक्मिणी मुखमण्डल सर्वदा शोहे॥
अलका वेढण मुख दिशइ शोभा। तहिंकि उपमा किस देवा कि अवा।
सम्पूर्ण चन्द्रमा मुखु कलक काढि। येवे ता गढन्ता विहि मण्डल वेढि॥
से काल चन्द्र मण्डल हेव उपमा। सहजे रुक्मिणी मुख लावण्य सीमा।

परवर्ती शताब्दी मे कवि सम्राट् उपेन्द्र भज की कान्तकाव्यावली में उत्प्रेक्षा तथा उपमा आदि अलकारो की जो वहुलता दिखाई पडती है उस परपरा के स्थापक शिशु शकरदास और रुक्मिणी विवाह के रचयिता कार्तिक दास हे । ओडिया काव्य साहित्य के विकास में कार्तिकदास की कृतियाँ स्तम्भ स्वरूप हे ।

**रामचन्द्र पट्टनायक**—रामचन्द्र पट्टनायक १७वी शताब्दी के प्रथम चरण के कवि हे। "हारावती" उनकी काव्य कृति है। अपनी कृति के निर्वाचन में इन्होने मौलिकता दिखाई है। इन्होने कथावस्तु के लिये न तो पुराणो से सहायता ली है और न नायक-नायिका के चुनाव में समाज के अभिजात वर्ग का आश्रय ही लिया है। उनकी नायिका एक गुडिआनी (मिठाई बनाने वाली) युवती तथा नायक एक साधारण युवक है। रामचन्द्र पट्टनायक ने सबसे पहले परपरित विषय वस्तु का त्याग कर काव्य-रचना की है। उनके काव्य से यह प्रमाणित होता है कि निविड प्रेम समाज के हरएक स्तर के व्यक्तियो में पाया जाता है। केवल अभिजात स्तर के व्यक्तियो का ही इसपर एकतरफा अधिकार नही है। प्रेम व्यापक और सर्वेश्वर है, केवल कुलीनता-मापेक्ष नही ।

**प्रतापराय**—अनुमान है कि सन् १६१० और १६२० ई० के मध्य में ये जीवित थे। इन्होने लोकप्रसिद्ध कथानको अथवा लोककथाओ के आधार पर अपनी काव्यकला प्रदर्शित की है। काव्य की नायिका शशीशेणा के नामानुसार ही काव्य का नामकरण भी हुआ है। नायक अहिमाणिक्य राजकुमार है और शशीशेणा मत्री की कन्या है। बाल्यकाल में पाठशाला में पढते

आकुले वपु खिन कला यहुँ। सहचरी राई वोलइ तहुँ
वसन्त वनिता विकार करि। वोलइ सखि शुण सहचरी।

सरस वसन्ते
हरि विहरन्ति वृन्दावनान्ते॥

युवती जनक सगते नृत्य। विरही जनकु अति दुरन्त
देख सजनि! वसन्त ऋत। विरही केमन्ते धरिवे चित्त

ए लताकु चाहाँ
स्वभावे काम वलिला उत्साहा॥

ललित लवग लता प्रवल। मलय समीर अति कोमल
भ्रमर निकर कोकिल भावे। कुज कुटीरे कल कल रावे

कि राये मदन
आगम कला गोप वृन्दावन

मदन प्रवल मनरे जात। पयु कि वघु विलपइ चित्त
अलिकुल यूथ कुसुम स्फुटे। चुम्वन करि परागेण लुठे

वकुल कलापे
मधुपान करे वसन्त दर्पे॥

**कण्ठदास**—कण्ठदास प्रसिद्ध "छअ पोइ" तथा "नअ पोइ" नामक गीति-पुस्तिकाओ के लेखक है। इनमे राधाकृष्ण का प्रेम वर्णित है। इसकी रचना-शैली रसपूर्ण तथा सरल है। ये १७वी शताव्दी के पूर्वार्ध के कवि है।

**मधुसूदनदास**—'नलचरित' के रचयिता मधुसूदन दास कण्ठदास के समसामयिक थे। भाव और भाषा की दृष्टि से इनका काव्य सरल और सर्वजनबोध्य है। निम्नाकित पक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

भीमराजा उठि बगे पात्र अमनात्य सगे
पाछोटि जान्तेण सिह द्वारे देखिले
श्री पलकु ओल्हाइले चरण तले पडिले
दुहिताकु वेगे राजा तोलि धइले
राजा वड उल्लास होइ
रोम पुलकित चक्षु लोतक वहि॥

**विप्र सदाशिव**—ये १७वी शताब्दी के मध्यभाग में हुए थे। "विचित्र हरिवंश" इनकी जनप्रिय और मधुर छन्दबद्ध रचना है। कंसवध में इसका उपसंहार हुआ है। विप्र शिवदास की "गोपलीला" यात्रा के उद्देश्य से लिखी गई थी अत उसके कथोपकथन कही कही गद्यात्मक हो गये है। ये पंचसखा मतावलंबी हैं। इनकी भाषा सरल तथा कलित है।

**शिशु ईश्वरदास**—शिशु ईश्वरदास विप्र सदाशिव के समकालीन थे। इन्होंने "नलराम-चरित" लिखा है जिसमे नलचरित रामचरित के साथ साथ वर्णित है। इसकी भाषा सर्वबोध्य और सरल है। ये शुद्धाभक्ति मार्ग के पथिक थे।

**महादेवदास**—ये पुराण-लेखक के रूप मे प्रसिद्ध हैं। इनके पिता का नाम लक्ष्मणदास तथा माता का नाम मुक्तादेई था। इन्होंने मार्कण्ड पुराण, विष्णुकेशरी पुराण, पद्मपुराण, कार्तिक पुराण, वैशाख पुराण, माघ पुराण, आषाढ पुराण, द्वादशी माहात्म्य, नीलाद्रि महोदय और इतिहास नामक ग्रन्थ लिखे हैं। इन्होंने संस्कृत पुराणो का ज्यो का त्यो अनुवाद न कर भिन्न भिन्न आख्यायिकाओ को स्वतन्त्र रूप से बदलकर ओडिशा अनुवाद किया है। उत्कल की धर्मपरायण जनता उनकी बहुत ऋणी है।

**मुकुन्ददास**—मुकुन्ददास १७वी शताब्दी के मध्य भाग के कवि हैं। इन्होंने संस्कृत के वैताल-पंचविंशति ग्रन्थ के आधार पर २५ छंदो में ओडिया रचना की है। इसकी भाषा सरल और सहजबोध्य है।

**सिद्धेश्वरदास**—इन्होंने सीता वनवास से लेकर रामायण के अन्त तक के कथाभाग को लेकर 'विचित्र रामायण' नामक काव्य ग्रन्थ लिखा है। यह रचना उच्च कोटि की नही है। ये मुकुन्ददास के समसामयिक थे।

**गोपीनाथदास**—गोपीनाथ दास ने सारला महाभारत के आधार पर "टीका महाभारत" नामक ग्रन्थ लिखा है। यह जनप्रिय है और इसमें सारला महाभारत की सार वस्तुएँ पाई जाती हैं।

**द्वारकादास**—इनका जन्म सन् १६६२ मे हुआ था। इन्होंने परचे गीता, परचे चूडामणि, १३वा स्कन्द भागवत, प्रेमरस-चन्द्रिका तथा शिवपुराण आदि ग्रंथ लिखे हैं। ये पंचसखा के अनुयायी थे। इनकी कृतियो में रहस्यवाद की झलक मिलती है। सन् १७४० ई० में इनकी मृत्यु हुई थी।

**श्रीधरदास**—काल्पनिक कथावस्तु को लेकर इन्होंने कंचनलता नामक एक छन्द-बद्ध काव्य की रचना की है। उनकी कृतियो से मालूम होता है कि वे विद्वान् थे। काव्य के नायक श्रीकृष्ण मानसपुत्र तथा नायिका श्री राधा मानस पुत्री हैं। राधा की आसक्ति का अनुभव कर श्रीकृष्ण ने उन्हे पृथ्वी में राजपरिवार में जन्म लेने के लिये भेज दिया। इस प्रकार राजकुमार

हुई है। अत यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि पुराण के साथ ही साथ छन्दवद्ध रचनाये भी निर्मित होती रही हैं।

चौतिशा, चउपदी आदि खण्डकाव्य सूक्ष्म सगीत के वाहन हैं। वच्छादास, दामोदर दास, कपिलेन्द्र देव सभी मधुर सगीत के आदिम स्रष्टा हैं। रमानन्द ने इसी सगीत या चौपदी रचना की परपरा को आगे वढाया। परवर्ती काल मे कवि धनजय, महाकवि दीनकृष्ण, कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज आदि ने इसी को पुष्ट और विकसित किया।



इनके पिता का नाम मधुसूदन था। घटनाचक्रमे पडकर कुछ समय तक ढेंकानाल में रहे भी, फिर वहाँ से व पुरुषोत्तम क्षेत्र मे रहने लगे थे। इन्होने राजा दिव्यसिह देव की प्रशस्ति-रचना करना अस्वीकार कर दिया था। इसलिये उन्हे पुरी से निकाल दिया गया था। यह बात "दाढ्यंता भक्ति" तथा उनकी अपनी रचना से भी प्रकट होती है।

दीनकृष्ण जी श्री जगन्नाथ के भक्त थे। उन्होने राजदण्ड की तनिक भी परवाह नही की वल्कि राजा को निम्नाकित उत्तर दिया—

दासे वोइले ताहा शुणि। शुण हे नृप चूडामणि।
तुभकु नाहिं मोर डर। मो प्रभु वले वलीथार।
जगत सृष्टि आन हेले। गीत मु आनकु न वोले।

कहा जाता है कि दीनकृष्ण को कुष्ठ हो गया था। किन्तु गरुड स्तम्भ के पास खडे होकर तथा स्वरचित चौतीशा श्री जगन्नाथ जी के सम्मुख व्याकुल प्रार्थना के रूप में करने पर तुरत रोग-मुक्त हो गये थे। उक्त चौतीशा का नाम आर्तत्राण चौतीशा है और वह समस्त उत्कल मे प्रसिद्ध है।

दीनकृष्ण गरीव और रोगी होते हुए भी सासारिक ऐश्वर्यों से मुक्त रहे और राजा के अनुग्रह के लिये लालायित नही हुए। इसमें तनिक भी अत्युक्ति नही कि दीनकृष्ण नैतिक साहस के मूर्तिमान विग्रह थे। वे पचसखा के अनुगामी थे। ज्ञानमिश्रा भक्ति मे उनका पूर्ण विश्वास था। उन्होने श्री जगन्नाथ जी को अवतारी तथा श्री कृष्ण को अवतार रूप मे प्रतिपादित किया है। रस कल्लोल में वे लिखते हें —

"कले इच्छा मने हेवा कसहन्तक। करिबा उश्वास मही भारा जेतेक।
कपटे होइवा व्रजे नन्द वालक। कउतुके बोलाइवा पशुपालक।
करि ए विचार कइवल्य नाथ का कस आदि मारिवाकु हेले उत्सुक।

ज्ञानमिश्रा भक्ति के अन्यतम पथिक और रहस्यमजरी के कवि देव्र दुर्लभ दास के समान उन्होने श्री कृष्ण को "मानव विष्णु" के रूप में प्रतिपादित किया है और अपने रसविनोद ग्रन्थ में त्रिपुरा के कौशल से नित्यरास लीला में शामिल होना आदि प्रसगो का उल्लेख किया है।

दीनकृष्ण तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, योग, धर्म, नीति, अलकार, सामुद्रिक, भेषज, सगीत आदि विषयो के पूर्ण जानकार थे। उनके ग्रन्थो में रसकल्लोल, रसविनोद, जगमोहन छान्द, नामरत्न गीता, प्रस्ताव-सिन्धु, नावकेलि तथा अलकार-बोलि आदि विशेष प्रसिद्ध हें। छोटी सी कविता होने पर भी आर्तत्राण चौतीसा उनके दूसरे सारे चौतीसाओ मे अत्यधिक जनप्रिय है। रसकल्लोल और जगमोहन छान्द को छोडकर शेष सभी रचनाएँ निराडम्वर भाषा शैली में लिखी गई हैं। कविजीवन की प्रथमावस्था तथा प्रौढावस्था में लिखित ग्रन्थो की रचना शैली में जो अन्तर रहना चाहिए, वह इनकी रचनाओ से भलीभाँति स्पष्ट है। इस भेद को देखकर कुछ लोगो ने

वे मानव वने, सभ्य वने, उनमें अधिकता थी, अहम्मन्यता थी, वे लोभ, मद, मात्सर्य में डूवे थे। मोह-माया के दास थे, अतएव स्वार्थ-वशवर्त्ती होना मामूली वात थी। अपने पेट की चिन्ता प्रत्येक करता है। निमन्त्रण होता है, लेकिन अतिथि होटल में जाकर अपना अपना पैसा चुकाते है। यह सभ्यता भारतीय आर्यसस्कृति के विरुद्ध है। यहाँ तो अतिथि को भगवान् माना जाता है। उसकी पूजा होती है। उसे उत्तम भोजन कराया जाता है। उससे कुछ पाने की आशा मेजवान कभी नही करता। ऐसा करना उसका अपमान है।

वे लोग कच्चा मास खाते थे, वाद में भूनकर खाने लगे। जैसा खाद्य वैसा गुण। हमारे यहाँ के साधु-सन्त जगल में रहते, जगली पौधो के पत्ते खाते, जडो का रस चूसते थे। जन जग-मगल की कामना में दिन-रात निरत रहते थे। केवल सात्विक भावाभिषिक्त रहा करते थे। उनके यहाँ लोभ, मोह, माया और स्वार्थ का प्रवेश निषिद्ध था——जाते तो भी ध्यानरत पाते। तुरन्त भगा दिये जाते थे।

फलस्वरूप वे और वैसी शिक्षा देनेवाले ज्ञानी जगली वन गये। उनके साहित्य में जहाँ सभी की पहुँच नही थी, इससे मृत भाषावाला वन गया। स्वार्थरत लोग यही रटने लगे। सत्य को भूल, मृगमरीचिका के पीछे दौडे और वह चले पश्चिमी प्रवाह में। उन्नत साहित्य का ढोल पीटा जाने लगा। सुन्दर साहित्य का सौन्दर्य विखेरा जाने लगा। निर्मोहियों को मोहा जाने लगा, और ऐसा मोहा कि अन्धा वना दिया। लोग यहाँ तक कहने लगे कि अंग्रेजी भाषा को अगर छोड दे तो भारतीय मूर्ख रहेंगे। यह जाति जीवन की प्रथम सीढी है, आदि, आदि।

मानव की वुद्धि विचित्र होती है, और कुछ आजकल देखादेखी अनुकरणीय वन गई है। भारत तो गत एक हजार साल से अपनापन खोकर दासता का जीवन यापन करने में ही मगल समझता रहा है। नया पथ वने, उस पर पैदल हमी पहले चले, यह हिम्मत नही। मानो वे सव वेद के उपदेश को भूल गये। ऋग्वेद के अनुपम अभूतपूर्व ज्ञान को झूठी कल्पना समझने लगे। उसकी रचना का काल रचा जाता है। जिसकी कोई नीव नही है वही प्रमाणित माना जाता है। जिनमें आध्यात्मिकता की गन्ध नही है, वे उन अध्यात्मवादी मुनियों के परिधान की हँसी करने लगे। दैविक आराधना-रत ज्ञानियो के ज्ञान की खोज नही की गई, केवल भौतिक पदार्थ में डूवे लोग अपनी उन्नति का दम भरने लगे। झूठे ज्ञान को ही विज्ञान की आख्या दे विज्ञान की उन्नति की चरम सीमा मनवाने लगे। खासा इन्द्र का अखाडा वना और परियो का नाच शुरू हो गया। अकवर वादशाह के साथ सभी मुसाहिव परियो का नाच देख तालियाँ पीटने लगे। परन्तु यह कपोलकल्पित नाच है, यह होश नही रहा।

इन सव वातो पर हमे गौर करना है कि वास्तव मे हम कहा थे और क्या हो गये है। यह आज की कल्पना नही। पीढी दर पीढी के चिन्तन का श्रीगणेश किया जा रहा है। अगर इससे जरा भी कोशिश की गई तो यह चिन्ता, वट की वरोहो सी, गभीर गति करती चलेगी।

एक जमाना था सत्य युग का और दूसरा था त्रेता युग का। सत्य युग का विज्ञान-चिन्तन चरम सीमा तक पहुँच गया था। उस काल के ज्ञानी महापण्डित ऋषि-मुनियो की वाणी इतनी

भक्ति के प्रतिपादक है। इस गृहीवैष्णव वश के कुलगुरु दयालुदास थे। दयालुदास अभिरामदास बाबा जी के प्रशिष्य थे जो श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुगत भक्त थे। वृन्दावती दासी का पूर्णचन्द्रोदय शुद्धा भक्तिमार्ग का एक अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि वृन्दावतीदासी ने १२ भक्तिग्रन्थो के अध्ययन के बाद इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इस वैष्णव कवि वश में प्रगाढ शास्त्रानुशीलन भी था। परपरागत रूप में इस वश के लोगो ने श्री कृष्ण जी की आराधना सख्य-भक्ति से की थी। ओडिया भक्ति साहित्य को इस परिवार का दान अत्यन्त विशाल है।

वृन्दावतीदासी के पूर्णतम-चन्द्रोदय के पद अत्यन्त कमनीय है—

ग्रीवासम कि कम्बु छार। अस्थि से जलचरकर।
भुजगराज भुजसम। नुहन्ति येणु भयतम।
कर निन्दइ कोकनद। सर्वदा नाहि ता प्रमोद।
अगुलि निन्दे गन्धफलि। फुटि से होइ यान्ति दलि।
जाति पाखुडा निन्दे नख। येणु से नोहे अति तीक्ष।
कपाट निन्दा करे उर। स्वभावे शुष्क काठ छार।

**पुरुषोत्तमदास**—पुरुषोत्तमदास ने सरल और सर्वजन-बोध्य भाषा में गगामाहात्म्य भृगुणीस्तुति, गुडिचा-विजय और द्वितीया ओषा नामक पुस्तकें लिखी है। उनके पिता का नाम रामदास था। वे जाति के गोपाल (ग्वाला) थे और बडे ही पडित तथा ज्ञानी थे। उनके काव्य का नाम है काची कावेरी।

**भूपति पडित**—भूपति पडित कान्यकुब्जागत सारस्वत ब्राह्मण थे। उत्कल में निवास करके उन्होने ओडिया भाषा पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया था। उनके गुरु का नाम चैतन्य दास था। उन्होने श्रीकृष्ण की रासलीला विषयक प्रेम-पचामृत नामक एक अच्छी पुस्तक लिखी है। श्रीकृष्ण के मथुरा-वास के आधार पर लिखी हुई चउतिशा, भूपति चउतिशा के नाम से प्रसिद्ध है। प्रेम-पचामृत का अध्ययन करने से भूपति पडित की प्रतिभा, बहुशास्त्र-दर्शिता तथा भक्ति-भाव का परिचय मिलता है। श्री जगन्नाथ दास की तरह उनकी भाषा सरल, शक्ति-शाली, निखरी और मजी हुई है। उत्कल के कृष्ण-लीला-सबधी काव्यो में प्रेम-पचामृत का स्थान बहुत ही ऊँचा है।

**गोपाल**—गोपाल तेलगु थे। एक सैनिक के रूप में वे सबलपुर के तत्कालीन राजा अजीतसिंह के यहाँ नौकरी करते थे। उन्होने नवाक्षरी वृत्त में आध्यात्म रामायण का अनुवाद किया है। अनुमान है कि उन्होने १८वी शताब्दी के प्रथम चरण में अपना ग्रन्थ समाप्त किया होगा। भूपति पडित की तरह उनका भी ओडिया भाषा पर असाधारण अधिकार था।

**त्रिविक्रम भज**—त्रिविक्रम भज घुमुसर राजवश के उत्तराधिकारी और कनकलता नामक काल्पनिक काव्य के रचयिता थे। पहले कहा गया है कि छन्दोबद्ध काव्यो की रचना कर घुमुसर राजवशी नरपतियो ने ओडिया साहित्य के उत्कर्ष में असीम कृतित्व दिखाया था।

प्रणेताओ की रचना शैली से स्वतत्र होकर काव्य-प्रणेताओ ने विभिन्न छन्दो और अलकारो से अपने काव्यो को मडित कर अपूर्व सारस्वत-सभार की सृष्टि की थी। उन दिनो काव्यो के छन्द-वैभव और अलकारो की प्रचुरता के आधार पर ही साहित्य क्षेत्र में कवियो का स्थान निर्णीत होता था। सगीत और कला से आवेष्टित इन काव्यो ने उत्कलीय जनता के मानस को सतुष्ट किया था। पुराणकार कवियो की कृतियाँ प्राय दाडिवृत्त, चौदह अक्षरो वाले वृत्त, तेरह अक्षरो वाले वृत्त, ग्यारह अक्षरो वाले वृत्त तथा नवाक्षरी वृत्त में होने के कारण उनसे उत्कलीय जनता का पूर्ण रसास्वादन नही हो सका था। छन्दपूर्ण काव्यावली ही उनकी परम तृप्तिदायक सामग्री बनी। काव्यो के साथ साथ विभिन्न प्रकार के सगीत जैसे-चउतिशा, चउपदी और वाद्यो तथा नृत्यो के सम्मिश्रण से गाने लायक सगीत भी इसी समय प्रचुर मात्रा मे रचे गये। १८वी और १९वी सदी को ओडिया साहित्य का मध्याह्न कहा जाता है। उत्कलियो की आकाक्षा को पूर्णतया रूपायित करने के लिये मानो दैवनिर्देश से सन् १६८५ ई० में घुमुसर राजवश में घनजय भज के पौत्र उपेन्द्र भज ने जन्म ग्रहण किया, जिनको उत्कलवासी सही अर्थ मे कवि-सम्राट् का पद देकर पूजते आ रहे हैं। उत्कलीय सारस्वत सृष्टि के समस्त सार-सपदो ने उनकी रचनाओ में पूर्णरूपता प्राप्त की है। छन्द-वैभव तथा अलकारो के समावेश से अपने पूर्ववर्ती महाकवियो की यश-प्रभा को म्लान कर वे साहित्य-गगन में प्रचड मार्तंड के समान उदित हुए।

ऊपर कहा जा चुका है कि सस्कृत के आदर्श पर ओडिया काव्यो में नानाविध अलकारो का प्रयोग किया गया था। कवि लोकनाथ विद्याधर के काल तक उत्कलीय कवियो की अलकारिता उच्च कोटि की समझी गई थी। श्लेष, यमक, अनुप्रास, गोमूत्रिक, अतर्लिपि, बहिर्लिपि, मेषयुद्ध, समस्यापूर्ति, प्रतिमाला, दुर्वाचनयोग, विंदुमती और अक्षरमुष्टिक आदि सभी तरह के अलकारो का प्रयोग कवियो की श्रेष्ठता के मानदड के रूप में विवेचित हो चुका था। कालिदास के कुमारसभव और श्रीहर्ष के नैषध-चरित आदि सस्कृत काव्यो की कथावस्तुओ के अनुकरण पर उत्कल का कविवर्ग काल्पनिक कथा-वस्तुओ का उपयोग करता था और कभी कभी अपनी काव्य-सृष्टि के उपजीव्य रूप में पौराणिक उपाख्यानो को भी अपनाता था। काव्य साहित्य की परपरा का वे लोग पूर्णतया अनुसरण करते थे और सगीत की अपूर्व मूर्छना भरने तथा भाव-लावल्य तथा चमत्कारिता की सृष्टि के लिये अपनी रचनाओ मे उत्तम पदावलियो का प्रयोग अबाध रूप से करते थे।

१७वी सदी के अतिम भाग से लेकर उन्नीसवी सदी के मध्य भाग तक तत्सम और तद्भव शब्दो के सुषम प्रयोगो से विभिन्न कवियो और महाकवियो ने जिस अपूर्व मूर्छना-मडित तथा दिव्यालकार-समन्वित काव्य-साहित्य की सृष्टि की, उससे भारत के प्रादेशिक साहित्यो के बीच उत्कल साहित्य बहुत ही सम्मानित हुआ और कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज की अनमोल सारस्वतसृष्टि तो ओडिया काव्य साहित्य को सस्कृत साहित्य की कोटि में पहुँचा सकी, यहाँ तक कि कही कही कवि-चातुरी से औपेन्द्र कविता सस्कृत कविता से भी आगे बढ गई है।

**उपेन्द्र भज**—उपेन्द्र भज वस्तुत उत्कल के कवि-सम्राट् थे क्योकि साहित्य को सुमनोज्ञ

को पूर्णतया आयत्त कर लिया था। उनके इस कथन से कि "कहे उपइन्द्र भज मु लभिछि शवद-सागर पार" (उपेन्द्र भज कहते हैं कि मैंने शव्द सागर को पार कर लिया है) यह वात स्पष्ट हो जाती है। सस्कृत का कोई भी काव्य और नाटक उन्होने विना पढे नही छोडा था। विश्वनाथ कविराज, भोजराज, दडी, मम्मट भट्ट और आनन्दवर्द्धनादि आलकारिको के ग्रन्थो को भी भलीभाँति आयत्त कर लिया था। ऐसा कोई भी शास्त्र नही था जिसका स्पर्श उन्होने न किया हो। उनके कार्यों से पता चलता है कि उनके ज्ञान का परिसर असीम था। उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति वैदेहीश-विलास में वैष्णव शास्त्रो के मुख्य मुख्य तत्त्व निहित हैं।

घुमुसर राजवश के वासस्थान कुलाडगड में अधिष्ठिता वाग्देवी घुमुसर राजवश की इष्टदेवी हैं। उपेन्द्र शाब्दिक आडवर और व्यसन से अपने को वचाकर तथा इष्टदेवी की कृपा को अपना सबल मानकर काव्यरचना में सर्वदा लगे रहते थे। धनजय भज यह देखकर वहुत ही प्रसन्न होते थे। उन्होने अपने पुरोदृष्टि वल से यह देख लिया था कि इस योग्यतम पौत्र की असाधारण प्रतिभा से एक दिन घुमुसर तथा उत्कल का मुख अवश्य उज्ज्वल होगा। उनके अथक प्रयत्न से उपेन्द्र का यौवन फूलो की सेज में व्यतीत हुआ था।

उपेन्द्र की प्रथम पत्नी नुआगड के राजा विनायक सिंह की कन्या थी। वे काव्य-रसिका होने के कारण उपेन्द्र के कवि-जीवन की सुयोग्या सगिनी थी परतु अकाल में उनका देहात हो गया था। कहा जाता है कि उपेन्द्र के प्रसिद्ध प्रेम काव्य "प्रेमसुधानिधि" और "रसिकहारावली" पत्नी-विच्छेद की अवस्था मे ही लिखे गये हैं। इन दो काव्यो में चित्रित दापत्य-जीवन की निविड रसानुभूति उपेन्द्र ने अनुभूति-पूर्ण हृदय से सभूत की है। वाद में धनजय के अनुरोध से उपेन्द्र ने दुवारा विवाह किया था। उनकी दूसरी पत्नी थी वाणपुर के राजा अच्युत हरिचन्दन राय की कन्या। अपनी सुगुणावली से वे उपेन्द्र के शोकदग्ध हृदय के लिये अमृत प्रलेप सिद्ध हुईं। परम विदुषी होने के कारण उपेन्द्र अपने कवि-जीवन में उनकी सगति को अमूल्य निधि समझते थे। किंतु नियति उपेन्द्र के जीवन में दूसरी व्यवस्था करना चाहती थी। इसलिये उनकी द्वितीय पत्नी का भी अकाल में देहात हो गया और उपेन्द्र के दापत्य-जीवन का अत हो गया। प्रिय-विरह-जनित-शोक-दग्ध-हृदय में विवाहित जीवन की असख्य स्मृतियाँ उनकी भावी कविता का उत्स वनी।

उपेन्द्र के जीवन के इसी सधिक्षण में घुमुसर की राजनीति उलझन में थी। धनजय की दूसरी रानी (हाडुवामडा देई) पहली रानी के वडे लडके पाटदेव गगाधर को घुमुसर के राज-सिंहासन से वचित करके अपने पुत्र (उपेन्द्र के पिता) नीलकठ को धनजय का उत्तराधिकारी वनाने के लिये षड्यन्त्र कर रही थी। उपेन्द्र की यदि भौतिक ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति होती तो वे इस षड्यत्र में भाग लेकर अपने पिता का उत्तराधिकारी बनने मे सहायक वनते। इसके लिये नीलकठ की ओर से उनको लालच भी दी गई। लेकिन उन्होने उसकी ओर ध्यान ही नही दिया। अनुचित ऐश्वर्य-लाभ के लिये दादी और पिता को घृणित षड्यत्र करते देखकर उन्होंने घुमुसर छोडकर जीवन का अवशिष्ट भाग "नुआगड" में बिताने के लिये तय किया परन्तु इसके लिये धनजय की सम्मति आवश्यक थी जिसे प्राप्त करने में उन्हें अनेक प्रयत्न करने पडे थे।

उस समय के गजपति महाराजा दिव्य-सिंह देव ने भी उनको महासिद्ध पुरुष, महायोगी और उत्कल के महाकवि या कवि-सम्राट् स्वीकार कर श्री जगन्नाथ जी के उत्तरीय को पगड़ी बनाकर स्वय उनके सिर पर बाँधी थी और बहुत ही सम्मान प्रदर्शित किया था। उन दिनों उपेन्द्र मालीसाही छोडकर सिद्ध गुफा की अखड निर्जनता में सीताराम जी का ध्यान करते थे।

खेद का विषय है कि उपेन्द्र के प्रति दया के सागर-स्वरूप राजा धनजय अब जीवित नहीं है। वे केवल वैदेहीश-विलास की समाप्ति ही देख सके थे और उसके छन्दो के श्रवण से अपूर्व आनन्द प्राप्त किया था। उनको अपनी यह कृति दिखाकर उनका आशीर्वाद पाने के लिये उपेन्द्र एक ही बार मालीसाही से घुमुसर गये थे। उपेन्द्र ने बचपन में एक बार धनजय से कहा था कि "आपके रचित रघुनाथविलास से अधिक उत्कृष्ट रामचरितमूलक महाकाव्य लिखा जा सकता है।" यह सुनकर धनजय ने गद्गद होकर उपेन्द्र से कहा था कि यदि तुम इस असाध्य विषय का साधन कर सकोगे तो मुझे अपार आनन्द मिलेगा। उपेन्द्र यथासमय उन्हें यह अपार आनन्द देकर धन्य हुए थे।

बाद मे घुमुसर की राजनैतिक परिस्थिति भयकर हो उठी। राजगद्दी के लिये पारिवारिक चालबाजियो में पहले धनजय और बाद में पाटदेव गगाधर के सुपुत्र निहत हुए। नीलकठ घुमुसर के सिहासन पर बैठे। उपेन्द्र को युवराज के रूप में अभिषिक्त कराने के लिये नीलकठ की ओर से अनेक प्रयत्न किये गये थे, क्योकि नीलकठ को यह मालूम नही था कि उपेन्द्र मालीसाही तथा सिद्ध गुफा मे गीताप्रोक्त ब्रह्मस्थिति में अवस्थान कर रहे है। किंतु उपेन्द्र के भाल-पटल पर तो पकिल सरोवर में अमल कमल के उद्‌भव होने का दृष्टात बनना लिखा था। नीलकठ केवल तीन साल शासन करने के बाद सिहासन-च्युत होकर घुमुसर से विताडित हुए। पहले वे घराकोट और बाद में आठगड रियासतो में आश्रय लेकर अत में पुत्र का आश्रय पाने के लिये नुआगढ गये। उपेन्द्र ने उन्हें अनेक प्रयत्नो से नित्यानित्य-विवेक का ज्ञान कराया और वे मालीसाही में रहकर अपना शेष जीवन को शातिपूर्वक बिता सके, इसके लिये उपेन्द्र ने नूआगड के राजा की सहायता से उसका सुप्रबन्ध करा दिया था। उपेन्द्र ने अपने जीवन के अतिम क्षणो तक सिद्धगुफा में ही निवास किया। वे सर्वदा सियाराम जी के ध्यान और काव्य-रचना में ही अपना समय व्यतीत करते थे। सन् १७२५ ई० में चालीस वर्ष की आयु मे उन्होने अपनी इहलीला समाप्त की।

उपेन्द्र ओडिया जाति की सदियो से की गई सारस्वत तथा आध्यात्मिक साधना के परिपक्व फल थे। उनका व्यक्तित्व अतुलनीय था। रामभक्ति के शिरोमणि साधक होकर भी वे रसमय सगीत के श्रेष्ठ पुरोधा थे। उनकी यही उपलब्धि थी कि वेदानुमोदित मार्ग से रमणी सभोग द्वारा जगत् का रसमय होना जगदीश्वर का निर्देश है। आर्य जाति के इस आदर्श की उपलब्धि कर उपेन्द्र ने अपनी रचनाओ में अपूर्व रस सृष्टि की है जो युगो तक ओडिया जाति की अतरात्मा में अपूर्व रसकल्लोल की सृष्टि करती रहेगी।

उपेन्द्र भज अपनी अनुपम सृष्टि और लोकोत्तर कवि-प्रतिभा से ओडिया साहित्य को संस्कृत साहित्य का समकक्ष तथा भारत के प्रातीय साहित्यो का शिरोमणि बना गये है। कविचातुरी

थी। भाव-साबल्य में यह भारतीय वाङ्मय मे अतुलनीय है। लावण्यवती उनके अतुलित प्रेम काव्यो में सर्वश्रेष्ठ है। शब्दालकार की अपेक्षा इसमें अर्थालकार का विलास अधिक है। भारत के अन्य रस सिद्ध काव्यो के साथ अब तक इसका तुलनात्मक विचार नही किया गया है। परन्तु वह दिन दूर नही, जब कि भारतीय बहु रससिद्ध काव्यो के साथ सगीत की मूर्छना, पदयोजनाचातुरी और अनवद्य अलकार विलास की दृष्टि से लावण्यवती की तुलना मे लावण्यवती ही ठहरेगी।

इन सर्वाङ्ग-सुन्दर विराट् काव्यो के अतिरिक्त कविसम्राट् उपेन्द्र भज ने असख्य चौतिशा, चउपदी, पोई, डुहा और गुज्जरी आदि कविताओ के अपूर्व सभार से उत्कल भारती के भडार को समृद्ध किया है।

काव्य-रचना के उत्कर्ष की दृष्टि से वे उत्कल के सारस्वत गगन में अप्रतिद्वद्वी ज्योतिष्क के समान है। उनका युग ओडिया साहित्य का मध्याह्न काल था और वे उसके अशुमाली थे।

उनके काव्यो की निम्निलिखित कुछ पदावलियाँ उनकी लोकोत्तर प्रतिभा की परिचायिका है—

त्र्यर्थ गर्भित पद

एकाधार में विष्णु, शिव और सूर्य की वदना —

**राग-पाहाडिया केदार**

बदइ दी (दि) न, वान्धव हरि जे तमचक्र खण्डनकारी
सदा कमलानन्द विस्तारी स्वभावे ईन जे।
विभु-अनत-अक-विहारी कर प्रताप जार सचरि
निशाचरक उल्लास हरि पूजे सुमन जे।
वइनतेय जाहा अग्रते स्थित जे
वइकुठ पक्षक-लोक-तोषित जे।
विकाश अखडित मण्डले सिंह भावरे क्रीडित काले।
भवे तरणी (णि) होइ मजुले गिरिउदिन जे।

**च्युताक्षर**

(प्रथम राग "चिता देशाक्ष में" वर्षाकाल का वर्णन प्रत्येक पाद से प्रथम वर्ण निकाल देने पर द्वितीय राग "काफि कामोदी" में शीतकाल का वर्णन, प्रत्येक पाद से फिर एक एक अक्षर निकाल देने से "मालबराढि" राग में ग्रीष्मकाल का वर्णन। सभी छन्द इसी रीति से लिखे गये है)

आसार सघन काल होइ उदय अशित पर बलरु दरशमय।
स्तनित हि स्फुट कालकठ सरु-अचिर प्रभाहि तर दिशे दिशे त।
केकीर सगीतरे कामुक उल्लास-घरमणि आच्छादने घन विलास।

**घनभज**—घनभज घुमुसर मडन धनजय भज के छोटे भाई तथा गोविन्द भज के पुत्र थे। नीलकठ भज के बाद उन्होने १७०७ ई० से १७५४ ई० तक राज्य किया था। उन्होने रसनिधि और त्रैलोक्य मोहिनी नाम के दो काल्पनिक काव्य तथा गोविन्द-विलास नामक कृष्णचरितात्मक एक दूसरा काव्य लिखा था। रचना की दृष्टि से वे घुमुसर राजवश के योग्य उत्तराधिकारी थे। धनजय भज और उपेन्द्र भज के साथ वे भी चिरस्मरणीय हैं। रस-निधि काव्य के नायक जगवन्दन हैं और नायिका रसनिधि हैं। दोनो के विवाह और मिलन का वर्णन प्रौढ भाषा में लिखे ५१ छदो में है। त्रैलोक्यमोहिनी उत्कल के दूसरे सभी काव्यो से भिन्न है। यह ओडिशी राग नामक २५४ विशिष्ट सगीतो की समष्टि है। एक एक सर्ग में ३, ४, ५, या ७ वडे वडे गीत और प्रत्येक गीत में ४, या १० सुमधुर सगीत हैं। सपूर्ण काव्य ओडिशी सगीतो का एक मनोज्ञ भडार है जिसमें विशिष्ट प्रकार की अनेक ओडिशी राग-रागिनियो और गीतिकाओ का प्रयोग किया गया है। अयोध्या के राजा पचवाण इसके नायक हैं और सौराष्ट्र की राजकन्या त्रैलोक्य-मोहिनी इसकी नायिका है। दोनो के प्रथम दर्शन, मिलन, विवाह और विरह आदि का कवि ने पूरी दक्षता के साथ चित्रण किया है। रचना में तत्सम शब्दो की प्रचुरता है। घनभज की रचना से प्रतीत होता है कि उन्होने साहित्य और सगीत में अपूर्व पारदर्शिता प्राप्त की थी और सगीत के दिव्य माध्यम से वे अपनी रचनाकला को अपूर्व रूप दे गये थे। त्रैलोक्य मोहिनी के अतिम छद मे घनभज ने भजवशावली का वर्णन किया है। इस रचना-शैली से घनभज जिस वैशिष्ट्य के अधिकारी हुए हैं वह अन्य किसी ओडिया कवि में दुर्लभ है।

**दाशरथिदास**—इनका जन्म रणपुर रियासत के करण (कायस्थ) कुल मे हुआ था। इन्होने १० बोलियो या सर्गों मे ब्रजविहार नाम का एक विराट् ग्रथ लिखा है। इसका रचनाकाल सन् १७३१ ई० है। इसमें अत्यत दक्षता के साथ सरल, तरल और कमनीय भाषा में श्रीकृष्ण-लीला वर्णित है। उत्कलीय जनता इसका आस्वाद पाकर धन्य होती है। दाशरथिदास शुद्धा-भक्ति मार्ग के पथिक थे। कृष्ण के रूप वर्णन का निम्न अश द्रष्टव्य है—

"कृष्ण कुतल सजल जलधर पृष्ठ देशे वरषति।
वदन पद्म अलका अलिवृ द बेढि कि मधु चुवन्ति।
नासिका कीर पक्व बिब अधर दाडिम बीज दशन।
नयन नलिन खजन गजन भुरू काम शरासन।
श्रवण बेनि अनग-पाश जाणि अर्धेन्दु भाल चिबुक।
चन्द्रवदन मडल ढलहल कृष्णर सुखदायक।"

(ब्रजविहार)

**कृपासिन्धु पट्टनायक**—इनका जन्म कटक जिले के डालिजोडा ग्राम के एक करण कुल में हुआ था। इनका "ब्रजविहार" अपूर्व छन्दो में लिखित है। इसमे पदविन्यास की अनोखी माधुरी और मनोहर अलकार-विलास निहित है। इसमें कुल २१ छन्द हैं जिसकी सगीतमयता और

हर साल ओलाशुणी में होनेवाले मेले में सम्मिलित होते हैं। अरक्षित दास ने निराकार ब्रह्म की उपासना का प्रचार किया था। उनके प्रचारित धर्म का नाम आज्ञाधर्म है। उन्होने १०० अध्यायो में मही मडल गीता, भक्ति टीका तथा बहुत से भजनो और चउतिशाओ की रचना की है। धार्मिक साहित्य में "महीमडल गीता" का स्थान बहुत ही ऊँचा है।

**कृपासमुद्रदास**—कृपासमुद्र दास पचमहापुरुषो के अनुगामी और ज्ञानमिश्रा भक्ति मार्ग के पथिक थे। उनकी "चतुर्द्धामूर्ति-वर्णन" पुस्तक बहुत ही प्रसिद्ध है।

**दनाईदास**—दनाई दास प्रसिद्ध "गोपीभाषा" के सुपरिचित कवि थे। ३२ छन्दो वाले विशिष्ट गोपीभाषा की खोज हाल ही में हुई है। इसमे अत्यत सशक्त भाषा मे कृष्ण के मथुरा-गमन के समय गोपियो के हृदयस्पर्शी कारुण्य का वर्णन है। "गोपीभाषा" अत्यत लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। उसकी भाषा सरलता, तरलता और माधुर्य का तो आदर्श ही है। इसके अतिरिक्त दनाई दास ने "सानकनडा" और "वडकनडा" नाम की दो प्रसिद्ध चउतिशाएँ और लिखी हैं। ये वैराग्य और नीतिशिक्षामूलक हैं।

**चक्रपाणि पट्टनायक**—चक्रपाणि पट्टनायक गजपति महाराजा वीरकेशरी देव (सन् १७३६-१७७९ ई०) के समसामयिक थे। उनका पाडित्य और कविप्रतिभा असाधारण थी। चतुरतापूर्ण सलाप के कारण उन्हे "चक्रवाक चक्रपाणि" कहा जाता था। उनकी सस्कृत में रचित गुडिचा चपू पुस्तक उनके अगाध पाडित्य की परिचायिका है। ओडिया में उन्होने "कृष्णविलास" नामक २१ सर्गों का एक काव्य लिखा है जो उनकी अनोखी कवि-प्रतिभा के अनुरूप ही है।

**बनमाली पट्टनायक**—बनमाली भी वीर केशरी देव के समसामयिक थे। वे 'शुद्धा भक्ति' मार्ग के अनुयायी थे। उन्होने बहुत से सगीत, भजन और जणाण लिखे हैं। उनके भक्तिरस-मिश्रित जणाण उत्कलीयो के कठहार हैं तथा राधाकृष्ण-रसाश्रित सगीत अपूर्व माधुर्य से ओत-प्रोत हैं। उत्कल में उनकी लोकप्रियता बहुत ही व्यापक है। उन्होने अपने पृष्ठपोषक गजपति महाराजा वीरकेशरी देव का नाम अपने दर्जनो गीतो मे रचक के रूप में भणित किया है। रचना के आदर्श की दृष्टि से निम्नाकित पक्तिया उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

"विषपीयुष बोलि मु देलि चाखि
आगो प्रिय सखि (पद)
दिने होइ थिलि छिडा छिडा, आसि मिलिगले घर बुडा,
भलकरि ताकु चिह्नि न पारिलि,
से दिनु अनग कला पीडा॥"

**रामदास**—रामदास वीरकेशरी देव के समसामयिक थे। वे गजाम जिले के ब्राह्मण थे। "दार्ढ्यता भक्ति रसामृत" और "रामरसामृत" नामक इनकी दो काव्य रचनाएँ हैं। दार्ढ्यता भक्ति नवाक्षरी वृत्त में रचित है। इसमें अत्यत जनप्रिय भाषा में भक्तो के चरित वर्णित हैं। उत्कल के घर-घर मे इस ग्रन्थ का आदर है। उत्कल के चाडाल से लेकर ब्राह्मण तक इसकी माधुरी

हर साल ओलाशुणी में होनेवाले मेले में सम्मिलित होते हैं। अरक्षित दास ने निराकार ब्रह्म की उपासना का प्रचार किया था। उनके प्रचारित धर्म का नाम आज्ञाधर्म है। उन्होने १०० अध्यायो में मही मडल गीता, भक्ति टीका तथा बहुत से भजनो और चउतिशाओ की रचना की है। धार्मिक साहित्य में "महीमडल गीता" का स्थान बहुत ही ऊँचा है।

**कृपासमुद्रदास**—कृपासमुद्र दास पचमहापुरुषो के अनुगामी और ज्ञानमिश्रा भक्ति मार्ग के पथिक थे। उनकी "चतुर्द्धामूर्ति-वर्णन" पुस्तक बहुत ही प्रसिद्ध है।

**दनाईदास**—दनाई दास प्रसिद्ध "गोपीभाषा" के सुपरिचित कवि थे। ३२ छन्दो वाले विशिष्ट गोपीभाषा की खोज हाल ही में हुई है। इसमे अत्यत सशक्त भाषा मे कृष्ण के मथुरा-गमन के समय गोपियो के हृदयस्पर्शी कारुण्य का वर्णन है। "गोपीभाषा" अत्यत लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। उसकी भाषा सरलता, तरलता और माधुर्य का तो आदर्श ही है। इसके अतिरिक्त दनाई दास ने "सानकनडा" और "बडकनडा" नाम की दो प्रसिद्ध चउतिशाएँ और लिखी हैं। ये वैराग्य और नीतिशिक्षामूलक हैं।

**चक्रपाणि पट्टनायक**—चक्रपाणि पट्टनायक गजपति महाराजा वीरकेशरी देव (सन् १७३६-१७७९ ई०) के समसामयिक थे। उनका पाडित्य और कविप्रतिभा असाधारण थी। चतुरतापूर्ण सलाप के कारण उन्हें "चक्रवाक चक्रपाणि" कहा जाता था। उनकी सस्कृत में रचित गुडिचा चपू पुस्तक उनके अगाध पाडित्य की परिचायिका है। ओडिया में उन्होने "कृष्णविलास" नामक २१ सर्गों का एक काव्य लिखा है जो उनकी अनोखी कवि-प्रतिभा के अनुरूप ही है।

**बनमाली पट्टनायक**—बनमाली भी वीर केशरी देव के समसामयिक थे। वे 'शुद्धा भक्ति' मार्ग के अनुयायी थे। उन्होने बहुत से सगीत, भजन और जणाण लिखे हैं। उनके भक्तिरस-मिश्रित जणाण उत्कलीयो के कठहार हैं तथा राधाकृष्ण-रसाश्रित सगीत अपूर्व माधुर्य से ओत-प्रोत हैं। उत्कल में उनकी लोकप्रियता बहुत ही व्यापक है। उन्होने अपने पृष्ठपोषक गजपति महाराजा वीरकेशरी देव का नाम अपने दर्जनो गीतो मे रचक के रूप में भणित किया है। रचना के आदर्श की दृष्टि से निम्नाकित पक्तिया उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

"विषपीयुष बोलि मु देलि चाखि
आगो प्रिय सखि (पद)
दिने होइ थिलि छिडा छिडा, आसि मिलिगले घर वुडा,
भलकरि ताकु चिह्नि न पारिलि,
से दिनु अनग कला पीडा ॥"

**रामदास**—रामदास वीरकेशरी देव के समसामयिक थे। वे गजाम जिले के ब्राह्मण थे। "दार्ढ्यता भक्ति रसामृत" और "रामरसामृत" नामक इनकी दो काव्य रचनाएँ हैं। दार्ढ्यता भक्ति नवाक्षरी वृत्त मे रचित है। इसमे अत्यत जनप्रिय भाषा में भक्तो के चरित वर्णित हैं। उत्कल के घर-घर में इस ग्रन्थ का आदर है। उत्कल के चाडाल से लेकर ब्राह्मण तक इसकी माधुरी

"मेघखड प्राय गगने देखिण पचारु छति सीतापति,
आहे लकपति, गगने कि दिशे कह कह ए किस रीति,
कर्णे कहइ। कर वदने विभीषण
अगुलि धेनि देखाइ वोले देव सैन्य कलुअछि रावण"

× × ×

आज्ञा पाइण शरधनु मुकुट काटिला ताहार सर्वत्र
एका बेलेके छिडिण कि पडिला ग्रहसगे सर्व नक्षत्र,
तहिँ कि अबा। गजमुकुता हेला वृष्टि।
कि अवा मल्लिका कुसुमे रामकु अजलि देले परमेष्ठी॥

(विचित्र रामायण)

**ब्रजनाथ बडजेना**—ब्रजनाथ वडजेना छ प्रादेशिक भाषाओ के पडित थे। उन्होन ओडिआ में श्यामा-रासोत्सव, अम्बिकाविलास, समरतरग, राजाक छलोक्ति और हिंदी में गुडिचाविजय लिखा था। उनका अविकाविलास "अ" आद्य नियम से और श्यामारासोत्सव "श" आद्य नियम से लिखित है। इन दो पुस्तको में अपूर्व रचनापटुता प्रदर्शित हुई है। समरतरग की भाषा ओडिया और खरोष्ठी मिश्रित है। अपने समय का युद्धवर्णन वडजेना के अतिरिक्त और किसी ओडिया कवि ने नही किया है। ये बडे ही विनोदी भी थे। अपनी "चतुर विनोद" नामक गद्यपुस्तक मे उन्होन मानव-चरित्र के दुर्गुणो पर खूब कसकर व्यग किया है। कहा जाता है कि उन्होने अपने अम्बिका-विलास काव्य को केन्दुझर के राजा वलभद्र भज के नाम से भणित करना स्वीकार किया था। परन्तु वलभद्र भज की ओर से निराश होकर वे ढेंकानाल चले आये और वही अम्विका-विलास काव्य की रचना पूर्ण की।

**विश्वभर दास पट्टनायक**—विश्वभर ने सारला महाभारत के सक्षिप्त सार को छन्दोबद्ध करके "विचित्र महाभारत" नामक एक जनप्रिय ग्रन्थ की रचना की थी। इसकी भाषा सर्वजन-बोध्य है। इसमें अनेक ओडिशी रागरागिनियो का प्रयोग हुआ है।

**कर्णामगिरि**—इन्होने रामदास प्रणीत दार्ढ्यताभक्ति रसामृत की छन्दोबद्ध रचना की थी। इनकी भाषा सरल, सर्वजनबोध्य और निर्दोष है।

**पीताबर राजेन्द्र**—पीताबर राजेन्द्र चिकिटि के नरपति थे। उनकी बनाई "रामलीला" अब भी गजाम जिले में अभिनीत होती है। रामलीला के अतिरिक्त उन्होने "खड रामायण" की भी रचना की है। उनका शासनकाल १७९१ से १८१९ ई० तक था।

**बलभद्र भ्रमरवर**—चिकिटि राज पीताबर राजेन्द्र के अनुज थे। इन्होंने "चन्द्रप्रभा" नामक एक आलकारिक काव्य की रचना की थी। इस काव्य के नायक का नाम अनगसुन्दर और नायिका का नाम चद्रप्रभा है। पूरा काव्य भजीय शैली मे लिखा गया है।

**राणी नि शकराय**—ये जरडा के राजा अधिपति वासुदेव की कन्या थी और वोडा सवर

**सम्पतसिंह**—ये भजीय रीति में लिखित सुलक्षणा काव्य के रचयिता और तिगिरिया रियासत के राजा थे।

**पद्मनाभ श्रीचन्दन**—ये बाँकी के नरपति और शशिरेखा नामक काव्य के प्रणेता थे। इस काव्य पर लावण्यवती का बहुत ही प्रभाव पडा है।

**कुजबिहारी पट्टनायक**—कुज विहारी पट्टनायक "कुजविहार" और "वृन्दावन-विहार" नाम के दो काव्यो के रचयिता थे।

**मागुणि पट्टनायक**—मागुणि पट्टनायक न पुरी जिले के कोट पला ग्राम में जन्म ग्रहण किया था। उन्होने ३६० छन्दो वाले "रामचन्द्र विहार" नामक काव्य की रचना की थी।

**त्रिपुरारिदास**—ये "रामकृष्ण केलिकल्लोल" नामक एक आलकारिक काव्य के प्रणेता थे।

**पुरुषोत्तम मान्धाता**—पुरुषोत्तम मानधाता नयागडरियासत के नरपति थे। उन्होने भजशैली में शोभावती नामक एक काव्य की रचना की थी। यह उच्चकोटि की रचना है।

**केशव हरिचन्दन**—इन्होने सरल और तरल भाषा में रामलीला नामक पुस्तक की रचना की थी। यह अनेक स्थानो में आज भी अभिनीत होती है।

**पिंडिकि श्रीचन्दन**—पिंडिकि श्रीचन्दन ने बँगला भाषा में जयदेव के गीतगोविन्द का व्यवस्थामूलक अनुवाद किया है। इसका नाम वसतरास है। इसके गीतो की मूर्छना अपूर्व है। वसतरास का अभिनय अब भी ओडिशा के विभिन्न स्थानो में होता है। वसत रास के अतिरिक्त इन्होने मुकुन्द माला नाम से देवी-देवताओ की अनेक स्तुतियाँ भी लिखी है। वसत रास की कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"जेइ कचन बरनी, त्रिभुवन सानन्दिनी, अदभुत सौदर्य श्री सुन्दरी।
वाक्यामृत जिते जते, सुधारस प्रेमाकृत तरगी नयनी कृशादेरी से,
श्रीराधे, प्रेम पीयूष सारेनि प्रेमानन्दरज्जु विलासिनी गो।"

(वसतरास)

**दीनबधु खाडगा**—दीनबधु खाडगा सस्कृत के एक प्रसिद्ध पडित थे। उन्होने श्रीमद्-भागवत का नवाक्षरी वृत्त में अविकल अनुवाद किया है। उन्होने काशी, नवद्वीप और उत्कल के भागवत ग्रथो का मिलान कर उसका शुद्ध पाठ सगृहीत किया था तथा श्रीधर गोस्वामी और विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीकाओ के मर्मानुसार श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया था। वे शुद्ध भक्ति मार्ग के पथिक थे। खडपडा में स्थित नीलमाधव की शरण में रहकर इन्होने भागवत का अनुवाद किया था। अनुवाद की शुद्धता के कारण उनके पदो को "खाडगापद" कहा जाता है।

**हरिवश राय**—इन्होने प्रेम कल्पलता नामक एक मौलिक काव्य लिखा है तथा कृष्णदास कविराज के गोविन्द-लीलामृत ग्रन्थ का ओडिया में अनुवाद भी किया है।

**अभिमन्यु सामन्तसिंहार**—ये कटक जिले के अतर्गत केन्द्रपडा सब डिवीजन के बालिआ

मानते थे ? विश्व ने भी नमस्कार किया था। उनमें ऐसा कौन गुण उनके देखने मे आया जिससे उन्हें भारत के सभी पुरुषो में श्रेष्ठ माना, भगवान् मानकर ईश्वरी अश पाया ? ऐसी कौन सी विद्या उनके पास थी कि एक सीक ने वाण वन कर जयन्त के पीछे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल लोक में भ्रमण करके अपराधी को मालिक के चरणो में ला गिराया ? उन्होंने ऐसा क्या सर्वोत्तम सर्वोच्च ज्ञान-भण्डार-पूर्ण हृदय पाया जिससे तुलसीदास नें उनके मुख से कहलाया है —

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।
वल विवेक दम परहित घोरे। छमा दया समता रजु जोरे।
ईश भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म सतोप कृपाना।
दान परसु वुधि शक्ति प्रचण्डा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद विप्र-गुर-पूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके।

क्या लक्ष्मण साथ नही थे ? सव कुछ था और सभी थे। लेकिन मानवोचित चिन्तन, व्यवहार, प्रेम और जग-निर्माण करने तथा लय करने की क्षमता जितनी राम में थी उतनी किसी में नही थी। न वातो की किसी ने भी खोज की ? नही की। लिखा—राम जगली थे, नालायक थे और मजा यह है कि भारतीय उस साहित्य को पढते है। उस भाषा को विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ भाषा मानते है। यह क्या ज्ञानी के लक्षण है ? कितने वडे परिताप की वात है कि जिस महा-पुरुष के चरित्र को ससार के प्राणी अपना वन्धु, अपना हितू मानते हो उस महामानव को जगली कहा जाय ? उसके दिल की, दिमाग की खोज नही की गई। यह विज्ञानी के माने कदापि नही है। वह भाषा दुनिया की सर्वोत्तम भाषा कदापि वन नही सकती। जिसमें स्वार्थपूर्ण वातें भरी हो, जिसमें मानव को दलन करके कुछ आदमियो की स्वार्थसिद्धि की पूर्ति का उपाय वतलाया हो वह सर्वम लमय भावो की अभिव्यक्ति करानेवाला सर्वोत्तम साहित्य कदापि नही है। लोग आज मृगमरीचिका के पीछे वावले हो रहे है। सावधान होने की जरूरत है।

आज का साहित्य सासारिक विषयो मे जितना लोगो को रत रखता है उतना आत्मचिन्तन की ओर ध्यान कम ले जाने देता है। फलस्वरूप लोग सासारिक विषयो के प्रति ज्ञान तो रखते है लेकिन वास्तविक अध्यात्म-वेत्ताओ की चिन्ताजनित अनुपम ज्ञानशक्ति, जमीन-आसमान को एक कर देनेवाले चिन्तन तक नही जाते। यह भान करानेवाली शक्ति अध्यात्म, अधिदैव और आधिभौतिक का समिश्रण या सम्मेलन ही ज्ञान की चरम सीमा है। इस ओर भूलकर भी लोग मन या वुद्धि को नही लगा पाते। वास्तव में जो ज्ञान के अधिकारी माने जाते थे उनको ये तीनो वातें मालूम थी और उनको इनका तत्त्व भी मालूम था। उसकी शक्ति के वे अधिकारी वन गये थे। यही कारण है कि सारा विश्व उनके करतल में था और वे लय के अधिकारी थे और जन्म के भी कारण-स्वरूप थे। एक चुल्लू में पानी ले लेने के वाद स्वर्ग, मर्त्य, पाताल की राजसत्ता मे

प्रेम मनरसाइ परिहास मिशाइ
मिते छामुरे जणाइले गो । ब्रजेश्वरि।
उठ मठ आउ न कर। कात कातर तर हर।
बहि कृपालुपण होइले त कृपण
दिशिब सिना असुन्दर गो।

(विदग्ध चिंतामणि)

**बलभद्र मंगराज**—बलभद्र मगराज बडवा के राजा कृष्णचन्द्र मगराज के पुत्र थे। उन्होने क्षेत्र माहात्म्य नामक ग्रन्थ की रचना की थी जो स्कद-पुराण का सरल अनुवाद है।

**मधुसूदन जगदेव**—मधुसूदन गजाम जिले के आठगड राज्य के नरपति थे। उन्होने वैशाख-माहात्म्य का अनुवाद किया था।

**वैश्य सदाशिव**—वैश्य सदाशिव अपनी रामलीला के कारण उत्कल में अत्यत प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा का माधुर्य बहुत ही चित्ताकर्षक है। रामलीला के गीतो की मूर्छना से उत्कलीय हृदय अनायास ही झकृत हो उठता है।

**हरिदास**—हरिदास जाति के गोपाल थे। उन्होने मयूरचद्रिका नामक एक कृष्णचरितात्मक काव्य की रचना की है। काव्य के सर्गों का नाम मयूर-चद्रिका है। इसमें कृष्ण-प्राप्ति के उपाय प्रतिपादित हुए हैं। हरिदास का शास्त्रीय ज्ञान अतुलनीय था। वे १८ वी सदी के अतिम और १९ वी सदी के प्रथम चरण में जीवित थे।

**नन्ददास**—नन्ददास अणाकार सहिता के कवि थे और पचसखाओ की ज्ञानमिश्रा भक्ति के अनुगामी थे। अनुमान है कि "वैचन्द्रगीता" उन्ही की कृति है। इसमे पचसखाओ के सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं।

**मोहनदास, कृष्ण विष्णु दास, साधु दास**—ये तीनो यथाक्रम निर्वाण भक्ति चैतन्य गीता, बौद्धब्रह्म और ससार सार गीता के रचयिता थे। इसी युग की लिखित "अमरजुमर" और सारस्वत गीता में प्रतिपादित पचसखाओ के सिद्धान्त इन पुस्तको में फिर से प्रतिपादित हुए हैं।

**कृपासिंधु सामत**—कृपासिन्धु सामत "कृष्ण विलास काव्य, मार्गशीर माहात्म्य" तथा कुछ चउतिशाओ और चउपदियो के लेखक थे। उनकी भाषा सरल और मधुर है।

**गंगापाणि**—गगापाणि "विष्णुधर्मोत्तर" पुराण के लेखक थे तथा द्वितीय दिव्यसिंह देव (१७७९-१७९८ ई०) के समसामयिक थे।

गगाधर पट्टनायक, चन्द्रमणि दास, नीलाबर भज, भूपति भज, पीताबर देव, लोकनाथ नायक, पद्मनाभ परीछा, अनग नरेन्द्र, विक्रम नरेन्द्र, पद्मनाभ देव आदि कवियो ने यथाक्रम "रसकल्पलता, हसदूत, कृष्णलीलामृत और पचशायक, गणेश-विभूति, अखिल रसचिंतामणि, खडि लीलावती गीतताल प्रबन्ध और भाववती" की रचना की थी। इनमें से कुछ १८वी सदी के और कुछ १९वी सदी के प्रथम भाग के कवि हैं।

निकटरे कि दूरे निति श्री मुख थरे
देखु थिवि एतिकि मो कामनारे।
गोपाल कृष्ण कहि हसि भाषिले सहि
के तो पछरे रहिछति अना रे ॥

× × ×

ऋषिछति मा गोष्ठ चन्द्रमा मोपरे। पद।
कि लागि काहिंकि मुहिं जाणिछि कि
लुह पुरिछि पुणि नयनरे।

× × ×

कोले वसाइवि गडे गड देवि
कथा न कहिले हेले वलरे।
गोपाल कृष्ण सेकाले धीरे भाषे
हेटि वसिछन्ति पुष्पवाटिरे।

**यदुमणि महापात्र**—हास्यरसावतार यदुमणि महापात्र आठगड के निवासी और जाति के वढई थे। १८१० ई० में जन्म ग्रहण कर ये १८६५ तक जीवित थे। ये नयागड नरेश का राजाश्रय प्राप्त कर वही रहते भी थे। उनकी हास्यविनोद की बातें, "यदुमणिरहस्य" के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई है। उन्होने कवि सम्राट् उपेन्द्र भज के आदर्श पर "राघव-विलास" और "प्रबंध पूर्णचन्द्र" नाम के दो काव्य भी लिखे थे। "राघव-विलास" के तो कुछ ही अंश प्राप्त हुए है, किंतु प्रबन्ध पूर्णचन्द्र पूर्ण रूप से प्रकाशित हो गया है। प्रबन्ध पूर्णचन्द्र की रचना-शैली समुन्नत है और इसका पद-विन्यास तथा आलंकारिता उच्च कोटि की है। राघव विलास के जितने छान्द प्राप्त है उनमें भजीय छटा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रतीत होता है कि यदुमणि ने कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज के समकक्ष वनने का प्रयास किया था। उत्कलीय जनता यदुमणि की प्रतिभा का वहुत ही आदर करती है। कवि-समाज में वे समुच्च स्थान के अधिकारी माने जाते है। संस्कृत साहित्य में उनका गभीर प्रवेश था। इनकी कविताओ में भी तत्सम शब्दो की वहुलता है। कवि-सम्राट् के वाद अभिमन्यु, यदुमणि और उनके परवर्ती कविसूर्य वलदेव रथ ने उत्कल साहित्य को संस्कृत साहित्य के जोड का वनाने में सफल प्रयत्न किया था। नमूने के रूप में उनकी निम्नांकित कविता रक्खी जा सकती है—

"भीष्मक आनन्द जन्माइला वन्दी वदिव पदक भाषा जे।
रुक्मिणी कुदने नीलमणिडोला विहते पदक भाषा जे॥
धरा देवीक, मंडिबा दासी ए रसिले। डाकिलाणि पिक
विपिने ठाठिक स्वरूपा जिबा कि भाषिले।

न मण्डिबु सिना मोरवक्षस्थल, हृदयरु जिबु करि केउँ कल।
मो मन-गगन तट-समुज्ज्वल उदय निर्मल तारारे।
मोमन-गगन तट-समुज्जवल उदय निर्मल तारारे।
सजनि गो, नवसुरति-विभव, पासोरि जिव कि मनु थिले जीव।
दीन कवि-रवि चातकर नव घनरस जलधारा रे॥

**चन्द्र कला**

फुल मण्डपे जेमा चन्द्रकला। न्याय बल केलिरे विजे कला।
खुलु खेलु ता मृदु अग देशे। विलसिला अलसभाव लेशे॥
जृंभा जृंभित मुख कलानिधि। घेरि देला बाहुपाश परिधि।
सायतन श्यामल कजशिरि। छुइँ आसिला नयन सफरी॥
(चन्द्रकला)

**भरतशेण**—भरत शेण गजाम जिले के अतर्गत घराकोट के अधिवासी थे। वे १८६० ई० तक जीवित थे। उन्होंने सुलोचना-परिणय और सुभद्रा-परिणय नाम के दो सरस काव्यो की रचना की है।

**भुवनेश्वर कविचन्द्र**—भुवनेश्वर कविचन्द्र का जन्म गजाम जिले में हुआ था। वे सन् १८४६ से १८९२ ई० तक जीवित थे। उन्होने विभिन्न आलकारिक प्रयोगो से पूर्ण "वासुदेव-विलास, सीतेशविलास, प्रबन्ध-रत्नमाला, रासलीला कटपाया, चौपदी माला, श्रीनिवास दीपिका और दशपोइ" आदि ग्रन्थो की रचना की है। उनकी रचनाओ पर पूर्ववर्ती कवियो का बहुत ही प्रभाव है।

**भीमभोई**—भीमभोई का जन्म सवलपुर के निकटवर्ती रेढाखोल में हुआ था। वे अन्धे थे और महिमा धर्म के प्रवर्तक महिमा गोसाईं की कृपा से अलेख ब्रह्म के सबध में विभिन्न प्रकार के गीत लिखने में समर्थ हुए थे। भीमभोई एक सत और प्रत्यादिष्ट पुरुष थे। उन्होने सर्वजन-बोध्य भाषा में स्तुति-चिंतामणि, ब्रह्म निरूपणगीता, चउतिशा और भजन माला आदि की रचना की है। उनकी रचनाओ में निराकार ब्रह्मतत्व प्रतिपादित हुआ है और महिमा धर्मावलबी उन सब को गा-गाकर उत्कल के विभिन्न स्थानो में अपने धर्म का प्रचार करते हैं। उच्च शिक्षा न पाने पर भी उनमें भाव प्रकाशन की पर्याप्त शक्ति थी। निम्न उद्धत पदावलियो से इस उक्ति की सत्यता प्रमाणित हो जाती है —

नरदेह पाइछ जन्म। एते बेले डाक महिमा नाम। घोषा।
काल चक्र ब्रह्माण्डरे फेरिलाणि,
अदृष्टकरम हेउछि बाम।
एक प्रभु विनु ए मानव तनु। रखि बाकु केहि नुहन्ति क्षम।१।

अव्याहत था। अब तक के निर्मित साहित्य पर उसकी स्वतत्र दृष्टि ही स्वच्छ भाव से प्रतिविंवित हुई थी। यह सुदृढ जातीय साहित्य ओडिया जाति के गर्व और गौरव की सामग्री है। इसकी सृष्टि और क्रम विकास में वहुत से समर्थ साधको की महनीय साधनाएँ पुजीभूत है। यह लेख उन साधनाओ का अत्यत नगण्य और सक्षिप्त परिचय मात्र है।



प्रति प्रारभिक अजनबीपने को भूलकर उसकी सस्कृति और सभ्यता को काफी हद तक समझने-बूझने और हृदयगम करने लगी थी। अत यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि साहित्य निर्माण के आदर्शों में महान् परिवर्तन उपस्थित करने वाले मूल कारण थे यही मेल और सघर्ष। यहाँ आकर साहित्य का स्वर एकदम वदल गया। विषय, शैली आदि में पहले से विशेष अन्तर हो गया और उसमें देशी-विदेशी प्रभावो, सस्कारो और नवीन कल्पनाओ का समावेश होने लगा।

यदि हम भक्तचरणदास (१८वी सदी) की "कलाकलेवर चौतीसा" और मधुसूदन राओ की "भारत भावना" (१८८३ ई०) नामक काव्य रचनायें लें और उनका तुलनात्मक अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि मध्ययुगीन और आधुनिक साहित्य-निर्माण का लक्ष्य किस प्रकार पृथक्-पृथक् था। उपरोक्त दोनो रचनाकारो में लगभग सौ वर्षों का साधारण अन्तर है किंतु उनकी रचनाओ के आदर्शों में बहुत वडा अन्तर मिलता है। "कलाकलेवर चौतीसा" सोलह वर्णों की पक्तिवाले रामकेरी नामक छन्द में लिखी गई है, जिसमें कृष्ण तथा गोपियो का प्रेम वर्णित है। दूसरी रचना भारत भावना है जो स्पेंसीरियन छन्द में है। यह प्रधान रूप से जातीयता (नेशनैलिटी) के भावो से ओतप्रोत और भारत के प्राचीन इतिहास में केन्द्रित है। पहली रचना भाषा, भाव, अलकार, छन्द आदि सभी दृष्टियो से मध्ययुगीन साहित्य धारा से प्रभावित है और दूसरी नितात परिवर्तित एव गतिशील दृष्टियो से उद्भावित तथा नवीनताओ से स्पदित है।

पहली रचना मध्ययुगीन साहित्यादर्शों पर आधारित है। रामायण, महाभारत और भागवत तत्कालीन साहित्य के प्रेरक ग्रन्थ थे। किंतु पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होने के कारण अपने स्वर-झकार, माधुर्य, भाषा के निराडबर स्वरूप, भावाभिव्यक्ति की स्वाभाविकता तथा रूप विभव की दृष्टि से, दूसरी रचना मध्ययुगीन रचनाओ से नितात भिन्न है। यह कविता जातीयता की भावना को लक्ष्य करके लिखी गई है। जातीयता के ऐसे भावो का आगमन इस देश की मिट्टी में विशेष कर साहित्य के क्षेत्र में सर्वथा एक नई वस्तु थी। इस प्रकार पिछले अस्सी वर्षों के भीतर विभिन्न समयो में, विभिन्न चिन्ताधाराओ ने ओडिया साहित्य में जिस विचित्र शैली को जनमाया है, वह अभूतपूर्व, अभिनव तथा विस्मयकर है।

देश की स्वाधीनता के लुप्त होने के साथ ही साथ विदेशी शासनसत्ता सर्वप्रथम नगरो में केन्द्रीभूत हुई थी, अत नगर ही एकमात्र जनजीवन का नियत्रक और सचालक रहा। फल यह हुआ कि पहले का देहाती जीवन अपना सब सोन्दर्य और आकर्षण खो बैठा। नये शासन और आधुनिक शिक्षा-प्रसार की नीति पहले पहल नगरो में ही प्रवर्तित, परीक्षित और कार्यान्वित हुई थी। अत आधुनिक साहित्य केवल नागरिक जीवन में ही सीमित रह गया। आधुनिक शिक्षा प्राप्त मध्यमवर्ग ने विदेशी साहित्य के अनुकरण पर तथा नागरिक जीवन से आलोक ग्रहण कर नये आधुनिक साहित्य की सृष्टि की। यही कारण है कि पहले पहल इस साहित्य का कोई भी सवध जनजीवन के साथ प्रतिष्ठित नही हुआ। यह नितात एकागी और मध्यमवर्गीय साहित्य था अतएव इसे नागरिक साहित्य कहें तो अनुचित नही। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली,

उन्हें आवश्यक था। भाषा-ज्ञान के लिये इन्हें वहाँ से किसी प्रकार की सुविधा थी नही। न तो-व्याकरण ही था और न अभिधान। इस कमी को पूरी करने के लिये उन्होने जिस उत्साह और लगन का परिचय दिया उसके लिये ओडिया भाषा-भाषी उनके चिर ऋणी रहेगे। आवश्यकता और अनिवार्यता का अनुभव करके सटन साहब ने व्याकरण और अभिधान रचना में हाथ लगाया। फलत इन्होने अग्रेजी में ओडिया व्याकरण (इट्रोडक्टरी ग्रामर आव् दी ओडिया लागवेज, १८३१ ई०) और अभिधान (ओडिया डिक्शनरी, १८४१ ई०) की रचना कर इस कमी को दूर कर दिया। इधर, आधुनिक शिक्षा के लिये कपनी सरकार ने जो प्रयत्न आरभ किया था उसी सिलसिले में पुरी में एक अग्रेजी स्कूल खुला (१८३५ ई०)। किंतु सन् १८४० तक शिक्षा की दिशा में कोई प्रगति न हुई। इस उपेक्षा और अन्यमनस्कता के काल में मिशनरी प्रचारको ने शिक्षा का बीडा उठाया। सटन साहब ने विद्यालय-स्थापन के साथ-साथ उपयोगी पाठ्यपुस्तको की रचना के लिये भी प्रयास किया। इस प्रकार मिशनरी के प्रचारको ने ओडिया में आधुनिक शिक्षा की नीव डाली, उसके प्रसार के लिये पाठ्यपुस्तको की रचना की और प्रत्येक सभव उपायो द्वारा उसे गति प्रदान की। परतु इन सभी प्रयत्नो के मूल में ईसाइयत के प्रचार की भावना ही कार्य कर रही थी। ओडिया साहित्य और भाषा में सुसम्बद्धता और नवीनता लाने का उनका ध्येय कदापि नही था और न वे इन कार्यों के द्वारा धर्म-प्रचार के लिये उचित क्षेत्र और वातावरण ही तैयार करना चाहते थे। इस तैयारी में ओडिया भाषा और साहित्य का कल्याण अपने आप होता गया। उन्होने विद्यालयो और मुद्रणालयो की स्थापना की, आधुनिक शिक्षा के योग्य पाठ्य पुस्तको का प्रणयन और पत्रिकाओ का सपादन किया और इन चार साधनो को मुख्य रूप से धर्म प्रचार का अस्त्र बनाया।

इसी क्रम में सन् १८३७ में कटक मिशन प्रेस स्थापित हुआ और १८४९ में ज्ञानारुण नामक मासिकपत्र निकाला जाने लगा। इस प्रकार शिक्षा प्रसार का कार्य धर्मप्रचार का केवल वाह्य स्वरूप ही था जिसके लिये सटन साहब ने वाध्य होकर कुछ पाठ्य पुस्तकें रची थी।

इसके अतिरिक्त शासनकार्य में नियुक्त होनेवाले तत्कालीन उच्च अधिकारी ओडिया भाषा से अपरिचित होते थे। फोर्ट विलियम कालेज से बगला की योग्यता प्राप्त करनेवाले सिविलियन ओडिशा के शासन कार्य में नियुक्त होते थे। कारण था ओडिया से बगला का नैकट्य और शब्द तथा उच्चारण का निकटतम साम्य। इससे उन अधिकारियो को शासन कार्य में कोई विशेष असुविधा भी नही होती थी। इनमे कुछेक ओडिया भी जानते थे। किंतु उन लोगो ने इसे बगला सीखने के वाद सीखा था। सटन साहब ने भी यही किया था। फल यह हुआ कि उनकी ओडिया पाठ्य पुस्तको की भाषा बगला-अनुवाद की भाषा हो गई। इसी अनुवाद के आधार पर उन्होने ओडिया गद्य के जिस स्वरूप का जन्म दिया वह कृत्रिम, बँगला-प्रभाव से ग्रस्त और अव्यावहारिक था। केरी साहब के वाइबिल की ओडिया भी इसी अनुवाद के नाते वहुत अशो में वगला की प्रकृति से ओतप्रोत थी। लेकिन तुलना करने पर यह जान पडता है कि केरी

के नाते ओडिया साहित्य के विकास में लाभकारी योग मिले, फिर भी हानिया कम नही थी।

(ख) शिक्षा प्रसार में बरती जाने वाली अनुदार नीति के कारण सपूर्ण वग प्रदेश के लिय स्वीकृत आर्थिक सहायता केवल आधुनिक वगप्रदेश मे ही व्यय की जाती थी। ओडिशा की जनसख्या के अनुपात के अनुसार जो धनराशि यहाँ व्यय की गई, वह वगाल के किसी जिले में व्यय की जाने वाली रकम से भी कम थी। तत्कालीन विभागीय इस्पेक्टरो के उल्लिखित मतव्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेतुकी और अवाछनीय शिक्षा सवधी नीति के कारण ओडिशा को बहुत हानि उठानी पडी।

(ग) आधुनिक शिक्षा के प्रति इस प्रात के लोगो की गभीर वितृष्णा भी शिक्षा में वाधक हुई। मिशनरियो ने प्रकाशित पुस्तको के द्वारा शिक्षा का प्रसार किया था। किंतु ये लोग देश-वासियो के धर्म की कडी आलोचना करते थे। इसलिये लोग धर्महानि के भय से मिशनरी स्कूलो के अतिरिक्त आधुनिक विद्यालयो तक में भी अपने बच्चों को पढने के लिये नहीं भेजते थे। यहाँ तक कि जनता मे एक ऐसा सस्कार वद्धमूल हो गया था कि छपी पुस्तक पढने से धर्म का लोप हो जायगा। लोकचित्त के इसी सस्कार के साथ ही साथ आधुनिक शिक्षा के प्रति उसकी वितृष्णा भी शिक्षा की गति में अवरोधक सिद्ध हुई।

किंतु बहुत दिनो तक यह स्थिति नही रह सकी। शिक्षा के प्रति लोगों का मनोभाव क्रमश बदलता गया। इस परिवर्तन के मूल में सरकारी नौकरी के पाने का प्रलोभन था। सन् १८३५ में लार्ड मैकाले की शिक्षा-योजना में स्कूलो में अँग्रेजी भाषा की प्रधानता स्वीकार की गई थी। सन् १९४४ में लार्ड हार्डिज के आदेशानुसार सरकारी नौकरी के लिये आधुनिक शिक्षा एक मात्र साधन रूप में अनिवार्य हो गई। जीने के लिये नौकरी और नौकरी के लिये आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता थी। फलत अग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी और इस पर जीविकार्जन के निर्भर हो जाने से लोग उसकी ओर आकृष्ट होने लगे। किंतु खेद का विषय है कि ऐन ऐसे समय जब कि आधुनिक शिक्षा की ओर लोग आग्रहपूर्वक अग्रसर होने लगे थे, सरकार शिक्षा व्यय में नितात कजूँसी करने लगी।

जिस शिक्षित निम्न मध्यमश्रेणी के निरतर अध्यवसाय के कारण ओडिया साहित्य का विकास होने लगा था, उसका जन्म सन् १८४० के पूर्व नही हुआ था। यद्यपि इस श्रेणी का आविर्भाव १८४० ई० मे ही हो गया था, तथापि वह अच्छी तरह प्रकट हुई १८७० ई० के वाद ही। सन् १८४० से १८७० के वीच धीरे-धीरे इसका विकास हुआ। सन् १८६८-७० मे ओडिया भाषा का उच्छेद कर ओडिशा के स्कूलो और न्यायालयो में बगला भाषा चलाने की जो अपचेष्टा की गई थी, वह इसी नूतन आविर्भूत शिक्षित निम्नमध्यम श्रेणी और अधिकारी वर्ग की अपूर्व कल्याण भावना से ही सचालित थी। सन् १८६५-६६ के घोर अकाल से ओडिया जाति की रीढ टूट गई थी, साथ ही इस भाषा-विलोप आदोलन ने उसके हृदय में गहरी चोट पहुँचाई।

का प्रचार करना ही आधुनिक शिक्षा का चरम लक्ष्य था, इसलिये पाठ्यपुस्तकें भी उसी नीति का अनुसरण करने को विवश थी। इसके पूर्व विद्यालयो में साधारण अक्षर-ज्ञान के पश्चात् छान्द, चौतिशा, काव्य (अधिकतर धर्ममूलक रचनाओं) पर ही जोर दिया जाता था जिसके कारण लोगो की एक विशेष प्रकार की चित्तवृत्ति वन जाती थी। आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तन से उस चित्तवृत्ति में एक महान् परिवर्तन दिखाई पडने लगा। जीवन के उपभोग की नई दृष्टि साहित्य के रसास्वादन की स्वतत्र मनोवृत्ति और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के सहारे पार्थिव जगत् के प्रति ज्ञान प्राप्त करने की जो स्पृहा लोगो के मन मे जागृत हुई, वह केवल आधुनिक प्रणाली की पाठ्यपुस्तको के द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के ही कारण थी। इसलिये जैसे जैसे पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से भलीभाँति परिचित होकर ओडिया साहित्य के निर्माताओ ने जनता के सामने नये साहित्य को रखना आरभ किया, वैसे ही वैसे पाठ्य पुस्तको के द्वारा उस साहित्य का स्वागत करने के लिये अनुकूल वातावरण भी तैयार होता गया, नही तो राधानाथ मधुसूदन जैसो की रचनाएँ इतना शीघ्र उचित सम्मान न पा सकती।

इस प्रकार इस काल में (१८७०-८०) पाठ्यपुस्तको के द्वारा नये साहित्य के रसास्वादन की क्षमता उत्पन्न करने के साथ ही साथ आधुनिक साहित्य का प्रथम उत्थान भी हुआ। सर्वप्रथम बालेश्वर जिले में ही इस नये प्रसार के साहित्य ने आत्मप्रकाश की सुविधा पाई क्योकि यह आधुनिक साहित्य की जन्मभूमि वगाल के निकट है। सयोग से उसी समय राधानाथ और मधुसूदन ने भी उसी जिले को अपना प्रारभिक कार्यक्षेत्र बनाया। उनके जैसे नये लेखको के सहयोग तथा कुमार बैकुठनाथ दे जैसे जमीदार की अनुकूलता से सन् १८७३ में ओडिया का वास्तविक साहित्य-मासिक पत्र 'उत्कल दर्पण' प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका के लेखो में राधानाथ जी का मेघदूत (सस्कृत का अनुवाद), इतालीय युवा (गद्यानुवाद), विवेकी (प्रबन्ध), मधुसूदन की कई कविताएँ—जिनमें कुछ अनुवाद भी है और अग्रेजी के अनुसरण पर लिखित तथा अनूदित अनेक निवन्ध मुख्य कहे जा सकते है। उत्कल दर्पण के प्रकाशन के ५ वर्ष वाद १८७८ की अप्रैल से कटक की उत्कल सभा नामक एक सास्कृतिक सस्था के मुखपत्र के तौर पर 'उत्कल मधुप' नाम का मासिक पत्र भी निकलने लगा। इसमें श्री रामशकर राय जी द्वारा लिखित ओडिया का अधूरा उपन्यास तथा सौदामिनी और प्रेमतरी नाम से अग्रेजी कविताओ के अनुवाद प्रकाशित हुए थे। उसी के साथ कवि-सम्राट् उपेन्द्रभज के कोटि ब्रह्माण्ड-सुन्दरी काव्य की कडी आलोचना भी निकली थी। सचमुच ये दोनो साहित्य पत्रो—उत्कल दर्पण तथा उत्कल-मधुप ने केवल दो दो वर्षों के भीतर ही जनता के मन में जो प्रेरणा ला दी थी उसीने आगे चलकर विशाल आकार धारण किया।

किंतु सच तो यह है कि इस समय (१८७०-८०) ओडिया साहित्य के रूप और विषय (आगिक और आत्मिक रूप विभव) में कोई व्यापक परिवर्तन नही हुआ। फिर भी इनमें जो थोडा बहुत परिवर्तन दिखाई पडने लगा था, उसकी विलकुल उपेक्षा नही की जा सकती। सस्कृत और अग्रेजी से गद्य-पद्य के अनुवाद, काव्य, उपन्यास, आधुनिक गद्य, साहित्य, प्रबन्ध, साहित्य-

उस साहित्य में ग्रामीण विषयो का उपस्थान परिवर्तन की सूचना नही देता ? वास्तव में इन कविताओ के कलापक्ष और भावपक्ष (आगिक और आत्मिक रूप विभव) का विश्लेषण करने पर हम आधुनिक ओडिया कविता के आभिमुख्य और अभिव्यक्ति के स्वरूप पर कुछ धारणा बना सकते है। लगातार ५० वर्षों के इस दीर्घ काल में पाठ्य पुस्तको के द्वारा इस देश के लोकचित्त में जिस साहित्यिक रुचि का विकास हुआ था, उसी का बाह्य प्रकाश राधानाथ और मधुसूदन की कवितावली है।

## आधुनिक ओड़िया साहित्य की प्राणप्रतिष्ठा का युग (सन् १८८१-९७ ई०)

### साहित्य-विकास का प्रथम अध्याय

दस साल के एक छोटे अरसे के भीतर उत्कल दर्पण (१८७३) और उत्कल मधुप (१८-७८) मासिक पत्रो तथा उत्कल दीपिका (१८६६) बालेश्वर सवाद-वाहिका (१८६८), उत्कल हितैषिणी (१८६९), उत्कल पुत्र (१८७३), विदेशी (१८७३) आदि पाक्षिक पत्रिकाओ ने लोकचित्त में साहित्य सृष्टि के लिये जिस उत्साह और उत्तेजना का वातावरण पैदा किया था उसके आशु परिणामस्वरूप परवर्ती १६।१७ वर्षों (१८८१-९७) के भीतर आधुनिक ओडिया साहित्य एक विकसित और सुदृढ मूलाधार पर प्रतिष्ठित हो सका था। वास्तव में, यह युग (१८८१-९७) आधुनिक ओडिया साहित्य की प्राणप्रतिष्ठा का युग है। नाटक, उपन्यास, काव्य, गीति-काव्य, समालोचना, पर्यटन और प्रवन्ध आदि साहित्य के प्राय सभी विभाग इसी समय अपने स्वतत्र और सपूर्ण रूप से महिमान्वित हुए थे। यद्यपि पहले की बगलामुखी ओडिया भाषा पूर्ण रूप से तिरोहित नही हुई थी फिर भी लोगो में यथार्थ, शुद्ध और अनाविल ओडिया गद्य का आदर बढ चला था। मधुसूदन की प्रबन्धमाला (१८८०) तथा दूसरे धर्मतत्त्व मूलक प्रबन्ध और नवसवाद (१८८७) पत्रिका की गुरुगभीर शुद्ध भाषा ने ओडिया गद्य के प्राकृतिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योग दिया। राधानाथ के भ्रमण वृत्तान्त (१८८७) अथवा पुस्तक समालोचना का परिमाण अधिक न होने पर भी उनकी उपादेयता किसी प्रकार कम नही थी। रामशकर राय के बनाये काची-कावेरी (१८८१), वनमाला (१८८२), कलिकाल (१८८३), आदि विभिन्न नाटक और प्रहसन, उमेशचन्द्र सरकार का पद्ममाली उपन्यास (१८८८), मधुसूदन की भारत वन्दना (१८८३), आकाशप्रति (१८८५), नवसवाद (१८८७), आशा (१८८९) एव उच्चचित्ताश्रयी धर्मभावमूलक गीति कविताएँ आदि आलोच्य युग के प्रथम भाग के श्रेष्ठ अवदान है। इसी समय के भीतर कई नये लेखको का आविर्भाव हुआ। उनमें सर्व श्री मणि-चरण महापात्र, चन्द्रमोहन महाराणा, साधुचरण राय और रेवाराय प्रधान है। ओडिया गीति-काव्य के अभ्युदय और विकास के क्षेत्र में इन लोगो का निरलस अध्यवसाय अविस्मरणीय है। सृष्टि और प्रतिष्ठा की दृष्टि से साहित्य के इन सभी विभागो की अपेक्षा आज काव्य और महाकाव्य ही महत्वपूर्ण समझे जाते है। इस क्षेत्र में श्री राधानाथ अद्वितीय और असाधारण सिद्ध होते हैं। उनकी केदारगौरी (१८८६), चन्द्रभागा (१८८६), नदिकेश्वरी (१८८७),

पुष्करिणी, नदी-निर्झर आदि प्रकृति के रूपो के नये नये सुरम्य चित्रो से काव्य ग्रथ विभूषित होने लगे थे। यदि सार्थक रसबोध के साथ उनके काव्यो में प्रकृति निरीक्षण की गभीर तथा प्रत्यक्ष अनुभूति न होती तो वे अपने काव्य में प्रकृति के जीवत और मनोहर रूपो की प्रतिष्ठा न कर पाते।

राधानाथ के साहित्य की कलागत और भावगत (आगिक और आत्मिक) रससपद पूर्णतया नवीन और असाधारण है। आलकारिक भाषा, काव्यगत नायक नायिकाओ के पूर्व-जन्म का इतिहास (लेकिन सभी काव्यो में नहीं), शृगार रस की अधिकता अनेक स्थानो पर सस्कृत तथा ओडिया साहित्य का श्लोकानुवाद या छायानुवाद, पारपरिक काव्य-रीति के अनुसार सामन्तवादी सभ्यता का चित्राकन आदि साहित्य के कई बहिरग उपादान इनके साहित्य में है। यह सब देखकर राधानाथ जी को मध्ययुगीन ओडिया साहित्य के अन्तिम प्रतिनिधि साहित्यकार अथवा उनके साहित्य को मध्ययुगीन साहित्य के नवीन सस्करण के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु दोनो प्रकार के साहित्यो की इन कई समानताओ को अलगकर यदि हम रचना-ध्येय, सृष्टि के उत्स, रसास्वादन की यथार्थ पद्धति, छन्द-सौंदर्य और विषयवस्तु आदि की दृष्टि से उनके समूचे साहित्य पर दृष्टिपात करें तो उपरोक्त अभिमत की असारता स्वत प्रमाणित हो जाती है। हमें लगता है कि राधानाथ जी की रचना की सूक्ष्म कला-दृष्टि और सौंदर्यानुभूति में जो सूक्ष्मविचार-बुद्धि और सार्थक रस-पिपासा है, वह उनके निरन्तर पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन के कारण ही सभव हुई है। नये युग में रहते हुए भी वे प्राचीन साहित्य के कई उपादान सग्रह करने को बाध्य थे। लेकिन ये उपादान ही उनकी काव्य-कीर्ति के परमोज्ज्वल अवदान नही बल्कि वाह्य रूप मात्र है। राधानाथ-साहित्य का यथार्थ रूप-विभव जिन विदेशी साहित्यो के प्रभाव से निर्मित हुआ था, वे ही उनकी साहित्य-सृष्टि के प्रेरक और आदि उत्स है। इस प्रेरणा के ये जितने ही विचित्र और नित्य नवीनता से परिपूर्ण हे, इनका साहित्य उतना ही अभिनव और मनोमुग्धकर है।

राधानाथ और उनका साहित्य प्राच्य-पाश्चात्य सभ्यता के सघर्ष का एक अमृतमय परिणाम है। पिछली शताब्दी में जिस शिक्षित मध्यम श्रेणी का आविर्भाव हुआ था, वही देश की सर्वांगीण उन्नति के लिये अग्रसर हुआ। राधानाथ ही ऐसे प्रथम और प्रधान साहित्यकार है जिन्होने आधुनिक ओडिया साहित्य के क्षेत्र में उस श्रेणी का पूर्ण प्रतिनिधित्व किया था। ओडिया साहित्य में उपरोक्त सघर्ष की सर्वश्रेष्ठ कार्यकारिता सर्वप्रथम इन्ही में दिखाई पडी। उनके केदार-गौरी, चन्द्रभागा, नदिकेश्वरी, उषा, पार्वती तथा ययातिकेशरी काव्यो की कथा-वस्तुओ, महायात्रा के छन्द वैचित्र्य तथा कल्पना और चिलिका खण्ड काव्य के परिवेश तथा परिप्रकाश की अन्तर्दृष्टि में सभ्यताओ का यह सघर्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि केदारगौरी, चन्द्रभागा नन्दिकेश्वरी, उषा, पार्वती और ययातिकेशरी ये छ काव्य ग्रीक और अग्रेजी साहित्य की विषय-वस्तुओ पर प्रतिष्ठित है, फिर भी पढते समय साधारणत पहले तो इनमें बैदेशिकता के सकेत नही मालूम पडते। दूसरे देश की भौगोलिक परिस्थिति, प्रकृति-वर्णन और इतिहास (सपूर्ण ऐतिहासिक सत्य पर नही) के माध्यम से विदेशी कथावस्तु को इस देश की कहानियो किंवदन्तियो

कपोलकल्पित नही है। इन वातो को झूठा जानने के पहले विद्वानो को वहाँ जाना होगा जहाँ मानव के जन्म का श्रीगणेश हुआ और वह ठीक तौर से सोचने-समझने लग गया होगा। आज की यह दुनिया कुछ मिनिट, कुछ घण्टो की रही होगी और अगर हम इसको न भी मानें तो मानना होगा कि भारत की आर्य सस्कृति दुनिया में सर्वोत्तम विधि-वन्ध था। यह सभी स्वीकार कर चुके है कि ऋग्वेद का आविर्भाव दुनिया के साहित्य से वहुत प्रथम का है। इसीलिए भारतीय सस्कृति में साहित्य के साथ ये सारे विपय अगागी भाव से जुडे हैं। इनको कभी छोडा नही जा सकता। इनको छोडना साहित्य के अग का छेदन करना होगा।

इन सारी बातो का अगर भारतीय भावधारा में ओतप्रोत होकर गहराई के साथ मनन किया जाय तो सारा विषय एक के वाद एक स्वच्छ शुक्लाम्वरधारी-सा सामने आ जायगा। परन्तु इसको तो पाश्चात्य ऐतिहासिक विद्वानो के झूठे तर्क के वल कसौटी पर रगडा जायगा ? और इसमें इतनी वडी चमक आयेगी कि सत्य नही सूझेगा, अँधेरा ही अँधेरा नजर आयगा—जहाँ केवल झूठ है, शक का रूप है।

ऊपर हमने कहा है कि राम के हृदय का अध्ययन करने की कोशिश किसी विद्वान् ने नही की है। यह वात केवल राम के सवव की नही है। किसी भी भारतीय महामानव के दिल की थाह उन लोगो को नही मिली है। उनके ज्ञान का अध्ययन नही किया गया। उनके, जगलो के रहन-सहन को नही समझा है। विन्ध्य-हिमालय के विद्यापीठ से जो ज्ञान उन्होने प्राप्त किया था उसकी उन लोगो को कल्पना तक नही है। उलटे अपने अज्ञान को छिपाने के लिए राम के पुरुषोत्तमत्व पर छीटाकशी की गई है। जगली भिखारी कहकर विनोद का विषय वनाया गया है। भारतीय भी उसे पढते है, खुश होते है। वे भूल गये हैं कि जिन विषयो को भारतीय साहित्य-निर्माताओ ने नीरस, निर्जीव कहकर फेंक दिया था आज उसी को सरस समझकर चिचोरा जाता है। जिन ज्ञानियो की एक कौपीन पर सारा राजपाट निछावर होता था आज उन्ही की सन्तानें रोटी के टुकडो के लिए खीसें निकालती फिरती है।

रोटी ने उनको भुला दिया है कि हम क्या है और क्या थे, हमारे साहित्य की सीख क्या थी? उसका लक्ष्य क्या था ? तव क्या सोचने के लिए साहित्य मजबूर करता था और अव क्या कहता और करता है ? कोई भी भला इधर कुछ सोचता है कि भारतीय सस्कृति जो आदर्श सामने रखती आती है वह मानव-मगलमय है या आज जो पाश्चात्य सस्कृति हमें बतला रही है कि प्रथम आनन्दमय जीवन-यापन करो, जो ऐसा नही हो सकता वह कुछ भी नही कर सकता। और अगर यही सर्वोत्तम है तो हमे सोचना है कि हम सर्वोत्तम पथ को अविलम्व प्राप्त कर लें।

भारत में आज १६ भाषाएँ प्रसिद्ध है। सभी का मूल उद्देश्य एक है। सभी भारतीय सस्कृति से ओत-प्रोत है। अगर अपनी पुरानी परपरा को विस्मरण करके ज्ञान-विज्ञान का ढोल पीटते मृगमरीचिका के पीछे दौडा गया तो मगल कभी नही होगा। इसलिए जरूरत है उस सत्य-युग, त्रेता, द्वापर की सस्कृति का आहरण करने की। यह कोई अलभ्य वस्तु नही है। जव कि एक

जो लोग इनके साहित्य का आदर नही कर सके, उन्होंने प्रथम विषय को ही दृष्टि में रखकर अपनी अंतिम राय दे दी है। राधानाथ ने किस प्रकार अपनी अद्‌भुत् प्रतिभा के वल से विदेशी कथावस्तु को इस देश की मिट्टी के साथ मिला कर अपूर्व कृतित्व का अर्जन किया है और इस सयोग से काव्य- सौदर्य में करुण रस की प्रतिष्ठा का जो प्रयास किया है, इस श्रेणी के पाठक इस ओर बिल्कुल ध्यान ही नही दे सके। किंतु ध्यान देने की वात है कि शेष दो विषय जो पहले पूर्णरूप से विदेशी थे, वे कवि के अमर कर-स्पर्श से देशी वातावरण में फलफूल कर इस देश की ही उपज हो उठे हैं। सपूर्ण रूप से निर्जीव होने पर भी मूल विषय-वस्तु ने राधानाथ के काव्य को एक स्वतत्र रूप विभव से मडित कर दिया है जो इस देश के लिये स्वप्न ही था। इनके काव्य का करुण रस ही इस रूप की अशेष और सर्वश्रेष्ठ आत्मिक रस-सपत्ति है। यह सपत्ति जिस प्रकार अभिनव, अविस्मरणीय और उज्ज्वल है, इसके परिशीलन के लिये आवश्यक अभि-रुचि भी उसी प्रकार अद्वितीय, अपूर्व और अदृष्टपूर्व होनी चाहिये। यह निश्चित रूप से प्रमाणित किया जा सकता है कि यह अभिरुचि पाश्चात्य तथा ग्रीक साहित्य के दुखात आदर्श से नियन्त्रित है।

प्रकृति-प्रेमी राधानाथ को प्रकृति-चित्रण में जो अपूर्व दक्षता प्राप्त थी, वह उनके दूसरे काव्यो में आशिक रूप से और 'चिलिका' में पूर्णरूप से परिलक्षित होती है। गतानुगतिक काव्य नियम अर्थात् काव्य में भिन्न भिन्न चरित्र-चित्रण, विभिन्न छद-सयोजन, आरभ में देव देवी-स्तुति, कथावस्तु का उल्लेख, निर्दिष्ट रस परिपाक के लिये अनुकूल वातावरण की सृष्टि आदि—का इस चिलिका में पूर्ण अभाव है, फिर भी यह एक खडकाव्य है। ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि 'चिलिका' की प्रकृति ही इस काव्य की नायिका है और विभिन्न कथाएँ इसी को केंद्रित किये हुई हैं। प्रकृति को नायिका मानकर विभिन्न कथावस्तुओ के सहारे प्रकृति-चित्रण की अनवद्य रूप-विभा द्वारा उसे अखड सौंदर्य प्रदान कर देना, उच्च कोटि की प्रतिभा की अपेक्षा रखता है। प्रकृति के अखड रस का साक्षात्कार कर राधानाथ ने उसके विभिन्न विभाग को कम-नीय और लोभनीय भाषा से विमडित किया है। ललित सौंदर्य-बोध और सशक्त काव्य-प्रतिभा इस काव्य की प्रत्येक पक्ति में परिदृष्ट है।

इसका परिणाम यह हुआ कि अमर कवि के अमर कर-स्पर्श से जड प्रकृति का प्राणहीन और अन्त सार-शून्य पदार्थ नूतन जीवन्यास पाकर नये स्पन्दनो से उज्जीवित हो उठा है। चिलिका काव्य में अनेक स्थानो पर दूसरे साहित्य का श्लोकगत अनुसरण दिखाई पडता है, तथापि इस काव्य में, कलापक्ष (रूपविभव), स्वतत्र रससौन्दर्य, काव्यसृष्टि की परिकल्पना आदि के द्वारा सर्वोपरि काव्य की समग्रता का जो सामजस्य बोध होता है, वह वास्तव मे अभिनव और असा-धारण है।

केवल महायात्रा काव्य ही राधानाथ के समूचे कविजीवन और उनकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा के स्फुरण का निर्दशन है। यह काव्य महाभारत में वर्णित युधिष्ठिर के महाप्रयाण के अनुसरण पर लिखा गया है, फिर भी यह महाभारत की नकल नहीं है। इस काव्य में भारत का इतिहास

स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। परन्तु दार्शनिक चिन्ताओ से युक्त जो कई कविताएँ उनके जीवन के दृष्टिकोण तथा रचनात्मक-अतर्दृष्टि का परिचय दती है, वे ही ओडिया साहित्य के यथार्थ अवदान के रूप में जनता द्वारा गृहीत हैं।

कुछ अग्रेजी कविताएँ और सस्कृत काव्यो (वाल रामायण, उत्तर रामचरित) के अनुवादो को छोडकर मधुसूदन ने केवल ओडिया गद्य और गीति कविता के द्वारा ही अक्षय कीर्ति अर्जित की है। पहले पहल उन्ही के हाथो सुघर-सँवर कर वग भाषा मिश्रित ओडिया गद्य एक सुरुचि-सपन्न और मार्जित रूप में दिखाई पडा था। वे ही सस्कृत-बहुल गद्य साहित्य के जन्मदाता, प्रतिष्ठाता तथा ओडिया प्रवन्ध साहित्य के आदि-प्रवर्तक हैं। इसके अतिरिक्त वे ओडिया गल्प साहित्य (यह साहित्य उच्च कोटि का नही है) के जनक हैं। नाटक (अनुवाद), प्रवन्ध तथा गल्प में हाथ डालने एव ओडिया चतुर्दश पदी कविता (सानेट) के विभिन्न छन्दो का अनुसरण करने पर भी मधुसूदन केवल गीतिकविताओ के द्वारा ही अमर होकर रहे हैं। लक्ष्य करने की वात है कि ये कविताएँ उनके जीवन की अभिवृद्धि के साथ उत्तरोत्तर क्रमिक रूप में ही गतिमुखर हुई है।

प० शिवनाथ शास्त्री के द्वारा प्रतिष्ठित 'साधारण ब्राह्म समाज' में होते हुए भी मधुसूदन का अखड विश्वास केशवचन्द्र सेन के 'नवविधान' पर ही था। उनके धर्ममत तथा कविप्रतिष्ठा का अनुध्यान करने पर मधुसूदन की रचनाओ में, एक महत् उदार मनोभाव के साथ प्राचीन भारतीय धर्मसस्था के प्रति अखड ममता प्रकट करने वाले साधारण 'ब्रह्म समाज' का आदर्श दिखाई पडता है।

मधुसूदन की जीवन-चिन्ता (सन् १८७३) कविता में वर्णित सपृक्त और सार्थक जीवन की अनुचिन्ता, भारतीय धर्मदर्शन के आत्मा-परमात्मा और उनके मधुर मिलन पर प्रतिष्ठित है। परमात्मा के साथ मिल जाना ही जीवात्मा की सर्वश्रेष्ठ कामना है—यह मर्मवाणी उनकी परवर्ती कविताओ में अधिक स्पष्ट रूप में प्रख्यापित हुई है। जान पडता है कि मधुसूदन ने १८८० ई० तक केवल धर्म-विषयक चिन्ता की है और बाद में इसे ही यथार्थ साहित्यिक गौरव से विभूषित किया है। अगर १८७० ई० से १८८० ई० तक का समय उनके जीवन की तैयारी का युग मान लिया जाय तो १८८१ से ९० तक के समय को उनके उन्मेष का युग कहा जा सकता है। आकाश प्रति (१८८५) आदि कविताओ में जिस दार्शनिक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है वह १८९१-९७ के भीतर अपनी पूर्णावस्था तक पहुँच गया था। ऋषि प्राणे देवावतरण नामक कविता मे जो दिव्य दृष्टि ऋषि के प्राण में वास्तविक सत्य की उपलब्धि कर सकी थी वही दिव्य दृष्टि भक्त कवि मधुसूदन के अपने हृदय-कदर में एक चिन्मयी भगवत शक्ति के रूप से आविर्भूत है। हिमाचले उदय उत्सव (१९१२) कविता में वही दिव्य दृष्टि केवल अनुसधान करने के लिये समर्थ हुई थी।

यदि अन्य रचनाओं को छोड केवल जीवन-चिन्ता, आकाशप्रति, ऋषिप्राणे देवावतरण और हिमाचले उदय उत्सव—इन चार कविताओ की भाषा, भाव प्रकाशन-शैली तथा दार्शनिक

होने पर भी वह नाट्य रस की निष्पत्ति कराने में पूर्ण समर्थ है। रामशकर के दूसरे नाटक और प्रहसन उस समय तक यथेष्ट लोकप्रिय हो चुके थे लेकिन आभ्यतर सौन्दर्य तथा रगमच की दृष्टि से आज इन नाटको और प्रहसनो का मूल्य वहुत कम है। लेकिन इसे तो स्वीकार ही करना पडता है कि एक नये साहित्य का रस ग्रहण करने के लिये जिस नवीन दृष्टिकोण और अभिरुचि की आवश्यकता होती है, वह इन नाटको मे अवश्य है। इनके नाटको में से कुछ तो पौराणिक हैं और कुछ उस समय के समाज की दुर्बलताओ को आधार वनाकर रचे गये हैं। रामशकर प्राचीन कुसस्कारो को दूर करने के पक्षपाती थे। किन्तु प्राचीन सस्था और धर्म मे वे कुछ भी परिवर्तन नही चाहते थे, इसलिये 'सनातन धर्म सरक्षिणी सभा' का नेतृत्व ग्रहण कर उन्होने हिंदू धर्म मे सुधार की आवश्यकता समझी थी। कई उपनिषदो के अनुवादो और धार्मिक निवन्धो से उनका धर्ममतवाद स्पष्ट हो जाता है। रामशकर ने उपन्यास और नाटक की जो परपरा चलाई, कालातर में श्रीयुत फकीरमोहन और गोदावरीश उसके यथार्थ उत्तराधिकारी वने।

## आधुनिक ओड़िया साहित्य के विकास का द्वितीय पर्व

## (१८९७–१९२०)

सन् १८०३ से १९०३ ई० के पूरे सौ वर्षों तक लाछित और अवहेलित ओडिया जाति का प्राण केन्द्र कक्षच्युत होकर दिग्भ्रात तथा चैतन्यशून्य होकर पडा रहा। दिसवर सन् १९०३ ई० में इस जाति के यथार्थ नायक श्री मधुसूदन के द्वारा जातिप्राण की रुद्ध और दमित अभीप्सा पहले पहल सगठित हुई। जातीय आशा-आकाक्षा के मूर्त प्रतीक 'उत्कल-सम्मिलनी' ने (१९०३) 'उत्कल साहित्य समाज' (१९०३) के साथ साहित्य निर्माण की नई प्रेरणायें दी। बीसवी सदी के पहले के वीस वर्षों का ओडिया साहित्य इन दो सस्थाओ के द्वारा अच्छी तरह प्रभावित हुआ था।

उन्नीसवी सदी के अन्त में नूतन अभ्यु|त्थत साहित्य की गति कई कारणो से रुद्ध हो गई थी। 'इन्द्रधनु' और 'बिजुली' नाम के दो सामयिक साहित्य पत्रो ने क्रमश प्राचीन (उपेन्द्र भज) और आधुनिक (राधानाथ) साहित्य की जयध्वजा उठाई थी। लेकिन साहित्य समालोचना के पवित्र नाम पर इन पत्रो ने अनेक बार जिस व्यक्तिगत कुत्सा की रटना की उससे राधानाथ ही विशेष क्षतिग्रस्त हुए। उसी समय से राधानाथ के पक्ष और विपक्ष क लेखक राधानाथ साहित्य की अन्तर्दृष्टि का निरीक्षण किये बिना ही उसके बहिरग स्वरूप पर घोर शकालु हो उठे। साथ ही ये लोग ओडिया साहित्य को दूसरी एक स्वतत्र धारा में प्रवाहित करने के लिये प्रयत्नशील हुए। अत सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि इन्द्रधनु और बिजुली के साहित्यिक विवाद ने राधानाथ की परपरा को पूरी तरह से अवरुद्ध कर एक दूसरी ही धारा का आह्वान किया था। इसलिये जो काव्य राधानाथ परपरा के श्रेष्ठ निदर्शन हैं वे सब इसी समय से अनादृत होने लगे और उसके स्थान पर उपन्यास, गल्प, नाटक, प्रवन्ध तथा गीति कविता आदि अधिकार

शिक्षाभिमानी शिक्षित निम्न मध्यवर्ग ने देश की भाग्य-डोरी को हस्तगत कर किस प्रकार जाति का शोषण किया था, उसका चित्र मामु और प्रायश्चित में दिखाई पडता है।

शोषण और निष्पेषण सेनापति के उपन्यासो के प्राण-केन्द्र है। अत करुण रस की अपूर्व मूर्च्छना साहित्य के वास्तविक स्वर में अनुभूत हुई है। जहा शोषित और निष्पेषित तथा मूक और अकर्मण्य है वही शोषण की तीव्रता अधिक घनीभूत होती है। सेनापति के उपन्यास इसी घनीभूत और मर्मभेदी करुण रस के मूर्त प्रतीक है। अपमानित, लाछित और अत्याचार से जर्जरित इस अभिशप्त जाति का करुण-क्रन्दन, सेनापति जी की प्रत्यक्ष अनुभूति तथा कला की सूक्ष्म अभि-व्यक्ति पर प्रतिष्ठित है। अत इन उपन्यासो का सौदर्य साधारण पाठको के मन को भी विमुग्ध कर देता है।

उन्नीसवी शताब्दी के शेष ३० वर्षों के भीतर इस देश की नूतन अभ्युत्थित एव शिक्षित मध्यवित्त श्रेणी ने देश, जाति तथा समाज की मगल-कामना से जिस विप्लव का सूत्रपात किया था, उसके फलस्वरूप इस देश की परपरागत सामाजिक सस्था कठोर आलोचना का शिकार हुई। इसी समय प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षा के सघर्ष के कारण अग्रेजी शिक्षा के कई कुफल सिर उठाकर खडे हो गये। ये दोनो कुफल या कुसस्कार (पारपरिक कुसस्कार और अग्रेजी-शिक्षा-प्रसूत कुसस्कार) सेनापति के क्षुद्र गल्पो में यथार्थ रूप से चित्रित है। ये कहानियाँ सस्कार-मुखी युग में लिखी जाने पर भी साधारण प्रचारमुखी साहित्य के अगीभूत नही है। लोगो के मन से कुसस्कारो का हटाना ही गल्पकार का प्रधान लक्ष्य था। लेकिन यह लक्ष्य अन्य एक अभिनव उपाय से साधित था। इसी उपाय या पथ ने इन कहानियो की रचना को शाश्वत सौन्दर्य प्रदान किया है। स्त्री-शिक्षा के प्रति वितृष्णा, अग्रेजी सीखने पर मद्यपान और वेश्यालय जाना, शिक्षा पाने के बाद मा-बाप का अनादर करना, नव-विवाहिता स्त्री का दिन में स्वामी का मुख न देखना, मामूली सरकारी नौकरी पाने पर उद्धत स्वभाव का हो जाना, स्वामी की नौकरी के गुमान में स्त्री का दूसरो को अपमानित करना, धर्म के नाम पर पाखण्ड और शठता का परिप्रचार और आत्मीयता दिखाकर निरीह लोगो के शोषण की मनोवृत्ति आदि मनुष्य के मन की इन सभी दुर्बलताओ ने अलग-अलग परिवेशो मे उपस्थित होकर सेनापति की कहानियो को सौन्दर्य प्रदान किया है। सेनापति मानवधर्मी थे और मनुष्य की दुर्बलताओ से घृणा करते थे। किंतु मनुष्य ही उनकी समस्त आन्तरिक सवेदनाओ का केन्द्र था। इसलिये जिन कुसस्कारो पर उन्होने निर्मम आघात किया है उन्ही के अभिनेता ही उनके गल्पसाहित्य की रमणीय सृष्टि वने। उन्होने इस अत्याचार पर आघात करने के लिये हास्यरसात्मक भाषा या परिस्थिति का आश्रय लिया है। पाठक इसी हास्यरस के उत्ताल स्रोत से चलकर एक हृदयविदारक करुणालय में पहुँच जाता है। फलत सामाजिक सस्कारो का लक्ष्य हास्यरस के भीतर से होकर करुणारस में परिणत हो गया है। समूचे गल्प मे झकृत करुण रस की यह अपूर्व मूर्छना ही सेनापति की कलाकृति का अन-वद्य अवदान है। दलित, निष्पेषित, अत्याचार से पीडित प्राणो की करुण झकार ही उनके उपन्यास और कहानियो का प्राणकेन्द्र वनकर आया है। उन्नीसवी सदी की अवहेलित ओडिया जाति का

राधानाथ आदि के काव्यपन्थ को स्वीकार कर लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस कवि-प्रतिभा ने इन्दुमती (१८९४ ई०) कीचक-वध (१९०४ ई०) और उत्कल-लक्ष्मी (१८९४ ई०) आदि रचनाओ में स्निग्ध किरण का वितरण किया था वह प्रणयवल्लरी (सन् १९१५), तपस्विनी (१९१२ ई०) आदि परवर्ती रचनाओ में पूर्णावस्था को पहुँच गयी थी। कविवर राधानाथ राय ने पहले काव्य की समस्त गभीरता तथा शक्तिमत्ता की रक्षा करते हुए उसकी भाषा को सरल और सुवोध बनाने का प्रयत्न किया था। किन्तु मेहेर ने इस दिशा में और भी अधिक अग्रसर होकर भाषा को मधुर, सरल तथा कोमल बनाया। प्रकृति के अविस्मरणीय चित्राकन में मेहेर जी सिद्धहस्त थे। सस्कृत साहित्य के कालिदास और भवभूति आदि कवियो के अनुसरण पर आपने अपने काव्य के पात्रो मे उनके जीवनादर्श की जीवन्त प्रतिष्ठा की है। उनकी कई गीति-रचनाओ मे जातीयता का भाव और ईश्वर-भक्ति प्रदर्शित है।

बीसवी शताब्दी के प्रथम बीस वर्षों मे अनेक लेखको ने काव्य तथा गीति कविताओ की रचना में भाग लिया है। इनमें सर्वश्री कविवर चिन्तामणि महान्ति, मदनमोहन पटनायक, पद्मचरण पटनायक, दीनबन्धु काव्यरजन कृष्णमोहन पट्टनायक, लक्ष्मीकान्त महापात्र आदि मुख्य हैं। इनमें से चिन्तामणि महान्ति ने काव्यो, उपन्यासो, क्षुद्र गल्पो तथा गीतिकविताओ का ढेर सा लगा दिया है। उपरोक्त अन्य कवियो के द्वारा रचित गीति कविताओ में भाव और कला-वैचित्र्य की विविधता के दर्शन होते हैं। श्री लक्ष्मीकान्त महापात्र ने, रोगराक्षस द्वारा तिल-तिल कटते हुए भी इस देश के पाठको के हाथ अनेक लालिकाएँ तथा हास्य रसात्मक कविताएँ दी हैं। स्वय दु ख भोगते हुए भी दूसरो को हसाने का ऐसा प्रयास लक्ष्मीकात के अतिरिक्त अन्य कोई लेखक नही कर सका है। क्षुद्र गल्प लिखने में सर्वश्री लक्ष्मीकान्त महापात्र, चन्द्रशेखर नन्द, बाँकनिधि पटनायक, दयानिधि मिश्र, दिव्य सिह पाणिग्राही आदि ने पर्याप्त साधना की है। इनकी कहानियाँ समाजसुधार अथवा देश-प्रेम मे केन्द्रित होती हुई भी परपरा के साथ आगे बढी हैं। इनमें से श्री दयानिधि मिश्र ने ऐतिहासिक क्षुद्र गल्प लिखकर बडा नाम कमाया है। हास्यरस रसिक श्री गोपालचन्द्र प्रहराज की रचनाओ में तीव्र व्यग और हास्य का दर्शन होता है। शिशुसगीत की रचना और ग्राम्य कहानियो के सग्रह के अतिरिक्त इन्होने बाद में पूर्णचद्र ओडिया भाषा-कोश नामक एक अभिधान ग्रन्थ की रचना की थी, जिससे वे इस देश में सदा के लिये अपना नाम छोड गये हैं। इसी समय दक्षिण ओडिशा में नाटक-रचना की दिशा में एक अपूर्व उत्साह जागृत हुआ।

स्वर्गीय महाराजा श्री पद्मनाभ नारायण देव (१८७२-१९०४) और चित्किटी अधीश्वर श्री राधामोहन राजेन्द्र देव ने अपने राज्य में नाट्यदल सगठन, मचनिर्माण और नाटक-रचना पर विशेष ध्यान देकर ओडिया नाटक साहित्य को जीवित रखने की अनोखी साधना की है। उत्तर ओडिशा में श्री रामशकर के साथ श्री भिकारीचरण पटनायक ने भी नाटक-रचना के द्वारा विशेष यश कमाया। इस प्रात में प्रचलित यात्राओ (लीलाओ या स्वागो) के सस्कार के लिये रामशकर राय और कृष्णप्रसाद चौधरी आदि विभिन्न लेखको ने अनेक उपादेय परामर्श

'कोणार्क" और "बारवाटी" ग्रन्थ इतिहास तथा साहित्य दोनो दृष्टियो से अत्यन्त मूल्यवान् और उपादेय है। इनका साहित्य इस अभिमत का यथार्थ साक्षी है कि निर्जीव इतिहास भी भाषा के जादू से प्राणवन्त हो उठता है। उक्त पाच व्यक्तियो में से नीलकण्ठ और गोदावरीश साहित्य के वास्तविक स्रष्टा हैं। बहुलता तथा उपादेयता की दृष्टि से इन दोनो ने जो कृतित्व अर्जित किया है वह अद्वितीय और नमस्य है। नीलकण्ठ दास जी की ४८ वर्ष की लबी साहित्य साधना का विचार करने पर तो स्तभित होना पडता है। प्राथमिक जीवन में सत्यवादी स्कूल के शिक्षक नीलकण्ठ का परिचय हम कवि और सुधारक के रूप से पाते हैं। विभिन्न निबधो, विशेषकर मेरी मूछ (मो निश) के द्वारा उन्होने जिस प्रकार ब्राह्मण समाज को व्यग्य-विद्रूप की तलवार से व्यतिव्यस्त कर इस देश में समाज-सुधार का एक विराट् आन्दोलन खडा किया था, उसकी स्मृति लोगो के मन में अब तक है। इनके "प्रणयिनी", "दास नायक" प्रभृति अनुवाद तथा "खार-वेल" काव्य में कविचित्त की एक अपूर्व निष्ठा और सृष्टि प्रेरणा का आदि उन्मेष साफ परिलक्षित होता है। कोणार्क काव्य नीलकण्ठ-कविप्रतिभा की उपयुक्त मानस सन्तान है। उग्र जातीयता बोध के महनीय कल्पना-विलास के साथ यथार्थ के मधुर समन्वय ने इस काव्य को एक मनोहर कृति में परिणत कर दिया है। सन् १९२१ के बाद से हम कवि नीलकण्ठ को एक राजनीति विशारद नेता के रूप में देखते हैं। उसी समय से सन् १९३४ तक उनके राजनीति में आने के कारण उन्हें फिर साहित्य सेवा की सुविधा नही मिल सकी। सन् १९३४ से अर्थात् नवभारत मासिक पत्रिका के सपादन के समय से नीलकण्ठ जी की रचनात्मक प्रतिभा का विनियोग ओडिया साहित्य की समालोचना में हुआ दिखाई पडता है। भगवद्गीता की मनोहर व्याख्या ओडिया सभ्यता और सस्कृति की अपूर्व प्रख्यापना, जगन्नाथ धर्म के दर्शन की प्रतिष्ठा, ओडिया साहित्य की परिणति का क्रमिक प्रदर्शन—ये सभी समालोचना साहित्य में दार्शनिक नीलकण्ठ की बलिष्ठ अभि-व्यक्तियाँ हैं। युक्ति की सशक्तता, भाषा की सक्षिप्तता, भावाभिव्यक्ति की चिरनूतनता विषय वस्तु के पर्यालोचन की मौलिकता आदि नीलकण्ठ के समालोचना साहित्य की विशषताएँ है। युक्ति की पुनरुक्ति और धर्मालोचना के समय असहिष्णुता आदि कई दोषो को छोडकर नीलकण्ठ का समालोचना साहित्य ओडिया साहित्य में अद्वितीय है।

पडित गोदावरीश असल मे गीति-कवि हैं। उन्होने नाट्यकार बनने की भी कोशिश की पर उसमें उन्हे सफलता नही मिली। आज उनके नाटको को मचगौरव नही प्राप्त है। इन्होने निबन्ध, समालोचना, उपन्यास तथा क्षुद्र गल्प मे भी हाथ डाला है, लेकिन केवल गाथा कविता मे ही अमर हो सके हैं। "कलिका" और "किशलय" में उनकी प्रतिभा का प्राथमिक उन्मेष देखने को मिलता है। इनमें निष्कपट हृदय कन्दर से नि सृत निर्झर के झर्झर नाद की भाति सरल तरल भावराशि प्रवाहित हुई है। सत्यवादी का बकुल-वन उनके साहित्य में मूर्तिमान हो उठा है। 'आलेखिका' उनकी प्रतिभा का श्रेष्ठ अवदान है। साधारण घरेलू भाषा और सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन के परिवेश में, जातीयता के उज्ज्वल आलोक से दीप्तिमन्त और गभीर करुणा मूर्च्छना में परिसमाप्त होकर, अतीत इतिहास की गौरव-गाथाओ ने

बन्धु के जीवन का उद्देश्य था। अनुमान है कि उन्ही के हाथो 'समाज' पत्रिका के द्वारा ओडिया गद्य अपनी स्वाभाविक अवस्था की ओर पुन लौट आया।

गोपबन्धु जी के साहित्यिक अवदान परिमाण मे अधिक नही है पर उपादेयता में असीम है। उनके अग्निमय व्यक्तित्व का सार्थक प्रभाव पहले विशेष रूप से १९२१ के वाद नारी-कवि कुन्तलाकुमारी पर पड़ा था। 'रघु अरक्षित', 'नअतुण्डी' आदि उपन्यासो के द्वारा कुन्तलाकुमारी ने ओडिया मध्यवर्ग के चित्राकन मे फकीरमोहन की परपरा निभाई थी। वे वस्तुत गीति कवियित्री थी। उनकी कविताओ मे देश-प्रेम का अखड स्रोत प्रवाहित है। उनमें एक भक्त कवि की तरलभाव राशि का उद्वेलन है। ये कविताएँ उनके हृदय का यथार्थ परिचय देती है। सयम के अभाव के कारण उनकी गीति-कविताओ में जगह-जगह पर काव्य-नियमो का व्यक्तिक्रम भी मिलता है, फिर भी नन्दकिशोर और गोदावरीश के वाद गीति-कविता के राज्य में उन्ही का स्थान है।

आलोच्य समय (१९२१–१९३६) के भीतर प्राची समिति नाम की एक सास्कृतिक सस्था ने मध्ययुगीन साहित्य के शुद्ध सस्करण के प्रकाशन तथा गौडीय धर्म दर्शन के प्रख्यापन का बीडा उठाया था। इसके प्रतिष्ठित होने (सन् १९२७) के वहुत पहले अध्यापक आर्त्तवल्लभ महान्ति ने कई पुस्तको के शुद्ध सस्करण प्रकाशित कर ओडिया साहित्य की ओर लोगो की दृष्टि आकर्षित की थी। प्राची समिति के प्रतिष्ठाता और परिचालक श्री आर्त्तवल्लभ महान्ति ने अपने गभीर पाण्डित्य, निरलस अध्यवसाय और असीम साधना से इन शुद्ध सस्करणो के द्वारा मध्ययुगीन साहित्य के गौरव के अनुभव करने की सुविधा दी है। ग्रन्थो के शुद्ध सस्करण के साथ-साथ पाण्डित्यपूर्ण टीका और तथ्यपूर्ण मुखवन्ध लिखकर उन्होने समालोचना साहित्य की यथेष्ट उन्नति की है। सर्वश्री अध्यापक करुणाकर कर, अध्यापक लक्ष्मीकान्त चौधुरी, अध्यापक घनश्यामदास, सुधाकर पटनायक तथा विच्छदचरण पटनायक आदि गवेषकों, साहित्यिको तथा ऐतिहासिको के सहयोग से श्री आर्त्तवल्लभ महान्ति जी ने गवेषणा और समालोचना की जिस मूलभित्ति की स्थापना की है (कम से कम मध्ययुगीन साहित्य क्षेत्र में) वह ठोस और प्रशसनीय है।

बग कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने १९१३ ई० मे नोवेल पुरस्कार पाया था। प्रथम महायुद्ध (१९१४–१८) के कारण रवीन्द्र साहित्य १९२० तक भारत में अच्छी तरह प्रचारित नही हो पाया था। लेकिन १९२० के वाद भारतीय साहित्यिक रवीन्द्र साहित्य खासकर 'गीताजलि' के साहित्यिक गौरव तथा रहस्यवाद की ओर आकृष्ट हुए। भारत के दूसरे लेखको की तरह ओडिशा के कई कालेजो के छात्र इसी समय रवीन्द्र साहित्य से प्रभावित हुए थे। सर्वश्री अन्नदाशकर राय, शरतचन्द्र मुखर्जी, कालिन्दीचरण पाणिग्राही, वैकुण्ठनाथ पटनायक और हरिहर महापात्र इन पाच व्यक्तियो ने शान्तिनिकेतन की (सबुजपत्र) पत्रिका के आदर्श से अनुप्राणित होकर एक स्वतत्र साहित्यिक धारा का सूत्रपात किया था। इनकी कुछ कविताएँ पहले १९३१ ई० में ('सबुज कविता' नामक पुस्तक मे प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त इन लोगो ने सबुजसमिति नामक एक सास्कृतिक सस्था स्थापित कर उसके मुखपत्र के रूप में 'युगवीणा' नामक एक मासिक पत्रिका

आदि इसकी कुछ विशेषताएँ है। सबुज (हरा रग) नूतन स्पदन और वलिष्ठ जीवन का और सबुज हीनता प्राण-शून्यता का द्योतक है। नूतन सृष्टि के लिये, एक सजीव अभिलाष पोषण तथा आहरण के आगिक परिवेश के भीतर युवचित्त की परिपूर्ण अभिव्यक्ति की प्रतिष्ठा ही सबुज साहित्य का स्वरूप है। इस साहित्य का स्थिति-काल केवल दस साल का है, फिर भी ओडिया साहित्य में इसका आगमन अप्रासगिक, अवान्तर, अहेतुक या अस्पृहणीय नही है। इस साहित्य की कई कविताओ में कुछ अवाछित उपादानो का समावेश देखकर सपूर्ण साहित्य को अस्वीकार कर देना ठीक नही। मधुसूदन ने ओडिया गीति-कविताओ की जो नीव डाली थी, वह श्री नन्दकिशोर, मदनमोहन, पद्मचरण तथा गोदावरीश के द्वारा यथेष्ट रूप से पल्लवित हुई है। फिर भी सन् १९२० तक इसकी शैली (आगिक रूप-विभव) में कोई वहुत वडा परिवर्तन नही हुआ था। कविता के इस रूप-वैचित्र्य के सपादन का श्रेय सवुज साहित्य को ही है।

सबुज कवि तथा सबुज साहित्य का रूप लगभग १९३० के वाद वदल गया था। १९३० के बाद ओडिया में जिस स्वतत्र साहित्य ने सिर उठाया, उसमें सब्ज कवियो ने अपने को मिला दिया था। अत इसके वाद उन्हे तथा उनके साहित्य को 'सवुज' नाम देना कोई विशेष अर्थ रखता है—ऐसा हम नही सोचते।

कालिन्दीचरण का उपन्यास "माटिर मणिष" (१९३१) सबुज कवियो के मानसिक परिवर्तन का एक स्पष्ट सकेत है। सबुज कवि मिट्टी के हवापानी और मनुष्य को छोडकर परी राज्य में ही विचरण करते है, ऐसा विचार रखनेवालो के लिये ही शायद 'माटिर मणिष' का उपहार उपस्थित किया गया है, जिसमें माटी की प्रकृत सन्तान को चित्रित करने की कोशिश की गई है। माटिर मणिष का एक मुख्य पात्र बरजू आदर्श गाधीवादी है। कालिन्दीचरण का परवर्ती उपन्यास "लुहार मणिष" पढने पर यह धारणा वद्धमूल हो जाती है कि गान्धी आन्दोलन में केन्द्रित होकर जो साहित्य इस देश में गढ उठा था, उसका प्रथम आलोक माटिर मणिष उपन्यास है। फकीर-मोहन के वाद उपन्यास-जगत् में माटिर मणिष न ही ग्राम्य जीवन का एक जीवन्त चित्र प्रदान किया है। कालिंदी बाबू के 'मुक्तागडर क्षुधा' तथा 'अमर चिता' उपन्यास ओडिया साहित्य के विशिष्ट अवदान है।

आलोच्य समय (१९२०–३६) श्री मायाधर मानसिंह की कविप्रतिभा के उन्मेष और विकास का युग है। सन् १९२६ से आज तक कवि मानसिंह जी ने जिस साहित्य की रचना की है, वह परिमाण और रूप-वैचित्र्य दोनो दृष्टियो से प्रणिधान योग्य है। गीति कविता, काव्य, नाटक, उपन्यास, गल्प, भ्रमण साहित्य, साहित्यालोचना, ओडिया ज्ञान-कोश (सकलन) आदि, साहित्य के विभिन्न रूपो तथा विषय-वस्तुओ की विशिष्टताओ द्वारा मानसिंह (रूप और पद से) महान् लगते है। ऐसा नही लगता कि कहानी या उपन्यास में उन्होने विशेष कृतित्व अर्जित किया है। इनके नाटक तीव्र जातीय भाव पर प्रतिष्ठित होने पर भी उनका मचमूल्य आदि नही है। उनका काव्य "कमलायन" विषयवस्तु की दृष्टि से अभिनव है और साहित्य-समीक्षा तो अत्यत उपादेय है। अन्य कृतियो के रचना-सौन्दर्य ने उनके कविचित्त को जिस प्रकार प्रभावित किया है उसे उन्होने

किन्तु आज हम जिस विप्लवी सच्चिदानन्द को जानते ह वे १९३६ ई० के वाद के गण कवि सच्चिदानन्द ही है। राधामोहन गडनायक की कविप्रतिभा आज भी म्लान नही हुई है। उनकी 'विप्लवी राधानाथ' नामक कविता पुस्तक में कवि राधानाथ पर उनके तीक्ष्ण रस-वोध का जो परिचय मिलता है, वह परवर्ती साहित्यालोचनाओ में अच्छी तरह विदित है। कालिदास नाटक में कवि कालिदास के कला-सर्जन की जो तीर्यक् दृष्टि-भगी दिखाई पडती है, वह उनकी समस्त गीति-कविताओं में भी परिलक्षित होती है। गोदावरीश मिश्र के वाद राधामोहन गडनायक गाथा-कविता रचना के एक निपुण कलाकार है। उनकी मधुर छद-योजना तथा विषय-वस्तु की नवीन परिकल्पना के कारण इस जाति का अतीत वैभव अत्यत हृदयग्राही हो उठा है। गडनायक की गीति-कविताओ को पढते समय उपयुक्त भावद्योतक मधुर शब्दो का प्रयोग, सौन्दर्य निहित कथावस्तु का आहरण, रस तथा वैचित्र्य-उत्पादक विषय-विन्यास, कलात्मक सौन्दर्य के प्रख्यापन के लिये कवि-चित्त की एक अखण्ड रसपिपासा आदि विशेषताएँ पाई जाती है।

## सन् १९३६ से ४७ तक का ओड़िया साहित्य

चिर-अवहेलित ओडिया प्राण में अपने स्वतत्र प्रान्त गढने की जो अभिलाषा थी, वह १९३६ ई० में कुछ अशो में सिद्ध हुई। स्वतत्र प्रान्त बन जाने के बाद जाति के अवचेतन मन पर अपनी स्वतत्र स्थिति की प्रतिष्ठा के लिये अपूर्व जागरण और उत्साह का उदय हुआ है। जिस युग में जाति की यह आत्मचेतना उद्‌बुद्ध हुई, उसके पहले काग्रेस ने गान्धी जी के नेतृत्व में अखिल भारतीय सग्राम चलाया था। उसने उस जागरण और समर-पिपासा को अधिक तीव्रतर बना दिया था। प्रान्तीय तथा भारतीय राजनीतिक परिस्थितियो के साथ आन्तर्जातिक राजनीति ने मिलकर इस मनोवृत्ति को एक नये आलोक में उद्‌भासित किया। गण के सर्वांगीण मगल-साधन के लिये देश में श्रेणीहीन समाज की प्रतिष्ठा, समाज में व्यक्ति का सर्वाधिक सम्मान स्वीकार, असामाजिक विभेद और अविचार का दूरीकरण, विशेष रूप से निष्पेषित, शोषित, अवहेलित जनता को धन और मान भोगने वाले मुट्ठी भर सुविधावादियो के चगुल से मुक्ति-प्रदान—कार्ल मार्क्स की यह उदात्त अमृत वाणी परीक्षित होकर ससार के विचारशील लोगो का—चिंतन विषय बन गई। इस साम्यवाद की नीति ने ओडिशा में जो रूप धारण किया, उसके प्रवर्तक है कामरेड श्री भगवती-चरण पाणिग्राही। इन्होंने नवयुग साहित्य ससद नामक एक सास्कृतिक सस्था की प्रतिष्ठा की थी। सस्था के मुखपत्र के रूप में 'आधुनिक' मासिक पत्र का प्रकाशन भी समधर्मी लेखको की सहायता से सपन्न हुआ। इससे साहित्य सृष्टि की मनोवृत्ति में एक अचिन्तनीय परिवर्तन की मजबूत नीव पडी। इसके पहले स्वप्न-विलासी सबुज कवि कालिन्दीचरण तथा वैकुण्ठनाथ ने अपने भाव-विह्वल स्वप्न-ससार तथा इन्द्रियातीत रहस्यवाद के कूटजाल से धीरे-धीरे मुक्त होकर यथार्थवादी, विद्रोहात्मक कविता का मात्र आरभ ही किया था। इन दोनो लेखको ने आलोच्य समय (१९३६–४७) के भीतर इस नूतन साहित्य की गति से होड लेकर विद्रोहात्मक कविता-रचना में विशेष सहायता की। यही नूतन साहित्य आज प्रगतिशील साहित्य कहलाता है।

वे कविता की भाषा को और भी नये रूप में उपस्थित करने में यत्नशील रहे। उन्होने निर्दिष्ट भाव-द्योतन के निमित्त आनुषगिक प्रतीकात्मक शब्द सग्रह कर कविताओ को एक ऐसा रूप दिया, जिससे वे अधिकाश पाठको के लिये अत्यत दुर्बोध्य होने लगी। कविता का यह आगिक प्रयोग पहले पहल अनेक प्रमादो के भीतर गुजरा था। लेकिन धीरे-धीरे जब लोगो के रस ग्रहण का मान-दण्ड बदलने लगा और लेखक भी दक्ष होने लगे तो इस प्रयोग के विकास में कठिनाई न रही। उदाहरणस्वरूप सच्चिदानन्द राउतराय की "भानुमतीर देश" कविता की भाषा पहले दुर्बोध्य लगती थी, किन्तु ठीक तरह से पढने पर अब कठिनाई नही रही। कविता की इस प्रतीकात्मक भाषा की शैली लेखक के गभीर रसबोध और सौन्दर्यमूलक अभिव्यक्ति पर प्रतिष्ठित होकर पाठक के अचेतन मन में किस प्रकार घनीभूत रस का पर्यवेक्षण करती है, वह पिछले दस वर्षों के भीतर लिखी गई अनन्त पटनायक, गुरुचरण महान्ति आदि की कविताओ से आसानी से समझा जा सकता है।

इस समय के साहित्य में कविताओं, गल्पो, उपन्यासो और नाटको के आत्मिक रूप-वैचित्र्य का परिचय मिलता है। अधिकतर प्रत्यक्ष शोषण अथवा इसका दूसरा कोई रूप ही रचनात्मक साहित्य का मुख्य विषय वस्तु हुआ करता था। लेकिन यदि यह शोषण किसी राजनीतिक मतवाद की पर्यालोचना में सीमित न रहे तो वह साहित्यिक रस-प्रतिष्ठा का सहायक होता है। इसी बात को दूसरे ढग से कहा जा सकता है कि शोषण रचना की विषय वस्तु होने पर भी केवल उसके मूल का परिचय ही साहित्य को गौरवान्वित नही करता बल्कि उसी शोषण को केन्द्रित कर उसे एक विशिष्ट रूप - विभव की बलिष्ठ भित्ति पर खडा करना ही ऐसी रचना का वास्तविक लक्ष्य है। जिस समय विषय-निर्वाचन तथा उसके समुचित उपस्थापन के कारण रचना का भीतरी सौन्दर्य एक अभिनव रूप पाकर स्वत स्पन्दित हो उठता है, उस समय उसका आत्मिक रस-विभव अपनी सौन्दर्यमूलक आगिक परिकल्पना पर पूरी तरह से निर्भर रहता है। इन दोनो के मधुर तथा प्रीतिकर समन्वय से यथार्थ साहित्य सौरभ प्रकाशित होता है। इस समय के गल्प, उपन्यास अथवा नाटक के कला और भाव पक्ष (आगिक तथा आत्मिक रूपविभव) में यथेष्ट परिवर्तन परिलक्षित होता है। फकीर मोहन के उपन्यासो तथा कहानियो मे चाहे जैसी विषयवस्तु हो, उनका विन्यास अनेक स्थानो पर निहायत मामूली और चमत्कारिता से शून्य है। किन्तु सन् १९२० से ३६ तक के कहानी तथा उपन्यास लेखको ने रचना की रस-द्योतना के लिये उसके आगिक रूप-विभव में वैचित्र्य स्थापन का भरसक प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न आलोच्य समय (१९३६–४७) के भीतर अधिक स्पष्ट और गतिशील हो उठा है।

पात्रो के अवचेतन मन के निगूढ भावो के उद्घाटन से ही रचना का आत्मिक रूप या अन्त सौन्दर्य बहुत बढ जाता है। यह विचित्र जगत् जिन विचित्र जीव-समूहो को अपने वक्ष में लिए प्रतिक्षण परिवर्तन के भीतर से गुजरता है, मनुष्य और उसका मन उनमें से सबसे अधिक विस्मयकर सृष्टि है। मन की यह गति अधिक अचिन्तनीय और अवर्णनीय होने लगी है, क्योकि

# उत्कल में राष्ट्रभाषा-प्रचार का विकास-क्रम

पं० अनसूयाप्रसाद पाठक

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अभिनवता, सर्वोपरि रचनाओ मे अन्तर्निहित स्वर-सौन्दर्य का तारतम्य आदि ऐसी ही कुछ अलघनीय परिस्थितियाँ ही सार्थक-समीक्षा के पथ पर प्रतिवन्धक के रूप में दिखाई पडती हे तथापि साधारण रूप से इन लेखको को चार भागो में वाँटा जा सकता है।

(क) १९२० से ३६ के भीतर ख्याति-प्राप्त कुछ लेखक। ये इन चार वर्गों मे वयोज्येष्ठ हे। इनकी साहित्य-साधना दीर्घकाल से स्थायी रहने के कारण ये पिछले २० वर्षों के अलावा इन १० वर्षों से भी सर्वश्रेष्ठ लेखक का गौरव पाते आ रहे हे। लेकिन यदि उनकी रचनाओ की अन्त प्रकृति की पर्यालोचना की जाय तो देखा जायेगा कि इनकी सारी रचनात्मक प्रतिभा साधारणत १९३६ नही तो १९४० तक म्लान हो गई है। १९३६ के वाद जिस नूतन साहित्यिक गोप्ठी ने आत्म-प्रकाश किया है, उसकी दृष्टि में ये वयोज्येष्ठ लेखक अपने अतीत शिल्प-कौशल के लिए केवल नमस्य ही होने योग्य हे। लेकिन साधारण मानविक दुर्वलता की तरह इन पहली श्रेणी के लेखको को उनकी आज की रचना के लिए भी लोग जो उच्च आसन दे रहे हे, इससे सार्थक साहित्य समीक्षा में अनेक भ्रान्तियो की सम्भावना है।

(ख) १९३६ के कुछ पूर्व या कुछ वाद के साहित्य क्षेत्र में आनेवाले लेखको के वलिष्ठ अवदान के कारण ही १९३६–५७ का साहित्य यथार्थ रूप से परिपुष्ट हुआ है। गल्प,उपन्यास में श्री गोपीनाथ महान्ति, कान्हु चरण महान्ति, गोदावरीश महापात्र, नित्यानन्द महापात्र, राजकिशोर पटनायक, राजकिशोर राय आदि, नाटक में श्री कालीचरण पटनायक आदि, कविता में अनन्त पटनायक, मनमोहन मिश्र, सच्चिदानन्द राउतराय, राधामोहन गडनायक, कुजविहारी दाश जैसे लेखको ने इस समय के भीतर अपूर्व कृतित्व अर्जित किया है। इनमें से किसीकी प्रतिभा आज अन्तिम अवस्था को पहुँच चुकी है। फिर भी यह सच है कि इनमे से अधिकाश ने अपनी अमलिन प्रतिभा की दीप्ति द्वारा भविष्य की दुनिया गढने में मन-प्राण दे दिये हे। इनकी विकासोन्मुखी प्रतिभा का आदि भाग सुस्पष्ट, मध्यभाग उज्ज्वल, रचनात्मक महिमा से महीयान् और अन्तिम भाग भविष्य के अधेरे में विलुप्त है।

(ग) पिछले दस वर्षों के कुछ पूर्व या वाद में आविर्भूत लेखक वर्ग, जिनमे से अधिकतर व्यक्ति आज केवल प्रस्तुति के मार्ग पर खडे हे, उनकी रचनाओ का आदि काल सुस्पष्ट, लेकिन वहुतो का यह मार्ग तमसाच्छन्न और अमीमासित है। इनका भविष्य आशा और नैराश्य दोनो से विजडित है। इनका प्रारभिक काल मजवूत भित्ति पर प्रतिष्ठित नही है। इसलिए इन पर अभिमत देना असगत, अवाछनीय और असामयिक है। भविष्य के उज्ज्वल आलोक से आलोकित होने के अतिरिक्त इनका और कोई साधन नही है। ऐसा दिन आयेगा जव कि ये ही लोग आगामी साहित्य का सुवर्ण सौध गढेंगे। उस समय के समालोचक इनकी आज की रचनाओ की पृष्ठभूमि पर यथार्थ साहित्य-समीक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे। इनमें से अनेक हे स्कूल-कालेजो के विद्यार्थी अथवा विश्वविद्यालय से सद्य समागत किसी कार्यालय के मसीजीवी, स्वल्प वेतन वाले कर्मचारी।

चित्तविप्लव केवल दो-एक शहरो में रहनेवाले मुट्ठी भर शिक्षितो के भीतर ही आबद्ध था।

अत यह कहा जा सकता है कि अगणित जनता के जीवन से इसका कोई सबध नही था। शासितो की उन्नति के लिये शासको की कोई विधिबद्ध कर्म-प्रवणता नही दिखाई पडी, इसलिए जनता का जीवन-परिसर किसी प्रकार के परिवर्तन की ओर उन्मुख नही हुआ था। इसी अपरिवर्तनीय सामाजिक जीवन के भीतर पादरी और ब्राह्मणो में केन्द्रित समाज-सस्कार नाम का एक क्षीण सघर्ष पैदा हुआ था। आधुनिक शिक्षा-सभ्यतावर्जित, समाजबोधरहित इस जाति का हृदय जिस प्रकार स्पन्द-शून्य था, उसी प्रकार आधुनिक ओडिया साहित्य का पहला हिस्सा भी बहुत सीमा तक वैचित्र्य-शून्य था।

'इन्द्रधनु' और 'बिजुली' (१८९३–९४) के द्वारा प्राचीन और आधुनिक साहित्य-मनोवृत्ति के लेखको ने उन्नीसवी सदी के अन्त में एक बार पुन जिस चित्तसघर्ष का सूत्रपात किया था, उसी के परिणाम-स्वरूप यह साहित्य एक दूसरे स्वतत्र मार्ग पर अग्रसर होने लगा। इस समय से १९२० तक उत्कल सम्मिलनी, उत्कल साहित्य समाज, बगबिच्छेद, स्वतत्र बिहार ओडिशा प्रदेश का गठन और प्रथम महायुद्ध आदि के कारण इस देश में अनेक परिवर्तनो के होते हुए भी साहित्य के क्षेत्र में आशानुरूप परिवर्तन नही हुआ, क्योकि पहले की भाँति इस समय भी सामूहिक रूप से गणजीवन के हो जाने की कोई सम्भावना नही थी। असहयोग आन्दोलन से १९३६ तक गणजीवन ने किसी प्रत्यक्ष सामाजिक सग्राम के भीतर आने की सुविधा नही पाई थी। द्वितीय महायुद्ध (१९३९) से उत्पन्न सामाजिक और आर्थिक अव्यवस्था ने अलवत्ता जाति को पहली वार तीव्रतर जीवन-सग्राम का सम्मुखीन बनाया था। १९४० के पहले से इस देश में जो सामाजिक और राष्ट्रीय परिवर्तन हुए थे, वे सामूहिक गणजीवन को प्रभावित तथा नियन्त्रित करने में समर्थ नही हुए थे। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के बाद व्यापक रूप से होने वाले परिवर्तन को लक्ष्य किया जा सकता है। १९४२ के अगस्त आन्दोलन तथा १९४७ की स्वतन्त्रता-प्राप्ति ने इस परिवर्तन की गति को और भी अधिक तीव्र वना दिया। पिछले दस वर्ष के भीतर स्वतन्त्र भारत का नागरिक जीवन अभूतपूर्व परिवर्तन के भीतर होता हुआ स्वतन्त्र जीवनबोध पर प्रतिष्ठित हो सका है। ओडिशा में राजाओ और जमीदारो का शासन बन्द होने के बाद सामाजिक जीवन धारा में भी एक नवीन मूल्यबोध के ज्ञान का सूत्रपात हुआ है। आजकल के भूसस्कार ने भी इस देश के मध्यम वर्ग को एक नये मार्ग पर चलाया और पूर्वोक्त मूल्यबोध को तीव्रतर बना दिया है। अर्थनैतिक प्रतिष्ठित सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के कारण साहित्य सर्जन करने वाले शिक्षित मध्यम वर्ग के मन मे एक हताश भाव पैदा हो गया है। आज का साहित्य इस हताश और क्रान्तिकारी मनोवृत्ति के द्वारा विशेष रूप से नियन्त्रित हो रहा है। पिछले कई सालो से जीवन उपभोग तथा जीवन के मानदण्ड में बहुत उन्नति दिखाई पडती है। एक ओर आर्थिक अवनति और दूसरी ओर जीवन के मानदण्ड में उन्नति—इन दोनो के सघर्ष के कारण मन का अन्तर्विप्लव साहित्य में स्पष्ट झलकता है। आज प्रत्येक लेखक आत्मस्थिति की प्रतिष्ठा के लिये प्रयत्नशील है क्योकि

नूतन दृष्टिकोण तथा वलिष्ठ सृष्टि प्रयास स्वत परिस्फुट है। विज्ञान, इतिहास तथा अर्थनीति के कुछ अध्यापक भी अपने-अपने विषयो पर सुविचारित लेख ओडिया में प्रकाशित कर साहित्य की अभिवृद्धि में सहायता कर रहे हैं। साहित्य के ययार्थ विकाश के लिये आज जिस प्रकार एक सर्वव्यापक प्रयास का सकेत दिखाई पडता है, इससे नि सन्देह कहा जा सकता है कि यह साहित्य आगे चलकर यथेष्ट उन्नति करेगा।



दान में आधिभौतिक सुविधा, सुयोग से लेकर आतरिक और आध्यात्मिक परिप्रचार का जो प्रभाव है, उसकी कल्पना नही की जा सकती। जगन्नाथ की कथा के कारण भी भारतवर्ष बहुत प्राचीन काल से पृथ्वी में परिचित होता आ रहा है। प्राचीन बेबीलोन तथा परवर्ती काल में कैसी अवस्था थी, पृथ्वी में श्री जगन्नाथ का कसा नाम था, अरब, फारस के खलीफा के शासन-काल में इसकी क्या अवस्था थी, यह सब जानने का कोई विशेष आधार नही है। यद्यपि ओडिशा में कुशल मुद्राएँ अधिक सख्या में आविष्कृत हुई है किन्तु इस सूत्र से फारस आदि देशो पर श्री जगन्नाथ का सामाजिक और आध्यात्मिक प्रभाव क्या था, इसका कुछ विशेष सकेत नही मिलता।

योरोपीय लोगो के आगमन-काल से वाह्य देशो के साथ भारत के सपर्क का उल्लेख ईसाइयो के आलेखो में, कथा-कहानी के रूप में, मिलता है। प्राय तीन सौ वर्ष पहले मिशनरियो द्वारा योरोप में विलकुल झूठी बातें प्रचारित की गई थी। इनमें से अमेरिका के वेवस्टर साहव के कोश में (पुराने सस्करण में) "जगरनौत" शब्द के अर्थ के सम्वन्ध में यही बात है। उसमें श्री जगन्नाथ जी के किम्भूतकिमाकार रूप-वर्णन के साथ-साथ हिन्दुओ द्वारा जगन्नाथ की कुत्सित पूजा भी वर्णित है।

इसमे सुनी-सुनाई बातें वहुत हैं। विदेश में सुनी-सुनाई वातो के आधार पर ऐतिहासिक और भौगोलिक विवरण दे देना आज भी कोई नई वात नही है। पृथ्वी में वहुत से स्थानो और घटनाओ के सबध में ऐसी ही किवदन्तियाँ मिलती है। उदाहरण के लिए सिकन्दरकालीन यूनानी लेखको ने भारत के सबध में जो कुछ लिखा है उसमें एक वात यह भी है कि काश्मीर, सिन्धु आदि स्थानो में चीटियाँ मिट्टी खोदकर सोने का चूर्ण निकाला करती थी। वही सोना लोग उपयोग में लाते तथा राजा को कर के रूप में भी देते थे। इसके अतिरिक्त यह भी लिखा है कि इन चीटियों का मुंह नुकीला होता था और उनका कद था सियार या चूहे के वरावर।

हमारे पुराण तथा आख्यायिकाएँ भी इस तरह के दोषो से बरी नही है। रामायण में वदरो और भालुओ की कथाएँ, महाभारत में भीम का जल में होकर पाताल लोक को जाना, साथ ही साथ "वासुकी" देश की कथाएँ उल्लेखनीय है। इस तरह की पौराणिक मिथ्या बातें पृथ्वी में सर्वत्र मिल सकती है।

जो भी हो, परन्तु यह अटल सत्य है कि श्री जगन्नाथ धाम की कथा सारे भारत में प्रसिद्ध थी और इसी सूत्र से सारी पृथ्वी में प्रचारित हुई थी। श्री जगन्नाथ धाम की कथा से भारत को कितने, कव और किस प्रकार के दान मिले है और किस क्रम से यह सब हुआ, अब इसी बात का विचार कर लेना उचित होगा।

अवश्य ही ओडिशा के अन्य दान वहुत से है। उदाहरण के तौर पर यहाँ के व्यापारियो या महाजनो का अत्यत प्राचीन काल से समुद्र पार जाकर व्यापार करना, एक ऐतिहासिक सत्य है। खोजों से मालूम हुआ है कि इसी के द्वारा सिंहल, पूर्वी द्वीपसमूहो से होकर इन व्यापारियो ने अमेरिका के मैक्सिको, पेरू आदि स्थानो में भी अपना उपनिवेश स्थापित किया था। विद्वानो

हुआ था। जिस प्रकार जीव प्रत्येक प्राणी में अलग-अलग माना जाता है उसी प्रकार अजीव को भी नाम-भेद के आधार पर असख्य रूपो में मानकर उसकी कल्पना और व्याख्या की जाती थी।

इसी जैन दर्शन के जीवाजीवाभेदमूलक द्वैतवाद से साख्यदर्शन का विकास हुआ था। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि साख्यदर्शन मौलिक जैन दर्शन से नया है। ऐसा समझने का कारण यह है कि प्रकृति के असख्य प्रकाशों को तत्त्व रूप में अनेक न समझकर साख्य मे पहले सारी प्रकृति को एक माना जाता था। पुरुष ठीक जैन दर्शन के जीव के समान असख्य था। हो सकता है कि पुरुष की यह कथा ऋग्वेद की पुरुष-धारणा से मिली हो। यह सब होने पर भी कहा जाता है कि ऋग्वेद के पुरुष में मनुष्य के शरीर और आत्मा का भाव यथेष्ट विकसित नही है।

अतएव वेद का पुरुष भाव जैन दर्शन से चाहे अर्वाचीन हो या प्राचीन, साख्य का सारा आध्यात्मिक पुरुष-भाव जैन के जीवभाव से लिया गया है, क्योकि जैन की अजीव धारणा ही साख्य में अधिक शृखलित और दार्शनिक रूप मे प्रकाशित हुई है। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि जैन धर्म के वैदिक याग-यज्ञ और जाति-भेद के विरोध में पैदा होने की जो धारणा बहुत-से प्राच्य-तत्त्व-वेत्ताओ, खासकर यूरोपीय प्राच्य-तत्त्व-वेत्ताओ की है, वह ठीक नही है। लेकिन अत्यत प्राचीन उपनिषद् का पुरुष-प्रकृति भाव जैन के जीवाजीव-भाव से लिया गया है, यह स्पष्ट प्रतीत होता है। इस सबध में कुछ और कहने का मौका यहाँ नही है।

कहने की बात यह है कि मनुष्य की (साधारणत अति आदिम मनुष्य की भी) एक स्पष्ट विश्वप्रभाविनी शक्ति की धारणा बाद में ईश्वर आदि नाना भावो में प्रकाशित हुई। कालातर मे उससे योग दर्शन के प्रधान पुरुष को (या जिस किसी भी पुरुष को प्रधान मान कर उसे) अधम भाव से आत्म-नियोग करने का एक दार्शनिक विकास हुआ। साराश यह है कि इसमें पुरुष तथा प्रकृति के नियामक के रूप मे एक प्रधान पुरुष की कल्पना की गई थी। उसी का नाम है पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तम की यह कथा योगदर्शन के समान ही पुरानी है।

साख्यदर्शन से योगदर्शन का उद्भव-काल निश्चय ही कौटिल्य या चन्द्रगुप्त से प्राचीन है, क्योकि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में साख्य और योग की बातें एक साथ है। हो सकता है, उसी दार्शनिक भाव से पुरुषोत्तम की कथा और भी "हेतुमत" और "विनिमित्त" भाव से वैष्णव धर्म में पहुँची हो।

अभिप्राय यह है कि पुरुषोत्तम के साथ भारतीय वैष्णव धर्म का एक तरह से शाश्वत सम्पर्क है। योग-दर्शन के इसी प्रधान पुरुष और उससे निकले हुए पुरुषोत्तम को वैष्णवो ने धीरे-धीरे अपना उपास्य देव, ईश्वर या विष्णु समझकर उसका नाम पुरुषोत्तम रख दिया। विष्णु का वह नाम भारत मे अब तक प्रतिष्ठित है। यही भारत में सर्वत्र विष्णु के प्रधान नाम और परिचय के रूप में वर्णित होता है।

इस वैष्णव धर्म के आदि-काल और उत्पत्ति-कथा का विचार करने पर मालूम होता है

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नत
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु,
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुखहा।

अर्थात्—अतिभोजी (पेटू या विलासी), एकदम उपवासी (इन्द्रियभोग-हीन), खूब सोनेवाला (आलसी), अति जाग्रत् (सब कुछ कर डालने को व्याकुल) लोगो से योग-साधना नही होती किन्तु जो उचित आहार-विहार करता है और उसी प्रकार से कर्म करता है, उसी नियम के अनुसार सोना-उठना, खाना-पीना ठीक रखता है उसकी योग-साधना का कष्ट दूर हो जाता है।

साराश यह है कि योग-साधना में बहुत से व्रत-उपवास तथा ऊर्ध्ववाहु, पचाग्नि आदि की साधना की जाती है। वैसा करने पर मोक्ष साध्य नही होता। साधारण मनुष्य का-सा जीवन वितानेवाला तथा अनासक्त भाव से रहनेवाला ही योगी होता है। गीता में कही भी अद्भुत कर्म या अतिसाधना का उल्लेख नही है। सामान्य मानव के समान रहकर मोक्ष की साधना करने पर जोर दिया गया है। मन या बुद्धि से ही साधना होती है, शारीरिक कर्मों द्वारा नही। अवतार और योगी-वैरागी के आश्चर्यजनक कार्य भी मोक्ष-साधना के अग नही हैं।

अतएव गीता, शाक्यमुनि बुद्ध के पश्चात् की रचना है और फिर इस अनुमान में कोई कठिनाई नही रह जाती कि शकराचार्य के भाष्य-रचना-काल की अनेक शताब्दियो पूर्व गीता अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

एक वात और है कि गीता में वर्णित शाक्यमुनि बुद्ध के मध्यम मार्ग का महायान से कोई सवध नही है। मौलिक बुद्ध या थेरवादी वौद्धो के बुद्ध साधना द्वारा सिद्ध व्यक्ति हैं। वे बुद्ध भगवान् नही हैं। महायान लोगो के मत से वे तो करुणामय भगवान् थे तथा नाना प्रकार से ध्यानी और नारी-सहवास में निवद्ध वुद्ध के रूप में प्रकाशित हुए थे। यह सब बाद की घटना है। लेकिन महायान के बुद्ध प्राय ईसा पूर्व प्रथम या द्वितीय शताब्दी के हैं। अत गीता इससे प्राचीन है।

यदि मान लिया जाय कि गीता की पुरुषोत्तम-कथा इसी समय या इससे पूर्व की है तो यह सिद्ध हो जाता है कि इस समय तक पुरुषोत्तम की मान्यता लोगो में प्रतिष्ठित हो गई थी। ऐसे प्रमाण नही मिलते जिनसे यह पता चल सके कि प्राचीन भारत में पुरी या पुरी के अतिरिक्त और कही भी पुरुषोत्तम नाम के उपास्य देवता थे। गत चार-पाँच शताब्दियो के वीच श्री जगन्नाथ और उनकी रथयात्रा आदि के अनुकरण पर यह (पुरुषोत्तम) नाम अनेक देव-मूर्तियो के लिए प्रयुक्त होने लगा था, किन्तु इस लेख में उन सबका विवरण नही उपस्थित किया जा सकता। यही समझ लेना अलम् होगा कि वे सभी देवमूर्तियाँ केवल इस पुरुषोत्तम-सस्कृति के प्रचारित प्रकाश हैं। अत यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि पुरी में पुरुषोत्तम की मान्यता की वात कम से कम श्रीमद्भगवद्गीता के काल से अर्वाचीन नही है। मालूम होता है कि गीता का काल भी कम से कम वासुदेव धर्म के तीन चार सौ वर्षों से अधिक अर्वाचीन नही है। इसी सिलसिले में यहाँ एक

उसे हिन्दू देव के रूप में पूजा करने का रहा हो, क्योकि नन्द राजा हिन्दू थे। उस समय देवमूर्तियो को ध्वस करने की प्रथा थी ही नही। चारो ओर देवी-देवताओ की मूर्तियो तथा स्मारको आदि की बडी कदर थी। यह केवल भारतवर्ष मे ही नही बल्कि प्राचीन सुमेरु, वेवीलोन, असुरदेश आदि के इतिहास में भी यही विशेषता मिलती है।

खारवेल ने उसी जिनासन को वापस लाने के लिए मगध की विजय-यात्रा की और तत्कालीन मगध सम्राट् को जीतकर वे उसे पुन ओडिशा को उठा लाये थे।

इसके अतिरिक्त ओडिशा में 'देवल तोला' नामक एक परम्परा और एक लिखित ग्रन्थ भी है। वह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। उस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वह अत्यत प्राचीन होने पर भी आधुनिक ओडिशा लिपि में लिखा हुआ है और आधुनिक स्कन्दपुराण से लिया गया है। किन्तु ऐसा नही है। स्कन्दपुराण की किंवदती से उसका मिलान करके कोई भी समझ सकता है कि उसके साथ उसका कुछ भी सबध नही है। स्कन्दपुराण इससे अधिक आधुनिक है। मुझे अब तक तत्सबधी कोई भी तालपत्र नही मिला लेकिन उस विषय में विशेष विचार करने की यहाँ आवश्यकता भी नही है।

उसमें लिखा है कि वर्तमान जगन्नाथ के साथ जो मूर्तियाँ हे वे सब वहाँ नही थी। उस स्थान में "नील माधव" नामक किसी एक उपास्य देव की पूजा होती थी। बहुत सभव है, वह "नील माधव" एक काला (मगुनी) पत्थर हो, क्योकि ओडिशा के पाल, कहडा आदि राज्यो में अब भी शबर जाति के लोग "नील माधव" नामक एक काले पत्थर की पूजा करते हे।

"नील माधव" के विषय को खोजपूर्ण ढग से उपस्थित करने के लिए एक स्वतत्र आलोचना की आवश्यकता है। यहाँ इसका उद्देश्य केवल यह स्पष्ट करने के लिए है कि इस "नील माधव" की प्रतिपत्ति भारतवर्ष में खूब थी। उससे प्रभावित होकर भारतवर्ष के राजाओ, सम्राटो तथा विशिष्ट व्यक्तियो ने इसे अपनाया और विष्णु रूप मे इसकी पूजा करने को तैयार हुए। उसी सूत्र के अनुसार "नील माधव" वैष्णव या विष्णु रूप से प्रभावित होकर श्री जगन्नाथ नाम से मान्य हुए हे। यही जगन्नाथ पुरुषोत्तम हे।

वुद्धदत किंवदती से जिनासन और नीलमाधव का क्या सवध है और इन दोनो के साथ पुरुषोत्तम किस प्रकार मिलकर श्री जगन्नाथ वने, यह सव अव भी ऐतिहासिक गवेषणा की वस्तु वना हुआ है। इस सम्वन्ध में और कुछ कहना सिर्फ किंवदती के उपाख्यान का उपाख्यान गढना होगा।

परन्तु अव हमे इस पर विचार करना है कि भारतीय सस्कृति में उत्कल का क्या प्रभाव है। प्राचीन परम्परा की जो वात ऊपर कही गई है उसमें इस प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। अव थोडा इतिहास द्वारा प्रमाणित विषय लेता हूँ। आशा है, गवेषक इस पर विचार करेंगे।

मुसलमानो की विजय-यात्रा के साथ सन् १०२६ ई० में गजनी के सुलतान महमूद के हाथो पश्चिमी भारत के सोमनाथ पीठ का विध्वस हुआ था। सोमनाथ भारतवर्ष के लिए क्या था, यह आज समझना कठिन है। वहाँ की हजारो देव-दासियो और उनसे अधिक पुरोहितो ने अत्यत

# भारतीय संस्कृति को ओड़िशा की देन

## प्रो० प्रह्लाद प्रधान

भारतीय सस्कृति को ओडिशा की क्या देन है, इसको ठीक-ठीक कहना अत्यत कठिन है। आखिर ओडिशा तो भारत के बाहर नही है और भारत की स्थिति से ओडिशा की स्थिति या ओडिशा की स्थिति से भारत की स्थिति भी अलग नही है। भारत के विभिन्न अगो या प्रान्तो की सस्कृति को लेकर ही भारतीय सस्कृति वनी है, इसलिए भारत और ओडिशा में दाता-ग्रहीता का विचार करना असगत और असभव है, क्योकि दोनो अभिन्न है—अग-अगी है।

उदाहरण-स्वरूप यहाँ एक घटना का उल्लेख करने से मेरा अभिप्राय स्पष्ट हो जायगा। मैं जब चीन में था तो सन् १९५० ई० में तिब्वत के पन् चन् लामा एक बार पेकिंग गये थे। दलाइ लामा के समान वे भी जीवन्त बुद्ध माने जाते है और तिब्वत की भाँति चीन के भी बौद्धो और विशेष कर लामा-बौद्धो पर उनका प्रभाव वहुत अधिक है। महाबोधि सोसाइटी की तरफ से उनके स्वागत के लिए पेकिंग के "पे हाय" या "उत्तर समुद्र" (=कृत्रिम ह्रद) में अवस्थित लामा मन्दिर में एक आयोजन किया गया था। उन दिनो मैं वहाँ के भदन्त फा च्युन फाशि से अभिधर्म कोश भाषा का चीनी अनुवाद पढने उस विहार में जाया करता था। भारतीय होने के कारण उस स्वागत में शामिल होने के लिए मुझे विशेष अनुमति दी गई थी।

उनके दर्शन का एक विशेष नियम है। दर्शन के समय उनको एक खाता देना पडता है जो अवश्य ही बाध्यतामूलक नही है। खैर, एक टुकडा 'खाता' खरीदने के लिए मुझे करीब दो रुपये देने पडे। ये रुपये मैंने पहले दिन दिये। तव तक न तो खाता का अर्थ ही मेरी समझ में आता था और न उसके स्वरूप के वारे में कोई धारणा थी। दूसरे दिन देखा तो यह करीब ६ इच चौडा और दो गज लम्वा एक टुकडा कपडा था, जो अब भी जगन्नाथ पुरी में वेचा जाता है। जगन्नाथ पुरी में अव उसका उपयोग काछा या लँगोट के रूप में किया जाता है। 'खाता' चीनी शब्द की भाँति नही लगता है और यह 'खादी' शब्द के चीनी ध्वन्यतर सा लगता है। जगन्नाथ पुरी में अव भी धोती को 'खदी' कहते है।

दूसरे दिन, जव कि पन् चन् लामा आनेवाले थे, हम लोग बहुत पहले से जाकर उस लामा मन्दिर में एकत्रित हुए। उस दिन वडी सख्या में भिक्षु-भिक्षुणियाँ और उपासक-उपासिकाएँ जमा होने लगी। किसी के हाथ में अगरबत्ती तो किसी के हाथ में चीनी धूपदानी, किसी के हाथ में चँवर तो किसी के हाथ में और कुछ था। जव पन् चन् लामा के आने की सूचना आई तो हम सब लोग सीढियो के दोनो तरफ, दो कतारो में, खडे हो गये। सीढियाँ अनेक थी इसलिए पक्ति भी

एक और उदाहरण लिया जाय। यह अविसवादित है कि बौद्ध धर्म पृथ्वी को भारत की देन है। अनेक बौद्ध भिक्षुओ ने विभिन्न देशो में जाकर बौद्ध धर्म प्रचारित और स्थापित किया था। इसमें अनेक राजाओ का हाथ है। भिक्षुओ को भेजकर बौद्ध धर्म के प्रचार की दिशा में राजाओ में सर्वप्रथम कदम उठाया अशोक ने। पाली साहित्य की बौद्ध-परपरा से ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए सम्राट् अशोक ने काश्मीर और गान्धार में माध्यान्तिक स्थविर, महिष-मडल में महादेव स्थविर, वनवासी में रक्षित स्थविर, अपरान्त में महारक्षित स्थविर, हिमवन्त या हिमालय में मध्यम स्थविर, स्वर्णभूमि में शोण और उत्तर स्थविरो तथा ताम्रपर्णी लका में महेन्द्र स्थविर को भेजा था। सम्राट् अशोक ने उनको कब भेजा ? कलिंग-समर के वाद, जब वे बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए तब। इससे क्या यह नही सूचित होता कि कलिंग भूमि में एक प्रबल सस्कृति थी जिससे वे अत्यत प्रभावित हुए और बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर चण्डाशोक से धर्माशोक में परिवर्तित हो गये ? एक प्रबल पराक्रमी दिग्विजयी और विजयी सम्राट् के लिए यह कम परिवर्तन की बात नही है। *कलिंग भूमि की सस्कृति से ही अनुप्रेरित होकर* उन्होने चारो तरफ धर्म-प्रचार के उद्देश्य से भिक्षुओ को भेजा था। कलिंग भूमि में एक महत्त्वपूर्ण सस्कृति का प्रसार था, नही तो धउली, जउगढ, भुवनेश्वर (परशुरामेश्वर) में एकाधिक अशोक-अनुशासनो का कोई मतलब नही होता। सस्कृति-विहीन अशिक्षित अनपढो के लिए अभिलेखो का कोई अर्थ नही होता। खैर, जो कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि अशोक-के ससार को बौद्ध धर्म के दान के मूल में कलिंगसमर और कलिंग-सस्कृति थी। लेकिन यह कहना गलत होगा कि बौद्ध धर्म कलिंग की देन है। जब हम लोग भारत के बाहर चले जाते है तो कलिंग हो या तिलिंग, सब अग भारत से अभिन्न हो जाते है। चाहे अग हो या वग, विभिन्न देशो या प्रान्तो की अलग-अलग स्थिति मानी जाती है। अगो को लेकर ही शरीर बनता है, शाखाओ को लेकर ही वृक्ष बनते है, उसी प्रकार विभिन्न प्रान्तो की सस्कृतियो को लेकर ही भारतीय सस्कृति बनी है। ओडिशा भी सस्कृति का एक प्रधान केन्द्र था, इसलिए प्राय सभी धार्मिक सम्प्रदाय और उनके तीर्थ यहाँ पाये जाते है। खडगिरि में बौद्ध गुफाएँ, उदयगिरि में जैन गुफाएँ, भुवनेश्वर में शैव क्षेत्र, कोणार्क में सौर क्षेत्र, याजपुर में गिरिजा (देवी) क्षेत्र, पुरी में विष्णु क्षेत्र वर्तमान है। हरिदासपुर स्टेशन के नजदीक चण्डीखोल पर्वत गाणपत्य सम्प्रदाय का एक पीठस्थल सा मालूम होता है। वहाँ 'महाविणा' या 'महाविना' नाम से एक शिवलिंग की पूजा होती है जो असल में 'महाविनायक' की मूर्ति है। इस मूर्ति को पत्थरो से ढँक कर एक शिवलिंग का रूप दे दिया गया है लेकिन गौर से देखने से पता चलता है कि गणेश मूर्ति का सिर्फ यह ऊपरी भाग है। उसमे कान, कपाल और सूँड का अभी तक कुछ अश दिखाई देता है।

लकुलीश पाशुपत का अवतार हुआ था भृगुकच्छ के कायावतार या कायावरोहण में, किन्तु उनकी मूर्ति मिली है भुवनेश्वर में जो ओडिशा म्युजियम में सुरक्षित है। कभी ओडिशा में लकुलीश पाशुपत सम्प्रदाय का अत्यत प्रचार था। भुवनेश्वर मे उनके चार शिष्यों—कौशिक, गर्ग, मित्र और कारुष्य और अठारह गुरुओ के साथ लकुलीश की मूर्ति मिलती है। बालेश्वर कालेज में भी चार शिष्यो के साथ उनकी एक मूर्ति रखी गई है।

पीठ मानी जाती है जो भैरवी चक्र का एक अग भी है। कहते है, विमला देवी को जब तक भोग नही लगाया जाता है, तब तक महाप्रसाद नही होता और उनके मदिर में साल में एक दिन मछली का भोग लगता है। वेढे में गणेश है और भड गणेश भी, जिनकी मूर्ति घोर तान्त्रिक है। वे इसीलिए भड गणेश कहलाते है कि एक स्त्रीमूर्ति को हाथ में उठाकर उसके योनिमार्ग को अपने शुड से स्पर्श करते है। वहाँ सब देवताओ का समान रूप से समागम होता है।

मदिर में अधिष्ठाता मुख्य देवताओ को लें तो वहाँ भी विचित्र समागम है। वहाँ जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की पूजा होती है। साधारणतया जगन्नाथ कृष्ण माने जाते है और बलभद्र उनके बडे भाई तथा सुभद्रा उनकी बहन। कृष्ण, बलराम की पूजा तो ठीक है लेकिन देवता रूप में सुभद्रा की पूजा करने का विधान कही नही मिलता। साथ-साथ तीनो की पूजा किस शास्त्र और सप्रदाय के अनुसार है ? इसलिए इन मूर्तियो के बारे में नाना प्रकार की कल्पना-जल्पना होती है। पडित नीलकठ दास जी ने अन्यत्र प्रतिपादन किया है कि जगन्नाथ जैन है। उनका कहना है कि सब तीर्थंकरो के पीछे नियमित रूप से नाथ शब्द है। नाथ जैन सप्रदाय के है और दूसरे सप्रदाय-वालो ने 'नाथ' शब्द इन्ही से लिया है। कितने ही लोग इनको बौद्ध मानते है। ओडिया साहित्य में बहुत जगह जगन्नाथ को 'बउध रूप' या 'प्रबुद्ध' कहा गया है। पुरी मदिर के सिंह दरवाजे पर नवग्रह मूर्ति की जगह दशावतार और नवम अवतार बुद्ध की जगह पर जगन्नाथ जी की एक मूर्ति है। कितनो की कल्पना यहाँ तक दौडी है कि दन्तपुरी का अवशेष 'पुरी' है और जगन्नाथ मूर्ति के भीतर जो रहस्यपूर्ण वस्तु है वह बुद्ध की दन्तधातु है। डा० हरेकृष्ण महताब का कहना है कि बौद्धधर्म के त्रिरत्नो—बुद्ध, धर्म और सघ—में धर्म के प्रतीक के रूप में जगन्नाथ जी की मूर्ति है।

बलभद्र ठाकुर के बारे में मैने 'झकार' में प्रतिपादन किया है कि वे शिव के अवतार है। प्रेम भक्ति ब्रह्मगीता में यशोवन्त दास ने कहा है कि बलभद्र रुद्र के अवतार है। उन्होने और भी कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर योगमाया से सभूत हुए, बलभद्र रूपी रुद्र ने योगमाया का स्मरण किया और अन्य दोनो ने उसकी निंदा की। इसलिए योगमाया ने योनि-निंदा के कारण शाप दिया कि विष्णु बार-बार योनि में उत्पन्न हो। इस प्रकार वे कृष्ण और जगन्नाथ रूप में उत्पन्न हुए तथा ब्रह्मा स्त्री होकर सुभद्रा के रूप में उत्पन्न हुए। सुभद्रा के शरीर में राधा भी रहीं।

इस आलोचना से मेरा यह मतलब नही है कि पुरी मदिर की त्रिमूर्ति क्या है और क्या नही है। इस सबध में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। ओडिशा की सस्कृति का यही वैशिष्ट्य है। जगन्नाथ नामकरण में भी यही तात्पर्य निहित है। 'जगन्नाथ' कोई विशेष देवता नही है। यह नाम किसी एक देवता का नही है। बुद्ध, जिन, कृष्ण, विष्णु, शिव, सबका नाम 'जगन्नाथ' है। इसीलिए 'जगन्नाथ' नाम चुना गया है। मूर्ति का भी ऐसा रूप चुना गया है कि सबके लिए सब अवसरो पर उपयुक्त हो सकता है। एक बार एक कलाकार ने कहा कि जगन्नाथ मूर्ति की आँखो को इस ढग से काटा गया है कि किसी भी वेश में यह खप जाती है, उपयुक्त हो जाती है। यहाँ तक कि कुष्ठ रोगियो के सेवक एक ईसाई सज्जन जगन्नाथ को कुष्ठ रोग का प्रतीक मानते है। कुष्ठ रोग में जिस प्रकार हाथ-पैर ठूंठे हो जाते है, जगन्नाथ भी ठूंठे हो गये है। जगन्नाथ की

लेकर जायँ और जो राष्ट्रीय संग्राम में सम्मिलित होना चाहें, जेल की हवा खाने को तैयार हो जायँ।

उस समय जेल जाना गौरव की बात थी। गोपबाबू के ओजपूर्ण कथन का प्रभाव था। मैं स्वतंत्रता संग्राम में सहर्ष सम्मिलित होकर जेल जाने को तैयार हो गया। इसी के निमित्त पुरी से कटक आया और उसी दिन शाम को, काठजोडी नदी की रेती में, लगभग पचास व्यक्तियों के साथ मैं भी गिरफ्तार कर लिया गया। ६ महीने की सजा हुई। ७ दिन कटक जेल में रहने के पश्चात् पटना कैंप जेल भेज दिया गया। वहाँ ७ हजार के लगभग राजबंदी थे जिनमें तीन हजार उत्कली भाई थे। बड़ा ही जोश और उत्साह था सबमें। सौ की संख्या में बालक भी थे जो वानरी सेना के नाम से संबोधित किये जाते थे। जेल में वे बंदर का सा ही आचरण करते थे। इनको शासन के अधीन लाने में जेल-अधिकारियों के सारे प्रयत्न विफल हो चुके थे।

जाड़े के दिन थे। कुछ लोग दौड़ लगा रहे थे, कुछ कवायद कर रहे थे और कुछ बैठे गप्पें मार रहे थे। मैं आसमान से गिरकर खजूर में अटका था। गोपबाबू की प्रेरणाएँ जब-तब हृदय में लहर मार जाती थी। राष्ट्रभाषा के प्रति निष्ठा और कर्तव्य का जो पाठ उनसे मिला था उसको कार्य रूप में परिणत करने का अवसर वहाँ था। बार-बार यही सोच रहा था कि हिंदी के लिए यहाँ क्या किया जा सकता है। कोई साधन भी तो नहीं है। इसी उधेड़-बुन में जमीन पर आसन मारे मैं लकड़ी से जमीन खरोंच रहा था। एकाएक मेरा ध्यान जमीन पर खरोंची हुई रेखा की ओर गया, जो हिंदी के 'अ' अक्षर के समान बन गई थी। यद्यपि मैं कभी किसी उलझन में डूबता हूँ तो हाथ या किसी चीज से भूमि कुरेदने और रेखाएँ खींचने लगता हूँ, किंतु उस दिन की रेखा का वह आक्षरिक रूप मेरी उलझनों का साकार हल बन गया। इस खरोंच से मेरे मन में दो भावनाएँ जागी। एक तो यही कि जमीन पर हिंदी वर्णमाला सिखाई जा सकती है और दूसरी यह कि यदि हिंदी की सभी मात्राएँ ऊपर-नीचे न लगाकर दाहिनी ओर लगाई जायँ तो हिंदी भी अंग्रेजी की भाँति लिखी जा सकती है।

मैंने जेल में दोनों कार्य आरंभ कर दिये। घास छीलकर जमीन को चिकना और समतल बनाया। फिर उससे पाटी और बबूल की दातौन से लेखनी का काम लेते हुए मैंने सर्वप्रथम दो सज्जनों को हिंदी का अ, आ, इ, ई लिखना बताया। थोड़े समय में यह एक व्यापक कार्य बन गया। एक रोज जेल के सुपरिन्टेन्डेंट साहब ने भी इस तमाशे को देखा। यह देख उन्होंने कहा—मैं जेल की ओर से कागज, पेन्सिल और स्लेट-पट्टी दूँगा। इन बच्चों को पढ़ने के काम में लगाओ। बात पक्की हो गई। लगभग १५०० सज्जन हिंदी सीखने लगे। वे लोग बहुत प्रसन्न थे। मुझे भी खुशी थी। और वानरी सेना के बालक भी इस काम में लगे रहने के कारण उत्पात से विमुख होते जा रहे थे।

पटना कैम्प जेल में जितने उत्कलवासी सज्जन थे, सभी ने हिंदी लिखना-पढ़ना सीखा। राष्ट्रभाषा सीखने की यह लगन स्वराज्य प्राप्त करने के उत्साह से कम महत्त्व की नहीं थी।

इस प्रकार ६ मास की सजा चुटकी बजाते बीत गई। जेल से बाहर आने के बाद चलने-

# भारतीय संस्कृति को उत्कल की देन

## डा० हरेकृष्ण महताब

भारतीय सस्कृति का अर्थ व्यापक है। भारतीय समाज में विभिन्न श्रेणियो के द्वारा इसका विभिन्न अर्थ किया जाता है। यह एक वहुत ही साधारण उदाहरण है। इससे मेरे कथन का अभिप्राय समझ में आ सकता है। बात यो है—भारतीय समाज की एक विशिष्ट श्रेणी के मत में गोमास-भक्षण करना भारतीय स्कृति के विरुद्ध है। लेकिन उसी भारतीय समाज में एक दूसरी श्रेणी भी है जिसके मत में—उदाहरण-स्वरूप कध, कोल्ह आदि आदिम जातियों का—गोमास भक्षण करना धर्म है और गाय का दूध पीना पाप। भारत जैसे गणतात्रिक देश में विना जाति-धर्म-भेद के प्रत्येक भारतीय को समान नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। कोई समाज अपनी विचार-धारा को भारतीय सस्कृति नही कह सकता और यह समीचीन भी नही हो सकता। इस बात को जितना जल्दी देश के लोग समझ लें, उतना ही अधिक भारत के सगठन में मगलमय होगा।

सक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय सस्कृति का अपना इतिहास है। गत हजारों वर्षों की अवधि में देश में चार स्वतत्र सभ्यताएँ (सस्कृति) एक-एक करके फैली, और परस्पर के आघात-प्रतिघात से अत में दो ही मख्य शेष रह गईं। एक है आर्य सस्कृति और दूसरी है प्राक्-आर्य-सस्कृति। आर्यों ने रामायण, महाभारत आदि पुराणो में विभिन्न जातियो के सघर्ष और विजय का वर्णन करके सस्कृति की प्रधानता की प्रतिष्ठा की है। अवश्य ये पुराण परवर्ती युग में लिखे गये हैं। लेकिन इस सारी भिन्नता या विभेद को पार करके गौतम बुद्ध ने एक नया धर्म चलाया—उसके प्रचार और प्रसार का उद्यम किया था। अवश्य उस समय से लेकर आज तक वहुत वर्ष वीत चुके हैं। हम भगवान् बुद्ध को भारतीय सस्कृति का प्रतीक मानते हैं। कारण, भगवान् बुद्ध ने जिन्दगी भर करुणा और सहनशीलता का प्रचार किया था और उसी को धर्म माना था। इसका प्रधान कारण सामाजिक प्रतिक्रिया भी था। हो सकता है कि इसी वजह से हो या अन्य परिस्थिति से हो, लेकिन बुद्धदेव के निर्वाण से प्राय ३०० वर्ष तक उनका धर्म उतना व्यापक न हो सका। अत में अशोक ने ही उस महान् धर्म के प्रचार का कार्य सम्पन्न किया था। हमारे उत्कल (कलिग) में ही सम्राट् अशोक ने घोषणा की थी, कि युद्ध की विजय सच्ची विजय नही है। उसके वाद से ही सारी सस्कृति के सयोग से वे सविधान करने का विधिवत् उद्यम करने लगे थे। अशोक के सारे अनुशासनो का अध्ययन करने पर विस्मित होना पडता है। वह विस्मय-कर विषय यह है—उन्होने बौद्धधर्म-प्रचार के प्रसार की कथा का कही भी उल्लेख नही किया है। हाँ, प्रत्येक शिलालेख में उन्होंने ब्राह्मण और श्रमण दोनो का समान रूप से वर्णन किया है। लोगो

अवश्य, पुराणों के बारे में इतनी बात याद रखनी पडेगी कि ये पुराण आदिवासी जातियो में कभी भी जनप्रिय नही हो सके। आजकल कई प्रान्तो में आदिवासी-भाषा में पुराणो का अनुवाद करवाकर प्रचार किया जा रहा है। मेरे मत से इससे कोई खास सफलता नही मिल सकती, वरन् कुशल लेखको को चाहिए कि वे इन पुराणो को नये सिरे से लिखें। सघर्ष और विजय पर जोर न देकर सहनशीलता और सयोग पर जोर देकर पुराण लिखे जायँ। बडे ही खेद की बात है कि अँग्रेज लेखको ने हमारे समाज के एक अग को एबोरिजन या आदिवासी कहा है और उसे समाज से बिलकुल अलग कर दिया। उन लेखको ने इनका इतना बुरी तरह से चित्रण किया कि ये मानो बिलकुल असभ्य हैं। लेकिन सच बात तो यह है कि इन लोगो की सभ्यता और सदाचार अत्यन्त उच्चकोटि का रहा है। अवश्य यह सभ्यता-सस्कृति आर्य सभ्यता-सस्कृति से कुछ भिन्न है। भारतीय सस्कृति-सयोग की दृष्टि से, आदिवासी-सभ्यता को समान स्थान देना पडेगा और आर्य तथा प्राक्-आर्य सभ्यता के बीच एक साम्य सुन्दर नवीन सस्कृति का प्रतिपादन करना पडेगा। समय आने पर इस सत्य की सभी उपलब्धि करेंगे और अशोक ने ओडिशा में सयोग का जो कार्य-क्रम आरम्भ किया था वह अब भारत भर में पूर्ण होगा।



नितान्त विच्छेद और आधुनिक काल से मध्यकाल का पूर्ण दुराव हमें उचित और वाछित स्थल पर नही ले जा सकता। विभाजित होती हुई भी यह काल-परिधियाँ एक दूसरे को छूती है।

आदिकाल की साहित्यिक निधि वज्रयानी और सहजयानी सिद्धो, नाथ-पथी योगियो, जैन धर्मावलबियो और वीरता तथा शृगार का वर्णन करनेवाले चारणो से प्राप्त होती है। इस काल के साहित्य में हमें किसी निश्चित गतव्य अथवा सगठित अभियान की तैयारी नही मिलती। वह साहित्य न अधकार में निमज्जित है, न प्रकाश से अभिभूत। जनता की रुचि-अरुचि का प्रश्न नही, वरन् साहित्यकार की ही रुचि उसे नचाये चलती है। भिन्न-भिन्न यानो और पन्थो का अर्थ ही होता है खण्डनात्मक प्रवृत्ति की प्रवलता और एक पर दूसरे की प्रधानता की भावना। सिद्धो और योगियो ने साहित्य को धर्म का वाहन बनाया, लेकिन सद्वृत्तियो के रत्नो की लदाई नही की, लादी उस पर कामुकता, आचार-विहीनता और इन्द्रियलोलुपता। कुछ ने सयम और आचार की वाते की, लेकिन समाज का एक वडा भाग उन्ही का क्रीडा-क्षेत्र वना रहा। चारणो और भाटो की रचनाएँ भी सुसवद्ध नही है। इन आश्रय-जीवी कवियो ने बहुत अशो में झूठी प्रशसा का राग अलापा है। वीरता जो एक दिव्य गुण है, उसका स्रोत यहाँ शृगार ही मिलता है। तात्पर्य यह कि धर्म और वीरत्व इस काल के सिद्धो, योगियो और चारणो के विषय रहे, लेकिन फिर भी किसी दिव्य भावना, भव्य अनुभूति और परिष्कृत रुचि का विम्व नही दिखाई पडता।

इसका कारण हमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियो के अवलोकन से प्राप्त हो सकता है, क्योकि ये ही परिस्थितियाँ भावनाओ के स्रोत और निर्माण का कारण वनती है, उच्च राजनीतिक व्यवस्था, शाति तथा सुरक्षा का विधान करती है, जिसके फलस्वरूप साहित्य में उत्कृष्ट रचनाओ का प्रादुर्भाव होता है। सुसगठित समाज व्यक्ति के स्वस्थ और पुष्ट मस्तिष्क का परिचायक होता है और आडम्बरहीन धर्म व्यक्ति के निर्मल, विकारहीन तथा प्रगतिशील विवेक का द्योतक। इस पृष्ठभूमि पर रचित साहित्य की उत्तमता अपार होती है। पर हमारे आदिकाल की यह पृष्ठभूमि ऐसी प्रौढ और सुव्यवस्थित नही थी। राजनीति पारस्परिक कलह और विदेशी आक्रमणो से पगु वन गई थी। सगठन की भावना का सर्वथा लोप हो गया था। जनता के हृदय में इस ओर से पूर्ण उदासीनता थी।

धर्म की यह दशा थी कि वह प्रकाश का वाहक न बनकर चमत्कार प्रदर्शन करनेवाला जादूगर हो रहा था। उसकी ध्वनि जनता के लिए पहेली वन रही थी। व्यावहारिक-पक्ष में वह कल्याणप्रद नही था। अलौकिक शक्तियो की प्राप्ति और उनके प्रदर्शन के लिए जैसे होड लग गई थी। कही-कही निष्ठा और सयम के भी स्वर सुनाई पडते थे, लेकिन उनकी स्थिति वैसी ही थी, जैसी झझा-प्रताडित वातावरण में दीप की। सामाजिक स्थिति भी उत्साहवर्धक नही थी। उसमे भी अवनति के चिन्ह प्रकट होने लगे थे। श्रेष्ठता का मापदड कर्तव्य नही रह गया था। उच्चता और लघुता जाति-पाँति के पलडे पर तौली जा रही थी। छुआछूत की भावना वढ रही थी और श्रेष्ठता के भ्रम में समाज की विशालता सकीर्णता की ओर फिसलती जा रही थी।

निर्गुण भक्ति के साथ ही सगुण भक्ति की धारा भी चली, जिसने जनता के हृदय को राम और कृष्ण की भावनाओ से आप्लावित किया। यह धारा वडी सवल रही। इसने ज्ञान की दुरूहता को एक ओर ठेलकर सगुण उपासना की बोधगम्यता उपस्थित की। फलस्वरूप रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखा जनता के आकर्षण का केन्द्र बनी और उसके सस्कारो के अनुरूप सिद्ध हुई। वर्षों अनन्तर यद्यपि इस पावन-पुनीत भक्ति शाखा के भी ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर हुए, फिर भी यह हिन्दी साहित्य की गौरव-पूर्ण निधि वनी रही। इसके प्रकाश-स्तभ सूर और तुलसी थे।

अव हम उस पृष्ठभूमि को देखे, जिसने पूर्वमध्यकाल की उन भावनाओ को जन्म दिया। सर्वप्रथम राजनीतिक अवस्था को देखें, जो हर समय प्रधान स्थान रखती है। आदिकालीन राजनीति से मध्यकालीन राजनीति और भी अधिक सघर्षमयी और उद्वेलित थी। विदेशी आक्रमण रुके नही थे। देश के भीतर भी अशाति थी। पारस्परिक कलह और विद्वेष वढते ही जा रहे थे। राजपूतो की वीरता आपस में ही तलवार बजाकर मिट रही थी। सर्वस्व लुटाने को वे तैयार थे, पर मूंछ की ऐंठन ढीली करना नही चाहते थे। परिणाम-स्वरूप वे विदेशी आक्रमणकारियो के हाथ एक-एक कर परास्त हुए और देश पर परतत्रता की जजीरें झनझना उठी। राजपूतो के राज्य छिन गये, तलवारो का जौहर पडा रह गया। जनता ने आँखो के सामने प्रतापी वीरो और राज्यो को मिटते देखा और साथ - साथ अपनी दुर्गति भी देखी। सोमनाथ का ध्वस हुआ और अनेकानेक श्रद्धामयी मूर्तियो पर प्रहार हुए। जनता देखती रह गई, पर धर्म की हानि होने पर अवतार लेनेवाले प्रभु का आगमन नही हुआ। उसकी आस्था अपने ईश्वर से हटने लगी और प्रत्यक्ष तलवार-धारी का ही ईश्वर शक्तिशाली जान पडा। इस विकट स्थिति में कवियो के सामने भक्तिमार्ग के सिवाय और दूसरा चारा भी नही था। इसे एक तरह का पलायन-वाद ही समझना चाहिए, क्योकि एक भी ऐसा कवि नही दिखाई पडता, जिसने आई विपत्ति का सामना करने के लिए सगठन की भेरी वजाई हो। कवीर की आवाज में सुधारक की फटकार है और तुलसी का काव्य परोक्ष रूप से चरित्र-गठन का सकेत करता है। सूर तो इन दोनो से नितात अलग है। उनके हृदय मे भक्ति की मस्ती और वेदना दोनो है। लेकिन यह भी एक आश्चर्य ही है कि ऐसी उथल-पुथल और सघर्षपूर्ण राजनीतिक स्थिति मे भी भक्ति की आवाज निनादित होती रही। इस राजनीतिक-सघर्ष मे राज्य-लिप्सा तो थी ही, साथ ही धर्म-प्रसार की भावना भी प्रवल थी। देश की तलवार विदेशी-राज्य-लिप्सा को पूर्णत रोक रखने में भले ही असफल रह गई हो, पर धर्म-प्रसार की भावना को भक्त-कवियो ने एक शक्तिशाली चुनौती दी और इस तरह देश की प्राणरक्षा की।

सामाजिक अवस्था भी पतनोन्मुख थी। जातीय भेद-भाव का रग काफी गहरा हो गया था। अव ऊँच-नीच की भावना का भी उन्मेष हुआ। जिनके राज्य छिन गये थे, वे अपने को जन-साधारण की पक्ति में समझने को तैयार नही थे। साथ ही जिन लोगो ने नया-नया इस्लाम का वाना पहना था वे विधर्मी करार दिये गये और वडी भयानक घृणा उनके हृदय में भी भर गई।

की बडी आवश्यकता थी। उस आवश्यकता की पूर्ति का साधन उन्होने भक्तिकाल से एकत्र किया।

उत्तर मध्यकाल का साहित्य प्रधानत रीति और श्रृगार का साहित्य है। उक्ति-वैचित्र्य और श्रृगार-वर्णन ही इसकी विशेषता है। यो तो पूर्व मध्यकालीन काव्य-परपराएँ सर्वथा निर्मूल नही हो गई थी, पर प्रमुखता रीति और श्रृगार की ही थी। पूर्ववर्ती काव्य-परपरा भी इस रग से दूर नही हो सकी। रीति और श्रृगार का रग राधाकृष्ण-विषयक वर्णनो पर पूरा कसकर जमा, यहाँ तक कि राधाकृष्ण साधारण नायक-नायिका की श्रेणी में घसीट लाये गये। पूर्व मध्य से उत्तर मध्य में इतना अन्तर क्यो हुआ, इसका उत्तर तत्कालीन परिस्थितियाँ देंगी।

राजनीतिक पृष्ठभूमि कलहपूर्ण होती हुई भी सह्य हो गई थी। इस समय विशेषकर मुगलो का राज्य था, जिन्हें दरबार का ठाठ प्रिय था और राजा के रग में रँगने के इच्छुक सामन्त तथा सरदार भी थे। ज्यो-ज्यो मुगल बादशाहत का अत होता गया, त्यो-त्यो देशी शक्तियाँ उभरती गईं, स्वतत्र होती गईं और मुगल दरबार का आदर्श अपने सामने रखती गईं। विलासिता, वैभव और झूठी प्रशसा के इच्छुक इन राजाओ, सामन्तो और नवाबो के दरबारो ने अपने प्रशसको के लिए फाटक खोल दिये। श्रृगार और उक्ति-वैचित्र्य मनोरजन के तो साधन है ही, साथ ही उनको प्रोत्साहन भी मिला।

सामाजिक स्थिति भी शोचनीय थी। दुख दूर करने के सामूहिक प्रयत्न होते दिखाई नही पडते थे। राजनीतिक कुव्यवस्था ने जिस विलासिता और लोलुपता को जन्म दिया था, वह केवल शोषण और उत्पीडन पर आधारित थी। जन-साधारण के कष्टों की सुनवाई नही थी और स्वय वह भी सगठित नही था। जनता के बीच से ही यदि कोई प्रभावशाली और प्रतिभा-सपन्न निकल सका, तो झूठी प्रशसा सुनाकर तथा वाग्वैचित्र्य दिखाकर वह दरबार को प्रसन्न कर सकता था और अपना समय भी सानद बिता सकता था। जन-साधारण की दृष्टि यद्यपि नैतिकता-पूर्ण थी फिर भी कोरे त्याग की भावना का लोप हो रहा था और लोग परलोक के साथ-साथ लोक की भी चिन्ता करने लगे थे। आदर्शवादिता यथार्थता को जन्म दे रही थी, बलिदान और त्याग का स्थान भोग की प्रवृत्ति ले रही थी। थोडे परिश्रम से प्रतिभासपन्न व्यक्ति वाहवाही और धन दोनो उपार्जित कर सकता था।

साहित्यिक पृष्ठभूमि की ओर देखने से पता चलता है कि भावनाओ की अभिव्यजना पूर्ण मात्रा में पूर्ववर्ती भक्ति-काव्य में हो चुकी थी। सूफियो के प्रबन्ध, कबीर के गीत, मीरा के भजन, तुलसी के विनय के पद और सूर का गोपियों का विरह-वर्णन, सबके सब भावनाओ का भण्डार लेकर खडे थे। दूसरी ओर परवर्ती सस्कृत-आचार्यों के लक्षण-ग्रन्थो की भरमार थी। अत इस काल ने काव्य-प्रतिभा तथा आचार्यत्व दोनो को गुम्फित करने का प्रयत्न किया और फलस्वरूप रीति-परपरा चल पडी। आचार्यत्व के प्रलोभन ने कभी-कभी इस काल की काव्य-प्रतिभा को अवरुद्ध कर डाला, पर यह धारा इतनी तीव्र और आकर्षक थी कि आचार्य और कवि अपनी सीमाओ और शक्ति को भूलकर इसमे सतरण का प्रयास करने लगे थे। जो भी हो, इस युग ने

शक्ति का पराक्रम बढने लगा। यह शक्ति अग्रेज जाति की थी। १७५७ में प्लासी की लडाई के बाद उनके पाँव निश्चित रूप से जम गये। फिर १८०३ में उन्होने दिल्ली पर भी अधिकार जमा लिया। उनकी इस प्रभुता को देश के जागरूक व्यक्ति देख रहे थे, वे सोये नही थे। १८५७ में उन्हें उखाड फेंकने का प्रयत्न हुआ, पर सगठन की दुर्बलता के कारण वह सफल होकर भी असफल हुआ। कपनी के हाथ से देश के शासन की बागडोर पार्लियामेंट के हाथ मे गई और भारतीय सगठन तथा जातीय उत्साह को दबाने का बडा युक्तिपूर्ण प्रबन्ध हुआ। १८८५ में जिन उद्देश्यो को लेकर काग्रेस की स्थापना हुई थी, वह उनसे बहुत दूर हो गई और स्वाधीनता-सग्राम का नेतृत्व करने लगी। बग-भग कानून ने स्वतत्रता की ज्वाला को और भी प्रोत्साहन दिया और साथ ही अनेक क्रातिकारी सस्थाओ की भी नीव पडी। प्रथम महायुद्ध ने भारत के प्रति अग्रेजो की दुराशयता को और भी प्रकट किया। इसी समय गाधी जी ने काग्रेस में प्रवेश किया। स्वतत्रता-सग्राम की जडें दृढ होती गईं और जनता में अधिकार की भावनाएँ जोर पकडती गईं। गाधी जी के नेतृत्व ने देश को एक नई शक्ति दी और एक नई दिशा की ओर निर्देश किया। स्वराज्य के लिए सत्याग्रह का विधान हुआ, जो उत्तरोत्तर प्रबल होता गया। अग्रेजो की नृशसता भी बढती गई। द्वितीय महायुद्ध छिडा और समाप्त हुआ। भारत ने सहयोग से हाथ खींचा और "भारत छोडो" का नारा बुलद हुआ। नेता कारागार में डाल दिये गये, पर जनता ने क्राति का शख फूँका। भारतीय वीर-शिरोमणि सुभाष ने विदेशो में सैन्य सगठन कर दूसरी ओर से अग्रेजो को ललकारा। फलस्वरूप देश स्वतत्र हुआ, पर अग्रेजो की कूटनीति ने देश का बँटवारा करा डाला। जल, थल एव नभ पर सीमा की रेखाएँ खीची और साथ ही अलग होते-होते हिन्दू-मुसलमानो ने एक दूसरे के खून से होली खेली। फिर सब शात हुआ। यह थी राजनीतिक परिस्थिति जिसका प्रभाव आधुनिक हिन्दी साहित्य पर बेजोड पडा।

धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियो को हम स्वतत्रता-सग्राम की प्रेरक शक्ति कह सकते हैं। इन आन्दोलनो ने इस सग्राम को दृढता, विश्वास और सगठन की शक्ति प्रदान की। अग्रेजो के आगमन से धार्मिक और सामाजिक शक्तियो को एक नई परिस्थिति का सामना करना पडा। अग्रेज ज्ञान और विज्ञान की शक्ति से सपन्न थे। देश मे उन्होने इसके सहारे नये परिवर्तन किये। आने-जाने के नये साधन, नये कानून, छापने की नई मशीनें आदि के आविर्भाव ने समाज और धर्म के अधविश्वासो, उसकी रूढियो और जडता को एक चुनौती दी। इस चुनौती ने देश के सुप्त गौरव को झकझोर डाला। अतीत गौरव का स्मरण कर तथा वर्तमान की दुरवस्था को देखकर देशवासी सजग और भयभीत हो उठे। युग ने स्वामी दयानद, राजा राममोहन राय, महादेव गोविद रानडे प्रभृति व्यक्तियो को जन्म दिया, जिन्होने आर्यसमाज, ब्रह्म-समाज, महाराष्ट्र समाज का सगठन कर देश के अधकार को दूर भगाया। कुहासा फटा और एक नई चेतना से देश की शिराए झनझना उठी। लोगो ने पुरानी लकीरें छोडी, नये प्रभात को पहचाना और इसके प्रकाश में अपने लुप्त गौरव को प्राप्त करने की चेष्टा की। इन्ही प्रवृत्तियों ने राष्ट्रीय चेतना को जगाया। जब लहर में गति आई, तो उसने अनेकानेक लहरो को जन्म दिया। हिन्दी

# हिंदी साहित्य : एक विहंगम दृष्टि

## श्री हरिमोहन प्रसाद श्रीवास्तव, एम० ए०, ओ० ई० एस०

हिंदी भाषा की झलक आठवी शताब्दी से ही मिलने लगती है। लोकजीवन से उद्भूत लोक-भाषा को माध्यम बनाकर सिद्धो ने इस भाषा मे काव्य-रचना प्रारभ की थी। यद्यपि उस काल की भाषा पर अनेक प्रातीय भाषाओ, यथा मराठी, उड़िया, बँगला, आसामी, गोरखा, पजाबी, गुजराती आदि का उतना ही अधिकार है जितना हिंदी का, किंतु इससे यह बात अवश्य प्रकट हो जाती है कि इन सब भाषाओ से हिंदी का मूलत भेद नही है, और जब आज हिंदी राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है, उसे इस बात का गर्व होना चाहिए कि उसका एक बहुत बड़ा परिवार है जिसके प्रत्येक सदस्य ने अपने-अपने साहित्य की एक विशाल सपत्ति खडी कर ली है, जो उसी की है। हिंदी साहित्य के इतिहास में इन सभी भाषाओ के साहित्यकारों को यथायोग्य स्थान जब तक नही दिया जायगा, तब तक हिंदी का इतिहास न तो पूरा कहा जा सकेगा और न उसकी व्यापकता ही बढ सकेगी। हिंदी ने अन्य प्रातीय भाषाओ पर अपना व्यापक प्रभाव डाला है और उनसे यथेष्ट रूप में प्रभावित भी हुई है, किंतु साहित्य के इतिहासकारो ने हिंदी के विकास की जो सीमा-रेखा खीची है, उसके अनुसार हिंदी साहित्य का विभाजन निम्नलिखित कालो में किया जा सकता है—

१ आदिकाल (८वी शताब्दी से ११वी शताब्दी तक)
२ वीरगाथाकाल अथवा मिश्रित काल (११वी से १४वी शताब्दी तक)
३ भक्तिकाल (१४वी से १७वी शताब्दी तक)
४ शृगारकाल (१६वी से १९वी शताब्दी तक)
५ आधुनिककाल (१९वी से अद्यावधि)

८वी से लेकर ११वी शताब्दी तक का काल एक मिश्रित युग है, जिसमें अनेक धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक परिवर्तन होते हैं, अनेक विचारधाराओ का आगमन और विलयन होता है तथा अनेक भाषाओ को हम खडी होते देखते है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह युग बाहरी आक्रमणो और भीतरी फूट का युग है। बौद्धधर्म के पतन के परिणाम-स्वरूप महायानशाखा शैव-सप्रदाय का सहारा लेकर वज्रयान के रूप में तत्र, मत्र, पचमकारो के वामाचारीय रूप को लेकर जनता को आश्चर्य-चकित कर रही थी, नाथपथी साधु विशुद्ध शैवमार्ग की यौगिक प्रणाली पर चल रहे थे, सिद्धो की सध्या भाषा, नाथो की सधुक्कडी भाषा और जैनियो द्वारा प्रयुक्त अपभ्रश भाषा के

जाता है कि हिंदी गद्य के आद्य लेखक भी गोरखनाथ ही थे, किंतु यह सत्य नही है। गोरखसार की भाषा से और उसमें वर्णित विषय के ढग से प्रतीत होता है कि वह गोरखनाथ के किसी शिष्य द्वारा वाद में लिखा गया होगा।

परवर्ती काल में इन सिद्धो और नाथो की रचनाओ का प्रभाव निर्गुणोपासक कवियों पर खूब पडा। कबीर का योगदर्शन, हिंदू-मुसलमानो को उनकी फटकार, पूजा, तीर्थाटन का तिरस्कार, उलटवासियाँ, रहस्य-भावना आदि इन्ही नाथो और सिद्धो के प्रभाव हैं। आचार्य रामचद्र शुक्ल जी ने इनको साहित्य की कोटि में जो नही माना है, वह बहुत अशों तक गलत नही है। वास्तव में साधारण जनता पर इनका आध्यात्मिक प्रभाव भले ही रहा हो, किंतु साहित्य के लिए जिस रागात्मिका वृत्ति को प्रेरित करने की आवश्यकता होती है, कम से कम वह तो सिद्धो और नाथो के साहित्य मे नही मिलती। साथ ही साथ साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अग भाषा होता है, उसके अध्ययन के निमित्त इनकी उपयोगिता को अस्वीकार नही किया जा सकता। सच तो यह हैं कि सिद्धो और नाथो का साहित्य एक विशिष्ट ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य रखता है किंतु उसमें उतनी साहित्यिक गरिमा नही है।

दूसरे झरोखे से आपको निश्चय ही साहित्य की छविमयी झाँकी मिलेगी। स्वयभू, पुष्पदत, धनपाल और अब्दुर्रहमान के काव्य निश्चय ही साहित्य के गौरव ग्रथ हैं। इनमें अब्दुर्रहमान (अद्दहमाण) को छोडकर प्राय सभी कवि जैन थे। स्वयभू बहुत ही सशक्त कवि थे—प्रकृति के अध्ययन और प्रकृति के वर्णन में बेजोड थे। नारी-रूप-वर्णन और तत्कालीन सामन्तो की विलास-केलि को जैसे कवि ने बहुत निकट से देखा था। ये व्याकरण और छन्दशास्त्र के भी अद्भुत ज्ञाता थे। पउमचरिउ, हरिवश पुराण, काव्य ग्रथो के अतिरिक्त स्वयभू छन्द नाम से इनका एक प्रसिद्ध छन्द ग्रथ भी है। इस प्रकार पुष्पदत का भी जैन साहित्य में बहुत ही ऊँचा स्थान है। इनकी अनेक कृतियो का पता चलता है—महापुराण, जसहरचरिउ तथा णायकुमार-चरिउ। ये बहुत ही करुण और स्वाभिमानी थे। कुछ लोगो ने शिवसिंह सेंगर द्वारा उल्लिखित कवि पुष्प के साथ इनका साम्य खोजना चाहा है। इन जैन कवियो में अनेक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कवि हुए हैं जैसे हेमचन्द्र, सोमप्रभ सूरि, विनयचद्र सूरि, धर्मसूरि तथा विजयसिंह सूरि आदि। किंतु ये परवर्ती कवि है और इनके समय तक आते-आते हिंदी कविता का मौलिक विकास होना प्रारभ हो गया था।

"सदेस रासक" का लेखक अब्दुर्रहमान हिन्दी का पहला मुसलिम कवि है। लोक-जीवन की कथाओ को लेकर इस कवि ने अत्यत मार्मिक ढग से काव्य-रचना की है। इसकी भाषा अव-हट्ठ थी, वाद में जिसकी सूचना ज्योतिरीश्वर के वर्णरत्नाकर और विद्यापति की कीर्तिलता में मिलती है।

जैन कवियों की भाषा अपभ्रश है। इस भाषा के साहित्य पर प्राय सभी उत्तर-पूर्वी भाषाओ का समानाधिकार है। कहना न होगा कि अपभ्रंश साहित्य की अमूल्य सपत्ति का उद्धार करने में विदेशी विद्वानो यथा हरमन याकोवी, पिशेल प्रभृति का बहुत हाथ रहा है। एक समय

अवश्य हो सकता है। फिर "प्राकृत पैंगलम" में पाये गये अनेक कवियो के फुटकल उद्धरण जो हिंदी से सबधित है, उनको भी विचार की वस्तु बनाना चाहिए था। गुरुवर डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी जी ने उन गुजराती रचनाओ की—जिनका कुछ न कुछ सबध हिंदी से है—ओर भी सकेत किया है, और यह सुझाया है कि उन्हें भी साहित्य के इतिहासकारो को परखना चाहिए था। जो भी हो, भट्ट केदार, मधुकर, जगनिक और श्रीधर ऐसे कवि भी है जिनमें वीरगाथा की प्रवृत्तियो का आभास दिखलाई पडता है। इन कवियो ने क्रमश "जयचदप्रकाश" (महाकाव्य), जयमयक-जस-चद्रिका, आल्हा, तथा रणमल छन्द नामक ग्रथ रचे जिनमें से दो की तो केवल सिंघायक दयालदास कृत "राठौडा री ख्यात" से सूचना मिलती है। आल्हा के काव्य का ग्रन्थ अब तक कही नही मिला, केवल उसके गीत गानेवालो तक ही सीमित है। इस दृष्टि से भी इसे वीरगाथा-काल का मानना अधिक उपयुक्त नही लगता। इन सब के अतिरिक्त वे अन्य कवि ही वास्तविक रूप से मुख्य हो उठे है, जो फुटकल में डाल दिये गये है। अस्तु, इस काल का नामकरण या तो खुसरो और विद्यापति के काव्य के आधार पर करना चाहिए था अथवा आदि-काल की सीमा-रेखा को कुछ और दूर तक खीच देना चाहिए था।

इस काल को मिश्रित अथवा उदय-काल कहने का मेरा तात्पर्य केवल यही है कि इसमें अनेक प्रकार की भाषाओ का प्रयोग अथवा मिश्रण दिखलाई पडता है। छन कर कोई साफ-सुथरी भाषा नही आई थी। किंतु इससे सभी साहित्यिक प्रवृत्तियो यथा कथानक रूढियो, कवि-समय, छद-पद्धति और काव्यरूपो का पूरा-पूरा प्रभाव परवर्ती साहित्य पर पडा है। इसने लौकिक और आध्यात्मिक दोनो दृष्टियो से हिंदी को अपनी सपूर्ण विरासत सौंपी है इसलिए इसकी उपेक्षा तो की ही नही जा सकती। सच तो यह है कि हिंदी इस काल के सभी प्राण-तत्त्वो को लेकर अपनी नवीन काया में उदित हुई है। जिस प्रकार माता के सभी गुणो को ग्रहण कर सन्तान उसके शरीर से बाहर आ जाने पर अपनी एक अलग सत्ता स्थापित कर लेती है, उसी प्रकार हिंदी ने कालान्तर में अपने नये परिवेश में अलग से ही अपनी एक इयत्ता बना ली। खुसरो प्रभृति कवियो का काल यही था। हिंदी भाषा अथवा खडी बोली की स्पष्ट रूप-रेखा का पता खुसरो से ही चलता है। बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न और सर्वथा मौलिक ढग से प्रयोगवादी इस व्यक्ति ने हिन्दी साहित्य और भाषा को ही नही, वरन् भारतीय सस्कृति के अनेक कलात्मक पक्षो को प्रभावित किया है यथा साहित्य, भाषा, छद तथा सगीत-वाद्य, कथ्य आदि। नवीनता और आविष्कार की वृत्ति जैसे इसमें सहज रूप से प्रकृति-प्रदत्त थी।

पश्चिम की ओर जहाँ खुसरो की भाषा में साहित्य का रूप अपना नवीन रूप ग्रहण कर रहा था, वही हिंदी की पूर्वी भाषा में विद्यापति जैसे महान् कवि का अभ्युदय भी १४६० के आसपास तिरहुत के राजा शिवसिंह के समय में हुआ। इनके कृष्ण-लीला-सबधी पदो ने कृष्ण-भक्ति साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला। मिथिला से लेकर बगाल तक घर-घर इनके गीत मधुर कठस्वरो में गूँजते रहे। चैतन्य महाप्रभु तो विद्यापति के गीतो को गाते-गाते बेहोश तक हो जाते

कवि ने अपनी अनगढ भाषा में ही ऐसे काव्यरत्नो को प्रसूत किया है, जिनकी मौलिकता से परवर्ती कवि प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं। आधुनिक काल में भी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसी प्रतिभाओ ने काव्य में जीवन-दर्शन का जो कुछ दृष्टिकोण व्यक्त किया है, उसमें कबीर की अनुभूतियो का बहुत बडा हाथ है। लौकिक माध्यम से अलौकिकता का स्पर्श करानेवाले पद साहित्य की अमूल्य निधियाँ है। निर्बंध जीवन और मुक्त-चिन्तन, श्रद्धा विगलित हृदय और समूचे विश्व के पाखण्डो को चुनौती देनेवाला कबीर का अहम् एक अद्‌भुत आकर्षण रखता है।

सूफी सन्तो के प्रभाव से विकसित होनेवाली निर्गुण धारा का एक दूसरा प्रेममार्गी रूप है। इन कवियो ने प्राय लोक-जीवन में प्रचलित प्रेम-कथाओ को आधार बनाकर ब्रह्म से मिलने का प्रयास किया है। प्रेम की जिस शुद्ध पीडा को लेकर ये कवि चले है, वह सम्पूर्ण रूप से मानवीय है। किसी विशेष सप्रदाय अथवा मत-प्रतिपादन की उसमे छूत तक नही दिखलाई पडती। सम्भवत यही कारण है कि इनके प्रेम ने मुसलमानो को भी अपनी ओर उसी तरह आकर्षित किया जिस तरह हिंदुओ को किया था। इस धारा के बहुत थोडे कवियो का नाम इतिहास में आता है जैसे कुतुबन, मझन, जायसी, कासिमशाह, नूरमुहम्मद आदि। इनकी रचनाएँ है क्रमश मृगावती, मधुमालती, पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम, हस-जवाहिर, रौजतुल हकामत, अनुराग-बाँसुरी और इद्रावती। मझनकृत मधुमालती हाल ही में श्री शिवगोपाल द्वारा सपादित होकर प्रकाश में आई है, जिसका साहित्यिक मूल्याकन उचित प्रकार से किया जायगा किंतु इन सबमें श्रेष्ठ कवि जायसी है जिनका पद्मावत हिंदी साहित्य का अनूठा रत्न है। वैसे कहा जाता है कि जायसी के चार ग्रथ—मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावली है। शुक्ल जी को मृगावती और मधुमालती का पता तो चल गया था किंतु शेष दो उनको नही मिल सके थे।

सूफी सत-परपरा से प्रभावित इन प्रेममार्गी कवियो मे प्राय मुसलमान ही है। एक पजाबी हिंदू सूरदास ने "नलदमयती कथा" नाम से एक कहानी लिखी थी, पर वह निकृष्ट कोटि की थी। वैसे कालान्तर मे "चतुर्मुकुट की कथा" तथा "यूसुफ जुलेखा" नाम से दो ग्रन्थ और लिखे गये पर बाद में यह परपरा समाप्त हो गई।

इन प्रेममार्गी कवियो ने मुसलमान होकर भी हिंदू कथाओ को अपने काव्य का माध्यम बनाया था, हिन्दुओं की भाषा को अपनाकर सूफी भावो की अभिव्यक्ति की थी, इसलिए इन लोगो ने इन दो जातियो के बीच जैसे मध्यस्थ का कार्य किया और शुद्ध हृदय की पीडा तथा विरह की तीव्र अनुभूतियो द्वारा दोनो सप्रदायों के हृदय को बिलकुल निकट ला दिया। प्राय रूप (छन्द) और वस्तु, दोनो ही दृष्टियो से इन कवियो में कोई विशेष अन्तर नही था। पाँच-पाँच चौपाई के बाद दोहा रखने की प्रवृत्ति थी। किंतु नूरमुहम्मद ने दोहे के स्थान पर बरवै का प्रयोग किया है। कही-कही इन कवियो में योग-सबधी बातो की झलक भी दिखलाई पड जाती है पर प्रेमिका, प्रेमी, दूत, विरह, प्रयत्न और मिलन जैसे इनके काव्य के सधिस्थल है जो प्राय जीव, गुरु, पीडा, गोरखधधा और जीव-ब्रह्म-मिलन के प्रतीक लगते है।

भक्ति की दूसरी धारा सगुणोपासना की है। इसमें विष्णु के दो अवतारो राम और

विश्वास वढने लगा। मेरा सारा समय हिंदी-शिक्षा में ही व्यतीत होता था। जहाँ-जहाँ इस उद्देश्य से जाता वहाँ एक विचित्र प्रकार की राष्ट्रीय भावना खेल जाती। प्राय लोगो के मनोरजनार्थ अपने जेल के अनुभव सुनाता और लोगो को काग्रेम की प्रतिष्ठा, खद्दर की महत्ता सुनाता। यह काम गुलाव की सुगधि की भाँति फैलने लगा था। पीछे पुलिस रहती थी, परन्तु अव मैं केवल शुद्व रूप से राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचारक था।

मार्च सन् १९३३ मे मैंने हिंदी के स्थायी प्रचार के लिए एक सस्था वनाने का विचार किया। मैंने अपनी इम कल्पना की चर्चा कई सज्जनो से की। उन लोगो ने सहानुभूतिपूर्वक अपने विचार दिये। कुछ व्यक्तियो ने इस कल्पना को साकार रूप प्रदान करने के लिए अपने नाम भी दिये। वे नाम थे स्वामी विचित्रानन्द दास वकील और श्री रावानाथ रथ जी। शेष तो अभी जेल में ही थे।

समिति वनाने की कल्पना जव मैंने रथ जी के समक्ष रक्खी तो वे मुझे लेकर स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने सभापति वनना स्वीकार कर लिया। श्री रावानाथ रथ उसके मत्री वन गये तथा ५, ७ आदमी और लेकर सस्था खडी कर दी गई। सभा वन गई। नाम रखा गया "उत्कल प्रातीय हिंदी-प्रचार सभा।" कुछ दिन के वाद सभा का उत्सव मनाया गया। उसका उद्घाटन समारोह श्रद्धेय जानकीनाथ वोस के कर-कमलो द्वारा सम्पन्न हुआ। कल्पना साकार हुई। सभा वन गई, और उसके कागज-पत्र रखने के लिए श्री रावामोहन जी ने अपनी देवदारु की वनी आलमारी दी जो आज भी सभा के वचपन की याद में स्मारक का काम कर रही है।

उस समय सभा उसी आलमारी तक सीमित थी, उसके लिए घर की अलग चिंता थी। पैसा तो पास था नही। किसी प्रकार एक टूटा-फूटा दोतल्ला घर मिला जिसमें पहले मनुष्य नही, प्रेत वसते हैं। ऐसा कह कर मुझे डराया गया था।

इसी समय हरिजन आन्दोलन आरम्भ हो गया। जेल से छूटकर श्री गोपवन्धु जी चौवरी हरिजन-कार्य में लगे थे। श्रीमती रमादेवी चौवरी भी उन्हीं के साथ थी। उन्ही को सवसे पहले सभा का कोषाव्यक्ष वनाया गया और उन्ही से तीस-चालीस रुपये लेकर घर की मरम्मत कराई गई। कार्यालय वही खुल गया। कक्षाएँ भी वही चलने लगी। परन्तु घर-घर घूमकर क्लास चलाने और भोजन करने का काम यथावत् रहा।

क्रमश पठन-पाठन का काम वढने लगा। वहाँ पढने के लिए काग्रेस स्वयसेवकों के अतिरिक्त सावारण नागरिक भी आने लगे। उस समय भी मैं केवल पडित जी था। नाम की जरूरत नही थी। किसी ने मुझसे नाम पूछा ही नही। मुझे लोगो की, विशेषकर हिंदी सीखनेवालो की उदारता, सहृदयता और स्नेहपूर्ण सहानुभूति मिली जो राष्ट्रभाषा के लिए अनुपम वरदान सिद्ध हुई। उन्ही लोगो के प्रयत्न से मैंने किराये पर एक घर लिया और उस पर राष्ट्रभाषा का वोर्ड लगा दिया।

सभा को नाम-रूप तो मिल गया, किंतु अर्थ न था। भोजन के लिए कई घर थे। मैं कोई

वैसे तुलसीदास के उपरान्त रामभक्ति शाखा के अनेक कवि हुए है जैसे स्वामी अग्रदास जी, नाभादास जी, प्राणचद चौहान, हृदयराम आदि किंतु उनका उतना महत्त्वपूर्ण स्थान नही है। कालान्तर में जब कृष्ण-भक्ति की प्रेम-भावना का प्रचार अत्यधिक बढ गया तब उसका प्रभाव रामभक्ति शाखा पर भी पडे बिना न रहा। परिणामस्वरूप इस भक्ति-मार्ग में भी "स्वसुखी" शाखा के नाम से पति-पत्नी भाव को लेकर रामचरणदास जी ने एक भक्ति की पद्धति चलाई जिसमें भक्त अपने को पत्नी और राम को पति मानकर उपासना करता है। अस्तु, काम-कला, विलास-लीला मे इन भक्तो ने राम को कृष्ण से पीछे नही रहने दिया। इसी प्रकार जो लोग सखीभाव से राम की उपासना सखा मानकर करने लगे उन्होंने एक अलग "तत्सुखी" शाखा की स्थापना की। चित्रकूट को वृदावन मानकर वहाँ के कुजो में राम को सखीभाव से क्रीडा करने के लिए क्रीडाकुज तक स्थापित कर दिये गये। "रामभक्ति के रसिक सप्रदाय" के नाम से अभी-अभी डा० भगवती-सिह का एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमें इस सप्रदाय-सबधी अनेक महत्त्वपूर्ण बातो का विवरण प्राप्य है।

जिस प्रकार अयोध्या रामभक्ति का प्रधान केन्द्र रहा, उसी प्रकार मथुरा और गोकुल कृष्णोपासना के प्रमुख तीर्थस्थल है। वल्लभाचार्य जी ने भक्ति के दो अवयवो—श्रद्धा और प्रेम—में से केवल प्रेमलक्षणा भक्ति को ही साध्य मानकर पुष्टि सप्रदाय की स्थापना की और अपनी उपासना-पद्धति का नाम पुष्टिमार्ग रखा तथा गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मन्दिर की स्थापना की जो भोग और प्रदर्शन की सामग्री से पूर्ण था। इसमें भक्तजन कृष्ण-सबधी पदो को बनाकर गाया करते थे। बाद में वल्लभाचार्य जी के सुपुत्र विट्ठलनाथ जी जब गद्दी पर बैठे तो उन्होने आठ श्रेष्ठ कवियो को चुनकर "अष्टछाप" की स्थापना की (सूरदास, कुभनदास, परमानददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नददास)। अष्टछाप के इन कवियो के अतिरिक्त गदाधर भट्ट, हितहरिवश, मीराबाई, स्वामी हरिदास, सूरदास, नदमोहन, श्रीभट्ट, व्यासजी, रसखान, ध्रुवदास आदि अनेक प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। किन्तु अष्टछाप के सूरदास और नददास तथा उससे ऊपर कवियो मे रसखान अत्यधिक प्रसिद्ध कवि है।

कृष्णभक्त कवियो ने श्रीकृष्ण की उपासना के लिए जो माधुर्य भाव अपनाया था, उसके अनुकूल कृष्ण की बाल्यावस्था और यौवनावस्था ही पडती है। इसके अतिरिक्त गीता के कृष्ण का ओजस्वी रूप इन कवियो की कविता का वर्ण्य विषय नही बन सका। सूरदास जी इनमें निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। अपनी अधी आँखो से कृष्ण की बाल-लीलाओ और उनसे सबधित शृगार के दोनों पक्षो—वियोग और सयोग—की मार्मिक स्थितियो का जितनी बारीकी से इन्होने वर्णन किया है, उतना कोई आँखोवाला कवि भी नही कर सका था। वर्णन की सजीवता, चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ, रूपक, भाषा की प्राजलता, मार्मिक प्रसगो की उद्भावना, मनोवैज्ञानिक स्थितियो की सफल अभि-व्यक्ति में सूरदास अपना सानी नही रखते। लक्षणा और व्यजना तो भ्रमर-गीत के प्रसग में जैसे कवि की अनुवर्तिनी बनकर चलती हैं। सूरदास ने व्रजभाषा का जो प्रयोग पहले-पहल किया, उससे यह मान लेना कि व्रजभाषा की कोई सुव्यवस्थित परम्परा रही होगी ही, अनुचित न होगा।

की प्रवृत्तियो के दर्शन होते हैं। एक तो शास्त्रीयता-प्रधान, दूसरा काव्य-प्रधान। शास्त्रीयता का जो स्वरूप केशव की कविप्रिया से प्रकट हुआ था वह स्वीकृत नही हुआ, वरन् उनके पचास वर्ष वाद चिन्तामणि त्रिपाठी के "काव्य-विवेक", "कविकुल-कल्पतरु" और "काव्य-प्रकाश" के आधार पर काव्यागो के निरूपणार्थ अनेक लक्षण-ग्रन्थो की एक परपरा सी खुल गई। जो भी कवि होता था वह आचार्य बनने के लिए यह आवश्यक धर्म समझता था कि वह लक्षणो की ओर सकेत जरूर करे। अलकार, छद, रस, नायक-नायिका-भेद आदि ही काव्य के विषय बनने लगे, जिनमें सर्वाधिक मुख्यता नायक-नायिका-भेद को दी गई। कृष्णभक्ति के माधुर्य भाव ने जो रूप बदला तो वह इसी क्षेत्र मे आकर गिरा और अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया। दूसरे प्रकार के रीति-ग्रथो के कर्त्ता कवि अधिक थे और आचार्य कम। इसलिए उन लोगो ने शास्त्रीयता की अपेक्षा काव्यत्व के ऊपर अधिक ध्यान दिया, जिसका परिणाम यह अवश्य हुआ कि हिंदी में मुक्तक काव्यो की एक मनोहारी परम्परा स्थापित हो गई। काव्य के व्यावहारिक तत्त्व को रीतिकाल ने अत्यधिक सकुचित कर दिया था। विषयों में न तो विविधता रह गई, न भावो में नवीनता। किंतु उस काल के कुछ उत्तम कवियो में चितामणि त्रिपाठी, बेनी, विहारीलाल, मतिराम, भूषण, नेवाज, देव आदि थे। यद्यपि इस काल में बहुलाश कविताएँ शृगार रस की हुई हैं किंतु भूषण जैसे कवि भी थे जिन्होने अपनी ओजस्विनी वाणी से हिंदू जाति में वीर रस का सचार किया था।

रीतिमुक्त कवियो को उस काल का रोमेन्टिक (स्वच्छन्दतावादी) कवि समझना चाहिए, जो शास्त्र और लक्षण ग्रथो की परम्परा को अन्य रीतिवादियो की तरह स्वीकार न करके आत्मानुभूतियो की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति को ही महत्त्व देते थे। इसलिए उनके काव्य में अनुभूतियो की तीव्रता और अभिव्यजना की नवीनता जितनी आकर्षक और मर्मस्पर्शी बन सकी है, उतनी रीतिवादी कवियो की नही। उक्ति-वैचित्र्य, भावविदग्धता और कल्पनाशक्ति में घनानद तथा आलम जैसे कवि तो आधुनिक छायावादी कवियो तक से होड ले सकते हैं। जीवन के वास्तविक अनुभवो की सच्ची अभिव्यक्ति उनकी पहली शर्त होती थी। आग्रह और परपरा के प्रति यह स्वर पूर्णतया विद्रोही था।

शृगारकाल मे यद्यपि भक्तिकाल की भाँति प्रवधकाव्य बन सके है जैसे हम्मीररहठ (चन्द्रशेखर), छत्रप्रकाश (लाल कवि), हम्मीर रासो (जोधराज), सुजानचरित्र (सूदन) तथा महाभारत आदि, किंतु कुछ लवी कविताएँ जिन्हें आचार्य शुक्ल ने वर्णनात्मक प्रबध कहा है—दानलीला, मानलीला, जलविहार आदि कुछ प्रसग-गत विषयो पर सुदर रचनाएँ मिलती हैं। किंतु जहाँ हाथी, घोडे और वारात आदि का वर्णन आता है वहाँ वे भी उबानेवाली हो उठती हैं। नीति, भक्ति, उपदेश, प्रशस्ति आदि के ढग की रचनाएँ भी पर्याप्त हुई हैं। छन्दो में घनाक्षरी, सवैया, दोहा, चौपाई तथा कुडलियो का प्रयोग ही विशेषत हुआ था। भक्तिकाल के पदो की पद्धति भी घनानद, रसनिधि, नागरीदास प्रभृति कवियो में द्रष्टव्य है। व्रजभाषा अब तक अवधी को काव्यक्षेत्र से वाहर करके साहित्य के पद पर निरकुश भाव से आसीन हो चुकी थी।

मदिर के दीपक नही प्रकाश-स्तम्भ थे । उस समय के लेखक बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, सुधाकर द्विवेदी, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्णदास प्रभृति विद्वान् और साहित्यकार उनकी नीति के ऊपर ही चलनेवाले थे । १८ वर्ष की ही अवस्था में उन्होने "कविवचन-सुधा" नामक पत्र निकाला जिसमें राजनैतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि सभी विषयो के लेख रहते थे, सन् १८७३ में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकाली और कविता के विकास के लिए "कविता-वर्द्धिनी सभा" तथा "कवि-समाज" आदि सस्थाओ की स्थापना की । समस्यापूर्त्ति की प्रथा भी इन्होने ही चलाई थी । यही नही, साहित्य-रचना को प्रेरणा देने के लिए इन्होने कवि परमानद को बिहारी-सतसई के सस्कृत अनुवाद पर ५०० ) का तथा सुधाकर द्विवेदी को एक दोहे पर १०० ) का पुरस्कार दिया था । उनकी दानशीलता और रईसी की कहानियाँ काशी में आज भी चलती हैं । जिस तरह उनका हृदय विशाल था, उसी तरह उनके कार्य भी महान् थे । क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, क्या साहित्यिक, कोई भी ऐसा क्षेत्र नही था जहाँ भारतेन्दु जी सबसे आगे न रहे हो । यही कारण है कि अपनी अतुलनीय प्रतिभा द्वारा उन्होने हिंदी साहित्य में अपना एक युग ही स्थापित कर दिया । ३५ वर्ष जैसी अल्पावस्था में जितना महत्त्वपूर्ण कार्य उन्होने कर दिया उतना भारतवर्ष में शायद ही किसी व्यक्ति ने किया हो। उनकी रसिकता और उनकी शौकीनी यहाँ तक थी कि घर में इत्र के दिये जलाये जाते थे । आधुनिक हिंदी साहित्य में इतनी बहुमुखी प्रतिभा का कोई भी व्यक्ति पैदा नही हुआ, यह कहने मे किसी को सकोच नही होगा ।

भारतेन्दु युग मे जहाँ ब्रजभाषा मे काव्य रचना करनेवाले कवि सेवक, सरदार, ललित-किशोरी, ललितमाधुरी, ईसुरी, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, नाथूराम शकर शर्मा, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', श्रीधर पाठक, म० म० सुधाकर द्विवेदी, राधाकृष्णदास, हरिऔध, बालमुकुन्द गुप्त, भगवानदीन, रत्नाकर, पूर्ण, सत्यनारायण कविरत्न प्रभृति लोग थे, वही अवधी मे प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, शिवसपत्ति शर्मा, महावीरप्रसाद द्विवेदी, सिरस आदि कवि हुए। खडी बोली में भी इन्ही मे से अधिकाश कवि उस समय कविताएँ लिखते रहे जिनकी काव्यवस्तु प्राय समाज-सुधार, राष्ट्रीय चेतना, व्यग आदि से भरी होती थी । जहाँ तक गद्य का प्रश्न है, उसकी सर्वांगीण उन्नति उस समय हुई । इस बात का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि भारतेन्दु के काल ही में कलकत्ता, बनारस, जोधपुर, लाहौर, बिहार आदि अनेक स्थानो से प्राय पच्चीस साहित्यिक पत्रिकाओ का हिन्दी में प्रकाशन हो रहा था ।

साहित्य के निर्माण के साथ ही हिंदी के प्रचार की आवश्यकता भी उस समय भारतेन्दुजी ने अनुभव की थी। बलिया में उनका एक बडा ही मार्मिक भाषण हुआ था। उनके उपरात काशी में नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना बाबू श्यामसुदरदास, पडित रामनारायण मिश्र तथा ठा० शिव-कुमार सिह ने की। इस सभा के द्वारा हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि, देवनागरी का प्रचार, भाषा का प्रचार, तत्र मे आज तक बडे ही व्यवस्थित और प्रशसनीय रूप में होता चला आ रहा है। सवत् १९५६ में सरकार ने ४०० ) वार्षिक सहायता देकर सभा द्वारा अप्रकाशित हिंदी के ग्रथो के खोज-

अधिकाधिक उन्नति हुई और लोगो का ध्यान भी गद्य साहित्य को ही विस्तृत करने की ओर रहा। अस्तु, गद्य की जिन शैलियो का उद्भव और विकास इस बीच हुआ उसकी ओर एक विहगम दृष्टि न डालना उचित न होगा। गद्य की विविध विधाओ अर्थात् निबध, आलोचना, नाटक, कहानी आदि के विकास के सबध में थोडी सी चर्चा कर देना आवश्यक है।

**निबंध**—पहले हम निबध साहित्य को ही लें। जो ब्रजभाषापन, सस्कृतपन और अरबी-फारसीपन लिये हुए शैलियाँ थी उनका रूप क्रमश प्रेमसागर और नासिकेतोपाख्यान, राजा लक्ष्मण सिंह के लेखो तथा राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की भाषा में दिखलाई पडता है। भारतेन्दु ने अपने लेखो में चलती भाषा का स्वरूप रखा और एक नई शैली की उद्भावना की। प्रतापनारायण मिश्र और वालकृष्ण भट्ट ने उस चुहुलवाजी से भरी शैली को अपनाकर वर्णनात्मक, विचारात्मक, कथात्मक सभी प्रकार के विषयो पर निवध लिखे। इस प्रकार निवधो में लेखको का व्यक्तित्व भी झलक सा उठा है। ठाकुर जगमोहन सिंह की शैली का रूप साहित्यिक है। काव्यमयी भाषा में गद्य को जितना अधिक स्पष्ट ये कर सके उतना प्रेमघन जी नही। प्राय इनके प्राकृतिक वर्णन आकर्षक होते हुए भी सस्कृत की आलकारिक शैली की याद दिला देते है।

द्विवेदी युगीन निबधो में लेखको का व्यक्तित्व अधिक उभरा है। भाषा और साहित्य, विज्ञान और आविष्कार, यात्राभ्रमण, धर्म, अध्यात्मक, इतिहास, पुरातत्त्व, आदि सभी प्रकार के विषयो के प्रयोग द्वारा निबध का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत और व्यापक हो गया। भारतेन्दु कालीन निवधो के समान ये निबध भावात्मक और कल्पनात्मक न होकर ज्ञानसवर्द्धन, रुचि-परिष्कार तथा विविध विषयो की सूचना देनेवाले सिद्ध हुए। उस युग के प्रमुख निबधकार हैं महावीर-प्रसाद द्विवेदी, वालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, मिश्रबन्धु, सरदार पूर्णसिंह, गहमरी, गुलेरी, वावू श्यामसुदरदास, रामदास गौड, गौरीशकर हीराचद ओझा और बदरीनाथ भट्ट आदि।

## नाटक

भारतेन्दु के पूर्व ब्रजभाषा में "आनन्दरघुनन्दन नाटक" (विश्वनाथ सिंह) तथा गोपाल-चद का नहुप नाटक था। कोई सुदर परपरा नाटको की नही थी, इसलिए उन्होने इस ओर अथक परिश्रम किया। कुछ तो उनके मौलिक नाटक है और कुछ अनुवाद। मौलिक नाटको में वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चद्रावली, विषस्य विषमौषधम्, नीलदेवी आदि तथा अनूदित नाटको में विद्यासुदर, पाखड-विडम्वन, मुद्राराक्षस आदि है। प० वदरीनारायण चौधरी ने भी कई नाटक लिखे। लाला श्रीनिवासदास का प्रह्लादचरित्र, रणधीर और प्रेममोहिनी, वावू तोताराम का केटोकृतात नाटक (अनुवाद) लिखे गये। केशवराम भट्ट, प० राधाचरण गोस्वामी, राधा-कृष्णदास, कार्त्तिकप्रसाद खत्री कुछ प्रमुख नाटककार हुए। कहा जा सकता है कि नाटको की उन्नति कोई सन्तोपजनक नही थी, विशेपकर मौलिक नाटको की। हाँ, बँगला से वा० रामकृष्ण वर्मा, कुष्णकुमारी, गोपालराम गहमरी तथा रूपनारायण पाण्डेय प्रभृति लेखको ने और अग्रेजी से जयपुर के गोपीनाथ एम० ए० ने शेक्सपियर के कुछ नाटको का और मथुराप्रसाद चौधरी ने मैकवेथ

आदि उस युग के प्रसिद्ध विचारक और आलोचक रहे। आलोचना का वास्तविक विकास तो पडित रामचन्द्र शुक्ल की दृढ लेखनी से हुआ। द्विवेदी युग की प्रवृत्ति प्राय: ऐतिहासिक, शास्त्रीय, सैद्धातिक तथा तुलनात्मक समीक्षा की रही।

## छायावाद युग

आधुनिक काल में जिस साहित्य-धारा के अन्तर्गत हिंदी का सर्वश्रेष्ठ साहित्य उत्पन्न हुआ वह छायावादी कहलाया। पाश्चात्य साहित्य और उससे प्रभावित अन्यदेशीय साहित्य के सपर्क में आने से हिंदी साहित्यकारो को जो नई दृष्टि मिली, उसने परपरागत वस्तु, भाव और वर्णन में एक क्रातिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया। आत्मानुभूति और आत्माभिव्यजना के लिए स्थूल-जगत् तथा सूक्ष्म-भाव-व्यापारो को प्रतीकात्मक ढग से उपयोग में लाया गया। रूप, रग, गुण, स्पर्श के जिस प्रकृत और छाया रूपो का अनुभव सूक्ष्म ढग से किया गया उसके प्रभाव-स्वरूप चित्रात्मकता, प्रकृति का मानवीकरण, मानव का प्रकृतीकरण, बाह्य का आभ्यन्तरीकरण और अभ्यन्तर का बाह्यीकरण की प्रवृत्ति कवियो में अपने आप जाग गई। व्यक्तिवादिता का स्पर्श पाकर, इस प्रकार एक नवीन काव्यालोक का हिंदी में उदय हुआ, जिसमें गुह्य अथवा रहस्य का झिलमिला स्वरूप जीवन की अभिव्यक्तियो को लेकर उतरा। सकेत और अन्योक्तियो में गूढ व्यापारो की अभिव्यजना होने लगी। जहाँ काव्य की प्रवृत्ति मानव-मन के व्यापारो की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति में थी वहाँ वह छायावादी कहलाई और जहाँ अनुभूतियो की तीव्रता अलौकिक भाव व्यापारो से सबध जोडने लगती वहाँ वह रहस्यवादी होकर प्रकट हुई। इस धारा के सर्वप्रमुख कवि है, जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पत, निराला, महादेवी वर्मा। ये चारो ही किसी भी भारतीय साहित्य के उच्च्च कवि से टक्कर ले सकते है। प्रसाद के जोड का कवि तो भारतीय ही नही आधुनिक विश्व साहित्य में भी मिलना कठिन है। कुछ लोगो की यह धारणा है कि हिन्दी का साहित्य उन्नत और ऊँचा नही है। यह बिलकुल भ्रान्त धारणा है, वैसे ही जैसे कोई अन्धा कहे कि सूरज नही होता।

उस समय ठीक छायावादी कला के अन्तराल से एक स्वच्छन्द धारा भी प्रस्फुटित हो रही थी जो जीवन की सहज अभिव्यक्ति को सहज भाव से प्रकट करने का प्रयास कर रही थी। इस काव्यधारा के कवियो को रहस्यवादी अचल नही सुहाया। जीवन और प्रकृति जिन नाना रूपो में मनोविकारो को प्रभावित करते है, उन्हें कलात्मक ढग से कहना ही ऐसे लोगो का लक्ष्य था। डा० हरवशराय बच्चन, डा० रामकुमार वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, उदयशकर भट्ट, नरेन्द्र, शिवमगलसिंह 'सुमन', डा० शभूनाथ सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह 'दिनकर', रामेश्वरप्रसाद शुक्ल 'अचल', सियारामशरण गुप्त, गुरुभक्तसिंह 'भक्त', श्यामनारायण पाण्डेय, सोहनलाल द्विवेदी आदि ऐसे ही कवियो में से है। इन कवियो की भाव-तरगिणी नाना रूपो और रगो को लेकर प्रवाहित होती है। जीवन की विविधता के जितने आभास सभव है, उन सबका रसात्मक रूप स्वच्छन्दतावादी कवियो के मधुर काव्य मे मिल जायगा।

सबने दौड लगानी शुरू कर दी। यह न सोचा कि उनकी छाती में कितनी साँस है, कितना दम है। सौ मे चार ही ऐसे प्रयोगवादी मिलेंगे जिनको रीढ है, और जो वास्तव मे प्रयोग का अर्थ समझते है, जिन्होने पाश्चात्य साहित्य मे उगते हुए तत्त्वो को हिंदी में अपनाने का सफल प्रयास किया है। ऐसे लोगो में गिनाने लायक नाम केवल केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, अज्ञेय (सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन), गिरिजाकुमार माथुर का ही है। शेष या तो छायावाद की रोमैन्टिक परपरा के कवि है, या फुसलाकर छोड दिये गये कच्ची बुद्धि और चेतनावाले भ्रान्त बालक।

वास्तव में प्रयोग, प्रयोगशीलता अथवा प्रयोगवाद अपने में कोई मानी नही रखता, लेकिन उसकी कर्तृत्वशक्ति की उपेक्षा नही की जा सकती। इसने साहित्य को जीवन की विशाल भूमि पर लाकर छोड दिया है। वस्तु, भाव, कला और शैली के लिए अनेक सभावनाओ की गुजाइश कर दी है। जीवन और काव्य के प्रति कोई व्यापक दृष्टिकोण (मेरा अर्थ दर्शन से है) न होने के कारण अभी यथार्थ रूप से प्रयोग आरभ ही नही हुआ है—जिसका अर्थ स्पष्ट यह है कि हम एक किसी बहुत बडी प्रतिभा की प्रतीक्षा में है।

## आधुनिक गद्य-साहित्य

द्विवेदी काल तक ही गद्य की प्राय सभी विधाओ का उत्स खुल गया था—नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना। परवर्ती काल में कहा जाय तो ये अकुर विकसित होकर विशाल वृक्ष बन गये। प्रत्येक अग की अद्भुत और व्यापक सवर्द्धना हुई। काव्य के साथ ही साथ गद्य में हिंदी में जितनी अभिवृद्धि हुई है सभवत भारतवर्ष की किसी भी भाषा में नही। साथ ही अन्य अनेक विधाओ की सृष्टि भी हुई जैसे—गद्य काव्य, एकाकी, रेडियो रूपक, रिपोर्ताज, शोध आदि। प्रत्येक क्षेत्र में एक से एक बढकर लिखनेवालो को हिंदी साहित्य ने जन्म दिया, जिनका क्रमपूर्ण सक्षिप्त परिचय देना ही उचित होगा।

निबध—प्राय निबध के जितने प्रकार हो सकते है—वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक, आदि (ऐतिहासिक, सास्कृतिक, शोध सबधी, आलोचना, दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक) सभी पर सशक्त और समर्थ लेखको द्वारा निबध लिखे गये है। हिंदी के प्रमुख निबधकार है—रामचद्र शुक्ल, राय कृष्णदास, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नददुलारे वाजपेयी, माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डा० रघुवीरसिंह, सियारामशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, बेनीपुरी, अज्ञेय, वियोगी हरि, डा० नगेन्द्र, शिवपूजनसहाय, जैनेन्द्र, गुलाबराय, डा० धीरेन्द्र वर्मा, ललिताप्रसाद शुक्ल, विनयमोहन शर्मा, परशुराम चतुर्वेदी, विद्यानिवास मिश्र, इलाचन्द्र जोशी, प्रभाकर माचवे आदि आदि।

### नाटक

नाटक की दोनो पद्धतियाँ हिंदी मे अपनाई गई, पाश्चात्य और पूर्वी। साथ ही लोकनाट्य जैसे स्वाग, रामलीला, रासलीला आदि के रूप यद्यपि लिखित साहित्य में उतने नही है किंतु

उपन्यासकार है, जिनका साहित्य किसी भी भारतीय उपन्यासकार के समकक्ष हो सकता है। अत्याधुनिक काल में फणीश्वर नाथ 'रेणु' के मैला आँचल और परती परिकथा ने उपन्यास-क्षेत्र की परपरा को वहुत आगे बढा दिया है। नागार्जुन, गुरुदत्त, किशनचन्द, हसराज तथा लक्ष्मी-नारायण लाल से इस क्षेत्र में काफी आशाएँ है।

## कहानी

"सरस्वती" के उपरान्त हिंदी कहानी के क्षेत्र में क्रातिकारी परिवर्तन हुआ है। प्रेमचद, प्रसाद, राय कृष्णदास, गोविन्दवल्लभ पत, हृदयेश, सुदर्शन, वाजपेयी, निराला, बख्शी, अज्ञेय, जैनेन्द्र प्रभृति प्राय सभी उपन्यासकारो के अतिरिक्त आजकल जिनकी कहानियाँ अत्यत लोक-प्रिय हुई है, उनमें सर्वप्रमुख है, 'अचल', अमृतराय, ओकार शरद, कमला देवी, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय आदि।

## समालोचना

वास्तविक आलोचना का विकास तो पडित रामचद्र शुक्ल के काल में ही हुआ, यद्यपि इसका सूत्रपात द्विवेदी युग में ही हो चुका था। शुक्ल जी ने सामाजिक, वैयक्तिक और ऐतिहासिक परिपार्श्व में आलोचना की जो पद्धति अपनाई वह विलकुल नयी थी। उन्ही की देखा-देखी भारतवर्ष की अन्य भाषाओ में भी आलोचना का प्रारभ हुआ। इसमें सन्देह नही कि शुक्लजी अपने समय के भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ आलोचक थे। साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास लिखकर उन्होने साहित्य का इतिहास लिखनेवालो को एक रास्ता वताया। पूर्व प्रचलित सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलो-चना का जो रूप था उसे शुक्ल जी ने वदल दिया और तर्कपूर्ण मूल्याकन का तरीका वताया। हिंदी साहित्य के अनेक कवि तुलसी, घनानद आदि को प्रकाश में लाने का श्रेय उन्ही को है। भारतीय साहित्य-शास्त्र और पश्चिमी साहित्य-शास्त्र के समन्वय द्वारा उन्होने आलोचना का स्तर जैसा उठाया वैसा अव तक कोई भी आलोचक नही कर सका है। उस काल के प्रमुख आलोचक हैं—रामचद्र शुक्ल, पीतावरदत्त वडथ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० दीन-दयाल गुप्त, ललिताप्रसाद शुक्ल, डा० नगेन्द्र, नन्ददुलारे वाजपेयी आदि।

हिंदी साहित्य में आज आलोचना का क्षेत्र वहुत ही सम्पन्न और दुरुस्त है। आज के जिन आलोचको के नाम लिये जा सकते है वे है—डा० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, बच्चन सिंह, शिवनाथ एम० ए०, नलिनविलोचन शर्मा आदि।

हिंदी के विभिन्न क्षेत्रो में इधर सर्वागीण रूप से कार्य हो रहा है। राहुल जी, डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० नगेन्द्र, डा० दीनदयाल गुप्त, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री प्रभुदयाल मीतल, प्रभृति शोधकर्ताओ के प्रयत्न से हिंदी में साहित्य के वहुत से लुप्त हुए ग्रथो का प्रकाशन और सम्पादन होने के साथ ही साथ उन अनेक प्रकारों के, जिनके सवध में सामग्री के अभाव मे उचित निष्कर्ष नही निकाले जा सके थे, समाधान होते जा रहे है। इसके अतिरिक्त काशी

# उत्कल के तीर्थ और उनका माहात्म्य

श्री विपिनविहारीनाथ, एम० ए०, बी० एल०

ओडिशा का प्राचीन नाम कलिंग था। अशोक के १४वें शिलालेख में इसका 'अविजिता कलिंग' नाम मिलता है। समयानुसार नाम में कई परिवर्तन होते रहे। फिर गगवश के शासन-काल में 'उत्कल' नाम पडा। १३वी शताब्दी के मुसलमान ऐतिहासिको ने इसका नाम जाज-नगर वताया था, किंतु १५वी शताब्दी में उत्कल नाम फिर से आ गया। आज का उत्कल या ओडिशा, ओडियाभाषी जनता के एक विशाल प्रदेश में सीमावद्ध है।

वैतरणी नदी के किनारे पर अवस्थित जाजपुर नगरी तथा उसके आस पास का भू-भाग विरजा क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। लगता है, ओडिशा के भौमवशी राजाओ के शासनकाल में इसका नाम केवल 'विरजा' ही था। इस क्षेत्र में ब्रह्माणी के द्वारा विरजादेवी की प्रतिष्ठा हुई थी, जिनके दर्शन से सात पुरुषो तक का उद्धार हो जाता है।[1] इस क्षेत्र में स्थापित विरजा देवी के दर्शन से सात पुरुषो के उद्धार की कथा हिंदू समाज में बहुत दिनो से प्रचलित है। यही प्रसिद्धि उसे तीर्थरूप में प्रतिष्ठित करने का प्रधान कारण है। इसके अतिरिक्त एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि यहाँ सर्वपापहारिणी वैतरणी नदी बहती है जिसके पवित्र जल में स्नान करने से मनुष्यो के सारे पाप कट जाते है।[2] इसी नदी के तट पर धर्म ने यज्ञ किया, रुद्र ने पशु-हरण किया और पाण्डवो ने तर्पण किया था।[3]

---

१ विरजे विरजा माता ब्रह्माणी सम्प्रतिष्ठिता।
यस्या. सदर्शनान्मर्त्य· पुनात्यासप्तम कुलम्॥—ब्रह्मपुराण

२. आस्ते वैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी।
यस्या स्नात्वा नरश्रेष्ठ सर्वपापै प्रमुच्यते॥—ब्रह्मपुराण

× × ×

ततो वैतरणीं गच्छेत् सर्वपापप्रमोचिनीम्।
विरजं तीर्थमासाद्य विराजति यथा शशी।
प्रतरेच्च कुल पुण्य सर्वपाप व्यपोहति।
गोसहस्रफल लब्ध्वा पुनाति स्वकुल नर.॥—महाभारत, वनपर्व, अध्याय ८५।

३. आस्ते स्वयम्भूस्तत्रैव क्रोडरूपी हरि· स्वयम्।
दृष्ट्वा प्रणम्य त भक्त्या पर विष्णु व्रजन्ति ते॥—ब्रह्मपुराण ४२।४,५।

आखडलपति महादेव[1], मुक्तिप्रदाता मुक्तेश्वर लिंग[2] और भवपाश-विमोचन त्रिलोचन प्रतिष्ठित हैं।[3]

इन देवताओ के कारण विरजा क्षेत्र का माहात्म्य बहुत ही अधिक बढ गया है। वायु-पुराण का कथन है कि गतदैत्य के नाभि-कूप के समीप विरजा देवी विराजित है। यहाँ पिंडदान करने से त्रिसप्तकुलो का उद्धार होता है। इसके अतिरिक्त महेन्द्र गिरि द्वारा गतदैत्य के दोनो पैर निश्चल कर दिये गये है। यहा पिंडदान करके मानव सात कुलो का उद्धार कर सकता है।[4]

उपरोक्त इन स्थानो के अतिरिक्त कपिलसहिता में यहाँ के अनेक छोटे-छोटे तीर्थों का वर्णन आया है। उसके अनुसार गोग्रह नामक एक श्रेष्ठ तीर्थ भी यहाँ है। इसके तट पर ऋषि और मुनि निवास करते थे। उस स्थान पर नियमित स्नान करने से मनुष्य गोलोक जाता है।[5] वही चद्रमा द्वारा निर्मित सोमतीर्थ है जिसमें स्नान करने का फल चद्रलोक की प्राप्ति है।[6] सोम-तीर्थ के पश्चात् वहाँ गीदडो की योनि से मुक्ति देनेवाला और मेरु के समान पुण्य का दाता अलावु[7] तथा मनोकामनाओ को पूर्ण करनेवाला सिद्धिदाता क्रोड और सिद्धेश्वर नामक तीर्थ[8] है। यहाँ के कपिलदेव और वाराही देवी के दर्शन से मुक्ति मिलती है।[9] इसी क्षेत्र

---

१ आखण्डलस्तु तत्रास्ते पार्वतीशो जगद्गुरु ।—कपिलसहिता।

२. यत्र मुक्तेश्वर लिंग मुक्तिद पापनाशनम्।—वही।

३ त्रिलोचनस्तु तत्रास्ते भवपाशविमोचन·।—वही।

४ आक्रात दैत्यजठर धर्मेण विरजाद्रिणा।
नाभिकूपसमीपे तु देवी जा विरजास्थिता।
तत्र पिंडोदक कृत्वा त्रि.सप्तकुलमुद्धरेत्।
महेंद्रगिरिणा तस्य कृतौ पादौ सुनिश्चलौ।
तत्र पिंडादिकृत् सप्तकुलानुद्धरते नरः।—वायुपुराण, अ० १०६।८४, ८५, ८६।

५ तत्रैव गोग्रह तीर्थं मुनीन्द्रैरुपसेवितम्।
तत्र स्नात्वा च विधिवत् गोलोकस्थल लभेत्।—कपिलसहिता।

६ सोमतीर्थवर चास्ते निर्मित वै हिमांशुना।
स्नात्वा तत्र नरश्रेष्ठ चद्रलोक च गच्छति।—कपिलसहिता।

७ अलावुसज्ञक नाम तत्रास्ते विरजे द्विजा।
अल्पपुण्य भवेत् तत्र मेरुतुल्य न सशय.।—वही।

८ क्रोडतीर्थं च तत्रास्ते परम पावन महत्।
तीर्थं सिद्धेश्वर नाम सिद्धिद सर्वकामदम्।—वही।

९ स्नात्वा वै सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कापिल हरिम्।
पश्येद्देवीं च वाराहीं याति त्रिदशालयम्।—ब्रह्मपुराण ४२-११

यहाँ पितृ-पितामह को मुक्तिदायक, शिखरेश्वर के ईशान कोण मे स्थित अमृत के समान पुनीत जल से पूर्ण एक तीर्थकुड है। इस कुड मे स्नान करने पर सौदास राजा को मुक्ति मिली थी।[1]

इसके मध्य में श्री शिखरेश्वर या चन्द्रशेखर के निवास करने के कारण कैलास पर्वत की पवित्रता कई गुना वढ गई है। इसी शिखरेश्वर मन्दिर के पास पापनाशक कुण्ड और पुराण-प्रशसित पयोमृत कुण्ड है। इनका जल परम पवित्र है। इस पापनाशक कुण्ड का नाम 'जम्भ-कुण्ड' है। इस कुण्ड में पतितपाविनी गगा की निर्मल धारा गिरती है। इसमें स्नान करके शिखरेश्वर की समवेत पूजा करने पर मनुष्य सिद्धि लाभ करता है।[2] पुराणो के निम्न वर्णन इसके माहात्म्य को प्रकट करते हैं —

कैलासे शकरस्थाने ये सेवन्ति नरोत्तमा।
इहभोगफलप्राप्तिर्मुक्तिस्तेषा करे स्थिता।
कैलासनिलय शम्भोर्दुर्ल्लभ मुक्तिदायकम्।
यत्र देवगणा सन्ति नित्य शम्भो समीपत।
आलोक्य शिखरेश च पूजयित्वा प्रणम्य च।
सुरभीमारण दोष क्षिप्त्वोर्ध्वं च व्रजेन्नर।
ब्रह्माद्या देवता सर्वा काक्षन्ति च मुहुर्मुहु।
भूमिलोक कदा गत्वा द्रक्ष्याम शिखरेश्वरम्।

इस प्रकार पुराणो ने कैलाश को परमपवित्र और मुक्तिप्रद तीर्थ माना है। इसे वाराणसी क्षेत्र भी कहते हैं।

यह ओडिशा के अन्यतम तीर्थों मे से एक है। शिवरात्रि के अवसर पर कैलास का नयनाभिराम दृश्य और यात्रियो का समागम दर्शनीय होता है। यहाँ नरसिंहदेव प्रथम और चन्द्रकेशरी नामक एक अन्य राजा के भी शिलालेख पाये गये है।

---

१ तस्मिन्नद्रौ द्विजश्रेष्ठास्तीर्थमस्ति पयोमृतम्।
अग्रे श्रीशिखरेशस्य ऐशान दिशमास्थितम्।
वरेण्य परम पुण्यं पितृणा मुक्तिदायकम्।
यत्र स्नात्वा च सौदासो राजा मुक्ति अवाप ह॥

२ तत्रैव तीर्थप्रवर मदगे पापनाशिनीम्।
जम्भकुण्डमिति ख्यात किंचिदाग्नेयमास्थितम्।
पतन्ति तत्र गागानि वारीणि शुभदानि च।
जम्भकुण्डे नर स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम्।
नर सिद्धिमवाप्नोति मत्प्रसादान्न सशय।
तत्र गत्वा मनुर्जप्त्वा लभते भक्तिरुत्तमा।—क० स०।

पूँजी के लिए उसका नीलाम किया गया। कदाचित् उसकी अतिम वोली ५ सौ रुपये से अधिक की थी।

मै भद्रख गया। महताव वाबू से मिला। सब समाचार कह सुनाया। उन्होने सन्तोष प्रकट किया। हम लोग गाधी जी से मिलने के लिए आगे चले। गाधी जी ने देखा और मुस्करा कर पूछा—आ गये ? वसन्तलाल कल सुवह आ रहे है। तमाम झझटो के वावजूद भी मै उनकी इस स्मरणशक्ति पर दग रह गया। फिर मैने दिन भर मुलाकात नही की। सबेरे जैसे मैने देखा कि वसन्तलाल जी और श्री रामकुमार जी वैठे है, तुरत जा पहुँचा। देखते ही गाधी जी ने उनसे कहा—यह यहाँ राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार करते है। एक सभा भी वन गई है। यहाँ की माली हालत तुम अपने ऊपर लेते हो या मै स्वय अपने ऊपर लूँ ?

वसन्तलाल जी ने कहा—हम लोग कलकत्ते से इन्हे प्रतिमास चालीस रुपये भेज दिया करेंगे।

गाधी जी ने मेरी ओर देखकर कहा—'वस, और जो हो लिखना।' मेरे लिए यह परम सौभाग्य-पूर्ण वरदान था। यही से सभा का तथा मेरे कार्य का दूसरा अध्याय शुरू हुआ समझना चाहिये। कार्य वढ रहा था। मैं अपने को पूर्ण काग्रेसी समझता था। मेरा चूल्हा वन गया था। मै अव दिन मे एक वार अपने हाथ से रोटी भी वना लेता था—जहाँ मै श्री नवकृष्ण चौधरी, श्रीमती मालती देवी और श्री मोहनलाल जी गौतम आदि को खिला चुका था।

मै पहले ही कह चुका हूँ कि मै केवल पडित जी था। मेरा नाम तक किसी को मालूम नही था। खादी भडार की दुकान हम सभी का एक स्थायी अड्डा था। एक वार शाम को वहाँ जरूर जाते। दूसरी ओर दिन डूवते-डूवते श्री नवकृष्ण जी चौधरी जैसे वडो की पगत जरूर ही वैठती। एक दिन वडो की पगत से निवटकर मै अभी खादी भडार गया ही था कि वकील लाला नगेन्द्र-कुमार ने कहा—आपका नाम सी० आई० डी० इन्सपेक्टर पूछता था। नाम तो हम लोगो को मालूम नही था। वतलाते क्या, कह दिया "पडित जी पडित जी" सभी वुलाते है। आदमी वडा खूँख्वार है। देवघर षड्यत्र का पता इसी ने लगाया था। तुम जाओ, जो कागज आदि हो, जला दो, हटा दो।

मै लौट पडा। घर आया। देखा २५–३० पुस्तकें है जो सभी जव्त थी। चेला मूँडने का विपिन वावू का पत्र भी था और तत्सवधी शर्तनामा भी। पुस्तकें तो मियाँ सर्फुद्दीन को सौंप दी, जो आजकल पाकिस्तान के निवासी हो गये है। रिकूट करने के शर्तनामे को अपनी लिपि में लिख लिया जो पटना कैम्प जेल में वनाई थी। रात भर नीद नही आई। सोचता रहा कि और क्या वाकी है।

परन्तु मुझे डर नही था। कार्य में अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की मुझमें कुशलता थी। लगभग २ वजे मैंने लालटेन वुझाई। एक घटे वाद ही हल्ला मचाते पुलिस ने सभा-घर को घेर लिया। मै चुपचाप खिडकी के अन्दर से देखता रहा। द्वार नही खोलता था। आज वह भी भीतर से तगडा वन्द था। पूर्व की लाली किवाड पर अभी पडी ही थी कि किवाड में आघात करने

है।[1] यहाँ जो लोग ब्राह्मणो को धन आदि का दान देते है उन्हें अन्य तीर्थों की अपेक्षा सौ गुना अधिक फल मिलता है। इसके किनारे पिंडदान करने से पितृगण तृप्त होते है।[2] यदि नर या नारी श्रद्धा या अश्रद्धापूर्वक बिना किसी तिथि-विचार के वैशाख आदि मासो में इस क्षेत्र में आकर तथा बिंदुसर में स्नान कर वहाँ के विरूपाक्ष, वरदायिनी देवी शिवा, चडगण, कार्त्तिकेय, गणेश, नन्दी, कल्पवृक्ष और सावित्री का दर्शन करे तो उसे शिवलोक मिलता है।[3]

**ब्रह्मतीर्थ**—इस तीर्थ का भी बहुत बडा माहात्म्य है। ब्रह्मेश्वर मदिर के अभिलेख में उसे सिद्धतीर्थ में अवस्थित कहा गया है। उसमें कहा गया है कि एकाम्र कानन वन के सिद्ध-तीर्थ में कोलावती पृथ्वी देवी के मुकुट-समान ब्रह्मेश्वर मन्दिर का निर्माण हुआ था।[4] इस तीर्थ के नामकरण के विषय में स्वर्णाद्रि महोदय का कथन है कि ब्रह्मयज्ञ से समुद्भूत ब्रह्मकुड भुवनेश्वर में है। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मेश्वर के दर्शन करने से मुक्ति मिलती है। इसी से इसका नाम ब्रह्मतीर्थ पडा है।[5]

---

तेभ्य· पूर्वं समाहृत्य जलबिन्दून् पृथक् पृथक्।
सर्वलोकहितार्थाय रुद्र सर्वसुरै सह।
तीर्थं बिंदुसरो नाम तस्मिन् क्षेत्रे द्विजोत्तमा·।
चकार ऋषिभि सार्धं तेन बिंदुसर स्मृतम्।—ब्रह्मपुराण—४१।५१,५४।

१ स्नात्वैवविधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफल लभेत्।—वही—४१।५७।

२ ये तत्र दान विप्रेभ्य प्रयच्छति धनादिकम्।
अन्यतीर्थशतगुण फल ते प्राप्नुवन्ति वै।
पिंड ये सप्रयच्छन्ति पितृभ्यो सरसस्तटे।
पितृणामक्षया तृप्ति ते कुर्वन्ति न सशय।—ब्रह्मपुराण।

३ तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाश्रद्धयापि वा।
माधवादिषु मासेषु नरो वा यदि वागना।
यस्या कस्या तिथौ विप्रा· स्नात्वा बिंदुसरोम्भसि।
पश्येद्देव विरूपाक्ष देवीं च वरदा शिवाम्।—ब्रह्मपुराण ४१।८९।
गण चड कार्त्तिकेय गणेश वृषभ तथा।
कल्पद्रुम च सावित्रीं शिवलोक स गच्छति।—ब्रह्मपुराण ४१।९०।

४ एकाम्रे सिद्धतीर्थे चतुरमरकुली नाट्यशालासमेत
कोलावत्या तयैष क्षितिमुकुटनिभ कारित कीर्तिराजम्।—ब्रह्मेश्वर मन्दिर का अभिलेख।

५ ब्रह्मकुण्ड च तत्रास्ते ब्रह्मयज्ञसमुद्भवम्।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठा पश्येत् ब्रह्मेश्वर हरम्।
ब्रह्मयज्ञोद्भव तीर्थं तत्रास्ते जनपावनम्।—स्व० म०।

है।[1] यहाँ जो लोग ब्राह्मणो को धन आदि का दान देते हैं उन्हें अन्य तीर्थों की अपेक्षा सौ गुना अधिक फल मिलता है। इसके किनारे पिंडदान करने से पितृगण तृप्त होते हैं।[2] यदि नर या नारी श्रद्धा या अश्रद्धापूर्वक बिना किसी तिथि-विचार के वैशाख आदि मासो में इस क्षेत्र में आकर तथा बिंदुसर में स्नान कर वहाँ के विरूपाक्ष, वरदायिनी देवी शिवा, चडगण, कार्तिकेय, गणेश, नन्दी, कल्पवृक्ष और सावित्री का दर्शन करे तो उसे शिवलोक मिलता है।[3]

**ब्रह्मतीर्थ**—इस तीर्थ का भी बहुत बडा माहात्म्य है। ब्रह्मेश्वर मदिर के अभिलेख मे उसे सिद्धतीर्थ में अवस्थित कहा गया है। उसमें कहा गया है कि एकाम्र कानन वन के सिद्ध-तीर्थ में कोलावती पृथ्वी देवी के मुकुट-समान ब्रह्मेश्वर मन्दिर का निर्माण हुआ था।[4] इस तीर्थ के नामकरण के विषय में स्वर्णाद्रि महोदय का कथन है कि ब्रह्मयज्ञ से समुद्भूत ब्रह्मकुड भुवनेश्वर में है। वहाँ पहुंचकर ब्रह्मेश्वर के दर्शन करने से मुक्ति मिलती है। इसी से इसका नाम ब्रह्मतीर्थ पडा है।[5]

---

तेभ्य पूर्वं समाहृत्य जलबिन्दून् पृथक् पृथक्।
सर्वलोकहितार्थाय रुद्र सर्वसुरै सह।
तीर्थं बिंदुसरो नाम तस्मिन् क्षेत्रे द्विजोत्तमा।
चकार ऋषिभि सार्धं तेन बिंदुसर स्मृतम्।—ब्रह्मपुराण—४१।५१,५४।

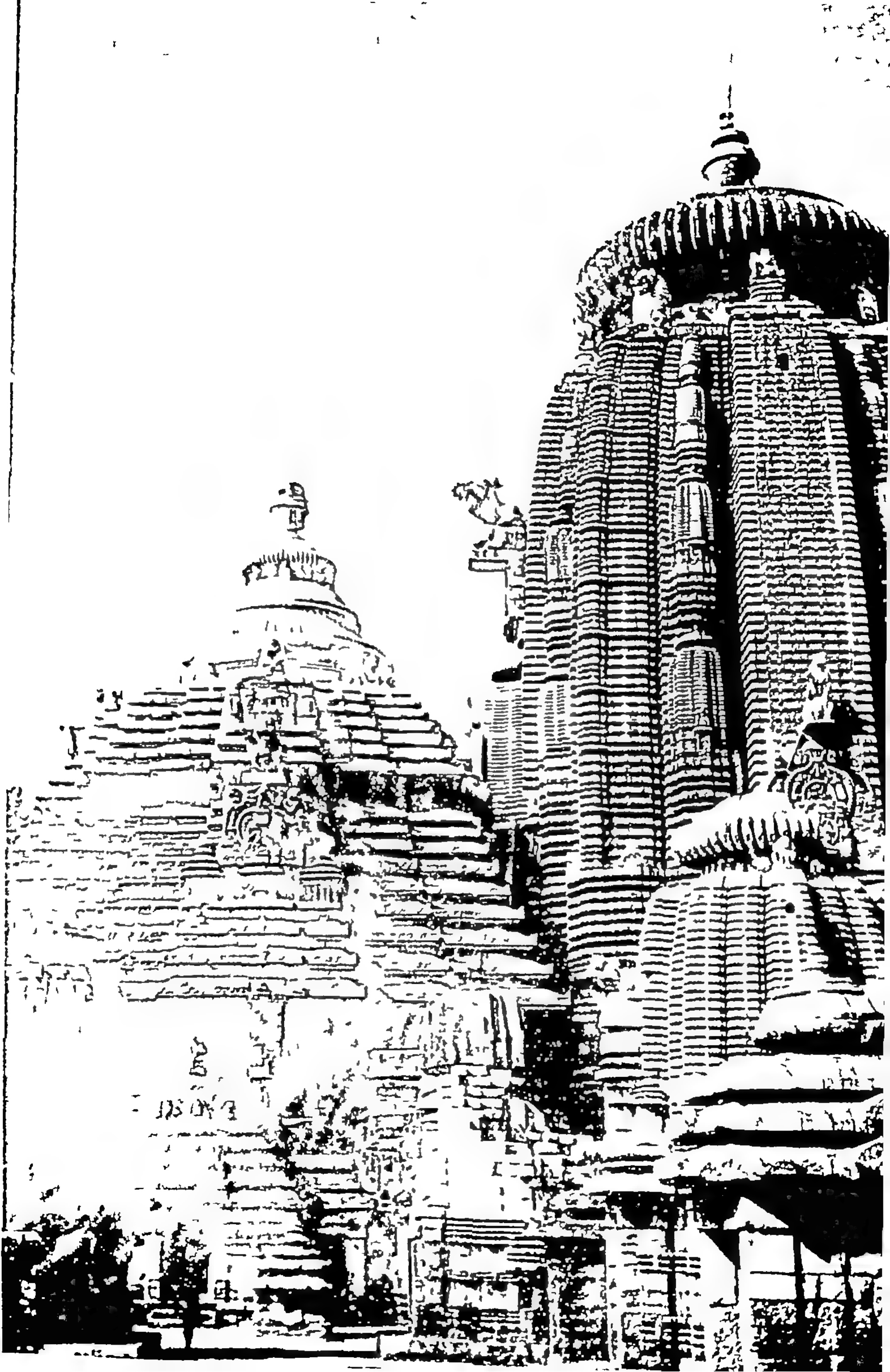
१ स्नात्वैवविधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफल लभेत्।—वही—४१।५७।

२ ये तत्र दान विप्रेभ्य प्रयच्छति धनादिकम्।
अन्यतीर्थशतगुण फल ते प्राप्नुवन्ति वै।
पिंड ये सप्रयच्छन्ति पितृभ्यो सरसस्तटे।
पितृणामक्षया तृप्ति ते कुर्वन्ति न संशय।—ब्रह्मपुराण।

३ तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाश्रद्धयापि वा।
माधवादिषु मासेषु नरो वा यदि वागना।
यस्या कस्या तिथौ विप्रा. स्नात्वा बिंदुसरोम्भसि।
पश्येद्देव विरूपाक्ष देवीं च वरदा शिवाम्।—ब्रह्मपुराण ४१।८९।
गण चड कार्त्तिकेय गणेश वृषभ तथा।
कल्पद्रुम च सावित्रीं शिवलोक स गच्छति।—ब्रह्मपुराण ४१।९०।

४ एकाम्रे सिद्धतीर्थे चतुरमरकुली नाट्यशालासमेत
कोलावत्या तयैव क्षितिमुकुटनिभ कारित कीर्तिराजम्।—ब्रह्मेश्वर मन्दिर का अभिलेख।

५ ब्रह्मकुण्ड च तत्रास्ते ब्रह्मयज्ञसमुद्भवम्।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठा पश्येत् ब्रह्मेश्वर हरम्।
ब्रह्मयज्ञोद्भव तीर्थं तत्रास्ते जनपावनम्।—स्व० म०।

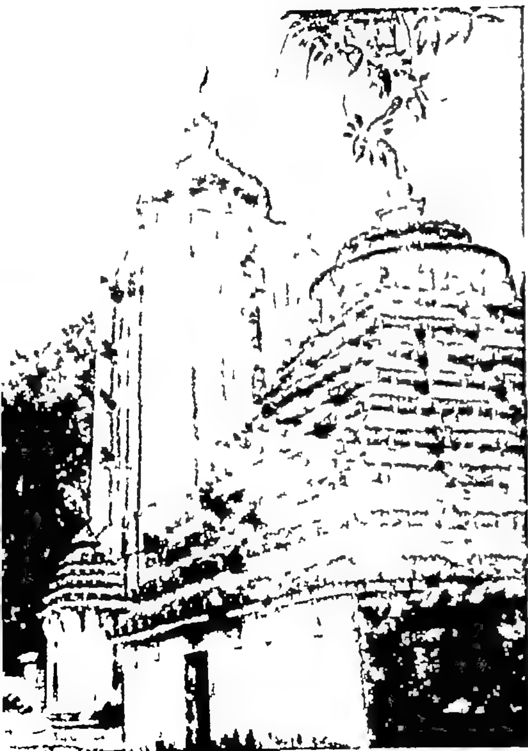






मार्कण्डेय सरोवर, पुरी





स्थापना करने का उपदेश दिया था। उसके अनुसार श्री रामचन्द्र ने रामेश्वर शिव जी की स्थापना करके पूजा की थी।

एकाम्रचन्द्रिका नामक ग्रन्थ में रामेश्वर तीर्थ अष्टतीर्थों में श्रेष्ठ माना गया है।[१] इससे बढकर कोई दूसरा तीर्थ नही है।[२] इसका दूसरा नाम अशोक झर है।[३]

**कोटितीर्थ**—स्वर्णाद्रि महोदय में वर्णन है कि प्राचीन काल से इन्द्रादि देवताओ ने मिलकर इसी शिवक्षेत्र में एक यज्ञ किया था। भुवनेश्वर महादेव इस यज्ञ से सन्तुष्ट हो गये। तभी से वह तीर्थकोटि के नाम से प्रसिद्ध हो गया। ऐसा माना जाता है कि इस तीर्थ में स्नान करने से करोडों यज्ञो का फल प्राप्त होता है।[४]

**कपिलतीर्थ**—स्वर्णाद्रि महोदय में उल्लेख है कि कपिल मुनि ने इस स्थान पर बहुत वर्षों तक तपस्या की थी। उनकी तपस्या से सतुष्ट होकर भुवनेश्वर महादेव ने इस तप-स्थली का नाम कपिलेश्वर रखा था। उसी दिन से यह पवित्र भूमि भक्तों के लिए प्रसिद्ध हो गई है और आज कल यहाँ कपिलेश्वर ग्राम बसा हुआ है। यहाँ स्नान करने पर सारे तीर्थों का फल प्राप्त होता है।[५] इस पापहारी तीर्थ में विधिपूर्वक स्नान करने से अभिमत फल के साथ शिवलोक की प्राप्ति होती है।[६]

ऊपर लिखे हुए भुवनेश्वर के इन आठ तीर्थों के अतिरिक्त पुराणो मे अनेक तीर्थों का

---

१ सर्वं तीर्थवर· श्रीमान् पावन. सर्वदेहिनाम्।
रामेश्वर इति ख्यातस्त्रिषु लोके भविष्यति।—एकाम्रचन्द्रिका।

२ अशोकात् अधिक तीर्थं नास्त्यत्र पृथ्वीतले।—स्व० म०।

३ रामकुण्ड च तत्रास्ते अश्वमेधागसम्भवम्।
अशोकझर-विख्यात सर्वपापहर द्विजाः।—वही।

४ कोटितीर्थात् परं तीर्थं अन्यक्षेत्रे न विद्यते।
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापात् प्रमुच्यते।
अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च,
कर्त्तुश्च यत् फल प्रोक्त कोटितीर्थजलप्लुत·।
तत्फलं समवाप्नोति सकृत् स्नानात् न संशय.।—एकाम्रचन्द्रिका।

५ तत्र श्रीकपिल कुण्ड सर्वतीर्थफलप्रदम्।
तस्मिन् स्नात्वा च त दृष्ट्वा अक्षय फलमाप्नुयात्।—स्व० म०।

६ स्नात्वा च कापिलं तीर्थं विधिवत् पापनाशनम्।
प्राप्नोत्यभिमतान् कामान् शिवलोकं स गच्छति।—ब्रह्मपुराण ४१।९०।
य स्तभ तत्र विधिवत् करोति नियतेन्द्रिय.।
फुलैकवशमुद्धृत्य शिवलोक स गच्छति।—वही ४१।९१।

इस क्षेत्र में सहस्रो यात्री आदिकाल से स्नान करके पुण्य लाभ करते आ रहे हैं। इसे ब्रह्मपुराण में तीर्थराज कहा गया है।[1]

**इन्द्रद्युम्न तीर्थ**—वाचस्पति मिश्र के तीर्थ-चिन्तामणि और नीलाद्रि महोदय नामक ग्रन्थो में इन्द्रद्युम्न सरोवर भी एक तीर्थ के रूप मे वर्णित है। इसमें स्नान कर पितरों को जल देने से एक लाख अश्वमेध यज्ञो का फल प्राप्त होता है।[2]

**मणिकर्णिका तीर्थ**—नीलाद्रि महोदय ग्रन्थ में मणिकर्णिका का भी वर्णन एक तीर्थ के रूप में किया गया है। इसके दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं।[3]

श्रीमान् सुन्दरानन्द विद्याविनोद विरचित श्रीक्षेत्र नामक पुस्तक में लिखा है कि पुरुषोत्तम क्षेत्र में मार्कण्डेय, श्वेतगगा, रोहिणीकुण्ड, महोदधि और इन्द्रद्युम्न ये पाँच तीर्थ है। ये पचतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है।[4] इनमें मार्कण्डेय क्षेत्र का उल्लेख पुराण मे इस प्रकार किया गया है—(उत्तर में जगन्नाथ जी मार्कण्डेय से कहने लगे) हे विप्रेंद्र, मेरे आदेशानुसार आप परम कारुण्य भुवनेश्वर देव के लिंग की प्रतिष्ठा कर शीघ्र एक शिवालय का निर्माण करें और उत्तर दिशा मे अपने नाम से एक शिवालय के निर्माण के साथ-साथ ह्रदनायक एक तीर्थ भी स्थापित करें। यह तीर्थ नरलोक में बहुत ही प्रसिद्ध होगा। इसके सेवन से सभी प्रकार के पाप कट जायगे।[5]

---

१ लवणोद. हरे. स्थान शयनस्य नदीपतिम्।
सर्वपापहर पुण्य सर्ववाछाफलप्रदम्।
विशिष्ट सर्वभूताना प्राणीनां जीवधारणम्।
सुपवित्र पवित्राणा मगलाना च मगलम्।
तीर्थाना उत्तम तीर्थमव्यय यादसापति।—ब्रह्मपुराण ४४।४८-५१।

२ ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यज्ञागसम्भवम्।
इन्द्रद्युम्नसरोनाम यत्रास्ते पावन शुभम्।—वही, ६३।१।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यात खात परमपावन।
तत्र तीर्थे नर स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।
अश्वमेधसहस्रस्य फल प्राप्नोति निश्चयम्।—नीलाद्रिमहोदय (ब्रह्मपुराणानुसार)

३ तृतीयावर्तत श्रीमान् तीर्थोस्ति मणिकर्णिका।
पश्यता जगता वापि ब्रह्महत्यादिपापहा।—वही।

४ मार्कण्डेय वट कृष्ण रौहिणेय महोदधिम्।
इद्रद्युम्न सरश्चैव पचतीर्थविधि स्मृत।—ब्रह्मपुराण ६०।४१।

५ ममादिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्र शिवालयम्।
तत्प्रभावात् शिवलोके तिष्ठ त्व च तयाक्षयम्।

कपिलसहिता में वर्णन है कि कृष्ण भगवान् के पुत्र शाम्ब को पिता के अभिशाप से कुष्ठ रोग हो गया था। वे इसी कोणार्क क्षेत्र में सूर्य भगवान् की तपस्या कर रोग-मुक्त हुए थे। उस ग्रन्थ के अनुसार इस अर्क क्षेत्र में निम्नलिखित कई तीर्थ हैं—

**चन्द्रभागा तीर्थ**—शाम्ब को चन्द्रभागा नदी में सूर्य का विग्रह प्राप्त हुआ था। मन्दिर में उस विग्रह को प्रतिष्ठित कर, वे उसकी पूजा करने लगे और अन्त मे रोग-मुक्त हो गये।[1]

इसी अर्क क्षेत्र मे सूर्य गगा,[2] मगल,[3] शाम्ब,[4] रामेश्वर[5] आदि कई प्रसिद्ध तीर्थ हैं। इसी कोणार्क में चैत्र शुक्ल सप्तमी के दिन मदनभजिका नामक एक मेला लगता है। इसका प्रमाण वाचस्पति मिश्र के तीर्थ-चिन्तामणि ग्रन्थ में मिलता है।[6]

**बांकी चर्चिका**—अर्क क्षेत्र के इन तीर्थों के अतिरिक्त कटक जिले के बाँकी नामक स्थान में चर्चिका देवी का मदिर है। प्राचीन काल मे जगन्नाथ दर्शन के निमित्त मालवदेश से आते हुए

---

१. चन्द्रभागा महापुण्या देवलोकप्रदायिनी।
प्रासाद कारयित्वा च स्थापयित्वाथ सत्वरम्।
विमुक्तरोग सहसा ययौ द्वारावतीं पुरीम्।

२ सूर्यगगाजले स्नात्वा सूर्यलोक व्रजेन्नरः।
सूर्यगगासम तीर्थं नास्ति नास्ति महीसुरा।—कपिलसहिता।

३. तत्र श्रीमगल तीर्थं देवानां मगलप्रदम्।
मंगले च नरः स्नात्वा मंगलम् प्राप्नुयात् ध्रुवम्।

४ तत्र श्रीशाल्मलीभाण्ड तीर्थम् त्रैलोक्यपावनम्।
सर्वपापहर गुह्य सिद्धगन्धर्वसेवितम्॥—वही।
यत्र स्नात्वा रवि. साक्षात् रविदीधितिमाप्नुयात्।—वही।

५ रामेश्वरस्तु तत्रैव वेलाया च नदीपते।
रामेश्वर प्रयत्नेन येऽर्चयन्ति नरोत्तमा।
तेषा इष्टवर विप्रा रामचन्द्र प्रयच्छति।—वही।
आस्ते तत्र महादेवस्तीरे नद-नदीपते.।
रामेश्वर इति ख्यात सर्वकामफलप्रदः।
ये त पश्यन्ति कामारिं स्नात्वा सम्यग् महोदधौ।
प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरै।
राजसूयफल सम्यग् वाजीमेधफल तथा।
प्राप्नुवन्ति महात्मान स्वसिद्धि परमा तथा।—ब्रह्मपुराण २८।५६-५८।

६ चैत्रे मासि सिते पक्षे यात्रा मदनभजिकाम्।
य करोति नरस्तत्र पर्वोक्त सफल लभेत्।—ब्रह्मपुराण २८।८३,८४।

# उत्कल की नौयात्रा तथा नौवाणिज्य

## डॉ० नवीनकुमार साहू

ओडिशा के इतिहास मे नौका-चालन और नौका-व्यापार के महत्त्वपूर्ण विषय का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। भारतेतर स्थानो में, भारतीय धर्म और सस्कृति को प्रचारित करने तथा बृहत्तर भारत के निर्माण करने में नौजीवन का बहुत बडा योग है। प्राचीन कलिंग के उपकूल नौका-चालन के योग्य अनेक नदियो द्वारा गठित थे तथा गगा से गोदावरी तक कटावदार फैले होने के कारण जहाजरानी के उपयुक्त थे। सामने ब्रह्मदेश, चपा, सुवर्ण द्वीप और सिहल आदि देशों का आकर्षण तथा सागर की मदमाती और लुभावनी लहरो की पुकार कलिंग जाति के अन्तर में, विदेश-यात्रा की स्पृहा को आन्दोलित कर देती थी। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही कलिंग जाति नौका-चालन में कुशलता एव पारदर्शिता प्राप्त कर सकी थी।

यह निश्चय करना तो असभव है कि ब्रह्मदेश, सुवर्ण द्वीप और सिहल आदि देशो मे सबसे पहले जाकर भारतीय सभ्यता का विस्तार और प्रसार किसने किया था, किंतु इतना तो निश्चित है कि उपरोक्त प्राचीन उपनिवेशो से भारत का घनिष्ठ सबध था। ग्रीक भूगोलवेत्ता टोलेमी की भूगोल-विषयक खोजो और जीरेनी के कथनो के आधार पर यह निश्चित रूप से प्रमाणित हो जाता है कि कलिंग युद्ध (ईसा पूर्व २६१) के पूर्व ही ब्रह्मदेश में कलिंग-उपनिवेश प्रतिष्ठित हो गया था। अन्य प्रमाण इस सबध की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं जो निम्न हैं—

स्टाप फोर्ड राफलस नामक व्यक्ति ने जावा द्वीप के आदिम उपनिवेश के सबध में कई जनश्रुतियाँ एकत्रित की है। उन सगृहीत जनश्रुतियो मे एक से पता चलता है कि कलिंग देश के २० हजार परिवारो ने जावा द्वीप में सर्वप्रथम उपनिवेश की स्थापना की थी।

बौद्ध धर्म ग्रथ "समत पसाठिका" में लिखा है कि अशोक के पुत्र महेन्द्रसिंह बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ सिहल गये थे। उनके साथ कलिंग के आठ बौद्ध परिवार भी थे। कलिंग के उन्ही परिवारो के द्वारा सिहल में बौद्ध सभ्यता फैली थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कलिंगवासियो ने समुद्र लाँघकर विदेशो में उपनिवेश-स्थापन का कार्य किया था और साथ ही भारतीय सभ्यता को विस्तृत करने मे अपूर्व साहसिकता का परिचय दिया था।

ब्रह्मदेश, जावा, सिहल आदि समुद्र पार के देशों में कलिंगवासियो द्वारा प्रथम उपनिवेश-स्थापन की जो सूचनाएँ ऊपर दी गई हैं उनसे इतिहास कहाँ तक सहमत है, इसे जान लेना उचित है। किंतु ई० पू० की घटनाओ और भारतीय नौकाचालन तथा उपनिवेश-विस्तार-सबधी

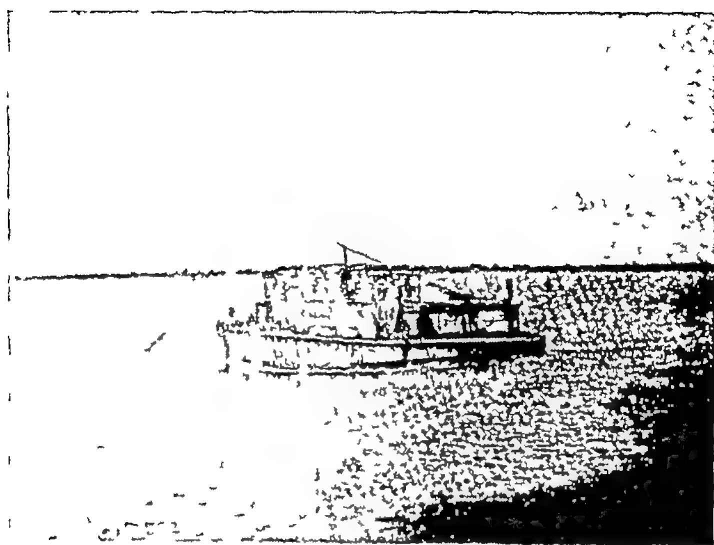
कल में
ाषा प्रचार
का
कास-क्रम



स्व० श्री गोपबन्धु



एक जहाज का चित्र



भविष्य सुखसमृद्धि का प्रतीक पाराद्वीप बन्दरगाह के दो दृश्य



अनुमान सहज ही लग जाता है कि यह उत्कल का नामातर भर है। ब्रह्मदेश के इन विभिन्न अचलो के नामकरण से पता चलता है कि उड्र, त्रिकलिग और उत्कल राज्य के अधिवासी ईसा के वाद की शतियो में वहाँ पूरी तरह बस गये थे और अपनी-अपनी जन्मभूमि के अनुसार वहाँ का नामकरण करते थे।

इन प्रमाणो के आधार पर प्राचीन काल में कलिंग और ब्रह्मदेश के बीच नौ-वाणिज्य के घनिष्ठ सपर्क का अनुमान सिद्ध हो जाता है। यह सपर्क व्यावसायिक तथा आर्थिक आधारो पर प्रतिष्ठित होते हुए भी विशेष रूप से सास्कृतिक था। मन् और प्यु जातियो की स्थापत्य और ललित कलाएँ कलिग-वासियो की निजी कीर्ति है। मूर्ति-निर्माण की शैलियो में अपूर्व साम्य होने से यह प्रमाणित हो गया है कि मध्ययुगीन ओडिशा तथा ब्रह्मदेश की तत्कालीन मूर्ति-कला मे कोई पार्थक्य नही है। सुविख्यात मन् राजा क्यार्नाजया की जो प्रतिमूर्ति आनद मदिर में सुरक्षित है उसे देखने से यह धारणा होने लगती है कि वे कलिंग-वासी ही थे, ब्रह्मदेश के अधिवासी नही। जनश्रुतियो से पता चलता है कि आनद मदिर ओडिशा के गधमादन-निवासी आठ बौद्ध-भिक्षुओ के परामर्श से बना था और खडगिरि वाले "अनतगुफा" के अनत शब्द के अनुकरण पर यह ब्रह्मदेश की वोली में अनद हो गया है।

ब्रह्मदेश के समान सिंहल के साथ कलिंग का सपर्क भी बहुत प्राचीन और घनिष्ठ है। मणि-माणिक्यो के देश के रूप में सिंहल बहुत दिनो तक विख्यात था। उसके साथ कलिंग का कारोवार बहुत पुराना था। सिंहल के निकटस्थ समुद्र में भयकर तूफान चलते थे जिसके कारण समुद्र-पोतो के जलमग्न होने की अनेक कहानियाँ भारतीय प्राचीन साहित्य में मिलती है। वलाहस्स जातक में सिंहली समुद्र में घटी एक भयानक नौ-दुर्घटना का रोमाचकारी वर्णन मिलता है। इस दुर्घटना में ५०० व्यवसायियो की जल-समाधि हुई थी। विवादपूर्ण होते हुए भी समुद्र-पथ से सिंहल और कलिंग राजवशो के वीच मैत्रीपूर्ण आर्थिक तथा सास्कृतिक सवध स्थिर हो गये थे। ईसा पूर्व तृतीय शताव्दी में अशोक के पुत्र महेन्द्र और कन्या सघमित्रा की, ताम्रलिप्ति बदर से हुई, सिंहल-यात्रा का वर्णन, 'महावश' में मिलता है। ईसा की तीसरी शताव्दी में कलिंग-राजा गुहशिव की लडकी हेममाला और दामाद दन्तकुमार दन्तपुर बदर से वुद्ध का दत-धातु लेकर पडोसी सिंहल को गये थे। इसका उल्लेख दाठा धातु वुश ग्रथ में किया गया है।

सिंहलवासियो को कलिगवासियो द्वारा प्रदत्त वुद्ध के दन्त-धातु-दान को महादान के रूप में स्वीकार किया गया था और अभी तक यह दन्तधातु सिंहलियो के धार्मिक जीवन में केंद्रित होकर पूजा जाता है। ईसा की पाँचवी शताव्दी में चीनी परिव्राजक फाहियान पाटलिपुत्र नगर से नौका द्वारा ताम्रलिप्ति को गया। उसने वहाँ से जहाज द्वारा सिंहल की यात्रा आरभ की थी।

सातवी शताव्दी में उड्र देश के चेलितोला नामक वन्दरगाह से सिंहल की यात्रा सुविधा-जनक मानी जाती थी। इसीलिए उक्त वन्दरगाह में जहाजो की भीड रहा करती थी। दूर देशो की यात्रा करनेवाले वहुत से जहाज उसी वन्दरगाह में आकर एकत्र होते थे। इसका उल्लेख तत्कालीन चीनी परिव्राजक हुएनसाग ने किया है।

इस प्रकार के जहाज बहुत भारी होते थे। उस भार को सँभाल रखने के लिए पाल लगाते थे। इसे बडे कौशल से, छाते के समान, सजाया जाता था। वह पाल जहाज की सीमा-रेखा से बाहर फैला होता था। मस्तूल कोई सीधे, तो कोई टेढे बनाये जाते थे। पाल जब हवा से फूल उठते थे तब वे जहाज के सतुलन को ठीक रखने में समर्थ हो जाते थे। ईसा की सप्तम और अष्टम शताब्दियो में ऐसे बहुत से जहाज कलिग में बनाये जाते थे। आज भी कलकत्ता के आशुतोष म्युजियम में, भुवनेश्वर से प्राप्त, दो पत्थर-निर्मित जहाज सुरक्षित हैं। उनमें से एक का आकार-प्रकार ठीक बोरोबुदुर जहाज के साथ मिलता-जुलता है। ओडिशा म्युजियम में सरक्षित जहाज का एक चित्र भी बहुत अशो मे इसी प्रकार का है। आशुतोष म्युजियम के अन्य जहाज अजन्ता में अकित व्यापारी जहाज के समान सुन्दर ढग से बनाये गये हैं। किंतु ओडिशा की शिल्प-चातुरी के अनुसार इस जहाज का ऊपरी भाग आमलक शिखा (विशिष्ट-मन्दिरचूडा) के द्वारा अलकृत है। परिव्राजक फाहियान जिस जहाज में बैठकर चीन गये थे वह अजन्ता के पोत-चित्र के समान था। भारत के पूर्व उपकूल में भी इस ढग का जहाज बनाया जाता था और इस कौशल का अनुसरण बहुत दिनो तक किया गया था। इसमें कोई सदेह नही कि आशुतोष-म्युजियम का, आमलक-चूडावाला, विशिष्ट प्रकार का जहाज परवर्ती काल का है किंतु यह स्पष्ट विदित होता है कि अजन्ता में अकित चित्र की अपेक्षा बोरोबुदुर के जहाज अधिक उन्नत तथा जटिल प्रणाली में गठित हैं।

ग्यारहवी शताब्दी के प्रथम चरण में दक्षिण भारत मे चोलवश का अभ्युदय हुआ और साथ ही कलिंग की नौशक्ति के पतन का इतिहास भी आरभ हुआ। चोल-अभिलेखो से पता चलता है कि राघवराज चोल (सन् ९८५—१०१४ ई०) ने कलिंग के गगराज को हराकर, उनके १२ हजार द्वीप बलपूर्वक छीन लिये थे। ऐतिहासिको का कहना है कि आज के लाकाडाइउस और मालाडाइउस वही द्वीप हैं। ये सभी तब तक कलिंग के अधीन थे। फिर राजराज चोल के पुत्र राजेंद्र चोल (१०१४-१०४४) ने उड्र और दडभुक्ति राज्यो को भी जीत लिया। इसी के राज्यकाल में शैलद्र राजवश का श्री-सपन्न साम्राज्य भी चोलवश के अधीन हो गया। चोलवश का अभ्युत्थान पूर्ण रूप से सामरिक शक्ति पर आधारित था जो राजेन्द्र चोल के समय में बहुत प्रबल हो गई थी। किंतु उसके पश्चात् यह वश दुर्बल पडने लगा। फलत इसका प्रभाव मद पडकर शिथिल हो गया।

उस समय हिंद महासागर में अरब नौ-चालको की प्रतिपत्ति और क्षमता विशेष रूप से बढ गई थी। धीरे-धीरे उस अचल का नौ-वाणिज्य दुर्दांत अरब जातियो की मुट्ठी में चला गया। ओडिशा के तत्कालीन गगवशी और सूर्यवशी राजा युद्ध-रत थे, अत नौ-वाणिज्य की गौरवमय परपरा की रक्षा का इनमे से किसी ने ध्यान नही दिया।

पुरी के जगन्नाथ मदिर की भीत पर जहाज का जो चित्र अकित है वह ओडिशा के ह्रासोन्मुख नौ वाणिज्य का एक साकेतिक निदर्शन है। ओडिशा म्युजियम और आशुतोष म्युजियम में सरक्षित जहाजो के समान यह समुद्रगामी जहाज नही है। यह तोरण और मण्डप से सज्जित एक छोटी सी विहार-नौका है। इसे देखने से प्रतीत होता है कि विपद-सकुल समुद्र में सघर्ष कर

के गमनागमन के योग्य न रह गईं। अतएव ओडिशा के उपकूलो से होनेवाला केवल ओडियो का ही नही, विदेशियो का व्यापार भी मद पडने लगा।

इतना होते हुए भी यह सोचना गलत है कि ओडिशा का उपकूल नौ-वाणिज्य के विकास के लिए अनुपयुक्त है। घाम्रा, महानदी तथा देवी आदि नदियो के मुहानो में पोताश्रय के लिए कई उत्कृष्ट प्राकृतिक सुविधाएँ मौजूद है। इसमें तनिक भी सदेह नही कि यदि इन सभी उपकूलो का विकास किया जाय तो ओडिशा की गौरवमय नौ-परपरा पुन जीवित हो सकती है। सन् १८६६-६७ के दुर्भिक्ष के समय से ही महानदी के मुहाने पर स्थित पाराद्वीप में एक पोताश्रय निर्माण की परिकल्पना, भारत सरकार ने की थी। सरकार के "फेमिन कमीशन" ने यह अनुकूल रिपोर्ट दी थी कि यदि पाराद्वीप में एक पोताश्रय वन जाय तो हुगली से लेकर ववई तक के उपकूल में यह एक विशिष्ट वदरगाह के रूप में विकसित हो जायगा। इस रिपोर्ट के फलस्वरूप कटक केन्द्र में पडा केनाल की खुदाई आरभ हुई और १९०५ में पाराद्वीप की उन्नति के लिए एक वृहत् योजना भी प्रस्तुत हुई, किंतु दुर्भाग्यवश वह योजना विदेशी सरकार द्वारा पूरी न हो सकी। आज पुरानी परिस्थितियाँ विलकुल वदल गई है। ओडिशा की खनिज सपद् को विदेश भेजने के लिए पाराद्वीप की विकास-योजना अनिवार्य और आवश्यक हो गई है।

यद्यपि आज ओडिशा का प्राचीन और ख्यातिप्राप्त नौ-वाणिज्य लुप्त हो गया है किंतु उसके गौरवपूर्ण इतिहास की चेतना उसकी नाडियो में अब भी वर्तमान है। आज भी ओडिशा में दीवाली के दूसरे दिन प्रात काल "वोइत वदाण" और कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन "वोइत मसाण" नामक पर्वो को अत्यत समारोह के साथ मनाया जाता है। इस तरह यहाँ की सस्कृति के अभिन्न अग रूप में अतीत की गौरवशालिनी स्मृतियाँ जन-जीवन में चेतना का सचार करती रहती है। ओडिशा के वे दिन अतीत के गर्भ में विलीन हो गये है लेकिन आज भी प्रत्येक वहन "तअपोइ" की रोमाचकारी कथा की याद दिलाती है। यह निश्चित है कि अतीत की यह अनवद्य चेतना, ओडिशावासियो के नौ-जीवन के पुनर्जागरण के लिए निरतर उद्बुद्ध करती रहती है।



विचक्षणता से निर्मित है। किन्तु ये पत्थर के काम जिस समय के है, उस समय इनके बनानेवालो ने किन यन्त्रो की सहायता ली थी और वे यन्त्र कहाँ और कैसे थे, यह वे सोच ही नही पाते है। जब वे इन प्रकाण्ड मन्दिरो में खचित मूर्तियाँ तथा उस समय के विभिन्न उत्कीर्णित चित्रो और प्रत्येक मूर्ति की स्वाभाविक भावभगी देखते है तो उनकी चिन्ता-शक्ति विचलित-सी हो जाती है। केवल इन प्रसिद्ध स्थानो में ही नही, उत्कल के कई छोटे-छोटे गाँवो में भी इस प्रकार की शिल्प-चातुरी आज भी देखने को मिल जाती है।

आजकल सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने कई स्थानों में खुदाई करके भू-गर्भ से जिन मूर्तियो का उद्धार किया है उनमें भी कुटीर-शिल्प की चमत्कारिता दिखाई पडती है। खिचिंग, शिशुपाल-गढ आदि से भू-गर्भ से प्राप्त मूर्तियाँ इस चमत्कार के ज्वलत प्रमाण है।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा कि उस समय शिल्पशिक्षा के लिए कोई विद्यालय नही था। लोग अपनी अपनी झोपडियो में इस प्रकार की उत्कृष्ट शिल्प-कला का उद्-भावन करते थे और अपनी चिन्ता-धारा का प्रयोग कर हाथो के द्वारा ही अपूर्व कृतित्व कर दिखाते थे। उस समय जो व्यक्ति जिस विषय में विचक्षण था वह किसी भी जिज्ञासु और इच्छुक को अपनी विद्या सिखा देता था। इस प्रकार प्रत्येक कुटीर एक एक क्षुद्र शिल्पानुष्ठान ही था। फिर जिन बडे-बडे मन्दिरो आदि को देखकर लोग आज चकित हो जाते है उनको बनाने के लिए न तो बडे-बडे इजीनियर थे, न उनका सहकारी वर्ग। उस समय राजा लोग सीधे कारीगरो को प्रोत्साहित करते थे और कारीगर अपना शिल्पकौशल दिखाने की भरसक कोशिश करते थे। उस समय आजकल की जैसी सहयोग समितियाँ नही थी, लेकिन शिल्पियो का अवश्य ही सहयोग सगठन रहा होगा, नही तो इतने बडे बडे काम कैसे बन पाते !

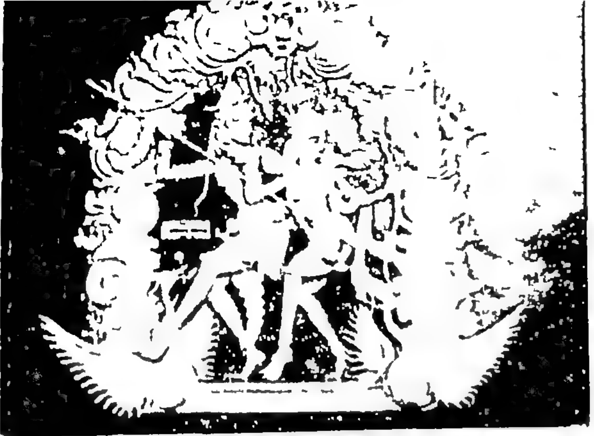
प्रस्तरशिल्प की तरह यहाँ लौहशिल्प का भी चरम उत्कर्ष हुआ था। कोणार्क मन्दिर के अहाते में पडी हुई लोहे की कडियो का लोहा देखकर उनकी निर्माण-प्रणाली के विषय में पता लगाना असभव-सा लगता है। यह इसलिए नही कि उस समय के लोग अपनी कार्यप्रणाली लिपिबद्ध नही करते थे बल्कि आजकल ताडपत्रो की जो पुरानी पोथियाँ मिल रही है उनमें शिल्प-सबधी कुछ बातें भी मिलती है। लेकिन बहुत सी ऐसी पोथियाँ नष्ट हो गईं या चोरी चली गईं है, जिनसे तत्सबधी सूचना मिलती। आज तक इस लौहशिल्प के गूढ रहस्य का उद्घाटन नही हो पाया है। कोणार्क मन्दिरवाली एक एक कडी का वजन २०-२५ टन से कम नही है। इतने ऊँचे मन्दिर कैसे बनाये गये और इतने बडे-बडे पत्थर तथा लोहे किस प्रकार इतनी ऊँचाई पर पहुँचाये गये, जब कि आजकल के क्रेन आदि का नामोनिशान नही था, यह सोचकर आश्चर्य करना पडता है। इसके विषय में विभिन्न व्यक्ति विभिन्न कल्पना करते है। दूसरे यह कम आश्चर्य की बात नही है कि इतने दिनो बाद भी इन लोहे की कडियो में मोर्चा भी नही लगा है। यही उनकी निर्माण-प्रणाली की खूबी है। यह भी जानना कठिन है कि जिन औजारो से ये पत्थर तराशे गये है वे औजार उस समय के लोहारो की भाथियो में ही बनाये गये होगे। लोहे के ये बडे बडे औजार ही नही, उन्ही कोणार्क की नवग्रह मूर्तियाँ—जो कि मुगुनी नाम के एक पत्थर को काटकर बनाई गई है—



मृण्मय मूर्त्तियों तथा खिलौनों के कुछ नमूने





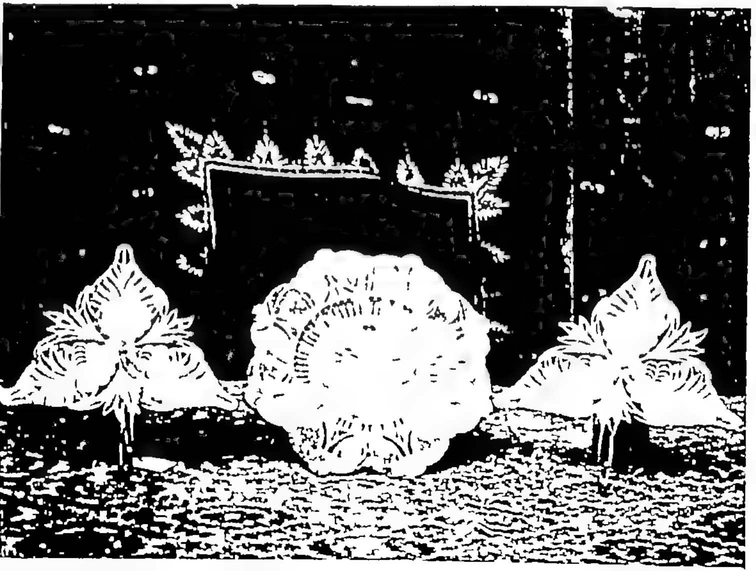


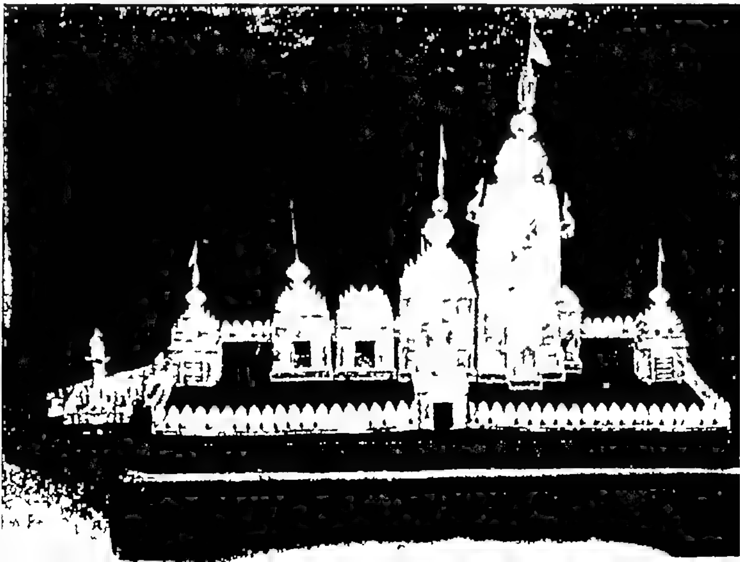
मृण्मय मूर्त्तियों तथा खिलौनों के कुछ नमूने





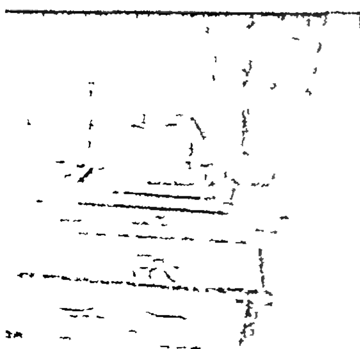






चाँदी के तारकशी काम तथा कारीगर

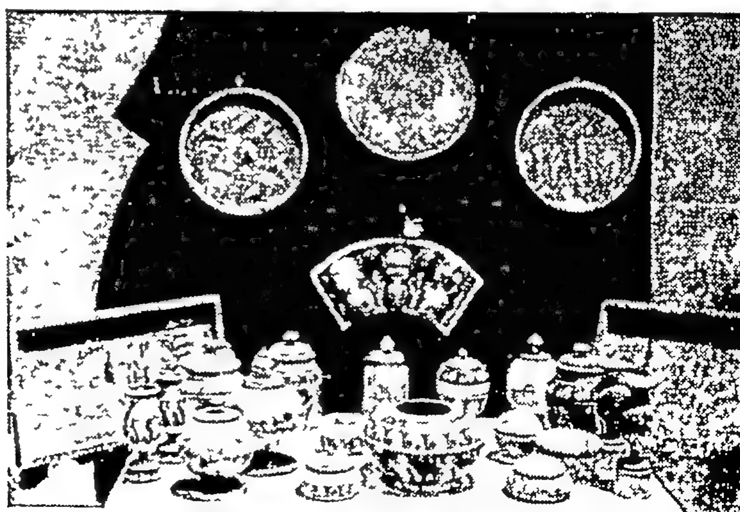
वयन-शिल्प







बेंत का काम



कागज़ और काठ के काम



लकड़ी से बने पात्र

भारत सरकार की शिल्प-विकास योजना के अतर्गत कटक में एक समिति स्थापित की गई है। सन् १९५२-५३ में इस समिति को कार्यकारी पाण्ठि के लिए ५०,०००) और दर्शनागार के लिए ६०००) अर्थात् कुल ५६,०००) की सरकारी सहायता मिली है। ५५-५६ में एक शिक्षा-केन्द्र खोलने के लिए १००००) की तथा १९५७-५८ मे ओडिशा के वाहर एजेंटो की नियुक्ति के लिए ७४००) की सहायता दी गई है। परन्तु शिल्पियो के सगठन के अभाव से कार्य की प्रगति में वाधा पड रही है।

**कांसा, पीतल**—ओडिशा में काँसे और पीतल की कारीगरी भी विशेष रूप से उन्नत है। वालेश्वर के निकटवर्ती रेमुणा के काँसे के वर्तनो की निर्माण-प्रणाली आज तक दूसरे स्थानो के कारीगर जान ही नही सके है। कण्टिलो के काँसे और पीतल के वर्तन अधिक परिमाण में ओडिशा के वाहर भेजे जाते है। आधुनिक यन्त्रो और औजारो के सहारे सुलभ मूल्य में काँसे-पीतल की सुन्दर चीजें वनाने के लिए छ समवाय समितियाँ बनी है। इन समितियो को भारत सरकार से कुल एक लाख रुपये का ऋण तथा ४६,२७०) की सहायता मिली है। इन समितियो ने १९५७, ५८ ई० में ३,२६,०१३) की चीजें वनाई और ३,०९,७६३) की चीजें वेची है। क्षुवन, घटीभुडा, वालिअन्ता और वेलगुण्ठा आदि स्थान इस शिल्प के प्रधान केन्द्र है। वेलगुण्ठा की पीतल की मछलियो को देखकर सभी मुग्ध होते है। इन मछलियो की चालढाल जीवन्त मछलियो की चाल-ढाल जैसी ही है। इस शिल्प के प्रसार के लिए गजाम जिले की शेरगड बहुमुखी समवाय समिति के द्वारा एक उत्पादन केन्द्र खोलने की योजना तथा व्यवस्था की गई है। राज्य सरकार की मजूरी पाने पर कार्यकारी पूंजी तथा अनुदान की रकम मिल जायगी और यह योजना आरभ हो जायगी।

**वयन शिल्प (बुनाई)**—वयन शिल्प में ओडिशा के लोग न कभी पीछे रहे है और न इस समय है। अनेक स्थान ऐसे है जहाँ की कोई न कोई एक विशेषता होती है। सवलपुर के परदे भारत के दूसरे प्रान्तो तथा भारत के वाहर भी वडे पैमान में विकते है। बाँध-प्रणाली द्वारा कपडे बुनने की रीति का अन्य प्रान्त के लोग, कोशिश करने पर भी, भली भाँति अनुकरण नही कर मके है।

वयन शिल्प की उन्नति के लिए द्वितीय पचवर्षीय योजना में पर्याप्त व्यवस्था है। प्रान्त भर में ४१६ तन्तुवाय सहयोग समितियाँ स्थापित हुई हैं और उन्हें २५४२१९८) रु० के ऋण दिये गये है। सरजाम वनाने के लिए दिये गये १८७४८०) में से आधी रकम अनुदान की है और आधी ऋण की। आदिवासी जुलाहो के घर वनाने के लिए दो तिहाई धन ऋण के तौर पर और एक तिहाई धन सहायता के तौर पर दिया गया है।

इन समितियो के अतिरिक्त सरकार की ओर से परिचालित एक वाणिज्य समिति भी वहुत दिनो से है। प्रान्त के ५८ स्थानो पर विक्री भण्डार भी हैं। १९५७-५८ तक ४५ लाख रुपयो के हाथ के वुने कपडे विके है। मिल के कपडो से इनके मूल्य में समता लाने के लिए १४९१, ०७४) की सरकारी सहायता भी दी गई है।

आजकल ओडिशा खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड के द्वारा इस शिल्प के प्रसार के लिए प्रयत्न हो रहे हैं।

ओडिया जाति ने नाना विषयो में अपनी उद्भावनी-शक्ति का परिचय दिया है। पुरी जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए समूचे भारत से लाखो लोग आते हे और मन्दिर का प्रसाद या भोग खाकर तृप्त होते हैं। मन्दिर की रधन-प्रणाली की एक विशेषता है। यहाँ जितने प्रकार के भोग बनाये जाते है, उनकी सख्या एक सौ से बहुत अधिक होगी।

गाँवो के गृहस्थो के पारिवारिक जीवन में भी ऐसे अनेक कार्य दिखाई पडते हे जिनसे कला और सौन्दर्य-ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है। ओडिशा के करणो (कायस्थों) के यहाँ की महिलाएँ बाप, चाचा तथा बडे भाई आदि के नहाने के बाद चन्दन घिस कर उसे चित्र-विचित्र के साथ रखती है, पहनने की धोती-चादर चुनती हे। भोजन के समय पीढे पर, विभिन्न भोजन-पात्रो के नीचे और पर्व-त्योहारो के अवसर पर फर्श, भीत तथा किवाडो पर चौरठ से अनेक प्रकार के चित्र बनाती हे। खासकर दीवारो पर भागचिता नाम की जो तसवीर बनाती है, उसमें बुद्धि का कौशल दिखाया जाता है। आजकल की शिक्षित लडकियो में, जो शहरो में रहकर स्कूल-कालेजो मे पढती हैं, भले ही इस कला की कमी हो, लेकिन देहात की महिलाओ में यह अभ्यास आज भी अक्षुण्ण है।

शादी-व्याह आदि में यहाँ जितने प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ प्रस्तुत की जाती है, उतने प्रकार शायद ही किसी दूसरे प्रान्त में हो। शादी के समय बहू को सजाने में और तत्सम्बन्धी यानवाहनो की सजावट में भी जिस कला-चातुरी का परिचय मिलता है, ओडिशा में उसकी अपनी एक अलग विशेषता है।

इन बातो से अनुमान किया जा सकता है कि ओडिया जाति के प्रत्येक रक्तविन्दु में शिल्प-कला अनुप्राणित है जो यथावसर आसानी से विकसित की जा सकती है। कटक की कुटीर उद्योग-शाला (पुअर काटेज इडस्ट्री) इसका प्रमाण है। गरीबो को उद्योग-धन्धो के द्वारा सहायता देना इस अनुष्ठान का उद्देश्य है। यहाँ के लोगो की यह हालत है कि उनके लिए मामूली दो-चार आने खर्च कर कोई चीज या कुछ यन्त्र-औजार खरीदना भी सभव नही होता। अत जो चीजें उनके घरो के आसपास किसी तरह के व्यवहार मे न आकर नष्ट हो जाती हे उन्ही से कुछ व्यवहारोपयोगी चीजे बनाने की प्रणाली सिखाना इस सस्था का उद्देश्य है। इसके द्वारा जितनी चीजें प्रस्तुत होती हे उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

**पुआल**—इस देश में धान की खेती काफी होती है। पुआल सभी जगह मिलता है। घर के छप्पर तथा चारे में यह खर्च होता है। इस अनुष्ठान के शिक्षण के फलस्वरूप गाँवो की बहू-बेटियाँ इसी पुआल से विभिन्न प्रकार के आसन और चटाइयाँ बनाती और उन पर तरह-तरह की चित्रकारी करती हैं। उन्हें देखने पर उन लडकियो के कलाज्ञान तथा धैर्य का परिचय मिलता है। उसी पुआल से विभिन्न प्रकार के पखे, शरबत पीने के नल आदि भी बनाये जा सकते हैं।

**काईश**—काईश एक किस्म की घास है जो आसानी से मिल सकती है। पहले इससे

काम पर हरिजनो का एकाधिकार था, अब वह नही रहा। अव तो ब्राह्मण, कायस्थ, क्षत्रिय घराने की बहू-बेटियाँ पहँसुल के द्वारा बेंत की सुन्दर चीजें बना रही है।

**ताड**—ताड ओडिशा के सभी अचलो में होता है। इस पेड के सभी हिस्सो का व्यवहार करने की प्रणाली निकाली गई है। इसके पत्तो से नाना प्रकार की डलियाँ बनाई जाती है। पत्तो की रीढ और खाडियो से परदे, चिक तथा पटुए से बैग आदि कई चीजें बनती है।

**खजूर**—खजूर के पत्तो का उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। इससे लोग मोटी चटाइयाँ और झाडू बनाते है। अब आजकल की रुचि के अनुसार इससे टेबुल मैट, गद्दियो पर बिछाने की चटाइयाँ, बैग, तरह-तरह की मेज, आलमारी, मोटर गाडी झाडने के ब्रुश आदि बनाये जाते है। ये ब्रुश ऐसे होते है कि लोग इन्हें किसी ऊन से बनने का भ्रम करते है। इसकी सीक से टेबुल-मैट, खिलौने, जूते, टोपियाँ आदि बनती है।

**नारियल**—ओडिशा के समुद्री अचलो में नारियल बहुत होता है। नारियल की जटा और चुन्नी से तो रस्सी बनाई जाती है पर अब उसके पाँवपोछ और गद्दे भी बनाये जाते है। पत्तो की खाडियो से नाना प्रकार की डलियाँ बनती है। खोपडे से फूलदान, कप आदि बनाये जाते है। बेल के खोपडे से भी कप बनते है।

**बाँस**—बाँस ओडिशा के प्राय प्रत्येक गाँव में मिलता है और जगलो में तो प्रचुर परिमाण मे होता है। पहले घर तथा डलियो, टोकरियो, छडियो आदि के बनाने में इसका व्यवहार होता था। अब उससे तिपाई, टेबुल और सुन्दर छडियाँ बनाई जाती है। बाँस की हर गाँठ के पास चारो ओर जो सुपेलियाँ होती है उनसे टेबल मैट, डब्बे, प्लेट रखने के आसन तथा छोटे-छोटे पखे बनाये जाते हैं।

**केला**—ओडिशा के प्रत्येक गाँव मे लोग केले की खेती करते है। जिसके पास अधिक जमीन या बगीचा नही है वह भी, घर के आसपास, दो-चार पेड लगा देता है। लोग उसके फल, फूल और केले के बीच का सफेद डडा खाकर पेड के दूसरे हिस्से को फेक देते है। किन्तु अब उसके तने से तन्तु निकालकर उससे आसन तथा टेबुल और तिपाई पर बिछाने लायक कपडे भी बनाये जा सकते है।

**ईख**—ईख में फूल फूलने के बाद लोग उसे जला देते है। इससे सुन्दर स्क्रीन, परदे और टेबुल बनाने के बदले इसकी चटाइयाँ कम मूल्य में बनती है।

**नालिया**—यह एक घास है। यह समुद्रोपकूल इलाके में खूब पैदा होती है। इससे केवल टोकरियाँ बनाई जाती थी। अब इससे लोभनीय चटाइयाँ, बैग और कई शौक की चीजे बनाई जाने लगी है। इन चीजो का आदर भी खूब बढ गया है। बोबेई घास सोला और शुआंबेल से भी कई नई चीजें बनने लगी है।

**दव्त्र छुंची**—एक प्रकार की तृणजातीय वनस्पति है। यह सहजन के आकार में जमीन से निकलती है। इसमें पत्ते नही होते। जहाँ यह पैदा होती है, वहाँ बहुत दूर तक फैल जाती है। इनसे गलीचा, आसन आदि चीजे बनती है।

के लिए जो प्रणाली चालू है उसमें एक साथ हजारो ईंटें एक भट्ठी के लिए चाहिये लेकिन इस सस्था ने एक साथ १००० या ५०० ईंट पकानेवाला चूल्हा बनाया है जो घर के आँगन में ही बना लिया जा सकता है।

अन्त में कहना यह है कि यद्यपि वैदेशिक शासन के घात-प्रतिघात के कारण ओडिशा के शिल्प में वाधा पहुँची है तो भी इस जाति की उद्योग-शक्ति एकदम नष्ट नही हो गई। चाहे व्यक्ति हो या देश, उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही यह है कि अवसर मिलने पर उसकी शक्ति का विकास आसानी से हो सकता है। बाधको या प्रतिबन्धो से उस शक्ति का क्रमश लोप होना असभव नही है। शिल्प के बल पर यह जाति कभी सौभाग्यशाली थी और इसे खोकर ही इसकी हालत बिगड गई। आजकल यह बात सभी समझने लगे हैं। इसलिए नाना प्रकार की योजनाएँ बनाई जा रही हैं। लेकिन जो-जो उद्यम पुराने समय से चालू हैं उनके परिचालन की सुव्यवस्था होनी चाहिए। केवल वडे-वडे डिपार्टमेंट खोलकर उच्च पद पर शिक्षित कर्मचारियो की नियुक्ति कर देने या कुछ नियमावली बना लेने पर ही काम नही चलेगा। ये नियम प्राय शिल्प पर ध्यान रखकर नही बनाये जाते वल्कि विभागीय कार्य-नियन्त्रण की सुविधा को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं। देहात की स्त्रियो को सिखाने से वे जिन चीजो को आग्रह के साथ बना सकती हैं और उनकी चीजें खरीद लेने पर ही उन्हें रोटी मिल सकती है, उनसे उन चीजो को खरीद कर साथ-साथ पैसा देने की व्यवस्था न तो सरकार की ओर से हो पाती है और न इस दायित्व को लेनेवाली सस्था को प्रोत्साहित ही किया जाता है। कारीगर अगर काम करने के बाद अपनी मजदूरी न पा सके तो कार्य में उसकी प्रवृत्ति नही रहेगी। फल यह होता है कि जिनकी सुरक्षा के लिए इस विभाग की सृष्टि हुई है उनकी ओर उदासीनता बरती जाती है। ऐसा नही होना चाहिए। जगह-जगह पर वडे-बडे शिल्प-अनुष्ठान खोले जा रहे हैं। उनमें वडे-वडे कार्यकर्ता हैं और उनकी व्यवस्थाएँ भी बडी हैं। लेकिन इन वडे कारखानो से जाति के जितने लोगो का मगल हो सकता है, उनकी सख्या बहुत कम है। गाँव-गाँव के घर-घर में जितने वेकार हैं या जिन लोगो को आशिक बेकारी रहती है, उनका दु ख दूर करने के लिए ये वडे कारखाने समर्थ नही होंगे। लोगो की बेकारी दूर कर उन्हें उन्नत जीवन विताने का अवसर देने के लिए कुटीर-शिल्प ही प्रधान साधन है। अगर योग्यता के साथ गाँव के कारीगरो से चीजें बनवाकर उन्हें ठीक समय पर मूल्य दिया जा सके और उन चीजो की बिक्री की सुव्यवस्था की जाय तो साधारण जनता का अशेष उपकार हो सकेगा। सरकारी शिल्प विभाग के अलावा समवाय विभाग का ध्यान भी इस ओर अवश्य गया है। लेकिन इन विभागो का कार्य व्यवस्थित नही हो पाया है। इन कार्यकर्ताओ को लोगो की प्रवृत्ति, आवश्यकता तथा पारिपार्श्विक परिस्थिति से परिचित होकर तदनुसार कार्य-प्रणाली अपनानी चाहिए।



दाता "भरत मुनि" ने प्रवृत्ति कहकर भारत के नाना स्थानो में 'चतुष्टयप्रवृत्तय' नाम से उल्लिखित किया है।

उन्होने नाट्यशास्त्र में कहा है—

चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोक्तृभि ।
अवन्ती दाक्षिणात्या च पाचाली चौड्र मागधी ॥[1]

उड्र को ओडिशा कहते है। उस देश में जो सगीत प्रचलित है उसको 'ओडिशी' सगीत कहा जाता है—

"अबला वालगोपालैर्क्षितिपालैर्निजेच्छया।
गीयते सानुरागेण स्वदेशे देशिरुच्यते॥[2]

इस प्रकार उत्कल में ओडिशी सगीत सदैव भारतीय सगीत के शास्त्रीय अनुसरण पर, अपनी स्वतत्रता और विशेषत्व के साथ प्रचलित होकर विकसित हो रहा है।

इस समय भारत में भारतीय देशी सगीत की दो धाराएँ प्रचलित हैं। एक हिन्दुस्तानी और दूसरी कर्नाटकी है। ओडिशा का राजनैतिक शासन विदेशी लोगो के अधीन रहने के कारण सगीत क्षेत्र में कुछ बाधा आई है और 'ओडिशी' सगीत के प्रचार और प्रसार पर उसका असर पडा है। इसलिए वर्तमान समय में लोग विभिन्न स्थानो में विभिन्न सगीतशास्त्र के नियमानुसार प्रचलित विभिन्न प्रकार के सगीत नही गा सकते।

प्राचीन पडितो ने स्वर और लय को सगीत की आत्मा माना है। विना लय के तुकबन्दी और राग-रागिनी नही हो सकती। राग-रागिनी से रहित होने पर सगीत का मनोरजक तत्त्व नष्ट हो जाता है। लय और स्वर के सहारे प्रत्येक देश की भाषा के शब्द या मात्रा का उच्चारण होता है। इससे गीत, प्रवन्ध, छन्दादि की उत्पत्ति हुई है। उसी लय के सहारे अक्षर उच्चारण करने के समय कई मात्राएँ गणना के अनुसार सम, विषम सख्याओ में निश्चित की जाती है। लय की सहायता से नाट्यशास्त्रकारो ने ताल को उत्पन्न किया है। आचार्यो ने इस ताल के विभिन्न प्रकार के भेद किये हैं। किसी के मत से ७ ताल है तो किसी के मत में ९ है। इस प्रकार ताल की सख्या १०१ से लेकर १२० तक वढ गई है। इन तालो को मार्गी ताल कहते हैं। इससे उत्पन्न कई प्रकार के ताल आज विभिन्न स्थानो में व्यवहृत होते हैं। उत्कल के वर्तमान प्रचलित ताल "नव ताल" के अन्तर्गत हैं। इसका उल्लेख ओडिशा के सगीत मुक्तावली ग्रन्थ में है। यथा भरते—

---

१ भरत नाटचशास्त्र, काव्यमाला, त्रयोदश अध्याय। श्लोक २५ क सन् १८१४, प्रथम मुद्रण। पृष्ठ १४७।

२ त्रिवेन्द्रम अनन्तशयन सस्कृत-ग्रन्यावली। १९२८ में प्रकाशित वृहद्देश्या पृष्ठ २, श्लोक १३ क।

है कि ओडिशा के शास्त्रीय सगीत की रीति उस समय इतनी समुन्नत थी कि उसके साधक हरिदास गोस्वामी से शिक्षा प्राप्त कर तानसेन ने भारत के मोगल सम्राट् अकवर के दरबार में विशेष ख्याति अर्जित की थी। उस प्राचीन ओडिशा की सागीतिक रचना का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

यथा—झपकतालेन-नट रागेण

अकृष्ट दिवस कर तनय तनय बुद्ध
बल तीर्थ गमन कृत सकल कृत शुद्धे।
रक्ष मामक्ष घृत पद दन्त वक्रे
धरणी भुजि घृत रोष हतरात चक्रे
थोग किट झँ झँ कृत तत्याद्रिक द्रादाम
निगम सरिव पध कटि दिमिक दिमि तामा।

त्रिपुट तालेन-वसन्तरागेण

शिखर मण्डल मण्डितोत्तम कुण्डलैक विराजितम्।
चण्डकर सूत दण्ड खण्डन पण्डित त्रिदशार्च्चितम्।
यादवान्वय दुग्ध वारिधि कुमुद बान्धवमीश्वरम्।
भावयामि भवन्तमर्हनिश ब्रह्मरूपमनश्वरम्।
इत्यादि—(सगीत नारायण)

गुण्डकिरि राग

कलयति नयन दिशि दिशि वनित
पकजमिव मृदु मारुत चलित (१)
केलि विपिन प्रविशति राधा
प्रतिपद समुदित मनसिज वाधा। ध्रुव।
जनयतु रुद्रण जेश मुदित
रामानन्द कवि गदित (२)—जगन्नाथवल्लभ नाटक।

इस तरह विभिन्न राग-रागिनियो के गीत प्रचलित है। वर्तमान युग के परिवर्तन के साथ-साथ ओडिशा में उसके विभिन्न प्रकार प्रचलित हैं। कालक्रम के अनुसार चर्चा के अभाव के कारण यह अपभ्रष्ट हो गया। उसी समय से ओडिशी भाषा में एक प्रकार का सगीत दिखाई पडता है। इसके पहले जयदेव का 'गीतगोविन्द' सस्कृत की निकटतम ओडिया भाषा में लिखा हुआ है। पहले के लिखे गीतो से जयदेव के गीतो का साम्य है।

# ओड़िया नाटक एवं रंगमंच

## श्री वनमाली मिश्र

ओडिया नाटक का आरभ उतना ही प्राचीन है जितनी कि मनुष्य की अनुकरणात्मक प्रवृत्ति। यद्यपि यह रहस्यो से आच्छादित है, तो भी इसका उद्गम कई शताब्दियों पूर्व अतीत के गर्भ में खोजा जा सकता है।

ओडिशा का सास्कृतिक इतिहास ढाई हजार वर्षों से अधिक प्राचीन है। यह कलाओ और कलाकारो की भूमि है। पुरी, भुवनेश्वर और कोणार्क के मदिर उनकी रचनात्मक प्रतिभा के ज्वलत प्रमाण हैं। यह प्रदेश ही जिस उत्कल नाम से विदित है, उस शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ ("उद्गता कला यस्मिन् देशे स देश उत्कल" अर्थात् जहाँ कला का उत्कर्ष दिखाई पडता है) इसके तात्पर्य को अच्छी तरह प्रकट कर देता है।

### विकास के पाँच चरण

**प्रथम चरण**—प्रथम चरण का विकास कई युगो को मिलाकर ईसा की ७वी शताब्दी मे समाप्त होता है। उस समय सपूर्ण भारत में सस्कृत ही सबसे उन्नत भाषा थी और पडित तथा सामत उसी की विभिन्न शाखाओ के सरक्षक थे। हमारे पास इसके प्रमाण हैं कि उत्कल में भी मच और अभिनय की चर्चा पहले थी। ईसा पूर्व दूसरी-तीसरी शती में महामेघवाहन सम्राट् खारवेल के द्वारा हाथीगुफा लेख में एक रगमच प्रस्तुत किये जाने के सकेत आज भी मौजूद हैं। हमें यहाँ की एक शिलालिपि से निम्नाकित सदर्भ मिलता है जो उस समय की प्रचलित पाली भाषा में लिखित है। वह लेख यो है—

चौथी पक्ति—'ततिये पुनवसे'

पाँचवी पक्ति—गवव-वेदबुधोदय-दय-नत-गीत-वादित-सदसनादि-उसव-समाज कारापनादिच कीडापयति नगरि" इसका सस्कृत अनुवाद इस प्रकार है—

"तृतीय पुनर्वर्षे गन्धर्ववेदे वुध दर्प नृत्यगीतवादित्र-
सन्दर्शनै उत्सव समाज-कारणाभिश्च क्रीडयति नगरीम्।"[1]

---

१ खारवेल इस्क्रिप्शन्स रेफरेंस—ओल्ड ब्राह्मी इस्क्रिप्शन्स इन द उदयगिरि एण्ड खडगिरि केव पृष्ठ ३७।

८वाँ आश्चर्य कहा जाता था, १३वी शती में निर्मित हुआ। ये दोनो मदिर स्थापत्य कला के अत्यत उत्कृष्ट नमूने हैं। उनमे स्थापत्य कला के माध्यम से मानव-समाज के भिन्न-भिन्न दृश्यो को अत्यत आलकारिक ढग से प्रदर्शित किया गया है। कोणार्क की 'मुखशाला' के ऊपरी भाग में चित्राकित अपूर्व दृश्यो को देखकर लोग बहुत ही प्रभावित होते हैं। यद्यपि काल के क्रूर हाथो द्वारा कोणार्क मदिर का शिखर नीचे लुढक आया है किंतु प्राचीन उत्कल की स्थापत्य और मूर्तिकला के आश्चर्य के रूप में उसके शीर्षभाग का भग्नावशेष अभी तक वर्तमान है। इसमें लगभग आधे दर्जन सुदरियो के दृश्य प्रदर्शित हुए हैं। इनमें से कुछ तो गाने की मुद्रा में नाचती हैं, दूसरी शृगी बजाती हैं और कुछ ढोल, झाल तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्ययत्र बजाती हैं। यह इतनी उत्कृष्टता के साथ उत्कीर्ण हुआ है कि समूचा दृश्य नृत्य के साथ आधुनिक 'सिम्फनी आर्केस्ट्रा' का स्वरूप उपस्थित कर देता है। वस्तुत यह केवल मूर्तिकारो की काल्पनिक उपज ही नही होगी, निश्चय ही समाज का कोई न कोई आधार उनके पीछे रहा होगा। भुवनेश्वर के मदिरो के चतुर्दिक् होनेवाले धार्मिक कृत्यो, पर्वों और शानदार प्रदर्शनो का उल्लेख ऊपर हो चुका है। उन्ही की भाँति महाप्रभु जगन्नाथ मदिर के चारो ओर वैष्णवो के भी पर्वों, त्योहारो और आचारो की ऐसी ही दीर्घ परपरा और शृखला थी जो गाँवो तक फैली हुई थी। जन्माष्टमी के दिन कृष्णजन्म, कस का क्रोध (जिसे मारने के लिए कृष्णावतार हुआ था), देवकी की विवशता, वसुदेव का कारागार से भागना आदि दृश्य लोगो को दिखाये जाते थे। कृष्ण के अन्य महान् कृत्य, उनकी वीरता इत्यादि के दृश्य अन्य पर्वों के दिन प्रदर्शित किये जाते थे। इन अभिनयो में काव्यमय भाषण और हास्यपूर्ण कथोपकथन भी होते थे जो इन्हे सजीव बना देते थे। इससे नाटक का वह रूप जो अभी तक अविकसित अवस्था में था, शनै -शनै सुस्थापित हुआ।

पात्रो का परिचय देने में इस समय तक के नाटककार "नाट्यशास्त्र" का अनुगमन करते थे और सस्कृत नाट्य-कला द्वारा निर्देशित होते थे। इसलिए इन नाटको के अभिनय में अनेक असाध्य प्राविधिक कठिनाइयो का सामना करना पडता था जो अनुभवो के द्वारा भिन्न-भिन्न विकास-स्तरो पर कम होती गई। पडोसी राज्यो की सस्कृति, उनके विकास तथा नाटक के क्षेत्र में उनकी सफलता ने भी अपना प्रभाव डाला तथा भावो के आदान-प्रदान और अनुकूलता के द्वारा एक दूसरे के अनुभव का लाभ उठाया। एक प्रदेश के लोगो द्वारा किसी नाटक के अभिनीत होने के समय दूसरे प्रदेश के नाटककार, अभिनेता और आलोचक आमत्रित किये जाते थे ताकि उस सबध में उनकी राय ली जा सके। इस प्रकार आपस मे सद्व्यवहार और भावो के आदान-प्रदान द्वारा उत्कल का नाट्य साहित्य बहुत आगे बढ गया।

विकास के इस स्तर पर कपिलेन्द्र देव, पुरुषोतम देव और प्रतापरुद्र आदि सूर्यवशी सम्राटो के राजत्वकाल में प्रतिभासपन्न कलाकारो द्वारा नाट्य और अभिनय कला पर्याप्त विकसित हुई। ये सम्राट् नाट्य कला के महान् पोषक थे। पहले तो नाटक की विषय-वस्तु महाग्रन्थो और पुराणो मे ली जाती थी लेकिन ये राजा शाति के समय अपनी सेना के सदस्यो द्वारा अपनी विजय-यात्राओ को नाटक के रूप मे प्रदर्शित करने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। इस प्रकार प्रहसन या मूक

की जाती थी। उनमें बहुत अधिक गीत होते थे। अनेक अवसरो पर, सामाजिक घटनाओ पर उपहासात्मक आलोचनाएँ भी होती थी जो इन "यात्राओ" के धार्मिक ढाँचो के बीच रख दी जाती थी। इन यात्राओ ने कभी भी जीवन के अनुकरण का प्रयत्न नही किया। वे केवल गीतो, नृत्यो, हास्यमय चुटकुलो और वाक्पटु कथोपकथनो द्वारा ग्रामीण श्रोताओ के मनोरजन का प्रयत्न करती रही ताकि लोग आसानी से समझ सकें। उचित प्रदर्शन के लिए अनेक अभिनेताओ की आवश्यकता होती थी किन्तु उनकी वेशभूषा वहुत पुराने ढग की थी और वाद्ययत्र तो और भी अधिक भद्दे ढग के होते थे। इसलिए उस दल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में सहूलियत होती थी।

वीरकिशोर देव के समय १८वी शताब्दी के मध्य में "गौरीहरण" नामक एक नाटक पुरी मे लिखा और खेला गया था। इन नाटककारो ने हिंदी गीतो का भी समावेश अपने नाटको में किया। वे कदाचित् अपने तत्कालीन मरहठा शासक को प्रसन्न करने के लिए ही ऐसा करते थे। सन् १९३४ ई० में एक दूसरा नाटक "पद्मावती-हरण" ढेंकानाल के एक नाटककार द्वारा लिखा गया। इनके अतिरिक्त नाटककारो के इतिहास में रघुनाथ परीछा और जगमोहन लाला ये दो प्रसिद्ध नाम है। श्री परीछा का 'गोपीवल्लभ नाटक सन् १८६८ ई० में प्रकाशित हुआ था। सन् १८७० में इन्ही का एक दूसरा "वावाजी" नाटक नशीली वस्तुओ के विरोध में लिखा गया था। उसके पीछे एक सामाजिक उद्देश्य था। इस प्रकार १८०० ई० तक नये और प्रगतिशील नाटको के लिए रास्ता वन चुका था।

तव श्री रामशकर राय का काल आया जिन्होने सच्चे अर्थ में नाटको को उपस्थित किया। इस समय के ओडिया नाटको की एक विशेषता यह है कि दो विभिन्न प्रकार के नाटक एक दूसरे के साथ दो विभिन्न प्राकृतिक भागो में विकसित होते रहे। उत्तरी ओडिशा, कटक, पुरी और वालेश्वर आदि समुद्रतटीय जिले प्रगतिशील किस्म के नाटको के आकर्षण में आये। दक्षिणी ओडिशा के गजाम जिले और उसके आस-पास के मजूषा, चिकिटि पारला आदि ओडिशा के स्थानो में कालिदास के सस्कृत नाटको के नमूने के तौर पर, नाट्यसूत्र को अपना मार्गदर्शक मानकर, नाटक रचे जाते रहे। इन दोनो क्षेत्रो में जो नाटक विकसित हुए वे, रचना और विषय की दृष्टि से, एक दूसरे से नितान्त भिन्न थे। उत्तरी भाग के नाटककार, जिनके अगुआ रामशकर थे, साधारण जनता की भापा का प्रयोग करते थे और उसमें दैनिक जीवन के हास्यपूर्ण दृश्यो तथा जनसाधारण के भावो का समावेश करते थे। जिन गाँवो और शहरो में वे रहते थे उनमें पाये जानेवाले जीवन को उन्होने सच्चे रूप में प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त नाटको के लेखक स्वय साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। इसलिए उन्होने अपनी चिताधारा को अपने नाटको में दरशाया। अत उन नाटको के प्रदर्शित होने पर दर्शक अपने जीवन के सभी भागो को इतनी सजीवता के साथ प्रदर्शित देखकर मत्रमुग्व हो जाते थे। इनका नाटक सर्वप्रथम कोठपदामठ के तत्कालीन महन्त श्री रघुनाथ पुरी गोस्वामी जी की सहायता से अभिनीत हुआ। रामशकर वावू प्रत्येक वर्ष वसन्तपचमी के दिन एक नये नाटक का अभिनय इसी कोठपदा मच में कराते

( ऊपर ) सञ्चालक भवन तथा राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस
( नीचे ) श्रीयुक्त महतावजी राष्ट्रभाषा प्रेस की नई मिल्ही-मशीन चालू कर रहे हैं



# ओड़िशा में कृषि की उन्नति के विभिन्न उपाय

## सर्व श्री गोपालचन्द्र दास, विश्वनाथ साहु, रामसुखसिंह

हजारो वर्ष पहले उत्कल एक समृद्धिशाली राज्य था। पुरी का जगन्नाथ मदिर, भुवनेश्वर का लिंगराज मदिर, कोणार्क, खडगिरि, उदयगिरि की गुफाएँ इस समृद्धि के मूक साक्षी हे। मादला पाजि के अध्ययन से यह पता चलता है कि गग वश और उसके बाद के सूर्य वश का राज्य-काल उत्कल के इतिहास में स्वर्ण युग था। उस समय यहाँ शिक्षा, कला, शिल्प, व्यापार और खेती की तूती बोल रही थी। अनग भीमदेव के समय भूमि का लगान ३५ लाख माढ[1] सोना और जगल तथा व्यापार से कुल वार्षिक आय ४७ लाख ८८ हजार माढ सोना था। इस भूमि-कर (३५ लाख माढ सोने) की कीमत ३ करोड ६ लाख और १० हजार रुपये के बराबर होती है। खाद्य सामग्री की देश मे बहुलता थी। अनाज, फलादि खूब अधिक पैदा होते थे। ४ काहाण कौडी वर्तमान रुपये के बराबर थी अर्थात् १ पण[2] कौडी लगभग १ पैसे के बराबर थी।

एक सेर कटकी चावल की कीमत १० कडा कौडी थी और एक सेर रुई की कीमत १ पण १० गडा कौडी। एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि घोडे और गायें इतनी सख्या में थी कि एक घोडे की कीमत सिर्फ दो जिता थी। गाय-बैल तो कीमत देकर खरीदे ही नही जाते थे। लोग जीवन की सारी चीजें विनिमय द्वारा प्राप्त करते थे।

मुकुन्द देव के हाथ से राज्यसत्ता छिनकर सुलेमान के हाथो चली जाने के बाद से ही ओडिशा का आर्थिक पतन आरभ हुआ। सन् १५७८ ई० में मसुमखाँ ने ओडिशा को जीतकर अकबर के साम्राज्य में मिलाया। टोडरमल ने उत्कल का बन्दोबस्त कर मालगुजार जमीदारो की सृष्टि की। सपूर्ण ओडिशा रियासत तथा मोगलबदी ऐसे दो भागो में विभक्त हुआ। बाद में मराठो के शासन ने ओडिशा की खेती और आर्थिक अवस्था को और भी दुर्बल बना दिया। बर्गियो के भय से लोग काँप उठते थे और डर के मारे ठीक तरह से खेती न कर पाते थे। अच्छा खाना-पहनना तथा घर बनाकर रहना भी उनके लिए कठिन हो गया था। सन् १८०३ ई० में ओडिशा अग्रेजो के हाथ में पडा। जमीदारो की सृष्टि इँगलिश शासन की विशेष बात थी। इनके शासन में भूमि के असली मालिक जमीदार बने। अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण उत्कलवासी बारबार अकाल के शिकार बनते थे। सन् १८०६ ई० से सन् १८६७ ई० तक लगातार एक-दो

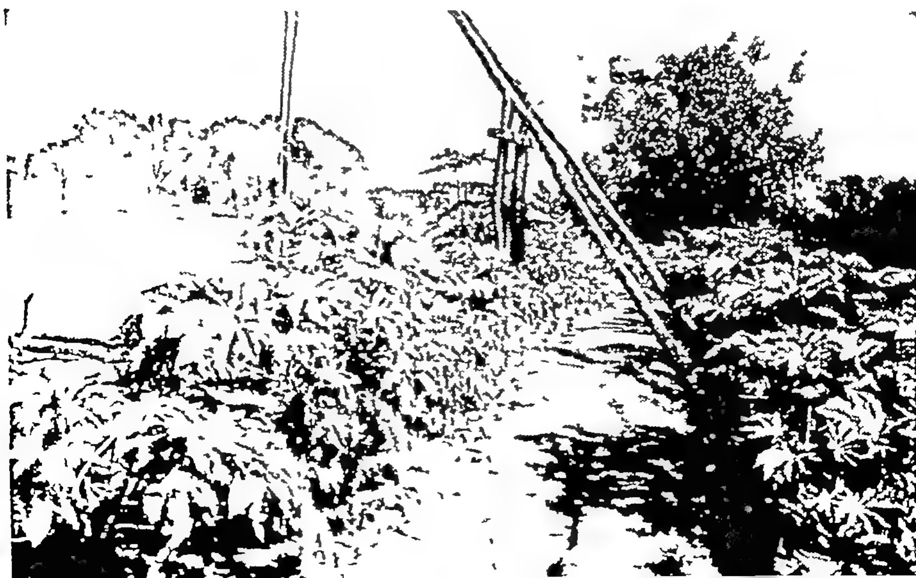
---

१   १ माढ़ = आधा भर।

२.   ४ कडा = १ गडा।
२० गंडा = १ पण।
१६ पण = १ काहाण।

# ❁ उत्कल में कृषि की उन्नति ❁

ओडिशा में नहरों के सहारे खेनी की उन्नति के लिये सिचाई की व्यवस्था



## ❋ उत्कल में कृषि की उन्नति ❋



( बगल में ) आदर्श गेहूँ की खेती का एक नमूना

( नीचे ) धान गवेषणा केन्द्र, कटक में प्रदर्शित आदर्श कृषि क्षेत्र





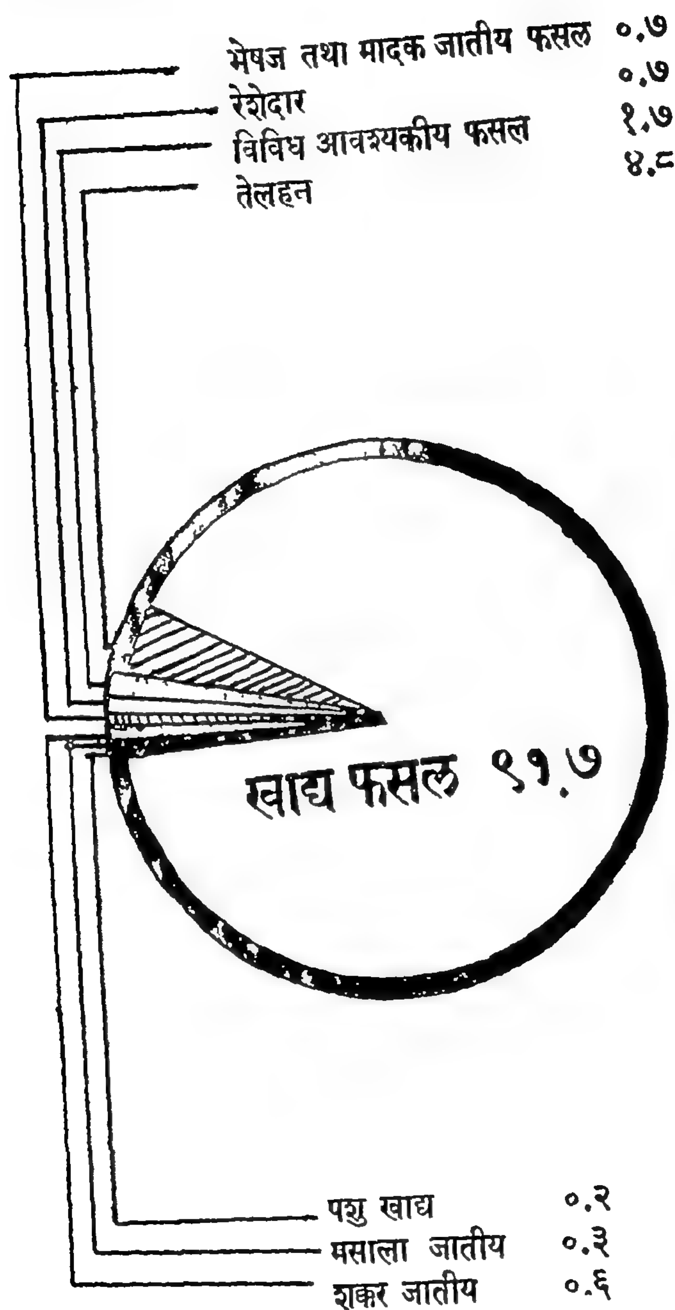
( बगल में ) धान की कटाई ( प्राचीन पद्धति से )

( नीचे बायीं ओर ) धान की कटाई ( आधुनिक प्रणाली से )

( नीचे दायीं ओर ) ईख की पेराई






भेषज तथा मादक जातीय फसल ०.७
रेशेदार ०.७
विविध आवश्यकीय फसल १.७
तेलहन ४.८
खाद्य फसल ९१.७
पशु खाद्य ०.२
मसाला जातीय ०.३
शक्कर जातीय ०.६

प्रकृति को नियन्त्रित करने के लिए विज्ञान मनुष्य को नये-नये साधन और सुविधा-सामग्री देता जा रहा है। विज्ञान की सहायता से मनुष्य देश को उन्नत बनाने में पूर्ण समर्थ हुआ है। नदी की बाँध-योजना तथा सिचाई-व्यवस्था द्वारा बाढ और सूखे पर एक तरह से नियत्रण-सा हो गया है। महानदी की हीराकुद बाँध-योजना और शालदी बाँध-योजना द्वारा बाढ और सूखे से ओडिशा के हरे-भरे अचल की काफी हद तक रक्षा हो सकेगी।

(२) **जनसख्या-वृद्धि**—विश्व की जनसख्या अनाज के उत्पादन की अपेक्षा अधिक द्रुतगति से बढती जा रही है। विश्व-विख्यात अर्थशास्त्री मालथूस ने सबसे पहले ससार को चेतावनी दी थी कि एक दिन जनता खाद्याभाव का अनुभव करेगी। लेकिन उस वक्त लोगो की यह कल्पना ही नही थी कि एक दिन पृथ्वी जनभाराक्रात हो जायेगी। लोगो का खयाल था कि गरीबी, दुर्दशा महामारी तथा युद्धो से लोग मरते रहेंगे अत पृथ्वी की जनसख्या न तो बढेगी और न घटेगी। परन्तु विज्ञान की उन्नति, स्वास्थ्यरक्षा की योजनाएँ, विश्व-शान्ति के प्रयत्न लोक-सख्या और लोकसमाज की आयु में वृद्धि करती जा रही है। ओडिशा की जनसख्या-वृद्धि का इतिहास देखने से मालूम होता है कि सन् १८९१ ई० में इसकी आबादी कुल ९४ लाख थी। सन् १९५१ ई० में यह १ करोड ४६ लाख हो गई। इन साठ सालो मे ५२ लाख तक जन-सख्या बढ गई। ओडिशा के विभिन्न स्थानो पर जनसख्या की अधिकता की मात्रा सारिणी न० २ में दी गई है।

जनसख्या

सारिणी न० २—

| अचल | जिला | क्षेत्रफल (वर्गमील) | कुल जनसख्या (हजार के हिसाब से) | प्रति वर्गमील की जनसख्या |
|---|---|---|---|---|
| समुद्रतटीय | कटक | ४,२१० | २५२९ | ६०० |
| | बालेश्वर | २,३१८ | ११०६ | ४७७ |
| | पुरी | ४,०४३ | १५७० | ३८८ |
| | गजाम | ४,७२४ | १६२६ | ३०४ |
| उत्तरीय मालभूमि | मयूरभज | ४,०३४ | १०२९ | २५५ |
| | सुन्दरगढ | ३,७५७ | ५५२ | १४७ |
| | केउंझर | ३,२०६ | ५५८ | १८३ |
| महानदी की उपत्यका | सबलपुर | ६,७३५ | १३०१ | १९३ |
| | ढेकानाल | ४,१६१ | ८३९ | २०१ |
| | बलागिर पाटना | ३,४७८ | ९१८ | २६३ |
| पूर्वीघाट पर्वत | फुलबाणी | ४,०२० | ४५६ | ११० |
| | कोरापुट | ९,८४४ | १२७० | १२९ |
| | कलाहाडि | ४,३८८ | ८५९ | १९६ |
| | | ५९,०१८ | १४,६४४ | २४९ |

भारत के अन्य प्रान्तो की अपेक्षा ओडिशा में कल-कारखानो की सख्या कम है और शहरातियो की अपेक्षा देहातियो की सख्या अत्यधिक है। बबई राज्य के २१ प्रतिशत नगरो के ७९ प्रतिशत आदमी देहातो में रहते है। लेकिन ओडिशा में ४ प्रतिशत शहरो और ९६ प्रतिशत लोग देहातो में रहते है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ५६ प्रतिशत, फ्रास, कनाडा तथा जापान में ५० प्रतिशत लोग शहरो में रहते है। ओडिशा में ९६ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर करते है। सारिणी न० ४ में भारत के अन्य प्रान्तो के शहरो तथा देहातो की जनसख्या का अनुपात दिया गया है।

**शहरी और ग्राम्य जनसख्या का अनुपात**

**सारिणी नं० ४—**

| अचल | अनुपात | |
|---|---|---|
| | नगरनिवासी | ग्रामवासी |
| बबई | २० ९ | ७९ १ |
| मद्रास | १३ ६ | ८६ ४ |
| उत्तर प्रदेश | ११ २ | ८८ ८ |
| मध्य प्रदेश | ९ ७ | ९० ३ |
| पश्चिमी बगाल | ७ ३ | ९२ ७ |
| ओडिशा | ४ ० | ९६ ० |

खाद्य-समस्या के समाधान और कृषि-अर्थनीति की समृद्धि के लिए कृषि उन्नति-योजना ओडिशा की मुख्य समस्या है।

(३) एक-फसली खेती—ओडिशा की कृषि-अर्थनीति की दुरवस्था का प्रथम कारण यह है कि ओडिशा का किसान सिर्फ खाद्य फसल की खेती में अपनी सारी शक्ति लगा देता है, आर्थिक फसल के ऊपर वह उतना ध्यान नही देता। धान ओडिशा का प्रधान खाद्य तथा मुख्य अर्थकरी फसल है। ओडिशा की कुल १ करोड २५ लाख एकड कृषिभूमि में से एक करोड लाख एकड भूमि में खाद्य फसल पैदा की जाती है। इस १ करोड ८ लाख एकड भूमि में से ९३ लाख एकड में धान तथा बाकी १५ लाख में अन्यान्य फसलें होती है। अर्थात् ८१ प्रतिशत भूमि में खाद्य फसल और १९ प्रतिशत भूमि में मक्का, ज्वार, मॉडिया, बाजरा, साग-सब्जी तथा दालीय फसलें उपजाई जाती है। सारिणी न० ५ में ओडिशा की विभिन्न फसलो के क्षेत्रफल दिये गये है।

सारिणी नं० ५ का शेष

| फसल की श्रेणी | फसल | क्षेत्रफल (एकड) | कुल क्षेत्रफल और सैकडा एकड |
|---|---|---|---|
| मादक और भेषज | काफी<br>तम्बाकू<br>गाँजा<br>अन्यान्य | १३५<br>३२,६७५<br>२५०<br>६,८३१ | ३९,८९१ |
| गो चारा | गो चारा | १२,६७१ | १२,६७१ |
| अखाद्य फसल | अखाद्य फसल | १२३,३८३ | १२३,३८३ |

**प्रचलित खाद्य**—शरीर-रक्षा और दैनिक आवश्यकीय कार्य-साधन के लिए खाद्य का मुख्य उद्देश्य शक्तिदायक होना है। इस शक्ति को 'कालोरी' स्केल से नापा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य-परिषद् के मत से प्रति मनुष्य को २८०० से ३००० कालोरी शक्ति प्रदान करनेवाला भोजन करना चाहिये। भारत की जलवायु की दृष्टि से प्रतिदिन २६०० कालोरी शक्ति दे सकनेवाला भोजन आवश्यक है। इस खाद्य में देह की मास-पेशी के गठन और क्षतिपूर्ति के लिए प्रोटीन, तथा देह को शक्ति देनेवाले श्वेतसार और तैल्य पदार्थ की आवश्यकता पडती है। इन चीजों के सिवा प्राय १९ प्रकार के लवणाश चाहिये। शरीर की हड्डियो के निर्माण के लिए 'कैलशियम' और 'फासफोरस', रक्त के लाल अणुओ के निर्माण के लिए लौह की आवश्यकता होती है। शरीर की तन्दुरुस्ती और कर्मठता के लिए 'विटामिन' आवश्यक होते हैं। किन्तु कौन-सा पुष्टकारी पदार्थ कितना आवश्यक है, यह व्यक्ति पर निर्भर है। एक सामान्य सवल और स्वस्थ आदमी के लिए प्रतिदिन ४० से ६५ ग्राम 'प्रोटीन', ४०-५० ग्राम तैल्य पदार्थ, ३-१० ग्राम कैलशियम, ४-१५ ग्राम फासफोरस एव २० मिलीग्राम लौह धातु की आवश्यकता है। इसके साथ ३००० इकाई विटामिन 'ए', ३०० इकाई विटामिन 'बी', तथा ३०-५० मिलिग्राम विटामिन 'सी' आवश्यक है। यह सव पदार्थ एक ही खाद्य में नही मिलते। अत प्रत्येक आदमी के लिए एक ही प्रकार का खाद्य न होकर नाना प्रकार के खाद्यों का सम्मिश्रण होना चाहिए। भारतीय जलवायु में एक आदमी के दैनिक जीवन धारण के लिए निम्न मात्रा में खाद्य आवश्यक है—

| | |
|---|---|
| १—शस्य जातीय | |
| (क) चावल | १० औंस |
| (ख) दूसरे अनाज | ५ ,, |
| २—दाल | ३ ,, |
| ३—शर्करा | २ ,, |

इस वचत और अभाव की मात्रा सारिणी न० ८ में दी गई है। हमारी इस बची हुई शक्ति का उपयोग पडोसी प्रदेशो द्वारा होता है। ये प्रदेश शिल्प या व्यापार के केंद्र है और पाट, गन्ना, कपास जैसी अर्यकरी फसलें पैदा किया करते है।

**ओडिशा की विभिन्न खाद्य फसलो की वार्षिक आय**

**सारिणी न० ७—**

| क्रम सख्या | फसल | कुल | प्रतिएकड आय (पौंडो में) | कुल आमदनी (टनो में) | (टनो में) |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | धान | | | | |
| | शारदा धान | ८,२२५,५०० | ८०० | २,७१९,१७३ | |
| | विआली धान | १,००३,१०० | ६४० | ३२,६४१ | |
| | डालुआ धान | ७९,३०० | ७२० | २३५,९३४ | |
| | कुल | ९,३०७,९०० | २,१६० | ३,०८७,७४८ | ३,०८७,७४८ |

**सारिणी न० ८—**

| फसल | आय का कुल परिमाण | खाद्य के लिए | खाद्य की कुल आवश्यकता का परिमाण | | | बचत (+) अभाव (−) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | लोगो के लिए | | कुल | |
| चावल | ३,०८७<br>—२७९ | | | | | |
| दाल | १७६ | | | | | |
| सब्जियाँ और फल | २५२ ५<br>११०<br>९० | | | | | |

प्रति एकड अर्यकरी फसल का मूल्य धान की फसल के मूल्य से वहुत अधिक होता है, अत ये प्रदेश थोडे मूल्य में ओडिशा से धान सग्रह कर लेते है, साथ ही खाद्य फसल के वदले अर्यकरी फसल पर अधिक भार देकर धनी वन वैठे है। इधर ओडिशा का किसान सिर्फ धान की फसल पर अधिक वल देता है, अर्यकरी फसल में वह उतनी श्रद्धा नही रखता। अत अपने गुजारे के लिए वह धान वेचने को वाध्य होता है। प्रतिमन धान की कीमत प्रतिमन पाट, गुड, चीनी, कपास की

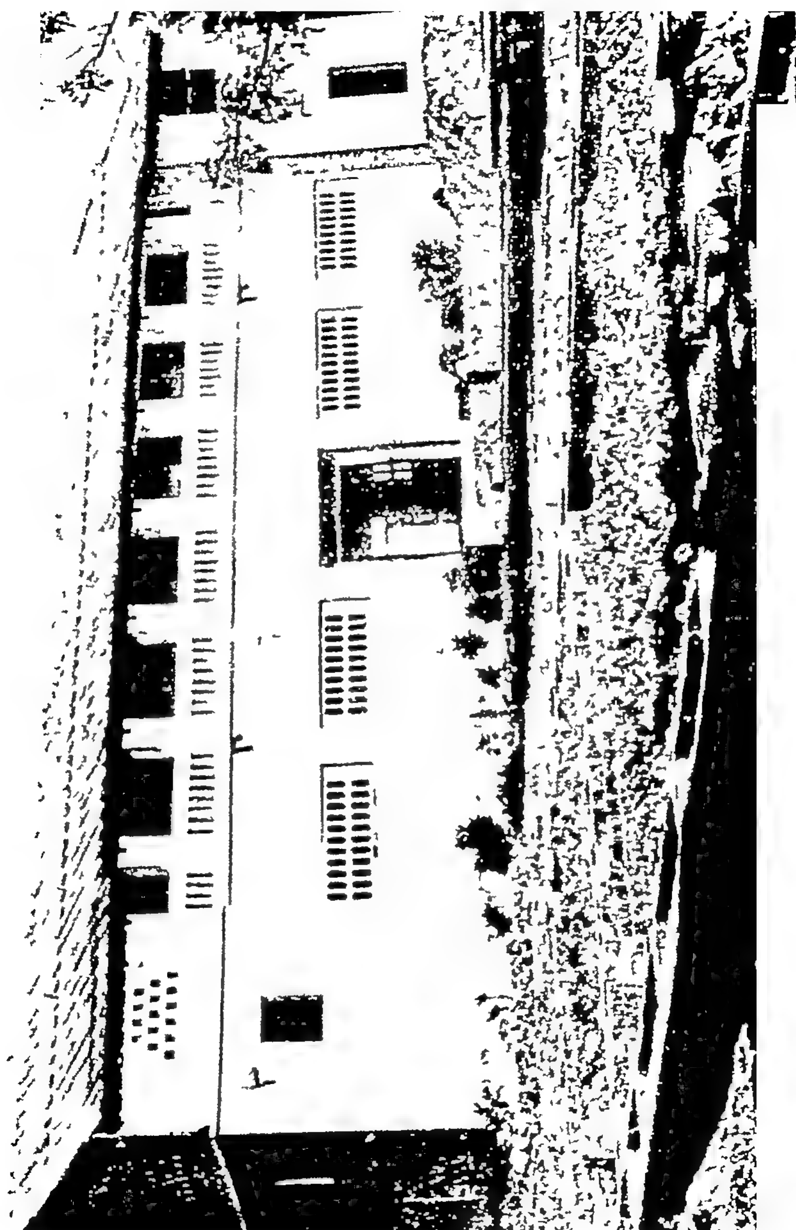
(४) **भूमि की समस्या**—भूमि की समस्या कृषि-अवनति का दूसरा कारण है। समाज में विप्लव का भी प्रधान कारण यही है। प्रति युग में पूंजीवाद के विरुद्ध कुछ न कुछ आन्दोलन चलता रहा है। साम्यवादी रूस ने राज्य के सामन्त, जमीदार तथा खेती न करनेवाले स्वत्वाधिकारी-वर्ग को क्रान्तिकारी मार्ग से लोप करके भूमि को राष्ट्रीय सपत्ति बना लिया है। जमीन की समस्या से ही चीन के च्याग-काई-शेक का शासन लुप्त हुआ है। चीन के शासक माउत्से तुग के शासन में खेती न करनेवाले जमीदार या मध्य स्वत्वाधिकारी-वर्ग के लिए स्थान ही नही है। कृषि की वास्तविक उन्नति तथा सगठन करने के लिए भूमि को राष्ट्रीय सपत्ति बनाकर तथा कृषको में उसे वितरित कर सर्वनिम्न और सर्वोच्च भूमि के परिमाण को निर्धारित कर देना अत्यावश्यक है। भूमि तथा कृषि की शोचनीय दशा के कारण भारत मे इस व्यवस्था की शीघ्रातिशीघ्र आवश्यकता है। विभिन्न देशो की कृषि-समृद्धि का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि यह भूमि-सस्कार देश को आगे बढाने मे बहुत सहायक हुआ है। साथ ही, आये दिन जमीदारो एव जमीन के सच्चे खेतिहरो में होनेवाले झगडो का अधिकाश मे लोप हो गया है। सन् १८२२ ई० मे इगलैंड मे छोटे-छोटे किसानो के हाथ भूमि हस्तातरित की गई थी। एक किसान के लिए कम से कम १४ एकड भूमि की व्यवस्था की गई थी। डेनमार्क में बडी-बडी जमीदारियाँ खरीदकर छोटे-छोटे किसानो मे बाँट दी गई है।

जापान मे सन् १८६८ ई० में सामन्तवाद का एकदम लोप कर दिया गया था। वहाँ सन् १९१० ई० तक आधी भूमि कृषको के हस्तगत हो गई थी। उपर्युक्त देशो मे इन्ही भूमि-सुधारो से केवल वर्ष में ३-४ फसलें क टी जाती है और उनका उत्पादन-परिमाण भी बहुत बढ गया है।

**कृषि-उन्नति की प्रणाली**—स्वतत्रता के बाद से देश की सामूहिक समृद्धि हर एक के चित्त का विषय बन गई है। समाजवादी ढाँचे में देश को सगठित करके जनसाधारण का जीवन-स्तर ऊँचा करने के लिए पचवर्षीय योजना आरभ हुई है। पहली योजना में कृषि-उत्पादन को प्राथमिकता दी गई थी। दूसरी योजना में शिल्पोन्नति पर जोर दिये जाने पर भी कृषि के महत्त्व को कम नही किया गया है। कृषि और शिल्प का समान विकास ही समाज और देश को उन्नत कर सकता है।

हमारे पडोसी देश चीन ने शिल्पोन्नति पर जोर देने के साथ कृषि-उत्पादन पर भी यथेष्ट ध्यान दिया है। इसी से पिछले दस वर्षों में वह कृषि-उत्पादन मे काफी आगे बढ गया है। चीन देश के समान ही भारत भी एक कृषि-प्रधान देश है। कृषक की उन्नति ही देश की उन्नति है। कृषि ही शिल्प-उद्योग के लिए कच्चा माल जुटाया करती है। अत नये ओडिशा के सगठन मे कृषि की उन्नति का महत्त्व सर्वप्रथम है। ओडिशा के शिल्प-विकास में अर्थ तथा कच्चे माल बडे बाधक बने हुए है। अन्य देशो के साथ समृद्धिशील होने के लिए भारत की शिल्प और कृषि-विकास योजना का महत्त्व अपरिहार्य है।

यदि कृषि-विकास पर मुख्य रूप से ध्यान देकर बल लगाया जाय तो शीघ्र ही ओडिशा उन्नति के पथ पर अग्रसर हो जायगा।



धान की खेती का क्षेत्रफल घटा देने से विभिन्न अर्थकरी फसलें फल, साग-सब्जी, तेलहन, ततुफसल, गो-जातीय चारो की फसल, मादक द्रव्य जातीय फसल की खेती के लिए यथेष्ट भूमि मिल जायेगी। बाढ आने और सूखा पडने पर केवल धान की कृषि के कारण कृषक की जो आर्थिक दुर्दशा होती है, उससे वह एक हद तक त्राण पा जायेगा। धान का क्षेत्रफल कम कर देने पर भी वैज्ञानिक प्रणाली की सहायता से प्रति एकड उपज की वृद्धि के साथ-साथ धान की वर्तमान उपज की मात्रा कायम रखी जा सकती है।

सन् १९५६ ई० में चीन देश की प्रति एकड उपज १५ हडरवेट थी। ऐसी कल्पना है कि उस देश में कृषि-विकास की योजना के अनुसार १९६७ ई० में प्रति एकड धान की उपज स्थान-विशेष में २४, ३० और ४८ हडरवेट होगी। इस हिसाब के अनुसार सन् १९५६ ई० में चीन की कुल उपज १८४ मिलियन टन थी। सन् १९६७ ई० मे चीन कुल ४००० मिलियन टन धान पाने की आशा करता है। इस योजना के अनुसार चीनी कृषक बाढ, सूखा तथा तूफान आदि प्राकृतिक विपत्तियो से भी त्राण पाने में समर्थ हुआ है। चीनवासी आशा रखते हैं कि वर्तमान प्रतिव्यक्ति ६ हडरवेट अनाज की उपज के बदले १० हडरवेट अनाज की उपज होगी अर्थात् प्रतिव्यक्ति ४ हडर अधिक आमदनी होगी।

**फसल योजना** (Crop Planning)—धान का क्षेत्रफल कम करने और विविध फसलो की खेती (Diversified Farming) का अवलवन करने के लिए फसल की योजना पहले जरूरी है। मिट्टी, जलवायु, प्रकाश, गर्मी, एव स्थानीय दशा के ऊपर फसल निर्भर करती है। सभी फसलें सभी स्थानो में नही होती। इसी दृष्टि से सयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपने देश को पाँच भागो मे विभक्त करके प्रत्येक अचल के लिए क्रमानुयायी फसल की खेती, खाद, खली, सार का प्रयोग, शस्य सरवराह योजना अलग-अलग कर रखी है। इसी से वह देश कृषि-जातीय व्यापारिक पदार्थों मे इस समय बहुत धनी है। परन्तु ओडिशा मे इस तरह के प्राकृतिक विभाग से धारावाहिक फसल की योजना नही की गई है।

**ओडिशा प्रदेश का प्राकृतिक विभाग एव फसल योजना**—प्राकृतिक गठन, जलवायु तथा मिट्टी के अनुसार ओडिशा को निम्न चार भागो में विभक्त किया गया है —

(१) उत्तरीय मालभूमि या भूयाँ पीढ अचल।
(२) महानदी उपत्यका या झाडुआ अचल।
(३) पूर्वीघाट पार्वत्य अचल।
(४) समुद्री तट का समुद्री अचल।

**(१) उत्तरीय मालभूमि**—मयूरभज, वणाई, गागपुर, बामडा, पाललहडा, केन्दुझर तथा तालचेर की ब्राह्मणी नदी का उत्तरी अचल इस विभाग के अतर्गत है। यह भाग लौह धातुओ से युक्त और पहाडो से पूर्ण है। बीच बीच में गेगुटी पत्थरो से भरी हुई खानें भी मौजूद हैं। अत इस भूभाग में लोहा, चूना, काली भुगुनी और खडिया पत्थर काफी मिलता है। दक्षिणी-पश्चिमी

पुट, पार्लाखेमिडी माल, फुलवाणी और वालिगुडा सबडिविजन और कालाहाँडी का धर्मगड तथा सदर डिविजन इस इलाके में पडते है। दक्षिणी-पश्चिमी मौसमी वायु तथा बगोपसागर एव अरब-सागर की शाखा से कोरापुट, वालिगुडा एव कालाहाँडी जिले के प्रदेशों में वर्षा होती है इसलिए इस अचल मे पहले वर्षा होती है। उत्तरी-पूर्वी मानसून से इलाके में सामान्य वर्षा होती है।

इस अचल की मिट्टी साधारणत गेरुई, लाटराइट है। इसका रग लाल या गेरुआ है। तइला और पदर मिट्टी पथरीली और कुछ ठोस होती है। आदिवासी इसी में पोढचास करते है, अत यहाँ की मिट्टी धुलकर वालू हो गई है। लाटराइट मिट्टी अनुपजाऊ है। इसमें वनस्पति खाद्य वहुत कम मात्रा में रहता है और पोटास या चूना विलकुल नही है।

(४) **समुद्रतटीय भाग**—इसमें कटक, पुरी, वालेश्वर तथा गजाम के इलाके पडते है। यह अचल सुवर्णरेखा, वूढावलग, सालदी, वैतरणी, ब्राह्मणी, महानदी और उसकी शाखाओ तथा रिषिकुल्या आदि नदियो द्वारा लाई हुई मिट्टी एव समुद्री बालू से वना है। किसी समय समुद्र पूर्वीघाट के पहाडो के नीचे था। इस भूभाग के पहाड एक समय द्वीप के समान थे। इस अचल को डालीजोडा, मोगल-वदी और तलमाल में विभक्त किया गया है।

**डालीजोडा**—यह पार्वत्य और वन्य प्रदेश है। यहाँ की मिट्टी लाल और रुगुडिया है। मोगलवदी की मिट्टी दोरसा, वालुई अथवा मटाल है। तलहटी की मिट्टी मटाल और पटुपडा है।

**उत्तरीय मालभूमि**—यह अचल ओडिशा के सारे क्षेत्रफल का एक चौथाई अश घेरे हुए है। इसमें प्राग् ऐतिहासिक आदिवासी अधिकता से वसे हुए है। इन आदिवासियो की डाही और विरिंगा खेती ने पहाडी और पार्वत्य अचल को मिट्टी से शून्य कर दिया है। वैतरणी, ब्राह्मणी और महानदी की तलेटियाँ वालुका-पूर्ण है। प्रतिवर्ष वाढ प्रलय ढाती है।

मिट्टी का सरक्षण खेती की भूमि के विनियोग का उत्तम मार्ग है। उत्तरी माल-अचल लोहे और चूने से पूर्ण होने के कारण ओडिशा का एक शिल्पप्रधान भाग वन सकता है। शिल्प-अचल के लोगो के लिए खाद्य, साग-सब्जी, फल और दूध आदि जुटाना इस प्रान्त की खेती का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। धान तथा सावाँ आदि अनाजो की खेती घटाकर गोचारण और दूध व्यवसाय के लिए तृणभूमि की खेती (Grass Land Farming) को मुख्य स्थान देना चाहिए। घास मानव-सभ्यता और वृष्टि का प्रधान प्रतीक है। सावाँ, कुअेरी और कागु घास से पैदा हुए है। इस जाति की घास के वीज या रस मानव के खाद्य तथा नरा और गज चारे के रूप में व्यवहृत होते है। पृथ्वी की जलवायु के अनुसार विभिन्न प्रकार की घास मानव-सभ्यता और वृष्टि का प्रतीक है। प्राचीनतम महाद्वीप एशिया की भारतीय और चीनी सभ्यता का प्रतीक 'धान' है। यूरोपीय महाद्वीप और भूमध्यसागरीय सभ्यता का प्रतीक गेहूँ है तथा नई दुनिया (अमेरिका) का प्रतीक मक्का है।

सूर्य सारी शक्ति का भडार है। घास हमारे लिए इस शक्ति के व्यवहार का साधन है। हम इन परिवर्तित शक्ति को शस्य, दूध और मास मे पाते है। इस शक्ति के वल से ही हम रोज नाना प्रकार के काम करने में समर्थ होते है। मनुष्य को डेढ घटे तक चलने, आधे घटे तक काठ

को कोमल वनाये रखती है, पहाड-पर्वतो की मिट्टी को बाँधे रहती है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के हाइयो राज्य में परीक्षा करके देखा गया है कि एक वर्ष मे दोरस मिट्टी की एक एकड भूमि में मक्का की खेती करने से ९९ ३ टन मिट्टी घुल जाती है, लेकिन उसी भूमि में घास की खेती करने से केवल ० ०२ टन मिट्टी घुलती है। साल भर में जो वर्षा होती है उसमें से प्रति सै० ४० ३ भाग पानी, धान और मक्का की खेती से, वह जाता है किन्तु घासवाली भूमि में से सिर्फ ४ ८ भाग पानी वह पाता है। धान, सावाँ, कुअेरी, कोशला और मक्का के खेतो में ऊपर की एक इच भूमि डेढ साल के भीतर क्षयग्रस्त हो जाती है। किन्तु घास के खेतो में से एक इच मिट्टी के क्षय होने में ७५०० वर्ष लगेंगे। मक्का-जातीय फसलो के खेतो एव घास के खेतो से प्रतिवर्ष कितनी मिट्टी घुल जाती है तया वर्षा का कितना अश नदी-नालो में वह जाता है, यह सारिणी न० ११ में दिखाया गया है।

घास की खेती ही मृत्तिका-सरक्षण का विशेष साधन है। यही, मिट्टी से पेड-पौधो के पुष्टि-कारक पदार्थों को, वर्षा द्वारा घुल जाने से वचाती है। घास की जड वडी पतली होती है, किन्तु परीक्षा द्वारा देखा गया है कि एक घास के पौधे की सारी सूक्ष्म जडो को एक मे जोड देने से वह ५ मील से भी ज्यादा लम्वी वन जाती है। इसी सूक्ष्म जड से एक प्रकार का लासा निकलकर भूमि को सीमेंट की तरह वाँध लेता है। इसी सूक्ष्म जड के कारण मिट्टी रवादार होकर खुरखुरी वनी रहती है। इससे भूमि मे पानी और हवा का प्रवेश अच्छी तरह हो जाता है। घास के सडकर मिट्टी मे मिलने से मिट्टी भुरभुरी और उपजाऊ वन जाती है। उपजाऊ भूमि ही अधिक अनाज देती है। वैज्ञानिक कारडन के मत में—Grassland Agriculture represents a definite advance towards stabilized agriculture It is not a reversion to pastoral practices It cuts across all phases of agricultural production and therefore commands a high degree of manurial ability घास की खेती के लिए तृण और छुई जाति की फसलें अधिक उत्तम है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में फेक्स, कॅटकीनील, राइतृण, दूव, जानसन नेपियर घास, जुआर आदि व्यवहृत होते है।

छुई जातीय फसलो में वरसीम, क्लोवर, वरगुडी वेलविटवीन, कुटुज गुआरा, भेज आदि याम आती है। उत्तर मालभूमि की मिट्टी और जलवायु मे होने योग्य घासो को चुनना होगा। घास और हरे-भरे मैदान के लिए विहन रखना वैज्ञानिक कौशल है। उत्तम गोचरभूमि और पुष्टिकर घास के लिए एक ही जाति की खेती न करके विभिन्न प्रकार की घासो और छुई जातीय फसलो को मिलाकर खेती करनी चाहिए। यह मिश्रण वैज्ञानिक तत्त्वो पर निर्भर करता है।

सिर्फ दूध के लिए ही नही, वकरी, भेंड और मुर्गी आदि के पालन के लिए गोचर-भूमि और घास की खेती अति आवश्यक है। उत्तरी माल अचल में आदिवासियो की अधिकता है। ये लोग वकरी, भेंड, सुअर और मुर्गी पालते है। घास की खेती द्वारा इन जीव-जतुओ का पालन-व्यवसाय खूब उनत हो सकता है। भेंड घास को अच्छी तरह खाती है। एक एकड चरागाह से ही प्रतिवर्ष भेंड का ७-८ मान प्राप्त किया जा सकता है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में परीक्षा करके देखा

विजली के सदुपयोग के लिए शिल्प उद्योग का प्रसार अत्यत जरूरी है। शिल्प उद्योग के लिए कच्चे माल को उत्पन्न करने की आवश्यकता है। पडोसी प्रदेशो के कृषि-शिल्प की उन्नति के लिए भी यदि हम ध्यान दें तो हमें रूई, चीनी, तेल, फल और साग-सब्जी तथा दुग्धजातीय शिल्प का विकास करना होगा। महानदी उपत्यका की मिट्टी तथा जलवायु इन फसलो की उत्पत्ति के लिए वहुत अच्छी है। अत वर्तमान प्रचलित फसल के वदले कपास, गन्ना, दालीय फसल, मक्का और ज्वार, आम, कमला, अमरूद फलजातीय फसल, विभिन्न साग-सब्जी एव घास की खेती (Grassland Farming) करनी होगी। सारिणी न० १२ में महानदी उपत्यका की प्रचलित खेती-पद्धति दी गई है।

### महानदी उपत्यका में प्रचलित कृषि-पद्धति

**सारिणी न० १२—**

| क्रम स० | भूमि-प्रकार | खेती की विभिन्न फसलें | | मतव्य |
|---|---|---|---|---|
| | | खरीफ | रवी | |
| क | आट | विआली धान, मूंगफली तिल आदि तेलहन, काउँरिया | कुलुथ, वीरी, वरगुडी। | वर्षा पर निर्भर करती है। |
| ख | माल | धान, मूंगफली | सरसो | ,, |
| ग | वेर्णा | धान | खेसारी | ,, |
| घ | वाहाल | धान | ,, चैती मूंग | ,, |
| ट | वाडी और वच्छी | गन्ना, साग-सब्जी, मक्का | तम्वाकू, ओली, प्याज, साग-सब्जी | सिंचाई द्वारा |

धान, मूंगफली, कांउतिया आदि यहाँ की प्रधान फसलें है। शीतकालीन फसलें नही के वरावर है। अव सिंचाई से धान के साथ-साथ अर्थकरी फसले भी पैदा की जा सकती है।

**धान**—वर्षा होने पर यह ज्येष्ठ मास मे वो दिया जाता है किन्तु सिंचाई की सुविधा होने से अण-तृतीया धान वोया जा सकता है और चैत्र के अत में ही विहन डालकर वैशाख मे रोपनी की जा सकती है। इस प्रकार एक मास पूर्व ही धान की खेती हो सकेगी। दूसरे, छीटकर पैदा करने के वदले रोपड प्रणाली द्वारा धान की खेती अधिक सभव होगी। कहावत है—'रुआ धान धुआ'। जापानी प्रणाली मे छिट्टुआ के स्थान पर रोपे हुए धान को अधिक पसन्द करते है। रोपण प्रणाली में उन्नत यत्र की मदद से मिट्टी गोडी जा सकती है। इससे प्रति एकड पैदावार भी अधिक होगी। इस रोपण प्रथा के साथ उत्तम विहन, अधिक खाद के प्रयोग और रोग, कीडे-मकोडे आदि फसल के दुश्मनो के आक्रमण से वचाने के लिए दवा की व्यवस्था होने पर प्रति एकड उपज वढ जायेगी। सिंचाई के कारण सूने का डर न रहेगा। वाहाल जैसी नीची जमीन में भी कार्त्तिक, अगहन तक

## खेती से भूमि की उर्वरता में परिवर्तन

सारिणी न० १४—

| मिट्टी | एक घनफुट मिट्टी का तौल (पौंडो में) | | एक एकड की मिट्टी में जान्तव पदार्थ की मात्रा (टनो में) | | मिट्टी में हवा-पानी के प्रबन्ध के लिए छिद्र अनुपात (सैकडा) | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | परती भूमि | कृषि भूमि | परती भूमि | कृषि भूमि | परती भूमि | कृषि भूमि |
| ०—१ फुट | ६५ ५ | ८१ ७ | ६६ ० | ४४ ७ | ६० ३ | ५० ५ |
| १—२ ,, | ७० ३ | ८६ ७ | —— | —— | ५८ १ | ४७ ६ |
| २—३ ,, | ७६ ६ | ९१ ० | —— | —— | ५३ ५ | ४४ ८ |
| औसत परि-माण | ७० ५ | ८६ ५ | ६६ ० | ४४ ७ | ५७ ३ | ४७ ६ |

इस हिसाब से मालूम होता है कि बार-बार एक ही फसल की खेती होने से भूमि का जान्तव पदार्थ नष्ट हो जाता है और मिट्टी की बनावट में भी परिवर्तन हो जाता है। फलस्वरूप जमीन की शक्ति घट जाती है और फसल की पैदावार भी कम हो जाती है। लेकिन पर्याय-क्रम की खेती से भूमि की शक्ति बढती है और पैदावार भी अधिक होती है।

**अत्युत्तम छुईजातीय फसल**—खाद्य फसल को सामान्यत दो भागो मे बाँटा जाता है—(१) शस्य (Cereals), (२) छुईजातीय (Lequmas)। इनमें शस्य तो नाइट्रोजन-भक्षक और छुईजातीय फसल नाइट्रोजन-रक्षक है। मूंग, उर्द, कुलथी, अरहर, धनिया, सनई, मटर प्रभृति छुईजातीय फसलें है। ये अपनी जडो में हवा के साथ नाइट्रोजन सचित किये रहती है। अच्छी छुईजातीय फसल एक मौसम में ६० से १०० पौंड तक नाइट्रोजन वायु जमा रखती है। अत प्रत्येक शस्य फसल के बाद कोई न कोई छुईजातीय फसल अत्यन्त आवश्यक है।

सारिणी न० १५—

| | प्रथम भाग बगीचा | द्वितीय भाग बगीचा | तृतीय भाग बगीचा |
|---|---|---|---|
| प्रथम वर्ष | जड-प्रधान फसल | रेशायुक्त मूल | छुईजातीय |
| द्वितीय वर्ष | छुईजातीय फसल | जडप्रधान फसल | रेशायुक्त फसल |
| तृतीय वर्ष | रेशायुक्त जड-प्रधान फसल | छुईजातीय फसल | जडप्रधान फसल |

फसल के स्वभाव की दृष्टि से उन्हे सामान्यत तीन भागो में बाँटा जाता है—(१) जड-प्रधान फसल (Top Root Crop), (२) रेशायुक्त जडप्रधान (Fibrous Root Crops),

सारिणी न० १७—

| भूमि | फसल की किस्म | वर्षाकालीन | शीतकालीन | ग्रीष्मकालीन |
|---|---|---|---|---|
| ऊँची आट, माल | (क) अल्पकाली | धान, मक्का | आलू, तम्वाखू, गन्ना | ग्रीष्मकालीन साग-सब्जी |
| | १-शस्य जातीय | ज्वार | गोचारा, सागसब्जी | गोचारा के लिए ज्वार तथा दूसरी घासें। |
| | २-रेशेदार | काँउरिया, पाट, सनई। | मक्का, ज्वार, गेहूँ सागसब्जी, तम्वाखू, गन्ना। | |
| | ३-रवी | वरगुडी, मूंग, वीरी | आलू, तम्वाकू, गेहूँ, साग-सब्जी। | |
| | ४-तेलहन | तिल | एजन् — | |
| | ५-हरी खाद | धनियाँ, सनई | गन्ना, कपास, आलू, साग-सब्जी। | |
| | ६-साग-सब्जी | भेंडी, गुआँर | गन्ना, कपास, आलू, साग-सब्जी। | |
| | (ख) वहुकालीन | | | |
| | १-रेशे और हरी खाद की विहन के लिए | सनई, वनियाँ, काउँरिया पाट | गेहूँ, मक्का, मूंग, गन्ना, कपास | |
| | २-तेलहन | मूंगफली | गेहूँ, मक्का, ज्वार वाजरा | |
| | ३-रवी | अरहर | दीर्घकालीन साग-सब्जी या "ग्रीष्म-कालीन" | |
| | ४-अन्यान्य फसल | कपास, हल्दी | | साग-सब्जी। |
| | ५-साग-सब्जी | कन्दमूल | | साग-सब्जी, मक्का ज्वार (गोचारा) |
| मध्यम भूमि (वाहाल) | | रोपनी का धान | रवी फसल | अप्रैल से जुलाई तक तिल, मँडिया, पाट, काउँरिया, सनई। |
| नीची भूमि (वेर्णा) | | धान | रवीफसल-कपास | धान, हरी खाद, रेशेदार फसल। |

## त्रैवार्षिक फसल

सारिणी न० १८ (ख)—

| भूमि | वर्ष | खरीफ | रबी | ग्रीष्मकालीन |
|---|---|---|---|---|
| उंची | (क) प्रथम वर्ष | धनियाँ, (हरी खाद के लिए) | गन्ना बोना | |
| | द्वितीय वर्ष | गन्ना | गन्ने की पेडाई | |
| | तृतीय वर्ष | मूली, गन्ना | गन्ने की पेडाई | मडिया बोना |
| | (ख) प्रथम वर्ष | हरी खाद देकर धान की रोपनी | साग-सब्जी | |
| | द्वितीय वर्ष | गन्ना बोना | गन्ना | |
| | तृतीय वर्ष | गन्ना, मूली | ग्रीष्मकालीन सब्जी | |
| | (ग) प्रथम वर्ष | हरी खाद करना | गेहूँ बोना | गन्ने की बुआई |
| | द्वितीय वर्ष | गन्ना | गन्ने की कटाई | |
| | तृतीय वर्ष | गन्ना, मूली | गन्ने की पेराई | ग्रीष्म कालीन सब्जी, मडिया |
| | (घ) प्रथम वर्ष | कपास | गेहूँ | ,, ,, ,, |
| | द्वितीय वर्ष | कार्उरिया का पाट | आलू या गेहूँ | ,, ,,गोचारा |
| | तृतीय वर्ष | आट, धान पाट, अरहर, मूंगफली | साग-सब्जी, दालीय फसल | |
| वेर्णा | (क) प्रथम वर्ष | हरी खाद के वाद धान | दालीय फसल | |
| | द्वितीय वर्ष | पाट के वाद धान | सरसो जाति के तेलहन | |
| | तृतीय वर्ष | हरी खाद के वाद धान | | ग्रीष्मकालीन सब्जी |
| | (ख) प्रथम वर्ष | —— | दालीय या तेलहन की फसल | |
| | द्वितीय वर्ष | कपास | | ,, ,, गोचारा |
| | तृतीय वर्ष | हरी खाद के वाद धान | | ,, ,, सब्जी |
| वाहाल | (क) प्रथम वर्ष | हरी खाद करके धान रोपना | डालुआ धान करना | |
| | द्वितीय वर्ष | हरी खाद | शीतकालीन कपास | |
| | (ख) प्रथम वर्ष | हरी खाद करना और धान रोपना | मूंग या खेसारी वोना | |
| | द्वितीय वर्ष | नलिता | नलिता के वाद धान रोपना | |

सारिणी न० १९ का शेष—

| जमीन की किस्म | फसल के बाद फसल | बोने का समय | काटने का समय |
|---|---|---|---|
| वेर्णा | २ धान, आलू, मक्का | धान १ जून से १५ जून | अक्टूबर तीसरे सप्ताह तक |
| | | आलू नवम्बर (पहला सप्ताह) | फरवरी प्रथम सप्ताह |
| | | मक्का फरवरी (दूसरा सप्ताह) | अप्रैल मास के शेष में |
| वाहाल | १ हरी खाद, धान, सब्जी (सारू) | हरी खाद १५ से ३१ मई तक | १५ जुलाई तक |
| | | धान ३१ जुलाई तक | १५ दिस० से ३० दिस० |
| | | माण सारू १५ जनवरी तक | १५ मई तक |
| | २ पाट, धान, मूँग | पाट १५ अप्रैल से १५ मई तक | १५ अगस्त तक |
| | | धान ३१ अगस्त तक | ३१ दिसम्बर |
| | | मूँग १५ जनवरी तक | १५ अप्रैल तक |

**पूर्वी भूभाग का पहाडी अचल**—यह भूभाग समस्त ओडिशा का २९ प्रतिशत है। इसमे आदिवासियो की घनी बस्तियाँ है। आदिवासी अपनी उसी पुरानी 'पोढु' प्रथा से खेती करते आ रहे है। रायगडा, रामगिरि, उदयगिरि, कोरापुट और मालकन गिरि आदि अचलो की ढालुआँ भूमि खेती के योग्य मिट्टी से शून्य हो गई है। अत कन्ध, सउरा, गडवा और परजा आदिवासी अपनी जीविका चलाने मे असमर्थ है। इस भाग की सास्कृतिक और आर्थिक उन्नति के लिए मृत्तिका की रक्षा करनेवाली खेती की प्रथा अपनाना आवश्यक है। हल्दी इस भाग की मुख्य अर्थकरी फसल है। कोरापुट की तरफ तिल या नाइजर एक दूसरी अर्थकरी फसल है।

इन दो अर्थकरी फसलो मे से हल्दी में कन्ध, शालुआ पत्तो की खाद का उपयोग करते है। दूसरी खाद उन्हें मालूम नही। जान लेने पर भी वे उन खादो का उपयोग नही कर सकते। नाइजर की खेती मे किसी प्रकार की खाद नही दी जाती पर यह एक मृत्तिका-क्षयकारी फसल है। अत नई फसल तथा प्रचलित फसल की खेती वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार होनी चाहिए।

डुडुमा जलप्रपात की बिजली कृषि-उद्योग में प्रधान सहायक होगी। ओडिशा प्रदेश आलू की खेती के लिए बिहार से बिहन मँगाता है। बिहन की समस्या पूर्वीघाट के पार्वत्य अचल में आलू की खेती द्वारा दूर हो सकती है। डुडुमा बिजली द्वारा दो-एक शीतल भाडार बनाये जा सकते है, जिनमें आलू की बिहन सचित की जा सकती है। अमेरिका अपने उत्तरी भाग में आलू की खेती करता है। आलू को जमीन से निकालते ही बिहन के लिए दक्षिणी भाग मे भेजता है। पूर्वीघाट के कितने ही पहाडी भागो मे वर्षा काल में भी आलू की उपज हो सकती है। कार्तिक मास में

रायगडा और नवरंगपुर की मिट्टी और जलवायु गन्ने की खेती के लिए अनुकूल है। रायगडा में सिर्फ एक ही चीनी का कारखाना है। गन्ने की खेती के प्रसार के द्वारा इन्द्रावती और कोलाबा नदी की उपत्यका मे एक और चीनी का कारखाना चलाया जा सकता है।

कालाहाँडी जिले की तेल, सगडा, बाहाडा आदि नदियो के अचल में गेहूँ की खेती का प्रसार किया जा सकता है। भारतीय कृषि-गवेषणा-केन्द्र की तरफ से गेरुआ-प्रतिरोधक गेहूँ उत्पन्न किया गया है। मध्य प्रदेश के कई किस्म के गेहूँ भी इस भूभाग में पैदा किये जा सकते है। ओडिशा मे शिक्षा और सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ गेहूँ का भी उपयोग बढता जा रहा है। अत आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष बाहर से गेहू मँगाना पडता है। महानदी उपत्यका और पूर्वी भूभाग के पार्वत्य अचल मे गेहूँ की खेती होने पर उसे बाहर से नही मँगाना पडेगा। इस इलाके के अन्तर्गत जातीय सप्रसारण योजनावाले अचल की छोटी सिंचाई योजना गेहूँ, आलू, शीतकालीन साग-सब्जी, गन्ना तथा कपास की खेती मे काफी सहायक होगी।

**समुद्रीय तटवर्त्ती** अचल—हीराकुद बाँध योजना से कटक, पुरी जिले की त्रिकोण भूमि मे १८ लाख ६७ हजार एकड भूमि की सिंचाई की व्यवस्था हो सकती है। यह भूभाग बाढ और सूखे का क्रीडाक्षेत्र है। हीराकुद बाँध योजना इसमें अवश्य ही परिवर्तन लायेगी। नहरी क्षेत्रो के अतिरिक्त अन्यान्य भू-भाग पहले एक-फसली अचल ही था। सिंचाई द्वारा इसे दो-फसली और बहुफसली अचल बनाया जा सकेगा। कटक जिले में सारी कृषि-भूमि का ३१ सैं०, पुरी में १३ सैं०, बालेश्वर में ८ सैं० एव महानदी उपत्यका अचल मे ५ सैं० भूमि में दो-फसली खेती होती थी। अब त्रिकोण भूमि की सिंचाई योजना द्वारा दो-फसली भूमि का परिमाण ५० सैं० बढ जायेगा।

समुद्र-तटवर्ती जिलो मे सारी कृषि-भूमि के ९० सैं० भाग में धान होता है। वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा इस धान की भूमि में से २० सैं० घटाकर भी धान की वार्षिक उपज अक्षुण्ण रखी जा सकती है। इस २० सैं० भूमि में पाट, गन्ना, कपास, दालीय फसल, तेलहन पैदा करके किसान की आमदनी बढाई जा सकती है। राउरकेला के इस्पात कारखाने में खाद पैदा होगी। अत बहुविध फसल की खेती मे इस खाद का उपयोग किया जा सकेगा। किसानो को विज्ञान की जानकारी देने के लिए अनुष्ठान होने चाहिए। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इस अनुष्ठान को "एक्सटेंशन सर्विस" नाम दिया है। पृथ्वी मे यह एक आदर्श बन गया है जो कृषको के लिए अत्यत हितकर है। उसकी राय तथा परामर्श के अनुसार कृषि-उन्नति के नये-नये तथ्य मालूम हो जाते हैं। प्रत्येक किसान अपने बाप-दादा के समय की प्रथा के अनुसार खेती करता है। पुरानी प्रथा को छोडकर नयी प्रथा के अनुसार खेती करने के लिए उसे समझाना-बुझाना आवश्यक है। किसान को अनुप्राणित किये बिना खेती के कार्य मे कोई भी सुधार असभव है। एक्सटेंशन सर्विस की मूल नीति है किसान का व्यक्तित्व स्वीकार करना और उसके खेत मे, गोशाला में और घर में नये तथ्यो के प्रयोग द्वारा उसे जानकार बनाना।

इस परिवर्तित खेती की प्रणाली को किसान कितने दिनो में ग्रहण कर सकता है, इस सबध मे वैज्ञानिक विलियम न्यूटन बटलर की वाणी उद्धृत करने मे हम आसानी से इसे जान सकते हैं।

उपरोक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हमारा प्रस्ताव है कि वर्तमान जगल के क्षेत्रफल को नववृक्षारोपण द्वारा अधिक वढाना चाहिए।

## वनो के भेद

मोटे तौर पर इस राज्य में मुख्य रूप से तीन प्रकार के जगल देखे जाते है। वे ये है—

(१) **उत्तरी उष्णकटिवधीय अर्द्धसदाबहार जगल**—इस प्रकार के जगल समुद्रतटीय जिलो—गजाम, पुरी, कटक, ढेकानाल और मयूरभज के कुछ हिस्से—में पाये जाते है। समुद्र के निकट होने तया वायुमण्डल में अधिक वाष्प होने के कारण यहाँ पर सदावहार किस्म की वनस्पतियाँ पाई जाती है। इस प्रकार के वन में मुख्य लट्ठेवाले पेड (टिंवर) अर्जुन, आम, केदु, चपा, विस्कोफिया जवानीसिया, राई और अशोक के है। इनमें छिटफुट दावा वाँस भी पाये जाते है। इस प्रकार के जगलो में अधिक लट्ठे नही उत्पन्न होते और न उनका क्षेत्रफल ही अधिक है।

(२) **उत्तरी उष्णकटिवधीय सार्द्र पतझडवाले साल के जगल**—इस प्रकार के जगल अधिक क्षेत्रफल में है और अधिक मूल्यवान् भी है, क्योकि इनमें बहुमूल्य साल अधिक मात्रा में पाया जाता है। इस प्रकार का जगल राज्य के उत्तर-पश्चिम में पाया जाता है और मयूरभज, केदुझर, सुदरगड, गजाम, कालाहाडी और कोरापुट जिलो में फैला हुआ है। वृक्षो के मुख्य भेद—साल, आसन, वीजा, हल्दू, हगडा, घौरा है। वाँस के भी जगल वहुत अधिक क्षेत्रफल में हैं।

(३) **उत्तरी उष्णकटिवधीय शुष्क पतझडवाले जगल**—इस प्रकार के जगल राज्य के और भी पश्चिमी भाग मे पाये जाते है जहाँ का जलवायु और भी शुष्क है। वहुमूल्य लट्ठेवाले पेड-सखुआ छिटफुट टुकडो मे स्वाभाविक रूप में पाये जाते है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख पेड साल, आसन, घौरा, केदु, करदा और हल्दू के है। वाँसो के जगलो के भी वडे टुकडे पाये जाते है। इस प्रकार के जगल कोरापुट, कालाहांडी और वलागीर जिलो मे पाये जाते है।

इन तीनो प्रकार के मुख्य जगलो के अतिरिक्त वहुत से सहायक ढग (सब्सिडियरी टाइप) के जगल है जो (स्मॉल पैचेज) छोटे टुकडो मे सीमित है। उनमें से कुछ खालिस हैं और कुछ मिश्रित है। इस प्रकार के जगल महानदी, देवी और वैतरणी नदियो के मुहानो पर डेल्टाई जगलो के रूप मे और वालासोर, कटक, गजाम और पुरी जिलो के समुद्रतटीय साल के जगलो के टुकडे और कांटेदार झाडियो के सदावहार जगल देखे जा सकते हैं। डेल्टाई जगल, जो कि क्षेत्रफल में ५९००० एकड है, अभी तक उपेक्षित रहे है। किंतु वे वहुत ही लाभदायक है, क्योकि उनमे कुछ वहुमूल्य वस्तुएँ पाई जाती है। उनका उर्वर, सघन और वसे मैदान के निकट होना उनकी आवश्यकता को और वढा देता है, क्योकि पडोस की लट्ठे और ईंधन की माँग को ये ही पूर्ण करते है।

## प्रवन्ध

प्रवन्ध की सुगमता के लिए राज्य का वन-प्रवन्ध इकाइयो मे वाँट दिया गया है। इन

द्वारा होता है—उन खरीदारो द्वारा जो खुले नीलाम में वार्षिक खरीद करते हैं। विभाग द्वारा उन्ही क्षेत्रो का शोषण होता है जहाँ नीलाम में बोली बोलनेवाले नही आते या यदि आते भी है तो उनकी बोली उचित कीमत की नही होती। राज्य मे कागज-उद्योग को प्रोत्साहन देने और कागज की मिलो की स्थापना करने के लिए बाँसो के जगलो को, लम्बी अवधि के लिए, बिना किसी प्रकार की प्रतियोगिता के मिलो के हाथ ठीके पर दे दिया जाता है।

## हमारे वनो की उपज

हमारे जगलो की मुख्य उपज लकडी है जिसकी आवश्यकता हमें जन्म से लेकर मृत्यु तक रहती है। हमारे जगलो में लट्ठे का उत्पादन करनेवाले कई प्रकार के पेड है, किन्तु आधुनिक उपभोग की दृष्टि से जो वृक्ष अधिक मूल्यवान् समझे जाते हैं और जिनका शोषण किया जाता है उनका वर्णन नीचे दिया जाता है—

**सागौन** सभी प्रकार की लकडियो का राजा है। हमारे राज्य में लगभग ३०० वर्गमील सागौन के वन हैं। प्राकृतिक रूप से इसके जगल कालाहाँडी, बालागीर और कोरापुट के जिलो में पाये जाते हैं तथा पुरी, अगुल, नयागढ, बालागीर और कालाहाँडी डिवीजनो में उनकी वृहत् रोपाई की गई है। ये रोपण सफल भी हुए हैं। अभी तक हम लोगो ने ७८००० एकड भूमि में सागौन का रोपण किया है। स्वभावत इसका लट्ठा बहुत टिकाऊ होता है और बहुविध प्रयोगो के कारण इसकी बहुत बडी माँग भी है।

**साल (सखुआ)** का पेड बहुत बडा होता है और अन्य लकडियो से मिश्रित न होकर विशुद्ध रूप में पाया जाता है। हम लोगो के अधिकाश जगल साल के ही हैं जिससे राज्य को सबसे अधिक आय है। इसका लट्ठा बहुत टिकाऊ होता है और मकानो, पुलो, रेलवे पटरियो आदि सभी प्रकार के निर्माणात्मक उपयोगों में प्रयुक्त होता है।

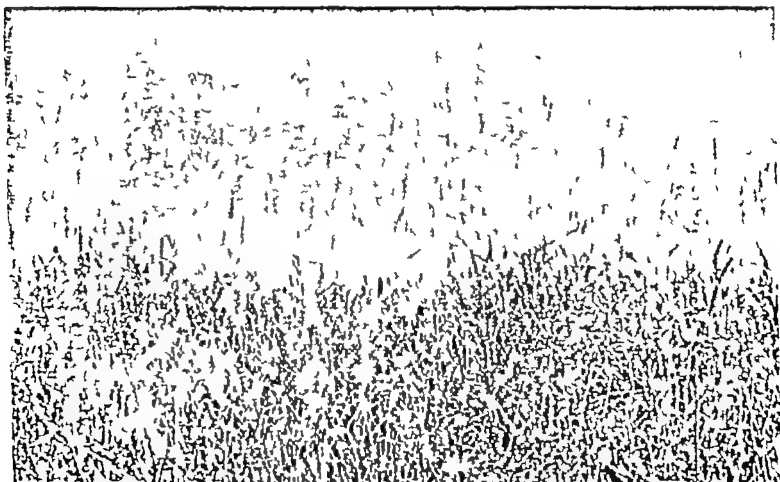
**पिआसल** (Piasal) का पेड बहुत बडा होता है जो सखुये के साथ उगता है। इसकी लकडी पीलापन लिये हुए भूरी होती है जिसमें काली धारियाँ होती हैं। यह दरवाजो और खिडकियो के चौखट, फर्नीचर और स्लीपरो के काम में आता है। इसकी लकडी से एक लाल रग का लासा निकलता है जिसे कीनो कहते हैं।

**सहज या असन** का भी पेड काफी बडा होता है और आर्द्र स्थल के वनो मे अधिकाशत पाया जाता है। जहाँ साल प्राप्य नही है या अधिक महँगा है वहाँ यह भवन-निर्माण और रेलवे स्लीपरो के काम आता है। चूंकि इसकी लकडी सूखने पर फट जाती है इसलिए इसका प्रयोग ऐसे स्थानो पर किया जाता है जहाँ बहुत आर्द्रता होती है। इसका पेड टसर रेशम के कीडों के पालने के काम में भी आता है।

**कुसम** का पेड बडा होता है और जगली क्षेत्रो में छिटफुट पाया जाता है। इसकी लकडी पीली और साधारणत कडी होती है। यह लकडी नक्काशी, खिलौनो, बाबिन, तख्ते और रेलवे स्लीपरो के रूप में प्रयुक्त होती है।



शाल वन



## (क) पशु-संबंधी उत्पादन (एनिमल प्रॉडक्ट)

(१) **हाथीदाँत**—यह उन जगली हाथियो से प्राप्त होता है जो या तो मर जाते है य खतरनाक घोषित किये जाने पर मार दिये जाते हैं। इससे ढाई मन हाथीदाँत प्राप्त होता है जिसकी वार्षिक आय २४८८ रु० होती है।

(२) **खाल, सींग और चमडे**—ये उत्पादन कुछ विभागो में ठीके पर दे दिये जाते हैं जिनसे १२८०५ रु० की आय होती है और उपज ५०० मन होती है।

(३) **तसर के कोये**—ये असन के पेडो पर पाले जाते है जिनसे व्यापार के लिए तसर क तागा प्राप्त किया जाता है। व्यक्तिगत अभिकरणो (एजेसियो) द्वारा इनकी खेती की जाती है और वनभूमि मे उगाये गये पेडो के लिए वन विभाग एक साधारण रकम वसूल करता है। सालान उपज ७८२३ काहाण की होती है और आय ३३६२८ रुपये की है। इस व्यापार के विकास की बडी सभावनाएँ है।

(४) **लाह**—इसके छोटे-छोटे कीडे जब कुसुम, पलाश और बेर के पेडो पर लगा दिये जाते है तो उनकी शाखाओ को छाँट कर उन कीडो के मेल से लाह प्राप्त किया जाता है। चपडा और बटन बनानेवाला लाह इसी लाह से बनता है। कुछ वर्षों पूर्व इस राज्य से बहुत अधिक परिमाण में लाह उपजाया जाता था। उत्पादन केन्द्र मयूरभज, केउझर और कालाहाडी थे, किंतु अब उत्पादन बहुत लडखडा गया है। केवल मयूरभज मे ५० हजार मन से अधिक लाह उत्पन्न होता था। राज्य सरकार के पास इस समय दो लाह पालने के खेत हैं। एक केऊझर और दूसरा कालाहाडी डिवीजन में। रायरगपुर डिवीजन में परिगणित जातीय और ग्रामीण कल्याण योजना के अतर्गत भी लाह तैयार किया जाता है। इस राज्य का बहुत बडा सौभाग्य है कि यहाँ बहुत से कुसुम के पेड हैं जो लाह के कीडों के पालने के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं किंतु दुर्भाग्य से निर्धन परिगणित जातियो ने इसकी गहरी खेती अभी तक नही अपनाई है। यहाँ पर इसके विकास का बहुत ही बडा क्षेत्र है और ऐसा विश्वास है कि फार्मों से पालतू लाह के कीडो की प्राप्ति पर अधिकाधिक लोग इसकी खेती करने को आगे बढेंगे। गरीब आदिवासियो की दशा सुधारने मे लाह का उत्पादन बहुत बडा सहायक सिद्ध होगा। लाह बिना अधिक कठिनाई के उत्पन्न किया जा सकता है। इससे आय भी अच्छी हो सकती है, क्योकि इसका दाम भी अच्छा है। यह अत्यत प्रसिद्ध डालर-उपार्जक है। इसकी वृद्धि केवल उन लोगो की ही दशा नही सुधारेगी, जो इसकी खेती करेंगे बल्कि अत्यत आवश्यक विदेशी विनिमय को कमाकर देश को भी सहायता पहुँचायेगी। राज्य में एक लाह-फैक्ट्री के स्थापन की अत्यत आवश्यकता है। ऐसी फैक्ट्री के प्रारभ करने में यहाँ की कम उपज एक बाधक के रूप में है। केन्द्रीय सरकार का लाह विकास स्कध रायरगपुर डिवीजन में पालतू लाह के फार्म का केन्द्र स्थापित करने जा रहा है। इस समय वार्षिक उपज २४०० मन और आय ३९५५५ रु० है।

रह गई, यह चोरी से बहुत मात्रा में बाहर भेजा जाता है। तो भी इसकी वार्षिक उपज २९१४७ मन और आय १९६१३ रु० है। इसका प्रयोग शराब चुआने के लिए होता है।

(१२) **मार्किंग नट**—यह सीमीकार्पस अनाकार्डियम पौधे का बीज है। इसकी वार्षिक उपज ५५० मन और आय ४७० रु० है।

(१३) **सर्पगधा**—यह रौओल्फिया सर्पेन्टाइना नामक पौधे की जड है। इससे अल्कलायड रिसर्पोपाइन नामक दवा बनाई जाती है। इसका प्रयोग प्रमेह की दवा के रूप मे होता है। ओडिशा में एक रिसर्पाइन फैक्ट्री के स्थापित करने का प्रस्ताव है। इसकी जड कोरापुट और कालाहाडी जिलो में अधिकता से पाई जाती है। १९५५-५६ में कालाहाडी मे १८६ मन जड इकट्ठी की गई थी जिसकी राजकीय आय १३१६५ रुपये थी।

## (घ) रेशे और रेशम के कोए

(१४) **सियाली लता**—बौहिनिया वाहली नामक लता से यह मजबूत रेशा निकलता है जिसका प्रयोग कई कार्यों मे किया जाता है। इसके पत्ते भी पत्तल के रूप मे बेचे जाते है। इसके रेशे की वार्षिक उपज १०९४० मन और आय ३८९१ रु० है।

## (च) चारा और चरागाह

(१५) **चराई का शुल्क**—पशुओ के लिए ये जगल चरागाह है किंतु अच्छी चराई के लिए आवश्यक है कि किसी भी क्षेत्र में चरनेवाले जानवरो की सख्या सीमित हो। इस राज्य में बहुत अधिक जानवर होने और रक्षित जगलो में पशुओ को ले जाने की जानवरो के मालिको की इच्छा के कारण इन जगलो में बहुत ही कम चरागाह है। यह अनुभव करना चाहिए कि किसी क्षेत्र में प्रवेश करने वाले पशुओ की सख्या सीमित होने पर ही उत्तम चराई हो सकती है। रक्षित वनो से चराई का शुल्क औसतन १८७१०४ रु० वार्षिक प्राप्त होता है।

(१६) **पेटभूरी रेशा**—यह रेशा हेलिक्टियर्स इसोरा नामक झाडी से उत्पन्न किया जाता है। इसका रेशा पटुए की तरह होता है इसलिए इसे जगली पाट कहते भी है। इसकी वार्षिक उपज ९०८७ मन है। यह कुछ मिलो में पाट के साथ मिलावट करने में प्रयुक्त होता है।

## (छ) चारे के अतिरिक्त अन्य घासें

(१७) **फूल झाड़ू**—यह थीसैलोनेमामैक्सिमा नामक घास होती है जो कि घाटियो में नालो के किनारे उगती है। यह कालाहाडी, फुलबानी और कोरापुट जिलो में पाई जाती है। इसी से तिजारती फूल झाड़ू बनती है। इसकी उपज का अधिकाश निर्यात होता है—विशेषत बबई में। यह राज्य के उत्पादनो में एक प्रमुख उत्पादन है और इसके विकास में काफी गुजाइश है। पहले यह ठेकेदारो की एजेन्सियो द्वारा निर्यात होती थी किन्तु अब यह शनै शनै सहकारी समितियो के हाथ में जा रही है। यदि ये समितियाँ ठीक ढग से काम करें तो इस व्यापार की उन्नति

## (ठ) पत्तियाँ

(२४) **केंदू का पत्ता**—यह केंदू नामक पेड का नया पत्ता होता है जिसे बीडी बनाने के लिए इकट्ठा किया जाता है। इसके इकट्ठा करने का मौसम फरवरी-मार्च में शुरू होता है और तीन-चार महीनो तक चलता है। राजकीय और व्यक्तिगत फार्मो से ठेकेदार पत्तियो के इकट्ठा करने का काम करते है जो ठेके पर दी गई सभी फार्मो के लिए ८५ लाख रुपया वार्षिक देते है। इसकी आय का ५० प्रतिशत गाँवो मे विकास कार्य के लिए ग्राम-पचायते व्यय करती है। पत्तियो की वार्षिक उपज २ लाख मन होती है।

(२५) **सियाली के पत्ते**—यह सियाली या वौहीनियावाहली नामक लता की पत्तियाँ है जो पत्तल वनाने के लिए दूसरे राज्यो में निर्यात की जाती है। यह मुख्यत कालाहाडी, गजाम और कोरापुट जिलो में इकट्ठी की जाती है। इसकी वार्षिक उपज १३५१७ मन और आय ११३२८ रु० है।

## (ड)

(२६) **लघु खनिज द्रव्य**—इसके अतर्गत सडक वनाने के उपादान (रोड मेटल) घूटिंग व्लैक मेटल आदि है जो सार्वजनिक निर्माण विभाग को दिये जाते है या वे पत्थर के क्वैरी (क्षेत्र) होते है जो व्यक्तिगत लोगो, ग्राम-पचायतो या सहकारी समितियो को ठेके पर दे दिये जाते है। इस मद से ५५७०६ रु० की वार्षिक आय होती है।

**वन्यजीव**—हमारे वनो में कौन-कौन सी चीजें उपजती है और कौन-कौन सी चीजे है, उन सभी का वर्णन तव तक अधूरा रहेगा जव तक हम अपने वनो में पाये जानेवाले वन्य जीवो का आकलन न कर लें। इनमें हाथी, जगली भैसा, विसन वैल, वाघ, चीता, जगली भालू, नीलगाय, हरिण, साँभर, चौसिंगा, हिरन, काला हिरन तथा अन्य वहुत प्रकार के छोटे-छोटे जीव और पक्षी सम्मिलित है। हमारे जगलो में इन वन्य जीवो की उपस्थिति ने प्रकृति के सतुलन को कायम रखने मे वडी सहायता की है। इनसे हमारे जगल पशुप्रेमियो और पर्यटको के लिए अधिक आकर्षक वने हुए है। वन्यजीवो के लिए पहले से वने हुए सेन्चुअरी और राष्ट्रीय पार्क, जो मयूरभज जिले में स्थापित किये जा रहे है, इन वन्य जीवो को समुचित रक्षा प्रदान करेंगे। वाहर के लोग यहाँ आकर इन जानवरों को उनकी प्राकृतिक परिस्थिति में देख सकते है। ये वन्य जीव हमारे जगलो की मनोरजकता को ही नही वढाते वल्कि इनसे, इनकी खाल और चमडो को वेचकर तथा आखेट-शुल्क वसूल कर, आय में वृद्धि भी होती है।

**वित्तीय दृष्टिकोण**—कहा है कि द्रव्य स्वय बोलता है। ऐसा होने के कारण जगल की वे विभूतियाँ, जिनसे हमारी भूमि और जल सचित रहते है, जिनसे जलवायु की विषमता कम होती है, जो आर्द्रतापूर्ण वायु से जलाश का शोषण करते है वे उतने खुले प्रकाशित रूप में हमारे सामने नही आती है जितना कि राज्य को उसमें आनेवाली आय। केवल आय की दृष्टि से ही वनो की

**वन-सपत्ति का सरक्षण**—ऊपर के पैराग्राफो से प्रकट है कि वन हमारी एक बहुत ही शक्तिशाली सपत्ति है जिसे हम लोग किसी भी मूल्य पर व्यर्थ मे बरबाद नही होने दे सकते। उद्योगो का विकास, रेल और सडक इन दोनो प्रकार के आवागमन के साधनो की उन्नति, ग्रामीण क्षेत्रो में विद्युत् का प्रसार जो हमारी पचवर्षीय योजना मे सम्मिलित किये गये है, हमारे जगलो के प्राप्त साधनो की ओर बहुत अधिक झुकेगे। इनके अतिरिक्त जनसख्या और पशुसख्या की लगातार वृद्धि और उनकी लट्ठे, ईंधन, खेती के औजारो और चारो की आवश्यकताओ की पूर्ति भी करनी है। इन आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हम अपने जगलो को—चाहे जिस किसी अवस्था में हो—इस प्रकार सरक्षित करना है ताकि वैज्ञानिक प्रबन्ध के अतर्गत जनता की माँगो की पूर्ति के लिए लगातार बढने वाली उपजो की मात्रा बढती जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नाकित कार्य करने चाहिए—

१—आजकल कृषि के लिए जो नई भूमि अधिकृत की जा रही है उस पर कडाई के साथ रोक लगानी चाहिए। वन के किनारे की जो भूमि खेती के लिए दी जाती है उससे उद्देश्य की पूर्ति भी नही होती, क्योकि १ या २ वर्ष तक सूखी खेती करने के पश्चात् खेत छोड दिये जाते है, जिनमें खर-पतवार उग आते है। अब वह स्थिति आ गई है जब कि जगलो की भूमि को लगातार अधिकृत करने पर उसका प्रतिफल भूमिक्षय और घोर जलप्लावन होगा।

२—आदिवासी लोग वनक्षेत्रो की अधिक भूमि पर "पोढू" की खेती करते है, उन पर भी नियत्रण करना चाहिए और क्रमश बद कर देना चाहिए। उनका यह काम जगलो के अस्तित्व के लिए बहुत बडा खतरा है। जिस क्षेत्र को वे "पोढू" की बोवाई के बाद छोड देते है उसे सरक्षण में लाकर उसमें वृक्ष रोपने चाहिए।

३—वन से प्राप्त आय का अधिकाश प्रतिशत सरक्षित वनो के सुधार के लिए व्यय करना चाहिए ताकि आजकल इसकी वृद्धि में जो कमी हो रही है उसकी पूर्ति भरपूर और पूर्णता के साथ हो सके। हम अपने वनो की रक्षा के लिए आय का केवल २४ प्रतिशत ही व्यय कर रहे है। अपने जगलो के विकास के लिए अधिक मात्रा में रोपाई करना बहुत ही आवश्यक है।

४—दावानल, जो कई कारणो से उत्पन्न हो जाता है, प्रतिवर्ष हमारे वनो के आधे से अधिक भाग में बहुत ही अधिक क्षति पहुँचाता है। यदि अपनी वन-सपत्ति की रक्षा करनी है तो जनता का हार्दिक सहयोग आवश्यक है। वार्षिक दावानल के कारण पेड खोखले और विकृत हो जाते है और नई पीढी के जो नये पेड होते है वे नष्ट हो जाते है।

५—हमारे खुले वनो का पुन रोपण चराई के कारण बडे खतरे में पड गया है। ग्रामीण लोग बहुत से अनावश्यक पशु केवल गोबर के लिए पालते है। इन जानवरो की चराई वन-क्षेत्रों में होती है। ये पैरो से कुचल कर और पल्लवो को चबाकर वन की उपजने वाले नई पीढी के पौधों को बहुत नुकसान पहुँचाते है। इसका परिणाम यह हुआ है कि बस्तियो के निकट हमारे सभी खुले वन अलाभकर बन गये है। ग्रामीणो को इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए ताकि वे अनावश्यक पशुओ को न पालें और क्षेत्रो में बारी-बारी से चराई की प्रथा चलाई जाय।

# ओड़िशा की खनिज सम्पत्ति

## डॉ० वी० डी० पृष्टि

जहाँ तक खनिज पदार्थों के पाये जाने का सवन्ध है, भारतवर्ष में ओडिशा का स्थान प्रमुख है। इस प्रदेश में देशी रियासतो के मिल जाने के वाद खनिज पदार्थों की मात्रा अत्यधिक वढ गई है। परिशिष्ट (१) के देखने से विदित होगा कि सारे प्रान्त में कौन कौन से खनिज पदार्थ है और कितने क्षेत्रफल में खोदाई के लिए ठीके पर उठाये गये है। अभी तक कुल २५९ ८३७ वर्गमील में खनिज पदार्थों का निश्चित रूप से पाये जाने का पता चला है। वे मुख्य खनिज पदार्थ जिनका ठीका अभी तक दिया जा चुका है लोहा, मैगनीज, कोयला, क्रोमाइट, ग्रेफाइट, लाईम स्टोन तथा डोलमाइट, असवेस्टास, फायरक्ले, चीनी मिट्टी तथा अवरक हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य उपखनिज पदार्थ जैसे वैलस्ट, मोरम, घूटिंग और लैटराइट इत्यादि भी अनेक जिलो मे खोदे जा रहे हैं। परिशिष्ट (२) मे इस प्रदेश के खनिज पदार्थों की वार्षिक आय और उनका वाजार-भाव दिया गया है। मालगुजारी के रूप में प्राप्त हुई इन खानो की वार्षिक आय, जो रियासतो के मिलने के पूर्व केवल ५०००० ) थी, सन् १९५६–५७ में वढकर, वीस लाख रुपये हो गई है। परिशिष्ट (३) के देखने से विदित होगा कि गत कुछ वर्षो से वार्षिक आय किस प्रकार धीरे-धीरे वढती जा रही है। यद्यपि ओडिशा प्रदेश मे वहुमूल्य खनिज पदार्थो का वाहुल्य है फिर भी विस्तारपूर्वक तथा समुचित रूप से इनकी खोज नही हुई है। अनेक स्थल खण्ड ज्यों के त्यो पडे है और प्रारम्भिक भूगर्भिक जाँच-पडताल भी नही हुई है, जो खनिज पदार्थों के खोजने का प्रथम चरण है। यह इतनी बृहत् समस्या है कि जियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया तथा इण्डियन व्यूरियो आफ माइन्स, जिन्हे इस कार्य का भार सौपा गया है, गतवर्ष पूरे क्षेत्रफल के केवल दस प्रतिशत भाग में ही प्रारम्भिक जाँच-पडताल कर सके है। जियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया तथा इण्डियन व्यूरियो आफ माइन्स के कार्य की पूर्ति के लिए प्रान्तीय खान-विभाग के अन्तर्गत एक खोदाई विभाग स्थापित किया गया जिसका काम उन स्थानो में, जिनकी नाप-जोख अभी तक नही हुई है, स्थूल रूप से खनिज पदार्थों का पता लगाने के अतिरिक्त पूर्ण रूप से खोदाई करके खनिज पदार्थों का पता लगाकर यह भी देखना है कि भिन्न भिन्न प्रकार के कारखाने कैसे खोले जा सकते हैं। दूसरी पचवर्षीय योजना में प्लानिंग कमीशन ने खनिज व्यवसाय के विस्तार को प्रधानता दी है और प्रान्तीय सरकार ने भी इसे स्वीकार किया है, अत यह आशा की जाती है कि खनिज-व्यवसाय की वृद्धि के लिए जो योजनायें प्रस्तुत की जायेंगी उनके फलस्वरूप इस प्रान्त में और भी अधिक खनिज पदार्थों की खोज होगी तथा यहाँ की खनिज सम्पत्ति वढ जायगी। यद्यपि इस

उच्च कोटि के नही हैं। यह खनिज कहीं-कहीं स्थानीय लोहारो के द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा है।

## (२) मैंगनीज

भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उच्च कोटि का मैंगनीज प्रदान करनेवाला प्रमुख देश है और सोवियत रूस के वाद यही सवसे अधिक मैंगनीज पाया जाता है। यहाँ पर प्रतिवर्ष लगभग २००००००० टन मैंगनीज निकाला जाता है किन्तु इस देश में इसका केवल २ प्रतिशत ही काम में आता है। इस पूरे भाग का एक-तिहाई हिस्सा ओडिशा में ही पाया जाता है और उसका ८५ प्रतिशत भाग, जो उत्तम श्रेणी का होता है और जिसमे ४५ प्रतिशत मैंगनीज रहता है, वाहर भेजा जाता है। मैंगनीज के प्रमुख क्षेत्र केउनझर, सुन्दरगढ, कोरापुट, कालाहाडी और वालगीर जिलो में हैं। केउनझर की खदान, जो वर्तमान समय की अधिकाश आवश्यकता को पूरी करती है, प्राइवेट लोगों को ठीके पर उठा दी गई है। कुछ मैंगनीज की खदाने अभी इसलिए सुरक्षित रखी गई हैं कि आगे चलकर साधारण जनता के काम आवें तथा नये कारखानो की आवश्यकताओ को पूरा करें। फेरो-मैंगनीज का एक कारखाना टाटा आइरन एण्ड स्टील कपनी द्वारा जोडा नामक स्थान में खोला गया है। वहाँ काम शुरू हो गया है। रायगढ में एक नया कारखाना वन रहा है जहाँ के स्थानीय मैंगनीज को वाहर न भेजकर वही के कारखानो के काम में लाया जायगा।

साधारण रूप से यह अनुमान किया जाता है कि ओडिशा में कुल १०००००००० टन मैंगनीज है। बैंडेड हेमेटाइट क्वारजाइट नामक लोहे के पत्थर के साथ मिली हुई अवस्था में मैंगनीज जमे हुए टुकडो के रूप में वारविल नामक स्थान मे पाया जाता है। ये ढेर छिटपुट रूप से सतह के नीचे ठढो में पाये जाते हे। कई ढेर सुन्दरगढ के अन्तर्गत वोनाई तहसील के कोयरा नामक स्थान में खोदे जा रहे हैं। अभी हाल की नाप-जोख से यह पता चला है कि अनेक ढेर कोरापुट और कालहाडी जिलो में है किन्तु इनकी नाप-जोख अभी भी विस्तृत रूप से यह देखने के लिए की जा रही है कि ये ढेर स्थानीय कारखानो के लिए उपयुक्त होंगे या नही।

## (३) कोयला

ओडिशा में कोयले के होने का पता १८३७ से ही है किन्तु आधुनिक ढग से इसकी खोदाई सम्वलपुर मे सन् १९०९ ई० में और तालचर में १९१९ ई० में शुरू हुई। आजकल सम्वलपुर के रामपुर क्षेत्र में तीन कोयले की खानें और ढेंकानाल जिले की तालचर नामक तहसील में चार कोयले की खानें चल रही है। आजकल ओडिशा में कुल तीन लाख टन कोयला प्रतिवर्ष निकलता है। रामपुर की खानो में ६०० फुट की गहराई तक लगभग १००००००००० टन और तालचर में लगभग १५००००००० टन कोयला होने का अनुमान किया जाता है। अध्ययन करने से यह विदित हुआ है कि इनमें पानी की मात्रा अधिक है और यह हल्के कोयले के रूप में परिणत नही किया जा सकता। यह केवल रेलगाडी के इञ्जन में जलाने के योग्य है। आशा है कि इन क्षेत्रो में

लिमिटेड द्वारा काम में लाई जा रही है। इसके अन्य ढेर के बारे मे अभी तक और कुछ पता नही लग सका है, क्योकि अन्य जिलो मे इसकी खोज अभी तक नही की गई है।

## (८) बाक्साइट

यद्यपि नियमित रूप से अभी भी जाँच-पडताल करना बाकी है, फिर भी बाक्साइट के ढेर सम्बलपुर तथा कालाहाडी जिलो में पाये जाते हैं। ओडिशा मे अभी तक बाक्साइट नही खोदा जाता है पर अनुमान है कि कालाहांडी में ३९१००० टन और सम्बलपुर में ३००००० टन कच्चा बाक्साइट है जिसमें ५५ से ६० प्रतिशत अल्मूनियम आक्साइड पाया जा सकता है। डुडमा जल-प्रपात से तैयार की हुई सस्ती बिजली के मिलने पर यह आशा की जाती है कि इन बाक्साइट के ढेरो को खोदकर वहाँ एक और अल्मूनियम की फैक्ट्री स्थापित हो सकेगी। यह भी आशा है कि भली-भाँति खोज करने पर और भी अधिक ढेर का पता चलेगा।

## (९) क्यानाइट

क्यानाइट के ढेर ढेंकानाल जिले की शमाक्षानगर तहसील में तथा मयूरभज जिले के कुछ हिस्सो मे हैं। आजकल मयूरभज के ढेरो में खोदाई चल रही है। केउनझर जिले के तिनकोई नामक स्थान तथा ढेंकानाल की पल्लारा तहसील में भी इनके पाये जाने की खबर मिली है।

## (१०) सोना

केउनझर जिले में लगभग ३५ वर्गमील मे सोना पाया जाता है। यह सोना बहुत छोटे छोटे कणो के रूप में बालू आदि में मिला हुआ नदियो के किनारे पाया जाता है। अभी तक यह नहीं मालूम है कि इसका उद्‌गमस्थान कहाँ है। इण्डियन ब्यूरियो आफ माइन्स ने विश्वस्त रूप से पता लगा कर यह कहा है कि सोना इतना कम है कि आर्थिक दृष्टि से इसको इकट्‌ठा करना लाभ-प्रद नही होगा। नदी के बालू को छानकर कोरापुट, केउनझर तथा मयूरभज के कई स्थानो में कुछ सोना निकाला जाता है किन्तु अभी तक सोने की चट्टान का पता नही चला है।

## (११) गलेना

गलेना (सीसाधातु) बालगीर तथा मयूरभज जिलो के कई स्थानों में पाया जाता है। इसके साथ चाँदी का भी कुछ अश मिला रहता है। जियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया इसके बारे में पता लगाने का प्रयत्न कर रही है।

## (१२) माइका

कोरापुट, गजाम, कटक तथा ढेंकानाल मे पिगमेटाइट नामक धातु का पता चला है जिसमे अबरक मिला है किन्तु मस्कोवाइट माइका, जो आर्थिक दृष्टि से काम के योग्य है, बहुत ही कम है।

## परिशिष्ट १

### सपूर्ण राज्य में ठेके पर दी हुई विभिन्न धातुओ का विवरण

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| मैंगनीज और लोहा | मैंगनीज | लोहा | क्रोमाइट | कोयला | चीनीमिट्टी |
| ३४२६२ ६० | ६२७४८ ८९ | २०९२२ १५ | ७०८० | १०४२१ ६३ | १५४१ ९८ |
| ग्रैफाइट | लाइमस्टोन और डोलोमाइट | फायरक्ले | ओकर | सफेद मिट्टी | सोपस्टोन |
| १०४५ ४५ | १०१८१ ९७ | २२४५·३९ | ५४९ २० | २९० ८०५ | २९० ८९ |
| माइका | कियानाइट | अस्वेस्टास | कावलिन और क्वार्टजाइट | अन्य दूसरी धातुएँ | धातु स्वीकृत क्षेत्र का योग |
| ४५३ ९८ | ३२२८·५७ | ९२८·९५ | ४११२ ९० | ४४७४ ९६ | २५९·८३७ वर्गमील |

रहता था। काम वढने लगा। १९३७ में वर्धा से रामसुखसिंह भारती आये और ब्रह्मपुर में रहने लगे। उनका काम भी लगन का था।

१९३८ में कांग्रेसी सरकार वनी। इससे राष्ट्रभाषा की व्यापकता वढी। इसी वीच सभा के कई मत्री वने परन्तु सभापति वही रहे। जो मत्री वने थे उनमें श्रीयुक्त लक्ष्मीनारायण जी साहू एक है। अव श्री राजकृष्ण वोस मत्री वनाये गये थे। मैं स्वय प्रवान प्रचारक और सचालक था। उत्कल में भी कांग्रेसी सरकार वनी। उस समय उडीसा के प्रधान मत्री श्रीयुक्त विश्वनाथ दास थे और शिक्षा-मत्री थे वोधराम दूवे। भाग्य से श्री राजकृष्ण जी वोस शिक्षा विभाग के पार्लिया-मेंटरी सेक्रेटरी वन गये। आपने तमाम स्कूलो को सूचना दी कि ४ वजे से ११ वजे तक हिंदी पढाना होगा और उसके अनुसार कार्य शुरू हो गया।

सभा के भाग्य से इस समय उसे एक विद्वान् श्रीयुक्त आर्तवल्लभ महन्ती मिल गये। उनकी सहायता से पाठ्य पुस्तकें वनाई गईं। यही पुस्तकें सभी स्कूलों मे पढाई जाने लगी।

अव श्रीयुक्त हरेकृष्ण महताव जी के कथन पर सभा का कार्यालय कांग्रेस-भवन के साथ जानकीनाथ-भवन में आ गया था।

कांग्रेसी सरकार जव तक चली, हिंदी की पढाई भी जारी रही। इस वीच सभा का काम काफी वढ गया था। लोगो में उत्साह तो था ही, किसी ने इसका विरोध नही किया।

१९४० में कांग्रेसी सरकार टूटी। हिंदी की पढाई हटी। जिन हिंदी-शिक्षको को सरकार ने रखा था वे निकाल दिये गये। इनमें हमारे साथी प० वनमाली मिश्र भी थे।

प० वनमाली मिश्र आरभ से सभा के सपर्क में रहते रहे है। खादी भडार के काम से छुट्टी पाते ही वे शाम के २,३ घटे सभा में जरूर विताते। वे मेरी प्रेरणा से हिंदी-शिक्षक वन गये। उसी समय आपने विशारद की परीक्षा पास की। वे सरकारी कामो से मुक्ति पाकर सभा के कामों में पूर्ण समय देने लगे।

कांग्रेस सरकार के हटते हिंदी तो हटाई ही गई, साथ ही साथ जो उच्च कर्मचारी खद्दर पहिनने लगे थे उन्होने उसे उतार फेंका, जैसे साँप केंचुल फेंकता है। इतना होते हुए भी सभा के काम में कमी नही पडी। लोगो में हिंदी के प्रति उत्साह था। उन उत्साही स्कूलो में रानीहाट सर्वप्रथम था जिसमें प्रवान शिक्षक थे श्री वाछानिधि दास, जो आज भी है।

सन् १९३७ में वर्धा में राष्ट्रभापा-प्रचार समिति वनी। समिति की परीक्षाएँ ली जाने लगी। राष्ट्रभापा-प्रचार के लिए ये परीक्षाएँ चलाई गई थी। इनके चलाने में गाधीजी का पूरा हाथ था। काका कालेलकर जी के सचालकत्व के कारण काफी छात्र हिंदी परीक्षा मे वैठने लगे थे। इधर कांग्रेस सरकार के टूटते ही जानकीनाथ-भवन से कांग्रेस कार्यालय तथा उत्कल प्रातीय हिंदी राष्ट्रभापा-प्रचार सभा हट गई। सभा का नाम अव उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभापा-प्रचार सभा था।

१९४२ का आन्दोलन आरभ हुआ तो सभा के भीतर तहलका मच गया। कौन जेल जाय, और कौन वहाँ रहे? सभा का काम इतना वढ गया था कि उसे छोडकर जाने के लिए मै

## परिशिष्ट ३

### ओडिशा राज्य में लिये जानेवाले धातु-कर का नक्शा

| धातु का नाम | १९५३ (रुपयो में) | १९५४ (रुपयो में) | १९५५ (रुपयो में) | १९५६ (रुपयो में) |
|---|---|---|---|---|
| १—मैंगनीज | ४,१८,८३०–५–३ | ७,७०,७३२–१४–६ | ७,८०,४३०– ३–९ | ९,९६,९४०– ८–३ |
| २—कच्चा लोहा | ३,९८,०५२–१–० | ४,१८,७२७–१५–३ | ४,३०,४७८– ७–९ | ४,६३,३७५– ०–९ |
| ३—क्रोमाइट | ५४,५८७–२–० | ५४,५०७– ६–९ | ९७,३१३–११–३ | १,३२,९६७–१४–० |
| ४—डोलोमाइट और लाइमस्टोन | ६६,०४९–४–६ | ६७,८४३–१२–६ | ८१,०१३–१०–६ | १,३२,६१४– १–० |
| ५—कोयला | १,३६,४९१–०–६ | १,५६,८७७– ७–० | १,६९,४५३– ५–० | २,१०,४९३–१०–३ |
| ६—चीनी मिट्टी | ११,०७८–०–९ | २०,३६९–१०–९ | १३,५५०–१३–६ | १७,५७६– ४–६ |
| ७—फायरक्ले | ४,१५२–४–० | २,६४५– ६–० | २,७९५– ६–० | २,१६६–११–९ |
| ८—कीनाइट | ४०३–६–० | १,२७९–१४–९ | | ६५३– ९–० |
| ९—सोपस्टोन | ३३९–६–० | ६६२– २–० | ५६८– २–० | १,२९४– ०–० |
| १०—ग्रेफाइट | ३५९–७–० | २९०– ४–० | ७७–१३–० | ४,६५४– ९–० |
| ११—रेड आक्साइड | २०८–५–० | २०८– ५–० | २०८– ५–० | |
| १२—अन्य कर | ४५,९४४–०–९ | २,९१,८३४–१४–६ | ३,०९,४१०– ३–९ | ५८,७८४– ३–९ |
| योग | ११,३६,४९४–११–६ | १७,८५,९८०– १–० | १८,८५,२९०– १–० | २०,२१,२२०– ८–३ |

वासी-भाषाएँ लिपि-रहित है। वे कडाई के साथ व्याकरणिक नियमो में आवद्ध, पीढियो से वोली जाती रही है। अतएव आदिवासी-भापाओ को व्याकरणिक नियमो से शून्य सोचना भ्रमपूर्ण है। आदिवासी भाषाएँ विचारो और कल्पनाओ से परिपूर्ण है। मानवी-आकलन के प्रकटीकरण का साधन होने के नाते भाषा को अवश्य ही समाज के भौतिक आधार के मेल में होना चाहिए। इसलिए, हो सकता है शब्द वहुत अधिक न हो, दूसरे, कठ-ध्वनियो के दवे और रोके हुए उच्चारण का प्रसार ही भाषाओ में अनेक की विशेषताएँ है। आस्टिक भापाओ में एकवचन, द्विवचन और वहुवचन होते है। सयुक्त सर्वनामवाले कर्ता तथा कर्म का भी प्रयोग होता है और सजीव-निर्जीव पदार्थों के अनुसार उनके रूपो में परिवर्तन होता है। उनके विचार से सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युत् और आकाशीय पिंड सजीव पदार्थ हैं और वृक्ष निर्जीव है। आदिवासी भापाओ मे मधुर सगीत और रोमाचकारी कथाएँ है। ये आदिवासी-विश्वासो और परपराओ के द्योतक है।

आदिवासियो की जातीय वनावट, आस्टिक (दक्षिणी) समूह के मानववर्ग से सारूप्य प्रकट करती है। इस समूह की व्याख्या इस प्रकार की जाती है कि उनके वाल घुंघुराले, भौंहें ऊँची उठी हुई, नाक चिपटी, सिर लवा और चेहरा कुछ चिपटा होता है। इस दृष्टि से उत्तरी और दक्षिणी आदिवासियो में कोई अतर नही है। विचित्र वात तो यह है कि लाजियासौरो और गादबाओ में मगोली वनावट पाई जाती है। घालमेल के कारण भारतीय जातियो के इतिहास की ऐसी लीलाओ का समाधान सरलतापूर्वक नही किया जा सकता। ओडिशा की अनेक जन-जातियो में आदिवासी आकृतियो का होना एक विचारणीय विषय है। ब्राह्मण और करण ऐसी कुछ ऊँची जातियो को छोडकर, अधिकाशत लवे सिर, चिपटी नाक, उभरी भौंहें समान रूप से पाई जाती है। इसका अर्थ यह हो सकता है कि हम लोगो ने अपनी वनाचट आदिवासियो के निकट-सपर्क से विरासत में पाई है। कुछ भागो में, शारीरिक वनावट के अनुसार मस्तिष्क की श्रेष्ठता और हीनता के विषय में कतिपय गलत धारणाएँ फैली हुई हैं। वैज्ञानिको ने वहुत से तथ्यो के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि शारीरिक वनावट से प्रतिभा और कल्पनाशक्ति का सबध वहुत कम है। कल्पनाओ को छोड दें तो भी जातीय वनावट एक वैज्ञानिक तथ्य है। सहस्र वर्षों से निम्न जातियो का आदिवासियों से मिश्रण होता आ रहा है। इसका कारण रखेली प्रथा का होना है। कुछ इतिहासकारो का विश्वास है कि कलिंग साम्राज्य एक आदिवासी साम्राज्य था। कब्रिस्तान के पत्थरो और अन्य प्रमाणो से यह सिद्ध हो जाता है कि उत्तर में गगा तक आदिवासियो का प्रभुत्व था। पुराणो में वर्णित झारखड, असुरो द्वारा निवसित वन-प्रदेश था जो निश्चित रूप से मध्यभारत के वहुत वडे भाग को सम्मिलित किये हुए था। यह एक सार्वभौम दु खात घटना है कि आक्रमणो के समय विजेताओ द्वारा स्त्रियो का अपहरण कर लिया जाता है और उन्ही से भावी सतानें उत्पन्न होती हैं, क्योकि वद्ध जीवन की कठिनाइयो में वहुत कम स्त्रियाँ विजेताओ के साथ रह पाती हैं।

भारतवर्ष में आदिवासियो के उन्मूलन का क्रम कोई नया नही है। वहुत से आदिवासी अपने परपरित आचारो का परित्याग कर हिंदुओ मे मिल गये है और जातिप्रथा की निम्नतम श्रेणी

कौडियाँ एक बहुत ही प्रशमनीय दृश्य उपस्थित करती हैं। लाजियासीरो के कामदार और लबे पुछल्ले (Tail Pieces) शोभा की वस्तुएँ हैं। अब ये भडकदार पहनावे घटिया किस्म की कमीजो और बुशशर्टों द्वारा हटाये जा रहे हैं। पहले आदिवासियो के विभिन्न वेष उनको एक दूसरे से अलग प्रकट करते थे, किंतु आज के पहनावे ऐसा नही कर सकते और इन नये वस्त्रो का अगीकरण सभी के वश की बात भी नही है।

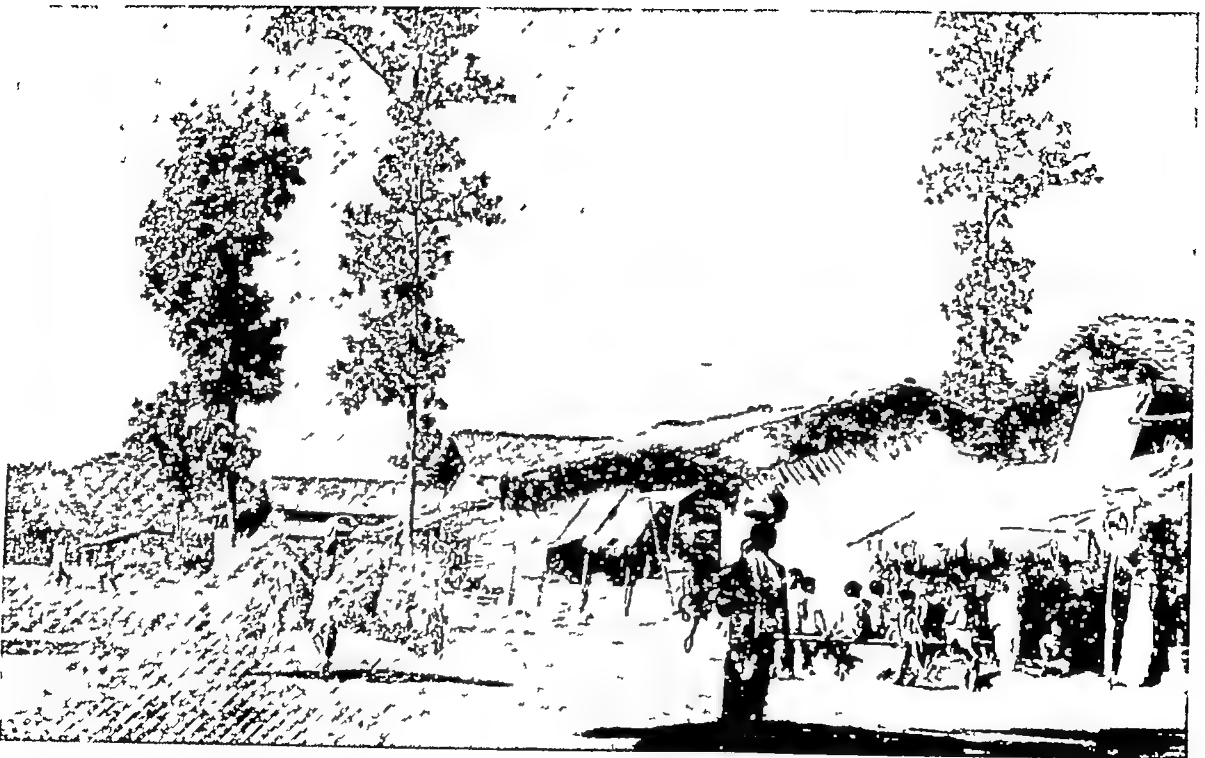
इसके साथ-साथ यहाँ के आदिवासियो की कलाओ और दस्तकारियो का वर्णन भी कर देना आवश्यक है। जब मानव-कदराओ मे रहता था उसी समय विभिन्न प्रकार के कलात्मक विचारो और प्रकाशनो का विकास हुआ। प्राचीन प्रस्तर युग की कदराओ मे बहुत पहले समाप्त हुए जानवरो की हड्डियो के साथ मानव-अवशेष, मूल निवासियो के औजारो, सीग, घोघे और गुरियो तथा लटकनो के आकार मे तराशे गये पत्थर पाये गये है जिनके द्वारा मूल निवासी अपने को अच्छी तरह सुसज्जित करते थे। उस समय की यथार्थवादी चित्रकारी भी देखी जाती है। उससे प्रकट होता है कि मनुष्य के कृषि के औजार, कुम्हारो के चाक तथा इस प्रकार के आविष्कारो के बहुत पूर्व मनुष्य ने ऐसी कलाओ का विकास कर लिया था जिसकी प्रशसा आधुनिक युग के लोग भी करते हैं। कला की स्पष्ट परिभाषा देना तो कठिन है, किंतु यह वस्तुओ या कृत्यो मे प्रच्छन्न गुणो के द्वारा उत्पन्न मनुष्यो की सौंदर्य-भावना का प्रतिफल है। कला आध्यात्मिक और प्राकृतिक अनुभूतियो के सयोग का प्रतीक है। इसका एक पहलू सुन्दर आकृतियो की रचना है। भिन्न-भिन्न समाजों में सौंदर्य का भिन्न-भिन्न प्रतिमान है। यह पुराना विश्वास गलत है कि मूल निवासियो में विशुद्ध सौंदर्य-प्रवृत्ति पर आधारित कला का कोई रूप ही नही था, क्योंकि कुछ ऐसी आकृतियाँ मिली हैं जो यह प्रकट करती हैं कि मनुष्य की इस प्रेरणा की सतुष्टि के लिए ही इनकी रचना हुई है। हमारे आदिवासियो के समस्त कलारूपो का पूर्ण ज्ञान हमें नही है। अब उनके कलारूपो का पता लगाने के लिए गभीर प्रयास किये जा रहे हैं। उनके सगीत में, नृत्य-कथाओ में, पहेलियो मे और भौतिक उपादानो में हम उनकी कलात्मक अभिव्यजनाओ का दर्शन कर सकते हैं। दक्षिणी ओडिशा के सौरा लोग अपने भित्ति-चित्र के लिए प्रसिद्ध हैं। वे विभिन्न आकृतियाँ और खाके बनाते हैं। वे चित्र जिसे एलविन ने "इकोन" (Ikons) की सज्ञा दी है, देवताओ को समर्पित हैं और उनमें अत्यत धार्मिक जोश मिलता है। चौखटों पर नक्काशी की गई होती है। देवताओ की दारु-मूर्तियाँ अनुकरणात्मक कला के नमूने हैं। आधुनिक युग में भी हारो में गुथी हुई विभिन्न प्रकार की गुरियो और कपडो के अलकरणो को अच्छी मान्यता प्रदान की गई है। कोया लोग घोघो और लटकती हुई गुरियो के द्वारा सुदर मुरेठे तैयार करते हैं। गादबा लोग सुन्दर गोलाकार मकान बनाते हैं। कध लोग अपने चेहरो पर ज्यामितिक ढग के गोदने गोदवाते हैं। सथाल और हो लोग अपने सभी भौतिक उपकरणो पर कला की छाप लगाते हैं। उनके नृत्य अनुरूपता और लालित्य के लिए प्रसिद्ध हैं। बिरहोर लोग, जो एक जगली बद्दू आदिवासी है, पूर्ण ज्यामितिक कोण के आकार की पर्णकुटियाँ बनाते हैं। आदिवासियो में उनके औजार और हथियार, धनुष-बाण, व्यक्तिगत वस्तुएँ, वाद्ययन्त्र आदि



विस्मय की मुद्रा में भूयाँ रमणियाँ

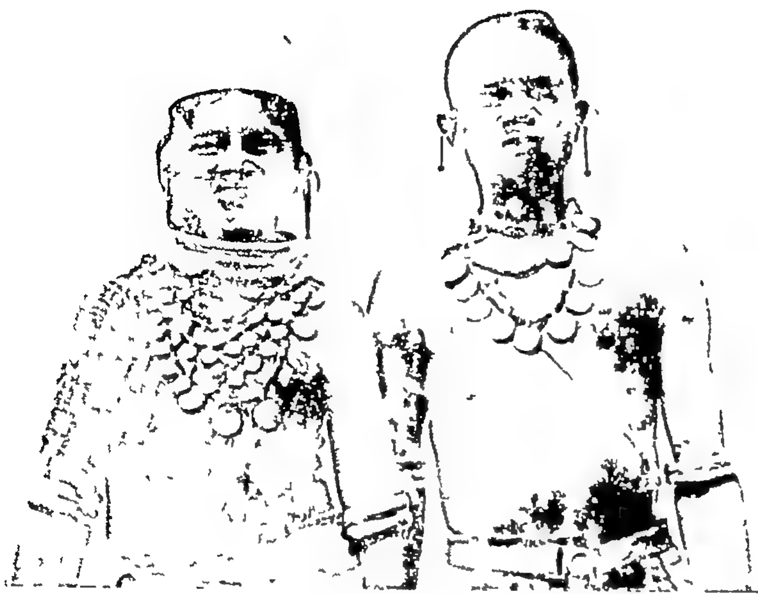


प्रकृति की गोद में पली बण्डा रमणी



आदिवासी बस्तियों का इलाका





हर्षोत्फुल्ल मुद्रा में कोयादम्पति



हो गये हैं। अब यह स्पष्ट हो गया है कि जादू विज्ञान के अत्यधिक अनुरूप है, क्योंकि निरीक्षण, प्रयोग और परिणाम दोनो के आवश्यक अग है। एक सच्चे वैज्ञानिक की भाँति इस विषय में एक जादूगर भी अधिक आश्वस्त रहता है कि यदि आचारो का ठीक-ठीक पालन किया जाय तो जिस परिणाम पर पहुँचा जाता है वह अवश्य सत्य होता है। यदि देवताओ और आत्माओ को उचित बलिदान दिये जायँ तो उन्हें वश में किया जा सकता है और वे उपकार भी कर सकती है। किंतु धर्म के साथ ऐसी बात नही है। दैवी शक्तियाँ केवल सतुष्ट की जा सकती है, वे ओझइत या ऐंद्र-जालिक द्वारा वश में नही हो सकती। इसीलिए यह कहा जाता है कि जादू शक्ति पर आधारित है और धर्म दुर्बलता पर। अक्सर कहा जाता है कि आदिवासी धर्म जादू, टोना और भूतों से भरा हुआ है। किंतु इस प्रकाश में ओडिशा के आदिवासियो की जाँच करने पर यह बात खरी नही उतरती। मुडाओ और कधो में पुरोहित, पाहन और देहुरी होते है। सौरो मे भुइयाँ होते है। ये गाँव के धर्म-निरपेक्ष मुखियों के पश्चात् दूसरी श्रेणी के माने जाते है। अस्तु, यह स्पष्ट है कि आदिवासी मनोविज्ञान चिर-स्थापित परपराओ पर आधारित है और वे कार्य-कारण, परिणाम अथवा बहुत अधिक तर्क की चिंता नही करते।

सामाजिक गठन के विषय मे इतना और कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न आदिवासियो में परिवार के सगठन और विवाह का बहुत अधिक महत्त्व है। परिवार मे माता-पिता और उनकी सतानें होती है। यह परिवार पडोस, वश और गाँव ऐसी बडी इकाइयो का अग होता है। समाज के स्तर, आदर्श और परपरा के अनुसार परिवार भावी पीढी के निर्माण का उत्तरदायित्व लेता है। वृद्ध पुरुष नवयुवको में आदिवासी पेशो और कर्तव्यो का सस्कार करते है। अत प्रारभ से ही बच्चा उचित व्यवहार करना सीख जाता है और समयानुसार अपने काम-धधो मे दक्षता प्राप्त कर लेता है। परिवार की इस सस्था ने शहरू और औद्योगिक सम्यता के छलकपट तथा मिलावट के प्रसार से बहुत ही धक्का खाया है। परिवार के सदस्यो को एक सूत्र में बाँधनेवाली एकता की शक्तियो पर व्यक्तिवाद हावी हो गया है। ऐसे आदिवासी जो शिक्षितो के सपर्क में आये है और सभ्यता के चगुल में फँस गये है, वे अत्यत शीघ्रता से व्यक्तिवादी हो गये है। मयूरभज के सथाल, केंदुझर के कोल और सुदरगढ के मुडा और उराँव इन आदिवासियो में सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं। किंतु कधो और सौरो का चित्र ऐसा नही है। यहाँ परिवार बुढापे अथवा पगु-अवस्था में अब भी सरक्षण प्रदान करता है। अत्यत बूढी माताओ और दादियो का उचित ध्यान रक्खा जाता है और उन्हें भोजन दिया जाता है। निकट और दूर के सबधी बिना किसी भेद-भाव के एक साथ सम्मान पाते हैं। आदिवासी क्षेत्रो में जब कटाई और इस प्रकार के धधे समाप्त हो जाते हैं तो बहुत लोग दूर के रिश्तेदारो को बुलाने के लिए आते-जाते दिखाई पडते हैं। वे अपने साथ कुछ अनाज और शराब के बर्तन ले जाते है। वहाँ सदैव आपसी लेन-देन चलता रहता है और यह रवाज उनकी अलिखित सहिताओ द्वारा रक्षित होता है। विवाह परिवार का पूरक होता है। आदिवासी समाजो में विवाह कर्तव्य और अनुग्रह दोनो है। जब कोई लडका १२ वर्ष का हो जाता है तो उसके माता-पिता अथवा यदि माता-पिता मर गये हो तो उसके सबधी

अधिक प्रभाव रखती है। गुनपुर के सौरो में औरतें भी ओझइत होती हैं जो देवताओ को वश मे रखती है। आदिवासी पितृ-प्रधान होते हैं और पिता के वाद पुत्र ही उत्तराधिकारी होता है। स्त्री विवाह के पश्चात् अपने पतिगृह में रहने के लिए आती है। किंतु सौरो की भाँति कुछ औरतें दोनो ओर—अर्थात् मायके और ससुराल से—सवध वनायें रखती हैं और मरणोपरात उनका अतिम सस्कार दोनो स्थानो पर किया जाता है। पति की मृत्यु हो जाने पर वह घर मे रख ली जाती है और चाहे तो देवर से शादी भी कर सकती है। यदि ऐसा सभव न हो तो विधवा अपने मायके चली जाती है। यदि वह दूसरा विवाह करती है तो पहले पति के परिवारवाले वधू-मूल्य के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार के झगडे आदिवासियो में प्रचलित रिवाजो के अनुसार बूढो द्वारा निवटाये जाते हैं।

कुछ हिस्सो में एक यह भी गलत धारणा है कि आदिवासी दुश्चरित्र होते हैं, आदिवासी-जीवन बुराइयो से परिपूर्ण समझा जाता है। ये वहुत ही विपयी और विलासी समझे जाते हैं। किंतु मै इस वात पर जोर देना चाहता हूँ कि इस प्रकार की सभी धारणाएँ विलकुल निराधार हैं। उत्तरप्रदेश, विहार और ओडिशा के आदिवासियो के वीच काम करने के अनुभवो ने मुझे आश्वस्त कर दिया है कि यदि नैतिकता की खोज की जाय तो वह उन आदिवासी जातियो में पाई जायगी जो गैर-आदिवासियो के निकट सपर्क में नही आये हैं। वहुत से आदिवासियो में युवक सस्थाएँ हैं जिनमें युवको और युवतियो को एक दूसरे से मिलने का अवसर मिलता है। अनेक आदिवासी जातियो में विवाह-पूर्व का सवध कुछ अशो में मान्य है। उनके यहाँ 'सेक्स' भयोत्पादक अथवा विघ्नकारक नही है। यह भोजन, आवास और रक्षा की भाँति प्राणी की एक मुख्य आवश्यकता है। हम लोगो के समाज में यौन-जीवन भेदभरे कर्तव्यो और हास्यास्पद वर्णनो से आच्छादित है। सभोग को, जो कि जीवन का एक प्राकृतिक एव साधारण क्रम है, विचित्र स्वरूप प्रदान कर दिया जाता है। यही कारण है कि आधुनिक समाज में 'सेक्स' का अत अत्यत दुखद होता है और अधिकाशत पागलपन तथा नैराश्य ही हाथ लगते हैं। अधिकाश सभ्य देशो में यौन-सवधी अपराध और नैतिक पतन साधारण सी बातें हो गई हैं। शिक्षाशास्त्रियो का विचार है कि माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रमो में यौन-शिक्षा और यौन-ज्ञान का भी एक आवश्यक अग होना चाहिये। इस दिशा में आदिवासी हमसे एक कदम आगे हैं। यौवनागम के साथ लडके और लड-कियाँ 'सेक्स' के वारे में पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं। उनके लिए सेक्स कोई रहस्य की वस्तु नही रह जाता। मुडा लोगो का अपना शयनगृह "गिट्टीओरा" होता है जिसमें युवक को यौन-सवधी कर्तव्यो की शिक्षा दी जाती है। उराओ के यहाँ अपना जुकअदपा (Junk-Adpa) रहस्य-गृह (Preventions House) प्रत्येक गाँव के बीचोबीच बना होता है। इस प्रकार का घर मुडाओ में घोटुल (Gotul) कहा जाता है।

विवाह के पूर्व का जीवन चाहे जैसा रहे परतु आदिवासियो के विवाह के पश्चात् का जीवन शाति और निष्ठा पर आधारित होता है। विवाहित जोडी एक दूसरे से बहुत हिली-मिली रहती है और उनका दापत्य जीवन क्रमवद्ध और सतुलित होता है। किंतु इसका यह अर्थ नही है कि

वल्कलो (छाल के कपडो) के द्वारा नाचते समय मोहक दृश्य उपस्थित करते हैं। गादव भी वैसे ही मडल बनाते और बारी-बारी से अपना शरीर झुकाते है। मुइयो और जुवागो की अपनी नृत्य-शैली है। इसमें पुरुष तो बाजा बजाते है और स्त्रियाँ उनके चगु नामक प्रसिद्ध वाद्ययन्त्र के ताल पर नाचती हैं। सारो में विभिन्न प्रकार की रगीन ढोलको द्वारा सामूहिक नृत्य होता है। नाच के समय प्राय सभी आदिवासी सुदरतम वस्त्र पहनते है। उराँव लोग बहुरगी पाँखे और कपडे पहनते है। उनका नाच सभी स्थानो पर बहु-प्रशसित होता है। आदिवासियो के इन लोक-नृत्यो को आजकल बडा प्रोत्साहन दिया जा रहा है, क्योकि बाहरवालो के सपर्क में आकर वे अपने परपरागत नृत्य को छोडते जा रहे है। अत परोक्ष रूप से उनका जीवन-सत्व प्रभावहीन होता जा रहा है।

इसी पृष्ठभूमि में हमें ३० लाख आदिवासियो पर विचार करना है। बासठ आदिवासी जातियो में पौडी मुइँया, पहाडी जुआग, कोरवा, लाजियासौरा, कुटिया और डोगरिया कध, कोया, गादबा, परजा और बोडा प्रारभिक अवस्था में है। इन आदिवासी जातियो ने अपने रीति-रवाज और परपराओ को बहुत अश तक कायम रक्खा है। उन्होने अपनी बोलियो की रक्षा की है और वे अधिकाशत पहाडी कृषि—जिसे बदलती खेती (Shifting Cultivation) कहते है—पर निर्भर करते है। मुडा, सथाल, उराँव, हो, मुइँया और सावर ये उन्नत आदिवासी जातियाँ है, जो अपनी आदिवासी विशेषताओ को छोडती जा रही है और परिवर्तनो को अपनाती जा रही है। अब हम लोग आदिवासियो को धीरे-धीरे और क्रमिक रूप से अपने में पचा लेने की नीति अपनाते जा रहे है। पृथक्करण की पुरानी नीति का अत होता जा रहा है। आदिवासियो के जीवन-स्तर और शिक्षा को उन्नत करने के लिए कल्याणकारी योजनाएँ नियोजित हो रही है तथा लागू की जा रही है। यहाँ आदिवासी-शिक्षा की भलाई-बुराई के विषय में उचित विचार भी कर लेना आवश्यक है। आलोचना की जाती है कि आदिवासी लडके-लडकियाँ शिक्षा-सस्थाओ में अन्य लडके-लडकियो का मुकाबला नही कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, शिक्षित हो जाने पर आदिवासी पुरुष-स्त्री अपने सबधियो से अलग होते जा रहे है और साथ ही नये वातावरण से वे कुछ पा भी नही रहे है। शिक्षित आदिवासियो में ऐंद्रिय-पतन—जो उनमें कभी सुना नही जाता था—बडी बुरी तरह से दिखलाई पड रहा है। आदिवासियो में प्रत्यक्ष शिक्षा प्रचलित है। बच्चे बचपन से ही आदिवासी-पेशो की शिक्षा पाते है और वे आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होते जाते है। सामाजिक नियमो और आदिवासी-सहिताओ की पूर्ण आज्ञाकारिता उन्हें सिखाई जाती है और उनके विरुद्ध जाने का निषेध किया जाता है। जहाँ-जहाँ युवक सगठन है, वहाँ वे युवको को सामाजिक जीवन के सक्रिय सहायक होने की शिक्षा देते है। जब कि आदिवासियो में यह स्थिति है, हम लोगो की सस्थाओ में शिक्षा की परोक्ष-पद्धति है। उन पर अनुशासन लादा जाता है। आधुनिक युग में आत्मविश्वास की कमी है इसलिए आदिवासियो की शिक्षा-पद्धति का मनन बडी गभीरता से किया जा रहा है। मनुष्य-शरीर-रचनाशास्त्री (Anthropologist) और शिक्षा-शास्त्री दोनो जोर देते हैं कि श्रम की महिमा, मेल, अनुशासन और आदिवासी समितियो



राष्ट्रभाषा पुस्तकालय

# उत्कल का भक्ति-साहित्य

## अध्यापक श्री कान्हुचरण मिश्र, एम० ए०

ओडिया भाषा भारतीय प्राचीन आर्यभाषा से निकली है। यह वहुत प्राचीन है और साथ ही इसका साहित्य भी। साधारणत हम कह सकते है कि मनुष्य के कार्यकलाप का लिखित विवरण ही साहित्य है। इसका एक व्यापक अर्थ भी है। इसी साहित्य से मानव-सभ्यता का परिचय मिलता है। काव्य भी साहित्य है लेकिन व्यापक अर्थ में इसका व्यवहार होता है, क्योकि रामायण, महाभारत, इतिहास के रूप में मान्य होने पर भी काव्य ही है। प्रत्येक साहित्य की सृष्टि धर्म से ही हुई है। पृथ्वी में प्राचीनतम साहित्य तथा धर्मग्रथ भारतीय आर्यो के वेद है। वेद में तीन काड है—कर्म, ज्ञान और उपासना। उपासना भक्तिमूलक है। वेद में अग्नि, इन्द्र, सूर्य, वरुण, रुद्र और विष्णु की सूक्तियाँ है। उनमे इनकी स्तुति, देवताओ के रूप में, हुई है। ये स्तुतियाँ भय तथा भक्तिमूलक है। मानव-जीवन मे ज्ञान, इच्छा और कार्य पर्यायक्रम से विद्यमान है। मनुष्य श्रवण, दर्शन, स्वप्न आदि के कारण ही अनुभव करता है, अर्थात् किसी विषय में उसका साधारण भाव या ज्ञान पैदा होता है, तव वह उसके प्रति अनुरक्त या विरक्त होता है। वह उसे पाने या त्यागने के लिए तदनुसार कर्म करता है। यह कार्यतत्परता उसे नूतन ज्ञान प्रदान करती है और विषय के प्रति आसक्ति पैदा करती है। फिर उसकी क्रियाशक्ति बलवती हो उठती है। जीवन में ये त्रिविध क्रियाएँ चक्रवत् घूमती है। ये सभी अवियोज्य है, फिर भी भिन्न रूप मे गण्य है। ये तीन विषय अलग-अलग होने पर भी धर्म के अविभेद्य अग है। गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञानयोग के सबध में कहा गया है। भागवत के एकादश स्कन्ध के बीसवें अध्याय में ज्ञान, कर्म और भक्ति के योग के विषय मे कहा गया है। उस अध्याय में भक्ति परमेश्वर की अर्च्चना तथा उपासना रूप में मान्य है।

पुराणों में कर्म, ज्ञान और भक्ति की प्रधानता वर्णित है। ब्रह्मपुराण के १४५वे अध्याय में कर्म की प्रधानता इन शब्दो में बताई गई है—कर्महीन प्राणी कही नही है, इसलिए कर्म ही प्रकृत मुक्ति का कारण है। कर्म के बिना अपनी प्रधानता कहना उन्मत्त का प्रलाप जैसा है।[1]

गीता में ज्ञान की प्रशस्ति है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि "चार भक्तो मे

---

१. सर्व कर्मैव नाकर्मा प्राणी क्वाप्यत्र विद्यते। कर्मैव कारण तस्मादन्यदुन्मतचेष्टितम्।
ब्रह्मपुराण, अ० १४५।

गणेश को परमात्मा के रूप मे ग्रहण किया और वेद के वाक्सूक्त को देवीसूक्त के रूप में ग्रहण किया गया। गणेश के लिए गणपति उपनिषद्, गणेशपर्व और उत्तरतापिनी उपनिषद् हैं। शक्ति और दुर्गा के विषय मे देवी उपनिषद् है। वैदिक युग के प्रधान देवता अग्नि, इन्द्र, वरुणादि पौराणिक युग में अप्रधान देवताओ के रूप में गिने जाने लगे और ये पचदेवता परम ब्रह्म के रूप में गृहीत हुए।

पचदेवताओ के उपासक अर्थात् विष्णु के वैष्णव, शिव के शैव, सूर्य के सौर, गणपति के गाणपत्य और शक्ति के शाक्त उपासको के रूप में परिचित है। पुराण युग में पचदेवताओ के साथ अग्नि भी षष्ठ देवता के रूप में पूज्य हैं। जो जिस देवता के उपासक है, वे उनको परम देवता के रूप में पूजते हैं।[1]

ऊपर कहा गया है कि वैदिक युग में प्राय हरेक देवता परमेश्वर के रूप में स्तुत है। भगवान् एक हैं लेकिन उनको पण्डितो ने अनेक प्रकार से कहा है।[2] इन देवताओ के प्रतीक जगन्नाथ हैं अर्थात् इन पचदेवताओ के उपासक अपने उपास्य देवता को जगन्नाथ के विग्रह मे देखते है।

पहले कहा गया है कि यज्ञ की पत्नी श्रद्धा है और यज्ञ की अन्य कई क्रियाएँ तामस तथा राजस भक्तिमूलक है तथा यज्ञ प्रवृत्तिमार्ग की क्रिया है। उत्कल की प्राचीन परिस्थितियाँ बहुत है, क्योकि ब्रह्मा और देवताओ ने गय के पवित्र शरीर पर यज्ञ किया था। गय का सिर गया में, नाभि याजपुर में और पैर महेन्द्रगिरि के पास पीठापुर में है। महाभारत और वायु पुराण मे इस यज्ञविघान का उल्लेख है। यह राज्य भी निवृत्ति धर्म या निष्काम धर्म के प्रधान पीठ के रूप में मान्य हुआ। प्रबल प्रवृत्ति मार्ग के अनुष्ठाता परशुराम ने अपने जीवन का अतिम समय कलिंग के महेन्द्र अचल में व्यतीत किया था और ब्रह्मानुध्यान में अपने को निमग्न किया था। कलिंग में उनकी अवस्थिति के कारण भारतीय मुनि, ऋषि, राजा और देवता उनके दर्शन के लिए यहाँ आते थे। परशुराम की अवस्थिति तथा देवताओ के समागम के साथ अन्य लोगो के आने से यह निवृत्ति मार्ग के परम पीठ के रूप में मान्य हुआ। अन्य धर्मों का प्रसार होने पर भी भारत में विष्णु, शिव और सूर्य की पूजा वैदिक युग से चलती आ रही है। उत्कल में भी इसका प्रचलन था। बौद्धधर्म और जैनधर्म का प्रवर्तन तथा प्रचलन होते हुए भी उसका प्रसार था। वैदिक धर्मानुसार

---

१ गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
समभ्यर्च्य देवाष्टकमिष्टदेवञ्च पूजयेत्॥
गणेश विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम्।
आत्मन शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे॥
ज्ञानाय शकर दुर्गा परमैश्वर्यहेतवे।
सम्पूजने फलमिद विपरीतमपूजने॥—ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणेशखण्ड।

२ एकम् सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।—ऋग्वेद।

वैदिक युग से विष्णु की पूजा चलती आ रही है। यह कहना भ्रम है कि बुद्धदेव के बाद गया का माहात्म्य बढा, क्योकि ईसा की आठवी शताब्दी मे वेद के टीकाकार यास्काचार्य ने अपने पूर्ववर्ती टीकाकार साक्पुणि के वचन का उद्धरण दिया है। उसमें उन्होने "गयशिरसि" कहा है। विष्णु की पूजा और प्रतिपत्ति बौद्ध धर्म के बहुत पहले से प्रचलित थी और उत्कल में "विष्णु यज्ञ-पुरुष" की आराधना यज्ञानुष्ठान मे प्रचलित हुई। जगन्नाथ की प्रतिष्ठा नाना धर्मों के विषय में सकेत करती है। प्राचीन काल से ही जगन्नाथ जी विष्णु के रूप में गृहीत है। उत्कल के प्राचीन राजवशो में से बहुत से वैष्णव थे। बौद्ध और जैनधर्म के प्रचलन के बाद शैव और वैष्णवधर्म का प्रचार कम होता गया किंतु शुग राजत्व के समय (ईसा पूर्व प्रथम शती) पुष्यमित्र के द्वारा वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान हुआ था। इसके बाद के शक और कुशाण राजा शैव या बौद्ध धर्मानुयायी होने के कारण वैष्णव या वासुदेव धर्म के प्रति अनुरक्त नही थे। गुप्त-राजत्व के समय वैष्णव अथवा ब्राह्मण धर्म का पुन अभ्युत्थान हुआ। हर्षवर्द्धन के समय तक ब्राह्मण धर्म में शिव, विष्णु आदि की पूजा भक्ति-समन्वित थी। बाद में राजनीतिक विशृखला, धर्म में व्यभिचार और मुसलमानो के आक्रमण के कारण धर्म में गत्यवरोध आ गया और दक्षिण में उत्तराचल के वैष्णवो की अवस्थिति तथा धर्म-प्रचार के कारण तामिल देश में वैष्णव धर्म का वास्तविक उत्कर्ष हुआ। भागवत मे इस ओर सकेत किया गया है —

"इस कलियुग में कही-कही कम और विशेष रूप से द्राविड देश में वैष्णव भगवद्-भक्त अधिक सख्या में जन्म ग्रहण करेंगे। इस देश में ताम्रपर्णी, कृतमाला, कावेरी, प्रतीची नाम की महानदियाँ बहती है। जो इन नदियो का पानी पीते है वे शुद्धचित्त होकर भगवद्-भक्ति प्राप्त करते है।'[1] दक्षिण के ये भक्त आलवार कहलाते है। इनमे नाथमुनि, यामुनाचार्य और रामानुज प्रसिद्ध है। इन्ही रामानुजाचार्य के द्वारा प्रचलित वैष्णव धर्म उत्कल में परिपुष्ट हुआ। शकराचार्य शैव होने पर भी पचदेवताओ की उपासना के पक्षपाती थे। साथ ही वे विष्णुभक्त भी थे। रामानुजाचार्य ११ वी शताब्दी मे हुए थे। यहाँ पर विचारणीय विषय यह है कि जयदेव का 'गीतगोविन्द' इनके बाद लिखित है या पहले का है? जयदेव के राधाकृष्ण की प्रेमलीला के वर्णन में जो परकीया रति वर्णित है, वह सहजिया धर्म के शुद्ध सस्कार के रूप में ग्रहणीय है। यह अनुमान भागवत के रासपचाध्यायी के वर्णनो से सहज ही लग जाता है कि सहजिया धर्म की

---

१ क्वचित् क्वचिन्महाराज द्राविडेषु च भूरिश।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी।
ये पिबन्ति जल तासा मनुजा मनुजेश्वर!
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवोमलाशया.।

—भागवत, दशम स्कध, अध्याय ५, श्लोक ३९-४०।

सोनपुर में सुरेश्वरी, लकेश्वरी और समलाइ, वडम्वा में भट्टारिका, वाँकी मे चर्च्चिका, गजाम मे तारातारिणी, वाणपुर में भगवती और उग्रतारा, नीलाचल मे विमला, याजपुर में विरजा, झकड में शारला आदि पीठ अवस्थित हैं।

उत्कल के धर्मायतन में दुर्गामाधव-उपासना एक अभिनव कल्पना है। अन्य कही से इस उपासना की सूचना नही मिलती। दुर्गा के साथ माधव की पूजा तथा गुप्त यात्रा, वनदुर्गा विग्रह के साथ नीलमाधव या जगन्नाथ की उपासना भारतीय धर्म-जगत् और उपासना क्षेत्र को उत्कलियों का अनवद्य दान है। अत्यत प्राचीन काल से तन्त्र-साधना के प्रकृष्ट क्षेत्र के रूप में सम्मानित होने के कारण यह भूमि अनेक शक्तिपीठो से पूर्ण है। भुवनेश्वर के समीप चउषठी योगिनी पीठ, विरजा पीठ और नीलाचल के भैरवी पीठ जनसाधारण के हृदय में भक्तिभाव की सृष्टि करते हैं। जो भी हो, लेकिन विभिन्न शास्त्र, पुराण और काव्यादि से उदाहरण दिये विना उत्कल के भक्ति-माहित्य की रूपरेखा स्पष्ट नही हो सकती।

पहले कहा गया है कि 'वौद्ध गान ओ दोहा' ही उत्कल साहित्य की आदि-अवस्था है। वौद्धधर्म की वज्रयान शाखा के विभिन्न दोहे इसमें सन्निविष्ट हैं। कान्हुपाद, लुइपाद, शवरीपाद, ताडकपाद आदि उत्कलीय साधक बौद्ध सहजिया धर्म के सिद्ध थे। ये ज्ञान के विलासी थे तथा निर्वाण-प्राप्ति के लिए सदा उन्मुख रहते थे। शवरीपाद ने अपने एक दोहे मे कहा है कि "गुरु-वाक्य को धनुष वनाओ और अपने मन को वाण। वस, एक शर छोडकर परम निर्वाण को विद्ध करो।"[1]

लुइपाद ने कहा है "जिसका वर्ण, चिह्न, रूप कुछ भी मालूम नही, उसकी व्याख्या तत्त्व, वाण, आगम और वेद के द्वारा कैसे की जा सकती है?"[2]

रुद्रसुधानिधि ग्रन्थ में शिव की महिमा वर्णित है। उस ग्रन्थ के नायक हैं अभिनव चइतन या तरुणेन्दु शेखर। वे दुःखित हृदय से शिव की प्रार्थना करते हैं। इससे शिवभक्ति का निदर्शन मिलता है। प्रार्थना मे कहा गया है—"तरुणेन्दु शिखर छामुरे उमा होइ महाभय पाइ कर यत्र जोडि थिर करि कहिला—व्यग्रतार चित्त छाडि भो स्वामि तोर पदारविन्द कु आश्रय करि मुँ भ्रम होइलि यद्यपि मोते महाघोर नर्कंकु देउअछु समर्पि। भो देव केवण से दारुण वचन देलुँ आज्ञा। ताहा चतुरदश भुवने के करिपारिब अवज्ञा।" रुद्रसुधानिधि का रचनाकाल द्वादश शताब्दी है।

शूद्रमुनि शारला दास ने जगन्नाथ की वन्दना की है, लेकिन यह बुद्ध के रूप में है। आगे उन्होंने सूर्य, गणेश, शिव, अग्नि, विष्णु आदि को भक्ति-पूत हृदय से अपना भक्त्यर्घ अर्पित किया

---

१ गुरुवाक पुआँ विद्ध पिअमणवाणे
एके सर सन्धाने विद्ध विद्ध परस निवाणे।"—बौद्धगान ओ वोहा

२ जाहेर वाण चिन्ह छुव न जाणी
सो कैसे आगमवें बखाणि।—वही

ली थी। चैतन्य के आगमन के करीब ५० वर्ष पहले वृद्ध चम्पत्तिराय दामोदर दास ने अत्यत ललित और मधुर भाषा में हृदय की अचला भक्ति के साथ "रसकल्या चउतिशा" की रचना की थी। सचमुच यह रस की कुल्या ही है।

भक्त ने गोपीभाव से अनुप्राणित होकर अपने महाभाव में कहा है —

"नयने ता रूप देखिलि याहा,
न पारइ कहि वचने ताहा।
न रूचइ मोते सदनर सुख,
न देखि देखिलि कला श्रीमुख रे।
निवेदन मोर घेन गो—
निचे प्राणवन्धु देइ मोते रख आजहुँ तोर अभिन्न गो।"

× × ×

चतुरानन या दास गो,
चन्द्रशेखर पलक न टलइ चाहिं चक्र धर वेश गो[1]।

पच-सखाओ में वलराम वडे है। वे जैसे कृष्णभक्त हैं वैसे ही ब्रह्मवादी भी। उन्होने "रामायण" और "भावसमुद्र" में अपनी भक्ति की महत्ता दिखाई है। रामायण में ताडका-वध के प्रसग में कवि ने कहा है—

परब्रह्म अवतार धरे जगम रूप,
केवण भाग्ये निशाचरे खण्डिला सकल पाप[2]।

जगन्नाथ दास के भागवत और अष्ट गुज्जरी के अध्ययन से उनका भक्तिभाव स्पष्ट हो जाता है। उनका ऐसा भक्तिभाव देखकर चैतन्य ने उन्हें "अतिबडी" की उपाधि दी थी। अच्युतानन्द, अनन्त, यशोवन्त आदि सखा ज्ञानमिश्रा भक्त थे। यशोवन्त ने यह बात अपनी "प्रेम भक्ति ब्रह्म गीता" में स्पष्ट रूप से कही है।

ऊपर सूचित किया गया है कि पचसखा युग के वाद काव्ययुग का आरम्भ होता है। इस

---

१ "मैंने जिस सांवले श्रीमुख का दर्शन किया है उसे शब्दों में नहीं कह सकता। बिना उसके मुख की शोभा देखे मुझे घर भी नहीं रुचता। प्राणबन्धु श्रीकृष्ण! आपसे निवेदन है कि मुझे अपना अभिन्न वना लो।"

"ब्रह्मा चक्रधर के दास है। चक्रधर के वेश को देखकर ईश्वर को अपनी पलक गिराने की इच्छा नहीं होती।"

२ "परब्रह्म ने जगम के रूप में अवतार धारण किया। उन्होंने निशाचर के किस भाग्य के कारण उसका सब पाप दूर कर दिया?"

यवन होते हुए भी सालवेग नीलाचल जगन्नाथ के पुजारी थे। उनके विभिन्न भजनों और जणाणो से यह स्पष्ट है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

"आहे नील शइल प्रवल मत्त वारण,
मोर आरत नलिनी वन कर दलन।"[1]
× × ×
जगबन्धु, हे गोसाईं,
मोह थिबा याके नन्दि घोषे थिव रहि।[2]

धनजय भज के "रामविलास" (१७वी शताब्दी) महाकाव्य में रामचन्द्र जी की लीला वर्णित है। इसमें उनकी रामभक्ति प्रदर्शित हुई है।

दीनकृष्ण दास भक्त कवि थे। भक्तिरसात्मक काव्य लिखकर उन्होंने काव्य-जगत् में विशेष यश कमाया है। उनका कथन है—

"काहिंकि मोते ससार लट मध्य रे प्रभु कल सघट,
किंके न कल चरण पद्म कुसुम लिट हे,
किया-छाडन्ति भगति वाट आनन्दे होइ करन्ति नाट,
एबे अनेक रूप कलानि ए पोडा पेट हे।"[3]

सत्रहवी शताब्दी के मध्यभाग में उत्कल के कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज का जन्म एक प्रसिद्ध राजवश में हुआ। कहा जाता है कि उन्होंने रामतारक मन्त्र की सिद्धि प्राप्त की थी तथा देवी का वरदान भी प्राप्त किया था। रामोपासक रूप में प्रसिद्ध होने पर भी उन्होंने कृष्ण-लीलात्मक काव्यों की रचना की है। उनकी इष्टदेवी दुर्गा थी। उन्होंने देवी की स्तुति के साथ शिव को परम गुरु के रूप में मानकर अपनी भक्ति का प्रदर्शन किया है। सूर्यवंशी होने के कारण उन्होंने वैदेही-विलास में सूर्य की स्तुति की है। "कोटि ब्रह्माण्ड सुन्दरी" में जगन्नाथ की उपासना देखने को मिलती है। कवि ने "कोटि ब्रह्माण्ड सुन्दरी" में जगन्नाथ की स्तुति करते हुए लिखा है—

---

१ "हे नील शैल, आप प्रबल दुःख को दूर करनेवाले हैं। मेरे दुःखरूपी नलिनी-वन को मत्त हाथी के रूप में नष्ट कर दीजिये।"

२ "हे जगबन्धु गोसाईं, आप मेरे जाने तक नन्दीघोष (जगन्नाथ जी का रथ) पर बैठे रहें।"

३ "हे प्रभु, आपने मुझे ससार के संघर्ष में क्यो डाल दिया? क्यों नहीं चरण-कमल में स्थान दिया? इस नीच पेट के कारण मुझे बहुत प्रकार के काम करने पड़े, नहीं तो मै किसलिए भक्तिमार्ग छोडकर खुशी से नाचता?"

सते कि ए जीव जिब बाहारि,
अभिमन्यु कवि, वाञ्छा पूराअ ब्रज देवी देव।"[१] (विदग्धचितामणि)

सत्रहवी शताब्दी के अन्त में श्रद्धा भक्त कवि वनमाली का जन्म हुआ था। उनकी "वैष्णव पद्यावली" में तो भक्ति भाव की बाढ़-सी आ गई है। उन्होने लिखा है —

"दीनबन्धु, दइतारि, दुख न गला मोहरि,
हेल कि निष्ठुर चित्त लीलाचले विजे हरि।"

× × ×

बलवन्त प्रभु बोलि बेले मु आश्रय कलि,
देखु देखु भासिगलि के राघु करिब पारि।
रख बा न रख मोते शरण तो पाद गते,
कहे वनमाली गीते, वसिअछि ध्यान करि।[२]

भक्तचरण भी एक रसिक कवि थे। वैष्णव काव्य साहित्य को इनका दान अतुलनीय है। उनकी "मनबोध चउतीशा" और "कला-कलेवर चउतीशा" में पूर्ण भक्तिप्रवणता विद्यमान है। कृष्ण के ऐश्वर्य-माधुर्य लीला-मिश्रित "मथुरा मंगल" काव्य में कवि ने अपने भक्ति-भाव का निदर्शन दिया है—

"सर्व जीवे दया वह, मुखे हरे कृष्ण कह,
काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य,
सहिते करि तेज ए षड अरि
सदा काले करन्ति ए बाध हे नरमाने।"[३]

---

१. "कवि अभिमन्यु श्री वृन्दावन और श्री रासमण्डल में शुद्ध प्रेम-भाव से तन्मय हैं। वे उच्च स्वर से राधामोहन को बुला रहे हैं। हे ब्रज के देव-देवी! अब प्राण चला जायगा, मेरी इच्छा पूरी करो।"

२. "हे दीनबन्धु, मेरे दुःख नहीं टले। लीलाचल धाम में रहकर आपका हृदय निष्ठुर हो गया।"

× × ×

शक्तिमान् प्रभु जानकर मैंने आपका आश्रय लिया। मैं देखते ही देखते बह गया। यहाँ से कौन पार उतारेगा? कवि वनमाली ध्यानमग्न होकर बैठा है। वह गाकर कहता है कि आप मेरी रक्षा कीजियेगा या नहीं? मैं आपके चरणों की शरण में हूँ।

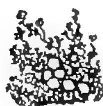
३ "सब जीवों पर दया करो और मुख से हरेकृष्ण कहो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छ शत्रुओं को दूर करो। हे मानव! ये हमेशा खराब रास्ते पर जाने के लिए हमें वाध्य करते हैं।"

मोक्ष पदकु लक्ष न करि रहिया अलगारे,
रासेश्वरीक किंकरी होइ घर कर ब्रज गाँरे।[1]

उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त उत्कल के अन्य कई भक्त-कवियो ने भक्ति रसात्मक कविता लिखकर भक्ति की मन्दाकिनी बहाई है। उनमें हनुमान रायगुरु, गोविन्द रायगुरु, गौरचरण अधिकारी, गौरहरि परिच्छा, दनाइ दास, नल दास, रत्नाकर दास, दाशरथी दास, कृपासिन्धु पट्टनायक, श्रीधर दास, महादेव दास, हरि दास, पीताम्बर दास, कृष्ण सिंह, सूर्यमणि च्याउ पट्टनायक, विश्वनाथ खुटिआ, कृपासिन्धु सामन्त, यदुमणि महापात्र, नित्यानन्द, ब्रजनाथ बड-जेना, हरिबन्धु पट्टनायक, भरत शेण, ईश्वर दास आदि उल्लेखनीय हैं। इस पवित्र पीठ मे सभी जाति, धर्म और वर्ण के लोगो ने साहित्य-सृष्टि की ओर ध्यान दिया है।

उत्कल में प्राचीन काल से सूर्य की उपासना चली आ रही है। जगत्-विख्यात कोणार्क का सूर्यमन्दिर और कनिका में रिघागड स्थित सूर्यमूर्ति इसके ज्वलत प्रमाण हैं। भुवनेश्वर और जगन्नाथ पुरी में सूर्य-पूजा के प्रचलित होने के अनेक प्रमाण है। इसके अतिरिक्त महा-विनायक मे गणेश मूर्ति की अवस्थिति भी गाणपत्य-पूजा का प्रामाणिक निदर्शन है। इसके अलावा अरक्षित दास का आज्ञाधर्म, उनकी महीमण्डल गीता तथा भजन, ज्ञानमिश्रा भक्ति के परिचायक हैं। महिमा गोसाईं के द्वारा प्रचारित अलेख धर्म के अन्ध प्रचारक कन्ध भीमभाई थे। उनके द्वारा रचित स्तुतिग्रन्थो—चिन्तामणि, ब्रह्मनिरूपण गीता, भजन, चौपदी आदि—में भक्ति की पराकाष्ठा है। सत्यनारायण या सत्यपीर पूजा म उत्कलीय जनसाधारण की भक्ति का सुन्दर परिचय मिलता है।

आधुनिक युग में भी कई भक्त कवियो ने ओडिया भक्ति-साहित्य की अभिवृद्धि की है। उनमें भक्तकवि मधुसूदन, उत्कल-भारती कुन्तला कुमारी, कान्तकवि लक्ष्मीकान्त आदि मुख्य हैं।



---

१ "विलास करने के लिए धन और स्त्री पाकर इस संसार के चक्कर में मत पड़ो। ससार में प्रेम-भक्ति विरल है। मोक्षपद की ओर ध्यान न देकर अलग रहो। रासेश्वर की दासी बनकर व्रज गांव में घर बनाओ।"

आमि ढालिब करुणा धारा, आमि भागिब पाषान कारा
जगत जुडिया वेडाब गाइया, आकुल पागल पारा।[१]

यही नही, जीवन में जो कुछ सत्य और प्रत्यक्ष है, वही इन गीतो का सवल है और उसी की अभिव्यक्ति उसका चरम उद्देश्य है। यहाँ जीवन और साहित्य एक दूसरे में प्रतिविवित हो उठे है। सन् १८९६ के अकाल में, विदेशी शासन की उपेक्षाभरी नीति के कारण, कठोर जठर-ज्वाला से विकल एक अनाथ हरिजन शिशु 'वाटी' की वेदना का अनुभव लोककवि के शव्दो में कीजिये —

ओ, बोपा, मला, माआ घभिता घिति गला, भात गुडिये दिय हे साआताणिये।
जाइ थिलि मामु घर, ढोल खडि नेला चोर, साआते हे—चारि दिन उपासिआ
काहिकि डकरा मोते साआन्ते हे, वणिया पोक, सातु घर लोक हाऊँ।[२]

इसे वाटी ने गाया, अनेक लोगो ने गाया, यही स्वर अनत हरियालियो में गूंजा पर क्या इससे वाटी की आत्मा को कुछ सतोष मिला होगा ?

ग्रीष्मकाल की चिलचिलाती दोपहरी में, विदेशियो के निर्मम अत्याचार से पीडित, आँखो से खून के आसूं वहाते हुए गड जाति के बेठिया ओडिया का हृदय मुक्त होने पर गा उठा है —

मने पडे रे भाई! सडक बेठि, राडि खडि मुड होइ गला बेंडि।
वोहि-वोहि से सडक कु माटि
उच्चा नीचा समान कर वे!

---

१. मै करुणा की धारा प्रवाहित करूँगा।
पाषाण-कारा को तोड डालूंगा।
पागल की भाँति घूमता हुआ गाऊँगा—
संसार को ऐक्यबद्ध करूंगा।

२. मेरा वाप मर गया।
माँ दूसरी शादी करके चली गई।
हे मालकिन कुलवधू, मुझे खाने को थोडा भात दीजिए।
गरीवी का मारा, मामा के घर गया था
पर दु ख की वात कि ढोल चोर उठा ले गया।
गत चार दिनो से अनाहार हूं।
इस समय पूजीपतियों के नौकर ही मजे से खा रहे है।
हे मालकिन, मुझे नाचने को वुलाया है ?
भला, मै क्या नाचूंगा!

दूसरो के द्वारा ससुराल की यत्रणा सुनकर पहली बार ससुराल जानेवाली कन्या "कादना" कविता में वेदना को तरगित करते हुए गा उठी है—

पक्व रम्भा घृष्टि मुखे थोइल हे वापा,
कर्पुर कनाकु पके माडिल हे वापा।
कावता जेमत वने झुरइ हे वापा,
मु तुम्भकु तेंहें झुरि मरिव हे वापा।
शालग्राम कीट काटिलापरि हे वापा,
मोते त काटिबे सेहि से परि हे वापा।[1]

इतने से ही उसके कारुण्य का अत नही हो जाता। वालि-वधू ने अपने पति के घर अत्याचार से पीडित होकर नारी-जीवन की जिस परपरित अनुभूति को व्यक्त किया है, वह अत्यत मार्मिक है। सासु के अत्याचारो से व्यथित होकर सुदरी कहती है —

घषि देवाकु गले से लगाति गोल
अरक्षित टोकी मोर छुअता गोड जे ?

फिंगि जे फोपाडि द्यन्ति पहुड तल, कवाट जे किलिद्यन्ति अधार घरे जे
पहुडरे ठिआ होइ बुहाये लुह, वोउ नना कलेइया सहिला दिह जे।[2]

इसी प्रकार एक दूसरी व्यजना देखिये —

हसिले बोलति खुडि दारी हेलाणि, कादिले बोलति खुडि किये मलाणि
उठिले बोलति खुम्व डेरा होइछि, शोइले बोलति खुडि ढिकि पडिछि[3]

---

१ हे पिता, आपने पके केले को सुअर के आगे डाल दिया, कपूर से वासित वस्त्र को दलदल में फेंक दिया। जिस प्रकार कपोत वन में बिसूरता है उसी प्रकार मै बिसूरते हुए मरूँगी। शालग्राम-कीट के दशन की भाँति वहाँ (ससुराल) के लोग मुझे काट खायेंगे।

२ (सास के) पैर दबाने जाती हूँ तो झगडा करती है
(कहती है) कि नीच छोकरी क्या मेरा पैर छुएगी ?
(मुझे) लात मार कर नीचे गिरा देती है
और अंधेरे में ढकेल कर किवाड बन्द कर लेती है।
मै खडी खडी आँसू बहाती हूँ।
माँ-वाप ने यह किया है,
यही सोच कर सब सह लेती हूँ।

३ हँसने से चाची कहती है, क्या रडी की तरह हसती है ?
रोने से कहती है, क्या कोई मर गया है ?

वार्य कर दी गई। चार सौ स्कूली-शिक्षको को लाकर उन्हें हिंदी पढाने की शिक्षा दी गई। ओडिशा में सर्वप्रथम हिंदी को सरकार ने अपनाया। यह अन्य प्रातो के लिए भी आदर्श का काम था। सभा का काम वढा। सरकार ने भवन वनाने के लिए जमीन दी। श्रीयुक्त महताव वावू ने उसका शिलान्यास किया। यह १९४८ का समय था।

सभा के अदर एक कोआपरेटिव प्रेस है जो अपने क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्ध है। गान्वीराष्ट्र-भाषा भवन बनता है जिसमें एक लाख ७ हजार रुपये खर्चे का हिसाव लगाया गया है। उसका कुछ हिस्सा वन गया है, जिसमें सभा वैठती है। सभा का यह २५ साल का काम है। उसी के उन्नति-क्रम को मद्देनजर रखकर आज यह विशाल ग्रन्थ उत्कल भारती अपनी भाषा में राष्ट्रभाषा को दान कर रही है।

१९३४ से लेकर १९४५ तक कलकत्ते की सहायता मिलती रही। इस सहायता के बीच में श्रीयुक्त भागीरथमल जी कानोडिया, श्री सीताराम जी सेकसरिया और दिवगत वसन्तलाल जी मुरारका मुख्य रहे है। प्रत्येक वर्ष सभा के वार्षिकोत्सव में इनकी उपस्थिति अनिवार्य हुआ करती थी। सभा को महात्मा गाधी, काका साहव कालेलकर, जमनालाल जी वजाज, श्री व्रजमोहन जी विरला जैसे महानुभावो का आशीर्वाद मिला है। सभा का वार्षिकोत्सव प्रत्येक साल मनाया जाता है। उसका अपना वार्षिक वजट है, जो अनुमानिक ९५ हजार रुपये का होता है। आजकल सरकारी सहायता सव मिलकर ५० हजार की है।

इस समय सभा के कार्य में मुख्य भाग लेनेवाले स्वामी विचित्रानन्द, डा० हरेकृष्ण महताव, राजकृष्ण वोस, डा० आर्तवल्लभ महान्ति आदि सज्जनो के नाम उल्लेखयोग्य है।

सभा के प्रति जनसाधारण की पूर्ण सहानुभूति है। पुस्तकालय है, सभा का भवन है। ब्रह्मपुर का हिंदी भवन सभा की निजी सपत्ति है। इस समय सभा की सम्पत्ति आनुमानिक डेढ लाख की है। उसके साथ कोआपरेटिव प्रेस है, जिसकी सपत्ति लगभग ढाई लाख होगी। वह भी सभा के अदर है।

सभा के अदर चलनेवाले १८० परीक्षा-केन्द्र है, जहाँ राष्ट्रभाषा की पढाई होती है और साल में हजारो छात्र परीक्षा में शामिल होते है। सक्षेप में यह क्रम-विकास अनुमान योग्य है कि प्रथम वर्ष जहाँ प्रात भर में ७ परीक्षार्थी प्रयाग सम्मेलन की परीक्षा में वैठे थे वहाँ आज साल मे १२ हजार परीक्षार्थी परीक्षा में वैठते है।

सभा की स्थिति पूर्ण आशाजनक है। वह केवल भाषा का ही नही, साहित्य का प्रचार भी करती है। हिंदी, ओडिया दोनो भाषाओ में प्रकाशन की सख्या ६५ है। इसी के प्रचार के उद्देश्य के लिए राष्ट्रभाषा पत्र (मासिक) निकलता है। उसके कई अनुपम विशेपाक निकल चुके है।

सभा का एक पुस्तकालय है जिसमें हिंदी, ओडिया भाषा की ५ हजार पुस्तकें है। उससे हिंदी-प्रेमी लाभ उठाते है।

सभा की एक अपनी दुकान है जिसमे हिंदी साहित्य की अच्छी अच्छी पुस्तके मिलती है। यह साहित्य प्रचार का एक उत्तम अग है। सत्साहित्य प्रदान करनेवाली उत्तम पुस्तकालय-

सब कुछ पूरा हो गया, सभी अभाव मिट गये, विधवा माँ के मुख से हृदय दहलानेवाला करुण स्वर सुनाई पडा —

नयने कज्जल देइ,
अष्ट अलकार खजिलि नेइ लो मो जीवन।
तोहर त बाबु नाहि, मो जीवन !
पयरे अलता देइ लेउटि मुँहकु चाहिलि मुहि लो मो जीवन।
जाउछि लोतक बहि मो जीवन।[1]

इस तरह के करुण चित्र ओडिया ग्राम गीतो में इतने सुन्दर और जीवन्त है कि उन्हे एक दूसरे से घटिया कहना नितात भ्रामक है। सभी देशो और जातियो की भाँति ओडिया लोक-गीतो की निर्झरिणी गाँव-गाँव में, घर-घर में फूटा करती है और करोडो नर-नारियाँ प्रकृति की गोद में मिट्टी से जीवन लिपटाये, अपने भावो की गगा, अपने जीवन की आशा-आकाक्षा को अत्यन्त मनोरम और सुकोमल भाषा द्वारा मृत्तिका के ऊपर उडेल देती है। ऋग्वेद की तरह पवित्र इन कविताओ से हम इस जाति के सुख-दु ख की अगणित अनुभूतियो को हृदयगम करते है।

उत्कल के ग्रामीणो का एक वाद्ययत्र होता है। उसकी अपनी एक अलग बनावट है जिसकी तुलना में विश्व का कोई वाद्ययन्त्र उपस्थित नही किया जा सकता। महासती सीता की निर्वासन-कथा जब योगी-मुख से केन्दरा की तान में सज उठती है तो ऐसा मालूम होता है कि चराचर जगत् उस करुण-गाथा के आवेष्टित स्वर-माधुर्य में पूर्ण तन्मय हो गया है—

किछि हि दोष न कलि गासाई, वने विर्सजिल मोरे कि पाइँ
पथ न दिशइ केणि कि जिवि, केमन्त प्रकार दिन बचिवि ?[2]

---

दरिद्र विधवा फूआ ने आँख से आँसू बहाकर श्रद्धा दी।
हे प्राणप्यारी बेटी,
तुम्हारे फूआ के घरवाले अत में तुझसे मिलना चाहते है।
मेरी आँखो से नीर बह रहा है।

१ हे बेटी, इस अवसर पर तुम्हारे पिता नहीं है (स्वर्गवासी हो गये है)
तुम्हारी आँखो में काजल दिया,
आठो अलकार पहनाये
पैरो में आलता लगाया,
तुम्हें मुडकर देखा
तो आँखो में आँसू छलछला आये।

२ हे स्वामी, मेरा क्या दोष है
जिसके कारण मुझे आपने वनवास दिया ?

सध्याकाल मे देव-प्रार्थना करके मन को पवित्र कर लेते हैं। किशोरियाँ झूला झूलते-झूलते गा उठती हैं—

रजदोलि खेलुथिलि, नना डाकि देले यशोदा बोलि।
हात धोइ भात देलि।।
मदरगा साग राइ, नुआ बोहु ठेंजि एडे पीरति,
दोलि पचाइले भाइ।।
मदरगा साग राइ पखाल भात कु चिलिका सुखुआ,
माणिक पाटण दहि।।[1]

और माँ बच्चे को पालने में झुलाते हुए गाती है—

धोरे बाया धो, धोरे बाया धो, जेउँ कियारि रे गहल माडिया सेहि कियारि रे शो।
गहल महल धान कियारि सेइ कियारि रे शो।
आस माउसि आस पीउसि निद देइ जाअ।
पान विडि बिडि गुआ पेडि पेडि, बटुआ पुरेइ खाअ।
ककर बाया रे बाइ चढेइ, वाड पलाड रे थाआ।
कान्हुँआ कान मोचि मोचि राधिका कान खाआ।[2]

---

१. मै रज (पर्व) में झूला झूल रही थी, पिता ने 'यशोदा' (नाम लेकर) पुकारा (और) हाथ धोकर भात तथा मदरगा के साग कीराइ (रसादार सब्जी) दी। नई बहू से इतनी प्रीति कि भाई (उन्हें) झूला झुला रहे थे। मदरगा साग की राइ, चिलिका (झील) का सुखुआ (सुखाई हुई मछली की भाजी) और माणिक पाटण का दही पखाल भात के साथ (खाने से बहुत अच्छा (लग रहा था)।

२. जारे बाया (भकाऊँ) जा
जा रे बाया (भकाऊँ) जा
जहाँ खेत में घनी माडिया
वहीं जाके सो जा।
जहाँ खेत में घना धान रे
वहीं जाके सो जा।
आ री मौसी, आ रे फूआ
निंदिया दे के जा।
बटुए में है पान-सुपारी
जी भर जितना खा

कलरा परे तिनि तिनिटा गोटे मधुर जोडे पिता, जा जा घट जा जा।
नेलिया पोखरि गोलिया करि जा जा घट जा जा।[1]

युगल मुखो से प्रवाहित सगीत-लहरी घटो के ताल के साथ वह उठती है—

कहइ नागरि वर रे सखि, केऊँ सजनी आगर, आरे सखि,
काढिली ओढणा हेलिपयवणा श्याम वधु कले पर रे।
घेनिथा मनरे एते रे सखि, घोर अरण्य वनस्ते,
घनश्याम चन्द्रमुख चाहुथिले वइकुठ छार केतेरे।[2]

चैत्र की रात्रियो में वसत के आगमन के साथ दडवाद्य वज उठते है जिसकी मस्ती में जातिगत भेदभाव तिरोहित हो जाता है। इसमें ऊँच-नीच का कोई लगाव-दुराव नही रह जाता। शिव-पार्वती के नाम से युक्त इस नृत्य मे 'कला रुद्रमणि भजे' बोलकर धूप-दीप से दो वेतो की पूजा की जाती है। दड-नृत्य में सात प्रकार के नृत्य है। इसमें पार्वती के साथ रमण करते हुए योगेश्वर शकर की कथा होती है। तीसरा दही-खेल है। इसमें जमुना घाट पर राधाकृष्ण की दधि-लीला के प्रेम की अपूर्व व्यजना निहित रहती है। चौथा पतर शौरा है। यह उत्कल की शवर-सभ्यता का सूचक है। पाँचवाँ चढाया नृत्य है। इसमें नौ-यात्रा द्वारा विभिन्न द्वीपो के आविष्कार की घटनाओ की स्मृतियाँ अभिनीत होती है। छठा वाइधन नृत्य है। इसमें स्मार्त और परमार्थ तत्त्वज्ञानी पागलो का अभिनय होता है। वैष्णव नृत्य की तरह इसमें नायिका नही होती। सातवाँ वीणाकार का नृत्य है। इसमें नायक अपनी प्रवीण, नृत्यशीला चित्रिणी भार्या के साथ वीणा वजाते हुए नृत्य करता है। चैत्र मास में होनेवाले ये नृत्य प्रत्येक ग्राम को आनन्द और उल्लास से भर देते है। इनके अतिरिक्त रामलीला, कृष्णलीला, भारथलीला आदि नृत्य भी होते हैं। वैशाख मास मे चन्दन पर्व आता है। गाँवो में चदन-चर्चित युवा-युवती गाते है—

---

१ करेले के तीन-तीन पत्ते है। एक मीठा और दो तीते है।
घटा! तू बजता जा, बजता जा।
नीले तालाव के पानी को गँदला करके
तू बजता जा, बजता जा।

२ कोई नागरी अपनी सखी से कहती है—हे सखी,
"मैंने घूघट खोल दिया (लज्जा त्याग दी),
राह में भूल गई, (फिर भी) कृष्ण हमें पराया मानने लगे।"
"मन में यही धारणा रख कि घोर अरण्य के बीच,
घनश्याम के चद्रमुख के दर्शनानद के आगे
स्वर्ग धूल (के समान तुच्छ) लगता है।"

चित्रपट झुला देती है। खुदरकुणि तअपोइ को भालुकुणि नाम देकर नाव-यात्रा करती है। वाण छोडती है। फूल बहाती है। विश्व की समस्त करुणा की एक सजीव कहानी—तअपोर गीत सुनकर कुमारियाँ आँखो से आँसू बहाने लगती है। तअपोइ 'साधव' की कन्या है। माता-पिता की मृत्यु हो जाने पर सातो भाइयो के नाव में बैठकर चले जाने से भाभियो के अत्याचार से पीडित होकर वह बकरी चराती है।

'नीलेन्द्र नामे सान वहुत अपोइर प्रिय सेहु, अन्न व्यजन् देइ थाइ, से दिन वसि सुखे खाइ'।

अत्याचारी भाभियाँ चूहो द्वारा खोदी हुई मिट्टी को टोकरी में भरकर तथा उस पर पत्ता रखकर एक मुट्ठी भात डाल देती हैं। वाद मे वह भीख माँग कर मगला व्रत करती है और अपने भाइयो को पुन पा जाती है।

आश्विन में कुमारियाँ जन्हि ओषा गीत गा उठती हैं—

जन्हि जन्हि आँजुलि, निति पके तिनि आँजुलि, दोलिरे जाए, दोलिरे आसे।
पटा पिढा खड माडि बसे, मो बहु मो कोड रे बसे।
नातुणि बहु रान्धि परसे, हाडि पोछा भात खाये,
आटिका पोछा तिअणा खाये, रजा गले दाडरे ता मो कान न जाणे।[1]

'जन्हि ओषा' करके कुमारी भविष्य की मधुर कल्पना करती है कि वह सास वनने पर अपनी वहू को अत्यन्त प्रेम से गोद में विठायेगी। उसकी नातिन और बहू जो कुछ पकाकर देगी उसे वह वडे प्रेम से खायेगी। फलत वह झूले पर बैठी मौज करती रहेगी। गली में अत्यत सजधज से जाते हुए राजा से उसका कोई सरोकार नही रहेगा। बहू के आने से वह राजा से बढकर सुखी रहेगी।

दशहरे में सिपाही 'दडवाली' गाता है। गोपाल यादव 'आगुल' गाते है। सिपाही सामरिक वेष में कदम वढाते हुए तलवार, कुन्त ढाल लिये गाते-बजाते चलता है—

पवन परज्ञ गडाकु शून्ये उजाणि टेक, शिशुमुने खडा गिलिलेतुजे हेवुनिदक
दुष्ट दलन दाउणि रे खडा हस्त थोइबु, मान मून घरि खडाकु दाढ सस्त्रे चालिबु।

तलवार की मूठ का ऊपरी भाग (परस) सीधा रहने पर अगर वह सीधी रह सकी तो खडायत लघुहस्त विवेचित होगा। शिशुम्बन काठ के चिह्नित स्थान पर तलवार फेंककर लक्ष्य

---

१ जन्हि के फल और फूल को अजलि में भरकर रोज तीन वार दान करती है।
डोली में जाती है, डोली में आती है।
पीढे पर वैठ जाती है, मेरी वहू मेरी गोद में बैठती है।
नतिया वहू भोजन वनाकर परोसती है (और स्वय)
हांडी पोछकर भात और तरकारी खाती है।
रास्ते में राजा के गमन का पता न तो उसे है और न मुझे ही।

ऐसे गीतो की सख्या असख्य है। ये अत्यत श्रुति-मधुर और मन को उल्लसित कर देते हैं। फलाशा के मोह में उस समय का ग्रामीण समाज पुलकित हो उठता है। किसान धान मूंग आदि को सँजोकर तथा अपनी स्त्री कमला को साथ लेकर ससुराल घूमने चला जाता है। जाते समय वह गाडी पर बैठा हुआ गाता है—

ओ—दूरकु सुन्दर त परबतमाल, गाँकु सुन्दर त नडिया गुआ ताल
सभाकु सुदर त पधान सान भाइ, गोठ कु सुदर त दुहालिया गाइ।
बघुकु सुदर त दिशइ दूर बाट, सिंधुकु सुदर त लहडा भगा घाट।
घरकु सुन्दर जेबे लो घरणी, न जिबु बाप घर हो।[1]

गाते-गाते उसे अतीत की वे बातें याद आ जाती है, जब कलिंग त्रिकलिंग था। उसकी सैकडो नौकाएँ समुद्र के विशाल वक्ष पर चला करती थी—

ओ—साधवाणी पूजइ काली खम्वेश्वरी, सिमिलि दीपु बोइत हो असिवणि फेरि
लका दीपे अझाल छिडि जे बाउला बतास, अमाप दरियारे मने साधव अणस्वास हो।
रमणी मणि लबा कुचित भेरा वाल, सुमरि कान्दे हो साधव अकात सिंधु जल हो।[2]

---

हैजा और चेचक नहीं पडेगा,
हे माँ, (यदि) हाथ के लिए सोने की चूडी दोगी
(आशीव) से गोद के लिए सात पुत्र दोगी।

१ पहाड दूर से ही सुन्दर लगता है।
गाँव नारियल, सुपारी और ताल से ही सुदर लगता है।
मुखिया के छोटे भाई से सभा सुन्दर लगती है।
दुधारी गाय से गोशाला सुन्दर लगती है,
दूर-देशी वधु सुन्दर लगते है।
समुद्र की टूटती लहरो से युक्त घाट सुन्दर लगता है।
घर तभी सुदर लगता है जब घरनी मैके न जाकर घर में ही रहती है।

२ साधवाणी खम्वेश्वरी काली को पूजती है, शायद
सिमिलि द्वीप से जहाज लौटा होगा।
लका द्वीप के मत्त वातास से पाल टूट गया है।
मेरे साधव (व्यापारी) अछोर समुद्र में पडे है।
कुचितकेशा रमणीमणि यह स्मरण कर कि व्यापारी (पति)
अगाध सिंधु में है, रोती है।

श्री कुजबिहारी बाबू के सग्रह का अधिकाश बहुत आधुनिक मालूम पडता है। लेखक के सग्रह का अधिकाश तो अभी तक प्रकाशित नही हो सका है।

इस लेख में उत्कलीय लोकगीत के सभी पक्षो पर विचार नही किया जा सकता, क्योकि जैसे भालू ईख के खेत में प्रवेश करने पर यह निर्णय नही कर पाता कि वह किसे चूसे और किसे न चूसे, वही बात यहाँ भी है।

अतीत का स्वर्णयुग आज नही है। इस जाति के जीवन से विदेशी शासन ने कविता का रस ही निचोड लिया है। हमारी जाति विपद्ग्रस्त हो चुकी है। आज की राष्ट्रीय सरकार यदि इस ओर ध्यान दे तो ये ग्राम्य सगीत पुन मुखरित हो सकते है। इसके लिए चार बातो पर अधिक जोर देना आवश्यक है।

१—उपयुक्त सग्राहकों को नियुक्त कर लोकगीतो को दस-पाँच वर्ष के भीतर ही सग्रह करना।

२—उक्त गीतो का इतिहास या पुरातत्त्व की सामग्री के रूप में सचित न करके विभिन्न पाठ्य पुस्तको में, पुरस्कार एव लाइब्रेरी की पुस्तको में समावेश करके उनका व्यवहार करना।

३—यात्रा, नाट्य, थियेटर, आदि में उन सबको स्थान देना।

४—विचक्षण भाष्यकार और समालोचक के द्वारा पुरस्कार घोषित कराकर उसका महत्त्व अधिक करना।

ऐसा होने पर यह उक्ति सार्थक हो जायगी कि ग्रामीण ओडिया ही ठीक ओडिया भाषा है।



पर गीत गाया जाता है। यह नृत्य का अपरिहार्य अश नही है। पाटुआ, चैती घोडा, पाला या दास काठिया में नृत्य का कोई विशेष तत्त्व नही होता। यह गीत और वाद्य मे ताल देने के उद्देश्य से है। आदिवासी-विवाह में सामाजिक नृत्य आयोजित होता है। कृषि-उत्पादन, ग्रह-पीडा-नाशन, काम-पीडन तथा क्लान्ति-विनाशन इसका प्रधान उद्देश्य होता है। शिकार नृत्य ओडिशा के रियासती जिलो तथा कोरापुट में प्रचलित है। पाइक और नागा नृत्य वास्तव में युद्धनृत्य है। पुचि हुडमा, डाल खाइ, मायलाजउ, गुजिकुटा, रसरकेलि, जामुडालि आदि नृत्यो के साथ गीत भी गाये जाते है।

"बारमासी", 'पिलामुलाणियाँ' आदि कुछ गीत दिल-बहलाव के लिए है। पुचिगीत, कबड्डी, राहाघारागीत, आँखमिचौनी मे चोर चुनने का गीत, दोली गीत आदि खेलो में गाये जाते है। करमा, दडनाट्य, पाटुआ यात्रा के अधिकाश गीत धर्मानुष्ठान से सबद्ध है। जो वैचित्र्य-विहीन होते है, उनमें कवित्व नाम मात्र को रहता है। जन्म, विवाह आदि आनन्दोत्सव और मृत्यु-विच्छेद आदि शोक के अवसरो पर गीत गाये जाते है। ओडिया ग्राम-बालिका सासु के घर जाने के पूर्व 'कान्दणा' सीखती है। महीनो तक उसे रटती रहती है। शिक्षण-पद्धति में कृत्रिमता रहने पर भी इसके द्वारा नारी जाति का सर्वश्रेष्ठ कवित्व प्रकाशित होता है। मृत्यु-विच्छेदादि में ओडिया स्त्रियाँ मृत व्यक्ति के गुणादि का स्मरण करके रोती है पर 'कान्दणागीत' की रचना नही करती। वह विशेष अवसरो पर ही प्रयुक्त होता है।

ग्रामीण लोग यश या धनार्जन-लिप्सा से गीत नही गाते। अत नागरिक कवियो के समान वे गीत के अत में 'भणिता' नही देते। यह गीत व्यक्ति की रचना होने पर भी इससे व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रकाशित न होकर समष्टि का व्यक्तित्व प्रतिफलित होता है। गीत गाकर लोक-कवि शाश्वत होने की अभिलाषा नही रखता।

प्रकृति और वायुमडल लोक-गीत की महिमा बढाते हैं। उससे अलग करके गाने से विशेष आनन्द नही मिलता। स्वर ही इसका प्राण होता है। स्वर-शिक्षा ग्रामीणो की पार-परिक रीति के अनुसार होती है। इसे लोग सुन-सुनकर सीखते हैं। ओडिया लोक-गीत अधि-काश में धर्मनिरपेक्ष होते है। पौराणिक गाथा, राम-कृष्ण की कीर्ति-कहानी भी कभी-कभी गीतो की विषय-वस्तु हुआ करती है।

इसमें व्यवहृत असख्य निरर्थक शब्द आदिम अवस्था के स्मारक है। हो सकता है कि लोक-कवि अपने मन के भावो को स्पष्ट रूप से प्रकाशित न कर सका हो, किंतु वह अस्पष्ट अभिव्यक्ति धीरे-धीरे दुर्बोध हो गई है अथवा जिस वातावरण में यह गीत उत्पन्न हुआ था उसके बदल जाने से अर्थ सुगम नही हो पाता। जो भी हो, निरर्थक या दुर्बोध पद रस में बाधक नही होते, प्रत्युत परोक्ष रूप से ये नृत्य के सहायक ही होते है।

गीत-लेखक स्त्री-पुरुष दोनो हैं। स्त्री-गीत पुरुष-गीत से बिलकुल भिन्न होता है। स्त्री-गीत की भाषा ललित, श्रुति-रोचक, स्वर में आरोह की गति मथर, आवेग सयत एव दृढ होता है। इसमे छोटे-छोटे घरो की गार्हस्थ्य-कथा, पारिवारिक सुख-दुख, भोग, ओषा-व्रतादि धर्मकथा,

सन् १९२३ ई० में श्री अपन्ना पढा ने 'ढगमालिका तत्त्वबोधिनी' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें उन ढगो का अर्थ, तात्पर्य उदाहरण सहित, समझाया है।

श्री गोपालचन्द्र प्रहराज ग्राम-गीत सग्रह के प्रथम अगुआ है। उन्होने अपने ढगढमाकी के दोनो भागो मे यह बताया है कि भाषा कोश-निर्माण के सबध में मौलिक शब्द सचयन की आवश्यकता होने पर वे लोकगीत सग्रह में किस प्रकार लग गये, और सभ्यता के प्रसार के साथ ग्रामगीतो का लोप तथा उन्ही के साथ तत्त्वानुसधान सबधी बहुमूल्यवान् सामग्री के लोप हो जाने की आशका ने उन्हें कैसे इस ओर प्रेरित किया था। श्री प्रहराज ने ही सर्वप्रथम लोक-गीत सग्रह की एक वृहत् योजना देशवासियों के सामने रखी थी।

ओडिया लोकगीत सग्रह के उद्देश्य से सन् १९३१ ई० मे श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ओडिशा आये। उनकी प्रेरणा से जो लोग ग्राम-गीत सग्रह की ओर अग्रसर हुए, उनमें श्री चक्रधर महापात्र अग्रणी हैं। सन् १९३४ ई० मे उन्होने 'गाउँलिगीत चुम्बक' नामक एक गीतसग्रह प्रकाशित कराया। इस पुस्तक के द्वारा भारत तथा अन्य देशो की दृष्टि इन गीतो की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें देवनागरी अक्षरो मे ओडिया गीत और उसका अग्रेजी अनुवाद दिया गया है।

उन्होने अपने इस सग्रह को निम्न आठ भागो में विभक्त किया है—(क) बहुक सुख-दुःख-गीतिका, (ख) किशोरीक मेल-गीतिका, (ग) गापिलाक खेल-गीतिका, (घ) गापिलाक ढग, (ङ) ग्राम्य-वदना गीत, (च) पोथी-गीतिका, (छ) कृषक-गीतिका, (ज) परिशिष्ट गीतिका।

भारत-सेवक समाज के सदस्य श्री लक्ष्मीनारायण साहु का सपूर्ण प्रयत्न इन सबसे भिन्न था। उन्होंने कन्ध, सउरा, गड, गादबा, सथाल, परजा, कोया आदि आदिवासियो के गीतो का सग्रह 'गधर्विका शतदल' नाम से सन् १९४७ ई० मे प्रकाशित कराया। इसमें उनकी रीति-नीति, धर्म, देवपूजा, विश्वास, रहन-सहन, पर्व आदि के गीत सकलित हुए हैं। इसके अतिरिक्त "हिल ट्राइब्स आफ जयपुर" नामक कथा-सबधी ग्रन्थ १९४२ में छपाया है। साहु जी ने 'दड-नाद' नाम से एक और पुस्तक मे ग्राम-गीतो पर उच्च कोटि की आलोचना प्रस्तुत की है।

पिछले १५ वर्षो से लोकगीतो के सग्रह का कार्य मेरे भी मनबहलाव का प्रधान साधन बना हुआ है। मैंने हजारो गीत सग्रह किये है। सन् १९४८ में 'पल्लीपुष्प', सन् १९५० में 'पल्ली-झरण', सन् १९५३ मे 'ए स्टडी आफ ओरिसन फोक लोर', सन् १९५४ ई० में 'पल्लीगीत सचयन' (प्रथम भाग), सन् १९५७ ई० में मेरी 'डाक्टरेट की थीसिस' 'ओडिया लोकगीत और कहानी' प्रकाशित हुई है।

योगी और भिखारी वीणा या खँजडी बजाकर गाथा-गीत गाया करते है। कितने ही गाथा-गीत धर्म सबधी होते है। 'व्यायी गाय की सत्य-रक्षा और राजा गोविंदचन्द्र के राज्य-त्याग की ये दो कहानियाँ भारत में सर्वत्र प्रचलित है। लौकिक वर्णन के तारतम्य के सिवा इसमें और कुछ विशेष तत्त्व नही पाया जाता। अन्यान्य गीतो मे अत्याचारो से पीडित ग्राम्य-वधू की वेदना अथवा माता-पिता, स्वामी, स्त्री या सतान-वियोग का गभीर दुःख प्रकाशित हुआ है।

प्रसन्नता के लिए पाटुआ यात्री अत्यत कठिन कार्य भी कर डालते हैं। वे आग पर चलते है, काँटो पर लोटते है, तलवार पर चलते है, पीठ और जीभ को जख्मी कर डालते है, पेड की डाल में पैरो को बाँधकर आग पर झूलते है। उनके गीत कुछ लिखित और कुछ मौखिक होते हैं। इसी स्वत स्फूर्त मौखिक गीत मे उनके प्राण की आकुलता प्रकट होती है।

पाटुआ यात्रा की तरह 'दडनाट' एक लोकप्रिय धर्मानुष्ठान है। वग देश से तामिल-नाड तक, जहाँ तक शैव धर्म की धारा व्याप्त है, वहाँ 'शिवेर गाने', 'दडनाट' या ऐसे ही अन्य कई धार्मिक अनुष्ठानो का सकेत आज भी नीच जातियो मे मिलता है। 'दडनाट' सभी जातियो का एक समन्वय है, नाना धार्मिक विश्वासो का एक सूचीपत्र हैं। इसमे पत्र पहननेवाले शवर, सउरा आदिवासियो से लेकर मुगलकालीन फकीरो तक के नाना धर्म-सम्प्रदायो के प्रतिनिधि रहते हैं। पाटुआ यात्रा की तरह इसमे भी जलती जमीन पर लोटना, काँटो पर सोना, और तलवार की धार पर चलना आदि शारीरिक कष्ट सहन करके देवता को प्रसन्न करने का विधान है। 'दडयात्रा' का मूल शैव तत्र में है।

दडगीत इतने सरल होते है कि अर्थ समझाना नही पडता। इसका विषय पौराणिक होता है। दडुआ जगन्नाथ, गणेश, सारला, सरस्वती आदि देवो की उपासना करता है। दडुवा का गीत केवल शिवपुराण मे ही सीमित नही वल्कि शैव, वैष्णव या शाक्त अथवा जिस किसी भी धर्म-धारा मे वह इसे ग्रहण करके उसका विवरण प्रस्तुत करता है। उनके मौखिक गीत रसीले और स्वभावत मनोहर होते है। दाम्पत्य कलह का अभिनय, लोक-रुचि से अप्रीतिकर होने पर भी, जन-साधारण का उपभोग्य होता है। इसमें शिव का अस्तित्व नही रहता, नित्यप्रति की सासारिक वास्तविकता के नग्न देव रहते है। ये देवता ही साधारण जीवो को घेरे रहते है। इसमें शिव-पूजा केवल एक चलता एव सामयिक विषय है।

'चइति घोडा-नाट' केवटो का एक प्रधान पर्व है। इसमें अश्वमुखी वाशुली की पूजा होती है। यह भी "हयग्रीवा" दुर्गा का एक नाम है।

"नारसिंही हयग्रीवा हिरणाक्ष्यविनाशिनी" के प्रमाणानुसार हो सकता है कि इससे ही अश्वमुखी वाशुली का उद्‌भव हुआ हो। अधिक सभव है कि कैवर्त्तो की इष्टदेवी होने के पश्चात् ही विभिन्न देवी के मदिरो मे अश्वमुखी वाशुली की स्थापना हुई हो। 'वाशुली नाट' के अनुकरण पर 'मेलण यात्रा' मे भी घोडा नाट्य एक दर्शनीय वस्तु के रूप में समादृत है। अच्युतानन्द दास की कैवर्त्त गीता, कैवर्त्तो का वेद है। इससे मत्र लेकर वह वाशुली की पूजा करता है। मौखिक गीतो में उसके दैनिक सघर्ष का इतिहास मिलता है—

वाटरे माइलि वोडा, रातिरे नचाये चइति घोडा, मु दिनरे कुटइ चुडा।[१]

---

१ राह में वोडा साँप मारा,
रात में चइती घोडा नचाया,
और दिन में चूडा कूटता हूँ।

युवतियाँ भाग लेती है। इसके साथ ढोल-महुरी बजती है। इस नृत्य में नर्तकी घुटनो, पैरों को झुकाकर दोनो पैरो को एक साथ मिलाते हुए नाचते-नाचते पीछे की ओर फिरती जाती है। पीठ पर चादर जैसा वस्त्र डाले कभी बायें हाथ से, कभी दायें हाथ से उसे उठाती हुई नाचती रहती है। गीत के आरभ और शेष मे वे 'डालखाइ' कहती है।

'मायला जड' ठीक 'डालखाइ' की तरह का नृत्य-गीत है। स्त्री-पुरुष दोनो मिलकर सामान्य त्योहारो पर यह गीत गाते है। नाच के साथ-साथ ढोल-महुरी बजती है। 'गुजिकुटा' में लडकियाँ पुचिखेल की तरह दोनो तरफ दोनो पैरो को फेंकती हुई गीत गाकर नाचती हैं। 'वाँकी झुलकी' में लडकियाँ गीत गाती हुई वाईं ओर को थोडा झुककर वैठ जाती है और पुन थोडा आगे चलकर दाईं ओर झुककर वैठ जाती है, फिर तीसरी वार गीत समाप्त करके वैठ जाती है। तत्पश्चात् चलती हुई पुन अपनी जगह पर आ जाती हैं।

सवलपुर से फुलवाणि तक के समस्त भूभाग में 'करमा' नाट होता है। पहले 'करमा' पेड की जड धोकर फूल-चन्दन से सुशोभित करते हैं। पूजा के पश्चात् जलूस के साथ एक डाल काटकर लाते हैं और उसे वेदी पर गाड देते हैं। पुजारी शराब पीकर वेदी के चारो ओर नृत्य करते है। 'करमा यात्रा' के देवता कर्मदेव है। मनुष्य की भाग्य-डोरी उनके हाथ में रहती है। वे किसी को धनी, किसी को दरिद्र, किसी को रोगी और किसी को स्वस्थ वनाते रहते है। लापर-वाही करने से सारा धन-द्रव्य हर लेते हैं। 'करमा यात्रा' में लिखित और मौखिक दोनो गीत गाये जाते है।

(ख) लोककथा—श्री दीनकृष्ण दास की कहानी पुस्तक 'प्रस्ताव सिंधु' उत्कल की प्रथम कहानी पुस्तक है। यह पद्यो में लिखी गई है। भाषा ग्राम्य है। 'कथासरित्सागर' से इसकी अधिकाश कथाएँ ली गई है। केवल कथा-सग्रह के उद्देश्य से उन्हें नही लिया गया है। वैसी जाग्रति भी तत्कालीन ओडिशा मे असम्भव थी। 'प्रस्ताव सिंधु' मे नीति-शिक्षा मुख्य विषय है और कथा-सग्रह का लक्ष्य गौण है। चाणक्य के श्लोको के अनुवादो में स्थान-स्थान पर दृष्टान्तो के वहाने लोककथाएँ भी दी गई है। नीति को सुस्पष्ट, सरस और सर्वसुलभ वनाने के लिए गल्प की उपयोगिता सर्वमान्य है।

अठारहवी सदी के 'व्रजनाथ वड जेना' उत्कल के द्वितीय ग्राम्य गल्प-सग्राहक हुए है। सस्कृत के 'कथासरित्सागर' की तरह आकार में बृहत् न होने पर भी एक मात्र प्राचीन गद्य गल्प-पुस्तक की दृष्टि से यह ओडियासाहित्य की एक गौरव वस्तु है। 'चतुरविनोद' की कथाएं उस समय उत्कल में प्रचलित थी। व्रजनाथ वावू ने अपनी भाषा मे लिखकर उनमें एकरूपता ला दी है। लेखक ने कथा कहनेवाले राजकुमार के मुख से निम्नाकित शब्दो में यह वात परोक्ष रूप से स्वीकार की है कि उन्होने इन्हें सगृहीत किया है। "पहले सकर्षण पडा ब्राह्मण ने राजदरवार में 'चतुर विनोद' नामक कहानी कही थी, उसे मैंने सुना है।"

पूर्व काल में कवियो की तरह कहानीकार भी राज-दरवार में विशेष रूप से सम्मानित होते थे और राजा तथा दरवारियो का मनोविनोद करके आजीवन राजदत्त वृत्ति का भोग करते



राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी

"काचि वैरी गजन कलव बलियार सिंह, मदरगा मेदिनी राय, दुर्बोध धुरन्धर वेहरा महापात्र, प्राणातक वैद्य चन्द' आदि नाम से हास्य रस-स्रष्टा की मौलिकता फूट उठी है। अधोगत दरबारी जीवन, धर्मसर्वस्व ब्राह्मण, प्राचीन उपाधिधारी वीर्यशून्य क्षत्रिय, अहकारी पुरोहित, आततायी पुटुली वैद्य आदि के व्यग्यात्मक चित्र खूब मनोहर हुए है।

'हास्य कल्लोल' का कथाश दुर्बल है। इसमें काव्य-सुलभ वर्णन मिलता है। यमक, श्लेष, अनुप्रास आदि के व्यवहार एव कथा-चातुर्य द्वारा चमत्कार दिखाने का प्रयत्न हुआ है।

'हास्य कल्लोल' और 'उत्कल कहानी' के बीच प्राय आधी शताब्दी का अन्तर है। 'उत्कल कहानी' ग्रन्थ उन्नीसवी सदी के अतिम चरण में प्रकाशित हुआ। गोपालचन्द्र प्रहराज आधुनिक युग के प्रथम कथासग्राहक है। उनकी 'उत्कल की कहानी' उत्कल के घर-घर में छाई हुई है। आधुनिक ओडिया-गद्य में लिखित यह सर्वप्रथम पुस्तक है जिसकी भाषा सभी लोगो के लिए बोध-गम्य है। यही कारण है कि ग्रामीण भी इसमें पूरी रुचि लेते है। प्रहराज महाशय की यह चेष्टा आकस्मिक नही है। उनके कथा-सग्रह के समान सारे भारत में कथा-सग्रह का वातावरण उत्पन्न हो गया था। सम्भवत उसी वातावरण ने प्रहराज महाशय को इस ओर प्रेरित किया। वे कथा की उपयोगिता और उसके सग्रह में श्रम की यथार्थ सार्थकता समझ-बूझकर इस ओर अग्रसर हुए थे। उन्होने कथा-सग्रह का उद्देश्य 'उत्कल कहानी' की भूमिका में यह बताया है कि "मैं अपने अनुभव से समझ सका हूँ कि मैंने बचपन में जितनी कहानियाँ सुनी या याद की थी, आज मेरे छोटे भाई उनकी आधी भी नही जानते और जिनसे मैंने ये सब कहानियाँ सुनी थी उनसे आधी भूली कहानियो की विषय-जिज्ञासा करने पर वे कहते हैं कि अभ्यास के अभाव में वे भूल गई हैं। देश-प्रचलित कहानियाँ लिपिबद्ध होकर साहित्य-भडार में सुरक्षित रहें, यह साहित्यकारो का लक्ष्य होना उचित है। जितने अपभ्रष्ट और घरेलू शब्द लिपिबद्ध होकर रहें, साहित्य और भाषा का उतना ही मगल है।"

सग्राहक ने कथाओ को दो भागो में बाँटा है—(क) बालोपयोगी, (ख) वृद्धोपयोगी।

अर्वाचीन उत्कल की दूसरी कथा पुस्तक 'कथालहरी' है। सग्राहिका एक करण महिला है। समय-विरोधी होने के कारण महिला का नाम प्रकाशित नही किया गया। यह पुस्तक १९०१ ई० में छपी थी। इसकी भूमिका में भक्त कवि श्री मधुसूदन ने लिखा है—"लोक गल्प, भाषातत्त्व, प्राचीन रीति-नीति, लोकविश्वास के तथ्य और देहात के नाना विश्वसनीय सत्यान्वेषण की दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। ग्राम्य गल्प साहित्य के साथ दूसरे देशो में

---

चना चबाने से प्यास बुझ जाती है।
साधुओ की निंदा से मन को सतोष होता है।
ब्राह्मण के हाथ में छुरा है
अतिभक्ति गुरु और वैष्णव का घाती है।

कि काठ? तेलिमाठ! कि तेली? घणा तेली!
कि घणा? आखु घणा! कि आखु? कन्तारि आखु!
कि कन्तारि? बुढि मतारि! कि बुढि? पाचिला बुढि!
कि पाचिला? केउटुणि बुढि चुडा बोझे धरि नाचिला।[1]

कहानी के अन्त में उसी तरह कहता है—

मो कथाटि सरिला, फुल गछटि मरिला। हइरे फुल गछ, तू काहेकि मलुअ
मोते कालि गाइ खाइ गला। होइलो कालि गाइ तु काहिंकि खाइ गलु?
मोते गौड जगिला नाहिं, हइरे गउड तु काहिंकि जगिलु नाहिं?
मोते वड वहु भाव देला नाहिं, हइलो वड वहु, तु काहिंकि भात देलु नाहिं। पुअ कांदिला।
हइरे पुअ तु काहिंकि कांदिलु? मोते जन्दा कामुडि देला।
हइरे जन्दा तु काहिंकि कामुडिलु? मुं माटि तले तले थाये,
कअँल माँस पाइले रुटकिने कामुडि दिये।[2]

---

१. कथा कहता हूँ, कथा कहता हूँ।
कौन कथा? मेढक की कथा, कौन मेढक? काठ का मेढक।
कौन काठ? तेली का मूसल, कौन तेली? घानी पेरनेवाला तेली।
कौन सी घानी? ईख की घानी, कौन सी ईख? कतारी ईख।
कौन सी कतारी? बुड्ढी मयरा। कौन बुड्ढी, पकी बुड्ढी
कौन सी पकी? केवटिन बुड्ढी टोकरी भर चूडा लेकर नाचने लगी

२ मेरी कहानी खत्म हो गई। फूल का पेड मर गया।
अरे फूल का पेड तू क्यो मर गया?
मुझे काली गाय खा गई।
अरी काली गाय, तू क्यों खा गई?
ग्वाले ने मेरी रखवाली नहीं की।
अरे ग्वाले, तूने रखवाली क्यो नहीं की?
मुझे वडी वहू ने भात नहीं दिया।
अरी वड़ी वहू, तू ने भात क्यो नहीं दिया?
मेरा वेटा रोने लगा था।
अरे वेटा, तू क्यो रोया?
मुझे चींटे ने काट लिया
अरे चींटे, तूने क्यो काटा?
मैं मिट्टी के नीचे रहता हूँ,
कोमल मास मिलते ही फुट से काट खाता हूँ।

# ओड़िशा का समवाय-आन्दोलन

## श्री अनंतप्रसाद पंडा, बी० ए०

भारत और उत्कल के समवाय आन्दोलन के पीछे अर्ध-शताब्दी का इतिहास छिपा हुआ है। यदि हम प्राचीन इतिहास की पृष्ठभूमि पर खडे होकर पीछे की ओर देखें तो यह साफ देख सकेंगे कि यह आन्दोलन कितनी वाधाओ और विघ्नो को झेलते हुए बढता आया है। इस आन्दोलन को आधार बनाकर आशा के कई महलो का निर्माण किया गया था लेकिन उनकी नीव खोखली थी। अत आज उनमें से कितने धराशायी होकर भग्न खडहर के रूप में पडे है। ऐसा होने पर भी कितने ही स्थानो मे आशा के नये सौध निर्मित हुए है और हो रहे हैं। इसके सबध में अनेक एन्क्वायरी कमेटियाँ वनी है, वन रही है और चल रही हैं, लेकिन अव इस आन्दोलन की क्या रूप-रेखा हो, इसका निश्चय आज तक नही हो सका है।

सन् १९०४ में भारतीय ऋण-समवाय समिति कानून पास हुआ। लेकिन इसके पूर्व १९०३ ई० मे कटक जिले में, वाँकी के निकट, एक समवाय समिति स्थापित हुई थी। उस समय ओडिशा में स्वतन्त्र सभाएँ न थी, क्योकि यह वग प्रदेश का एक अग ही था। इसी नाते बगाल के रेविन्यू वोर्ड से उस समिति को १००० रुपया कर्ज मिला था। उसके वाद पुरी के नीमापडा स्थान में एक समिति स्थापित हुई। उस समिति के द्वारा लोगो को ७ वर्ष के लिए रुपये कर्ज दिये जाते थे। उसी वर्ष वग प्रदेश के कृषि और बन्दोवस्त विभाग के डाइरेक्टर की अधीनता में पुरी जिला के खोर्धा तालुक के वालुगाँ, तरावोई और वोलगड स्थानो में तीन समवाय समितियाँ स्थापित हुई। इनमे १२५० रुपयो का ऋण दिया गया था।

इसके वाद सरकारी तत्वावधान में वाँकी सवडिवीजन के डमपडा इलाके मे तीन समवाय-समितियाँ वनी। धीरे धीरे इन समवाय-समितियो की सख्या वढ गई और उनके परिदर्शन तथा यथासमय ऋण देने के लिए सन् १९२० ई० मे सर्वप्रथम उत्कल के वाँकी नामक स्थान में एक केन्द्रीय समवाय सघ (क्वापरेटिव वैंकिंग यूनियन) स्थापित हुआ। यही सघ वाँकी के आधुनिक समवाय वैंक की नीव वना। दो वर्ष वाद १९२२ ई० मे खोर्धा केन्द्रीय समवाय वैंक स्थापित हुआ। यह ओडिशा के लिए एक स्मरणीय वर्ष है। उस वर्ष उत्कल वग देश से अलग होकर 'विहार और ओडिशा' नाम के एक स्वतन्त्र राज्य मे परिणत हो गया। उसी वर्ष भारतीय समवाय कानून भी पास हुआ और भारतीय समवाय आन्दोलन ने एक नये युग में पदार्पण किया।

उस समय उस नवगठित विहार और ओडिशा प्रदेश में ५३० समवाय-समितियो और केन्द्रीय समवाय वैंको की स्थापना हुई। इसी वीच ८२ समवाय-समितियाँ तथा दो केन्द्र समवाय

कर रहा है। इसके बाद मद्रास प्रदेश की व्यवस्था के अनुसार वहाँ अनेक समवाय-समितियाँ स्थापित हुई। उनमे से कई बैंक आज भी अच्छे ढग से चल रहे है।

सन् १९२० से १९३० ई० तक समवाय आन्दोलन ने अत्यत शीघ्रतापूर्वक प्रगति की। उस समय भारतीय सस्कार कानून चलाये जाने के कारण हर एक प्रदेश में मत्री नियुक्त किये गये थे। उनकी देख-रेख मे समवाय आन्दोलन विशेष रूप से प्रसारित होने लगा।

'बिहार और ओडिशा' की सरकार ने सन् १९२२ में पहले पहल समवाय आन्दोलन की आर्थिक अवस्था के विषय में परामर्श देने के लिए एक कमेटी स्थापित की। १९२३ ई० में इसी प्रकार एक और समिति बनी। इसके अतिरिक्त सन् १९२९ ई० में बिहार और ओडिशा बैंक अनुसधान कमेटी नामक एक दूसरी कमेटी निर्मित हुई। उस समय उस कमेटी ने अपने मत को प्रकाशित करते हुए स्वीकार किया था कि समवाय आन्दोलन ठीक तौर से चल रहा है। यह रिपोर्ट समवाय आन्दोलन के प्रसार के लिए बहुत ही उपयुक्त थी। इसलिए समवाय आन्दोलन ने खूब प्रगति की और लोगो को काफी ऋण दिया गया।

उस समय हठात् एक बहुत भयकर अकाल पडा। चारो ओर आर्थिक दुर्गति दिखाई पडने लगी। इसके कारण धान चावल का भाव गिर गया। जमीन का मूल्य भी बहुत कम हो गया। इसलिए किसानो ने ऋण के परिशोध का कुछ भी उपाय नही किया। उस समय समवाय ऋण का ब्याज प्रतिशत १५ रु० १० आने था। ब्याज के कारण जमीन भी निकल गई। इसलिए किसान की ऋण-परिशोध की क्षमता पूरी तरह नष्ट हो गई। इस आर्थिक दुर्गति का प्रभाव समवाय आन्दोलन पर क्या पडा, इसकी जाँच के लिए सरकार ने एक दूसरी कमेटी स्थापित की। उस कमेटी की सलाह के अनुसार सरकार ने घोषणा की कि आन्तर्जातिक, अर्थनैतिक दुर्गति का सामना करने पर भी इसकी हालत अच्छी है और आर्थिक स्थिति भी मजबूत है। सारी जनता खेती के लिए ऋण चाहती है। अत समवाय अव्याहत रूप से चालू रहना चाहिए। इसी निर्देशानुसार समवाय समिति की सहायता व्यवस्था अव्याहत रूप में चालू रही।

१९३६ ई० में ओडिशा 'बिहार और ओडिशा' प्रदेश से अलग होकर एक स्वतत्र प्रदेश के रूप में गठित हुआ। मद्रास प्रदेश से कोरापुट और गजाम भी अलग होकर उत्कल में मिल गये। उस समय ओडिशा में ऋणसमवाय समितियो की सख्या लगभग दो हजार थी और सदस्यो की सख्या ७४३४१ थी। इन समितियो को ऋण देने के लिए १३ समवाय केन्द्रीय बैंक चलाये गये जिनके द्वारा लगभग एक करोड रुपये का ऋण दिया गया था।

उसी समय अनुभव किया गया कि लोगो की ऋण-परिशोध की क्षमता पूरी तरह से कम हो गई है और लोगो के पास काफी परिमाण में बकाया रह गया है। इसलिए ऐसा मालूम पडा कि समवाय आन्दोलन नष्ट हो जाने की स्थिति में आ गया है। लेकिन यह जानकर सतोष हुआ कि दक्षिणी ओडिशा के समवाय आन्दोलन की अवस्था बहुत अच्छी थी।

उस समय ओडिशा में पहली बार काग्रेस सरकार स्थापित हुई। उस सरकार ने उत्तरी ओडिशा के समवाय आन्दोलन के विषय मे अच्छी तरह अनुसधान करने के लिए एक कमेटी बनाई।

पडेगा। क्योकि सरकार भारत को समाजवाद के ढाँचे मे ढालने के लिए जिस आर्थिक सगठन की चर्चा करती है, वह केवल इसी समवाय आन्दोलन के द्वारा ही करेगी, इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही है।

उस कमेटी ने यह भी निर्देश किया कि सभी समवाय-समितियाँ काफी छोटी होने के कारण अतीत में स्वावलवी नही हो सकती। इसलिए अव छोटी-छोटी समवाय-समितियो का गठन न करके कई देहातो को लेकर एक वडी समिति गठित की जानी चाहिए। इस प्रकार समिति में कम से कम ५०० सदस्य रहेंगे और कार्यकारी मूल धन अन्तत एक लाख से डेढ लाख तक रहेगा। इस तरह की समितियाँ केवल जमीनवालो को ही कर्ज नही देंगी, वल्कि उन्हें भी देंगी जो जमीन में खेती करते है। वे लोग सामूहिक खेतिहर (भागचाषी) होने पर भी कृषि-उत्पादन के खर्च के लिए अनाज के आधार पर ऋण की सहायता पा सकेंगे। इसके बाद किसान के द्वारा पैदा किये हुए अधिक अनाज को भी समवाय द्वारा बेचने की व्यवस्था की जायेगी। इस कार्य के लिए अनेक आचलिक वाणिज्य समवाय-समितियाँ स्थापित होगी और उनको कृषि-ऋण-समिति के साथ मिला दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त उक्त कमेटी ने लिखा कि सरकार इस तरह की समितियो के कई हिस्से खरीदेगी और सरकार द्वारा मनोनीत एक तिहाई सदस्य समितियो का परिचालन करेंगे। समवाय के द्वारा केवल कृषि-उत्पादन या विक्रय का ही कार्य न हो बल्कि इसके साथ साथ कृषिजात चीजो को व्यवहारोपयोगी वनाने की व्यवस्था भी इसी के द्वारा होनी चाहिए। इस कमेटी की रिपोर्ट को कार्यरूप में परिणत करने के लिए भारत-सरकार, रिजर्व वैंक और राज्य सरकार ने उचित ध्यान दिया है।

आज हमारे सामने द्वितीय पचवर्षीय योजना है। यह इसी कमेटी के निर्देशानुसार निर्मित हुआ है। ओडिशा में इस योजना के अन्तर्गत ५०० वडी समितियो के निर्माण की व्यवस्था की गई थी। उनमे लगभग तीन सौ समितियाँ वन चुकी है। आगे १९५८-५९ ई० में दो सौ समितियो के तैयार होने की पूरी समावना थी। अनेक असुविधाओ के होते हुए भी भारत सरकार ने पचास समितियो के वनाने की मजूरी दी है। हमारे राज्य में ३० आचलिक वाणिज्य-समितियो की स्थापना की गई है और राज्य-समवाय-वाणिज्य-समिति को सुदृढ वनाकर इस शीर्ष समवाय-समिति की स्थापना की गई है। इन वाणिज्य-समवाय-समितियो के द्वारा किसानो को आमोनियम सलफेट और सुपरफासफेट आदि रासायनिक खाद देने की व्यवस्था हुई है। इसके अतिरिक्त इन समितियो के द्वारा किसानो के अधिक से अधिक अनाज को वेचने की व्यवस्था की गई है। दो समवाय चीनी कारखाने भी वनाने की व्यवस्था की गई थी। हर एक मे कार्यकारी मूल धन लगभग एक करोड रु० होगा। वर्तमान कई प्रकार की असुविधाओं के कारण यह काम अच्छी तरह से आगे नही वढ रहा है, फिर भी ऐसी सभावना है कि निकट भविष्य में इस प्रकार की सारी असुविधायें दूर हो जायेंगी। समवाय के बारे में कर्मचारी और जनता को उपयुक्त शिक्षा देने के लिए भी पर्याप्त व्यवस्था की गई है। वर्तमान समय में ओडिशा में चार समवाय-शिक्षानुष्ठान काम कर रहे है और उनके ग्राम्यमान (Touring) शिक्षक हर

# उत्कल के पर्व

## श्री केदारनाथ महापात्र

उत्कल के नाना अचलो में चक्रवर्ती सम्राट् अशोक के शताधिक शिलालेखो और ताम्रपत्रो के आविष्कृत होने पर भी उनसे जातीय पर्वों और उत्सवो के विषय में कोई विश्वसनीय विवरण नही प्राप्त होता है। सातवी शताब्दी के आरभ से लेकर लगभग २०० वर्षों तक "परम भट्टारक, महाराजधिराज, परमेश्वर" आदि पदवीधारी चक्रवर्ती नरेशो ने गगा से महेन्द्र और सबलपुर से समुद्र तक के विस्तृत भूखड में शासन किया था। इसी बीच उत्कल में वर्णाश्रम धर्म का पुनरुत्थान हुआ तथा तात्रिक, शैव और वैष्णव धर्म का विशेष प्रसार हुआ। उसी समय इन्ही भौम सम्राटो ने नाना स्थानो में शख-चक्र-गदा-पद्मधारी विष्णु, लक्ष्मीनारायण, हरगौरी, शिवलिंग, सप्तमातृका, चतु षष्ठि योगिनी, कुरुकुल्ला, चर्चिका, चामुडा, महिषमर्दिनी दुर्गा आदि देवी-देवताओ के अनेक मदिरो का निर्माण किया था। इस युग में मदिरो में शिवविवाह, शिव का कैलाश-वास, रावण का कैलासोत्तोलन, कुमार अथवा कार्त्तिकेय के जन्म, शिवताडव, अजैक-पाद शिव, अर्द्धनारीश्वर, हरपार्वती युगलमूर्ति, गणेश, पार्वती, कार्त्तिकेय, दुर्गाद्वारा महिषासुर-मर्द्दन, सप्तमातृका, कात्यायनी, योगिनी, अनेक प्रकार के भैरव और भैरवियाँ, प्रधान शिवाचार्य, नकुलीश, सप्ताश्व सूर्य, सप्त-ताल-भेद, वालीवध, सेतुवध, राम-रावण-युद्ध, गजलक्ष्मी, नवग्रह और नाग-नागिनियो आदि के उत्कीर्णित विग्रह देखने को मिलते हैं। ये देवी-देवता लोगो के परम आराध्य थे अत उनकी पूजा के उद्देश्य से अनेक प्रकार के पर्व और त्योहार प्रचलित हुए।

भौम-शासन के पूर्व और वाद के लगभग प्रथम शतक के शिलालेखो और ताम्रपत्रो के अनुसार मालूम पडता है कि उत्कल में मेष, वृष, मियुन आदि राशियो, प्रतिपदा, द्वितीया आदि तिथियो, रवि, सोम आदि वारों और अश्विनी, आदि नक्षत्रो का व्यवहार पर्वों के रूप में बहुत कम था। किंतु आगे चलकर भौमयुग में ही (लगभग ७५० ई०) वारो, तिथियो, नक्षत्रो के पर्व रूप में प्रचलित होने का सकेत मिलता है। नयागढ सवडिवीजन के गोविदपुर गाँव के एक मदिर की भीत मे उल्लिखित सोमवशीय रणकेशरीदेव (सन् ७५४ ई०) के अभिलेख में पहली वार वारो का उल्लेख हुआ है।[1] भौम सवत् १९८ अथवा सन् ८१२ ई० के नेट्रभज के एक ताम्रपत्र में 'विषुव सक्राति, पचमी, रवि दिन, मृगशिरा नक्षत्र' लिखा गया है। सर्वप्रथम इसी दानपत्र में सौरमान मास की सक्राति, पचमी, चाद्रमास की तिथि, वार और नक्षत्र का समावेश

---

१ 'माघ सुदी ११ वुधवार'

प्राप्त होने पर भी उत्कल के धर्मग्रन्थो में प्राचीनतम है। परवर्ती धर्मशास्त्रो मे इसके वहुत से श्लोक उद्धृत किये गये है। उन श्लोको से हमें निम्नाकित कई पर्वों का विवरण मिलता है। वैशाख मास में महावैशाखी या वैशाख पूर्णिमा एक पुण्य पर्व के रूप में विवेचित है। बुद्ध विष्णु के अवतार माने जाते है अत उनका जन्मदिवस होने के कारण इसकी गणना एक पर्व के रूप मे है। ज्येष्ठ की कृष्ण त्रयोदशी से अमावस्या तक सधवा स्त्रियाँ सावित्री व्रत करती थी। अव यह केवल अमावस्या के दिन ही मनाया जाता है।

उस समय रजपर्व अथवा भूमि के रजस्वला पर्व का प्राधान्य था। चूंकि यह पर्व केवल उत्कल मे ही प्रचलित था इसलिए शतानद-सग्रह के अतिरिक्त अन्य धर्मग्रथों और पुराणो मे इसका उल्लेख नही है। इस पर्व के सवघ मे शतानद ने लिखा है कि सूर्य के मृगशिरा नक्षत्र में अवस्थित होने पर पृथ्वी तीन दिनो तक रजस्वला रहती है। इन दिनो किसी भी प्रकार के कृषि-कर्म का निषेध है।[1] उत्कल के प्रसिद्ध स्मृतिकार श्री गदाधर राजगुरु ने इस श्लोक की टीका में लिखा है कि वृषमास के अतिम दिन, मिथुन सक्राति का दिन और इसके वाद का दिन रजपर्व के अन्तर्गत है।[2] अत प्राचीन काल से आज तक ओडिशा की सभी जातियो के लोग तीन दिन तक हल नही चलाते और अपना समय मेलो, अनेक प्रकार के उत्सवो, मउजो और मजलिसो मे व्यतीत करते है।

इसके अतिरिक्त शतानद ने भादों की जन्माष्टमी, सप्तपुरिका, अमावस, गौरी तृतीया, शिवचतुर्थी, ऋषिपचमी और इन्द्र पूर्णिमा आदि व्रतो का निर्देश किया है। आज भी समस्त उत्कल में भाद्र कृष्णाष्टमी के दिन श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव वडी धूमवाम से मनाया जाता है। लेकिन भाद्र अमावस अथवा सप्तपुरिका अमावस का पहले जैसा प्राधान्य अव नही है। अव यह केवल पुरी और भुवनेश्वर आदि धर्मपीठो में प्रचलित है। भाद्र शुक्ल तृतीया के दिन मनाये जानेवाले गौरी व्रत को लोग वालितृतीया भी कहते है। इस अवसर पर ओडिशा की स्त्रियाँ सारी रात जागकर और जल तक भी न ग्रहण कर गौरीव्रत का अनुष्ठान करती है। शतानद ने भाद्र शुक्ल चतुर्थी मे शिव पार्वती के पूजन की व्यवस्था दी है लेकिन गगशासनकाल में इसी दिन शिवपुत्र विनायक या गणेश की पूजा प्रचलित थी। अत अव इसका नाम गणेश चतुर्थी है।[3] यह उत्कल मे सर्वत्र मनाया जाता है। भाद्र शुक्ल पचमी या ऋषिपचमी के दिन स्त्रियाँ सतान-वृद्धि के निमित्त विश्वामित्र ऋषि की पूजा करती थी। ओडिशा के पचागो में इस व्रत का उल्लेख

---

१ मृगर्क्षे अर्के निवसति तन्मध्येऽपि दिनत्रयम्।
रजस्वला स्यात् पृथ्वी कृषि-कर्म विगर्हितम्।

२ वृषातदिन, सक्रातिदिन तत्परदिनं चेति दिनत्रयमित्यर्थ ।

३. मासि भाद्रपदे शुक्ला चतुर्थी शिवपूजिता।
तस्या स्नान तया दानमुपवास फलप्रद ।

चैतन्यदेव के प्रचार के कारण ही उत्कल में दोल पर्व अनुष्ठित हुआ किंतु इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि गगशासन के पूर्व दोल-महोत्सव एक जातीय पर्व के रूप में मनाया जाता था।

पहले चैत्र कृष्ण चतुर्दशी को शिवपूजा और शुक्ल त्रयोदशी को रति-प्रीति-समायुक्त कामदेव की पूजा का विधान था तथा चैत्र पूर्णिमा भी एक पुण्याह के रूप में विवेचित था किन्तु चैत्र के उपरोक्त सभी पर्व वर्तमान काल में नही मनाये जाते। शतानद-सग्रह पूर्ण रूप से अप्राप्य होने के कारण तत्कालीन अन्य पर्वों का पता नही चलता। फिर भी शतानद-सग्रह की तरह प्राचीन उत्कल मे प्रचलित धवलाचार्य के धवल-सग्रह नामक धर्मशास्त्र से पता चलता है कि पौष अमावस या वकुल अमावस के दिन बकुल-मिश्रित खीर से पूर्वजो की पूजा का एक पर्व था। इसी दिन वाराह अवतार का जन्म भी हुआ था। अब भी उत्कल मे वकुल अमावस पर्व के रूप मे प्रचलित है।

## गंग और सूर्यवंश शासनकाल में प्रचलित पर्व और त्योहार

गगकाल में आविर्भूत उत्कलीय स्मृतिकार वृहस्पति मूरि (१४वी शती) के 'कृत्य-कौमुदी' नामक ग्रन्थ से दूसरे कई पर्वो का विवरण मिलता है। उन्होने चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से विक्रम सवत् के प्रथम दिवस का प्रारभ मान कर चैत्र शुक्ल अष्टमी या अशोकाष्टमी को वर्ष के प्रथम पर्व में स्थान दिया है। आजकल इस तिथि मे केवल भुवनेश्वर में लिंगराज महाप्रभु की रथयात्रा अनुष्ठित होती है। अन्य स्थानो मे इसके प्रचलन की कोई सूचना नही मिलती है। इसी प्रकार चैत्र शुक्ल चतुर्दशी का पर्व केवल पुरी और भुवनेश्वर में ही प्रचलित है।

कृत्य-कौमुदी मे महाविषुव सक्राति अथवा मेष सक्राति नामक पर्व का भी उल्लेख है। यह पर्व आज भी समस्त उत्कल में प्रचलित है। इसका लौकिक नाम पणा सक्राति है। इस अवसर पर लोग नाना प्रकार के पणा[1] पीकर अपनी प्यास मिटाते है। धार्मिक लोग इसी दिन से जलदान के लिए पौशाले खोलते है। धूप से रक्षा पाने के लिए इस दिन से एक मास तक शिवलिंग और तुलसीचौरा पर अखड जलविंदु-पात की व्यवस्था की जाती है। इस दिन ओडिशा के अनेक स्थानो में 'झमयात्रा'[2] भी होती है।

मेष सक्राति की भाँति वैशाख शुक्ल तृतीया या अक्षय तृतीया नामक पर्व का भी यथेष्ट विवरण उपरोक्त ग्रन्थ मे मिलता है। यह भी ओडिशा में सभी जगह प्रचलित है। इसी दिन से चदन यात्रा[3] आरभ होती है जो तीन सप्ताह तक चलती है। इन दिनो लोग अनेक प्रकार के नृत्य-गीत द्वारा आनद मनाते तथा खाते-खिलाते है। उत्कल में चदन यात्रा का आरभ गगराजत्व-काल में हुआ था। इस दिन से धान की वोवाई शुरू होती है।

---

१ जीरे का जल, शर्बत, घुला हुआ सत्त, पचामृत, पेय पदार्थ, प्रपानक, पना।

२ एक प्रकार का मेला जहाँ एक गड्ढे में आग भरी रहती है और देवी का कृपापात्र एक विशेष व्यक्ति उस आग पर चलता है।

३ जलाशयो में नाव द्वारा श्रीकृष्णमूर्ति की यात्रा।

शिल्पी लोग इसी समय अपने औजारो और यन्त्रो की पूजा करते थे। आज भी मुख्य रूप से सभी जातियो मे इस पर्व का प्रचलन है। पर्वतीय जातियाँ भी इसे अपना एक मुख्य पर्व मानती है। ब्रिटिशकाल में अस्त्र-शस्त्रो पर प्रतिवध होने के कारण महाष्टमी का वीरत्व-व्यजक कार्य-कलाप बद हो गया था। किंतु पिछली शताब्दियो से दुर्गा-प्रतिमा के निर्माण, पूजा और विसर्जनादि के उत्सव बडा तडक-भडक के साथ सपन्न होते आ रहे है।

मार्गशीर्ष की कृष्णाष्टमी या प्रथमाष्टमी को युवक और युवतियाँ नये वस्त्र धारण करती है। इस दिन उनकी दीर्घायु के लिए पूजा आदि की जाती है। इसकी गणना लिंगराज महाप्रभु के प्रथम पर्व के रूप में होती है। केवल उत्कल में ही इसका प्रचलन है, अन्यत्र नही।[1] मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी अथवा प्रावरण षष्ठी एक पुण्य तिथि है। इस दिन देवता, ब्राह्मण और गरीब व्यक्तियो को वस्त्रदान दिया जाता है। अव यह पर्व केवल पुरी और भुवनेश्वर मे ही प्रचलित है। माघ शुक्ल सप्तमी को कोणार्क अथवा अर्क क्षेत्र में सूर्य देवता के निमित्त एक विराट् यात्रा अनुष्ठित होती है। जनसमागम और माहात्म्य की दृष्टि से यह पुरी की गुडिचा यात्रा से तुलनीय है। गजपति नरसिंह देव के शासनकाल में (सन् १२३८ से १२६४ तक) कोणार्क के उत्तुग सूर्य-मदिर का निर्माण हुआ था। इसके बाद ही इस पर्व का प्रचलन हुआ। १३वी शताब्दी के स्मृति-कार शखधर ने पहले पहल अपने स्मृति-समुच्चय में इसका उल्लेख किया है। सूर्य-मदिर के टूट जाने के बाद भी यह पर्व पहले की भाँति आज भी प्रचलित है। खडगिरि में इसी दिन से सप्ताहात तक मेला लगता है।

माघ पूर्णिमा की रात को अग्निदेवता के सतोष के लिए काठ, पत्र आदि जला कर अग्नि की पूजा होती है। इसलिए इस पर्व को वह्नि पूर्णिमा कहा जाता है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को सभी लोग भूखे रह कर पूरी निष्ठा और भक्ति के साथ दीपदान और शिवपूजा करते है। इसे शिवरात्रि पर्व कहते है। इसी रात को पुरी, भुवनेश्वर, चडेश्वर और शरणकुल, कटक जिले के चाटेश्वर महाविनायक और परमहस, ढेंकानाल के कपिलास, वालेश्वर के आखडलमणि, कालाहाण्डि के बेलखडि, बिनिका, पानपोष आदि स्थानो में विराट् जनसमागम होता है।

गगयुग में वैष्णव धर्म की प्रधानता के कारण नृसिंहजन्म, वामनजन्म, परशुराम-जन्माष्टमी आदि पर्व प्रचलित हुए। वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को नृसिंह-जन्म पर्व मनाया जाता है। इस अवसर पर सिंहाचल पर्वत (जो पहले ओडिशा में था, अब आध्र मे है) और सबलपुर जिले के नरसिंहनाथ में वहुत वडे वडे मेले लगते है। पहले वहाँ भाद्र शुक्ल द्वादशी अथवा वामन-जन्म की विशेष प्रसिद्धि थी। इस दिन शक्रोत्थापन के कारण इद्रपूजा भी अनुष्ठित होती थी। इसी तिथि मे गग राजाओ का नया अक (वर्ष) आरभ होता था। इस दिन उनकी स्वर्ण मुद्राओ पर

---

१ तत्र उत्कलेषु अधुना, पूजावंदनादिक कुर्वंति, देशान्तरे नास्ति।

शिल्पी लोग इसी समय अपने औजारो और यन्त्रो की पूजा करते थे। आज भी मुख्य रूप से सभी जातियो में इस पर्व का प्रचलन है। पर्वतीय जातियाँ भी इसे अपना एक मुख्य पर्व मानती हैं। ब्रिटिशकाल में अस्त्र-शस्त्रो पर प्रतिवध होने के कारण महाष्टमी का वीरत्व-व्यजक कार्य-कलाप बद हो गया था। किंतु पिछली शताब्दियो से दुर्गा-प्रतिमा के निर्माण, पूजा और विसर्जनादि के उत्सव वडा तडक-भडक के साथ सपन्न होते आ रहे हैं।

मार्गशीर्ष की कृष्णाष्टमी या प्रथमाष्टमी को युवक और युवतियाँ नये वस्त्र धारण करती हैं। इस दिन उनकी दीर्घायु के लिए पूजा आदि की जाती है। इसकी गणना लिंगराज महाप्रभु के प्रथम पर्व के रूप में होती है। केवल उत्कल में ही इसका प्रचलन है, अन्यत्र नही।[1] मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी अथवा प्रावरण षष्ठी एक पुण्य तिथि है। इस दिन देवता, ब्राह्मण और गरीव व्यक्तियो को वस्त्रदान दिया जाता है। अव यह पर्व केवल पुरी और भुवनेश्वर में ही प्रचलित है। माघ शुक्ल सप्तमी को कोणार्क अथवा अर्क क्षेत्र मे सूर्य देवता के निमित्त एक विराट् यात्रा अनुष्ठित होती है। जनसमागम और माहात्म्य की दृष्टि से यह पुरी की गुडिचा यात्रा से तुलनीय है। गजपति नरसिंह देव के शासनकाल में (सन् १२३८ से १२६४ तक) कोणार्क के उत्तुग सूर्य-मदिर का निर्माण हुआ था। इसके वाद ही इस पर्व का प्रचलन हुआ। १३वी शताब्दी के स्मृति-कार शखधर ने पहले पहल अपने स्मृति-समुच्चय में इसका उल्लेख किया है। सूर्य-मदिर के टूट जाने के वाद भी यह पर्व पहले की भाँति आज भी प्रचलित है। खडगिरि में इसी दिन से सप्ताहात तक मेला लगता है।

माघ पूर्णिमा की रात को अग्निदेवता के सतोष के लिए काठ, पत्र आदि जला कर अग्नि की पूजा होती है। इसलिए इस पर्व को वह्नि पूर्णिमा कहा जाता है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को सभी लोग भूखे रह कर पूरी निष्ठा और भक्ति के साथ दीपदान और शिवपूजा करते हैं। इसे शिवरात्रि पर्व कहते हैं। इसी रात को पुरी, भुवनेश्वर, चडेश्वर और शरणकुल, कटक जिले के चाटेश्वर महाविनायक और परमहस, ढेंकानाल के कपिलास, वालेश्वर के आखडलमणि, कालाहाण्डि के वेलखडि, विनिका, पानपोष आदि स्थानो में विराट् जनसमागम होता है।

गगयुग में वैष्णव धर्म की प्रधानता के कारण नृसिहजन्म, वामनजन्म, परशुराम-जन्माष्टमी आदि पर्व प्रचलित हुए। वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को नृसिह-जन्म पर्व मनाया जाता है। इस अवसर पर सिंहाचल पर्वत (जो पहले ओडिशा में था, अव आध्र में है) और सवलपुर जिले के नरसिंहनाथ में वहुत वडे वडे मेले लगते हैं। पहले वहाँ भाद्र शुक्ल द्वादशी अथवा वामन-जन्म की विशेष प्रसिद्धि थी। इस दिन शक्रोत्यापन के कारण इद्रपूजा भी अनुष्ठित होती थी। इसी तिथि से गग राजाओ का नया अक (वर्ष) आरभ होता था। इस दिन उनकी स्वर्ण मुद्राओ पर

---

१ तत्र उत्कलेषु अधुना, पूजावदनादिक कुर्वति, देशान्तरे नास्ति।

अभागे भारत के भी भाग्य जागे। विदेशी शासन के आतक के बावजूद भी यहाँ राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ। स्वप्नो को रेखाएँ मिली—आकृति उभरी और उसमें रग भरने के लिए देशभक्तो ने रक्तदान दिया। इस प्रकार गत साठ वर्षों का भारतीय इतिहास राष्ट्रीय भावना, त्याग और बलिदान का रोमाचकारी इतिहास है। जब एक ओर देश के कर्णधार असह्य यातनाओ और अथक परिश्रम के द्वारा स्वतत्रता-यज्ञ में अपने प्राणो की आहुति दे रहे थे, तो दूसरी ओर राष्ट्रोन्नति के रचनात्मक कार्यों में अपनी शक्ति लगाकर सोते हुए राष्ट्र की सुप्त शिराओं में चैतन्य का सचार कर रहे थे।

भारत का यह सौभाग्य था कि प्रलयकर विदेशी शासन के ऐसे दुर्दान्त युग में उसे मोहनदास करमचन्द गाधी जैसे तपस्वी नेता कर्णधार के रूप में प्राप्त हो गये। गाधी का नाम लेते ही समग्र भारत दृष्टि के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। जीवन का कोई क्षेत्र, समाज का कोई अग और देश की कोई भी समस्या ऐसी नही थी जिसका अध्ययन इस महात्मा ने न किया हो और अपने अनुभव के आलोक से उसे आलोकित न किया हो। यह सत्य है कि महात्मा जी के उदय के पूर्व जनजीवन में राष्ट्रीय चेतना की हिलोरें उठ रही थी, राजनीतिक आन्दोलन में गति दी जा रही थी तथा जागर्ति के साधनो पर जोर दिया जा रहा था, किंतु यह भी सत्य है कि शाति-मूर्ति गाधी क्राति की आँधी लेकर उपस्थित हुए जिसके वेग से सपूर्ण राष्ट्र झकझोर उठा। वे ऐसे सूर्य बने जिनसे आलोक पाकर अनेक ग्रह अपने-अपने क्षेत्रो में चमक उठे। गाधी का यह अनेक-विध जीवन उनके निकट के व्यक्तियो के लिए भी कौतूहल का विषय बना रहा।

इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करना विषय के बाहर न होगा। कलकत्ते में सन् १९१७ में काग्रेस का अधिवेशन हुआ। उस अवसर का लाभ उठाकर कुछ भाइयो ने अल्फ्रेड थियेटर में राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्बन्धी एक कान्फ्रेन्स आयोजित की। लोकमान्य तिलक, कर्मवीर गान्धी आदि अनेक नेताओ ने इसमें भाग लिया। इस कान्फ्रेन्स में लोकमान्य तिलक ने इजिप्शन, असीरियन आदि पुरानी सस्कृतियो पर अग्रेजी में सारगर्भित भाषण दिया। जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो गाधी जी ने हिन्दी में बोलते हुए लोगो से पूछा कि आप लोगो में से कितने लोगो ने इस व्याख्यान को समझा ? इस पर बहुत कम हाथ उठे। तब उन्होंने पूछा कि यही व्याख्यान यदि हिन्दी में होता तो कितने लोग समझते ? इस पर प्राय सभी हाथ उठे। इस प्रकार राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति गाधी की श्रद्धा और अनुराग सार्वजनिक रूप से पहली बार कलकत्ते में प्रकट हुआ। इस घटना के थोडे ही दिनो बाद लोकमान्य ने हिन्दी पर पूर्ण अधिकार कर लिया।

गाधी जी किसी भी बात को तब तक वाणी का विषय नही बनाते थे, जब तक उस पर गहरा चिन्तन-मनन न कर लेते थे। इतना ही नही, बल्कि किसी सम्बन्ध में कुछ कहने के पूर्व वे उसे अपने जीवन में उतार लेते थे। भारत की राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में भी वे बहुत पहले गहरा अध्ययन-मनन कर चुके थे। सन् १९०९ में लिखी अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में एक स्थान पर वे लिखते हैं—

उत्कल का प्रसिद्ध छउनाच

था। इसी शुभ दिन मे ओडिशा की नदियो के मुहानो पर स्थित वदरगाहो से हजारो जहाज पण्यद्रव्य देकर ब्रह्मदेश, दक्षिणी भारत, सिंहल, जावा, सुमात्रा, वोर्नियो आदि भारत के पूर्वी द्वीपपुजो की ओर यात्रा आरभ करते थे। जहाज के कूल छोडने के पूर्व ही व्यापारियो के घर की लडकियाँ और वहुएँ वोइत या वहित्र (जहाज) की निर्विघ्न यात्रा के लिए पूजा-वदना आदि करती थी। सन् १४९८ के पश्चात् पुर्तगाली नाविको द्वारा हिंदमहासागर और वगोपसागर मे स्वाधिकार-स्थापन के निमित्त वारवार नौयुद्ध और जहाज लूटने की क्रिया से ओडिशा का समुद्री वाणिज्य क्रमश सकुचित होता गया और ब्रिटिश शासन में तो कपनी की देशी नौवाणिज्य के ध्वस की नीति ने इसे पूरी तरह चौपट ही कर डाला। ओडिशा के प्राचीन नौवाणिज्य का गौरवपूर्ण अध्याय इतिहास के पृष्ठो में ही सीमित है किंतु उसके स्मारकस्वरूप आज भी पुराना वोइत वदाण पर्व समाज में जीवित है। चैतन्योत्तर युग में वोइत वदाण के साथ सकीर्तन प्रचलित हुआ जो प्रात काल उक्त पर्व के वाद सपूर्ण दिन चलता है। कार्त्तिक पूर्णिमा को यहाँ कई स्थानो में मेले लगते है। इनमें गजपति प्रतापरुद्रदेव द्वारा निर्मित धवलेश्वर मदिर और कटक जिले में महानदी के समीप चैतन्यदेव के अवतरणस्थान गडगडिया घाट के मेले उल्लेखनीय हैं।

सन् १६५० के लगभग श्री चैतन्यदेव की लोकप्रियता वढ जाने से ओडिशा में नद उत्सव, ललिता सप्तमी, राधाष्टमी आदि नये पर्व प्रतिष्ठित हुए। जन्माष्टमी का नाम वाद में नदाष्टमी पडा। इसी प्रकार भाद्र शुक्ल सप्तमी और भाद्र शुक्लाष्टमी का नाम क्रमश ललिताष्टमी और राधाष्टमी हुआ। प्रचार के कारण कालान्तर में राधाष्टमी श्रीकृष्णाष्टमी की भाँति एक विशेष पर्व के रूप मे मान्य हुई। १८वी शताब्दी के मध्य में राधा-कृष्णलीला का प्रचार वढा और झूलण पर्व नामक एक नये पर्व का प्रचलन हुआ। यह पर्व श्रावण शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक अनुष्ठित होता है।

१७वी शताव्दी में श्री रामचद्र के भक्तो ने ओडिशा में चैत्र शुक्ल नवमी के दिन राम-नवमी और वैशाख शुक्ल नवमी के दिन सीतानवमी नामक पर्वों को प्रचलित किया। रामनवमी की लोकप्रियता विशेष रूप से वढ जाने के कारण ओडिया भाषा में अनेक रामलीला-सबधी ग्रथ रचे गये थे। उनमें वैश्य सदाशिव द्वारा रचित चिकिटि रामलीला तथा केशव पट्टनायक की रामायण का विशेष प्रचार और आदर है। आज भी ओडिशा में रामनवमी का पर्व वडे समारोह के साथ मनाया जाता है। वहुत दिनो तक प्रत्येक रातको पर्याप्त जनसमागम के साथ रामलीला-अभिनय का प्रदर्शन करना इस पर्व की विशेषता है।

श्री चैतन्यदेव के आगमन के पूर्व देवदासियाँ जयदेव-विरचित गीतगोविन्द को हर रोज, रात के समय, पुरी के जगन्नाथ मदिर में गाती थी। उस अवसर पर जगन्नाथ एक स्वतत्र वेश धारण करते थे। उसका नाम "वडो शृगार वेश" है। चैतन्यदेव जी जब पुरी मे आये तो वे नित्य गीतगोविन्द सुना करते थे। इसलिए इसकी लोकप्रियता काफी वढ गई। उसी समय से गीतगोविंदकार जयदेव के जन्मस्थान पर एक यात्रा प्रचलित हुई। यह स्थान पुरी जिले के पाटणा थाना के अन्तर्गत केन्दुबिल्व या केन्दुलि शासन के निकट है और यात्रा त्रिवेणी-सगम में माघ की

# ओड़िशा में संस्कृत साहित्य

## श्री केदारनाथ महापात्र

ईसा की चौथी और पाँचवी शताव्दी में, उत्तर भारत के ब्राह्मणधर्म के पोषक सार्वभौम-क्षमता-सम्पन्न गुप्त सम्राटो का शासन उत्कल मे भी स्थापित हो गया था, अतएव भारत के अन्य प्रातो की भाँति यहाँ भी सस्कृत भाषा और साहित्य की उन्नति हुई और उसका व्यापक प्रचार तथा प्रसार हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत उसी समय से हजार वर्षों तक यहाँ के राजकीय ताम्रपत्रो और शिलालेखो में सस्कृत भाषा का व्यवहार होता आया है। राजसभा और शासन-कार्यों में इसकी अक्षुण्ण और अप्रतिहत मान्यता स्वीकृत हो चुकी थी। इसीलिए इस युग में राजाश्रय, लोकप्रियता और यश के लिए धर्मप्रवर्तको, कवियो, लेखको, दार्शनिको, ज्योतिषियो, गणितज्ञो और आयुर्वेद आदि विभिन्न विपयो के प्रकाड पडितो ने अमूल्य ग्रथो की रचना करके सस्कृत वाङमय की उल्लेखनीय श्रीवृद्धि की थी।

इतिहास-प्रसिद्ध गगवशीय शासन (ग्यारहवी शती) के पूर्ववर्ती युग के आविष्कृत उपरोक्त ताम्रपत्रो और शिलालेखो से पता चलता है कि उनमें उच्चकोटि की साहित्यिक सस्कृत व्यवहृत होती थी। इसके अतिरिक्त चौथी से ग्यारहवी शताब्दी के बीच, उत्कलीय पडितो द्वारा रचित थोडे से ग्रथ भी खोज निकाले गये है, जिनमें बौद्धधर्म की वज्रयान शाखा के प्रवर्तक उत्कलवासी इद्रभूति (७वी शताव्दी) द्वारा रचित ज्ञानसिद्धि नामक ग्रथ प्रकाशित हो चुका है। इसकी प्रस्तावना से पता चलता है कि प्रसिद्ध कवि मुरारि कृत अनर्घराघव नाटक और नीलाचल-मौलि-मडन पुरुषोत्तम जगन्नाथ-यात्रा के समय अभिनीत हुए थे। खडगिरि-निवासी, दिगवर जैन धर्म के प्रचारक आचार्य शुभचद्र ने ज्ञानार्णव नामक योगशास्त्र-विषयक एक ग्रथ की रचना की थी। नवी शताव्दी में उत्कल के राजा पुरुषोत्तमदेव ने त्रिकाडशेष, हारावली, एकाक्षर कोश, द्विरूपकोश आदि कोश-ग्रथो की रचना करके सपूर्ण भारत में ख्याति प्राप्त की थी। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद शतानद जी आचार्य ने १०९९ ई० मे पचसिद्धात भास्मती नामक एक ज्योतिष ग्रथ लिखा था। इस ग्रथ का आदर और मान सपूर्ण भारत मे इस प्रकार बढ गया था कि बाद मे उस पर लगभग २० टीकाएँ लिखी गई। उन्होने 'शतानद-सग्रह' और 'शतानद-रत्नमाला' नामक धर्मशास्त्र के दो प्रसिद्ध ग्रथ और भी लिखे थे।

गग साम्राज्य के प्रतिष्ठाता चोलगगदेव के राजत्वकाल मे उत्कल की सर्वांगीण उन्नति हुई। गगयुग मे पुरी के प्रसिद्ध जगन्नाथ मदिर और कोणार्क के सूर्य-मदिर का निर्माण हुआ था। गगा से गोदावरी तक फैले हुए उत्कल के विभिन्न स्थानो मे सैकडो ब्राह्मण-शासन और देवालय

दो नाटक लिखे थे। प्रतापरुद्रदेव के अधीनस्थ राजा महेन्द्र के राज्यपाल श्री राय रामानद पटनायक का जगन्नाथवल्लभ नाटक एक अमूल्य ग्रन्थ है। प्रतापरुद्रदेव के परवर्ती कविराज चिन्तामणि मिश्र के सम्बरारिचरित, कादम्बरी-सार, सभाप्रमोद, पद्यावली, कसवध, त्रिशिरावध व्यायोग, कृत्यपुष्पावली, वाङ्मयविवेक (अलकार), आदि अनेक ग्रथ मिलते है।

उत्कल के अतिम स्वाधीन गजपति श्री मुकुन्ददेव की मृत्यु (१५६८ ई०) के पश्चात् ओडिशा का उत्तरी भाग (गगा और महानदी के बीच का स्थान) मुस्लिम शासन के अतर्गत चला गया था, फिर भी महानदी और वशधारा के बीच का भू-भाग भोई-वशीय गजपति नरेशो के अधीन था जिन्होने, मुसलमानो द्वारा बारबार आक्रात होने पर भी, सस्कृत तथा ओडिया साहित्य की उन्नति के लिए यथोचित बढावा और सहारा दिया था। भोई-वश के राजत्व-काल में (१५६८-१८०३ ई०) नीचे लिखे हुए कवि और काव्य उल्लेखनीय है। कवि नित्यानन्द-कृत शिवलीलामृत और कृष्णलीलामृत महाकाव्य, श्री रघुत्तम तीर्थ का मुकुन्दविलास काव्य, गगाधर मिश्र का कोशलानन्द महाकाव्य, विद्याकर पुरोहित का नारायणशतक, हलधर मिश्र का वसन्तोत्सव महाकाव्य, विश्वम्भर रथ का रामलीलामृत महाकाव्य, नीलाम्बर आचार्य का चन्दनयात्रा चम्पू, भगवान रथ कविराज का मृगया चम्पू और गुण्डिचोच्छवर्णन, हरिकृष्ण कविराज पुरोहित का राधाविलास महाकाव्य, वासुदेव रथ सोमयाजी का गगवशानुचरित चपू, नारायण मगराज का अब्ददूत खडकाव्य, ब्रजसुन्दर पटनायक का सुलोचना-माधव काव्य, वासुदेव का राघवयादवीय महाकाव्य, कविचद्र कमललोचन खड्गराय का गीतमुकुद, सगीतचितामणि, ब्रजयुवविलास, वक्रवाक् चक्रपाणि का गुण्डिचा चम्पू, कला-कौमुदी चपू और कटाक्षशतक आदि है।

उस युग के भोईवश के प्रतिष्ठाता श्री गजपति रामचद्रदेव ने, श्रीकृष्णभक्तवात्सल्य नाटक, राय रामानन्द की छोटी बहिन माधवी देवी ने श्री पुरुषोत्तमदेव नाटक, कविभूषण गोविन्द सामन्त राय ने समृद्धिमाधव नाटक, चान्दु राय गुरु ने उषापरिणय नाटक, नरसिंह मिश्र ने मञ्जमहोदय नाटक, और चयनी चन्द्रशेखर ने मथुरानिरुद्ध नाटक की रचना कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

भारत के अलकार साहित्य को उस युग के कवियो का दान महनीय है। उस युग में लोकनाथ दीक्षित ने साहित्यदर्पण की प्रभास्मृति टीका, गोपीनाथ मिश्र ने साहित्यदर्पणप्रभा, महामहोपाध्याय कृष्णमिश्र ने साहित्यरत्नाकर की सुधाकर टीका और श्रीराम शर्मा ने काव्यप्रकाश की कलावती टीका लिखी थी।

मौलिक अलकार-ग्रन्थो में जगन्नाथमिश्र का रसकल्पद्रुम, कविभूषण गोपीनाथ पात्र का कविचिन्तामणि, लोकनाथ त्रिपाठी का कविकण्ठहार और रामचन्द्र खड्गरायकृत अलकार-चिन्तामणि आदि विशेष उल्लेखनीय है। तिगिरिया के तुगवशीय नरपति यदुनाथसिंह महापात्र का अभिनयदर्पणप्रकाश एक उपादेय ग्रन्थ है।

विभिन्न सस्कृत ग्रन्थो की खोज से मालूम होता है कि ओडिशा के पडितो ने सस्कृत भाषा

की तत्त्ववोध टीका और पीतावर रथ दीक्षितकृत चडीतत्त्वार्थ-वोधक टीका का विशेष आदर और प्रसार दिखाई पडता है।

उत्कल मे निर्मित स्वतन्त्र पुराण ग्रन्थो में स्कन्द-पुराणोक्त उत्कलखड, पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य, नीलाद्रिमहोदय, गजपति पुरुषोत्तमदेव-कृत मुक्तिचिन्तामणि, वालुकीपाठीकृत जगन्नाथ के विभिन्न यात्रा-विषयक यात्रा-भागवत, कपिलसहिता, एकाम्रपुराण, एकाम्रचद्रिका, स्वर्णाद्रिमहोदय, विरदाक्षेत्रमाहात्म्य आदि उल्लेख-योग्य हैं।

उत्कल के धर्मशास्त्र के लेखको में पूर्वोक्त शतानन्द आचार्य सर्वप्रथम हैं। उनके परवर्ती उत्कलीय पडित शखधर ने स्मृतिसमुच्चय नामक एक उत्कृष्ट प्रमाण-ग्रन्थ रचा जो समस्त भारत में आदृत हुआ था। चतुर्दश शताब्दी में आविर्भूत ऋषिमूर्ति एव नित्याचारनिष्ठ शम्भुकर वाजपेयी के पुत्र विद्याकर वाजपेयी उत्कल में स्मार्त मत के अधिष्ठाता माने जाते हैं। शम्भुकर के बनाये हुए शम्भूकर पद्धति, विवाहपद्धति, दुर्वलकृत्य पद्धति, श्रोत्राध्यान श्लोक-पद्धति, अग्निहोत्र-होमपद्धति, अग्नि-होत्रहोम-प्रायश्चित्तपद्धति, दर्शपौर्णमासेष्टिपद्धति, स्मार्तरसावली आदि कई ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। शम्भूकर के पुत्र विद्याकर भारतप्रसिद्ध स्मृतिकार हैं। उनके नित्याचार-पद्धति जैसे विराट् ग्रथ के आठ भागो में से केवल एक भाग इस समय तक कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त क्रमदीपिका, दिनकृत्यदीपिका और मोक्ष-परीक्षा आदि ग्रन्थ भी उनके बनाये कहे जाते हैं। विद्याकर के प्रसिद्ध शिष्य रामचन्द्र वाजपेयी ने अपने जीवन का अधिकाश समय नैमिषारण्य में विताया था। उनके द्वारा रचित (सन् १४००-१४५० ई०) निम्न ग्रथो का पता चलता है। ये शुल्ववार्तिक और उसके ऊपर उनकी दो टीकाएँ शारदातिलक टीका, शारदार्च्चा-प्रयोग, प्रायश्चित्तप्रदीपिका, साख्यायन गृह्यसूत्र टीका, कुण्ड-मडपलक्षण, कुण्डामार्तण्ड, कुण्ड-निर्माणविधि, कुण्डकृति और श्लोकदीपिका आदि ग्रथ है।

उत्कलीय सस्कृत साहित्य की उन्नति के लिए प्रतापरुद्रदेव के राजगुरु एव मन्त्री श्री गोदावरी मिश्र के वश की सेवा अविस्मरणीय है। गोदावरी के पूर्वजो में किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा रचित शतसमय, मृत्युञ्जय मिश्रकृत शुद्धिमुक्तावली, नारायण मिश्र कृत मीमासाद्वय की टीका, और जलेश्वर मिश्र कृत जलेश्वर-पद्धति आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। गोदावरी के पितामह गजपति कपिलेश्वरदेव के विचार-सचिव श्री नृसिंह वाजपेयी ने सक्षेप शारीरिक वार्तिक और काशीमीमासा नामक दो ग्रन्थो की रचना की थी। गोदावरी के पिता बलभद्र मिश्र राजगुरु ने अद्वैत-चिन्तामणि और शारीरिक सारपुरुषोत्तम स्तुति नामक दो ग्रन्थ लिखे थे। गोदावरी उस विख्यात पडित वश मे सर्वश्रेष्ठ थे। अपने पिता की मृत्यु के वाद वे पहले प्रतापरुद्रदेव के राजगुरु और वाद मे मत्री बने। उनके द्वारा लिखे हुए निम्नलिखित ग्रथो में तन्त्रचिन्तामणि, योगचिन्तामणि, नीतिचिंतामणि, आचारचिन्तामणि, जयचिंतामणि, अद्वैतदर्पण, अविकरण-दर्पण, नीतिकल्पलता, सामुद्रिक कामधेनु, पातञ्जलदीपिका, हरिहरचतुरग, और शारदाशरदर्चन-पद्धति आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। गोदावरी के वशधर (भाई के पोते) श्री नरसिंहमिश्र वाजपेयी ओड़िशा और भारत के एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्र-प्रणेता थे। उन्होने १८ प्रदीपो की रचना

## आयुर्वेद और ज्योतिष

जनश्रुतियो से पता चलता है कि सुप्रसिद्ध निदानकर्त्ता माधव कर उत्कलवासी थे। ओडिशा में इस ग्रथ का विशेष आदर और प्रसार होने से वैद्यराज नारायण षडगी ने निदान की वालबोधिनी टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त उस ग्रथ पर वैद्य भागीरथी महापात्र ने तत्त्ववोधिनी टीका और हरिहर नन्द ने निदानसारसग्रह आदि कई टीकाएँ लिखी थी। गजपति प्रतापरुद्रदेव के समकालीन कविराज विश्वनाथ सेण ने चिकित्सार्णव और पथ्यापथ्य-विनिश्चय नामक दो ग्रथो का प्रणयन कर विशेष स्याति प्राप्त की थी। ओडिशा में लिखित अन्य आयुर्वेद-ग्रन्थो में रामचन्द्र वाजपेयी कृत नाडीपरीक्षा, योगी प्रहराज महापात्र कृत वैद्यहृदयानन्द, हरिचरण सेण कृत पर्यायमुक्तावली, गोविन्ददास कृत भैषजरत्नावली, भुवनेश्वर पाटयोषी कृत आयुर्वेद-सार-सग्रह और चक्रपाणिदास कृत अभिनवचिंतामणि आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

ओडिशा के ज्योतिषशास्त्र ग्रन्थो में पुरीनिवासी प्रसिद्ध ज्योतिर्विद शतानन्द आचार्य-कृत पचसिद्धान्त भास्मती ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ है। सोलहवी शताब्दी में धनजय आचार्य ने ज्योतिष-चद्रोदय नामक ग्रन्थ लिखकर विशेष स्याति प्राप्त की थी। उत्कल मे लिखित अन्य ग्रन्थ निम्न-लिखित है—भोई-वशीय राजा प्रथम मुकुन्ददेव कृत स्वरपद्धति, तरला राजा कृष्णचन्द्र कृत स्वर-सरणी, पारलाराजा गजपति नारायण देव कृत आयुर्दायकौमुदी, गोपीनाथदासकृत आयुर्दाय-चिन्तामणि, यज्ञेश्वर मिश्र कृत ज्योति चिन्तामणि, गोपालदासकृत ज्योति रत्न, श्री क्षेत्रवासी रघुनाथदासकृत उत्पात-तरगिणी, दशरथ मिश्र कृत ज्योतिषसार-सग्रह, महामहोपाध्याय छकडि-नदकृत बालबोधरत्नकौमुदी, और श्रीनिवासमिश्र के पुत्र द्वारा लिखित ज्योतिषतत्त्वकौमुदी।

टीका ग्रन्थो में निम्वदेव कृत सूर्यसिद्धान्त की सर्वबोधिनी टीका, मागुणी पाठी कृत ग्रह-चक्र टीका, और पीताम्बरमिश्र कृत शुद्धिदीपिका टीका विशेष रूप से आदृत है। ओडिशा में शतानन्द के समय से ज्योतिष-चर्चा की जो अविच्छिन्न धारा चली आ रही थी उसका पूर्ण विवरण गत शताब्दी में महामहोपाध्याय चन्द्रशेखर सिह सामन्त द्वारा रचित "सिद्धान्तदर्पण" नामक ग्रन्थ में मिल जाता है।

इस लघु प्रवध में उत्कली सस्कृत साहित्य का पूर्ण विवरण उपस्थित करना सभव नही है, फिर भी इस लेख में सस्कृत साहित्य के प्रत्येक विभाग को उत्कलीय पडितो द्वारा दिये गये योगदान पर सामान्य प्रकाश डाला गया है। भविष्य में जव उनकी कृतियाँ प्रकाश में आयेंगी तो वे निश्चित रूप से सस्कृत साहित्य के भडार को वढाने में सहायक होगी।



असमर्थ व्यक्तियो तथा बालको के अतिरिक्त किसी को मध्य भाग में भोजन नही करना चाहिये—"साय प्रातर्द्विजातीना, अशन स्मृतिवेदितम्, नान्तरा भोजन कुर्यात् षट्सु मौन विधीयते।"

पहले उत्कल में रांधने की प्रणाली अत्यन्त सरल थी। आजकल नाना प्रकार के मसाले देकर अधिकाधिक तेल से युक्त जो व्यजनादि बनाये जाते हैं उनसे जनसाधारण का स्वास्थ्य द्रुतगति से अवनति की ओर जा रहा है। पहले केवल सिझा कर और थोडा सा नमक लगाकर ही खाते थे।

सारलादास ने अपने महाभारत के विराट पर्व में कहा है—

वात पित्त श्लेष्म आदि ताहिं नाहिं व्याधि
समस्त प्रसिद्धि हेला रान्धणा प्रसिद्धि
पाच लक्ष्य सूपकार कार्य निजे कले।
गौरी शौरी नलविधि रान्धणा रान्धिले॥

उत्कल में अत्यत प्राचीन काल से त्रिविध रीति के अनुसार भोजन बनाया जाता था। वे रीतियाँ है गौरी, शौरी तथा नल। अभी तक जगन्नाथ-मन्दिर में नल विधि के अनुसार पाक किया जाता है। भीम ने सूपकार के रूप में त्रिविध रन्धन के द्वारा वनाये भोजन से सबको तृप्त किया था। इसमें उत्कलीय रन्धन-प्रणाली का आदर्श भी सूचित होता है—

**गौरी रीति**

सोरिष न वाटि किम्वा परिबा न काटि
सबु एक करि भाण्डे दिये ताकु घाण्टि
हेंगु ये मरिच जिरा पुणि दूग्ध खण्ड
एका घान्तिके पूराइ घाण्टे सेहु भाण्ड।

**शौरी रीति**

मृग मास काढिकरि जाहा थाए कचा, सबु एक थोग करि पात्रे करि सचा
तड्ल क्षीर लवण आदि पात्रे भरि
शिआलि लता गुडाइ पत्रे वान्धि करि
अग्नि जालि करि ताकु पोडिकरे पक्व
भोजने के सरिहेव ताहा ठु अधिक।

**नल रीति**

नाना योगाडिरे सेहु सर्व एक करि
आमिष आम्विल एक भाण्डे नेइ भरि

अन्न महाप्रसाद के साथ दाल, महुर, वेसर, भाजा, राइ, मण्डाराइ, शाकर, डालमा, इत्यादि व्यजनो का भोग हर रोज जगन्नाथ-मन्दिर में लगाया जाता है।

यही हमारे खाद्य का आदर्श है। अन्न के साथ दाल, महुर, वेसर आदि का मेल हम लोगो का अभ्यासगत तथा जातिगत भोजन-विधान है। गेहूँ की रोटी, सूजी की रोटी—बहुत कम दिन हुए—चलती थी। सम्भ्रान्त परिवार अथवा राजा तथा राजवशीय लोग इनके अधिकारी थे। किन्तु मध्यवित्त परिवार तथा मजूरी करनेवाले किसानो के लिए पखाल (पानी भात) ही प्रधान खाद्य है। भात को धोकर वे लोग खाते है। वासी माड से युक्त इस धोये हुए भात (पखाल) में खाद्यसार निहित है। इसलिए यह नित्य व्यवहार्य है। माण्डुआ जाउ भी दैनिक व्यवहार का खाद्य है। माण्डुआ, याउ तथा पखाल के प्रचुर खाद्य-सार को आजकल के गवेषको ने दृढ रूप से स्वीकार किया है।

हमारे यहाँ साधारणत भुजिआ चावल पकाकर खाया जाता है, किन्तु कच्चे चावल का खाना भी शास्त्र-प्रसिद्ध है। भोज और श्राद्ध आदि में कच्चा (अरुआ) चावल नैवेद्य के रूप में व्यवहार किया जाता है। भोज या उत्सव में अरुवा चावल 'कनिका' या 'खेचडी' आदि साधारण रूप से परोसा जाता है। विविध प्रकार की भाजियाँ (शाक) हमारे व्यजनो में प्रधान है। "पिता शुखुआ" (सुखाई हुई कडआ मछली), करेला उवु खट्टा आदि के धनी लोगो द्वारा न खाने पर यह साधारण गृहस्थ का दैनिक खाद्य है। जितने प्रकार के खाद्य-सार (वाइटामिन) आजकल निकाले गये है वह सब हमारे खाद्यो में प्रचुर रूप में पाये जाते हैं। जिरडा, भुजिआ चावल, गइठा (चावल के आटे से बना हुआ), कनखि कोडा पिठा आदि में खाद्यसार पूर्ण मात्रा में है।

बहुत पहले से हमारे किसान परिवार में खुदुरु कुणि या खुद रकुणी व्रत चला आ रहा है। तअपोइ नामक पुस्तक में कुछ व्यजनो का सकेत इस प्रकार है—

खुद कुण्डा रे पिठा करि
खुद तण्डुल पुरे करि
सखीकुँ मागिला वहन
फल फुलरि पिठा मान

इन व्यजनो मे पुष्टिसार तथा धातुवलवण पर्याप्त मात्र मे पाया जाता है। ओडिआ घरो मे काजि या वासी माड भी दैनिक खाद्य के रूप में व्यवहृत है। इससे मस्तिष्क को लाभ पहुँचता है।

आयुर्वेद में इस काजि के लाभ वर्णित है। इसके अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओ मे एक-एक उपकारी तथा स्वाथ्यवर्द्धक पदार्थ के खाने के सबध में ओडिगी प्रवचन हमें पर्याप्त जानकारी देते है। इनके अध्ययन मे प्रतीत होता है कि ओडिया कितने सरसप्राण है—

रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता तीनो १४ वर्ष के लिए वन गये थे। सीता के लिये परिधेय सूक्ष्म कपडा १४ साल के लिए बाँस की नली मे रख लिया गया था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि पहले कितने महीन कपडे बनते थे।

उस समय अत्यत महीन दूब के समान सवुज वर्ण के कपडे वनाये जाते थे। भज कवि ने अपने काव्य में उसी वस्त्र का वर्णन किया है। उत्कल मे केवल सम्भ्रान्त वश के ही नही, मध्यम-श्रेणी के लोग भी पाट का कपडा पहनते थे। वनारसी पाटे के समान ओडिशा मे ब्रह्मपुरी पाट अत्यत प्रसिद्ध है। आज भी सभी लोग ब्रह्मपुरी पाट का व्यवहार करते है।

किन्तु साधारण लोग रणपुरी धोती, पुरी का जेंनेका देइ पुरिआ गमच्छा, लटक के केन्द्रा-पडा गुलुनगरका ओढ, तिगिरिआ का माणिआवन्ध तथा चन्द्रकोडिआ ओडा, दक्षिणी धोती, ब्रह्मपुर पाट, कमरकच्छा, गेंजि फरास, मिरिजेइ गेजि, अगवुलेइ, वुलइ वनात आदि का व्यवहार करते थे। जूता, खडाऊँ तथा मुरगि जूता भी पहनते थे। अव भी पुरुष हाथ में चूडा, कान में कुण्डल, झरका पठासिया विरवल, ताबिज, अनन्त हरमनिआ कण्ठी, कमर मे सोने का धागा, चाँदी का धागा, अँगुलियो में अँगूठी, जडी हुई अँगूठी, पहनते हैं। सिर पर चोटी रखते है। आज भी ग्रामीण लोग इन सभी का व्यवहार करते है। अधिकाश पुरुष काछा मार कर धोती पहनते हैं। ऊँची जाति के लोग (ब्राह्मणादि) रणपुर जोडा, दक्षिणी जोडी चादर पहनने के अभ्यस्त है। गरीव लोग "पखाल करिआ" रगीन गमच्छा (पानी में दो-तीन दिन तक डुबोकर रग चढाया जाता है) का व्यवहार करते है। कोई कोई केवल काछा मारकर ही आते-जाते है। कमरवन्ध पर कपडा लपेटते है। यह डेढ वीता चौडा तथा ग्यारह हाथ लम्बा होता है। इससे कमर दृढ तथा मजबूत वनती है। इस समय भी गाँव में लोग इसी तरह के कमर काछा तथा "पखाल करिआ गमच्छा" पहनते है। पुरुष भी "त्रिकच्छ" पहनते थे, आज भी पहनते है।

स्त्रियाँ "वलगण्ठिआ शाढी" दक्षिणी शाढी, काणिकाच शाढी, कायी, झुरिझुपा, अग, काचला पहनती है। इस समय भी वहुएं इसे पहनती है। हर एक गृहस्थ के यहाँ ब्रह्मपुरी शाढी जरूर मिलेगी।

दक्षिणी शाढी तेरह हाथ लम्बी होती है। कठिआ कछ शाढी भी १३-१४ हाथ की होती है। स्त्रियाँ १२-१४ हाथ से कम लवी शाढी नही पहनती है। वे काछा मारकर शाढी पहनती हैं। सेवक घर की स्त्रियाँ "तिनि दशकोडिया" पहनती है जिसमें एक तो पहनने, दूसरी लपेटने और तीसरी ओढने में प्रयुक्त होती है। आजकल ऐसी साडी वहुत कम देखने में आती है। हरिजन स्त्रियाँ केवल "पखाल करिआ शाढी" ही पहनती है और कही आने-जाने के लिए "चन्द्रकणी" साढी का व्यवहार करती हैं। इसके अतिरिक्त यात्रादि अथवा उत्सव में "रगणी" पाँचफुलि शाढी" भी व्यवहार करती है। "झुरिझुपा अग काचला" को स्त्रियाँ पीछे की तरफ से अगरखा के रूप में व्यवहार करती है। साधारणतया स्त्रियाँ काछा मारकर "दोपडि" साढी पहनती है। यह वीर नारी का चिह्न है। किंतु अव वे आजकल की मिल की साडी की अपेक्षा सम्वलपुरी शाढी का व्यवहार ज्यादा करती हैं। सम्वलपुरी शाढी हमारे देश में चारो ओर व्यवहृत होती

रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता तीनो १४ वर्ष के लिए वन गये थे। सीता के लिये परिधेय सूक्ष्म कपडा १४ साल के लिए बाँस की नली मे रख लिया गया था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि पहले कितने महीन कपडे बनते थे।

उस समय अत्यत महीन दूब के समान सबुज वर्ण के कपडे बनाये जाते थे। भज कवि ने अपने काव्य में उसी वस्त्र का वर्णन किया है। उत्कल में केवल सम्भ्रान्त वश के ही नही, मध्यम-श्रेणी के लोग भी पाट का कपडा पहनते थे। बनारसी पाटे के समान ओडिशा में ब्रह्मपुरी पाट अत्यत प्रसिद्ध है। आज भी सभी लोग ब्रह्मपुरी पाट का व्यवहार करते है।

किन्तु साधारण लोग रणपुरी धोती, पुरी का जेनेका देइ पुरिआ गमच्छा, लटक के केन्द्रा-पडा गुलुनगरका ओढ, तिगिरिआ का माणिआवन्ध तथा चन्द्रकोडिआ ओडा, दक्षिणी धोती, ब्रह्मपुर पाट, कमरकच्छा, गेंजि फरास, मिरिजेइ गेंजि, अगवुलेइ, वुलइ वनात आदि का व्यवहार करते थे। जूता, खडाऊँ तथा मुरगि जूता भी पहनते थे। अब भी पुरुष हाथ में चूडा, कान में कुण्डल, झरका पठासिया विरवल, ताबिज, अनन्त हरमनिआ कण्ठी, कमर में सोने का धागा, चाँदी का धागा, अँगुलियो में अँगूठी, जडी हुई अँगूठी, पहनते है। सिर पर चोटी रखते हैं। आज भी ग्रामीण लोग इन सभी का व्यवहार करते हैं। अधिकाश पुरुष काछा मार कर धोती पहनते है। ऊँची जाति के लोग (ब्राह्मणादि) रणपुर जोडा, दक्षिणी जोडी चादर पहनने के अभ्यस्त है। गरीव लोग "पखाल करिआ" रगीन गमच्छा (पानी मे दो-तीन दिन तक डुबोकर रग चढाया जाता है) का व्यवहार करते है। कोई कोई केवल काछा मारकर ही आते-जाते है। कमरवन्ध पर कपडा लपेटते है। यह डेढ बीता चौडा तथा ग्यारह हाथ लम्बा होता है। इससे कमर दृढ तथा मजबूत बनती है। इस समय भी गाँव में लोग इसी तरह के कमर काछा तथा "पखाल करिआ गमच्छा" पहनते है। पुरुष भी "त्रिकच्छ" पहनते थे, आज भी पहनते हैं।

स्त्रियाँ "वलगण्ठिआ शाढी" दक्षिणी शाढी, काणिकाच शाढी, कायी, झुरिझुपा, अग, काचला पहनती है। इस समय भी वहुएं इसे पहनती है। हर एक गृहस्थ के यहाँ ब्रह्मपुरी शाढी जरूर मिलेगी।

दक्षिणी शाढी तेरह हाथ लम्बी होती है। कठिआ कछ शाढी भी १३-१४ हाथ की होती है। स्त्रियाँ १२-१४ हाथ से कम लबी शाढी नही पहनती है। वे काछा मारकर शाढी पहनती हैं। सेवक घर की स्त्रियाँ "तिनि दशकोडिया" पहनती है जिसमें एक तो पहनने, दूसरी लपेटने और तीसरी ओढने में प्रयुक्त होती है। आजकल ऐसी साडी वहुत कम देखने में आती है। हरिजन स्त्रियाँ केवल "पखाल करिआ शाढी" ही पहनती है और कही आने-जाने के लिए "चन्द्रकणी" साढी का व्यवहार करती है। इसके अतिरिक्त यात्रादि अथवा उत्सव में "रगणी" पाँचफुलि शाढी" भी व्यवहार करती है। "झुरिझुपा अग काचला" को स्त्रियाँ पीछे की तरफ से अगरखा के रूप में व्यवहार करती है। साधारणतया स्त्रियाँ काछा मारकर "दोपट्टि" साढी पहनती है। यह वीर नारी का चिह्न है। किंतु अव वे आजकल की मिल की साडी की अपेक्षा सम्वलपुरी शाढी का व्यवहार ज्यादा करती हैं। सम्वलपुरी शाढी हमारे देश में चारो ओर व्यवहृत होती

भाषाओ के सबध मे गहरा अध्ययन न किया हो, ऐसी बात नही। उनकी दृष्टि में भारत की सभी भाषाएँ थी और उनकी शक्ति, सामर्थ्य और व्यापकता आदि का उनको अच्छा ज्ञान था। किन्तु उन्होंने देख लिया था कि राष्ट्रभाषा-पद के लिए हिन्दी से होड लेनेवाली दूसरी कोई भाषा नही है।

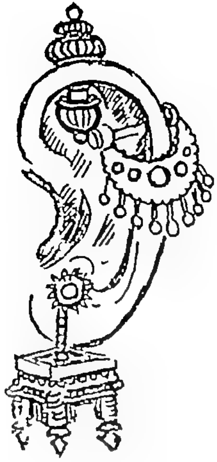
एक स्थान पर गाधी जी ने इस सबध में अपना अनुभव इन शब्दो में व्यक्त किया है—

"हिन्दी के बाद का स्थान बँगला को प्राप्त है, तिस पर भी बगाली भाई बगाल के बाहर तो हिन्दी का ही उपयोग करते है। हिन्दी बोलनेवाला जहाँ जाता है, वह हिन्दी का ही उपयोग करता है। उर्दू के मौलवी सारे हिन्दुस्तान में अपने व्याख्यान हिन्दी में ही देते है और अनपढ जनता भी उसे समझ लेती है। अनपढ गुजराती भी उत्तर मे जाकर हिन्दी का थोडा-बहुत इस्तेमाल कर लेता है, जब कि उत्तर का भैया बम्बई के सेठ की दरबानगिरी करता हुआ भी गुजराती नही बोलता है। और सेठ भैया के साथ टूटी-फूटी हिन्दी में बोलना शुरु कर देता है। मैने देखा है कि ठेठ द्राविड प्रान्तो में हिन्दी की ध्वनि सुनाई पडती है। यह कहना ठीक नही कि मद्रास में तो सब काम अग्रेजी से चलता है। मैंने तो वहाँ भी अपना काम हिन्दी में किया है। सैंकडो मद्रासी मुसाफिरो को मैंने दूसरे लोगो के साथ हिन्दी बोलते सुना है। मद्रास में मुसलमान भाई तो ठीक-ठीक हिन्दी बोलना जानते है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि सारे हिन्दुस्तान के मुसलमान उर्दू बोलते है और सब प्रान्तो में उनकी सख्या कोई छोटी नही है। इस प्रकार राष्ट्रीय भाषा के नाते हिन्दी भाषा का निर्माण हो चुका है। हमने बहुत वर्ष पहले राष्ट्रीय भाषा के रूप में उसका उपयोग किया है।"

हिन्दी के प्रचार और उसकी सम्भावनाओ पर भी गाधी जी ने गहराई से सोचा था। गाधी जी का मत था कि हिन्दी ही ऐसी सरल भाषा है, जिसका प्रचार बडी आसानी से हो सकता है और भारत के अन्य भाषा-भाषी भाई-बहन उसे आसानी से सीख सकते है। गुजराती, मराठी, बगाली, आसामी, आदि के लिए तो यह बहुत आसान है ही। वे कुछ ही महीनो मे हिन्दी पर अच्छा प्रभुत्व प्राप्त कर सकते है और उसे अपने व्यवहार का माध्यम बना सकते है। हा, तामिल भाइयो की कठिनाइयो से गाधी जी परिचित थे।

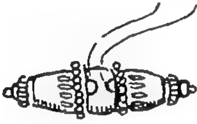
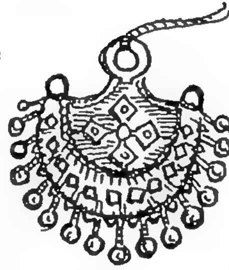
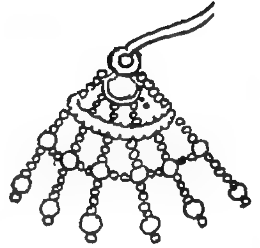
तेलगू, तमिल, मलयालम और कन्नड ये चारो भाषाएँ द्राविड विभाग की भाषाएँ है। उनकी रचना और व्याकरण अन्य भारतीय भाषाओ मे भिन्न है। तेलगू, कन्नड और मलयालम में सस्कृत के शब्द तमिल की अपेक्षा कही अधिक है। अतएव तमिलवालो के लिए हिन्दी सीखना उतना सरल नही है। तमिलभाषियो की इस कठिनाई को गाधी जी अच्छी तरह समझते थे, किन्तु वे मानते थे कि यदि तमिलभाषी विशेष प्रयत्न करे तो वे हिन्दी जल्दी सीख सकेगे। गाधी जी तमिल-भाषियों के स्वदेशाभिमान पर विश्वास रख कर उनसे इतनी आशा रखते ही थे।

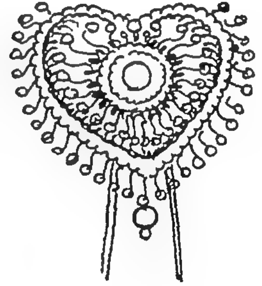
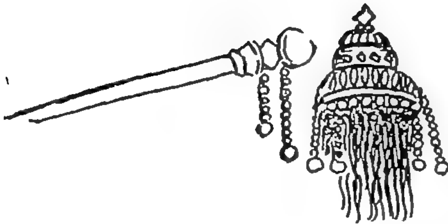
ऊपर भारतीयो द्वारा भारतीय भाषाओ की उपेक्षा का उल्लेख हो चुका है। यह उपेक्षा गाधी जी को सहन न थी। वे चाहते थे कि जनता का कार्य जनता की भाषा में हो। अग्रेजी मे





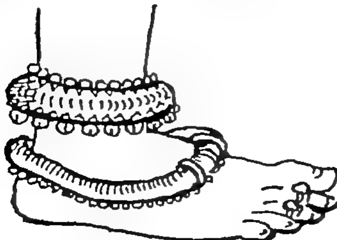
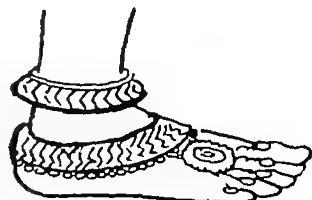
मलकड़ि, बालिफुला　　कुण्डल (वीरखड़ी)　　झुमुका

मथामणि　　चिता　　चन्द्रझुम्पी

अलका　　गोजीकाठी (भराकाठी)　　पानपत्र

पाहड़ पाउँजी

मथुरा पुरिआ वउलम दिआ जोडि मालि
नक्षत्र कण्ठमाल, गरगडिआ कण्ठमाल
चोरा कण्ठिमाल, दश अवतार मालि
झुम्पा वन्धा अएँला मजिआ मालि।

सारला महाभारत मे प्राचीन उत्कल की वेशभूषा का एक सुन्दर निदर्शन मिलता है—

"शिरे शोभे सिमन्तिनी मुकुतार जालि
ललाटरे मघामणि कर्णे कर्णझुलि
वुइ हस्ते पिन्धिछन्ति सुवर्णर चूडि
गले चापसरि अगे रहिअछि जडि
वुइ पादरे नुपूर रूणुझुणु बाजे
मुकुता गुन्था काचन हृदरे बिराजे"।

उपेन्द्र भज ने भी अपने "लावण्यवती" में सिलिमिलि पानपत्री, ब्रजमलि कढि, पद्मराग मणि, ताटक, नीलनाक चणा, कडिआली, शखचूडि, आदि से लावण्यवती को अलकृत किया है।

मन्दिरो की दीवालो में उत्कीर्ण पुरुष और नारी की प्रतिमाओ को अनेक प्रकार के अलकार पहनाये गये है। महाभारत, रामायण काव्यादि के अलावा हमारे अलकार और नाट्यनृत्य ग्रन्थो में उत्कलीय अलकार तथा वेशभूषा का वर्णन मिलता है। उदाहरण-स्वरूप महेश्वर पात्र रचित "अभिनयचन्द्रिका" नामक ग्रन्थ के २६०वें श्लोक से २८५वें तक लिखा है—

शिरोदेशे सुवर्णनकार्करारागडादय।
चन्द्रसमुख वेशे च पार्श्वदेशेति शोभने।
मथामणि मध्यदेशे केतकी सुमनोहरा।
शिरो मण्डयते एव सुवर्णेन सुयत्नत।
कर्णद्वये "कोरक" वै अथवा "काप" एव च।
त्रिगण्ठि कुण्डल दिव्य वीरवल्ल्याग्रनर्त्तने।
कर्णार्द्धे नागपाश च वकुल केलिकोत्तमा।
कण्ठाभरेण रूपेण न्यासयेत् चापसारिका।

× × ×

काचला दिव्यरागेन नानारत्नादिमण्डिता।
आवृत वक्षदेश च दृढेरम्येषु या तत

# ओड़िशा में शिक्षा की प्रगति

श्री बामाचरण दास, डी० पी० आई०, ओड़िशा

ताडपत्र पर लिखित विशाल साहित्य, जो आज प्रकाश मे आ रहा है, यह सूचना देता है कि प्राचीन काल में ओडिशा में शिक्षा का प्रचार प्रचुर मात्रा में था। अग्रेजो के भारत में आगमन के साथ ही शिक्षा शब्द ने शनै शनै एक भिन्न अर्थ ग्रहण कर लिया और वर्तमान काल में तो शिक्षा का प्रयोग प्राय पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली के लिए किया जाता है जो इस उपमहादेश में फैली हुई है। जो राज्य अग्रेजो के सम्पर्क में पहले आये उनमे इस शिक्षा का प्रसार स्वभावत पहले हुआ। और यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि इस शिक्षा में हम ओडिशावाले पीछे रह गये। कटक, पुरी, बालासुर और गजाम-- जो बगाल, विहार और ओडिशा प्रदेशो के साथ सलग्न थे—इन समुद्रतटीय स्थानो में तुलनात्मक रूप से शिक्षा का प्रचार पहले हुआ और इन जिलो मे उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। प्रगति अच्छी रही। धीरे-धीरे दूसरे जिले और अन्ततोगत्वा यहाँ के रजवाडे ओडिशा प्रदेश में लय हो गये। फलत पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली द्वारा शिक्षित आबादी का औसत अचानक उस स्तर पर चला आया जो तुलनात्मक दृष्टि से दूसरे प्रदेशो की अपेक्षा वहुत ही भिन्न है। इसी पृष्ठभूमि पर इस प्रदेश मे शिक्षा के विकास के लिए योजनाएँ वनाई गईं। निश्चय ही यह कार्य दुस्तर है और यदि हम दूसरे प्रदेशो के समानान्तर उन्नति के स्तर पर आना चाहते हैं तो हमे शिक्षा का प्रचार अन्य प्रदेशो से कही अधिक करना चाहिए। वास्तव में इस समय हम इसी का प्रयत्न भी कर रहे हैं।

जब हम शिक्षा की बाते करते है, हमारा ध्यान एक साथ प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा पर जाता है। वे आपस में इतनी सबद्ध हैं कि एक के क्षेत्र में तव तक सफलता नही प्राप्त की जा सकती, जब तक अन्य दो क्षेत्रो मे समान प्रगति नही होती है। उदाहरण-स्वरूप प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए हमें ऐसे शिक्षको की आवश्यकता है जिन्होने माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की है, और इसी तरह माध्यमिक शिक्षा-प्रसार के लिए वैसे शिक्षको की जरूरत है जिन्होंने विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त की है। इसी तरह यदि हम दूसरे ढग से कहें तो कह सकते है कि माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा के प्रसार में भी तव तक सफलता नही मिल सकती है, जब तक प्राथमिक स्तर पर प्रसार न हो। साथ ही साथ यह भी विस्मरण नही किया जा सकता कि केवल शिक्षा के प्रसार-मात्र से ही इस प्रदेश की समस्याओ का समाधान हो जायेगा। यदि यह काम योग्यता का हनन कर किया जाय तो इसके बडे ही घातक परिणाम होगे। उस सूक्ष्म रेखा का पता पाना, जहाँ से शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार योग्यता का कम से कम

लक्ष्य को पूरा करने के लिए रुपयो और प्रशिक्षित व्यक्तियो की गणना करते है, तब पता चलता है कि यह भी भारत के लिए एक कठिन कार्य है। यह ध्यान में रखते हुए कि शिक्षा के क्षेत्र में तुलनात्मक दृष्टि से ओडिशा पिछडा हुआ है, यह समस्या तब इस प्रदेश के लिए और भी कठिन हो जाती है। फिर भी हम लोग योजनाएँ तैयार करते है कि दूसरी योजना की अवधि के अन्त तक लगभग पचपन प्रतिशत ६ से ११ वर्ष तक की आयुवाले विद्यार्थी स्कूलो में आ जायँ। नीचे दिये हुए कोष्ठक से इस बात का पता चलेगा कि दूसरी योजना की अवधि में हमने इस दिशा की ओर कितनी प्रगति की है।

| क्रमसख्या | कार्य | १९५५-५६ की स्थिति | १९५६-५७ तक प्राप्त सफलता | १९५७-५८ तक प्राप्त सफलता | १९५८-५९ की समावित सफलता |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
| १ | प्राथमिक स्कूलो की सख्या | १४,००३ | १४,७२९ | १५,३५७ | १६,८५७ |
| २ | प्राथमिक शिक्षको की सख्या | २२,७७६ | २३,११५ | २५,१९९ | २७,१९९ |
| ३ | एक से पाँचवें वर्गों मे विद्यार्थियो की सख्या | ६,८९,९७९ | ७,१९,८५१ | ७,५५,८९३ | ८,१५,८९३ |

६ से ११ वर्ष की आयुवाले बच्चो की सख्या इस राज्य में तृतीय योजना की अवधि के अन्त तक बीस लाख के लगभग हो जाने की सभावना है और अगर हम अपनी रफ्तार तेज करे, तभी इस अवधि तक ९० प्रतिशत बच्चे स्कूलो में दाखिल हो सकते है। इस उद्देश्य तक पहुँचने में हमारे सामने निम्नलिखित बडी कठिनाइयाँ है—

(१) इस समय स्कूलो मे ६ से ११ वर्ष की आयुवाली केवल २२ प्रतिशत ही लडकियाँ है, इसलिए हम लोगो को कोई विशेष योजना तैयार करनी पडेगी जिसमें ७८ प्रतिशत और अधिक आ जायें।

(२) जनता की आर्थिक स्थिति ऐसी शोचनीय है कि बहुत से अभिभावक अपने बच्चो को प्राथमिक आवश्यकताओ के अभाव मे स्कूल नही भेज सकते है। इस कठिनाई का सामना करने के लिए विशेष योजनाओ पर विचार किया जा रहा है।

(३) स्कूलो के समीप होने पर भी कुछ सामाजिक स्थितियाँ ऐसी हैं जो माँ-बाप को इस राह पर बढने से रोक सकती है। आशा की जाती है कि लोक-विकास विभाग (Community Development Department) मे काम करनेवाले ग्रामसेवको और सामाजिक शिक्षा-सगठन-कर्ताओं के सुव्यवस्थित प्रचार से यह कठिनाई बहुत दूर तक हट सकती है।

नीचे दिये गये कोष्ठक मे यह दिखाया गया है कि पहली योजना की अवधि के प्रारम्भ से हाई स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा में कितने विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए—

| परीक्षा—१९५१–५२ | ५२–५३ | ५३–५४ | ५४–५५ | ५५–५६ | ५६–५७ | ५७–५८ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मैट्रीकुलेशन ३०६४ | ३५५८ | ३८१६ | ४७३८ | ४५८२ | ५१७० | ६५४५ |

ऊपर दिये गये कोष्ठक से यह स्पष्ट है कि प्रथम योजना की अवधि में माध्यमिक शिक्षा में जो उन्नति हुई वह विशेष उल्लेखनीय नही है। परन्तु गत तीन वर्षों में जो प्रगति हुई वह हमारे विश्वास को दृढ करती है और यह आशा की जाती है कि द्वितीय योजना की अवधि के भीतर हमारी प्रगति की रफ्तार तेज रहेगी। नीचे दिया गया कोष्ठक इस बात की सूचना देगा कि भिन्न-भिन्न जिलो में कितने हाई और मिडिल स्कूल हैं, जिलो की जनसख्या कितनी है और १९५७-५८ साल के भीतर हर जिले में कितनी आबादी पर एक-एक स्कूल खोला गया।

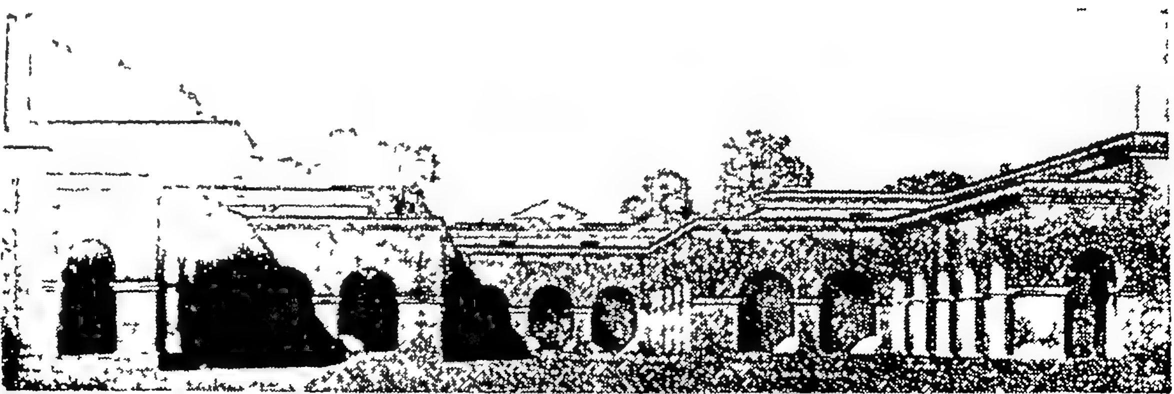
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| क्रम-सख्या | जिला | जनसख्या | हाई स्कूलो की सख्या (अब तक अस्वीकृत स्कूलो को मिलाकर) | प्रत्येक हाई स्कूल द्वारा सेवित जनसख्या | मिडिल स्कूलो की सख्या | प्रत्येक मिडिल स्कूल द्वारा सेवित जनसख्या |
| १ | बालासौर | ११,०६,०१२ | ३९ | २८,३५९ | ८३ | १३,३२५ |
| २ | बलागीर | ९,१७,८७५ | ८ | १,१४,७३४ | २३ | ३९,९०८ |
| ३ | कटक | २८,२९,१४४ | ९० | २८,१०२ | १८६ | १५,२१० |
| ४ | ढेंकानाल | ८,३९,२४१ | १७ | ४९,३६७ | ६२ | १३,५३६ |
| ५ | गजाम | १६,२४,८२९ | ४३ | ३७,७८७ | ६३ | २५,७९१ |
| ६ | कालाहाडी | ८,५८,७८१ | ४ | २१४,६९५ | १५ | ५७,२५२ |
| ७ | क्योझार | ५,८८,४४१ | ७ | ८४,०६३ | ३३ | १७,८३२ |
| ८ | कोरापुट | १२,६९,५३४ | ८ | १,५८,६९२ | १६ | ७९,३४५ |
| ९ | मयूरभज | १०,२८,८२५ | १४ | ७३,४८७ | ५४ | १९,०५२ |
| १० | फुलवाणी | ४,५६,८९५ | ३ | १,५२,२९८ | २० | २२,८४५ |
| ११ | पुरी | १५,७२,२६२ | ३९ | ४०,३१४ | ९४ | १६,७२६ |
| १२ | सम्वलपुर | १३,०१,८०४ | २० | ६५,०९० | ६४ | २०,३४१ |
| १३ | सुन्दरगढ | ५,५२,२०३ | १२ | ४६,०१७ | ३८ | १४,५३२ |
| | ओडिशा | १,४६,४५,९४६ | ३०४ | ४८,१७७ | ७५१ | १९,५०२ |

इससे पता चलता है कि जहाँ एक ओर कुछ जिलो में स्कूलो की सख्या अधिक है, वहाँ दूसरी ओर दूसरे जिलो में बहुत ही कम। सपूर्ण राज्य में शिक्षा की समान प्रगति के लिए यह

छात्र-छात्राएं रसायन प्रयोगशाला में, गङ्गाधर मेहेर कालेज, सम्बलपुर

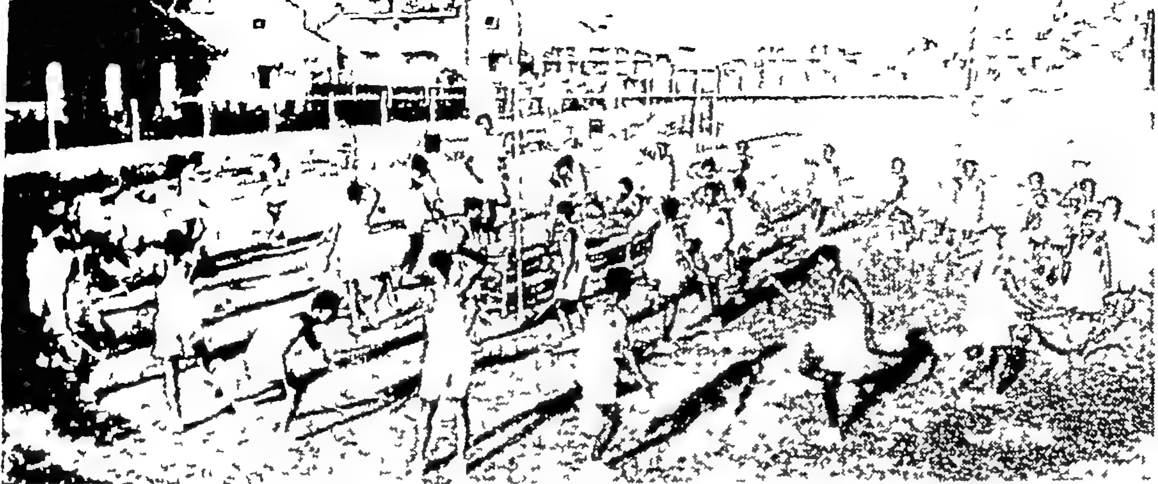
विज्ञान शिक्षा ब्लाक, भद्रक कालेज

(ऊपर) रावेनशा महिला कालेज, कटक (नीचे) रेवेन्शा कालेजियट बहुमुखी हायर सेकण्डरी स्कूल कटक



[illegible]न्यासी ट्रेनिंग कालेज, अनगुल

[illegible]



अभ्यास रत छात्रों का और एक दृश्य
शारीरिक शिक्षा तालीम कालेज, कटक

रेवेन्शा बालिका विद्यालय की छात्राएं
शारीरिक शिक्षा का अभ्यास
कर रही हैं

४—हाई स्कूलो में हस्तशिल्प (Crafts) का प्रवेश कराना।

५—वर्तमान हाई स्कूलो और पोस्ट वेसिक स्कूलो की उन्नति। भवन-निर्माण, विज्ञान-शिक्षण और पुस्तकालय के लिए ग्राण्ट देना।

६—माध्यमिक स्कूल के शिक्षको के प्रशिक्षण की व्यवस्था करने के लिए राधानाथ ट्रेनिंग कालेज मे एक्सटेन्शन सर्विस डिपार्टमेंट का खोलना।

७—शिक्षको के लिए भिन्न-भिन्न तरह के सेमिनार का गठन करना।

८—प्रत्येक विषय के निष्णात व्यक्तियो को नियुक्त करना ताकि वे स्कूलो में भ्रमण कर वहाँ के कमजोर विषयो की त्रुटि दूर कर सकें।

आशा की जाती है कि जव ये सभी योजनाएँ कार्य करने लग जायँगी, तो योग्यता की रक्षा करते हुए माध्यमिक शिक्षा का प्रसारण द्रुत गति से करना सभव होगा।

## विश्वविद्यालय की शिक्षा

जिस समय विहार और ओडिशा के पुराने प्रान्त से ओडिशा राज्य अलग किया गया, उस समय हमारे यहाँ कला और विज्ञान-विभाग के केवल तीन आर्ट्स और साइस कालेज थे जिनमें विद्यार्थियो की सख्या एक हजार के लगभग थी। इस समय हमारे यहाँ आर्ट्स, साइस और कामर्स के उन्नीस कालेज है। नीचे दिया हुआ कोष्ठक इस बात को स्पष्ट करेगा कि गत कुछ वर्षों में उन कालेजो मे विद्यार्थियो की सख्या किस प्रकार वढी।

### कालेजो में विद्यार्थियो की स्थान सख्या

| स्तर | १९५५–५६ | १९५६–५७ | १९५७–५८ | १९५८–५९ | १९५९–६० (प्रस्तावित) |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
| आई० ए० | १,५६८ | १,५६८ | १,६१६ | १,८२४ | २,०४८ |
| आई० एस्-सी० | ९४४ | १,०७२ | १,३९२ | १,६०० | १,८२४ |
| आई० कॉम्० | ६४ | ८० | ११२ | १७६ | १७६ |
| योग | २,५७६ | २,७२० | ३,१२० | ३,६०० | ४,०४८ |
| वी० ए० | ८८० | ८८० | ८८० | ९२८ | ९२८ |
| वी० एस्-सी० | २०८ | २४० | २८८ | ३०४ | ३५२ |
| वी० कॉम० | ९६ | ९६ | ९६ | ९६ | ९६ |
| योग | १,१८४ | १,२१६ | १,२६४ | १,३२८ | १,३७६ |

वहुत फेरफार से हिन्दी हिन्दुस्तानी ही है। इसलिए उचित और सम्भव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त में व्यवहार के लिए उस प्रात की प्रातीय भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिंदी और अतर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए हिंदी का व्यवहार हो। हिन्दी वोलनेवालो की सख्या करोडो की रहेगी, किन्तु अग्रेजी वोलनेवालो की सख्या कुछ लाख से आगे कभी नही वढ सकेगी। इसका प्रयत्न भी करना जनता के साथ अन्याय करना होगा।"

राष्ट्रभाषा के सवध में गाधी जी के विचारो को अच्छी तरह समझ लेने के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी की जो परिभाषा उन्होने दी है उसे हृदयगम कर लिया जाय। एक नही, अनेक स्थानो पर उन्होने हिन्दी सवधी अपनी परिभाषा को दुहराया है। इस परिभापा के कारण आगे चलकर विद्वानो के वीच काफी मतभेद पैदा हुआ, इसलिए गाधी जी की यह परिभाषा अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। गाधी जी का कहना है—

> "हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूँ जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान वोलते हैं और जो देवनागरी अयवा उर्दू लिपि में लिखी जाती है।"

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर-अधिवेशन (१९१८ ई०) मे भी गाधी जी ने अपने अध्यक्षीय भापण मे इसी उपरोक्त परिभाषा को दुहराया था और उसे इन शब्दो में अधिक स्पष्ट किया था—

> "मैं जिसे हिन्दी भाषा मानता हूँ वह न तो एकदम सस्कृतमयी है और न एकदम फारसी शब्दो से लदी हुई है। देहाती वोली मे जो माधुर्य मैं देखता हूँ वह न लखनऊ के मुमलमान भाइयो की वोली में, न प्रयाग के पडितो की वोली में पाया जाता है। भापा वही श्रेष्ठ है जिसको जनसमूह सहज में समझ ले।"
>
> "हिन्दुओ की वोली से फारसी शब्दो का सर्वथा त्याग और मुसलमानो की वोली से सस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनो का स्वाभाविक सगम गगा-जमुना के सगम सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिन्दी-उर्दू के झगडे में पडकर अपना वल क्षीण न करेंगे।"

हिन्दी की जिस सरल शैली का पुरस्कार गाधी जी ने किया उसे कौन नही पसन्द करेगा? जनभापा की उपेक्षा नही की जा सकती। विभिन्न भापाओ के इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जव-जव भाषा के विद्वानो और पडितो ने उसे जटिल वनाने का प्रयत्न किया है, विशेष शब्दावली और व्याकरण के अत्यधिक जटिल नियमो से उसे कसना चाहा है, जनभापा ने विद्रोह किया है और आवश्यकता पडने पर उसने अपना अलग रास्ता पकडा है। फल यह हुआ कि पडितो और विद्वानो की सुसस्कृत भाषाएँ एक सीमित परिधि में घिर कर रह गई और जनभापा अपना विकास करती हुई आगे वढ गई।

जिसे हम हिन्दी कहते है, उसका इतिहास भी कुछ इसी प्रकार के सघर्ष की लम्वी कहानी

उनकी कीर्तिमाला पुरी, भुवनेश्वर, कोणार्क आदि नाना स्थानो में फैली हुई है जो इतिहास के मूक साक्षी के रूप में एक गरिमामय अतीत की ओर सकेत कर रही है।

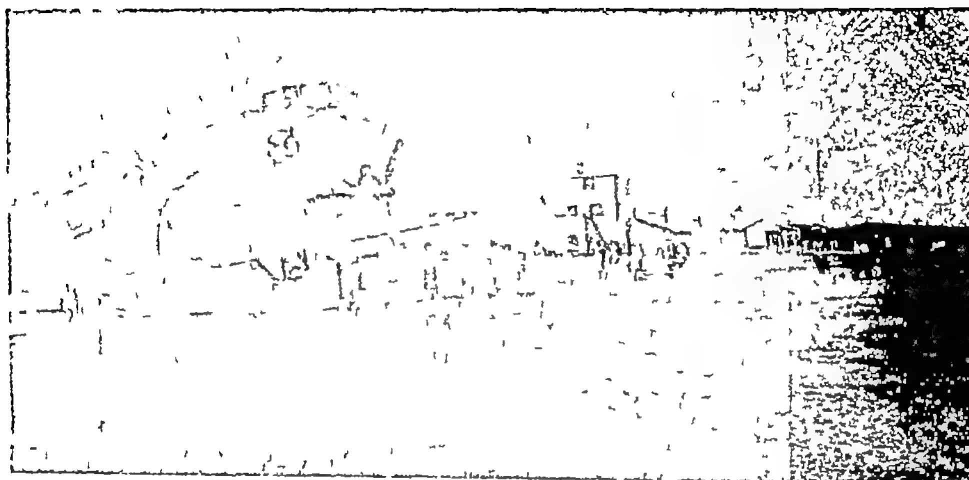
हजार वर्ष पहले ओडिशा धन-धान्य से पूर्ण था। उत्कल के व्यापारी पोतो ने सुदूर पूर्व मे व्यवसाय-वाणिज्य का विस्तार किया था। यही नही, वल्कि यही के लोगो ने ब्रह्मा, मलय, जावा, सुमात्रा, वोर्नियो आदि देशो में उपनिवेश भी स्थापित किये थे। उनकी कीर्ति-राशि के भग्नावशेष और उनके वशज, आज भी उन सभी स्थानो में है। तत्कालीन ओडिशा की समृद्धि इस राज्य में चारो तरफ फैले हुए भग्नावशेषो से समझी जा सकती है।

चौदहवी शताब्दी के प्रथम चरण से ओडिशा का पतन प्रारम्भ हुआ। इसकी अवनति का सूत्रपात अनेक कारणो से हुआ था। उनमें राजनैतिक कारण प्रधान है। फिर भी अठारहवी शताब्दी के मध्यभाग में यहाँ के लोग सुख-स्वातत्र्यपूर्वक जीवन-यापन करते थे। खेतो में अच्छी फसल होती थी। ग्राम्य-शिल्प से गाँवो की जनता को जीवनोपयोगी सामग्री मिल जाया करती थी। अभाव का क्षेत्र भयकर और व्यापक न था। अत खुशहाली की सभावनाएँ यथेष्ट थी। ओडिशा की चरम दुर्दशा का आरभ उन्नीसवी सदी के प्रथम चरण में हुआ। सन् १८०३ में अग्रेजो ने इस पर आशिक अधिकार कर लिया और विदेशी व्यापारी का तुलादड राजदड में परिणत हो गया। इसके फलस्वरूप सौ वर्षों के भीतर ही ओडिशा अभाव, तगी, बाढ, महामारी, दुर्भिक्ष आदि व्याधियो का क्रीडा-क्षेत्र वन गया।

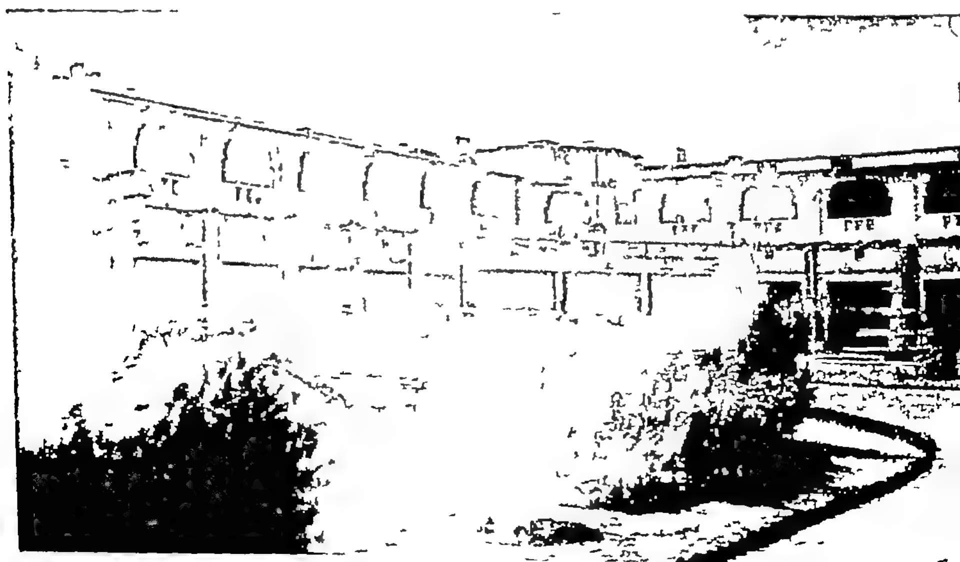
अग्रेजो ने शासन की सुविधा के लिए ओडिशा को खड-खड कर डाला, फलत उत्कल की इतिहास-प्रसिद्ध एकता छिन्न-भिन्न हो गई। इस राज्य को नि सहाय, नि सवल, निरुद्यम तथा हतोत्साह अवस्था में छोड कर सन् १९४७ मे वे यहाँ से सदा के लिए विदा हो गये। उस समय ओडिशा मे केवल छ जिले थे। जनसख्या एक करोड से भी कम थी। राज्य की अर्थ-व्यवस्था ७५ लाख रुपयो में सीमित थी जिसमे से प्राय २५ लाख रुपयो की राशि एक स्वतत्र शासन-प्रणाली को चालू रखने के लिए केन्द्र के अग्रेजी शासन का दया-दान ही थी। किंतु इसमें सदेह है कि इस दान का उद्देश्य पवित्र था।

विभिन्न पडोसी प्रदेशो के वीच ओडिशा-भाषी अचल को एक शासन के अधीन किया जाय, यह दावा प्राय ५० वर्ष पूर्व पेश हुआ था। इस सवध में निवेदन-आवेदन और सभा-समितियाँ वरावर होती रही। लेकिन ओडिशा को एक पूर्णांग प्रदेश मे परिणत करना होगा या सारे ओडिया-भाषी अचल को एक शासनाधीन करना होगा, इस सवध मे अर्द्ध-शताब्दी के लबे अरसे तक, ब्रिटिश शासको की तरफ से कोई सूचना नही मिली थी।

सन् १९२९ ई० मे लदन में गोलमेज वैठक आरभ हुई। उसमे मुहम्मदअली जिन्ना ने १४ दफाओवाली माँगे पेश की। इन १४ माँगो को ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार कर लेने से सन् १९४७ ई० मे पाकिस्तान की सृष्टि सभव हुई। जिन्ना की इन माँगो में, वम्वई प्रदेश से सिंध को अलग करके उसे एक स्वतत्र मुसलमान-प्रधान प्रदेश मे परिणत करना भी था। अग्रेजो ने इस माँग को स्वीकार करने के साथ साथ यह भी अनुभव किया कि वे मुसलमानो के साथ खुले-



हवाईजहाज का अड्डा, भुवनेश्वर



सरकारी अतिथिशाला, नई राजधानी भुवनेश्वर

७६३ और अन्यान्य अनुन्नत श्रेणी के लोग ४१,७३,१५५ है। इस हिसाब से ओडिशा की जन-सख्या का दो-तिहाई भाग अनुन्नत श्रेणी के लोगो का है और एक-तिहाई भाग अपेक्षाकृत उन्नत श्रेणी का।

विश्लेषण की दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि ओडिशा में सिर्फ एक नगर और ३८ शहर है। नगर केवल कटक ही है। यहाँ की जनसख्या कुल डेढ लाख है। शहरो में गजाम जिले का ब्रह्मपुर सबसे बडा है। इसके अतिरिक्त इस राज्य में ५०,९८४ ग्राम है। अत यहाँ के शहर-वासियो की सख्या ४०६ प्रति सैकडा है अर्थात् १०० में ५ से भी कम। आयतन के हिसाब से इस राज्य मे आवादी भी कम है। सारे भारत में प्रतिवर्ग मील ३१२ लोग रहते हैं जब कि ओडिशा में सिर्फ २४४ लोग। जीविका या पेशे की दृष्टि से ओडिशा के ७९ २९ प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर रहते है। शेष २० ७१ प्रतिशत लोगो की जीविका कृषि के अतिरिक्त दूसरी है।

ओडिशा के सामूहिक विकास पर विचार किया जाय तो सर्वप्रथम उपर्युक्त मौलिक तथ्यो पर दृष्टि पडती है। किसी भी अचल के विकास के लिए जितने उपादान आवश्यक है उन सभी मे उन्नयन की सभावना और उसके ठीक-ठीक उपयोग के लिए जनशक्ति आवश्यक है। आर्थिक सवल इन्ही दोनो का उपयुक्त योग मात्र है। श्रम द्वारा ही अर्थोपलब्धि होती है। श्रम के लिए सर्वप्रथम लोक-बल चाहिये। फिर उत्पादन-क्षेत्र एव सामग्री के उत्पादन के लिए साधन और अत मे उत्पादन को अर्थशक्ति में बदलने के लिए उपयुक्त वातावरण चाहिये। जिस क्षेत्र मे ये उत्पादन जितने अधिक परिमाण मे है, उस क्षेत्र मे अर्थशक्ति की सभावना उसी अनुपात मे अधिक होती है। विकास के सबध में इसे ही मूल नीति कहना होगा।

ओडिशा में प्राकृतिक सपत्ति पर्याप्त मात्रा में है। विस्तृत समुद्र, असख्य नदियाँ, प्रचुर जगली पैदावार, लोहा, कोयला, मैगनीज आदि की बडी बडी खानें, समशीतोष्ण जलवायु और उर्वर मिट्टी, ये सब इस राज्य में एकाधार रूप में विद्यमान है। यहाँ के लोग कर्मठ, कलाकुशल, और शिल्पकला मे निपुण होते है। इन सबके उपयुक्त विनियोग के लिये उपयुक्त नेतृत्व और निर्देशन आवश्यक है। स्वाधीनता के बाद से ऐसे प्रयास किये जा रहे हैं। पिछले १० वर्षों में उत्कल मे जितनी उन्नति सभव हुई है, इसके पूर्व दो सौ वर्षों के इतिहास में देखने को नही मिलती। यह उन्नति भी भावी उन्नति का सूत्रपात मात्र है। यहाँ वर्तमान समय मे जो विकास-व्यवस्था चल रही है वह भावी उन्नयन का शिलान्यास मात्र है। तथापि जब हम सन् १९३६ के ओडिशा के साथ सन् १९५८ के ओडिशा की तुलना करते हैं तो यह सोचकर आश्चर्य होता है कि उस समय यह देश किस दशा में था।

सन् १९३६ ई० में ओडिशा जब एक स्वतत्र प्रदेश बना तो उस समय इसकी कोई राज-धानी नही थी। इसके अतिरिक्त न तो हाईकोर्ट था और न विश्वविद्यालय ही। सडको की व्यवस्था तो और भी अधिक शोचनीय थी। पहले अँगुलियो पर गिनने योग्य हाई स्कूल थे। हमेशा बाढ आती और सूखे पडा करते थे। तत्कालीन सरकार इन्हें भगवान् का अभिशाप कहकर अपने कर्तव्य

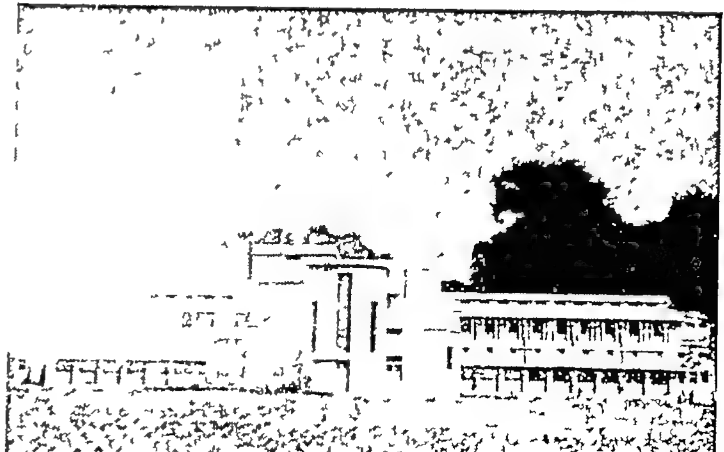


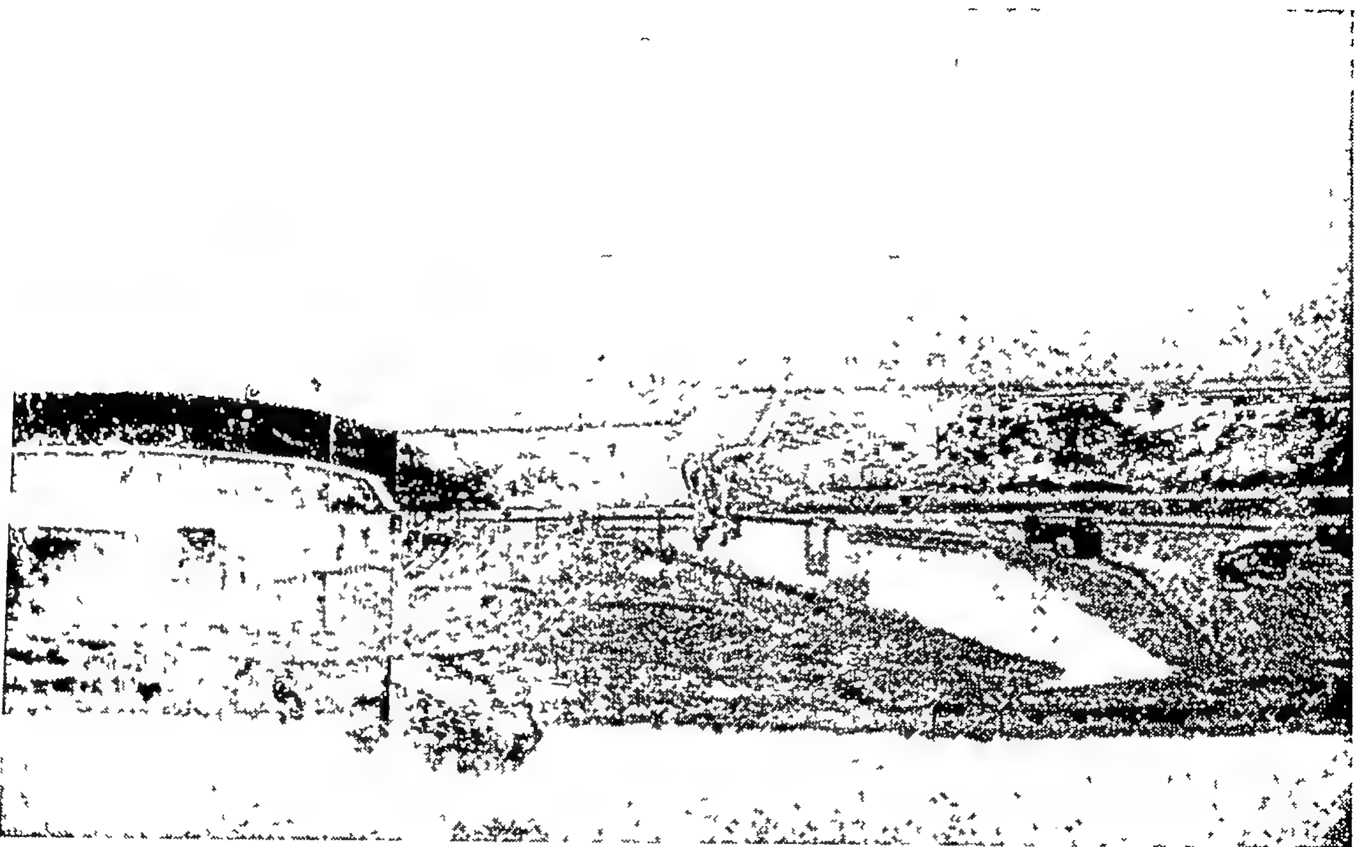
( बगल में ) कटक बारवाटी स्टाडियम का भीतरी दृश्य

( नीचे वायीं ओर ) शहीद भवन — कटक

( नीचे दायीं ओर ) मेडिकल आउटडोर — कटक

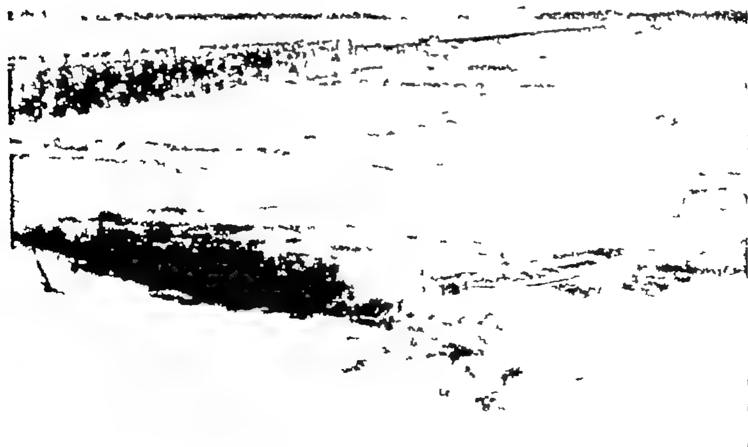


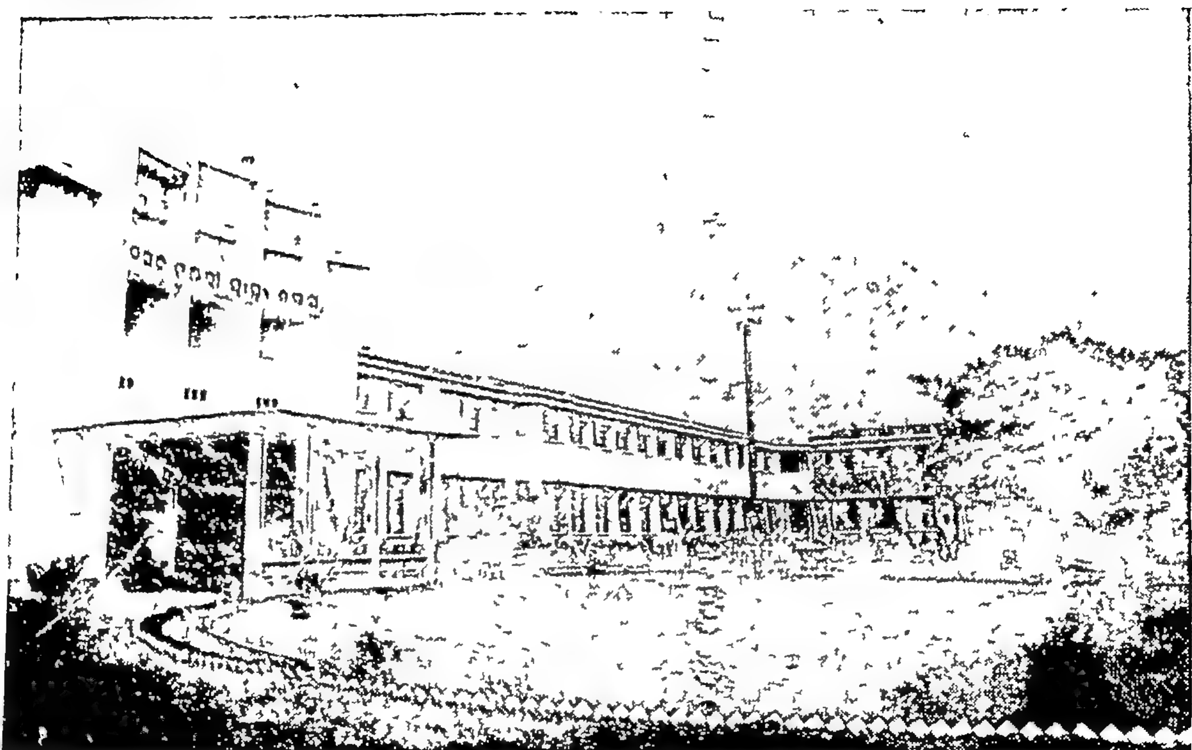




वरगद केनाल जो सम्बलपुर हीराकुद बाँध से निकला है

( ऊपर ) प्रधान न्यायालय — ओड़िशा, कटक ( नीचे ) जोबा आनिकट—कटक





वसन्तमञ्जरी-स्वास्थ्य निवास—चाँदपुर, पुरी

होने पर प्राय ५० लाख एकड भूमि की सिंचाई करेगा और इस जल द्वारा ३ लाख ५० हजार किलोवाट की मात्रा में विजली भी उत्पन्न की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त यह बाँध विशालकाय चिलका झील के वरावर होगा और इसमें मछली पालने आदि की व्यवस्था हो सकेगी।

हीराकुद वाँध द्वारा जो जल-विद्युत् उत्पन्न होगी उससे ओडिशा मे बहुत से शिल्प-उद्योगो का विकास होगा। गत वर्ष भारत के प्रधान मत्री ने अनुष्ठानिक भाव से हीराकुद का उद्घाटन किया था। अभी यह विजली कटक, पुरी के विस्तृत भूभाग में व्यवहृत हो रही है। इसके अलावा सवलपुर में वने हुए गागपुर सीमेंट और आलमोनियम के कारखाने तथा राउरकेला के इस्पात के कारखाने को भी विजली मिल रही है। सवलपुर जिले के तराई-अचल में जहाँ नहरें वन गई हैं, लोग इस साल के अकाल से त्राण पा गये हैं। कटक और पुरी जिले के विशाल भू-भाग में भी सिंचाई की व्यवस्था हुई है। हिसाव लगाकर अनुमान किया गया है कि इसके द्वारा ओडिशा की पैदावार २५ प्रतिशत वढ जायेगी।

दक्षिण में माछकुड जलविद्युत् योजना से भी विजली प्राप्त हो रही है। दक्षिण ओडिशा के विशाल भूभाग में इसका उपयोग हो सकता है। सस्ती और सुविधापूर्वक प्राप्त होनेवाली विजली के द्वारा शिल्प के क्षेत्र में शीघ्र उन्नति की सभावना है। ओडिशा में यथेष्ट खनिज पदार्थ आदि कच्चे माल तथा जनवल की सुविधा है। इसका उपयोग शीघ्रता से आरभ हो गया है। फलत राउरकेला का विराट् इस्पात कारखाना, राजगागपुर का सीमेंट कारखाना, ब्रजराजनगर का कागज उद्योग, चौद्वार का कपडा, कागज और ट्यूब का कारखाना और कटक का रिफ्रेजरेटर का कारखाना तथा काँच का कारखाना स्थापित हो गया है। राउरकेला के पास खाद आदि के दूसरे कारखानो के अतिरिक्त हीराकुद में आलमोनियम, जोडा में फेरामैंगनीज कारखाने, रायगडा तथा वालेश्वर मे कपडे की मिलें, कैंसिगा में कागज कल आदि निकट भविष्य में स्थापित होंगे।

ओडिशा के उन्नति-मार्ग पर वढते समय प्रथम योजना का आरभ हुआ था। इसमें राज्य की उन्नति के लिए प्रथम पाँच वर्पों में २० करोड ४ लाख रुपयो की व्यय-व्यवस्था की गई थी। इसमे ९५ प्रतिशत खर्च हुआ था। पहली योजना मे खेती के ऊपर विशेष जोर दिया गया था। फलस्वरूप ओडिशा के विस्तृत अचल में उन्नत ढग की कृषि-कला का प्रचलन हुआ है। इससे जनता का जीवन-स्तर भी कुछ ऊँचा उठा है।

प्रथम योजना के वाद दूसरी योजना का आरभ हुआ। इसमें प्राय १०० करोड रुपयो की व्यय-व्यवस्था की गई है। इसमें से प्राय ४० करोड रुपये हीराकुद और तटवर्ती अचलो मे सिंचाई की व्यवस्था के लिए रखे गये हैं। इस प्रकार योजनाओ और आवश्यक साधनो के द्वारा निश्चय ही ओडिशा का विकास हो रहा है जो भविष्य के विकसित उत्कल की भूमिका के रूप में है।

इन सव विपयों का निरीक्षण सूक्ष्मता से करने पर यह नि सकोच भाव से कहा जा सकता है कि अगले ५० वर्पों के भीतर ही ओडिशा भारत का एक समृद्धिशाली राज्य वन जायेगा।

को द्विगुणित करना पडा था और अब यह प्रतिदिन १२०० टन से अधिक सीमेंट का उत्पादन कर रहा है। उत्पादन को प्रतिदिन २००० टन तक बढाने के लिए अब शीघ्र ही उसे तिगुना करना पडेगा।

केन्द्रीय सरकार को यह निर्णय करने में कि प्रतिवर्ष १० लाख टन इस्पात की उत्पादन-क्षमतावाले सर्वप्रथम राज्याधिकृत इस्पात प्लाट की स्थापना के निर्णय करने में हीराकुड में शक्ति के बृहत् ब्लाको की प्राप्यता ने कम सहयोग नही दिया है, रूरकेला की उत्पादन-क्षमता को २० लाख टन वार्षिक बढाने के लिए योजनाएँ विचाराधीन हैं। राज्यसरकार के आग्रहपूर्ण प्रयत्नों के फलस्वरूप फालतू गैसो के उपयोग के लिए रूरकेला में खाद के एक बडे कारखाने के स्थापन का भी निश्चय हो चुका है। यह कारखाना प्रतिवर्ष करीब साढे चार लाख टन नाइट्रो-लाइम का उत्पादन करेगा जो ओडिशा ही नही बल्कि पडोसी राज्यो के कृषि-उत्पादन में बहुत बडा सहायक होगा। रूरकेला इस्पात प्लाट की स्थापना ने राजगगपुर, बालपहाड और बारग इत्यादि में अनेक रिफ्रैक्ट्री प्लाटो की स्थापना को प्रोत्साहन दिया है ताकि इस्पात प्लाट और दूसरे उद्योगो के लिए, जो उस क्षेत्र में चल रहे हैं, अग्निजित् ईंटे और भट्ठियो की लाइनिंग मिल सकें। रूरकेला के आसपास अन्य कई सहायक उद्योगो के स्थापित होने की आशा है।

हीराकुड शक्ति योजना का एक दूसरा प्रत्यक्ष प्रतिफल २० हजार टन वार्षिक उत्पादन की क्षमतावाले एक अल्यूम्यूनियम कारखाने की स्थापना है। इसके पूरक स्वरूप हीराकुड में एक रोलिंग मिल और तार बनाने वाले प्लाटो की स्थापना हो रही है। हीराकुड की शक्ति ने जोदा में एक लौह-मैंगनीज प्लाट की स्थापना करने में प्रोत्साहन दिया है। उसी प्रकार माछ-कुड शक्ति पर आधारित रायगादा में एक दूसरा लौह-मैंगनीज प्लाट और एक तीसरा काला-हाडि मे नियोजित होने जा रहा हैं। जाजपुर-केंदुझर क्षेत्र में, जहाँ अत्यधिक क्रोम पाया जाता है, उसका उपयोग करने के लिए एक लौह-क्रोम प्लाट की स्थापना करने का प्रस्ताव विचाराधीन है। भीमकुड और टिक्करपारा योजना द्वारा शक्ति की प्राप्यता से यह आशा की जाती है कि इस राज्य मे जहाँ कच्चा लोहा, मैंगनीज, क्रोमाइट, वैनेडियम, ग्रैफाइट और टिटैनियम के प्रभूत साधन प्राप्त हैं, और भी अनेक उद्योग स्थापित होगे।

राज्य के कृषि-साधनो पर आधारित—जहाँ हीराकुड बाँध और डेल्टाई सिंचन योजना के द्वारा २० लाख एकड भूमि की सिंचाई हो सकेगी और उसके द्वारा उपज में पर्याप्त वृद्धि होगी—बहुत-सी चीनी मिलो की स्थापना करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनमे से पहली मिल हीरा-कुड सिंचित क्षेत्र बरगढ और दूसरी अस्का में खोलने का प्रस्ताव है। कपास और पटसन की उपज मे वृद्धि होने पर आशा है कि चौद्वार मे कपडे की मिल के साथ ही साथ जहाँ पर ५० हजार स्पिंडिल और सौ से अधिक चर्खे चालू हैं, एक कपडे और जूट मिल के स्थापित होने की सभावना है। राज्य के विस्तृत बाँस के साधनो का उपयोग करने के लिए ब्रजराजनगर की कागज मिल के अतिरिक्त चौद्वार और कोंनिग में जो कागज की मिले स्थापित होगी उनमें से प्रत्येक की उत्पादन-क्षमता १५००० टन प्रतिवर्ष है। निकट भविष्य में ही चौद्वार मिल मे उत्पादन

को द्विगुणित करना पडा था और अब यह प्रतिदिन १२०० टन से अधिक सीमेंट का उत्पादन कर रहा है। उत्पादन को प्रतिदिन २००० टन तक बढाने के लिए अब शीघ्र ही उसे तिगुना करना पडेगा।

केन्द्रीय सरकार को यह निर्णय करने में कि प्रतिवर्ष १० लाख टन इस्पात की उत्पादन-क्षमतावाले सर्वप्रथम राज्याधिकृत इस्पात प्लाट की स्थापना के निर्णय करने में हीराकुड में शक्ति के वृहत् ब्लाको की प्राप्यता ने कम सहयोग नही दिया है, रूरकेला की उत्पादन-क्षमता को २० लाख टन वार्षिक बढाने के लिए योजनाएँ विचाराधीन हैं। राज्यसरकार के आग्रहपूर्ण प्रयत्नों के फलस्वरूप फालतू गैसो के उपयोग के लिए रूरकेला में खाद के एक बडे कारखाने के स्थापन का भी निश्चय हो चुका है। यह कारखाना प्रतिवर्ष करीब साढे चार लाख टन नाइट्रो-लाइम का उत्पादन करेगा जो ओडिशा ही नही बल्कि पडोसी राज्यो के कृषि-उत्पादन में बहुत बडा सहायक होगा। रूरकेला इस्पात प्लाट की स्थापना ने राजगगपुर, बालपहाड और बारग इत्यादि में अनेक रिफ्रैक्ट्री प्लाटो की स्थापना को प्रोत्साहन दिया है ताकि इस्पात प्लाट और दूसरे उद्योगो के लिए, जो उस क्षेत्र में चल रहे हैं, अग्निजित् ईंटे और भट्ठियो की लाइनिंग मिल सकें। रूरकेला के आसपास अन्य कई सहायक उद्योगो के स्थापित होने की आशा है।

हीराकुड शक्ति योजना का एक दूसरा प्रत्यक्ष प्रतिफल २० हजार टन वार्षिक उत्पादन की क्षमतावाले एक अल्यूम्यूनियम कारखाने की स्थापना है। इसके पूरक स्वरूप हीराकुड में एक रोलिंग मिल और तार बनाने वाले प्लाटो की स्थापना हो रही है। हीराकुड की शक्ति ने जोदा मे एक लौह-मैंगनीज प्लाट की स्थापना करने में प्रोत्साहन दिया है। उसी प्रकार माछ-कुड शक्ति पर आधारित रायगादा में एक दूसरा लौह-मैंगनीज प्लाट और एक तीसरा काला-हाडि मे नियोजित होने जा रहा है। जाजपुर-केंदुझर क्षेत्र में, जहाँ अत्यधिक क्रोम पाया जाता है, उसका उपयोग करने के लिए एक लौह-क्रोम प्लाट की स्थापना करने का प्रस्ताव विचाराधीन है। भीमकुड और टिक्करपारा योजना द्वारा शक्ति की प्राप्यता से यह आशा की जाती है कि इस राज्य में जहाँ कच्चा लोहा, मैंगनीज, क्रोमाइट, वैनेडियम, ग्रैफाइट और टिटैनियम के प्रभूत साधन प्राप्त हैं, और भी अनेक उद्योग स्थापित होगे।

राज्य के कृषि-साधनो पर आधारित—जहाँ हीराकुड बाँध और डेल्टाई सिंचन योजना के द्वारा २० लाख एकड भूमि की सिचाई हो सकेगी और उसके द्वारा उपज में पर्याप्त वृद्धि होगी—बहुत-सी चीनी मिलो की स्थापना करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनमें से पहली मिल हीरा-कुड-सिंचित क्षेत्र बरगढ और दूसरी अस्का में खोलने का प्रस्ताव है। कपास और पटसन की उपज मे वृद्धि होने पर आशा है कि चौद्वार मे कपडे की मिल के साथ ही साथ जहाँ पर ५० हजार स्पिंडिल और सौ से अधिक चर्खे चालू हैं, एक कपडे और जूट मिल के स्थापित होने की संभावना है। राज्य के विस्तृत बाँस के साधनो का उपयोग करने के लिए ब्रजराजनगर की कागज मिल के अतिरिक्त चौद्वार और केमिंग मे जो कागज की मिले स्थापित होगी उनमें से प्रत्येक की उत्पादन-क्षमता १५००० टन प्रतिवर्ष है। निकट भविष्य मे ही चौद्वार मिल मे उत्पादन

सामने आई। अपनी व्यापकता और सरलता के कारण देश के कर्णधारो और जननायको का समर्थन और आशीर्वाद भी उसे प्राप्त हुआ। भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओ के साथ हिन्दी की जो निकटता थी, उसने भी हिन्दी के पक्ष को सबल बनाया। हिंदीभाषियो ने उतनी नही, जितनी कि अहिन्दीभाषियो ने उसकी पीठ ठोकी और उसे राष्ट्रभाषा के पद पर बैठने की अधिकारिणी माना। उर्दू को इतना व्यापक समर्थन न मिल सका। किन्तु उर्दू को मुसलमान लोग अपनी विशेष भाषा मानते थे। राजनीतिक आन्दोलन को सफलता के साथ नही चलाया जा सकता था। हिन्दू-मुसलिम-एकता पर इसीलिए अत्यधिक बल दिया जाता रहा। इस दिशा मे गाधी जी ने जितना प्रयत्न किया, उसकी कोई सीमा न थी।

राष्ट्रभाषा के प्रश्न को सुलझाने तथा उसके नाम तथा लिपि की समस्या को हल करने के लिए जब गाधी जी आगे बढे, तब उनके मन मे हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य का ही विचार सर्वोपरि था। इसलिए उन्होने राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दी के दावे को स्वीकार करते हुए भी उसे थोडा बदलना चाहा। अपनी विशेष सूझ से उन्होने उसे केवल हिन्दी न कहकर हिन्दी-हिन्दुस्तानी कहना प्रारम्भ किया। राष्ट्रभाषा के रूप के बारे में उनके विचार अटल थे, किंतु समस्या को सुलझाने की दृष्टि से उन्होने राष्ट्रभाषा को हिन्दी-हिन्दुस्तानी नाम दे दिया।

नाम की समस्या का हल निकालने की दृष्टि से ही गाधी जी ने हिन्दी-हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग प्रारम्भ किया था किन्तु वह समस्या नही सुलझी। उनसे आग्रह किया जाने लगा कि वे हिन्दी-हिन्दुस्तानी न कहकर केवल हिन्दुस्तानी कहा करें।

गाधी जी जीवन में इतने ऊपर उठ चुके थे, कि उनके लिए नाम का कोई विशेष महत्त्व न था। उन्होने एक स्थान पर लिखा भी है—"मेरे लिए भाषा के नाम का इतना महत्त्व नही है, भले ही उसको हिन्दी कहा जाय या हिन्दुस्तानी। मुझे दोनो ही शब्दो से एक सा सन्तोष है।"

एक अन्य स्थान पर गाधी जी ने लिखा—

> "उत्तर हिन्दुस्तान में बोली जाने वाली भाषा के लिए हिन्दी ही मूल शब्द है। उर्दू नाम तो—जैसा कि सब अच्छी तरह जानते है—खास तौर से खास मतलब से रखा गया था। अरबी लिपि भी मुसलमान शासको के सुभीते के लिए रखी गई थी। इतिहास का अगर यही क्रम है, तो जब तक हिन्दी शब्द दोनो जबानो के लिए काम मे आता है, उसका प्रयोग करने में कोई मुखालिफत नही होनी चाहिए। खैर, जो कुछ भी हो, ज्यादा से ज्यादा जो मतभेद है वह यही रह जाता है कि एक चीज के लिए दो शब्दो में से कौन सा शब्द काम में लाया जाय।"

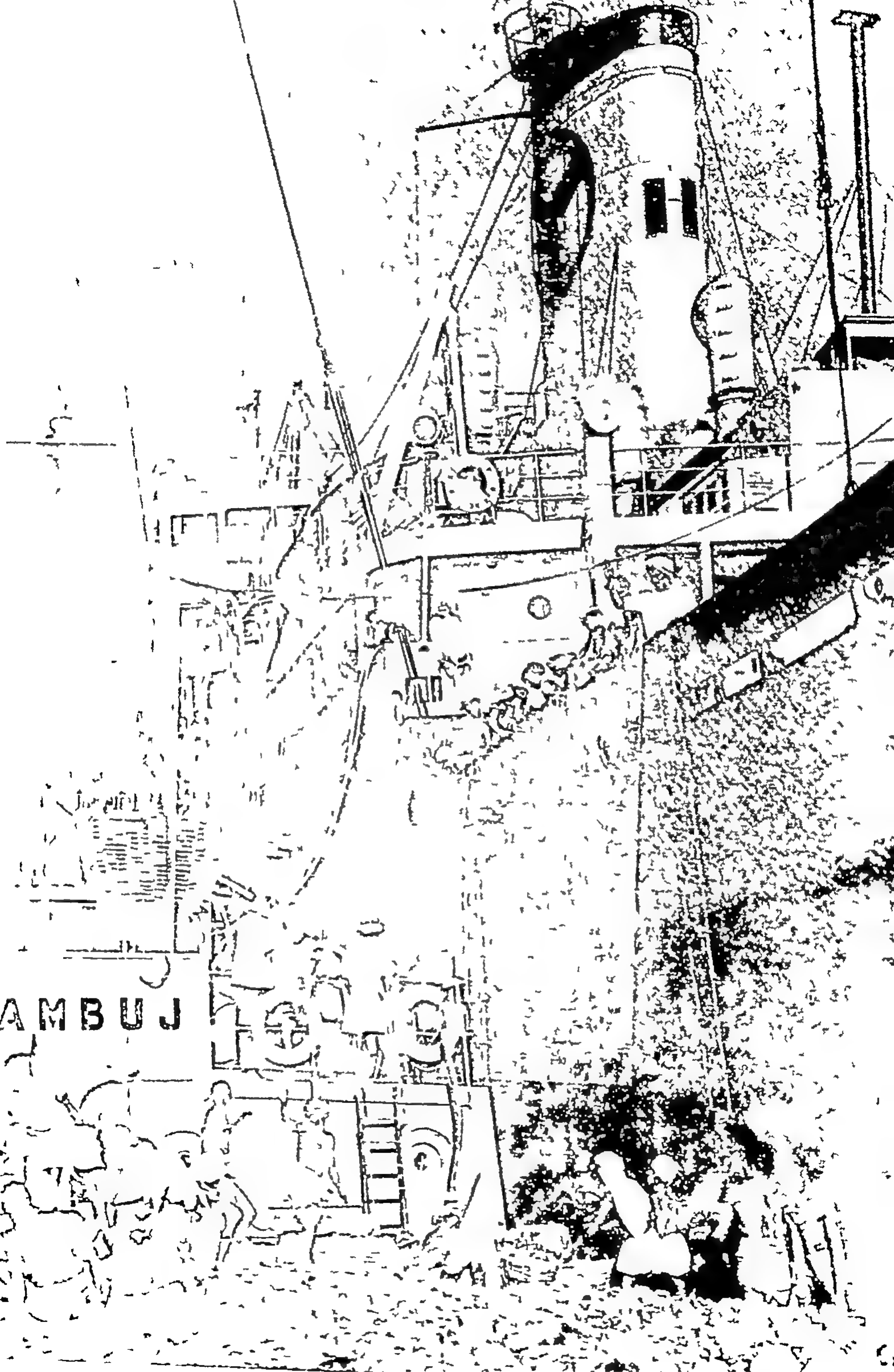
राष्ट्रभाषा के रूप मे, नाम और उसकी लिपि के सबध में, गाधी जी ने अपने विस्तृत विचार 'हरिजन-सेवक' के ता० ३-७-३७ के अक में प्रकाशित किये थे। वे निम्न शब्दो में थे—

को द्विगुणित करना पडा था और अब यह प्रतिदिन १'२०० टन से अधिक सीमेंट का उत्पादन कर रहा है। उत्पादन को प्रतिदिन २००० टन तक बढाने के लिए अब शीघ्र ही उसे तिगुना करना पडेगा।

केन्द्रीय सरकार को यह निर्णय करने में कि प्रतिवर्ष १० लाख टन इस्पात की उत्पादन-क्षमतावाले सर्वप्रथम राज्याधिकृत इस्पात प्लाट की स्थापना के निर्णय करने में हीराकुड में शक्ति के वृहत् ब्लाको की प्राप्यता ने कम सहयोग नही दिया है, रूरकेला की उत्पादन-क्षमता को २० लाख टन वार्षिक बढाने के लिए योजनाएँ विचाराधीन है। राज्यसरकार के आग्रहपूर्ण प्रयत्नों के फलस्वरूप फालतू गैसो के उपयोग के लिए रूरकेला में खाद के एक बडे कारखाने के स्थापन का भी निश्चय हो चुका है। यह कारखाना प्रतिवर्ष करीब साढे चार लाख टन नाइट्रो-लाइम का उत्पादन करेगा जो ओडिशा ही नही बल्कि पडोसी राज्यो के कृषि-उत्पादन में बहुत बडा सहायक होगा। रूरकेला इस्पात प्लाट की स्थापना ने राजगगपुर, बालपहाड और बारग इत्यादि में अनेक रिफ्रैक्ट्री प्लाटो की स्थापना को प्रोत्साहन दिया है ताकि इस्पात प्लाट और दूसरे उद्योगों के लिए, जो उस क्षेत्र में चल रहे है, अग्निजित् ईटें और भट्ठियो की लाइनिंग मिल सकें। रूरकेला के आसपास अन्य कई सहायक उद्योगो के स्थापित होने की आशा है।

हीराकुड शक्ति योजना का एक दूसरा प्रत्यक्ष प्रतिफल २० हजार टन वार्षिक उत्पादन की क्षमतावाले एक अल्यूम्यूनियम कारखाने की स्थापना है। इसके पूरक स्वरूप हीराकुड में एक रोलिंग मिल और तार बनाने वाले प्लाटो की स्थापना हो रही है। हीराकुड की शक्ति ने जोदा मे एक लौह-मैंगनीज प्लाट की स्थापना करने में प्रोत्साहन दिया है। उसी प्रकार माछ-कुड शक्ति पर आधारित रायगादा मे एक दूसरा लौह-मैंगनीज प्लाट और एक तीसरा काला-हाडि में नियोजित होने जा रहा है। जाजपुर-केंदुझर क्षेत्र में, जहाँ अत्यधिक क्रोन पाया जाता है, उसका उपयोग करने के लिए एक लौह-क्रोम प्लाट की स्थापना करने का प्रस्ताव विचाराधीन है। भीमकुड और टिक्करपारा योजना द्वारा शक्ति की प्राप्यता से यह आशा की जाती है कि इस राज्य मे जहाँ कच्चा लोहा, मैंगनीज, क्रोमाइट, वैनेडियम, ग्रैफाइट और टिटैनियम के प्रभूत साधन प्राप्त है, और भी अनेक उद्योग स्थापित होगे।

राज्य के कृषि-साधनो पर आधारित—जहाँ हीराकुड बाँध और डेल्टाई सिंचन योजना के द्वारा २० लाख एकड भूमि की सिचाई हो सकेगी और उसके द्वारा उपज मे पर्याप्त वृद्धि होगी—बहुत-सी चीनी मिलो की स्थापना करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनमे से पहली मिल हीरा-कुड-सिंचित क्षेत्र बरगढ और दूसरी अस्का में खोलने का प्रस्ताव है। कपास और पटसन की उपज मे वृद्धि होने पर आशा है कि चौद्वार में कपडे की मिल के साथ ही साथ जहाँ पर ५० हजार स्पिडिल और सौ से अधिक चर्खे चालू है, एक कपडे और जूट मिल के स्थापित होने की सभावना है। राज्य के विस्तृत बाँस के साधनो का उपयोग करने के लिए ब्रजराजनगर की कागज मिल के अतिरिक्त चौद्वार और केमिंग मे जो कागज की मिले स्थापित होगी उनमें से प्रत्येक की उत्पादन-क्षमता १५००० टन प्रतिवर्ष है। निकट भविष्य में ही चौद्वार मिल मे उत्पादन


AMBUJ

# ओड़िशा की कला और स्थापत्य

## श्री अर्जुन जोशी

कला और स्थापत्य किसी भी देश या जाति की सभ्यता के मापदड हैं। ओडिशा की कला और स्थापत्य सभ्य मानव समाज की एक जीवन्त कीर्ति है। यह कहना असम्भव है कि कितने पहले ओडिशा में कला और स्थापत्य का आरम्भ हुआ। भारतीय कला और स्थापत्य के इतिहास की जानकारी हमें ऋग्वेद, ब्राह्मण सहिता, आरण्यक, गृह्यसूत्र, महाभारत और विभिन्न समय के शिल्पशास्त्रो तथा अभिलेखो के सिवा विभिन्न समय की मुद्राओ, शिलाओ, पत्थर की मूर्तियो और मदिरो से होती है। लेकिन ओडिशा की कला और स्थापत्य के विषय में अनेक प्रस्तर-मूर्तियो के अतिरिक्त केवल ओडिशा के मदिरो से थोड़ी-बहुत सूचना मिलती है। आज तक कोई भी ऐसा शास्त्र नही मिला जिसके अनुसार मूर्तियो तथा मदिरो का निर्माण हुआ हो। ओडिशा की मूर्तियो तथा मदिरो में अकित चित्रो से प्रतीत होता है कि पूजा के लिए ही इन प्रतिमाओ का निर्माण हुआ था। प्रतिकृतियो मे कई देवी-देवताओ, लिंग, यन्त्र, कई प्रकार के जीव-जन्तु, जल-जन्तु, पक्षी, पेड, लता, आदि के अतिरिक्त दूसरे चित्र भी है, जो निस्सदेह धार्मिक मनोभाव से पूजा के लिए निर्मित हुए थे। इसके अतिरिक्त मदिरो मे पार्श्वदेवता, दिक्पाल, नवग्रह, द्वारपाल, गगा-यमुना, कीर्तिमुख, जाली, ज्यामिति चित्र, और घट आदि में कुछ धर्म के साथ सपृक्त है। कोणार्क और राजाराणी के मदिरो में कई प्रकार के लतापत्र, मुक्तेश्वर की ५२ प्रतिमाएँ, कोणार्क का हाथी चित्र और मुक्तेश्वर का ज्यामितिक रेखा तथा कोण आदि सौन्दर्य-वृद्धि के लिए बनाये गये है। मूर्तिकला तथा मदिर की उत्पत्ति धर्म से हुई है। महाभारत, ब्रह्मपुराण और स्कन्द पुराण से पता चलता है कि ओडिशा एक पुण्य-भूमि है। महाभारत मे आया है कि "अर्जुन ने कलिंग के सब तीर्थस्थानो का पर्यटन किया था।"[1] तीर्थयात्रा के समय युधिष्ठिर ने कलिंग-परिदर्शन किया था[2]। इससे मालूम होता है कि ओडिशा में हिन्दू धर्म अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रचलित था। लेकिन इसके बाद बौद्ध और जैन धर्म का उत्थान हुआ था। धर्म-विकास के साथ साथ मूर्ति-पूजा का भी प्रसार हुआ। इसलिए ओडिशा में कई बौद्ध और जैन मूर्तियो के अतिरिक्त जैनो की गुफाएँ भी है। लगभग पाँचवी सदी से शैव धर्म का उत्थान हुआ और उसी समय से अनेक शैव प्रतिमाएँ तथा मदिर प्रतिष्ठित होने लगे। तत्र-मत्र के आगमन के साथ ही साथ उसी के अनुसार कई मूर्तियाँ

---

१ डॉ० हरेकृष्ण महताब का ओडिशा का इतिहास—पृ० ४

२ वही—पृ० ५

पक्षी, सर्प आदि की पूजा करता था। अनार्यों में और ओडिशा के रहनेवाले द्राविड़ो में यह पूजा अव तक प्रचलित है। जब आर्य और अनार्य मिलकर एक साथ रहने लगे, तव आर्यों ने अनार्यों के धर्म का सम्पूर्ण लोप न कर उसे अपने धर्म के साथ मिला लिया। उस समय नाग-पूजा का प्राधान्य कम हो गया और वह पारिपार्श्विक देवता-रूप में पूजा जाने लगा तथा बाद में बौद्ध, जैन, और ब्राह्मण धर्मों में उसने स्थान पाया।

ईसा पूर्व की ओडिशा की कला में अशोकराजत्व का धउली का हाथी विश्व-प्रसिद्ध है। हाथी की मूर्ति अत्यत सुन्दर है। दाहिना पैर कुछ झुक गया है, और पीछे के पैर सीधे हैं। ऐसा मालूम होता है मानो हाथी आनन्द के साथ आगे सूँड हिलाकर पत्थर-वृक्ष से निकल रहा हो। धउली, हस्तीमूर्ति के वारे में कलाविदो ने कहा है "The land exhibitionism of pomp and power of Rampurva or Sarnath specimens has nothing to compare with the quite dignity of the Dhauli Elephant, compared to the Dhauli Elephant the Sarnath quadripartite and its Sanchi counter part are bombastic in style and motive"[1]

हस्तीमूर्ति के नीचे अशोक का शिलालेख खुदा हुआ है। ओडिशा में अशोक के समय में अक्षर-खनन-कला का जो विस्तृत विकास हुआ था उसका प्रमाण जउगढ में भी देखने को मिलता है। ब्राह्मी अक्षर खूब सुन्दर ढग से इन दोनो स्थानो में खोदे हुए हैं। अशोक के समय का, इस हस्तीमूर्ति और अनुशासन के सिवाय, एक अशोक-स्तम्भ भी था[2], इसका प्रमाण भुवनेश्वर के कई स्तम्भ-खडो से मिलता है। भुवनेश्वर के अशोक-स्तम्भ को काटकर टुकडो में परिणत कर दिया गया है और मूल स्तम्भ को शैवो ने अपने आवश्यकतानुसार शिव-लिंग में परिणत कर दिया है, जिसकी भुवनेश्वर के भास्करेश्वर मदिर में पूजा होती है। शिव-लिंग की ऊँचाई ९ फुट है, मूल परिधि १२ फुट ५ इच है। इतना वडा एक पत्थरखड कभी शिवलिंग नही हो सकता। यह एक स्तम्भ का अश है। इन स्तमो में अनेक अशोक-ब्राह्मी-अक्षरो का अवशिष्टाश भी है, क्योंकि ये सव एक-एक अशोक-स्तम्भ है।

विशेपज्ञो ने भी लिखा है, "The stumb of Asoka's monolith which is being worshipped as a phallic emblem in the Bhaskareswar temple may still bear a copy of M R E"

स्तम्भ का पद्मवध और पीठ भुवनेश्वर रथ रामेश्वर मदिर के पास पडा हुआ है। इसके नीचे के भाग में वाई से दाहिनी ओर हस, प्रस्फुटित पद्म, वण्ड हस्ती, प्रस्फुटित पद्म, पक्षयुक्त व्याघ्र, पद्मकढि, और धावमान पक्षयुक्त अश्व खोदा हुआ है। पद्म और हस अशोक-

---

1 Maurya and Surga Art p 26

2 The Asokan pillar at Bhubaneswar (A Booklet by Sri Arjun Joshi, Curater Orissa, Museum

गजपद्म मूर्ति ( उदयगिरि भुवनेश्वर )

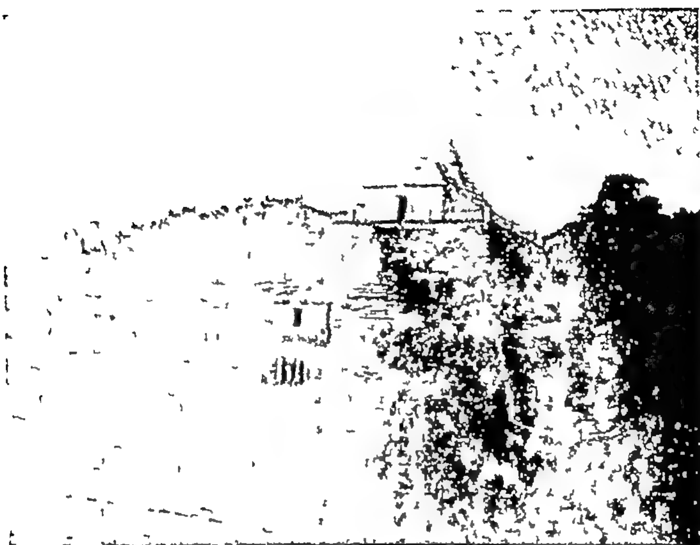
उपर ) व्याघ्र गुफा—उदयगिरि (नीचे) रानीगुफा—उदयगिरि [ भुवनेश्वर ]



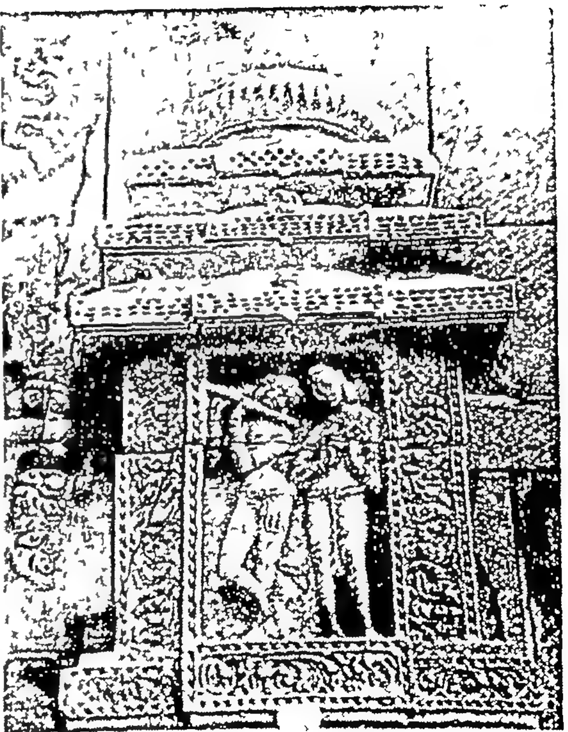
[illegible] गुफा—उदयगिरि

नीचे ) अनन्त गुफा—खण्डगिरि [ भुवनेश्वर ]





खण्डगिरि जैन मन्दिर—भुवनेश्वर



द्वैतवाद—ब्रह्मेश्वर, भुवनेश्वर

नागरी से ही निकली हैं, और इसलिए उनके लिए उसे सीखना ही सबसे ज्यादा आसान है। लेकिन इसके साथ ही मुसलमानो पर या दूसरे ऐसे लोगो पर जो इससे अनजान हैं, इसे जबरदस्ती लादने का हमें किसी तरह का कोई प्रयत्न न करना चाहिए।

९—अगर उर्दू को हम हिंदी से अलग माने, तो मैं कहूँगा कि इन्दौर में जब मेरे कहने पर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने धारा न० १ में दी हुई व्याख्या को स्वीकार कर लिया और नागपुर में मेरे कहने पर भारतीय साहित्य-परिषद् ने भी उस व्याख्या को स्वीकार करके अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की सामान्य भाषा को हिंदी या हिन्दुस्तानी कहा, तो इस प्रकार मैंने उर्दू की सेवा ही की है। क्योकि इससे हिंदू, मुसलमान दोनो के सामान्य भाषा को समृद्ध बनाने के यत्न में शामिल होने और प्रांतीय भाषाओ के सर्वोत्तम विचारो को उस भाषा मे लाने का पूरा-पूरा मौका मिल गया है।"

राष्ट्रभाषा के रूप, नाम और उसकी लिपि की समस्या को हल करने के लिए गांधी जी ने अथक परिश्रम किया, किंतु खेद का विषय था कि मर्ज बढता गया ज्यो-ज्यो दवा की। देश में एक ओर हिंदी के प्रबल हिमायती थे जिनका प्रतिनिधित्व हिंदी साहित्य-सम्मेलन कर रहा था और जो चाहते थे कि राष्ट्रभाषा का नाम हिंदी रहे, "उसे हिंदुस्तानी कहा जा सकता है" और लिपि देवनागरी रहे। भाषा के स्वरूप के बारे में ये लोग गांधी जी से पूर्णरूपेण सहमत थे। दूसरी ओर उर्दू के हिमायती थे, जिनका प्रतिनिधित्व "अंजुमने तरक्की उर्दू" करती थी और जो राष्ट्र-भाषा को सिर्फ हिंदुस्तानी कहना चाहते थे। वे देवनागरी के साथ उर्दू लिपि को भी राष्ट्रलिपि स्वीकृत कराना चाहते थे। भाषा के रूप के संबध में उन्हे भी कोई खास आपत्ति न थी।

किंतु इन सभी प्रयत्नो के बावजूद कोई हल न निकल सका। गांधी जी को इस बात का दुःख रहा कि उनकी प्रेरणा और प्रयत्न से हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने हिंदी की यह व्याख्या की कि "हिंदी वह भाषा है जो उत्तर भारत में हिंदू, मुसलमानो द्वारा बोली जाती है और जो उर्दू या देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।" इस परिभाषा के द्वारा सम्मेलन ने भाषा-समस्या के समाधान के लिए एक क्रांतिकारी कदम उठाया किंतु मुसलमानो ने गर्व और प्रसन्नता के साथ उसकी दाद नही ही दी।

अन्त में गाँधी जी ने ता० ८–२–४२ के 'हरिजन सेवक' में अपनी यह इच्छा व्यक्त की :—

> "मैं अब यह चाहता हूँ कि किसी ऐसी संस्था या समिति का संगठन हो जो अपने सदस्यो के लिए हिंदी और उर्दू का, उनके दोनो रूपो और दोनो लिपियो का साथ-साथ अध्ययन करने की हिमायत करे। और इस उम्मीद के साथ इस चीज का प्रचार करे कि आखिरकार किसी दिन दोनो कुदरती तौर पर मिल कर एक सर्व साधारण अंतर्प्रान्तीय भाषा का चोला पहन लेंगी और हिंदुस्तानी कहलाने लग जायेंगी। उस समय इनका समीकरण हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी न होकर हिंदी और उर्दू होगा।"



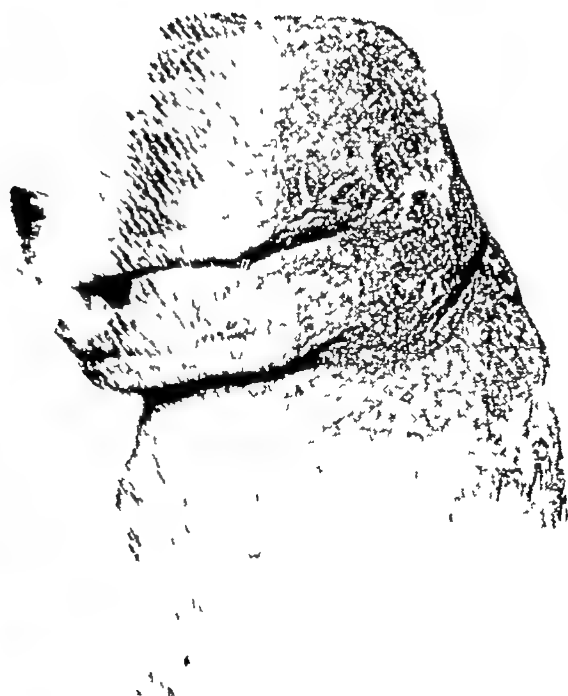
गङ्गा ( म्युजियम )



पार्वती ( म्युजियम )



यमुना ( म्युजियम )

इसके अतिरिक्त नव मुनी गुफा मे जैन तीर्थंकर, उनके शासन और देवियो की प्रतिमूर्तियाँ खोदी हुई हैं। इस तरह खडगिरि के बारभुजि या सप्त वखरा गुफा में २४ जैन तीर्थंकरो की मूर्तियाँ और उनके वाहन खोदित है। ये सब दिगम्बर जैन मूर्तियाँ हैं। मूर्तियाँ वाहनो के साथ बाये से दाहिने है। उनके रूप के अनुसार प्रतीत होता है कि सब मूर्तियाँ ध्यानमुद्रा में अवस्थित हैं।

| तीर्थंकर | वाहन |
|---|---|
| १—ऋषभदेव | वृषभ |
| २—अजितनाथ | हस्ती |
| ३—सम्भवनाथ | अश्व |
| ४—अभिनन्दननाथ | वानर |
| ५—सुमतिनाथ | हस |
| ६—सुपार्श्वनाथ | स्वस्तिक |
| ७—चन्द्र प्रभु | अर्धचद्र |
| ८—पद्म प्रभु | पद्म |
| ९—एक मूर्ति | मयूर |

वह कोई भी तीर्थंकर नही हो सकता, क्योकि किसी भी जैन तीर्थंकर का वाहन मयूर नही है।

| | |
|---|---|
| १०—अन्य एक मूर्ति | निश्चिह्न |
| ११—नेमिनाथ | वृक्ष |
| १२—नग्न मूर्ति | निश्चिह्न |
| १३— ,, ,, | ,, |
| १४—भूविधिनाथ | किम्मिर |
| १५—मूर्ति | निश्चिह्न |
| १६—शातिनाथ | मृग |
| १७—कुन्दनाथ | छेलि |
| १८—काल्पनिक मूर्ति | मच्छ |
| १९—मल्लिनाथ | जलघर |
| २०—नेमिनाथ | वृक्ष |
| २१—मुनि सुव्रतनाथ | कच्छप |
| २२—नेमिनाथ | शख |
| २३—Sreyansanatha | गेंडा |
| २४—महावीर | सिंह |

wellknown theory of Mr Fergusson, that the sudden introduction of the use of stone instead of wood for purposes both of artchitecture and sculpture in India was the result of communication between the empire of Alexander and his successor and that of Mauryan dynasty of Chandragupta and Asoka, is in my opinion certainly correct"[1]

लेकिन यह ठीक नही है, क्योकि सिकदर का भारत-आक्रमण भारत की सामाजिक अवस्था को प्रभावित नही कर सका है। सिकदर ने भारत के उत्तर-पश्चिमाञ्चल का कुछ हिस्सा थोडे समय के लिए अपने अधिकार में किया था। इसने भारत की कला और स्थापत्य पर प्रभाव डाला है। लेकिन यह बात बिलकुल अवान्तर है कि इसने ओडिशा की कला और स्थापत्य पर प्रभाव डाला है, क्योकि ओडिशा भारत के पूर्वी सीमान्त में अवस्थित है। इसके अतिरिक्त ओडिशा कला का निदर्शन है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी की चार यक्षमूर्तियो में से तीन खण्डगिरि-निकटस्थ जागमरा के पास डुमडुमा गाँव से मिली है, और दूसरी भुवनेश्वरस्थ ब्रह्मेश्वर मदिर के पास से आविष्कृत हुई है। डुमडुमा की यक्षमूर्तियाँ अच्छी अवस्था में हैं। हर एक की ऊँचाई ५ फीट ७ इच और सिरो में एक-एक रध्र है, शायद कुछ ऊपर उठाकर रखने के लिए। मूर्तियाँ घुटने उठा कर बैठी है। कानो में अलकार और गले में हार हैं। धोतियाँ पैरो के बीच में लटकी पडी है। ये सब साँची की यक्षमूर्ति के समान है। दूसरी मूर्तियाँ इसी के समान हैं। ऐसा लगता है मानो ये सब मूर्तियाँ किसी बौद्ध स्तूप का अश हैं। इसके अतिरिक्त यह मालूम हो गया है कि दूसरी या तीसरी शताब्दी की कार्त्तिकेश्वर मूर्ति उत्तरेश्वर मदिर में है।[2] कार्त्तिकेय की मूर्ति के नीचे मोर और शक्ति है। दाहिना हाथ दाहिनी जाँघ पर है। बायें हाथ में कोई पात्र है। इससे मालूम होता है कि तीसरी शताब्दी में भुवनेश्वर में शैवधर्म का उत्थान हुआ था।

चौथी या पाँचवी शताब्दी की कला या स्थापत्य का कुछ भी पता नही मिला है। अपने कोरापुर जिले के प्राचीन स्थान-भ्रमण के समय मैंने सुरगुलि गाँव में एक टूटा-फूटा मदिर देखा था। यह ईंटो का बना हुआ है। इस मदिर से एक यक्षमूर्ति मिली है। मूर्ति की ऊँचाई १ फुट ४ इच और चौडाई २ फीट ४ इच है। इसके दो हाथ है। यह आसन पर बैठी है। एक पाँव भूमि के साथ समान्तर है, और दूसरा सीधा है। हाथो मे बाला पहने है, सिर में बाल हैं और गले में एक हार है। इससे मालूम होता है कि उस समय वहाँ सिर्फ यक्ष-पूजा होती थी। यह मूर्ति

---

1 J A S Vol LVIII, p 108

2 J A S Letters, pages 104-5

वाहनो का चित्र सुन्दर रूप में अकित है। ठीक जाजपुर की सप्तमातृका मूर्ति के समान पुरी मे भी सप्तमातृका मूर्तियाँ है। इनकी शैली समान है। कारुकार्य में पुरी की मूर्तियाँ काफी सुन्दर है, लेकिन जाजपुर की मूर्तियाँ अधिक सुन्दर और प्राकृतिक है।[1] पुरी की मूर्तियाँ ध्यानमग्न है।

कटक जिले के धर्मशाला के अचल में भी सप्तमातृका-मूर्तियाँ तैयार की जाती थी। इन सप्तमातृकाओ से वाराही (४ फीट × २ फीट), वैष्णवी (४ फीट ४ इच × २ फीट २ इच) और एक इन्द्राणी (४ फीट ४ इच × २ फीट २ इच) मूर्ति के साथ एक चामुण्डा (४ फीट × २ फीट) मूर्तियाँ ओडिशा के म्युजियम मे सुरक्षित हैं। यह माना गया है कि सब मूर्तियाँ नवी शताब्दी की हैं।[2] ये सभी Chlorite पत्थर की है। ये मूर्तियाँ चार हाथवाली है, और सुखआसनो में बैठी है। जाजपुरवाली मातृका के समान ये भी वाये हाथ से बच्चो को पकड कर दाहिने हाथो से अभय प्रदान करती है और ऊपर दो हाथो में अपने अपने देवताओ के अस्त्र-शस्त्र पकडे हुए हैं। नीचे सब वाहन है। ऊपर गधर्व और मनुष्य पूजा करते है। पुरी की मूर्ति के समान ये मातृकाएँ ध्यान-मग्न है। मातृकाओ के साथ चामुण्डा मूर्ति भी प्राप्त होने की बातें उल्लेखनीय है। जाजपुर की चामुण्डा एक वृहत् मूर्ति है, लेकिन इसके अनेक अश नष्ट हो गये है, फिर भी इसमें कला का सौंदर्य विद्यमान है। चामुण्डा ने चण्ड और मुण्ड नामक दो असुरो को मारकर चामुण्डा नाम प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त रक्तवीज असुर को मारने के वक्त उसने दुर्गा को काफी मदद दी थी। रक्तवीज असुर की देह में आघात से जो रक्तबिन्दु भूमि पर पडे थे उन्होने अन्य रक्तबीज असुर का रूप धारण कर दुर्गा और सप्तमातृका के साथ युद्ध किया था। इस तरह रक्तबीज के शरीर पर अनेक आघात होने के कारण अनेक रक्तविन्दु भूमि पर पड कर हजारों असुर जन्मे, और सारे पृथ्वी में विस्तृत हो गये। इसके वाद दुर्गा ने चामुण्डा से रक्तवीज का सब रक्त भूमि पर पडने के पहले ही पीने के लिए कहा था। चामुण्डा के ऐसा करने पर रक्तवीज रक्तशून्य होकर मर गया। ओडिशा में जितनी चामुण्डामूर्तियाँ है, सब सुखासन में वैठी है। युद्ध-रत रहने की मूर्ति तैयार नही हुई है। जाजपुर के दशाश्वमेघ घाट मे जो मूर्ति है, उसका निर्माण देवीमाहात्म्य मे वर्णित सूत्र के अनुसार हुआ है। ऊपर के दाहिने हाथ में तलवार, ऊपर के बायें हाथ में लाठी है। मूर्ति मुख वाये, जीभ निकाले खडी है। शरीर ककाल के समान है। अग्निपुराण में चामुण्डा का वर्णन निम्नाकित रूप मे हुआ है। "चामुण्डार कोटरगत चक्षु, त्रिनेत्र, चर्महीन ककाल, ऊर्ध्वकेशा, शुष्क पाकस्थली, गजचर्मधारी, पटिशधारी वामदवोय रे नरमुड, डाहाण हाथ दवय रे खग्ग, एव वर्छा, शवारूढा, अस्तिन्वषणा।"[3] धर्मशाला से लाई हुई, ओडिशा म्युजियम में सरक्षित

---

1 Journal of the Royal Society of Arts, pp 10-16.

2 Catalogue of Sculpture in Orissa State Museum by Sri Arjun Joshi (Under preparation)

३ अग्निपुराण, Vol I, पृष्ठ १४३

हैं, जिनके अक्षरो को भौमकरवशीय राजा शुभकर देव के नेउलपुर अभिलेख के अक्षरो के समान माना है। शुभकर देव से ७९५ ई० में चीन सम्राट् को एक उपहार मिला था। शुभकर देव महायान धर्मावलम्बी थे। उस समय बौद्धधर्म के प्रसार के कारण अनेक बौद्ध मूर्तियाँ और मठ तैयार किये गये थे। इस दृष्टि से कटक जिले के इन पहाडो की मूर्तियो, भग्नावशेष और शुभकर देव की समसामयिक प्रज्ञा की जीवनी से पता चलता है कि मगध के नालन्दा के समान ओडिशा में भी एक वडा शिक्षा-केन्द्र था। अनुमान है कि ये ललितगिरि, उदयगिरि, और रत्नगिरि हों। उदयगिरि के निम्न देश में भूमिस्पर्श मुद्रा मे एक विशाल बौद्ध मूर्ति है। इस मूर्ति का कुछ अश मिट्टी के अन्दर है। इसकी ऊँचाई ९ फीट है। कई पत्थरो को इकट्ठा कर यह मूर्ति बनी है।[1] ठीक ऐसी ही एक मूर्ति ५×५ फीट (चित्र देखिए) भद्रक के पास खडिपदा से लाकर ओडिशा म्युजियम में रखी गई है। यह मूर्ति खण्ड-खण्ड Sand Stone (कन्दापत्थर) से निर्मित है। अनुमान किया जाता है कि इसका निर्माण-काल अष्टम शताब्दी है।

ठीक ऐसी ही एक बुद्धमूर्ति बौद मे भी है। इससे मालूम होता है कि अष्टम और नवम शताब्दी में बौद्ध धर्म का विशेष प्रसार ओडिशा में था।

उदयगिरि में बुद्धमूर्ति के अतिरिक्त अनेक बोधिसत्व मूर्तियाँ भी है। इनमें से एक अवलोकितेश्वर बोधिसत्व (७ फोट १० इ० × २ फीट १० इ०) की दो हाथ, और शिर की अभिताभ मूर्ति है। इसके बारे में एक अभिलेख है। ठीक ऐसी ही पद्मपाणि की मूर्ति (साढे चार फीट) वालेश्वर जिले के उडिपदा से लाकर ओडिशा म्युजियम में रखी गई है। (चित्र देखिए) शिला लेख से मालूम होता है कि महामण्डल राय परमगुरु राहुल रुचि ने शुभकर देव के राजत्व-काल मे यह प्रतिमा दान की थी।[2] भौमवशीय राजा शुभकर देव अष्टम शताब्दी में राजत्व करते थे। अष्टम शताब्दी में भुवनेश्वर के पास बौद्धधर्म और कला का प्रसार भी देखा जाता है। भुवनेश्वर के पास झाडपडा गाँव से भी एक विशालकाय अवलोकितेश्वर मूर्ति (५ फीट ६ इ० × ३ फीट ३ इ०) लाकर भुवनेश्वर म्युजियम में रखी गई है। (चित्र देखिए) देन्द्रापडा में भी ऐसी ही अनेक बोधिसत्व मूर्तियाँ है। इन मूर्तियो का निचला भाग नष्ट हो गया है, फिर भी जो कुछ है, वह उस समय की कला का पूर्ण परिचय प्रदान करता है।

मध्य युग की बौद्ध कला की कई स्वतत्र शैलियाँ हैं। ललितगिरि, उदयगिरि और रत्नगिरि की मूर्तियो की भी कई विभिन्न शैलियाँ है। ललितगिरि की मूर्तियो का मुख लम्बा है, लेकिन रत्नगिरि की मूर्तियो का मुख चौडा और गोलाकार है और उदयगिरि की मूर्तियो का मुख अधिक चौडा और सपूर्ण गोलाकार है। इस प्रभेद का कारण विभिन्न कलाकारो की स्वेच्छाचारिता

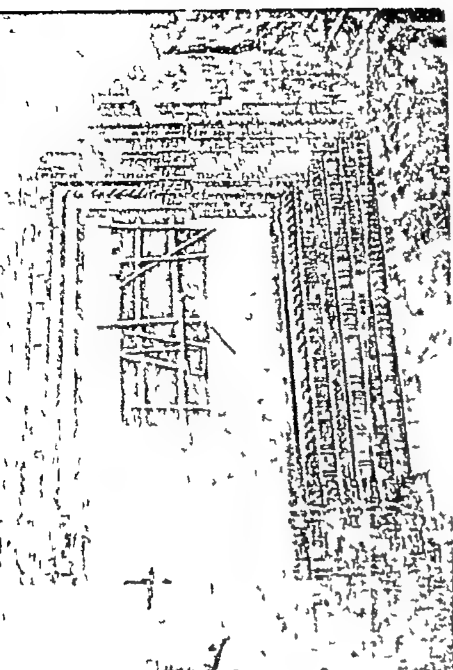
---

1 India Archaeology 1957-58, plate LI

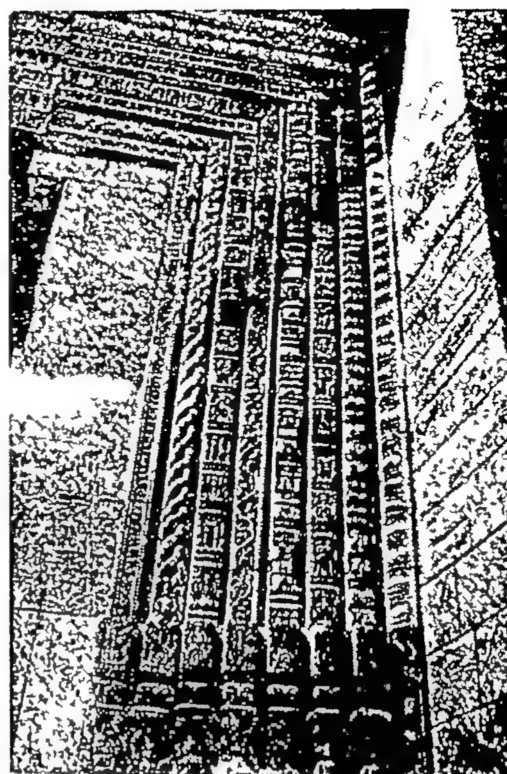
2 Ibid plate LIV

3 Ibid plate LV-L I

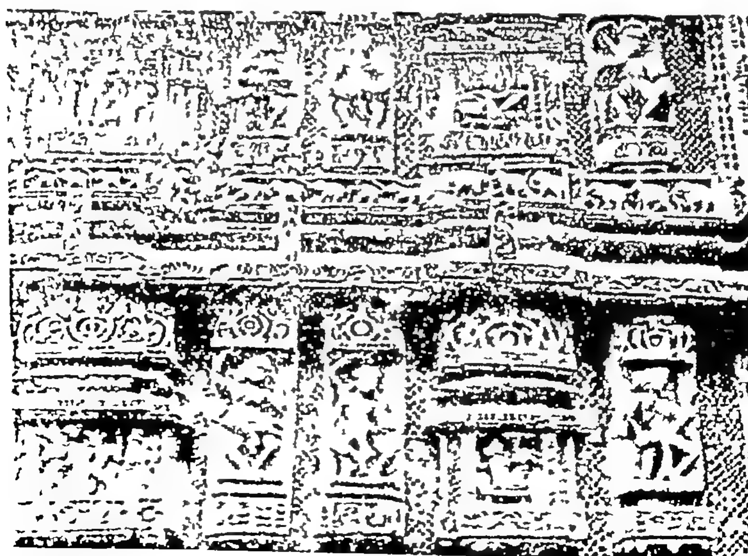
## णार्क के विश्वविमोहनकारी कारुकार्य के विभिन्न दृश्य



मन्दिर द्वार ( पूर्ण झाँकी )



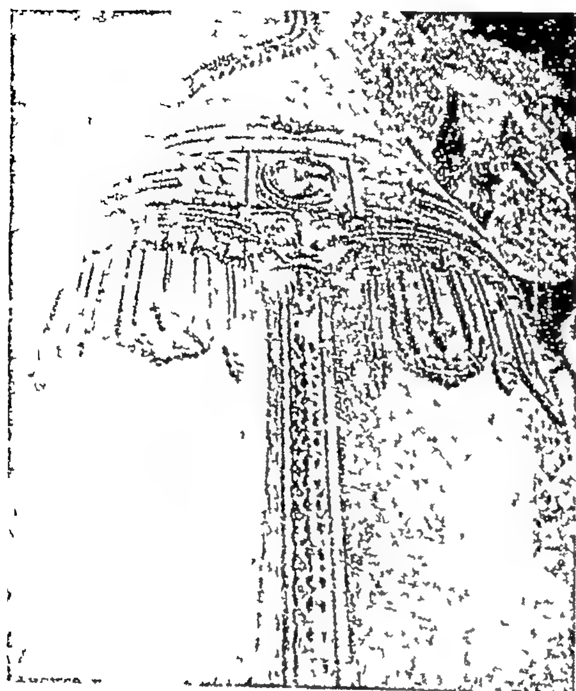
मन्दिर द्वार ( एक ओरसे )





सुसज्जित युद्ध अश्व





र्यमूर्त्ति का एक हिस्सा



कोणार्क मंदिर का



ार्यमूर्त्ति का एक हिस्सा



कोणार्क मन्दिर का हाथी

अहमदाबाद ने उनकी आत्मकथा "सत्यना प्रयोगो" को गुजराती भाषा और देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया था। गाधी जी चाहते थे कि सभी प्रदेशो मे इस दिशा में प्रयत्न हो और प्रातीय भाषाओ की पुस्तकें देवनागरी में प्रकाशित हो।

देवनागरी लिपि के सबध में गाधी जी ने एक स्थान पर लिखा है —

> "मै अपनी यह राय तो जाहिर कर ही चुका हूँ कि अगर हिंदुस्तान मे सर्वमान्य हो सकनेवाली कोई लिपि है तो वह देवनागरी ही है, फिर भले ही उसमे सुधार की गुजाइश हो या न हो। शुद्ध वैज्ञानिक और राष्ट्रीय दृष्टि से जब तक मुसलमान भाई अपनी राजी से देवनागरी की श्रेष्ठता स्वीकार नही करते, तब तक उर्दू या फारसी लिपि भी जरूर जारी रहेगी।"
>
> "रोमन लिपि का तो यहाँ मेल ही नही बैठता। रोमन लिपि के समर्थक तो इन दोनो ही लिपियो को रद्द कर देने की राय देंगे। किंतु विज्ञान तथा भावना इन दोनो ही दृष्टियो से रोमन लिपि चल नही सकती।"

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि गाधी जी भारत की सपूर्ण प्रातीय भाषाओ के लिए एक मात्र देवनागरी लिपि का व्यवहार उपयुक्त समझते थे। राष्ट्रभाषा के लिए भी देवनागरी लिपि ही वे चाहते थे। किंतु उनका पथ अहिंसा का था, प्रेम का था। वे नही चाहते थे कि कोई भाषा अथवा कोई लिपि किसी पर थोपी जाय। इसीलिए राष्ट्रभाषा के लिए वे तब तक देवनागरी के साथ उर्दू लिपि भी स्वीकार करनेवाले थे, जब तक मुसलमान भाई शुद्ध वैज्ञानिक और राष्ट्रीय दृष्टि से देवनागरी की श्रेष्ठता को स्वीकार नही कर लेते हैं।

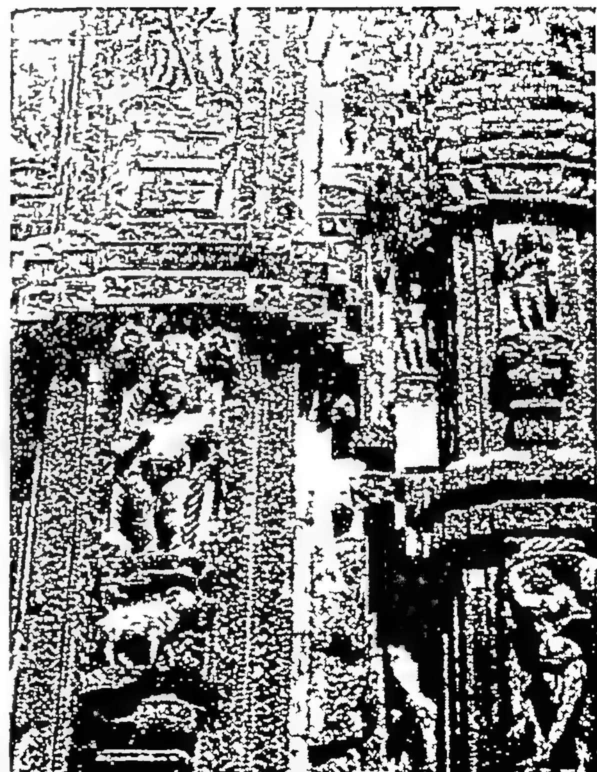
राष्ट्रभाषा के रूप के सबध में जो विचार गाधी जी के थे, प्राय वही राष्ट्रभाषा पर विचार करनेवाले अन्य नेताओ के भी थे। राष्ट्रभाषा के नाम के बारे में यद्यपि हिन्दी शब्द ही पसन्द किया जा रहा था फिर भी हिंदुस्तानी अग्राह्य नही था, किन्तु लिपि का प्रश्न अवश्य ही कुछ ऐसा था जिस पर गाधी जी के मत से सहमत होने के लिए लोग तैयार न थे।

राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार करनेवाली आदि सस्था हिंदी साहित्य-सम्मेलन और उसके प्राण श्री पुरुषोत्तमदास टडन उर्दू लिपि को देवनागरी की बराबरी का स्थान देकर भी प्रत्येक भारतीय को अनिवार्य रूप मे उसका सीखना अनावश्यक समझते थे।

वर्धा-स्थित राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, जो सन् १९३७ से दक्षिण भारत को छोडकर भारत के शेष हिंदीतर प्रदेशो मे राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार सफलता से कर रही थी, राष्ट्रभाषा के रूप के सबध में गाधी जी के मत से सहमत होते हुए भी मुख्यत देवनागरी में लिखी जानेवाली हिंदी भाषा का ही प्रचार करती रही। उसका मत था कि यदि कोई चाहे तो देवनागरी के साथ उर्दू लिपि भी सीख सकता है, परतु उर्दू लिपि का सीखना अनिवार्य नही बनाना चाहिए।

राष्ट्रभाषा सबधी बापू की कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए 'हिंदुस्तानी-प्रचार समिति'

भुवनेश्वर के [illegible] के कुछ नमूने



साथ मनुष्य की आँख, दिमाग और दिल को स्तब्ध कर देते है। कारुकार्यो के दो अर्थ है अर्थात् चित्र देखने से एक वात मालूम पडती है, लेकिन वास्तव में इसका एक अन्तर्निहित अर्थ है। वे दो प्रकार के है (१) प्राकृतिक, (२) पथानुयायी। मदिरो में अकित पत्र, लता, पद्म आदि अत्यत प्राकृतिक है। कोणार्क के पिष्ठ में हाथियो की शोभायात्रा प्रकृति का अनुकरण है।

सौन्दर्य-वृद्धि के लिए मदिरो में ज्यामिति चित्र और कई लताएँ अलकार के सदृश हैं। मुक्तेश्वर मदिर में ज्यामिति चित्र काफी है। सव पाग इस सौन्दर्य-वृद्धि में मदद करते है। मदिरो मे पार्श्वदेव, दिक्‌पति, और अष्टसखि मूर्तियाँ इनकी शोभा वढाती है। इनमें चारो ओर लता और ज्यामिति के चित्र है। साधारणत ये मूर्तियाँ मदिरो की पागो में दिखाई पडती हैं।

**पार्श्वदेवता**—मदिर की राह पाग की मूर्तियाँ पार्श्वदेवता है। सव मदिरों के पार्श्व-देवता समान नही है। शिव, विष्णु और सूर्यमदिर में विभिन्न पार्श्वदेवता है। शिवमदिरो के पीछे, दाहिने, और वायें यथाक्रम कार्त्तिकेय, गणेश और पार्वती है। भुवनेश्वर के लिंगराज मदिर में भी यह है। लिंगराज मदिर की गणेश, कार्त्तिकेय और पार्वती मूर्तियो में अत्यत सूक्ष्म कारुकार्य है (चित्र देखिए)। साधारणत गणेश मूर्तियो की शुण्ड दाहिनी ओर झुक रही है, लेकिन ओडिशा म्युजियम मे सरक्षित एक मूर्ति की शुण्ड वाई ओर झुकी है (चित्र देखिए)। विष्णु-मदिरो मे यथाक्रम नरसिंह, वामन, और कला के पीछे दाहिने और वायें पार्श्व देवता रूप में हैं। पुरी के जगन्नाथ मदिर में ऐसा ही है। कोणार्क के सूर्यमदिर के दाहिने, पीछे, और बाई ओर उदय सूर्य, मध्याह्न मूर्य, और अस्तगामी सूर्य की मूर्तियाँ रखी गई है। शाक्त मदिरो में यथा वैताल देउल में हरगौरी, दुर्गा और भैरवी मूर्तियाँ यथाक्रम पीछे, दाहिने और बायें पार्श्व-देवता रूप में है।

**अष्ट दिक्‌पाल**—मदिरो के वराडे के आठो ओर आठ दिक्‌पालो का स्थान है। ओडिशा के सव मदिरो मे, अग्निपुराण के वर्णनानुसार ये अष्ट दिक्‌पाल अपने वाहनो के साथ अपनी अपनी दिशा मे निम्नाकित रूप में हैं—

| दिशा | दिक्‌पाल | वाहन |
|---|---|---|
| १—पूर्व | इन्द्र | हस्ती |
| २—दक्षिण-पूर्व | अग्नि | छाग |
| ३—दक्षिण | यम | महिष |
| ४—दक्षिण-पश्चिम | निर्ऋत | मनुष्य |
| ५—पश्चिम | वरुण | मकर |
| ६—उत्तर | कुवेर | सप्तघर |
| ७—उत्तर-पश्चिम | वायु | हरिन |
| ८—उत्तर-पूर्व | महादेव | वृषभ |

मूर्तियो से मालूम पडता है कि चतुर्दश शताब्दी में ओडिशा के कुछ अशो मे कृष्ण वासुदेव की पूजा का प्रसार था। चैतन्य के आने से पहले ही ओडिशा मे वैष्णव धर्म का अधिक प्रसार था। यह इस मूर्ति से मालूम पडता है, (चित्र देखिए) लेकिन ये मूर्तियाँ कारुकार्य की दृष्टि से कोणार्क के कारु-कार्य से अधिक निम्न स्तर की हैं। इस विष्णुमूर्ति का मुख और नाक गोल हैं। इसमें मोटा कारुकार्य हुआ है। लेकिन कोणार्क की सूर्यमूर्ति मे अत्यत सूक्ष्म कारुकार्य है। वासुदेव कृष्ण-मूर्ति त्रिभगि रूप में खडी रहने के कारण सुन्दर दिखाई पडती है, लेकिन कारुकार्य निम्नकोटि का है। इस तरह धीरे-धीरे परिवर्तित काल में ओडिशा की कला की अधोगति हुई। ओडिशा मे जितनी मूर्तिकला दिखाई पडती है, उसमे से प्राय अधिकाश सप्त ताल मूर्तियाँ हैं। ओडिशा की मूर्तिकला और दूसरे चित्र अत्यत स्वाभाविक हैं। ओडिशा की कला और स्थापत्य का अन्त-र्निहित अर्थ है। हरएक मूर्ति गभीर रहस्य से परिपूर्ण और आदर्श स्थानीय है। ओडिशा कला और स्थापत्य अत्यत उत्कृष्ट स्तर के हैं, क्योकि इस देश मे कला का आदर और प्रसार शत-शत वर्षो से चला आ रहा है।



कि विषय-चिन्तन, विषयचिन्तनजनित आसक्ति और उग्र अभिलाष तथा अभिलाषपूर्ण अनुराग आदि विकार आत्मा को कभी वन्दी नही वना सकते।

उत्कल की पुरपल्लियो में अनेक छोटे-बडे मदिर है। इन मदिरो के निर्माण के बारे में अनुध्यान करने पर मालूम होता है कि ऐहिक और पारलौकिक कल्याणवाछा, मुक्ति-लाभ के लिए उद्योग, आयु, त्रिवर्ग की अभिवृद्धि की कामना आदि मन्दिर-निर्माण के कारण बने हैं। ईसा की १०वी-११वी शताब्दी में निर्मित एक मदिर के गात्र में खोदी प्रशस्तियो से मालूम पडता है कि लोगो की पापमोचन और मुक्ति की कामना से मन्दिरो के निर्माण की कल्पना मन में जागी है। लिखा है—

(१) श्रीमद्ब्रह्मेश्वरस्य प्रणतमलहृत स्पर्शतो मुक्तिदस्य (Brahmeshwar Temple Inscription J A S. B (1838) 557-562 (Old-Series)

(२) १२७८ ई० में निर्मित अनत वासुदेव-मदिर के अभिलेख से मालूम होता है कि धर्म की उन्नति तथा पुण्य और श्रेय प्राप्त के लिए मदिरो का निर्माण हुआ करता था।

"प्रासाद पुरुषोत्तमस्य सवल मैषापद वैष्णव,
गन्तु मगलपूर्णकुम्भशिरस श्रद्धाशिताचीकरत्।"

(३) मदिर-निर्माण-माहात्म्य-वामन पुराण

य कारयेन् मदिर माधवस्य पुण्यान् लोकान् स जयेच्छावतान् वै
दत्त्वारामान् पुष्पफलाभिपन्नान्, भोगान् भुक्ते कामत स्वर्गसस्थ।
पितामह्यपुरत कुलान्यष्टौ च यानि तु। तारयेदात्मना सार्द्धं विष्णोर्मन्दिरकारक।

वामन पुराण में लिखा है कि श्रीहरि का मदिर निर्माण करने से वैकुठ और तत्रत्य पवित्र और नित्य लोक जय कर सकते है, जो व्यक्ति फल-पुष्प-शोभित वाग अर्पण करते है वे स्वर्ग मे रहकर वहुत भोग कर सकते हैं, जो व्यक्ति विष्णुमदिर निर्माण करते है वे अपने को और वाप-दादो के आठो कुलो का परित्राण करते हैं। ऐसी ही उक्ति अग्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तर, स्कन्दपुराण और नृसिंहपुराण में है।

(४) भागवत मे उल्लेख है—

"धन अर्जिले धर्म करि, धर्मे प्रापत नरहरि" अर्थात् धन उपार्जन करके, उपार्जित धन से धर्म-कार्य करने पर आदमी को भगवत्प्राप्ति होती है। अर्थात् लोग मुक्ति पाते हैं—उनका पुनर्जन्म नहीं होता। और वह जरा-मरण-व्याधिजनित दुख नही भोगते।

**ओडिशा में मदिर-निर्माण के प्रत्नतात्त्विक प्रमाण**—भुवनेश्वर से थोडी दूरी पर उदयगिरि में खुदे खारवेल के अभिलेख में लिखा है कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पहले ओडिशा मे मदिर-निर्माण का काम शुरु हो गया था। इस अभिलेख में उल्लेख है कि खारवेल

कि विषय-चिन्तन, विषयचिन्तनजनित आसक्ति और उग्र अभिलाष तथा अभिलाषपूर्ण अनुराग आदि विकार आत्मा को कभी वन्दी नही वना सकते।

उत्कल की पुरपल्लियो में अनेक छोटे-बडे मदिर है। इन मदिरो के निर्माण के वारे में अनुध्यान करने पर मालूम होता है कि ऐहिक और पारलौकिक कल्याणवाछा, मुक्ति-लाभ के लिए उद्योग, आयु, त्रिवर्ग की अभिवृद्धि की कामना आदि मन्दिर-निर्माण के कारण बने हैं। ईसा की १०वी-११वी शताब्दी में निर्मित एक मदिर के गात्र में खोदी प्रशस्तियो से मालूम पडता है कि लोगो की पापमोचन और मुक्ति की कामना से मन्दिरो के निर्माण की कल्पना मन में जागी है। लिखा है—

(१) श्रीमद्ब्रह्मेश्वरस्य प्रणतमलहृत स्पर्शतो मुक्तिदस्य (Brahmeshwar Temple Inscription J A S. B (1838) 557-562 (Old-Series)

(२) १२७८ ई० में निर्मित अनत वासुदेव-मदिर के अभिलेख से मालूम होता है कि धर्म की उन्नति तथा पुण्य और श्रेय प्राप्त के लिए मदिरो का निर्माण हुआ करता था।

"प्रासाद पुरुषोत्तमस्य सबल सैषापद वैष्णव,
गन्तु मगलपूर्णकुम्भशिरस श्रद्धाशिताचीकरत्।"

(३) मदिर-निर्माण-माहात्म्य-वामन पुराण

य कारयेन् मदिर माधवस्य पुण्यान् लोकान् स जयेच्छावतान् वै
दत्त्वारामान् पुष्पफलाभिपन्नान्, भोगान् भुक्ते कामत स्वर्गसस्थ।
पितामह्यपुरत कुलान्यष्टौ च यानि तु। तारयेदातमना सार्द्धं विष्णोर्मन्दिरकारक।

वामन पुराण में लिखा है कि श्रीहरि का मदिर निर्माण करने से वैकुठ और तत्रत्य पवित्र और नित्य लोक जय कर सकते है, जो व्यक्ति फल-पुष्प-शोभित वाग अर्पण करते है वे स्वर्ग मे रहकर वहुत भोग कर सकते हैं, जो व्यक्ति विष्णुमदिर निर्माण करते हैं वे अपने को और वाप-दादो के आठो कुलो का परित्राण करते है। ऐसी ही उक्ति अग्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तर, स्कन्दपुराण और नृसिंहपुराण में है।

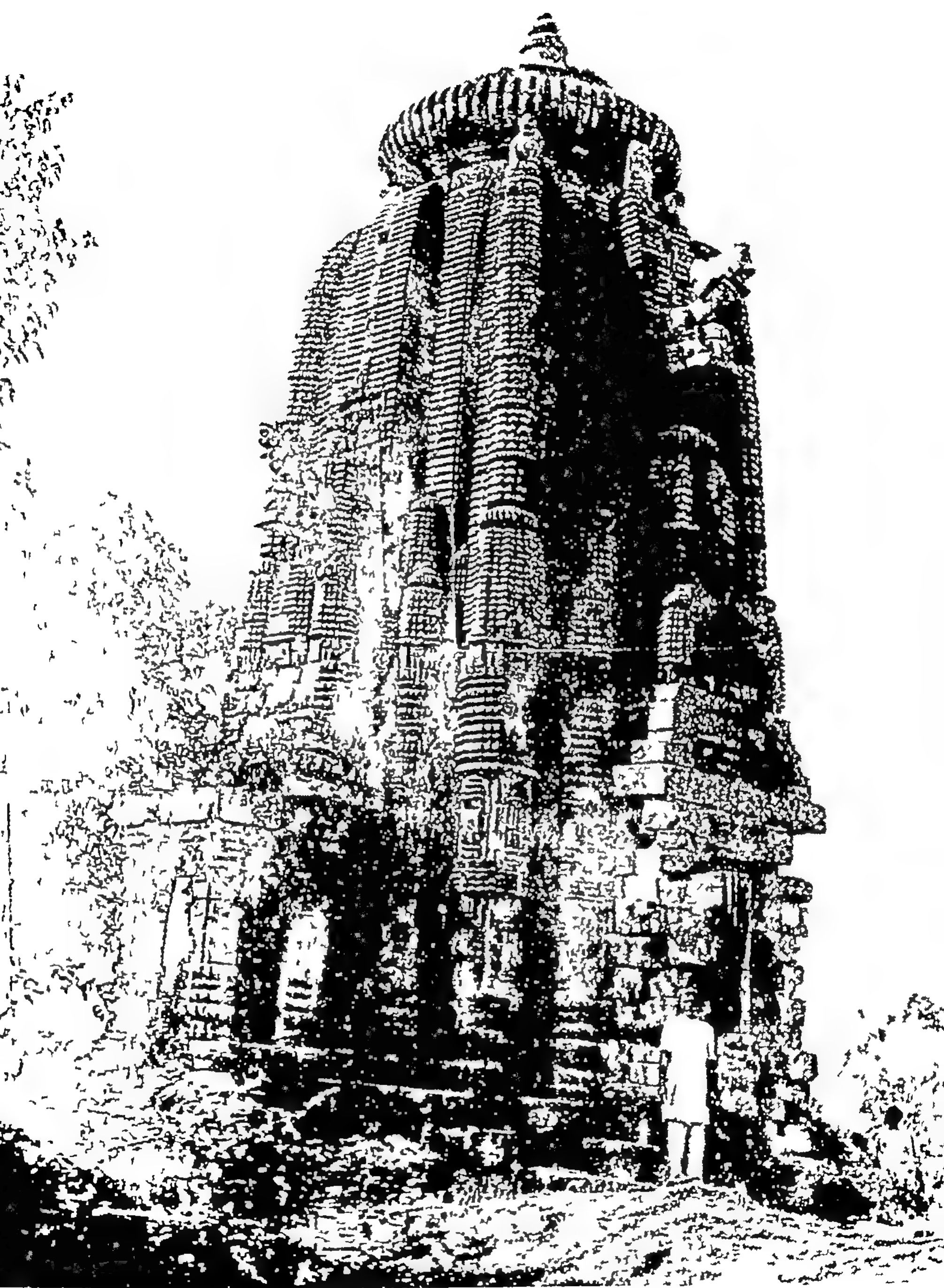
(४) भागवत मे उल्लेख है—

"धन अर्जिले धर्म करि, धर्मे प्रापत नरहरि" अर्थात् धन उपार्जन करके, उपार्जित धन से धर्म-कार्य करने पर आदमी को भगवत्प्राप्ति होती है। अर्थात् लोग मुक्ति पाते है—उनका पुनर्जन्म नही होता। और वह जरा-मरण-व्याधिजनित दुख नही भोगते।

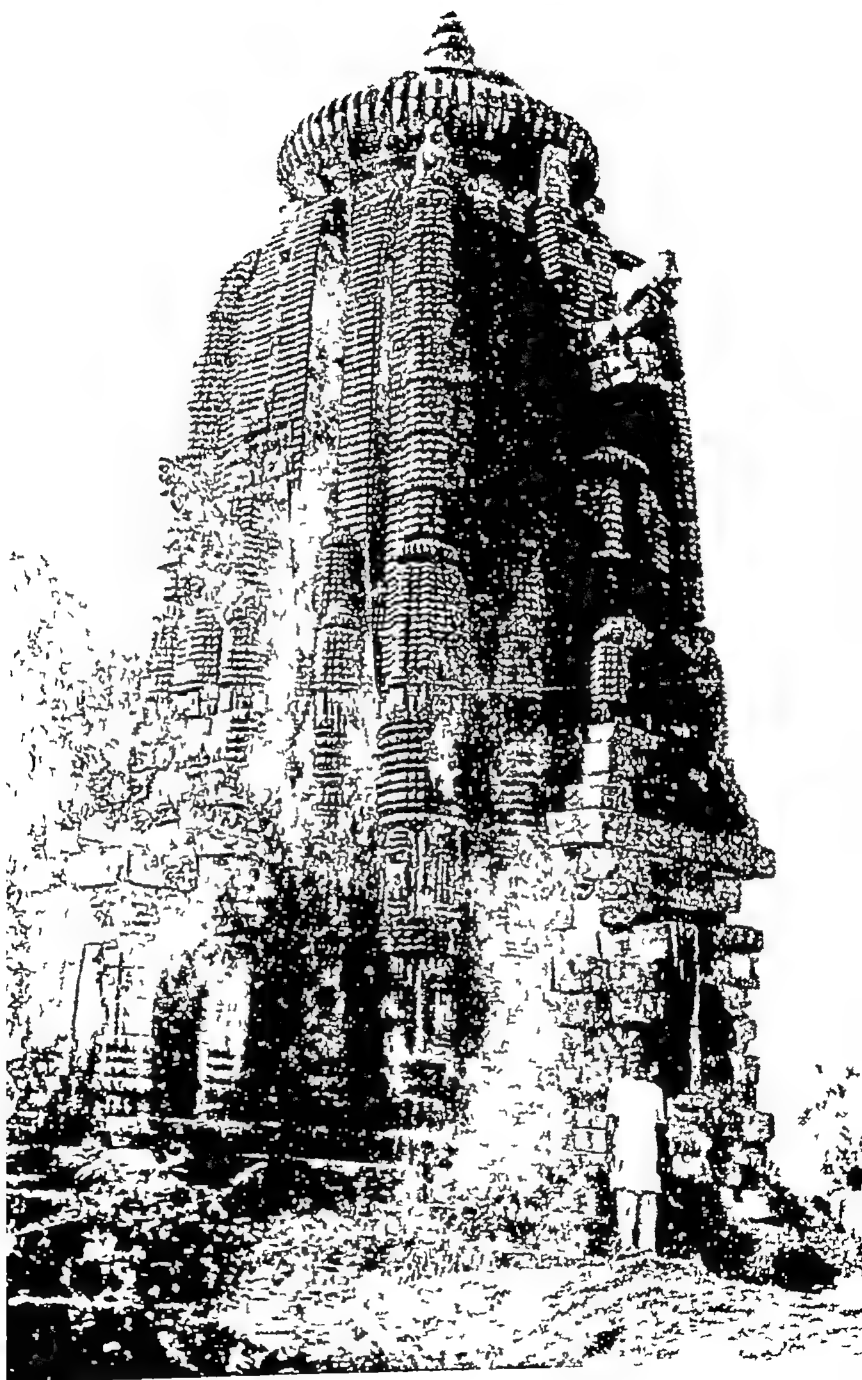
**ओडिशा में मदिर-निर्माण के प्रत्नतात्त्विक प्रमाण**—भुवनेश्वर से थोडी दूरी पर उदयगिरि में खुदे खारवेल के अभिलेख मे लिखा है कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पहले ओडिशा मे मदिर-निर्माण का काम शुरू हो गया था। इस अभिलेख में उल्लेख है कि खारवेल



श्री गुण्डिचा मन्दिर, पुरी



गोढा के निकटवर्त्ती काकुडिआ मन्दिर



गोरा के निकटवर्ती काकुड़िआ मन्दिर

"अगर हिंदी को राष्ट्रभाषा बनना है तो लिपि नागरी ही होगी। अगर उर्दू को बनना है, तो लिपि उर्दू ही होगी। अगर हिंदी-उर्दू के सगम के जरिये हिंदुस्तानी को राष्ट्र-भाषा बनना है, तो दोनो लिपियाँ जरूरी है।"

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि परिस्थितियो के बदल जाने पर भी बापू के राष्ट्रभाषा-विषयक विचारो मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ था। किंतु यह भी ठीक है कि इस अनोखे अन्वेषक ने कभी अपने विचार दूसरो पर नही लादे। कदाचित् इसीलिए उन्होने राष्ट्रभाषा और उसकी लिपि के प्रश्न को समय पर छोड दिया था। उन्होने इसीलिए केवल इतना ही कहा कि 'अगर हिंदी को राष्ट्रभाषा बनना है तो लिपि देवनागरी ही होगी अगर उर्दू को बनना है तो लिपि उर्दू ही होगी। अगर हिंदी-उर्दू के सगम के जरिये हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनना है, तो दोनो लिपियाँ जरूरी है।'

भारत की राष्ट्रभाषा और उसकी राष्ट्रलिपि क्या हो, इसका अन्तिम निर्णय सविधान-परिषद् ने १४ सितम्बर १९४९ को किया। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय के सबध मे अन्तिम निर्णय करने का अधिकार सविधान-परिषद् को ही था।

राजभाषा और राजलिपि के सबध में भारतीय सविधान में जो धाराएँ स्वीकार की गई, वे इस प्रकार है—

१—सघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी होगी।

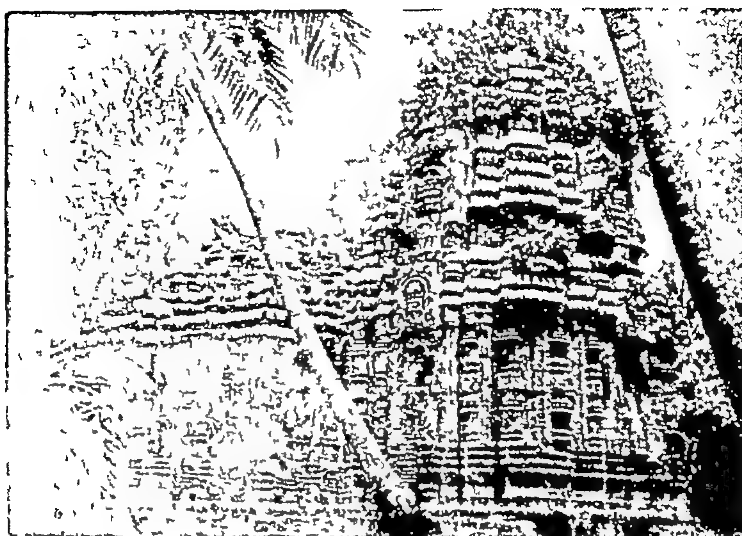
२—किन्तु सविधान के प्रारभ से १५ वर्ष की कालावधि तक राजकीय प्रयोजनो के लिए अग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी।

३—१५ वर्ष के पश्चात् भी ससद किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए अग्रेजी भाषा का प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी।

४—सविधान के प्रारभ से ५ वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति एक आयोग नियुक्त करेंगे जो हिंदी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग और अग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निबन्धनो के विषय में सिफारिशें करेगा। इस तरह का आयोग सविधान के प्रारभ से दस वर्ष की समाप्ति पर पुन इसी उद्देश्य के लिए नियुक्त किया जायेगा।

लोगो का विश्वास है कि यदि गाधी जी आज जीवित होते तो वे राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के सबध में किये गये सविधान परिषद के निर्णय को उसी प्रकार स्वीकार कर लेते, जिस प्रकार उन्होने देश के नेताओ के अन्य निर्णयो को स्वीकार किया था।

जो हो, यहाँ इतना तो नि सकोच कहा ही जा सकता है कि राष्ट्रभाषा के महत्त्व और उसकी आवश्यकता को जितनी गहराई के साथ गाधी जी ने समझा था, उतना शायद ही किसी ने समझा होगा। भारत के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करते ही गाधी जी ने हृदय की सारी



एरवङ्ग मन्दिर ( गोप, पुरी )



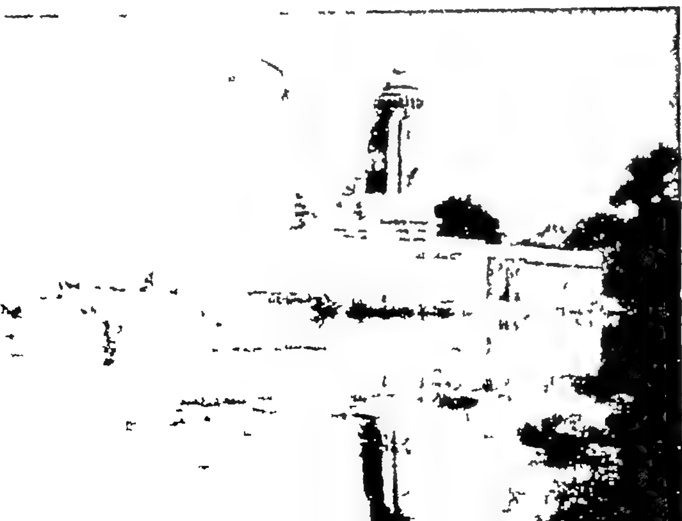




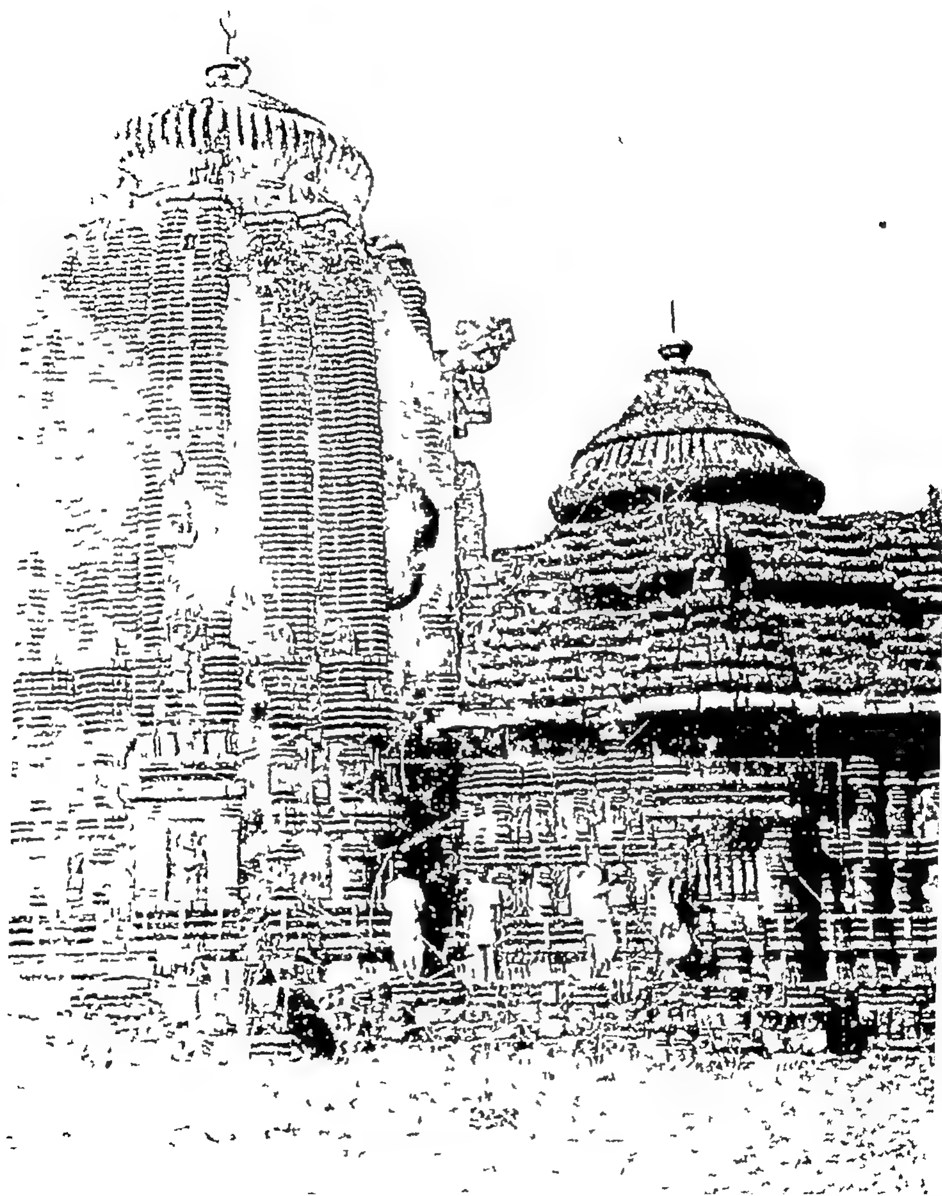
( ऊपर ) श्री वैद्यनाथ मन्दिर—सोनपुर, बलांगीर

( नीचे बायीं ओर ) श्री झखारुआ वैद्यनाथ—माणत्री, मयूरभञ्ज

( नीचे दाहिनी ओर ) श्री लङ्गलेश्वर मन्दिर—बालेश्वर







जाता है कि याजपुर का माधवेश्वर मदिर भौमकर राजत्व-काल मे निर्मित हुआ था। यह मदिर भी मोहिनी मदिर के अनुरूप है।

मदिर के वहिर्भाग के कारुकार्य और भास्कर्य की पर्यालोचना करने पर दो प्रधान विषयो की उपलब्धि होती है। एक है कारुकार्य में धर्म मतवाद की विरोधभावशून्यता और दूसरा है शैव मतवाद की यथार्थता प्रतिपादन के लिए शिव-पुराणोक्त उपाख्यानो की अवतारणा। स्वर्ण-जालेश्वर मदिर प्रथम श्रेणी का शिवमदिर है। शिवमदिर होने पर भी इसमें रामचद्र के वनवास-सबन्धी अनेक पौराणिक दृश्य खोदे गये हैं। परशुरामेश्वर और भरतेश्वर मदिर द्वितीय श्रेणी के अन्तर्भुक्त है। क्योकि मदिर-गात्र मे खोदे हुए कारुकार्य शिव के विवाह, रावण द्वारा कैलास पर्वत उत्तोलन और ताण्डव नृत्य आदि पौराणिक उपाख्यान प्रकट करते है। उपरोक्त धर्म-सम्बन्धी पौराणिक चित्रो से साधारण रूप में अनुमान किया जाता है कि, धर्म की अभिवृद्धि के लिए ओडिशा में निर्मित मदिर केवल धर्म का प्रतीक और समाज के धर्मानुप्राणित लोगो के लिए सर्वतोभावेन उद्दिष्ट हैं। लेकिन खोदित चित्र के पुखानुपुख अनुशीलन करने से मालूम होता है कि अनेक सामाजिक, काव्यव्यजक, अदृष्टपूर्व और अश्रुतपूर्व चित्र चित्ताकर्षक रूप में समाविष्ट होकर सामाजिक जीवन के साथ धर्म का अविच्छेद्य सम्बन्ध प्रकाश करते है। काम-अभिव्यजक सभी चित्र पार्थिव जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का तात्पर्य प्रकाश करते हैं, क्योकि पुरुष और स्त्री स्थूलत एक हैं। दोनो की आत्मा एक है और दोनो एक दूसरे के परिपूरक है। मदिर-गात्र में, भौमकर युग में, काम-अभिव्यजक चित्र परवर्ती युग में बने हुए मदिरो के चित्रो की अपेक्षा कम है, क्योकि उस युग में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से अर्थ, धर्मकार्य को विशेष रूप में दृष्टि दी गई थी। तत्कालीन समाज मे "यत्रास्ति भोग न च तत्र मोक्ष , यत्रास्ति मोक्ष न च तत्र भोग" (निरुत्तर तत्र) वौद्ध सिद्धान्त जोरदार था। इस भौमकर युग में रत्नगिरि, ललितगिरि, उदयगिरि और दूसरे ग्रामो में वौद्ध-विग्रहो की पूजा विशेष रूप में प्रचलित हैं। अत अनेक प्रत्नतात्त्विक प्रमाण दृष्टिगोचर होते है।

उपरोक्त सभी प्रमाणो से जान पडता है कि भौमकर युग में निर्मित मदिरो के विशेषत्व ये हैं कि (१) मदिर की विशाल उँचाई नही है। (२) मदिर के वहिर्भाग के चार कोण ऊपर को तिर्यक् और स्पष्ट रूप मे प्रतीयमान हैं। (३) मदिर-गात्र में स्थापत्य विद्या के क्रम-विकास में विभिन्न श्रेणी-पद्धति की उपस्थापना है। (४) मदिर-गात्र की पट्टभूमिका में पौराणिक उपाख्यान के साथ सासारिक जीवन के सकेतवाही चित्रो की अवतारणा, (५) आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक सुख के सकेत प्रदान में "अहकार, वल, दर्प, काम, क्रोध, परिग्रहम्। विमुच्य निर्म्मम शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते" का प्रचार करता है।

भौमकर युग के वाद सोमवशी राजत्वकाल की कीर्ति और सस्कृति की फल्गु धारा ने ओडिशा को परिप्लावित किया था। इस वश के राजा धर्मकीर्ति-प्रतिष्ठापक थे। उनके राजत्व ने ओडिशा में मदिर-गठन शैली, मदिर की शोभा के सम्पादक भास्कर्य और कारुकार्य पुरातन मदिरो मे अधिक प्रभावशाली और नयन-प्रीतिकर हो उठे थे। देव-देवियो को केन्द्र वनाकर

शताब्दी या इसके पूर्व के है। इस सिद्धान्त से भी मालूम होता है कि मदिर गात्र में सामाजिक और धर्म-सक्रान्त चित्र ६ठी शताब्दी से शुरू हुए थे। जगमोहन मदिर ओडिशा में वहुत है, केवल इस दृष्टि से समय निर्धारण करना उचित नही है। परन्तु मदिर के शिलालेखो से मालूम होता है कि सोमवशी राजाओ के राज्यकाल में जगमोहन को नाट्यशाला के रूप में परिगणित किया गया था। इतना होते हुए भी ओडिशा के मदिर-निर्माण में पहले जगमोहन के अतिरिक्त गर्भगृह, वाद में जगमोहन के साथ गर्भगृह, इसके वाद गर्भगृह, जगमोहन, नाट्यमदिर और भोगमडप दिखाई पडते है। कोणार्क मदिर में भोगमडप नही है। अनत वासुदेव मदिर में भोगमडप है। लिंगराज और पुरी मदिर में भोगमडप और नाट्य-मदिर परवर्ती काल में सयुक्त हुए हैं। उपरोक्त प्रमाणो से प्रतिपादित होता है कि गर्भगृह, जगमोहन, नाट्यमदिर और भोगमडप का एकत्र समावेश मदिर-निर्माण का सटीक समय निर्धारण नही करते।

**मदिर और धर्म**—ओडिशा में निर्मित मदिरो का पर्यवेक्षण करने पर मालूम होता है कि ओडिशा में प्रचलित धर्म का क्रम-विकास किस प्रकार हुआ है। इन मदिरों में पूजित और खुदी हुई सभी मूर्तियाँ प्रचलित धर्म को एक सुस्पष्ट छवि प्रदान करती है।

**षष्ठ शताब्दी**—भरतेश्वर, लक्ष्मणेश्वर और शत्रुघ्नेश्वर ये तीनो शिवमदिर हैं। इन मदिरो के गात्र में शिवविवाह, नटराज का ताडव नृत्य, गधर्व-गधर्वी और सामाजिक जीवन के चित्र अकित है। इन खोदे हुए चित्रो से मालूम होता है कि पुराणचर्या और शिवपूजा, नारद, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओ की अर्चना उस समय के समाज मे प्रचलित थी। इन मदिरो पर बौद्ध धर्म का कोई प्रभाव नही पडा है।

**सातवीं शताब्दी**—परशुरामेश्वर एक प्राचीन मदिर है। ऐतिहासिक लोग मानते है कि इसका निर्माण-काल ७वी शताब्दी है। मदिर-गात्र में खोदी हुई मूर्तियो से मालूम होता है कि उस समय मे शिव-पार्वती, कार्त्तिकेय, गणेश, महिषमर्दिनी दुर्गा की पूजा विशेष रूप में प्रचलित थी। वैष्णव धर्म के प्रति लोगों का अनुराग परशुरामेश्वर मदिर में खोदी हुई विष्णु की वराह अवतार-मूर्ति से मालूम पडता है। उपरोक्त प्रमाणो से दुर्गा-पूजा, शिव-पूजा, और विष्णु-पूजा का एकत्र प्रचलन प्रतिपादित है। हिन्दू धर्म मे सप्तमातृका अर्थात् ब्राह्मी, कौमारी, वैष्णवी, इन्द्राणी आदि की पूजा वहुत दिनो से प्रचलित है। इन सप्तमातृकाओ की पूजा ७वी शताब्दी में विशेष रूप से प्रचलित थी। इसका प्रमाण परशुरामेश्वर मदिर-गात्र मे खोदे हुए सप्तमातृका-विग्रहो से मालूम पडता है। ओडिशा मे लक्ष्मी-पूजा प्रत्येक घर में प्रचलित है। पुराण से मालूम होता है कि लक्ष्मीपूजा मुद्दत से होती थी। प्रत्नतात्त्विक प्रमाण से मालूम होता है कि ओडिशा में लक्ष्मीपूजा ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से प्रचलित है। इसका प्रमाण खडगिरि की गुफा में खोदी गई लक्ष्मी की मूर्ति है। पहली शताब्दी से लेकर सातवी शताब्दी के बीच में निर्मित मदिरो के भग्नावशेष नही मिलते, फिर भी परशुरामेश्वर मदिर मे खोदी गई लक्ष्मी की मूर्ति लक्ष्मीपूजा का आभास देती है। सिद्धिदाता गणपति, और कार्त्तिकेय की पूजा प्रचलित होने की वात परशुरामेश्वर मदिर से मालूम होती है। इसी तरह महिषमर्दिनी दुर्गा की पूजा से ही दशहरा पर्व प्रचलित होने की वात

मालूम होता है कि इस सुदीर्घ काल मे ओडिशा में देव-देवियो को केन्द्र बना कर व्यापक रूप में धर्म का प्रसार हुआ था। देव-देवियो की पूजा मे गोपीनाथ, मत्स्य, कूर्म और विष्णु का नरसिंह अवतार, त्रिविक्रम, राम-लक्ष्मण-सीता, अनन्त, बलभद्र, सुभद्रा, उमा-महेश्वर, लक्ष्मी-नारायण, भूदेवी, श्रीदेवी, मरीचि, इन्द्र और ब्रह्मा के विग्रह विशेष रूप में परिदृष्ट होते हैं। इन देव-देवियो की पूजा से मालूम होता है कि उस समय के समाज में विभिन्न मतवादो के बीच किसी प्रकार का विरोध भाव नही था, बल्कि समूह कल्याण के लिए उद्यम हो रहा था। उपरोक्त सिद्धान्त का प्रमाण है पृथ्वी-प्रसिद्ध कोणार्क का मदिर। इस मदिर-गात्र में नवग्रह, रामसीता, महिषमर्दिनी दुर्गा, जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा, सुदर्शन चक्र, त्रिविक्रम, नृसिह, कृष्ण, छायादेवी, त्रिमूर्ति, अष्टदिक्पाल और लक्ष्मी आदि मूर्तियाँ हैं। उपरोक्त कारणो से मालूम होता है कि कोणार्क मदिर ओडिशा में प्रचलित सर्व धर्म-मत-वाद का परिचायक और कला-भास्कर्य का निदर्शन-स्वरूप है। इसकी कमनीय कला और भास्कर्य पृथ्वी-विख्यात है। मदिर-गात्र में हाथियो का अपूर्व समावेश, बदर, जिराफ, हिरन आदि वन्य जानवरो की प्रतिकृति, बेलबूटो का सूक्ष्म विन्यास, यौवनोन्मता रमणियो का विभिन्न प्रकार का यन्त्रवादन, असीम भावो में नृत्यरता ललनाओ की विचित्र भगिमा, विभिन्न बध-समन्वित मिथुन-दपतियो का मन को मोह लेनेवाला सज्जीकरण, सैन्यो की युद्धयात्रा और शिष्यो को गुरु के उपदेश देने आदि का दृश्य अत्यत चित्ताकर्षक तथा नयन-प्रीतिकर है। तेरहवी शताब्दी के बीच में ओडिशा पर मुसलमानो का आक्रमण शुरू हुआ और मदिर-निर्माण बद हो गया, साथ ही साथ सूक्ष्म कला का भी पतन हुआ।



ब्राह्मणयात्रियो को आशीर्वाद करने की प्रथा आवहमान काल से प्रचलित होती चली आती है—

य शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिन
वौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटव कर्तेति नैयायिका ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमासका
सोऽय वो विदधातु वाछितफल त्रैलोक्यनाथो हरि ।।

इस श्लोक से मालूम होता है कि नवम शताब्दी में शैव, वेदान्ती, बौद्ध, न्याय, जैन और मीमासादर्शन मतो का समन्वय हुआ था। अब यह सवाल किया जा सकता है कि ओडिशा में यह मत-समन्वय कब प्रचलित हुआ था। चीनी परिव्राजक ह्वुएनसाग ने उत्कल के विवरण में लिखा है

विभिन्न सम्प्रदायो के लोग मदिर में इकट्ठा होकर धर्मालोचना करते है। मयूरभज जिले के खिचिग, बालेश्वर जिले के अयोध्या, पुरी जिले के बालेश्वर, आदि ओडिशा के हरएक धर्म-केन्द्र से वैष्णव, बौद्ध, जैन, शैव, तान्त्रिक, आदि नवम, और दशम शताब्दी की देव-देवी-मूर्तियाँ एकत्र आविष्कृत होने से हुएनसाग की उक्ति की सत्यता समर्पित होती है। ईसा पूर्व तीन शताब्दी के अशोक और खारवेल के राज्य-काल में धउली और हाथीगुफा शिला-लिपियो से प्रमाणित किया जा सकता है कि उस समय ओडिशा में विभिन्न सम्प्रदाय के लोगो में सख्य प्रतिष्ठित था। श्रमणो से धर्म-गल्प सुनने के लिए देवताओ की विमान-यात्रा का उत्सव करने और ब्राह्मणो को सम्मान-प्रदर्शन के लिए अशोक ने अपनी शिलालिपियो में आदेश दिये हैं। वे श्रमण या तो बौद्ध थे या जैन थे। जो भी हो, लेकिन शिलालिपियो से मालूम होता है कि अशोक में साम्प्रदायिक भेद-भ व नही था। उन्होने मयूर-हत्या निषेध करके अपनी पाकशाला को मोर-हत्या-रहित करने के लिए भी प्रतिश्रुति दी थी। ओडिशा के लोगो के लिए ऐसे त्याग व्रत की प्रतिश्रुति देने का क्या प्रयोजन उन्होने अनुभव किया था? मोर कुमार कार्त्तिकेय का वाहन है। शायद इस देश के कुमार-धर्मावलम्वी मोर की भक्ति करते थे। दूसरे सम्प्रदाय द्वारा मोर की हत्या होने पर कुमार-सम्प्रदाय का नाराज होना स्वाभाविक है। इसलिए मोर की हत्या का निषेध करके परस्पर-विरोधी दो सप्रदायो के विवाद को शान्त किया होगा। खारवेल की शिलालिपि से मालूम होता है कि प्राचीनकाल से कुमार-सम्प्रदाय भुवनेश्वर में प्रतिष्ठित था। खारवेल ने कुमारखेल खेला है (कीडिता कुमारक्रीडा का)। कुमारसम्भव में (१४वे सर्ग) कुमार के मोर-परिवेष्टित होकर क्रीडा करने का वर्णन है। फिर शिलालिपियो मे उदयगिरि को कुमारी पर्वत और खण्डगिरि को कुमार पर्वत कहा गया है। कुमार के दूसरे नाम स्कन्द और भुवनेश्वर है। अनुमान किया जाता है कि स्कन्दगिरि ने रूपान्तरित होकर खण्डगिरि नाम धारण किया है। खारवेल चेत-वशीय होने के कारण नृत्य-गीत में निपुण थे। चित्ररथ वश परवर्ती युग में चेत-चेति या चेदि नाम से अभिहित हुआ था। चित्र-रथ महाभारत

पृथूदकमिति ख्यात कार्त्तिकेयस्य वै नृप।
तत्राभिषेक कुर्वीत पितृदेवार्च्चने रत ।।
पुण्यमाहु कुरुक्षेत्र कुरुक्षेत्रा सरस्वतीम्।
सरस्वत्याश्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथूदकम्।।
—(म० भा० वन० ८३ ४१, ४४)

यह प्रमाण मिलता है कि खारवेल जिस कार्त्तिकेय या कुमार सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त थे, पृथूदक उसी कार्त्तिकेय का विख्यात तीर्थ था। कार्त्तिक मास में अनेक यात्री पुरी जाते हैं। वहाँ वे सब उस महीने की अमावस में पूर्वजो को दीपदान करते हैं। आज भी पुरी को क्षेत्र कहते हैं, इसलिए पहले इसे कुरुक्षेत्र कहना असम्भव नही है। आज भी जगन्नाथ के साथ सरस्वती की पूजा होती है। ओडीशा में ऐसा कोई दूसरा स्थान नही है जिससे कलिङ्ग का महाभारतोक्त पृथूदक चिह्नित हो सके।

इस पुरी में खारवेल के सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता चित्ररथ की जलक्रीडा के निदर्शन-स्वरूप चन्दन्यात्रा अनुष्ठित होती है और रेणुका के साथ चित्ररथ के व्यभिचार के प्रतीक स्वरूप रथ-चक्र में अश्व सयोग किया जाता है। स्कन्द पुराण के अनुसार मालव के राजा इन्द्रद्युम्न पुरी में आकर वहाँ मूर्तियो और मदिरो की प्रतिष्ठा के लिए स्वर्ग से ब्रह्मा या ब्राह्मणो को आमत्रित करने गये थे। बहुत काल के पश्चात् उन्हें अपने साथ लाकर उन्होने मदिर की प्रतिष्ठा की। धउली-शिलालिपि में अशोक बोले हैं कि तोषली के शासन-परिचालन का तत्त्वावधान करने के लिए प्रतिवर्ष राजपुत्र उज्जयिनी से आयेंगे। उज्जयिनी मालव की राजधानी थी, इसलिए यह सम्भव है कि खारवेल मालव से आये होगे।

जायसवाल ने उद्धृत दूसरी पक्ति का "केतु भदतितमरदेह सघात" नि सदेह पाठ उद्धार किया था। लेकिन पाठ की यथार्थता प्रतिपादन करने में अक्षम होने के कारण इसे दूसरी बार बदला। यह उक्त है कि महाभारत में (भीष्म० ५४ अ०) केतुमान ने कलिङ्ग सैन्यवाहिनी में मिलकर चेदियो के साथ युद्ध किया था, इसलिए उन्होने केतुभद्र पाठ माना था। ये केतुभद्र कौन हैं? वे अनन्त नाग या बलभद्र हैं। उन्हें रामायण में "पन्नग धरणीधरम्" या वासुकी नाथ और तालध्वज कहा गया है। (४, ४०, ५१, ७३)। केतुग्रह सर्वाकार है। यहाँ इसके बारे में विशेष आलोचना का अवकाश नही है। सिर्फ इतना कहना ठीक होगा कि रामायण में सुभद्रा को उदय पर्वत और जगन्नाथ को त्रिविक्रम कहा गया है। त्रिविक्रम का दूसरा नाम वामन है। अनेक पुराणो में जगन्नाथ का नाम वामन है। खारवेल की शिलालिपि में उदयगिरि को कुमारी पर्वत कहे जाने से रामायण में उल्लखित सुभद्रा के उदय पर्वत नाम को तात्रिको की कुमारी-पूजा अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है। दूसरे कारण दर्शाने के लिए यहाँ स्थान नही है। महाभारत के अनुसार तारकासुर को मारने के लिए सब देवता कुमार कार्त्तिकेय के अभिषेक-उत्सव में सम्मिलित हुए थे। उस वक्त विभिन्न सप्रदायो का समन्वय होकर वासुदेव सप्रदाय प्रतिष्ठित हुआ होगा।

रामायण की प्राचीन टीका के अनुसार 'सर्वभूतेषु वासात् वसु, स एव देव' यह अर्थ

भी शून्यवादी हैं। शून्यवाद विश्व सहिता में भी है। शून्यवाद से अशिक्षित जन साधारण में चरित्र-दोष पैदा न होने देने के विचार इसे जैन, महायान बौद्ध आदि ने मूर्ति के प्रचलन द्वारा ढक दिया है, और ब्राह्मणो ने भी इस मूर्तिपूजा को ग्रहण कर लिया। फिर भी ओडीशा में शून्यवाद है।

जैसे ईसाई जगत् बाइबिल को ईश्वर-मुख-नि सृत वाणी-रूप में मानता है, उसी तरह ओडीशा में ब्राह्मणेतर जनता जगन्नाथ दास के ओडिया भाग १ को मानती है। जगन्नाथ दास चैतन्य देव के समसामयिक षोडश शताब्दी के कवि हैं। सस्कृत भाषा अच्छी तरह जानने पर भी उन्होने सस्कृत भागवत का आक्षरिक अनुवाद न करके अध्यात्म रामायण, योगवाशिष्ठ, रामायण आदि की तरह अलग भागवत की विषय वस्तु का वर्णन किया है। उनके सम्प्रदाय के लोग इसका जैसा अर्थ करते हैं, वह शब्दार्थ के बहिर्भूत है। उदाहरण-स्वरूप यहाँ उल्लेख किया जा सकता है कि उनके ११श स्कन्ध के निम्नोद्धृत पद में जीव शब्द का अर्थ शुक्र के रूप में किया जाता है—

जीव रे दया शुद्धचित्ते। महा गहन ए जगते
(१६श अ ७८)

उपरोक्त अर्थ के समर्थन के लिए भागवत के उक्त स्कन्ध का निम्नाकित पद उद्धृत किया जा सकता है—'केवल यज्ञे पशुवध। अन्यत्र वधटि प्रमाद' (११श उ० ६२)।

इसका अर्थ सिर्फ सतान गर्भ-स्थिति होने के उपयुक्त काल को छोड शुक्र-क्षारण निषिद्ध है। याज्ञवल्क्य ने भी शुक्रधारण को ब्रह्मचर्य कहा है —

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्ष्यते॥

जगन्नाथ दास ने फिर अपने रचित तुलाभिणा में लिखा है—

महाशून्य ये ज्योतिरूप। ज्योतिरु जात ठुल रूप।
ठुल रुअर्द्ध मात्रा कला। मात्रा र ओकार जन्मिला॥

यहाँ ठुल का अर्थ विन्दु और ओकार का अर्थ नाद है। यह तत्र मत्र के साथ समान है। शारदातिलक में कहा गया है—

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नाद नादात् विन्दुसमुद्भव॥

ओडिया भागवत मत के अनुसार नाद की उत्पत्ति विन्दु से हुई है। लेकिन शारदा-तिलक के अनुसार विन्दु की उत्पत्ति नाद से हुई है। ओडिया मत अनुभूति पर प्रतिष्ठित है।

के ओडीशा स्टेट म्यूजियम में सरक्षित है। वहाँ से ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी की एक शिलालिपि भी आविष्कृत हुई है। उस लिपि में लिखा है कि बुद्धदेव ने वहाँ जन्म ग्रहण किया था। अब यह शिलालिपि कलकत्ता विश्वविद्यालय-म्यूजियम में सरक्षित है। भुवनेश्वर में कटक जिले से आविष्कृत अष्टम शताब्दी की बोधिसत्व मूर्ति भी म्यूजियम में सग्रहीत है।

अश्वघोष के सुन्दरानन्द काव्य के अनुसार बुद्धदेव ने बुद्धत्व लाभ करने के पश्चात् सब से पहले उत्कल के तपससु और भ्रल्लिक को अपने धर्म में दीक्षित किया था और उन्हें नाखून और केश दिये थे। रामायण के अनुसार राम ने दण्डकारण्य में वैखानस और बालखिल्य ऋषियो को देखा था। (आरण्य का षष्ठ स०, २ श्लोक) टीका में लिखा है—

"ये नखा ते वैखानसा ये वाला ते बालखिल्या इति श्रुते । प्रजापतेर्नखलोमजा ।"

इसका क्या तात्पर्य ? नाखून और केश जड पदार्थ है। इन्हें काटते वक्त मनुष्य यन्त्रणा अनुभव नही करता। ये सब बढते है। इससे यह अनुमान किया जाय कि इनमें जीवन है। इसके साथ दूसरी ऐतिहासिक किंवदन्ती की आलोचना करनी चाहिए। कैकेयी ने राम को वन में भेज कर भरत को राजा बनाने के लिए वर माँगते हुए कहा है—

स्मर राजन् पुरावृत्त तस्मिन्देवासुरे रणे।
तत्र त्वा च्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा।।
तत्र चापि मया देव यस्त्व समभिरक्षित।
जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ।।
—(२ ११, १८-१९)

देवासुर-युद्ध मे शत्रु ने दशरथ को जीवितमन्तरा या प्राण विना च्यावत् अर्थात् प्रच्युत वीर्य बनाया था। टीका में शत्रु का अर्थ शबर दिया गया है। ओडिशा में किंवदन्ती है कि युद्धक्षेत्र मे दशरथ के रथ के पहिये की एक कील निकल गई थी। तब कैकेयी ने अपनी एक अँगुली को कील सदृश लगा कर रथ को चलनशील किया था। बौद्ध साहित्य के अनुसार बुद्धदेव ने कहा है कि रथ के किसी भी एक अग की हानि होने से रथ अचल हो जाता है। शरीर भी आत्मा की स्थिति के विना असम्भव है। आत्मा का विशेष प्रयोजन स्वीकार करना चाहिए।

उद्धृत श्लोक से मालूम होता है कि शबर जीवित या आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करके शरीरशक्ति को स्वीकार नही करता था। अनुमान किया जाता है कि कैकेयी या मोर के समान नृत्य-गीत करनेवाले (कैकेय), केका, कुमार मोरपख की विचित्रता में एकत्व रहने का उदाहरण दिखाकर शरीर और आत्मा का एकत्व प्रतिपादन किया है। यह कब की बात है ? इन्द्र का सिर पर मोरपख पहनना, अहि या सर्प को मार डालना, शम्बर का ९९ नगरी ध्वस करना आदि बातें ऋग् वेद में वर्णित हैं। रामायण में उक्त है कि वेदवती रावण के अत्याचार से रक्षा पाने के लिए आत्महत्या करने के वक्त इन्द्र मोर हुए थे—

# उत्कल की भौगोलिक रूपरेखा

## श्री वृन्दावनचन्द्र आचार्य

किसी देश के विषय में समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के पूर्व उसके भौगोलिक तथ्यो की जानकारी आवश्यक होती है। किंतु देश की स्थितियो, पर्वतो, नदियो, घाटो और नगरो आदि की एक सावारण तालिका प्रस्तुत करना ही भूगोल का वास्तविक प्रयोजन नही है। मनुष्य किस प्रकार अपने वातावरण की प्राकृतिक परिस्थितियो से स्वय प्रभावित होता है और अपनी वुद्धि-वृत्ति से उनमें परिवर्तन करता है—इसी का ज्ञान, भूगोल का वास्तविक रूप-ज्ञान है। अत मपूर्ण परपरित सिद्धातो को छोडकर उपरोक्त प्रणाली के आवार पर ही ओडिशा की भौगोलिक समीक्षा करना समीचीन होगा।

हम आजकल जिस क्षेत्र को ओडिशा कहते है उसका ऐतिहासिक नाम था, उत्कल और कलिंग। किंनु अव न तो पहले का उत्कल है और न कलिंग ही। उस समय का ओडिशा वर्तमान ओडिशा से वहुत वडा था। आधुनिक ओडिशा भारत के विभिन्न राज्यो में से एक है। यह १७° ५०′ उत्तरी अक्षाग से २२° ३४′ उत्तरी अक्षाश तथा ८१° २७′ पूर्वी देशातर से ८७° २९′ पूर्वी देशातर के वीच में अवस्थित है। यह भारत के पूर्वी उपकूल में प्राय ३०० मील तक फैला हुआ है। इस राज्य के पूर्व में वगोपसार (वगाल की खाडी), उत्तर-पूर्व मे पश्चिमी वगाल, उत्तर मे विहार, पश्चिम मे मध्यप्रदेश और दक्षिण-पश्चिम में आन्ध्रदेश है। आधुनिक ओडिशा का क्षेत्रफल ६०१३६ वर्गमील है, जिसमें १४६ लाख से अधिक मनुष्य रहते है। यह मयूरभज, केन्दुझर, वालेश्वर, कटक, पुरी, गजाम, कोरापुट, कालाहाँडी, फूलवानी, वलागीर, सम्वलपुर, ढेकानल और सुन्दरगढ—इन १३ जिलो में विभक्त है। १९३६ में ओडिशा विहार से अलग होकर स्वतत्र प्रात के रूप में प्रतिष्ठित हुआ था। उस समय ओडिशा का क्षेत्रफल अव से वहुत कम था। तव इसमें कटक, पुरी, वालेश्वर, सवलपुर, गजाम और कोरापुट—ये छह जिले ही थे। इन छह जिलो और २४ रियासतो को लेकर ओडिशा प्रदेश गठित हुआ था। १९४७ में अग्रेज सरकार के भारत छोडने के वाद काग्रेस सरकार ने देशी राज्यो को प्रान्तो के साथ मिला देने का निश्चय किया। इसके फलस्वरूप पहली जनवरी १९४८ को मयूरभज के अतिरिक्त शेष २३ रियासतो का ओडिशा में विलयन हो गया। एक साल के वाद मयूरभज भी ओडिशा मे सम्मिलित कर लिया गया।

देश की भू-प्रकृति अधिकाधिक उसके भूतत्त्व पर निर्भर रहती है और यह मनुष्यो को कई प्रकार से प्रभावित करती है। भू-प्रकृति, जलवायु, जनसख्या, वाणिज्य, व्यवसाय, कृषि और

ग्रहण करते है। ओडिशा के चैतन्य मतावलम्बी वैष्णव भेदाभेद मान कर शून्यवाद स्वीकार नही करते है।

वलराम दास ने षोडश शताब्दी में भी वैष्णव धर्म का प्रचार किया था। द्वारिका दास और नन्द दास ने उन्हें प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध नाम से अभिहित किया है। जो इन्द्रिय-निरोध नही करते थे उन्हें अनिरुद्ध कहा जाता था। अपने रचित कुराल पुराण में वौद्ध धर्मचक्र का सकेत किया है। लक्ष्मी पुराण में जाति-भेद का विरोध मत सन्निवेश किया है और रामायण में श्री राम राजा के, शवरी के जूठे आम खाने की बात का वर्णन किया है। ओडिशा अधिक काल तक वौद्ध धर्म से प्रभावित था, इसलिए इनके मत में वौद्ध धर्म का निर्देशन होना विचित्र नही है। लेकिन अव ओडीशा के किसी भी गृही समाज में इनके मत का निदर्शन दिखाई नही पडता। गीता में वर्णन है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विश्व रूप दिखाया था। बलराम दास ने अपने ब्रह्माण्ड भूगोल में लिखा है कि हरएक मनुष्य के शरीर में विश्व की यावतीय वस्तुएँ अवस्थित है। वौद्ध वज्रयान के साहित्य में लिखा है कि उड्डीयान के राजा इन्द्रभूति की कन्या लक्ष्मीकरा ने ऐसा मत व्यक्त किया था।

ढेकानाल के जोरन्दा मे अलेख धर्म की गद्दी है। इस गद्दी से लगभग सात मील की दूरी पर कपिलास पर्वत है। स्थानीय किंवदन्ती के अनुसार वहाँ कपिलमुनि का आश्रम था, इसलिए इसका नाम कपिलास हुआ। यह स्थान कपिल के साख्य की विचित्ररूपिणी प्रकृति की अघोगति को हृदयगम करने के लिए अत्यन्त अनुकूल है। यहाँ खीष्ट त्रयोदश शताब्दी का शिलालेख है। ताम्र-शासनो से मालूम होता है कि खीष्ट अष्टम शताब्दी में ढेंकानाल कोदालक-मण्डल के अन्तर्भुक्त था। "कोद्दालक" शब्द (उद्दालक) का ही रूपान्तर होकर कोदालक नाम की उत्पत्ति होने की बात का अनुमान करने पर यह प्रतीत होता है कि यहाँ छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित उद्दालक ऋषि का आश्रम था। इसके बारे में जो प्रमाण हैं उनकी आलोचना करने के लिए यह अवकाश नही है। जो भी हो, इसके लक्षणो से मालूम होता है कि यह अलेख धर्म अत्यन्त प्राचीन काल का है।

पहले अलेख धर्मावलम्वी लोग कुम्भी वृक्ष का वल्कल पहनते थे। अब इसे सिर्फ सप्रदाय के गुरु पहनते हैं। शिष्य लोग काषाय वस्त्र पहनते है। पहले अलेख धर्मावलम्बी लोग अविवाहित रहते थे। अव उनमें पत्नी ग्रहण की प्रथा प्रचलित हुई है। वे ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी जाति का पकाया हुआ खाद्य खाते थे, इसलिए अलेख धर्मावलम्वी के लोग पूरे ब्राह्मण-विरोधी है। सूर्यास्त होने के वाद वे कुछ भी खाना नही खाते। साधारणत कन्ध, भील आदि आदिवासी लोग पेड के नीचे हाथी, घोडे आदि रखकर पूजा करते थे। अव उनमें अलेख धर्म द्रुत गति ने विस्तार पा रहा है। इस सप्रदाय के मतानुसार सन्तान में पिता का पुनर्जन्म होता है, दूसरा पुनर्जन्म नहीं। हिन्दू भी कहते हैं कि "आत्मा वै जायते पुत्र"।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार शुक्र-उत्पत्ति को प्रथम पुनर्जन्म, सतान-जन्म को द्वितीय पुनर्जन्म और मृत्यु के वाद दूसरे जन्म को तृतीय पुनर्जन्म कहते है। अलेख धर्मावलम्वी शून्य मे

है कि समाज के युवको को सयतेन्द्रिय करके दण्डकारण्य से पाशविक अत्याचार दूर करने के लिए यह धर्म प्रवर्तित हुआ था।

इस धर्म में शरीर को क्षत-विक्षत करके कायक्लेश सहने की विधि प्रचलित थी। दीर्घतमा ने अग, वग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्न नामक पांच पुत्रो ने पैदा होकर पाँच सम्प्रदायो को प्रतिष्ठित किया था। लोगो ने दीर्घतमा के शरीर को क्षत-विक्षत करने का वर्णन अपने रचित सूक्त में किया है। गीता में उन्हें असुर कहा गया है (अ० १७ ५, ६)। शतपथ ब्राह्मण में प्राच्य देशीय लोगो को असुर कहा गया है। शायद यह धर्म ओडीशा के ताम्रशासनो में उल्लेखित खिजलि (खिद्‌यन् ज्वलिने खिजिंग, खिद्‌यन यज्ञ) और यम गर्त मण्डल में प्रबल था। ब्रिटिश सरकार ने कानून बना करके दण्डपूजा से शरीर क्षत-विक्षत करने की प्रथा दूर कर दी। पहले इस पूजा में एक प्रथा थी कि पूजक लोग जलते अगारो पर चलते थे। अभी यह प्रथा बन्द नही हुई है। पूजको की निष्ठापरता की परीक्षा के लिए एक गड्ढे में लकडियाँ जलाकर उसे दहकते अगार में परिणत किया जाता है। उस पर चूना डालकर इसे प्रदीप्त रखा जाता है। भक्त लोग इस पर चलते है। जिसका पैर नही जलता वह निष्ठापर माना जाता है। शायद यह सीता जी के सतीत्व की अग्नि-परीक्षा का निदर्शन है। जो लोग शरीर को क्षत-विक्षत करते है उन्हें पाट कहा जाता है। 'मादुला पाँजी' में राजाओ के पूर्वजो को पाट कहा गया है। जो लोग शरीर क्षत-विक्षत करके काय-क्लेश सहते थे वे विवाह करके सन्तान जन्म देने के लिए विवेचित होते थे। ओडीशा के कोगद या गजाम जिले के सप्तम और अष्टम शताब्दी के शैलोद्भव राजा लोग दक्ष धर्मावलम्बी थे। इसका प्रमाण उनके ताम्रशासनो से मालूम होता है। महाभारत में उक्त है कि सात्वत धर्म दक्ष को दिया गया था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार सात्वत लोग दक्षिणारण्य मे रहते थे।

दण्डपूजक अपने गुरु को "मणियामा" कहते है। शायद "मणियामा" शब्द मणिनाग शब्द का अपभ्रष्ट है। पचम शताब्दी के कणासर ताम्रशासन में मणिनागेश्वर नामक शिवजी का उल्लेख है। रणपुर राजवशावली के अनुसार पुरी के विश्वावसु ने रणपुर राजवश के प्रतिष्ठाता को पूजा करने के लिए मणिनाग मूर्ति दी थी। इसके पहले राजा पद्ध ने अपने पूजा के देवता दार को भुवनेश्वर से निकाल दिया था। आज भी रणपुर के पर्वत पर मणिनागपूजा पाते है। खारवेल के शिलालेख में कहा है कि वासुकी ने खारवेल को मणि दी थी। शायद वासुकी मणि नाग धर्मावलम्बी हैं।

दण्डपूजा समाप्त होने के बाद फूस से बने मणियामा को आग में जलाया जाता है। पूजक लोग शुद्धि क्रिया का अनुष्ठान करते है। बलभद्र, जगन्नाथ आदि नव कलेवर होने के बाद पुरी के दयिता लोग शुद्धि क्रिया करते है। क्या देवमूर्तियाँ दयिताओ के गुरु के चैत्य है? आज भी रणपुर राजवश में चैत्यपूजा प्रचलित है। एक प्रकार की पूजा ओडिशा मे और प्रचलित है। इसमें देवी की पूजा होती है। इस देवी का नाम मगला है। हर वर्ष आश्विन और चैत्र मास के हर एक मगलवार को यह पूजा की जाती है। गले से नल निकली हुई ऊर्ध्वमुख मूर्ति के कुम्भ को मगला कहते है। विभिन्न शूद्र जाति के पुरुष और स्त्री मिलकर यह पूजा करते है। पूजा के दिन

# उत्कलीय नृत्यकला

## कविचन्द्र श्री कालीचरण पट्टनायक

ईसा पूर्व दो-तीन शताब्दियो से ओडिशा में नट-नटियो की पत्थर की प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं। इसीलिए इसके पहले से नृत्य का यहाँ समादर था, इसमें शक की गुजाइश नही है। वास्तव में स्वाभाविक है कि स्थापत्य शिल्पियो ने नृत्याधार पर ही इस कला को ग्रहण किया होगा। किन्तु इतना होते हुए भी उस समय इस नृत्यकला का क्या नियम था तथा किस प्रणाली से नियन्त्रित होता था, उसका शास्त्रीय प्रमाण (कोई लेख या ग्रन्थ) उपलब्ध नही है। फिर यहाँ एक वात तो कही जा सकती है कि नाट्यशास्त्र प्रणेता महामुनि भरत जी नृत्य-व्याकरण या जो रीति-नीति ईसा की ७वी शताब्दी में स्थिर कर गये हैं उसमें उन्होने भारतीय नृत्य को चार प्रकार की प्रवृत्तियो में विभक्त किया है। अगर उसके पहले यहाँ नृत्यकला का प्रचलन या चर्चा न होती तो उसमें उड्र देश की नृत्यकला को एक विभाग या एक प्रवृत्ति के रूप में निर्धारित कैसे करते? इसके वारे में भरत नाट्यशास्त्र का चतुर्दशाध्याय देखने के लायक है। उससे जान पडता है कि उड्र, उत्कल या ओडिशा की नृत्यकला प्राचीनतम है। इसमें दो मत नही हो सकते।

दशवी शताब्दी के निर्मित भुवनेश्वर के ब्रह्मेश्वर मदिर के शिलालेख में देखा जाता है कि रत्नालकार-भूपिता सुन्दरी युवती नर्तकियो को देवपूजा की रीति में भेंट स्वरूप दिया जाता है। अनन्त वासुदेव मदिर राजकुमारी चन्द्रावती देवी क कीर्ति है। वे पत्थर-शिल्पियो को नृत्यभगियो के वारे में जैसा निर्देश देती थी वैसा ही अकित होता था। यह १३वी शताब्दी की वात है। इस समय के मोघेश्वर, शोभनेश्वर और कोणार्क आदि मदिरो में नाना नृत्यभगी की नट-नटियाँ उत्कलीय नृत्यकला की ध्वजा उडा रही है।

उत्कल में १७वी शताब्दी के वाद गीत, वाद्य, और नृत्य कला के पतन का युग आता है। सिर्फ इतना ही नही, वल्कि स्थापत्य का भी पतन होता है। इस शताब्दी से नाना राजनैतिक अस्थिरताओ के कारण इस देश की कला की वहुत हानि हुई है। इसी समय से शिक्षित समाज में सगीत विलासवृत्ति के रूप में परिगणित हो गया है। अत्यन्त साधारण और पण्य-नायिकाओं के द्वारा गीत-नृत्य व्यवसाय के मुख्य रूप में परिवेपित होने लगा। इस दुर्दशा के वीच में सगीत ने शास्त्रीय पवित्रता और सम्मान छोड दिया। आखिर १८४० में ओडिशा के अगच्छेद से उसकी विल्कुल सत्ता लुप्त हो गई। पुरी जगन्नाथ-मदिर और उस समय के गढजात के कई मदिरो तथा कई मठो में 'माहारी' और 'गोटिपुअ' या आखडा पिला नाटकी नृत्य देवसेवा-नीति के कारण ही वचा रहा। उसी से ओडीशी नृत्य की परपरा कुछ अशो में वच सकी है। समय समय पर

ये आठ प्रक्रियाएँ ओडीशी नृत्य की प्राथमिक साधना हैं। साधारणत यह त्रिमात्रिक और चतुर्मात्रिक सहज ताल और लय से साधित होती है। इन आठ शब्दो का अर्थ निम्नाकित है—

उठा—शास्त्रीय उत्प्लवन विधि।

वइठा—बैठने की रीति लेकिन यह बैठने की क्रिया कुछ अलग है। ओडीशी नृत्य में पीछे की एडी का विशेष व्यवहार देखा जाता है। एडियो को नितम्बो से सटाकर आगे की उँगलियो पर वैठना होता है। उस समय दोनो घुटने दोनो ओर फैले रहते हैं। हाथ मुट्ठी वाँधे (शिखर मुद्रा) कमर पर लगे रहतें हैं।

ठिआ—नर्तक नृत्यारम्भ और नृत्य की समाप्ति में खडा रहता है। इस भाव-भगी को ही ठिआ नृत्य कहते हैं। इसे शास्त्रीय सम्पदभगी भी कहते हैं।

चालि—ओडिया नृत्य में गीत गाकर अभिनय प्रदर्शन करने के समय ताल लय के साथ आगे वढने की कला को चाल नृत्य कहते हैं। यह शास्त्रीय रूप में भ्रमरी गीत कहलाता है।

वुडा—यह भगिमा पात्र के हाव-भाव, निमज्जा अवस्था को प्रदर्शित करती है। शाब्दिक अर्थ में दोनो हाथ सिर पर रक्खे डूब जाने का अभिनय ही वुडा अभिनय कहलाता है।

भसा—दोनो हाथो को दाहिनी एव बाईं ओर तरगित करके शरीर झुकाकर नाचने की रीति को भसा कहते हैं। यह भाव में तैरने के सदृश प्रदर्शित होता है।

भँडरी—यह चक्र भ्रमरी क्रिया है।

पालि—नृत्य के समय आगे, पीछे और पार्श्व गमन की रीति को पालि कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त प्रचलित प्रवचन है—

"हात ये उठि आखि से इठि
चउक चिरा लक्षी बइठि
चउरस करि भागिव काठि
ताल काल मानि मार गोइठि"।

इसका अर्थ समझा जाय तो नाट्यशास्त्र के निर्देश के अनुसरण से ही हाथ या अभिनय प्रदर्शन करने के वक्त उस पर नजर रहेगी। चउक ओडिशा में प्रचलित करण चिरा भी उसी तरह दोनो पैर समान रेखा में शरीर के दोनो ओर रखकर बैठने की क्रिया है। लक्ष्मी शब्द का अर्थ लक्ष्य रखना है। वइठि शब्द का अर्थ पाँव के अग्रभाग से वैठना, काठि शब्द का अर्थ है शरीर।

शरीर को चार समान भागो में विभक्त करना चउरस क्रिया है। ताल और काल के अनुसार एडी से आघात करना होगा। एडी का व्यवहार ओडिशी नृत्य की एक विशेपता है।

ओडीशी नृत्य में उग्र भाव-भगी कम है। उग्र तथा ताडव-नृत्य नटराज महादेव का नृत्य है। ओडीशा मे ९वी शताब्दी के पूर्व शिवमूर्तियाँ अधिक थी। इसके वाद अनेक स्थानो में श्रीकृष्ण की मूर्ति दिखाई पडती है। गीत और नृत्य के वीच में इस भाव की काफी रचनाएँ देखने को मिलती

की आवश्यकता अनुभव नही की थी। उस वक्त सगीत में कर्नाटकी ढग मिश्रित हो गया। ऐसे ही आज भी कई साहित्यिक पडित बताते है कि ओडिशा में कर्नाटक के सगीत का (गीत-नृत्य का) प्रचार कर्नाटक अचल के गायको और वेश्याओ के द्वारा हुआ है। उन्हें समझना चाहिए कि सप्तदश शताब्दी के मध्यभाग में कर्नाटकी सगीत का नाम पडित वेंकट भरवी के द्वारा होता है, अथच ओडिशा में ईसा पूर्व दूसरे-तीसरे शतक से नृत्य-गीत की चर्चा के उत्कर्षता पाने के प्रमाण आज तक पत्थरो पर दिखाई पडते हैं। श्रीमदिर की पूजा-पद्धति भी इसका अन्यतम प्रमाण है।

नाचने के पहले नाचनेवाले को कितने प्रकार की निर्दिष्ट कसरतो का अभ्यास करना पडता है यह सब लय और मात्राओ पर ही निर्भर है। साधारणत तीन और चार मात्राओ में दो कदम चलने से ही सहज में "करष" शोधित होने लगता है। इसके पश्चात् हाथ, कमर, गर्दन, आँखें, भ्रूभगादि विविध अग नियमानुसार चालित होते हैं।

चउक एव चिरा ओडिशी नृत्य-धारा की विशेषता प्रदर्शित तो करती है, पर साथ ही कष्टसाध्य भी है। एडी से ताल देना और समकोण हो करके खडे होना दूसरी रीति है।

आज कल उडीसा के जितने पूर्वतन सगीतशास्त्र मेरे हस्तगत हुए हैं उनमें सगीतनारायण में नृत्य-विषय पर विशेष चर्चा हुई है। सगीतसरणी, नाट्य मनोरमा आदि ग्रन्थो में भी विभागीयालोचना है। महेश्वर महापात्र कृत अभिनयचन्द्रिका और यदुनाथ राजसिह कृत सगीत-अभिनय-दर्पण नामक दो शास्त्रो में नृत्य के बारे में स्वतत्र रूप से वर्णन है। आज भी दोनो ग्रन्थ अप्रकाशित है।

महेश्वर महापात्र के लेख में खेमडी-राजा नारायण गजपति के प्रशस्ति-गायन की दृष्टि से यह विश्वास किया जाता है कि यह सगीतनारायण ग्रन्थ का समसामयिक है। यह विश्वास किया जाता है कि यह ग्रन्थ सप्तदश शताब्दी की अन्तिम अवधि में रचा गया था। अभिनय-चन्द्रिका में ओडिशी नृत्यकला के बारे में विशेष रीति का वर्णन है। यह सब बिलकुल स्वतत्र है। भारतनाट्यशास्त्र के वर्णन या नामकरण के साथ इसका कम साम्य दिखाई पडता है।

यदुनाथ राजसिह-कृत सगीत-अभिनय दर्पण के वर्णन ने सगीत भरतनाट्यशास्त्र और सगीतरत्नाकर के साथ अनेक स्थलो में समता रक्षा करते हुए भी उत्कलीय वृत्ति की स्वतत्रता विकसित की है। मै आज तक यदुनाथ राजसिह या उनके ग्रन्थ-रचना-काल का निर्णय भली प्रकार नही कर सका। उडीसा के पूर्वतन गडजातो में तिमिरिया के राजा तुग वशज हैं। यदुनाथ ने अपने ग्रन्थ में अपने को तुग वश के नाम से परिचित किया है। रचना की रीति से यह अनुमान किया जाता है कि यह अभिनयचन्द्रिका से पुरातन है। ग्रन्थकार ने नन्दिकेश्वर के रचित अभि-नय-दर्पण से अनेक स्थलो में वर्णन और रीति की पृथक्ता दिखाई है। केवल विभिन्न अगो के अभिनय की सज्ञा या प्रयोग का नामकरण न करके प्रयोग प्रदर्शन-रीति भी वर्णन की है। यह बात दूसरे नृत्यग्रन्थो में दिखाई नही पडती। इनके मत में सयुक्त और असयुक्त हाथ अलग अलग नही। ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है कि असयुक्त हाथ का अर्थ प्रदर्शन और प्रयोग-



कोणार्क मन्दिर की एक नर्त्तकी की मूर्त्ति

मृदङ्ग बजाती हुई एक नर्त्तकी की मूर्त्ति



नृत्य-भंगी—कपिलेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर

शिव-विवाह—परशुरामेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर

कोया नृत्य



( ऊपर ) छउ नाच      ( नीचे ) एक आदिवासी लोकनृत्य का अभिनय

# उत्कलीय रंगमंच का अतीत किंचित्

## श्री कृष्णप्रसाद वसु

अतीत के विराट् विस्तृत ऐतिह्य और गौरव-गाथा से मडित होकर पूजा-वेदी के शीर्ष-सहासन पर विराजमान होकर भी आधुनिक विज्ञान युग के श्री-सौभाग्य में भाग्यवन्त होने में ıम देश को कुछ देरी हुई है।

आज पचास-साठ वर्ष की बात है कि रेल या कल, और जहाज आदि काम में उपयोगी ıए हैं। मच और रग-रस को छोडकर सभ्य हो या असभ्य, कोई भी चिरस्थायी नही रह सका है। मानव-स्वभाव में ही इसका आवेदन और प्रेरणा दिखाई पडती है। उस वक्त सारा साम्राज्य काव्य, सगीत और छन्द-सगीत का पक्षपाती था। उस वक्त बनानी बृहत् थी और लोकालय कम था। उस वक्त गद्य साहित्य में 'यात्रा' या स्वाँग आदि सभारजन-वृत्तिधारी नाटुआ ıसार को नही आया था।

स्वर और सगीत के द्वारा भाव का परिवेषण और भाव द्वारा रस-सचार करना मात्र ही था अभिनय का लक्ष्य। वास्तव में दिखाई पडता था कि यह रीति अत्यन्त क्षिप्र वेग से हृदय को द्रवित करती थी। वह आशु प्रभावशाली था।

आज जो रगमच को विलायती सभ्यता का अवदान कहते है, इसे हम स्वीकार नही कर सकते। शकुन्तला, कादम्बरी, मृच्छकटिक या रगसभा की वात अथवा राधाकान्त मठ में श्री चैतन्य के कृष्णकर्णामृत के अभिनयो की वात छोडिए। आँखो से देखी गई बातें असत्य नही है।

मैं उस समय नया था। हठात् मालूम हुआ कि आभीरी कलावती पटियागढ से आई है। वे नदी के किनारे आम के वाग में मगला के सामने गोपलीला दिखायेंगी। कहते हैं, यह नाट्य अत्यन्त सुन्दर एव मनोज्ञ है। अत उस दिन हमारा भी कैसा उत्साह हुआ। शिक्षक ने भी छुट्टी दे दी, अवश्य हमारे सुकुमार कर-पल्लवो को उपस्थिति के क्रमाक-सख्यक वेत्राघात से मडित करने के वाद। कहना वाहुल्य है कि उस दिन स्टेज सजाने का उपकरण यह था कि एक खाट स्टेज के पीछे टाँगने के लिए, एक चटाई सामने के लिए और झुलाने के लिए एक सम्वलपुरी कुम्भवाला वेढना, पर्दे के लिए चार-छ वडी दरियाँ डण्ठल लगे हुए कुई फूल की तरह सुन्दर। अभिनय के कलाकारो के लिए तीन पूडियाँ, हुडुम्ब नामा चिप्पीटक भाजी, चार नारियल, कुछ गुड, थोडा नमक और इमली। नर्तकी तारका रानी प्रौढ स्त्री श्रीमत्या रगिआमा का दतहीन मुख, रगिया माँ ही दल की नायिका है। कितने अनुनय और विनय के वाद नन्द सेठी उसे

### तराई प्रदेश

यह उपरोक्त समतल भूमि से अधिक ऊँचा है किंतु सब जगह समतल न होकर ऊँचा-नीचा है। इस इलाके की मिट्टी उपजाऊ नही होती, अत यहाँ खेती भी अच्छी नही हो सकती। उपकूल अचल की भाँति इसमें नहरे आदि नही दिखाई पडती। तराई के ऐसे भू-भाग सामान्य रूप से ओडिशा के पश्चिमी प्रदेश (सुन्दरगढ, सम्बलपुर, बलागीर, कालाहाँडी, ढेकानल और कोरापुट जिलो) में दिखाई पडते है। इसके अतिरिक्त मयूरभज जिले के पश्चिमी भाग और केन्दुझर जिले के पूर्वी भाग की गणना भी तराई मे होती है। फिर पर्वतीय अचल के कई स्थानो मे भी छोटी-छोटी तराइयाँ और उपजाऊ अचल दृष्टिगोचर होते है। इस इलाके में जगल है और कही-कही खनिज पदार्थ मिलते है। प्राय प्रत्येक जिले में हम ऐसी तराइयाँ पाते है। ओडिशा की नदियो ने इस अचल को भी विखडित कर दिया है।

### पार्वत्य प्रदेश

यह ओडिशा के मेरुदड के समान दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर फैला है और अनेक नदियो द्वारा विखडित है। सारा का सारा पार्वत्य अचल अत्यत प्राचीन है, इसलिए अब तक बहुत अशो में नष्ट भी हुआ है। ओडिशा मे किसी भी पहाड की ऊँचाई ५५०० फुट से अधिक नही है। इनमे मयूरभज का मेघासन, केन्दुझर का माल्यगिरि, कालाहाँडी का करलापाट, गजाम का सिहराज और महेन्द्रगिरि, कोरापुट का चद्रगिरि, पट्टागी देवमाली, नीलगिरि आदि मुख्य चोटियाँ है। इनके अतिरिक्त ओडिशा में और कई पहाडी चोटियाँ है। दक्षिणी ओडिशा का पहाडी प्रदेश उत्तर के पहाडी इलाके की अपेक्षा अधिक ऊँचा है। यह पूर्वीघाट के पहाडो के उत्तर में है। पार्वत्य अचल में कई पर्वतमालाएँ दिखाई पडती है। भूतत्त्वविदो के मतानुसार दक्षिणी ओडिशा के पहाड आर्कियान और धरवार युग के है। महानदी की उपत्यका में गोडवाना युग के पत्थर देखे जाते है। इसके अलावा ढेकानल, आठगड और चिल्का के आसपास टार्सियारी युग के पत्थर दिखाई पडते है। पश्चिमी और दक्षिणी ओडिशा के पहाडो मे साधारणतया अकर्मशिला (Granite) और रूपान्तरित पत्थर (Metamorphic Greiss and Schiest) तथा पूर्वांचल में माँकडा पत्थर (Laterite), बालू पत्थर (Sandstone) और ग्रिट (Grit) पत्थर मिलते है। तालचेर युग के प्रारभ (Lower Talchir) मे ओडिशा का कुछ पार्वत्य अचल बर्फ से आच्छादित था और जलवायु के परिवर्तन के कारण जब यह पिघला तो हिम-प्रवाह की सृष्टि हुई। इससे पहाडो की चोटियाँ नष्ट होने लगी। मयूरभज, केन्दुझर और सुन्दरगढ अचल के पत्थर अत्यत प्राचीन युग के है। यहाँ की जमीन की बनावट छोटा नागपुर की तराई की बनावट की तरह है। गजाम इलाके के पहाड धरवार युग के है। कोरापुट जिले की देवमाली पर्वतचोटी (५४८६ फुट) ओडिशा मे सबसे ऊँची है। इसके दो शृग है। इन पहाडो की चोटियो की जलवायु शीतल है और पर्वतो के ढालुओ में घने जगल है।

लिये श्रीदाम, सुदाम, सुबल, मथुरा के बाजार के रास्ते में गोपियाँ और उनके बीच मोरपखधारी नटवर श्रीकृष्ण।

जनता स्तब्ध, मुग्ध, नीरव और नि स्वन ! पीछे से मधुमय, 'मथुरा मगल' चल रहा है। "कृष्णर गमन चाहि छन छन"—विदग्धचिन्तामणि की अमर पद्यावलि—"दूती गो कहिबू वन्धु कु, की दोष रे फिंगि देले मदनसिन्धु कु"—अगस्ति नृत्य कर आये, और चल दिये। अब अत्रि और नारद भी हाथ में गाँजा चिलम लेकर आये और उन्होने पद जोड दिया—"ओलट कमलनेत्र वुला चकिते"—शरीमार्थ की परमार्थ कविता है उनकी खँजडी। नाचते नाचते कौपीनधारी सन्दीपनी निकट आये झोली में माला जपते जपते। उनके कद्दू सदृश निनबो के बीच में से फस्, फस् कर धुआँ निकल जाता है, जैसे कि कैनेडियन इजिन से निकलता है।

ओ उस दिन कैसी मजलिस ! यह उपरोक्त सूत्र और दारु प्रतिमाओ का खेल जहाँ पर हो, या जो कोई करे—यह पल्ली प्रमोद—इसे आधुनिक रगमच का वृद्ध प्रपितामह कहने से कुछ क्षति है क्या ? यह लगभग दो सौ वर्ष से चला आ रहा है। अब तक प्राचीन को विदा देकर नूतन को ग्रहण करने की वितृष्णा को नही छोडा है। नूतन की उज्ज्वल आभा नही देखी है, और न दरिया पार के सम्य उपादान का सौरभ ही देखा।

लगभग १९१२ ई० में बलगा थियेटर के आविर्भाव के पूर्व उडीसा ने अपने निजस्व के रक्षार्थ व्यवसायी रगमच की प्रतिष्ठा नही की थी। जहाँ जो कुछ था सब में कोई शौकीन, कोई सामयिक, मौसमी वायु—ललाट में चन्दनविन्दु—हास्यमय, पृथुल वपु चाहनी में विराट प्रतिमा, युवको के साथ युवक, बूढो के साथ बूढे, पक्का जौहरी—उस स्वर्ग-गत पूज्यपाद श्री मनमाली पति को हम प्रथम अर्घ्यार्पण करते हैं। रगमच के इतिहास के प्रसग से उस भार्गवी नदी का किनारा पुन्नाग कुज, उस कचहरीघर के सलग्न नारियल वन की नृत्यशाला को कोई क्या भूल सकता है ?

उस आदि परिकल्पना के प्रथम प्रतिष्ठाता और उस दिन के आदि सहयोगी वृन्दावन बाबू, फनि बाबू, मनिबाबू, ऐच बाबू, षडगी ब्रदर्स, हरिमोहन राम मनियाँ को, और उस गोप गोसेइक (गोम्वामी) clarionet को—

शायद सब चले गये है। सिर्फ राम मनियाँ बाबू है जो उस दिन की उन बातो को कहने के लिए है। लेखक का सौभाग्य, उस दिन लेखक ने सेतुबन्ध में गिलहरी की तरह धूलि झाडी और गायी गई थी चैतन्यलीला। केवल एक क्षुद्र रासदल से यह परिकल्पना हुई है। उसी पुत्र-पौत्रादि-क्रम ने इस युग का स्वच्छ स्वरूप लिया है। हमें यह मालूम नही है कि उस दिन की वह काली सम्पूर्ण प्रस्फुटित हुई है या नही, लेकिन वह सौरभ वितरण करती है। "भवति विज्ञतम क्रमशो जन ।" यह नहीं है कि इसके पहले सारा उत्कल उदासीन था। अस्थायी अमेचर के रूप में नाना प्रचेष्टाएँ विभिन्न स्थानो से दिखाई पडती थी।

विशेषत राजा जमीदारो के उवाम, बडे अफसर, अमला आदि के कोर्ट कचहरी और मेडिकल कालेज आदि में पर्वो के उपलक्ष मे थियेटरो का उद्गम होता था।

लेकिन थियेटर ऐसी चीज है जिसे हमने पहले बिलकुल बाल्यावस्था में जाजपुर प्रदर्शनी

इस नृत्य का मोचन किया, वे नित्य नमस्य है। इन्हें युग युग उत्कल-इतिहास अभिनदित करेगा। ये है—रामशकर वावू, भिखारी बाबू और कामपाल बावू आदि। ये ही आदि गुरु है।

यदि कहा जाय तो बिलकुल गाँवो से ही इसकी प्रचेष्टा हुई। पाटपुर (कोठपदा) मठ से रामशकर बावू के नाटक निकले। उनमें से "काची कावेरी" ने ही सार्वजनीन प्रशसा पाई और आज भी यह जीवित है। भिखारी बाबू के "कटक विजय" और कामपाल बाबू के सीताविवाह से सारे देश में स्पन्दन जाग उठा है। "मुकुर" के व्रजसुन्दर बाबू और बाबू अभिराम भज के आनुकूल्य में विभिन्न अमैचर पार्टियो द्वारा अभिनीत होता था। उस वक्त मुकुर जौंलिया पार्टी में था। सभास्थलो में विराट् उल्लास और उत्साह था। चारो ओर नूतन का अभिनन्दन होता था।

इन तीनो में कामपाल बाबू ही सुकठ और सुगायक थे। वारिपदा मे S D O रहने के समय उन्होने "वसन्तलतिका" और "हरिश्चन्द्र" लिखा था। दिमाग खराव होने के कारण यह असम्पूर्ण रह गया। लेकिन क्या "सीताविवाह" और क्या "वसन्तलतिका" की स्वर-योजना में उच्चाङ्ग की यथेष्ट मार्जित नूतन प्रणाली को देश आज तक नही भूला है। "मधुमास इन्दु शीत सुधाविन्दु" लेकिन इनके प्रचार के लिए पीछे कोई व्यवसायी सगठन न होने के कारण कोई भी दीर्घजीवी न हो सका। सत्यवादी से गोदावरीश बावू, सारस्वत से बालकृष्ण बाबू और रामचन्द्र आचार्य महाशय के कतिपय उपादेय नाटक निकले, किन्तु पृष्ठपोषण के अभाव के कारण इनकी हालत भी ऐसी हुई। कौन पृष्ठपोषण करेगा? व्यवसायी दल कहाँ है? बलगा ही एक मात्र व्यवसायी दल था। इनके सामने सिर्फ अर्थकारी नाटक ही मूल्यवान है। यदि रिहर्सल मे दो-चार हजार रुपये खर्च होने के वाद वाजार में न चले तो बडी मुसीबत है। विवासिनी भी वैसे ही गया। सीताविवाह साहित्य क्षेत्र में काफी स्पन्दन लाया था, किन्तु नाटकीय रीति से काव्य-प्रणाली अविक हो जाने के कारण शायद वास्तव क्षेत्र में शिथिलता दिखाई पडी।

क्या नाटक, क्या काव्य, दोनो मे लक्ष्य चरित्र-चित्रण ही है। लेकिन पथा और रीति अलग है। नाटक में चरित्र घटना के द्वारा परिस्फुटित होगा और काव्य में वर्णन के माध्यम से। इन उपादेय उत्कृष्ट घटनाओ को अच्छी तरह चुनकर रखना, माला के समान पिरोना और परस्पर सयुक्त करने के लिए यथायोग्य भाव व्यजक स्वल्प मर्मवाणी (Hitting Terms) का रचना में प्रयोग करना वडी सगीन वातें है। इसमें भूल या त्रुटि रह जाने से आशु जनरजन असम्भव है। इस तौर पर विचार करने से यह वात आसानी से मालूम होगी कि नाट्य क्षेत्र में हमारा स्थान कहाँ और कितनी दूर है। जनरजन व्यापार में पाडित्य से वास्तव में अनभिज्ञता का मूल्य अधिक है। वास्तव में उपयोगिता स्वय मालूम हो जाती है। Auditorium दर्शक श्रोतागण के आग्रह, उत्साह और गतिविधि मे दूसरे प्रमाणपत्र मूल्यहीन है।

गजाम में चिकिटी राजानुकूल्य में एक दल भी निकला था। उसमें विशुद्ध तेलगू राग मे रचित उपादेय उडिया गीत था। लेकिन नाटक की भाषा अधिक पाडित्यपूर्ण और विराट् समास-बहुल होने के कारण वह भी कालरुचि का धक्का सह न सका। प्रधानत नाटक की भाषा कथित

जाजपुर और एडताल के सम्मिलित कलाकारो के सहयोग से गठित सघ लेखक की प्रशसा प्राप्त कर, अखण्ड रूप में काम कर दीर्घ पच्चीस वर्ष से विप्लव की वार्ता गा रहे थे। उस समय स्वय लेखक ब्रिटिश के विचार से एक राजद्रोही थे। इस सप्रदाय के सब नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक थे और बड़े चित्ताकर्षक भी। दल के साथ एक सगीत-विद्यालय था। इस दल में विधिवत् शुद्ध शास्त्रीय सगीत की आलोचना होती थी। इसके पीछे कई आदमी थे। वे लोग विदेशो से तरह तरह के नये नये स्वर और गीत सग्रह करते थे। यही पर विधिवत् स्वर-लिपि प्रयोग से शिक्षा दी जाती थी।

उस्ताद वेणु पण्डा, रगराज, उदयनाथ, बनबाबू, गौराग बाबू, मधुबाबू, लक्ष्मीघर बाबू, माधव बाबू, योगीन्द्र बाबू और पद्मनाभ बाबू हैं। आज उनमें से हरेक कृतकर्मा हैं। इन्ही के सहयोग से अनेक नई शिक्षाएँ आईं।

कालीबाबू और इस प्रबन्ध के लेखक आज भी जीवित हैं। आज भी दोनो वृद्धो ने देशसेवा नही छोडी है लेकिन और कितने दिन तक ? जो कुछ भी हो, उल्लिखित लेखक कलावन्तो से बहुधा सग्रहीत उपादानो से ही उत्कल रगमच की भित्ति स्थापना हुई है। बढई साही की वीणापाणि का दान भी कम नही है। बँगला थियेटर ने विधिवत् स्थायी व्यवसायी गमच की परिकल्पना को दृढ निष्ठा पर रखा था। बालेश्वर के वृन्दावन बाबू आदिगुरु थे। वृन्दावन बाबू का स्वर-विन्यास और नृत्य-परिकल्पना अति मधुर थी। अभिनेता के रूप में फनि बाबू और मनि बाबू मिल गये। इससे पूर्ण सहयोग मिला। पी० एम० एकादमी के सुयोग्य प्रधान शिक्षक अश्विनी बाबू विशारद, महेश बाबू सहकारी प्रधान शिक्षक थे।

इस बार ऐतिहासिक नाटको का कार्यक्रम शुरू हुआ। हण्टर, राजेन्द्रलाल और कृपा-सिन्धु बाबू के उत्कल-इतिहासो में वर्णित नाना जातीय वीरचरित्रो को उपस्थापित कराने का उद्यम किया गया। "काला पहाड", कोणार्क, गोविन्द विद्याधर आदि अनेक ऐतिहासिक नाटको में ही नूतन रूप में गौरव गाथाएँ जाग्रत हुई। कोई कोई विद्वान् शिक्षित आदमी जानते थे पर निरक्षर ग्रामवासियो को यह मालूम नही था। अब ये गाथाएँ क्या धनी, या दरिद्र सभी जानते है। अश्विनी बाबू के इस दान का मूल्याकन है। युग युग में वनमाली बाबू अमर है। नाट्य-जगत् का यह प्रथम प्रतिष्ठान उनकी दूरदृष्टि, अध्यवसाय, कर्मकुशलता का यथेष्ट नमूना है।

पति महाशय के देहान्त के बाद वह सप्रदाय अश्विनी बाबू के "आर्ट थियेटर" नाम से चला। इसमें बलाई बाबू की अत्यन्त विचक्षण शिक्षाप्रणाली, गौराङ्ग बाबू के सगीत और कार्त्तिक बाबू के अभिनय से नया स्वरूप दिखाई दिया। कृष्णार्जुन, कोणार्क और चन्द्रगुप्त सुख्यात बन गया। बलाई बाबू और नन्द बाबू दोनो वीणापाणि के कृती कलाकार है।

अश्विनी बाबू विद्वान् और कलावन्त थे, फिर भी उनमें दो गलतियाँ थी। निरल, सुन्दर उडिया भाषा के प्रयोग में भ्रम और भाषा के स्वतत्र जीवन के लिए जो उच्चारण का प्रयोजन है उसमें थोडी सी अवहेलना रह जाती थी। कलावन्त लोग स्वभावत सासारिक व्यवहार में बिल्कुल अनभिज्ञ होते है। योग्यतम शिल्पियो के सहयोग से और आशानुरूप आय न होने

# उत्कलीय वैष्णव धर्म

## श्रीमती मालती उपाध्याय एम०ए०

उत्कलीय वैष्णव धर्म वहुत ही प्राचीन तथा महान् धर्म है। इसका क्षेत्र वहुत ही विस्तृत है। इसमें वौद्ध, शैव और तान्त्रिक भावनाएं सभी एकत्रित होकर पाई जाती हैं। उत्कल के आराध्य देव श्री जगन्नाथ जी हैं किन्तु उनकी पूजा-उपासना के विधि-विधान में वौद्ध, शैव और तान्त्रिक विधियाँ भी सम्मिलित है।

यहाँ के देवाधिदेव श्री जगन्नाथ जी की कल्पना भी अति प्राचीन है। स्कन्द पुराण के उत्कल खण्ड में यह उद्धृत है कि इन्द्रद्युम्न नामक राजा ने एक गगनचुम्वी मन्दिर में एक पवित्र काठ के टुकडे की देवरूप मे स्थापना करके उसकी पूजा की थी। एक जगह यह भी उद्धृत है कि त्रेतायुग में राजा रत्नगिरि नीलाचल के पुरुषोत्तम के मन्दिर में पधारे थे। उपरोक्त इन दो कथनो से तो यह पूर्ण रूप से प्रमाणित होता है कि यहाँ पर श्री जगन्नाथ जी की आराधना तथा वैष्णव धर्म किसी न किसी रूप मे ईसा से पूर्व प्रचलित था। समय के अवर्तन ने उत्कलीय इतिहास को कुछ समय के लिए ढक लिया किन्तु जव गुप्त साम्राज्य का अभ्युत्थान हुआ और वैष्णव धर्म का प्रावल्य वढा तो उसका प्रभाव उत्कल में भी अवश्य हुआ होगा। कहा जाता है कि ईसा की पाँचवी शताव्दी मे यहाँ पर भागवतवाद का अवश्य ही प्रचार था और भागवत के सकर्पण और वासुदेव ही वाद मे वलराम और जगन्नाथ के रूप में आराध्य हुए। सुभद्रा की उत्पत्ति कहाँ से हुई, यह कुछ कठिन जान पडता है किन्तु जैसे अग्नि और गरुड पुराण में सुभद्रा अपने भाइयो के साथ वर्णित है, सभवत इसी भावना से प्रेरित होकर उत्कलवासियो ने श्री जगन्नाथ और वलराम के साथ सुभद्रा को भी स्थान दिया किन्तु इन लोगो ने साख्य के पुरुष और प्रकृति वाले सिद्धान्त को अपनाया। सुभद्रा अपने भाइयो के निकट सम्वन्ध के कारण श्री जगन्नाथ जी की शक्ति मानी गई तथा वहिन और स्त्री दोनो का स्थान ग्रहण किया।

जैसे—"तस्य शक्ति स्वरूपे च भगिनी स्त्री प्रवर्त्तिका।" कही कही तो ये लक्ष्मी जी की प्रतीक भी मानी जाती है।

पुरी की त्रिमूर्ति के विपय मे भी विभिन्न मत है। यह प्रचलित मत है कि श्रीकृष्ण के पदाघात के वाद उनका चक्र पुरी आया। जैसे —

प्रदुम्न नासी चक्र गला।<br>कृष्ण कर कू न अइला॥

—महायात्रा - द्वितीय सर्ग

अब हमे उत्कलीय वैष्णव धर्म पर विचार करना है। उत्कलीय दर्शन मे शून्यवाद की अधिक महत्ता है। इसमें अलेख, अचिह्न निराकार, निर्गुण परब्रह्म को ही श्रेष्ठ माना जाता है। यह अलेख ही शून्य पुरुष है—यही शून्य का प्रतीक है। जैसे—

याहार रूप रेख नाहि, शून्य पुरुष शून्य देही।

—"विराट गीता"

यही निराकार ब्रह्म निराकार विराट् पुरुष के रूप में भी माना जाता है अथवा इसी विराट् से शून्य का भी बोध होता है। जैसे —

अलेख पुरुष बोली अछई एक जण।
ताहा को नित्ये आम्भे करु थाउ ध्यान।
आदि अन्त करि जाहा पचारिलो तुम्भे।
अलेखर तहु जात होइ अछु आम्भे।
से सबु कू बड तार उपरे नाही केही।
अशेष महिमा ताहा कर आदि अन्त नाही।
अनन्त को निराकार ताहार तह्नु जात।
अनेक तार तहु होई उपगते।

इसी निराकार से महाविष्णु का भी बोध होता है। निर्गुण-माहात्म्य मे स्वय विष्णु ने इसे स्वीकार भी किया है कि अनादि ब्रह्म ही उनसे श्रेष्ठ है। इस निराकार से ही विष्णु ने करोडो सृष्टियो का सृजन किया और इसी निराकार से ब्रह्म की उत्पत्ति भी हुई है। जब १०८ ब्रह्म जन्म के बाद निराकार अपनी सत्ता को खो देता है तो अणाकार द्वारा उसका सृजन होने लगता है। यही अलेख, अणाकार जब आकार धारण करता है तो इसे निराकार विष्णु कहते है। जैसे—

अलेख अणाकार यहु आकार वइला।
ताहाङ्कर नाम निराकार विष्णु हेला।

—विष्णुगर्भपुराण

तान्त्रिक लोग इसी निराकार ब्रह्म को बिन्दु कहते है। इसी बिन्दु से शून्य और गुण का बोध होता है। इस बिन्दु का उद्‌भव शून्य से मानते है जैसे— शून्यरु बिन्दु खसीला।

—ब्रह्माण्ड भूगोल

अत शून्य का ही यह अंग बिन्दु है और यही निराकार का सत्यरूप है।

उत्कलीय वैष्णव धर्म मे योगमाया का स्थान भी मुख्य है। वे आदिशक्ति के रूप में मानी जाती है और इन्ही मे अर्धमात्रा का भी बोध होता है। इनकी तुलना वेदान्त की मूल प्रकृति

सीमित रही। इसका मुख्य कारण यह था कि साधारण जनता योग और ज्ञान की क्रियाओ से अनभिज्ञ रही। इतना उच्चकोटि का दर्शन उसकी बुद्धि के परे था। यह तो विशिष्ट और पण्डित जनो के लिए था। अत जैसा कि भागवत में लिखा है—

ये वै भगवता प्रोक्ता ह्युपाया आत्मलब्धये।
अज्ञपुसामविदुषा विद्धि भागवतान् हि तान्॥

*भगवान् के द्वारा जो उपाय भगवत्प्राप्ति के* लिए कहा गया उसे साधारण जनता सहज ही मे आत्मलाभ न कर सकेगी। नारद ने व्यास मुनि से कहा कि आपने तो महाभारत जितेन्द्रियो के लिए लिखा, अब साधारण लोगो की गति के लिए भागवत की लीला लिखिए। पण्डित जन निवृत्ति मार्ग द्वारा भगवान् के प्राप्तिजनित सुख का लाभ करते है लेकिन जो लोग प्रवृत्ति मार्ग में निरत है उनके लिए भगवान् की लीला का आख्यान ही सुगम होगा। प्रथम, लीला द्वारा ही भगवान् मे उनकी आस्था और भक्ति दृढ होगी। अत उत्कल में जब चैतन्य महाप्रभु का प्रवेश हुआ तो साधारण जनता में उनके, सहजियावृत्ति वाले, दर्शन का अधिक प्रचार हुआ। अब वह युग आया जब समर्थ गुरु का सर्वथा अभाव रहा। अत उत्कलीय वैष्णव धर्म साधारण जनता की बुद्धि के परे था। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचलित धर्म को यहाँ पर गौडीय धर्म कहते है, जिसे शुद्धा अथवा नवधा भक्ति भी कहते हैं। इसमे प्रथम ईश्वर का श्रवण, कीर्तन करते हुए भक्त अपनी आस्था और भक्ति ईश्वर के प्रति बढाता है। इसमें सामीप्य भक्ति और द्वैताद्वैत भाव हैं। किन्तु उत्कलीय वैष्णव धर्म में सायुज्य भक्ति है। भक्त अपनी कठिन साधना द्वारा भगवान् में एकमय होकर ही रहता है। उत्कलीय वैष्णव धर्म मे नवधा भक्ति अन्त में आती है। इनका विश्वास है कि प्रथम ज्ञान और चित्तशुद्धि के द्वारा भगवान् के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है और भगवान् की प्राप्ति हो जाती है तो वह लीला दर्शन करने लगता है। इसीलिए प्रथम भाव साकार अर्थात् गुरु मे केन्द्रीभूत होता है और बाद में उस साकार के द्वारा ही निराकार मे उसकी पहुँच होती है।

कहा जाता है कि यह शुद्धा भक्ति उत्कल मे चैतन्य महाप्रभु के आगमन के पहले किसी न किसी अश में थी और राय रामानन्द ने मुक्तिमण्डप (पुरी) की सार्वभौम सभा में शुद्धा भक्ति का प्रचार भी किया था किन्तु उस समय इसकी मान्यता नही हुई। बाद मे चैतन्य महाप्रभु का आगमन हुआ और इनके प्रखर बुद्धि-बल के द्वारा इस शुद्धा भक्तिवाले गौडीय वैष्णव धर्म का प्रचार बहुत हुआ। उस समय उत्कल मे एक बहुत बडा सामाजिक विद्रोह हुआ और सभी ने इस गौडीय वैष्णव धर्म को अपनाया। इस सामाजिक विद्रोह का कारण मुख्यत यह था कि प्राचीन उत्कलीय वैष्णव धर्म साध्य भाषा में लिखा गया था, अत पहुँचे हुए साधक ही इसे समझ सकते थे। साधारण मस्तिष्क विकृत अर्थ लगाकर इसका दुरुपयोग करने लगा था। फलत इसका प्रभाव कम होता गया, किन्तु जब शुद्धाभक्ति का प्रचलन हुआ तो जनता ने उसका स्वागत बडे आदर से किया और उसका प्रचार भी बहुत हुआ। इसकी भावना सरल और सहज थी इसीलिए

व्यायाम के लिए कोई स्थान ही नही रहा किन्तु कुछ स्थानीय सरदार——जो मुख्यत क्षत्रिय थे——व्यायाम को सीमित रूप से चलाते रहे।

राष्ट्रीय जाग्रति के कारण जब भारतवासियो ने स्वतन्त्रता पाने की चेष्टा की तो उन चीजो को भी पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया जिनका कुछ राष्ट्रीय महत्त्व था। उत्कल-मणि गोपबन्धु, श्री गोदावरिश मिश्र, श्री नीलकण्ठ दास, तथा आचार्य हरिहर दास ऐसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञो द्वारा चलाये गये सत्यवादी के राष्ट्रीय कालेज में देशी व्यायाम को पुन चलाने का प्रयत्न किया गया। वर्तमान कलिंग व्यायामशाला, जो ओडिशा के देशी व्यायामो का मुख्य केन्द्र है, सत्यवादी के राष्ट्रीय कालेज के द्वारा प्राप्त राष्ट्रीय प्रोत्साहन से ही खुली थी। इसे राजाओ, जमीनदारो तथा ओडिया व्यापारियो द्वारा बहुत प्रोत्साहन मिला और इसी समय प्रान्त के भिन्न भिन्न भागो मे विभिन्न देशी व्यायामो को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया। सरायकेला तथा मयूरभज में छाऊनाच और कटक तथा पुरी में कुश्ती लडना फिर से चल पडा और अनेक लोग इसे प्रोत्साहन देने लगे। कलिंग व्यायामशाला का उद्देश्य उन विद्यार्थियो को देशी व्यायाम की ओर आकर्षित करना थ जो पढाई में इतने तल्लीन रहते थे कि अपने स्वास्थ्य की ओर कुछ भी ध्यान नही देते थे। इस व्यायामशाला का उद्‌घाटन सन् १९३२ ई० के लगभग बीस विद्यार्थियो को लेकर हुआ था और कुछ ही दिनो मे इसकी ख्याति इतनी बढी कि अनेक विद्यार्थी यहाँ व्यायाम साधना के लिए आने लगे और इसके नये नये केन्द्रो को खोलने की आवश्यकता पड गई। यौगिक क्रियाओ तथा वैज्ञानिक ढग से शरीर की मालिश करने से लोग अनेक रोगो से छुटकारा पा जाते है। महात्मा गान्धी को एक मास तक मालिश की गई थी और इसके फलस्वरूप वे रोग से मुक्त हो गये थे।

यहाँ का प्रचलित पाठ्यक्रम दो भागो में विभाजित है अर्थात् (१) अभ्यास सबधी, (२) सिद्धान्त सम्बन्धी।

अभ्यास सम्बन्धी——

(१) स्वतन्त्र शारीरिक व्यायाम जैसे सूर्यनमस्कार, शरीर का मोडना, लेटकर व्यायाम, भारतीय डण्ड-बैठक, सपाटा तथा अमेरिकन डण्ड इत्यादि।

(२) श्वासक्रियाएँ जो शरीर की प्रत्येक मास-पेशी को ठीक रखती है।

(३) यन्त्रो द्वारा व्यायाम, जो तीन मास के बाद सिखलाये जाते है। जैसे बारबेल, चेस्ट एक्सपैन्डर, डम्ब-बेल, लाठी इत्यादि द्वारा किये जानेवाले व्यायाम।

(४) जिमनैस्टिक्स, जैसे पैरलल बार, रिंग बार, होरीजेन्टल बार तथा ट्रैपेक्स इत्यादि।

(५) भारतीय योगासन तथा प्राणायाम।

(६) आत्मरक्षा के व्यायाम——जैसे लाठी, तलवार, बाक्सिग (Boxing), कुश्ती तथा जीजित्सु।

(७) खेल, जैसे वालीबाल, कबड्डी तथा अन्य देशी खेल।



श्री गोपीनाथ साहु
राष्ट्रभाषा प्रेस के मैनेजर



श्री गुरुचरण महान्ति
रजत जयन्ती के सक्रिय सदस्य

# परिशिष्ट क

## लेखकों का संक्षिप्त परिचय

आपका जन्म किस सन् में हुआ था, इसका पता उनको नही है, लेकिन इतना स्मरण है कि कार्तिक सुदी अन्नकूट के दिन आपका जन्म हुआ था। जन्मस्थान है उजेनी, जो राज्य पन्ना थाना वीरसिहपुर में है।



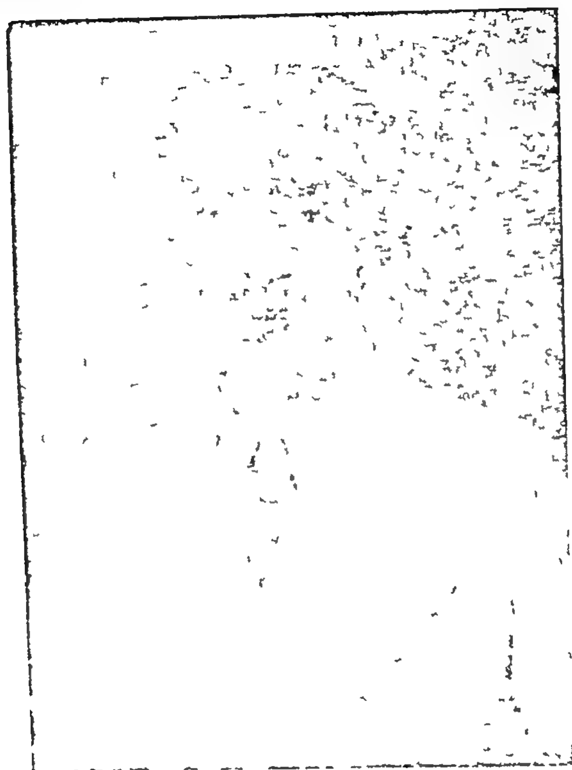
पडित अनसूयाप्रसाद पाठक (सयोजक)

सन् १९३९ में पाठक जी ने सुना था कि तुम्हारी उम्र २८ साल की है। अब पाठक-वृन्द जरा हिसाव लगाकर देखें कि जिसकी उम्र सन् १९३९ मे २८ साल की होगी तो उसकी उम्र १९५९ मे कितने की होगी।

आप पच्चीस साल से उत्कल में हिन्दी का प्रचार-कार्य करते आ रहे हैं। १९३३ से इस सभा के स्थापन में आप एकमात्र चिन्तक व्यक्ति हैं। यह जो सारा आयोजन हो रहा है वह आपके उत्साह, लगन तथा चिन्ता का फल है।

o

आपका जन्म मयूरभज जिलातर्गत वीरिपदा में हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीयुक्त परमानद आचार्य है। वे उडीसा की सरकार के प्रत्नतत्व विभाग के सुपरिन्टेंडेंट थे। आपको वचपन से ही भूगोल पढने का अत्यधिक आग्रह था। अत आपने वारिपदा हाईस्कूल



श्री वृन्दावनचद्र आचार्य

मे मैट्रिक पास करके कलकत्ता जाकर विशेष अध्ययन किया, और सन् १९४७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से भूगोल में एम० ए० पास किया। आपके पूर्व उडीसा के किसी भी छात्र ने भूगोल मे एम० ए० नही किया था। सन् १९४८ ई० मे आप भूगोल के अध्यापक बन इस समय वडी उत्सुकता एव लगन के साथ अपने कार्य मे रत है।

©

मानसून, जिससे सबलपुर अचल मे काफी वर्षा होती है। उत्तरी ओडिशा मे दक्षिणी ओडिशा की अपेक्षा अधिक वृष्टि होती है।

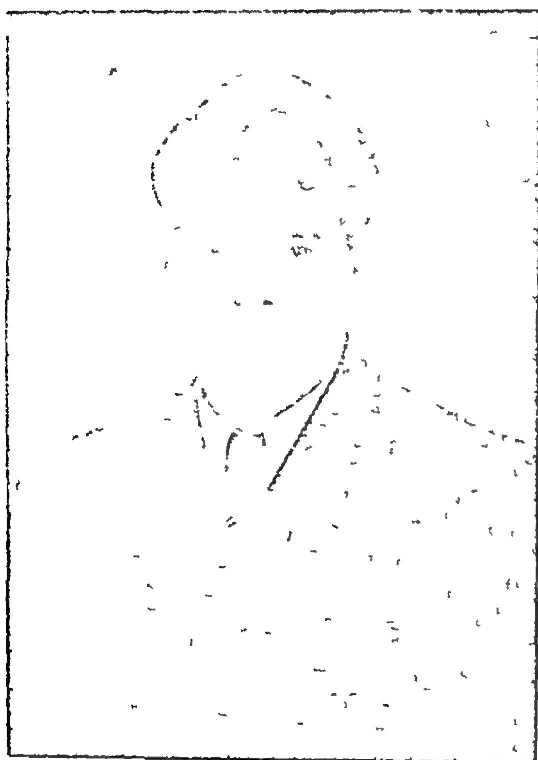
नवम्बर से फरवरी तक शीतऋतु है। इस ऋतु में पार्वत्य अचल तथा तराइयो में जाडा अधिक पडता है, किंतु समुद्र के तटवर्ती प्रदेशो में अधिक जाडा नही पडता। जलवायु की दृष्टि से अगर कोरापुट को ओडिशा का दार्जिलिंग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

ओडिशा के किन-किन अचलो में किस-किस प्रकार की मिट्टी पाई जाती है, उसका पूरा विवरण आज तक नही बन पाया है। परन्तु मोटे तौर पर देखा जाय तो ओडिशा के उत्तराचल की तराइयों में लाल मिट्टी, दक्षिण में मांकडा पत्थर (Granite), मध्यवर्ती अचल में काली मिट्टी तथा उपकूल मे रेतीली, कडी और पकिल मिट्टी देखने में आती है। भारत के दूसरे प्रान्तो की तरह ओडिशा में भी मिट्टी का क्षय बराबर हो रहा है। यह क्षय पहाडी क्षेत्रो और पश्चिमाचल में अधिक हो रहा है। इसके प्रधान कारण जगलो को अधिक मात्रा में काटना, उन्हें खेती की जमीन बनाना और मवेशियो से जगलो का नष्ट होना आदि हैं।

देश की प्राकृतिक वनस्पति उसकी जलवायु पर बहुत निर्भर रहती है। साधारणत पार्वत्य तथा तराई अचलो में मौसमी जगल पाये जाते है। समतल प्रदेश में कृषि ही लोगो की प्रधान जीविका है। ओडिशा में कुल २३००० वर्गमील का जगल है। अब तक के प्राप्त विवरणो से स्पष्ट है कि उसमें से ८५२४ वर्गमील का जगल 'रक्षित' है और ६००० वर्गमील का जगल लोगो के अधीन है। देश की जलवायु पर वन बहुत प्रभाव डालता है अत देश की वन्यसम्पद की रक्षा भली भाँति होनी चाहिए। क्षेत्रफल के अनुपात से ओडिशा में ३८ २ भाग जगल है। यह एक शुभ लक्षण है। फिर भी जगल के उपयोग में अगर सावधानी न बरती जायगी तो कुछ वर्षो ही के भीतर उसके नष्ट हो जाने की पूरी आशका है।

ओडिशा में प्राय ७० प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर रहते है, इसलिए खेती की भली-बुरी दशा पर लोगो का भला बुरा निर्भर रहता है। यहाँ की जमीन से अन्न की पैदावार अच्छी नही होती। भारत मे अनाज की औसत पैदावार एकड पीछे १२४० पौण्ड है परन्तु ओडिशा मे औसत पैदावार प्रति एकड केवल ९७५ पौण्ड ही हो पाती है। भारत के अन्य प्रांतो की अपेक्षा यहाँ के लोग खेती पर अधिक निर्भर है। यहाँ अपनी जमीन में खुद खेती करनेवालो की सख्या अधिक है। उद्योग-धधो या शिल्प-प्रतिष्ठानो के न होने से यहाँ के लोगो को, वर्ष मे प्राय ५–६ महीने, जब कि खेती का काम नही रहता, बेकार रहना पडता है। प्राय २१ प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर नही है। ये लोग साधारणतया कारखानो, कुटीर-उद्योगो, व्यवसाय-वाणिज्य तथा सरकारी दफ्तरो मे काम करते है। ओडिशा की समस्त जनसख्या में १४ वर्ष की आयुवाले बच्चो की सख्या अधिक है। ये प्राय काम करने में असमर्थ हैं, अत काम करनेवालो की सख्या अधिक नही है। १९५१ ई० की जनगणना की रिपोर्ट मे पता चलता है कि यहाँ के अधिकाश लोग हिंदू हैं। यहाँ प्राय दो लाख (१७६३३८) मुसलमान और डेढ लाख (१४१९३४) ईसाई वास करते है। इनके अतिरिक्त दूसरी जातियो के लोगो की सख्या बहुत कम है। कुछ

जन्म सन् १९११ ई०। जन्मस्थान—पथुरीपडा, वाकी (कटक)। शिक्षास्थान—वाकी हाईस्कूल, रेवेन्सा कालेज, कटक, पटना कालेज, स्कूल आफ ओरियटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज लन्दन विश्वविद्यालय। गवर्नमेंट एपिग्रावस्ट आफिस, उटकमड लिपि के सम्बन्ध में गवेपणा (१९५२)।



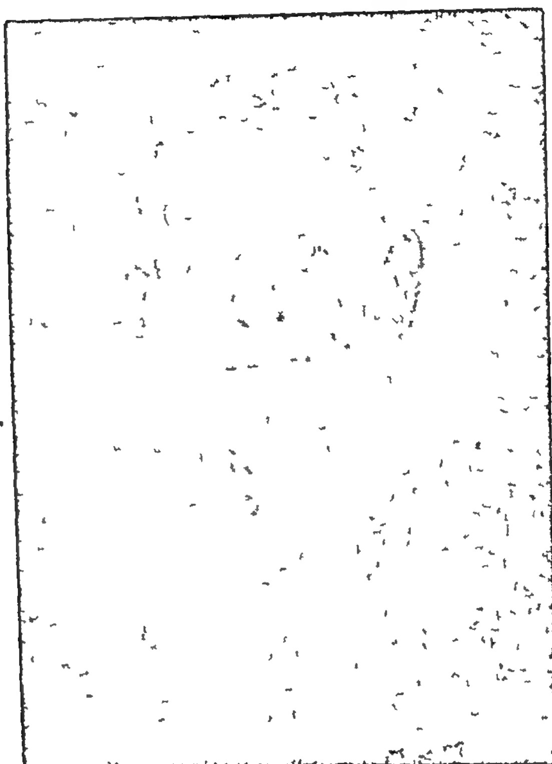
डाक्टर कुजविहारी त्रिपाठी, एम०ए०, वी०एल०, पी-एच०डी०

सन् १९३८ रेवेन्सा कालेज में अस्थायी रूप से सस्कृत विभाग में लेक्चरर नियुक्त। सन् १९३९ ई० में वही स्थायी रूप में। सन् १९४५ ई० में सस्कृत विभाग में असिस्टेण्ट प्रोफेसर। सन् १९५४ ई० में राजेन्द्र कालेज बलागीर के प्रिन्सिपल। सन् १९५५ से रेवेन्सा कालेज में पोस्ट ग्रेजुएट क्लास के अध्यापक।

आपकी प्रकाशित रचनाएँ—प्राथमिक ओडिया शिलालेखो का अध्ययन नामक गवेषणा मे आलोचनात्मक पाली धम्मपद (प्रथमार्ध) का सटीक ओडिया सस्करण, अलकार - परिचय, पुष्पाजलि ( कवितासग्रह ), ओडिशा के सस्कृत साहित्य का इतिहास, पुरी ओडिया साहित्यपरिषद द्वारा पुरस्कृत और प्रकाशसारपक्ष। एपिग्राफिका इण्डिका, ऐतिहासिक रिसर्च जनरल, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स पत्रिकाओ में, अग्रेजी भाषा मे कई निबन्ध प्रकाशित हुए है। और भी विभिन्न ओडिया पत्र-पत्रिकाओ में आपके ओडिया प्रबध प्रकाशित हो चुके है।

०

ढेंकानाल राज्य के गजेइ डीह गाँव में सन् १९२१ ई० में आपका जन्म हुआ। ढेंकानाल स्कूल, कटक रेवेन्सा कालेज, पटना कालेज और लंदन विश्वविद्यालय में आपने शिक्षा प्राप्त की। ढेंकानाल और रेवेन्सा कालेज के सर्वोत्तम छात्र होने के नाते आपको पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। आप कई पुस्तकों के लेखक है। प्रेमचद जी की अमर कृति गोदान का ओडिआ मे आपने



श्री गोलोकविहारी धल

अनुवाद किया है। हिन्दी मे ध्वनिविज्ञान के आप सर्वप्रथम लेखक है। प्रौढ साहित्य-प्रतियोगिता मे सन् १९५६, ५७, ५८ मे भारत सरकार के द्वारा तीन बार आप पुरस्कृत हुए है।

इंगलैंड, फ्रान्स, और अमेरिका का आपने विस्तृत पर्यटन किया। संस्कृत, हिंदी, बंगला, तेलुगु, तामिल, फ्रेंच आदि भाषाओं से आप परिचित है। राकफेलर फाउण्डेशन परिचालित, पूना, देहरादून, मैसूर मे भाषा के स्कूलों के और भारत सरकार के द्वारा परिचालित आई० ए० एस० स्कूल के आप सामयिक भाषाओं के शिक्षक है। उत्कल भारतीय पी० ई० एन० और अन्य भाषाओं के ज्ञाता एवं समाज के सदस्य है। सन् १९५४ और ५५ दो वर्ष के लिए आप उत्कल विश्वविद्यालय के सीनियर सभ्य थे। सन् १९५४ ई० में ओडिशा सरकार के पुरी कालेज में स्थान-अध्यापक नियुक्त हुए। इस समय पुरी कालेज में कार्य कर रहे है।

○

क्रिकेट, फुटवाल टेनिस आदि खेलो में वडे पारदर्शी थे। वाढ-प्रपीडित अचल की सेवा करने मे आपकी दिलचस्पी थी।

एम० ए० पास करने के वाद २२ अक्तूबर सन् १९१४ ई० को आपने रेवेन्सा कालेज में सस्कृत लेक्चरर के रूप में कार्य ग्रहण किया। १९२२ ई० में उसी कालेज में आप प्रोफेसर बने।

सन् १९१५ ई० में आप सेण्ट्रल यग उत्कल एसोसिएशन के उप-सभापति बने। उसी की सिफारिश तथा सहायता से आपने मानसिंह पाटना व झोलासाही रात्रि-विद्यालयो की स्थापना एव परिचालना की। आप बिहार-ओडिशा सस्कृत एसोसिएशन के सदस्य और परीक्षक भी थे। अब भी ओडिशा सस्कृत एसोसिएशन के सभ्य है। सन् १९१५ ई० से आज तक उत्कल साहित्य समाज के सभ्य है। वाद मे उत्कल साहित्य समाज के उपसभापति और सभापति हुए। आप राणीहाट हाईस्कूल के प्रतिष्ठाता है। आप नागणपुर ग्राम विद्यालय, कोरुआ हाईस्कूल एव मारवाडी हाईस्कूल की मैनेजिंग कमेटियो, प्रशासन शब्दकोष-सकलन कमिटी, राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा की अनुवाद समिति तथा निखिल उत्कल गोहत्या-निरोध समिति आदि के सभापति, रेवेन्सा कालेज तथा शैलवाला महिला कालेज की गवर्निंग वाडियो के मेंबर, और दिल्ली साहित्य एकाडमी के केंद्र-सभ्य हैं। ये पटना विश्वविद्यालय सिनेट के सदस्य और उत्कल विश्वविद्यालय के फेलो, सिण्डिकेट के सभ्य और डीन ऑफ फैकल्टी भी थे। जयपुर महाराजा के सभापतित्व मे आद्य गवेषणा समिति से आपको विद्याभूषण की उपाधि मिली है। सन् १९३१ ई० में राय साहव, १९४३ मे राय वहादुर और १९५५ में उत्कल विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधियाँ आपको प्राप्त हुई थी। स्वाध्याय के साथ साथ आप की गो-सेवा तथा वगीचे के काम मे रुचि है।

सन् १९२४ में स्वप्नादेश पाकर आपने ओडिशा के धर्मग्रन्थ-साहित्य की आलोचना और प्रकाशन पर ध्यान दिया। सन् १९२५ ई० मे आपकी "रहस्यमजरी" और "स्तुतिचिंतामणि" प्रकाशित हुई। फिर आपने प्राची समिति की स्थापना की और सहयोगियो से मिलकर प्राचीन साहित्य के सकलन का काम शुरु किया। आपने 'लावण्यवती', 'रसकल्लोल', 'मयुरा-मगल', 'विष्णुगर्भ पुराण', 'विदग्धचिंतामणि' आदि ५४ पुस्तको के सप्रसग सुविशाल मुखवध और टीकाएँ आदि प्रकाशित की है।

०

अनुयायी हैं। आपने सन् १९४३ ई० से 'कलिंग भारती' और उसके परिपोषक अनुष्ठान 'उत्कल छात्र साहित्यसमाज' की प्रतिष्ठा की है।

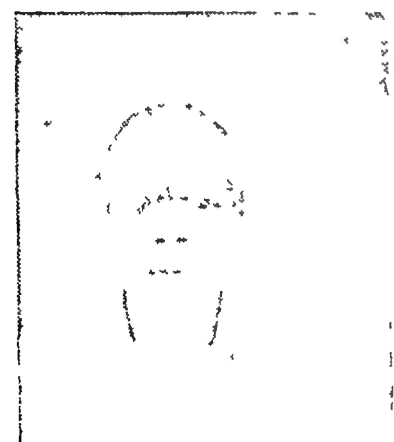
कविताओ में छन्द एव अलकारो की जातीय परपरा की रक्षा करना ओडिआ जाति के अनुकूल है। इस तरह की कविताएँ बनाना कवि का पवित्र व्रत है। आपकी कृतियो में गोस्वामी तुलसीदासकृत "रामचरितमानस" का ओडिआ भागवत वृत्त में अनवद्य अनुवाद और "विनय-पत्रिका" का ओडिशी मगीत वृत्त मे कलामजुल भाषान्तर, सकलित भक्तिरसात्मक श्री श्री "जगन्नाथ जणाण भजन", गौरचरण गीतावली, चौतीशी मधुचक्र, शशिरेखा, आदि ग्रन्थ ओडिआ जाति की अमूल्य सम्पत्ति हैं। आपने अपनी "कविताकुमुद" पुस्तक में अपनी मौलिक कविप्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है।

गुणग्राही ओडिशा सरकार ने सन् १९४२ ई० से आपको अपने लोक-सम्पर्क विभाग के रचनाव्यक्ष (प्रोडेक्शन अफसर) के रूप मे नियुक्त किया है।

कवि की कलम अव भी तेजी से चल रही है। एक दिन वह ओडिआ साहित्य को छन्द व अलकारो का सुवर्णयुग लौटा लायेगी और कवि का नारा "जय माँ कलिंग भारती" सारे ओडिशा मे गूंजकर जाति को जाग्रत करावेगी।

९

अध्यापक नटवर सामन्तराय का जन्म सन् १९१८ में पुरी जिला-अन्तर्गत रामचन्द्रपुर गाँव के एक मध्यवित्त परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम था रासविहारी सामन्तराय। वे लोकप्रिय और सज्जन थे। पढने के वाद पिता की सहायता और उत्साह से आप सन् १९३६ में पुरी-कलेक्टरेट मे काम करने लगे। ज्ञान-पिपासा वुझाने की कामना से इन्होने हजारीवाग, काशी आदि स्थानो का भ्रमण किया। इससे इनको जीवन में रोमाचकर अनुभूति प्राप्त हुई। अनाहारजनित कष्ट के कारण हजारीवाग मे आत्महत्या करते समय एक युवक ने इनको पकड कर वचा लिया था। इसके वाद वनारस में कुछ निराश्रय ओडिआ छात्रो के सर्वहारा मघ में शामिल हो, आत्मनिर्भर-शील हो, कालेज में अध्ययन करने लगे। सन् १९३९ मे फिर पिता की सहायता से कटक में वी० ए० पढा और कटक ट्रेनिंग कालेज से उत्तीर्ण होकर सन् १९४९ तक हाईस्कूल के शिक्षक वन गये। फिर शिक्षा विभाग मे सव-इन्सपेक्टर के रूप मे काम करते रहे।



अध्यापक श्री नटवर सामन्तराय एम०ए०

आप सन् १९१० में यूनिवर्सिटी कालेज से बी० एल० के प्रथम भाग में उत्तीर्ण हुए। सन् १९११ मे स्काटिश चर्च कालेज से आपने एम० ए० किया।

बी० ए० उत्तीर्ण करने के वाद आपने सत्यवादी स्कूल की स्थापना की और उसके प्रधान आचार्य वने। सन् १९१८ तक आप इसी पद पर रहे। फिर १९२० तक विद्यालय में शिक्षक रहे। इतने मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने आपको एम० ए० वर्ग में प्रोफेसर वना लिया। सन् १९२१ में आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया, इसलिए सन् १९२२ में आपको पहली वार कारावास और २०० रु० जुर्माने की सजा मिली। सन् १९५१ में कई कारणो से आपको काग्रेस दल छोडना पडा। सन् १९५५ में काग्रेस की ओर से पण्डित नेहरू ने एक चिट्ठी लिखकर आपका वडा आदर किया, अतएव आप फिर काग्रेस मे शामिल हो गये।

राजनीतिक जजाल में रहते हुए भी आपकी साहित्यिक साधना तथा ग्रथप्रणयन की धारा वहती चली आ रही है। वचपन से ही साहित्य की ओर आप आकृष्ट हुए है। सन् १९१२ मे आपने हैंडवुक ऑफ माडेल ड्राइग पुस्तक लिखी। यह पुस्तक वच्चो के लिए खूव उपयोगी साबित हुई। छात्र-जीवन मे आपने अग्रेजी काव्य "प्रिन्सेस" के अवलम्वन से 'प्रणयनी' काव्य की रचना शुरु की थी जो १९१९ मे खत्म हुई। उसी साल सितवर में आपके मौलिक काव्य 'कोणार्क' की रचना हुई। मन् १९२० मे आपने "खारवेल" और १९२३ में जेल के भीतर "दास नायक" पुस्तकें लिखी। साय-साथ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में आपके समालोचनात्मक लेख प्रकाशित होते रहे। सन् १९१३ मे सत्यवादी स्कूल से "सत्यवादी" मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। उत्कलमणि गोपवधु दास इस पत्र के सपादक और आप सहकारी सपादक थे। सन् १९२१ ई० मे उन प्रवन्धो का प्रकाशन शुरू हुआ और सम्वलपुर मे काग्रेस का काम करते वक्त "आर्य जीवन" के नाम से उसका प्रकाशन हुआ। सन् १९३६ में आपकी "गीतार भाष्य व टीका" पुस्तक प्रकाशित हुई। जून सन् १९३४ में आपने जेल से मुक्ति पाकर "नवभारत छापाखाना" तथा "नवभारत" मासिक पत्रिका की प्रतिष्ठा की थी। यह पत्र उस समय ओडिआ की अद्वितीय पत्रिका थी। १९३६ के वाद आपने अपने "ओडिया साहित्य र क्रम परिणाम" ग्रथ का प्रथम भाग प्रकाशित किया। केन्द्र व्यवस्था सभा से छुटकारा पाने के वाद सन् १९५३ में उस ग्रथ का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। हाल ही में आपकी ओडिया भाषा व साहित्य जैसी समालोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। सन् १९५५ में उत्कल विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर ऑफ लिटरेचर की उपाधि दी। उसी साल आप उत्कल विश्वविद्यालय के प्रो-चान्सलर भी वने।

o

तोह्फा बीबी। जब आप ४ माह के थे, तभी आपकी नानी ने आपको गोद ले लिया और आप ममिऔरे मे रहने लगे।

आपका लालन-पालन राजसी ढग से हुआ। कारण आपके मामा एक बडे रईस तथा जमीदार थे जो राजा के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। १४ साल तक ये गाँव के बाहर नही गये। मैट्रिक भद्रक मे रहकर पास किया था। इसी समय आपकी शादी हो गई।

पिता की तो इच्छा थी कि और अधिक पढने की जरूरत नही, अब जमीदारी के काम की देखभाल करे। लेकिन आपकी रुचि और अधिक पढने की थी। इसलिए पिता से बिना कहे-सुने कटक आकर आपने कालेज मे नाम लिखा लिया। आप यहाँ अच्छे विद्यार्थियो में गिने जाते थे। बी० ए० की परीक्षा देने जा रहे थे कि गान्धीजी की आँधी में आप आ गये। इससे परीक्षा को त्याग असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गये। तब से अनेक बार जेल गये। जेल में आपने अनेक पुस्तके लिखी, गीता का अनुवाद किया, उपन्यास लिखे, कविताएँ लिखीं, जो छपी और तत्कालीन सरकार के द्वारा जब्त भी की गईं। १०–१५ पुस्तके सबसे प्रसिद्ध और कलेवर वृद्धि की ओडिसा का इतिहास है। आजकल आप 'झकार' नामक मासिक पत्र निकाल रहे हैं तथा 'प्रजातन्त्र' नामक सस्था भी चला रहे हैं जिसका प्रधान उद्देश्य है उत्कल के साहित्यिको को साल मे एक बार एकत्रित किया जाय और बिना भेद-भाव के शुद्ध साहित्य की चर्चा की जाय। नाटक भी खेले जाते हैं। कविता तथा प्रबन्ध आदि पढे जाते हैं।

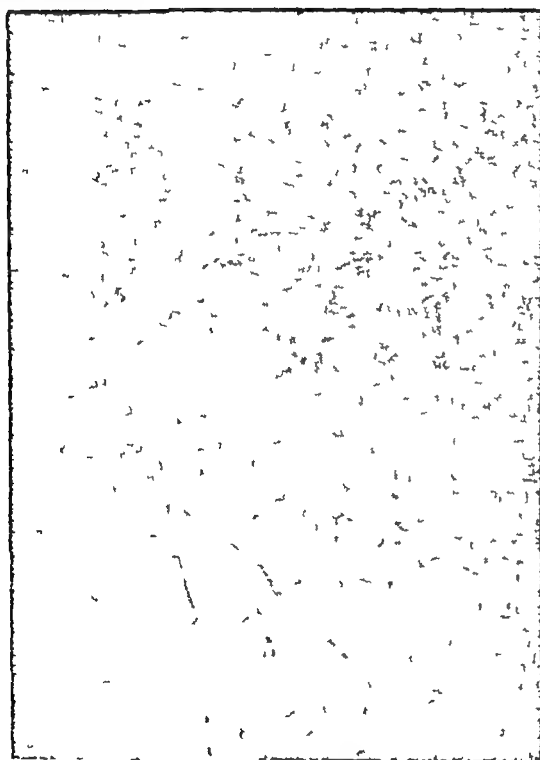
आपकी प्रतिभा, साधना-पथे और ओडिशा का इतिहास का हिन्दी अनुवाद किया जा चुका है। प्रतिभा तो छप गई है, बाकी दो यन्त्रस्थ है।

आजकल आप उत्कल के मुख्य मन्त्री हैं, फिर भी सारी झझटो के रहते भी नियमित रूप से कुछ न कुछ लिखते हैं। आपके लेख उत्कल में आदर के साथ पढे जाते हैं।

इतिहास में आपकी अधिक रुचि है। उसकी खोज मे आज भी आप लग रहे हैं। इतिहास समिति के आप चेयरमैन है। इतिहास पर आपको विश्वविद्यालय ने 'डाक्टर' की उपाधि दी थी और उत्कल विश्वविद्यालय ने साहित्य पर।

आप उत्साही, साहसी तथा सफल शासक भी हैं। सभी आपके कार्य और लगन पर विश्वास करते हैं। देशवासी अपना गौरव भी मानते हैं।

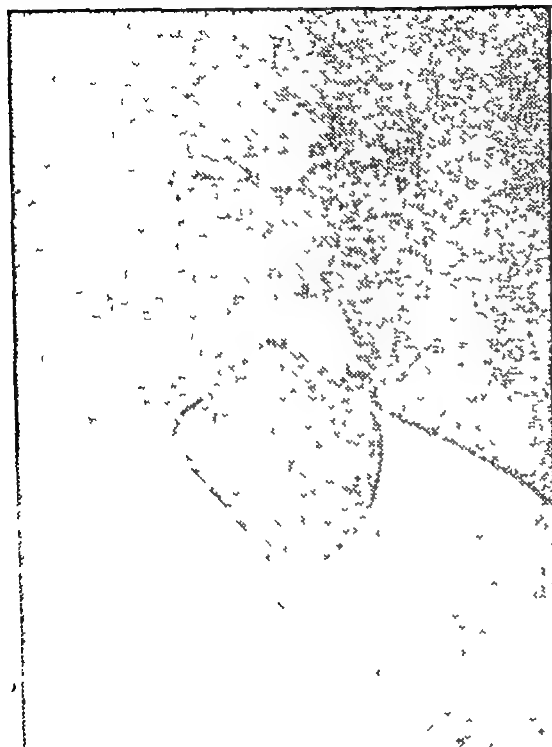
आपका जन्म केन्दुझर जिलान्तर्गत आनदपुर ग्राम मे हुआ था। आप आनदपुर माइनर ल मे पढकर केंदुझर अध्ययनार्थ गये। वहाँ से मैट्रिक परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा के लिए क आये। यहाँ के रेवेन्सा कालेज से बी० ए० पास किया। एम० ए० में विशेष योग्यता प्राप्त ने के कारण आपको स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ था। आपने "वैदिक भारतीय इतिहास" की परीक्षा ारस हिंदू विश्वविद्यालय से सन् १९४९ मे पास की। उत्कल विश्वविद्यालय से सन् १९५० ई० कानून की परीक्षा पास की।



श्री विपिनविहारी नाथ

सन् १९५० ई० में आप 'ईस्टर्न टाइम्स' दैनिक पत्र के सब-एडीटर के रूप में नियुक्त ।। सन् १९५५ ई० में आप ओडिशा के सरकारी म्यूजियम के सुपरिंटेंडेंट हुए। सन् १९५८ में म्यूजियम और आर्कोलॉजी के सुपरिंटेंडेन्ट हो गये।

डाक्टर पटनायक का जन्म केन्द्रापडा अन्तर्गत चअँपुर (हुडा साही) ग्राम में सन् १८७७ ई० के दिसम्बर में हुआ था। उनके पिता का नाम साधुचरण महाति और माता का नाम पितन देवी था। ब्रह्मपुरनिवासी श्री जगन्नाथ पटनायक ने आपको, ६ वर्ष की अवस्था में ही, गोद ले लिया था। कलकत्ता से वकालत पास कर आये तो कटक हाईकोर्ट में वकालत करने लगे।



डाक्टर भिकारीचरण पटनायक

विदेशी शासनकाल में अत्याचारियो से बचने के लिए एव जन-साधारण के कल्याण के निमित्त विभिन्न लोकहितकारक अनुष्ठानो में आप सहयोग देते थे। नौकरी के प्रति वितृष्णा और अपनी मौलिक प्रतिभा, स्वाधीन चिताधारा, निर्भयता, और सरस व्यग के लिए आप सुपरिचित एव लोकप्रिय हुए थे।

कटकविजय, ससारचित्र, सुशीला, राजा पुरुषोत्तम, रत्नमाली, निरुपमा और नदिकेश्वरी प्रभृति नाटक, यौतुक, अद्भुत आदर्श व भिखारी आदि प्रहसन लिखकर आपने अमर-ख्याति प्राप्त की है।

पुराने समय की एकमात्र साहित्यिक पत्रिका "उत्कल साहित्य" में आपकी शताधिक कविताएँ प्रकाशित हुई थी। वट, नेता, शातिआ वाहा, कुटीर शिल्प, चाषी भाई, गौमाता, सहयोग करण प्रभृति अनेक पुस्तके लिखकर आप गाँवो मे भी अत्यत लोकप्रिय हो गये। जाति के प्रति उनका विशेष अवदान है। क्षुद्र कुटीर शिल्प को नये रूप में गढना, फालतू चीजो से सुदर और उपयोगी चीजें बनाना आपका प्रमुख उद्देश्य था। अर्थकरी वकालत को तिलाजलि देकर आप कुटीर शिल्प की उन्नति मे लगे थे। यही कार्य गाँवो मे भी विशेष प्रचलित था।

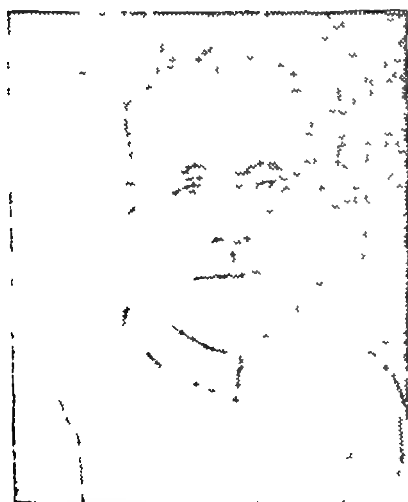
नाग भागो मे प्रकाशित उनका "गृहशिल्प" कुटीर शिल्प पर गवेषणालब्ध और मौलिक ग्रथ है। बगला मे अनुवाद होने पर वह अन्यत लोकप्रिय हो गया है। स्वाधीनता-आन्दोलन

और शक्तिदायक सगीतो के अभ्यास तथा प्रचार के लिए पुस्तके लिखकर सामाजिक सगठन मे सहायता पहुँचाना श्यामसुदर जी के जीवन का मुख्य कार्य रहा।

स्वर्गत बलदेव देव धीर सामत और श्री श्यामसुदर धीर जी की प्रचेष्टा से "ओडिशा सगीत समाज" की प्रतिष्ठा हुई, और ये वहाँ पर छात्र-छात्राओ को शिक्षा देते रहे। इनके छात्र-छात्राओ में से कई कृती शिल्पियो ने ओडिशा तथा बाहर सगीत-प्रतियोगिताओ में भाग लेकर अच्छा नाम कमाया है। स्वय श्यामसुदर जी भी रेडियो के सितार शिल्पी है। पटायत साहब के तिरोधान के बाद इनकी सगीत-चर्चा में बहुत बाधा पडी, फिर भी ये कार्य में लगे हुए है। आप पिछले १४-१५ वर्षो से कटक रेवेन्सा कालेज में सगीतशिक्षक का कार्य कर रहे है। हर साल उत्कल विश्वविद्यालय की ओर से वार्षिक युवक-सम्मेलन (दिल्ली) में सगीत-सचालक का कार्य भी करते है।



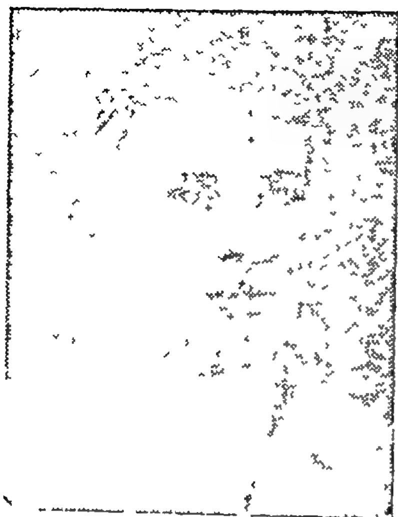
आपका जन्म कटक जिले के बडम्बागढ में, सन् १८९८ ई० के दिसम्बर में हुआ था। वही पर आपकी प्राथमिक शिक्षा हुई। खुरदा हाई स्कल से आप मैट्रिक उत्तीर्ण कर कालेज में भरती हुए।



कविचन्द्र कालीचरण पटनायक

बचपन से आप ओडिशी सगीत के प्रति आकृष्ट हुए। कालेज मे पढते वक्त आपने स्वर्गीय द्विजेन्द्र दास अधिकारी से तीन वर्ष तक हिन्दी गीतो तथा एसराज की शिक्षा पाई। चार वर्ष तक गया के प्रसिद्ध गायक श्री बनवारी मिश्र से भी आप शास्त्रीय सगीत सीखते रहे। सन् १९२३ ई० मे आगरा के मल्लका दास से आपने रसाभिनय सीखा। सन् १९४० ई० तक आप गाने में अभ्यस्त हो गये थे। बाद में आपने गाना छोड दिया।

सन् १९०७ ई० में आप बाकी माइनर स्कूल मे पढते थे तब आपके पिता सुदक्ष अभिनेता थे। सहाध्यायियो से मिलकर आप खलिहान मे चद्दरें तथा दरियाँ बिछाकर छोटे नाटको का अभिनय करने लगे। इनमें आप स्वय निर्देशक रहते थे। बाकी स्कूल के प्रधान शिक्षक स्वर्गीय रघुनाथ राय आपको इन अभिनयो में प्रोत्साहन देते थे। क्रमश आपने अभिनय में दक्षता प्राप्त की और 'बाण-दर्पदलन', 'सीता-विवाह',



आप देहरादून फारेस्ट कालेज के एक सदस्य हैं। सात वर्ष तक फारेस्ट अफसर के रूप में कार्य करने के बाद भारतीय प्रशासन-सेवा में नियुक्त होकर हीराकुद में भू-सस्कार विभाग के कर्मकर्त्ता है। पीछे अतिरिक्त मैजिस्ट्रेट और जिलाधीश के रूप मे ओडिशा के विभिन्न जिलो में घूमने के बाद १९५५ ई० से अब तक कृषि विभाग के निर्देशक के रूप में काम कर रहे है।

श्री गोपालचद्र दास, आई०ए०एस०

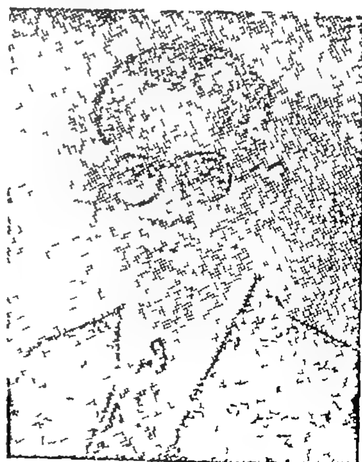


श्री विश्वनाथ साहु का जन्म कटक जिला, गोविन्दपुर थाना के कलन्तिरा गाँव में १ अगस्त १९१० ई० को हुआ था। छुटपन से ही मातृहीन होने के कारण इनका लालन-पालन पितामह के द्वारा किया गया।

सन् १९३० में रेवेन्सा कालेज से आइ० ए० पास करके नागपुर कृषि-कालेज में दाखिल हुए। वहाँ से बी० एजी० उपाधि प्राप्त की। विभिन्न फार्मों मे इन्होने कृषि-अफसर के रूप में काम किया है। इसी सिलसिले में इन्होने कनाडा की यात्रा की थी और १९४० ई० में 'मास्टर आफ साएन्स इन एग्रिकल्चर' की उपाधि प्राप्त की।

आपने कृषि सम्बन्धी बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं—पनिपरिबा चाष (११ खण्ड), पुष्पचाष ओ पुष्प उद्यान, फल चाष (७ खण्ड), रबि-फसल, कपा, चिनाबादाम, गो-मगल ओ गो-चिकित्सा, घास ओ गो खाद्य, आम माछ सम्पद, खाद्य समस्या समाधान।

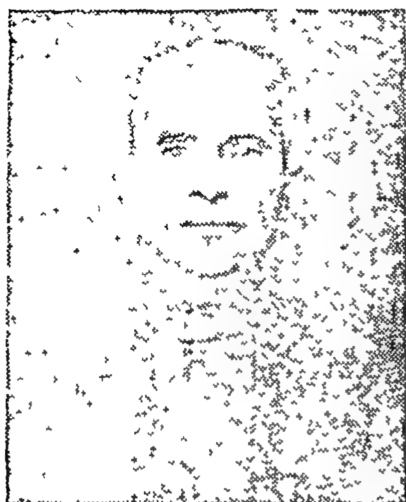
इनके अलावा आप मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में कृषि सम्बन्धी लेख लिखते आ रहे हैं।



श्री विश्वनाथ साहु

जनता की दशा शोचनीय हो गई थी, लेकिन अब वह अवस्था क्रमश बदलती जा रही है। हीराकुड और डुडुमा के बाँधो के बन जाने पर ओडिशा में विद्युत्-शक्ति की कमी न रह जायगी। रूरकेला में चल रही लोहे के कारखाने की योजना अपनी समाप्ति पर निश्चय ही खेतिहर ओडिशा को औद्योगिक ओडिशा के रूप में परिवर्तित करने में सहायक होगी। उसके कारण यहाँ कई कारखानो के बनने की पूरी सभावना है। इस प्रकार खेती पर निर्भर करने वाले अधिकाश लोगो को पर्य्याप्त रोजगार मिल सकेगा और खेती की पैदावार पर निर्भर रहनेवाली जनसख्या मे कमी भी होगी। खेती की उन्नति के साथ-साथ कल-कारखानो के विकास से ओडिशा का निकट भविष्य अत्यत आशाप्रद है। ऐसा हो जाने पर यहाँ की सर्वतोमुखी प्रगति के द्वार अवश्य खुल जायेंगे।





श्री कान्हुचरण मिश्र एम०ए०

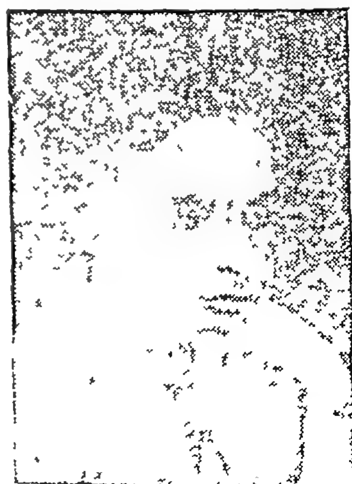
आप रेवेन्सा कालेज में ओडिया विभाग मे अध्यापक का कार्य करते हैं। आपका जन्म पटामुडाई के इच्छापुर शासन के प्रसिद्ध ब्राह्मण पडित वश में सन् १९२३ ई० मे हुआ था। आपने ११ वर्ष की उम्र में ही काग्रेस आन्दोलन में भाग लिया था। आपकी शिक्षा कलकत्ता जैसे विशाल शहर में हुई। आई० ए० और बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् एम० ए० किया और सन् १९४३ ई० में सर्वश्रेष्ठ कृती छात्रो में होने के नाते स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

सन् १९४८ ई० से आपका अध्यापक-जीवन प्रारभ हुआ। आप ओडिया में साहित्य-समालोचक के रूप में विख्यात हैं। आप ओडिशा रिलीफ कमेटी एव पी० ई० एन० के सभ्य हैं। इसके अतिरिक्त आप अनेक शिक्षानुष्ठानो के साथ सयुक्त हैं।



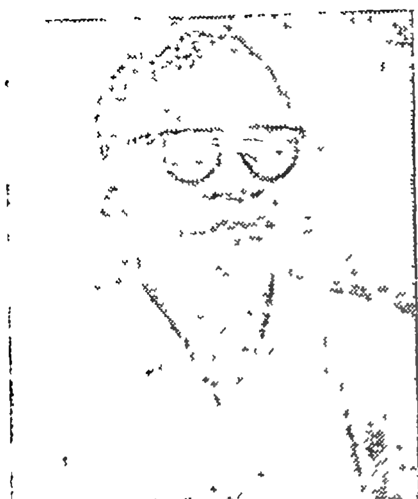
श्री चक्रधर महापात्र का जन्म ८ फरवरी १९०७ ई० में कटक जिले के नरसिंहपुर गाँव में हुआ था। इन्होने "कलिंग काहाणी", और उत्कल गाँउली कहानी लिखी है। ये राजगुरु महापात्र के वशधर है। ये वचपन से पितृ-मातृ-हीन है। जननी शौरी देवी के कठ से सुनते सुनते कविता के प्रति इनकी ममता जागी। उत्कल भारती कुतला कुमारी के साहचर्य से इनकी साधारण प्रतिभा का विकास होने लगा। ये गाउली गीत और कहानियों के सग्राहक हैं।

गोवर गोटेइ (उपन्यास), अपूर्ण प्रेम (उपन्याम), वलागी (ऐतिहासिक उपन्यास), रणमाधुरी (उपन्याम), रोडग वक्सि (ऐतिहासिक उपन्यास), मिशन वालिका (कहाणी), उत्कल गाँउली गीत, वालेश्वर (काव्य) आदि आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं।



श्री चक्रधर महापात्र

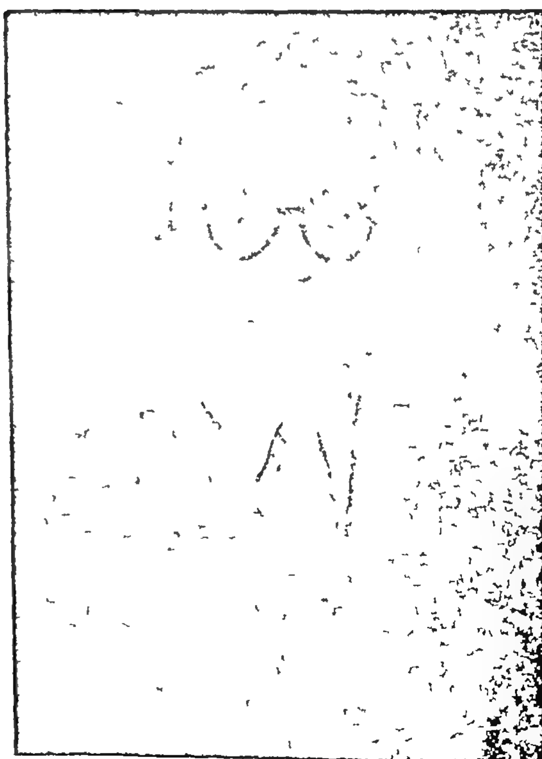




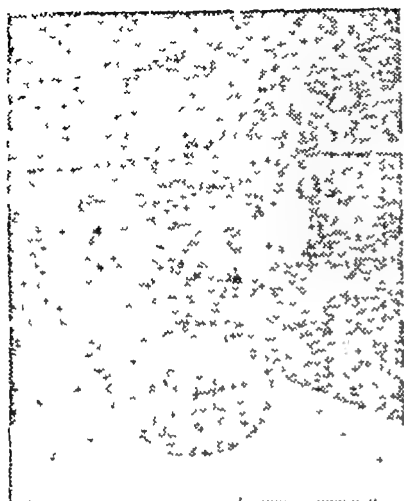
आपका जन्म सन् १९०५ में हुआ था। आप आजकल उत्कल सरकार के पबलिसिटी विभाग के अफसर हैं। आप कांग्रेस के स्वदेशी आन्दोलन के एक बडे ही उत्साही और क्रान्तिकारी व्यक्ति हैं।

श्री सुधीरचन्द्र घोष

आपका जन्म ७ अप्रैल सन् १९१० ई० में हुआ था। रेवेन्सा-कालेज कटक से आपने बी० एस्०-सी० पास किया। पटना विज्ञान कालेज से पदार्थशास्त्र लेकर एम० एस्-सी० पास किया। फिर १९२९ ई० के नवम्बर में आपकी नियुक्ति रेवेन्सा कालेज में प्रोफेसर के स्थान पर हुई। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा पी०-एच० डी० की उपाधि सन् १९४० ई० में आपको मिली। तत्पश्चात् रेवेन्सा कालेज में सहकारी प्राध्यापक के रूप में फिजिक्स-प्रोफेसर के स्थान पर कार्य करने लगे। सन् १९४४ ई० के दिसम्बर में शिक्षा विभाग छोडकर आप स्पेशल आफीसर इन्डस्ट्रियल सर्वे ओड़िसा योजना विभाग एव पुर्ननिर्माण भाग मे सहयोगी



डा० एच० बी० महानि, एस०एस-सी०, पी-एच०डी०

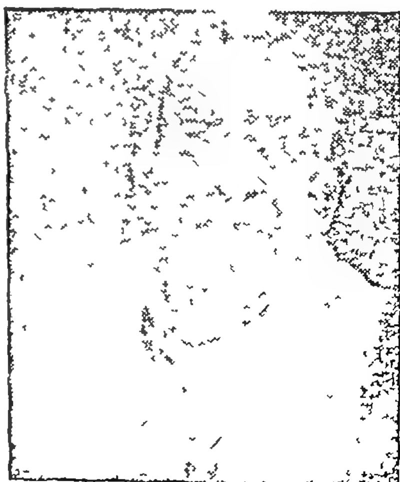


पडित श्री विनायक मिश्र

आपका जन्म नयागड राज्य के गरण कुल गॉव में सितम्बर १८९४ ई० में हुआ था। आपने नयागड मध्य अग्रेजी विद्यालय से उत्तीर्ण होकर कटक ट्रेनिंग स्कूल में शिक्षा पाई, और १९१४ ई० मे वर्नाक्यूलर मास्टरशिप परीक्षा पहली श्रेणी मे पास की। आप उस स्कूल के प्रधान शिक्षक श्री चद्रमोहन महारणा के अत्यत प्रिय छात्र थे। इसके वाद आपने नीलगिरि मध्य अग्रेजी विद्यालय मे तीन वर्ष तक शिक्षकता करते हुए सस्कृत रघुवश, कुमारसभव आदि काव्यो का अध्ययन किया। १९१८ ई० में स्व० विजयचद्र मजुमदार को ओडिया साहित्य-परिचय के सकलन में सहायता करने के लिए आप कलकत्ता गये। वहाँ १९२१ ई० में कलकत्ता विश्व-विद्यालय के सहकारी ओडिया अध्यापक-पद पर नियुक्त हो गये। इसके वाद १९३२ ई० में अध्यापक पद पाकर १९४९ ई० तक कार्य करके अवकाश ग्रहण कर लिया।

ओडिया भापा का इतिहास, ओडिया साहित्य का इतिहास, महामानव गाधीजी, Orissa under the Bhauma Kings, Dynasties of Mediaeval Orissa, भारतीय दर्शन प्रवेश, ओडिया साहित्य प्रकाश आपकी प्रकाशित पुस्तकें है। Indian Culture and Cult of Jagannath अप्रकाशित ग्रथ है।





श्री कृष्णप्रसाद वसु

श्रीकृष्णप्रसाद वसु का जन्म जाजपुर के अन्तर्गत कुआँसरपुर गाँव मे हुआ था। आप लगभग चार सौ वर्ष से रहनेवाले वगीय परिवार के है।

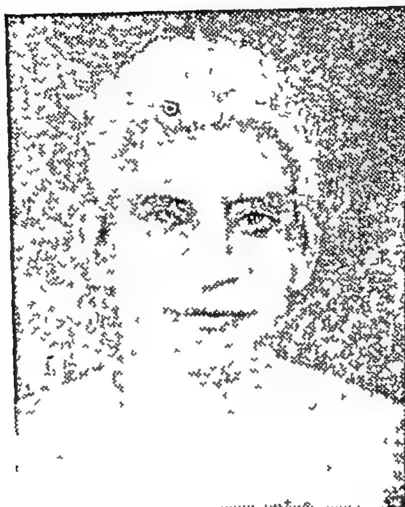
आप सगीतज्ञ, गायक, यन्त्री, लेखक और कवित्व में विख्यात है। आपकी शिक्षा देने की प्रणाली भी आदर्श और सुगम है। किसी व्यक्ति मे एक ही साथ इतने गुण वहुत ही कम दिखाई पडते है।

वचपन मे हरिदास वावाजी की शिक्षा मे ये गौडीय वैष्णव कविता के मुकठ गायक वने।

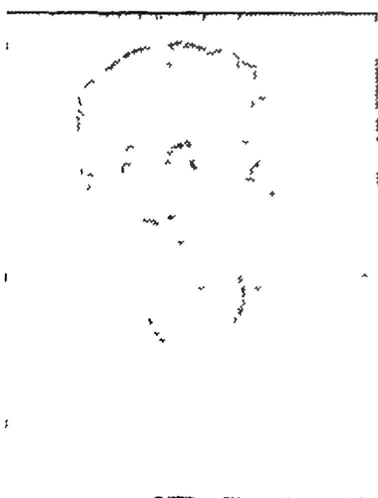
कलकत्ते के St Zaveers College में पढते समय आप व्रिटिश विरोधी राजद्रोही

# परिशिष्ट ख

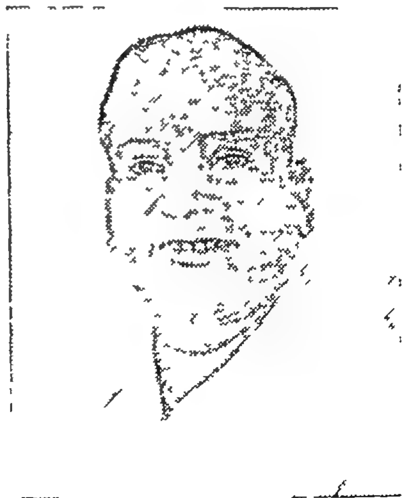
## अनुवादक



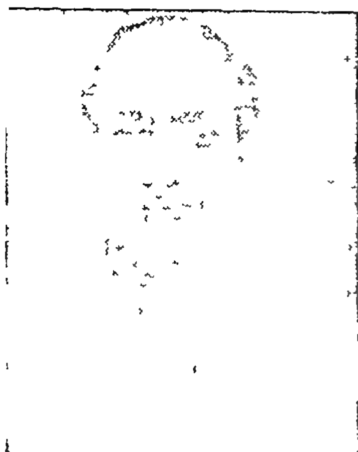
श्री रामसुख सिंह भारतीय



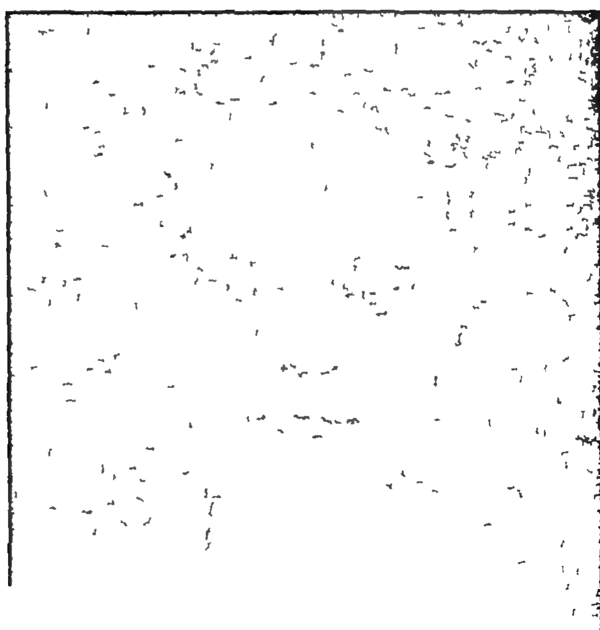
श्री गोविन्दचन्द्र मिश्र



श्री शिवराम उपाध्याय, एम०ए०



श्री राधेनाथ 'विशारद'



श्री वनमाली मिश्र

# परिशिष्ट ग

## राष्ट्रभाषा रजतजयन्ती-ग्रन्थ के सक्रिय सहयोगी

स्वामी विचित्रानन्द दास

डाक्टर हरेकृष्ण मेहताब

डाक्टर आर्त्तवल्लभ महान्ति

श्री भागीरथी महापात्र

श्री गुरुचरण महान्ति

श्री राजकृष्ण वोस

श्री राजेन्द्रनारायण सिह देव

कविचन्द्र श्री कालीचरण पटनायक

श्री शिवराम उपाध्याय

श्री सुधीरचन्द्र घोप

श्री अनसूयाप्रसाद पाठक

श्री वनमाली मिश्र

श्री जगन्नाथ मिश्र

श्री राधेनाथ पण्डित

श्री श्रीहर्ष मिश्र

श्री गोपीनाथ साहु

श्रीमती विनीता पाठक

श्री रामसुख सिंह

o

ने पशु-पक्षियो मे कई प्रकार के काम अनुकरण द्वारा सीखे हैं और यह इसके दीर्घ समय के परीक्षा-मूलक पर्यवेक्षण का ही परिणाम है। विशेषज्ञ पडितो ने प्रथम प्रस्तर-युग की कार्यावलियो को आदि-प्रस्तर या प्रत्न-प्रस्तर युग नाम दिया है। इस समय के सभी अस्त्र काटने या छेदने के लिए तैयार हुए थे। इसके वाद मनुष्य के विकास और जीविका-निर्वाह के लिए नये-नये हथियार तैयार करने की प्रवृत्ति वढी। अत प्रत्न-प्रस्तर युग के अस्त्रादि की अपेक्षा नव्य प्रस्तर के अस्त्रादि अधिक परिमार्जित हुए। इस समय लोग आग का व्यवहार सीख चुके थे। जीव-जतुओ के मास को आग में भूनकर खाना तथा फल, मूल और अनाजो का खाद्य रूप में व्यवहार करना भी उन्हें मालूम था। इसके अतिरिक्त मिट्टी के वर्तन और रसोई वनाने का उनको विशेष ज्ञान था। इस युग के लोगो के कार्य के विषय में हम ऐसी ही थोडी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

ओडिशा के मयूरभज, ढेकानाल, और सम्वलपुर जिलो से काफी प्राचीन या प्रत्न-प्रस्तर युग के अस्त्र आविष्कृत हुए हैं। प्रत्न-प्रस्तर युग के वाद नव्य युग के अनेक चिह्न ओडिशा के मयूर-भज, केउझर, ढेंकानाल, पुरी, और सुदरगढ जिलो से काफी सख्या में मिले हैं और मिल भी रहे हैं। गजाम, कोरापुर, कालाहांडी, वलागीर, कटक, वालेश्वर, सवलपुर आदि जिलो से भी पत्थर के शस्त्रो के अवशेष न मिलने पर भी, आशा है कि यत्नपूर्वक खोज करने पर अवश्य मिलेंगे।

पुराणो के अध्ययन से पता चलता है कि मयूरभज, ढेंकानाल, सवलपुर और इसके आस-पास के स्थानो में प्राचीन आर्य-सभ्यता प्रसारित हुई थी। वैवस्वत मनु के पूर्व बुध के औरस और 'इला' के गर्भ से चद्रवशी राजा के आदिपुरुष जन्मे थे। उसी इला ने शिव के वरदान से पुरुष होकर सुद्युम्न नाम धारण किया था। सुद्युम्न के उत्कल, जय, और विनल नाम के तीन लडके पैदा हुए। इसी उत्कल के नाम पर उसके राज्य का नाम उत्कल पडा। अत उत्कल आर्यो का एक प्राचीन वासस्थान था। अधिक सभव है कि आधुनिक मयूरभज, सवलपुर, ढेंकानाल आदि जिले उस प्राचीन उत्कल के अन्तर्गत रहे हो।

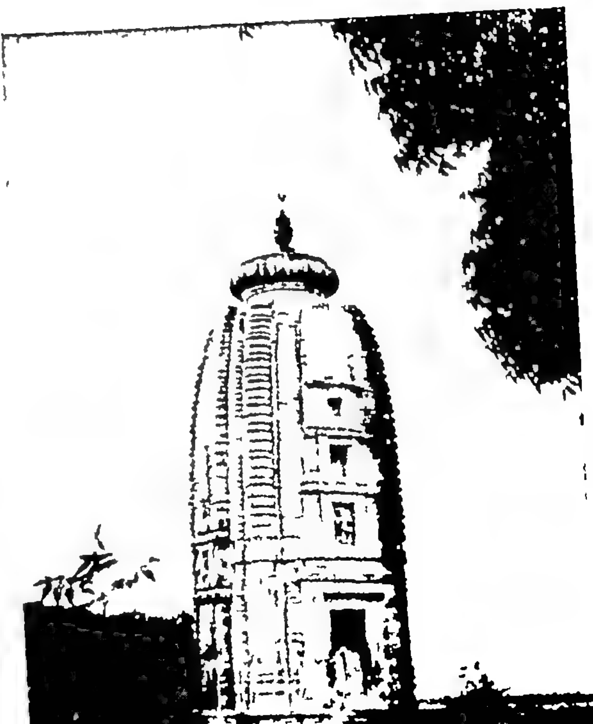
### ताम्र युग

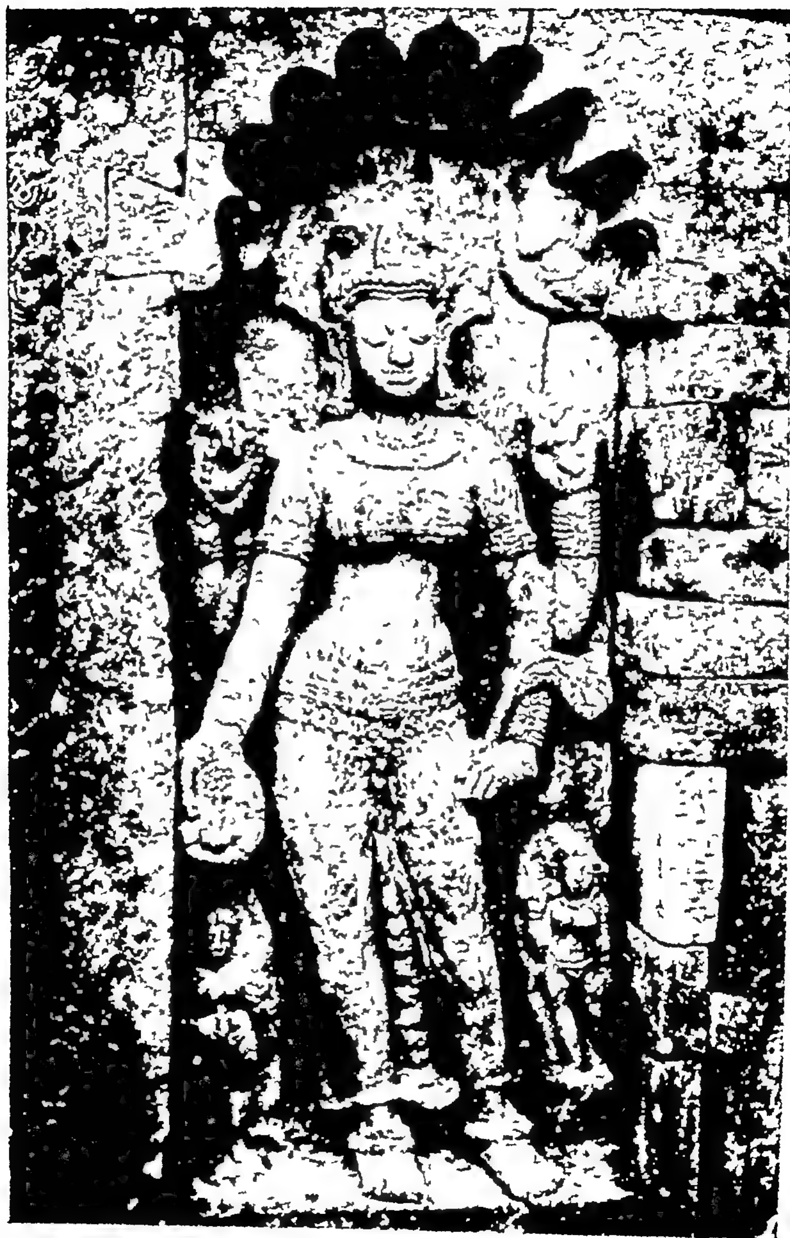
नव्य प्रस्तर युग के अतिम चरण में लोगो ने कुल्हाडी जैसे हथियार के सिवा वर्छी जैसे स्कध-युक्त हथियार का वनाना सीख लिया था। कुल्हाडी से काटने और वर्छी से छीलने का काम होता है। इसलिए इस प्रकार के अस्त्र मानव-प्रगति के परिचायक है। इसके अतिरिक्त उस समय के लोग धातुनिर्मित अस्त्रो का व्यवहार भी सीख गये थे। पृथ्वी मे चारो ओर उस समय ताम्र-निर्मित अस्त्र का प्रयोग होता था अत इस काल को ताम्र युग नाम दिया गया है। छोटा नागपुर और मयूरभज जिले से इस प्रकार के ताम्र-निर्मित अस्त्र आविष्कृत हुए है। ये सभी पत्थर और धातु से वने हुए अस्त्र, समुद्र-तटीय अचलो से न प्राप्त होकर, पार्वत्याचलो में मिले है। प्रस्तर शस्त्रो और ताम्रास्त्रो के निदर्शन द्वारा यह मान लिया गया है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही ओडिशा आदि मानव का वासस्थान था। सुदरगढ इलाके के एक प्राकृतिक गह्वर मे इस युग के लोगो के द्वारा निर्मित गेरूमाटी का चित्र भी आविष्कृत हुआ है। ऐसा मालूम पडता है कि सुदरगढ इलाके

अतर्गत सोरो के आसपास गडिवेढ में 'शीनल' लिपि से युक्त अनेक मुद्राएँ प्राप्त हुई है। ये सभी ओडिशा की प्राचीनतम मुद्राएँ कही जा सकती है। पुरातत्त्वविदो का कहना है कि ओडिशा के मयूरभज, वालेश्वर, कटक, पुरी आदि समुद्रतटीय जिलो से पुरी कुशाण नामक ताम्रमुद्राएँ काफी सख्या में प्राप्त हुई है। ये सभी मुद्राएँ कुशाण मुद्रा के अनुकरण पर निर्मित हुई है इसलिए इनका वैसा ही नाम पडा। पहले की मुद्राओं में कोई भी लिपि नही थी किंतु वाद की मुद्राओ में एक ओर 'टका' और दूसरी ओर रथ के सदृश तीन चिह्न दिखाई पडते है। ये मुद्राएँ किस राजा की है, यह ठीक-ठीक नही मालूम पडता। प्रत्नतत्त्व-विशारद वेगलार (T D M Beglar) ने लिखा है कि इन सभी भारतीय मुद्राओ के अतिरिक्त मयूरभज के वामनघाटी सवडिवीजन के अन्तर्गत रायरग-पुर मे कई स्वर्णनिर्मित रोमन मुद्राएँ प्राप्त हुई है। उनमें रोम सम्राट् कास्टेन्टाइन और गोंडियन सम्राटो के चित्र अकित है। रोम के गोंडियन सम्राटो ने सन् २३५ से २४४ तक और दो कास्टेन्टाइन सम्राटो ने क्रमश सन् ३२३ मे ३५३ और सन् ३५३ से ३६१ तक राज्य किया था। उनकी मुद्राएँ रोम से मयूरभज कैसे आई? ऐतिहासिको को ऐसे प्रमाण मिले है जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि उस समय रोम और भारत के वीच वाणिज्य का सवव वडा घनिष्ठ था। उस समय ओडिशा के उपकूल में ताम्रलिप्ति आदि कई वदरगाह थे। इन वदरगाहो के व्यापारी इन रोमन मुद्राओ को अपने व्यापारिक केंद्र में ले गये थे और इस प्रकार ये मुद्राएँ पर्वतमालाओ से घिरे हुए रायरगपुर तक लाई गई थी। वहाँ इन्हें किसी ने जमीन में गाड दिया था। ओडिशा से ६ठी शताव्दी से १२वी शताव्दी तक की कोई भी स्वदेशी या विदेशी मुद्राएँ नही मिली है जव कि हुएन-साग ने ६ठी-७वी शताव्दी के उत्कलीय नौवाणिज्य का आकर्षक विवरण उपस्थित किया है। आशा है कि इस युग के मुद्रा-इतिहास का अधकाराच्छन्न अध्ययन कभी न कभी अवश्य प्रकाश में आयेगा। गग राजाओ के समय की, छोटे-छोटे आकारवाली, स्वर्णमुद्राएँ ओडिशा के कई जगलो से मिली है। उत्कल की स्वाधीनता के लोप होने के पश्चात् यहाँ मुगलों की मुद्राएँ प्रचलित हुई। मुगल राजाओ की मुद्राएँ ओडिशा के कटक और हरिहरपुर (आधुनिक जगतसिंहपुर) में थी। मरहठो की अपनी कोई स्वतत्र मुद्रा थी ही नही। फिर ब्रिटिश काल मे पहले सन् १८३५ तक तो मुगल सम्राटो के नाम पर, तत्पश्चात् १९०२ से १९४७ तक इंगलैंड के राजाओ के चित्रो से युक्त मुद्राएँ ओडिशा मे प्रचलित रही।

### लिपि तत्त्व

प्रत्नतत्त्व के अनुसधान का एक प्रधान विभाग लिपितत्त्व है, क्योकि लिपितत्त्व की गवेषणा द्वारा किसी भी देश के प्रत्नतत्त्व का विकास-क्रम आसानी से समझा जा सकता है। ओडिशा के प्रत्नतत्त्व पर ओडिशा के लिपितत्त्व का प्रभाव नीचे लिखे विवरण से आसानी से मालूम हो जायगा। पहले कहा गया है कि ओडिशा वहुत प्राचीन काल से मानव का वासस्थान रहा है, लेकिन वहाँ से प्राप्त मनुष्य के व्यवहृत पदार्थो में से मृत्तिका-निर्मित पात्र या मूर्ति के सिवा दूसरे सभी पदार्थ नीरव साक्षी-स्वरूप है, क्योकि ये सव किसी भी सिद्धात पर पहुँचने के लिए सहायता नही करते।







श्री श्री कटकचण्डी

(नीचे) काठजोडी का पत्थरबाँध



अवलोकितेश्वर ( उदयगिरि कटक )

श्री श्री कटकचण्डी



(नीचे) काठजोड़ी का पत्थ

पाणिग्राही का कहना है कि इस युग के भास्कर ने मनुष्य, और जीव-जतुओ की मूर्ति की तैयारी मे जो पारदर्शिता दिखाई है, वह बोधगया, साँची और भरहुत के साथ तुलनीय है। उदयगिरि और खडगिरि के जय-विजय, पणम, स्वर्गपुरी, मचपुरी, गणेश, राणीनहर, अनत गुफा, आदि तत्कालीन स्थापत्य के उज्ज्वल निदर्शन है। शिल्पियो ने गिरि-गात्र खोदकर उसमें रहने का जो नमूना दिखाया है उमसे उनके शिल्पज्ञान की पराकाष्ठा मालूम पडती है। ओडिशा के इस युग के भास्कर्य्य का परवर्ती युग पर क्या प्रभाव पडा था, यह समझने के प्रमाण नही है, परन्तु इस युग का गुहा-स्थापत्य ८वी शताब्दी से ११वी शताब्दी के बीच खोदी गई गुफाओ मे प्रमाणित हो जाता है। ८वी शताब्दी की धउली पहाड और १०वी-११वी शताब्दी की खड-गिरि की नव मुनि, और ललाटेन्दुकेशरी आदि गुफाएँ उल्लेखनीय है। केउझर जिले के सीताविझ में जो गिरि-चित्र मला है उसमें उत्कीर्णित लिपि से मालूम होता है कि इसका ममय ५वी शताब्दी है। ओडिशा में कही भी दूसरी जगह ऐसे चित्रो के निदर्शन नही हैं। लेकिन इस एक निदर्शन से ज्ञात होता है कि प्राचीन ओडिशा की चित्रकला कैसी उन्नत थी। कई विशेषज्ञो ने अजता के चित्रो के साथ इस चित्र की तुलना की है। खारवेल पहाडो पर जो मूर्तियाँ खोदी गई थी उनमें कोई उपास्य देवता नही था। लेकिन परवर्ती युग में इन सब स्थानो मे जैन तीर्थकरो की मूर्तियाँ देखी जाती है। उपास्य देवता न होने पर भी खडगिरि और उदयगिरि की प्राचीन गुफाओ की मूर्तियो में शिल्पियो ने रमणीयता लाने का ममर्थ प्रयत्न किया है। इन कई स्थानो के सिवा प्राचीन ओडिशा के स्थापत्य और भास्कर्य्य के निदर्शन दूमरी जगह नही है। आज तक पता नही चल सका है कि ईसा के प्रथम ६०० वर्षो के इतिहास में ओडिशा के स्थापत्य और भास्कर्य्य का क्या स्थान था। लेकिन ७वी सदी से शैलोद्भव और भौम राजत्वकाल मे भास्कर्य्य और स्थापत्य कलाएँ मूर्तियो और मदिरो में परिणत हुई थी। ७वी-८वी शताब्दी में मदिर और मूर्ति निर्माण के पूर्व यह जानने की किसी को इच्छा भी नही थी कि भारत में कही दूसरी जगह भी ऐसे निर्माण हुए है या नही। भारत मे वैदिक धर्म के साथ बौद्ध और जैन धर्म सर्वत्र समान रूप से प्रवर्तित था। हर एक धर्म के उपासक अपने-अपने देवताओ और मदिरो के निर्माण मे लगे रहते थे। उत्तर भारत मे मथुरा बहुत प्राचीन तीर्थ है। यहाँ पहले बौद्धो ने मूर्तिपूजा का प्रचलन किया था। इस तरह दक्षिण के अमरावती मे भी बौद्ध मूर्ति स्थापित हुई थी। सभव है, ओडिशा में इस मूर्तिपूजा का प्रभाव उत्तर और दक्षिण दोनो ओर से पडा हो, क्योकि शक-कुशान युग जैसी मूर्तियाँ ओडिशा मे नही है। मथुरा से बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्म की अनेक प्राचीन मूर्तियाँ विभिन्न सग्रहालयो मे सगृहीत है। इसके पहले ही साँची आदि के बौद्ध स्तूप निर्मित हुए थे। गुप्त राजत्व-काल मे मथुरा के इन सभी भास्कर्य और स्थापत्य के प्रचुर रूप में तैयार होने का सुयोग मिला था। धीरे-धीरे यही कलाएँ प्रचारित होकर ओडिशा के उपकूल में ७वी शताब्दी या इसके कुछ पहले विकसित हुई थी।

ओडिशा का भास्कर्य्य ओडिशा के चारो ओर फैला हुआ है। पुरी जिले के भुवनेश्वर मे प्राचीन भास्कर्य और स्थापत्य दिखाई पडता है। डा० कृष्णचन्द्र पाणिग्राही ने भुवनेश्वर भास्कर्य के विषय मे विस्तृत रूप से खोज की है। उनकी थिसिस आज तक मुद्रित नही हुई है, लेकिन

अद्वितीय है। इस सब डिवीजन का चडजा मदिर यद्यपि वैदनाथ मदिर का सामयिक नही है फिर भी उनकी गठन-रीति एक सी है। तेल नदी के दक्षिणी तट पर कालाहाडि जिले के अन्तर्गत वेलखडि की मूर्तियो में भास्कर की मूर्ति की गठन-कुशलता चमत्कार-पूर्ण है। वलागीर जिले के राणी-टरिआल से प्राप्त चौषठि योगिनी की मूर्तियाँ हीरापुर की मूर्तियो से इस दृष्टि से स्वतत्र है कि यहाँ की मूर्तियाँ बैठी हैं, खडी नही। चूंकि दोनो स्थानो की मूर्तियो के निर्माण-काल मे लवा व्यवधान है इसलिए उनकी कला में सादृश्य नही लक्षित होता। कोरापुट, गजाम, सम्वल-पुर, और सुदरगढ जिलो की भास्कर्य-कला आज तक अविदित है।

## मूर्तितत्त्व

ओडिशा की सवसे प्राचीन मूर्ति खडगिरि और उदयगिरि मे मिली है। लेकिन इनमें मूर्ति-तत्त्व के निहित होने का प्रमाण आज तक नही मिला है। इन मूर्तियो में देव-देवियों के आराधना-सूचक प्राय सभी चिह्न हैं। अर्थात् ईसा पूर्व द्वितीय शताव्दी की मूर्तियाँ यद्यपि मनुष्य-भावसपन्न और मनुष्याकृति की हैं, फिर भी उनमें उपासनासूचक देवभाव के प्राय सभी चिह्न आरोपित हुए हैं। यद्यपि शिल्पी मनुष्याकृति के विकास के लिए ही प्रयत्नशील था किन्तु वह स्वाभाविक मनुष्याकृति के गठन में सफल नही हो सका था। प्रतीत होता है कि उस समय की ओडिया शिल्प-धारा भारतीय शिल्पधारा के समानान्तर प्रवाहित हो रही थी। भुवनेश्वर के निकट कपिलेश्वर की एक नागमूर्ति और दो नागिन-मूर्तियो से प्रमाणित होता है कि उस समय ओडिशा में नाग-पूजा का प्रचलन था। इसके अलावा भुवनेश्वर-अचल से और भी कई नागमूर्तियाँ मिली हैं। प्रथम शताव्दी से लेकर ७वी सदी तक के लवे ६०० वर्षो में वौद्ध, जैन या ब्राह्मण धर्म कोई भी देव-मूर्ति ओडिशा मे आज तक आविष्कृत नही हुई है। इसलिए उत्तरी भारत के मथुरा आदि स्थानो से प्राप्त देवमूर्तियो के समान ओडिशा में देवमूर्तियाँ नही है।

सच तो यह है कि शक-कुशाण के समय मथुरा में मानवाकृति देव-मूर्तियाँ वनाई जाती थी। लेकिन उनमें न तो कला की सजीवता थी और न उनमें आंखो को अच्छे लगने वाले भाव ही थे। गुप्त सम्राट् चूंकि कला के श्रेष्ठ मर्मज्ञ थे अत तत्कालीन शिल्पी देवी-देवताओ की मूर्तियो के मुखमडल और शरीर की भगिमा में देवभाव-द्योतक चित्तवृत्तियो को आरोपित करने में समर्थ हो सके थे। इस समय भास्कर्य के विकास के साथ स्थापत्य का भी विकास हुआ था, क्योकि देवता और देवता के स्थान देवमदिर, दोनो में स्वर्गीय सत्ता प्रदर्शित करने के लिए शिल्पियो ने काफी प्रयत्न और मनन किया था। इस समय वौद्ध-जैन और ब्राह्मण धर्म की देवमूर्तियो में शिल्पी की वास्तविक कल्पना ही मूर्तिमत होती थी। मानवाकृति देवमूर्ति में वहुभुज, और वहु मस्तक की अपौ-रुषेय कल्पना द्वारा उपासक अपनी भक्ति अर्पित करता था। इस तरह शिल्पी आयुध, वाहन, अलकार, परिधेय आदि को दृष्टि में रखकर मूर्ति का निर्माण करता था। पत्थरो पर खोदी हुई मूर्तियो से मालूम होता है कि महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियो के हाथ सख्या मे दो, चार, छ, आठ दस, वारह, सोलह अठारह और वीस भी है। ध्यान के अनुसार धर्म में अनेक देवियो और देव-

परिमाण में चूने का काम होने से मदिर का वाहर जैसा विकृत हुआ है, इसी तरह मदिर पर शोभावर्धनकारी कारीगरी के काम से वाहरी सौन्दर्य भी लोकदृष्टि से अदृश्य हो गया है। जगन्नाथ मदिर की दिक्पाल मूर्तियाँ चूने के काम से आवृत थी। लेखक की चेष्टा से यह खोदी जाने से वरुण और वायु की मूर्नियाँ दिखाई गईं। उन सवकी गठन-रीति लिंगराज के दिक्पाल के साथ समान है। जगन्नाथ मदिर गगवंशीय राजा चोड गगदेव के द्वारा ११४७ ई० के पहले से निर्मित हुआ था। देश का शासन-भार एक नये राजवश के अधीन होने पर भी देश के शिल्पियो ने अपने वशानुक्रमिक शिल्प को अक्षुण्ण रखने में अपनी पटुता दिखाई है।

गग युग के मदिरो में भुवनेश्वर के 'मेघेश्वर', और निआलि के शोभनेश्वर मदिरो में मदिर-निर्माता का लिपिचातुर्य सन्निवेशित हुआ है। इन सबके गठन-कौशल में विशेष कुछ नूतनत्व नही है। इन सबका निर्माणकाल १२वी शताव्दी का आखिरी भाग है। त्रयोदश शताव्दी में वने हुए गगयुग के मदिरो में कोणार्क सर्वश्रेष्ठ है। यह लगभग १३वी शताव्दी के वीच में निर्मित हुआ था। 'मेघेश्वर' मदिर और 'कोणार्क' मदिर के निर्माण-काल में ५० साल का व्यवधान है। इस समय में 'काकुडिआ उच्च पीढ मदिर' और वुढापडा के उच्चपीठ युक्त पार्श्वदेव के उद्देश्य से वने हुए एक मदिर का अश देखा जाता है। स्थापत्य के इन दो नये अशो का विकास कोणार्क में विशेष उल्लेख योग्य है। पहला मदिर-पीठ काफी ऊँचा है। कोणार्क मदिर में चौवीस चक्के लगे हैं। इन सवको ययास्थान मे रखने के लिए पीठ की उच्चता एकात आवश्यक होने पर, शिल्पी पीढ की उच्चता की कल्पना करके, उसे कार्य रूप में परिणत करने में विशेष रूप में समर्थ हुए थे। इसके अलावा पार्श्व देवताओ के लिए अलग मदिर भी कल्पित हो स्थापत्य के अन्तर्भुक्त हुए थे। आजकल हम लिंगराज और जगन्नाथ-मदिर में पार्श्वदेवताओ के लिए जो मदिर देखते हैं ये समसामयिक नही हैं। सम्भव है, कोणार्क के पार्श्व-देवताओ के मदिर तैयार होने के वाद लिंगराज और जगन्नाथ-मदिर में ये निर्मित हुए हों। गगयुग में निर्मित मदिरो में से भुवनेश्वर के अनत वासुदेव मदिर-निर्माता के लिपि-फलक से मालूम होता है कि यह १२७८ ई० में निर्मित हुए थे। कोणार्क की अपेक्षा इस मदिर में और एक स्थापत्य का विशेषत्व देखा जाता है। मालूम होता है कि अनत वासुदेव मदिर के पहले मदिरो में केवल अष्टदिक्पाल मूर्ति है। लेकिन अनत वासुदेव के मदिर में अष्टदिक्पालो की शक्ति को स्थान मिला है। कोणार्क के समान अनत वासुदेव मदिर में ऊँचा पीठ है। इसके अलावा पार्श्व देवताओ के और तीन मदिर भी हैं। कोणार्क मदिर के स्थापत्य में और एक जो नया काम देखने में आता है वह है मुखशाला के सामने, थोडी दूरी पर, नाट्य मदिर की कल्पना। ऐसा नाट्य मदिर दूसरी जगह देखने मे नही आता। अव भुवनेश्वर के लिंगराज मदिर और पुरी के जगन्नाथ मदिर में नाट्य मदिर मुखशाला के पास वना हुआ है। और, यह आसानी से मालूम पडता है कि यह वाद का काम है। भुवनेश्वर के अनत वासुदेव मदिर में भी नाट्य मदिर है। यह मालूम नही पडता है कि कोणार्क मदिर के तैयार होने के वाद यह नाट्य मदिर कव वना है।

मादला पचाग से मालूम होता है कि सूर्यवशीय राजा पुरुषोत्तम देव ने अपने ७ अक में

(ऊपर) इतिहास प्रसिद्ध बारबाटी दुर्ग, कटक

(नीचे) कदमरसूल, कटक



१११२ ई० में गगवशीय चोडगगदेव ने ओडिशा पर अधिकार करके सोमवशीय राजाओ की राजधानी में अपनी राजधानी स्थापित की थी।

गग-राजत्व में ओडिशा में पचकटक का वर्णन है। यथा—(१) जाजपुर कटक, (२) अमरावती कटक या छतिआ, (३) चउदवार कटक, (४) वाराणसी कटक, (आधुनिक कटक), (५) सारग गड या चोडगग कटक (आधुनिक वारग रेल स्टेशन के पास)। इन पाँच स्थानो में प्रत्नकीर्ति का यथेष्ट प्रमाण मिलता है।

इसके अलावा वालेश्वर जिले के हाथीगड के पास राइवणिआ गड का प्रसार खूब अधिक है। ऐसा प्रकाड गड ओडिशा में विरल है। वालेश्वर जिले के उत्तर-पश्चिम में हरिचन्दन गड या दुर्गादेवी गड भी एक प्रकाड गड है। मयूरभज जिले में हरिहरपुर (आधुनिक हरिपुर) गड का ध्वसावशेष देखा जाता है। मयूरभज के इलाके में और भी अनेक छोटे-छोटे गड हैं। केउँझर जिले के सीताविंज में एक प्राचीन गड का ध्वसावशेष है। ढेंकानाल जिले की भीमनगरी मे एक वडा गड था। सम्वलपुर में एक किले का ध्वसावशेष है। सम्वलपुर के अधीन १८ किले थे। गगराजत्व के वाद पुरी जिले के खोरधा अचल में अनेक किलो के नाम मिलते हैं। गड का फारसी नाम किला है। मोगल शासन-काल में ओडिशा के करदा राजाओ के गड को भी किल्ला कहा जाता था। ओडिशा में इतने गड या किल्ले हैं, जिनकी सपूर्ण तालिका वनाने से उससे अनेक ऐतिहासिक तथ्य सगृहीत हो सकेंगे।

ओडिशा मे मिले हुए सव गड या दुर्गों की गठन-प्रणाली प्राय एक सी है। राजपूताना और उत्तरी भारत में निर्मित दुर्गों की दीवार के वदले यहाँ किले के चारो ओर मिट्टी की मेंड दिखाई देती है। गड के चारो ओर खाई या परिखा खोदी जाने से जो मिट्टी निकलती है इसको गड खाई में डालकर मिट्टी का एक वाँध वनाया जाता है। इस वाँध पर कँटीला वाँस लगाया जाता है। राईवणिआ आदि गड इसी रीति से वने हैं। गड-खाई पानी से भर दी जाती है। मयूरभज जिले के अमर्दा में जो किले का ध्वसावशेष है उसके वारे में १७६६ ई० में भट नामक एक अँगरेज वणिक की विवरणी नीचे दी गई है।

"सुवर्णरेखा" से एक मील की दूरी पर राह के दक्षिण में अमर्दनगर गड है। यह किल्ला इस देश की दुर्ग-गठन प्रणाली के अनुसार वना है। गड की खाई खोदी जाने से मिट्टी गड के पास जम जाने पर एक मेड तैयार होती है। मेंड पर वाँस लगाये जाते हैं। वाँसो के काँटे प्राय ३ इच लम्वे हैं। सख्त और तीक्ष्ण हो तो गड के अदर जाना आसान नही होता। मई मास में इन पर भरोसा नही रहता है। क्योकि गर्मी मे वाँस वहुत जल्दी गरम हो जाते हैं और पवन के कारण इनमें आग लग जाती है तो वाँस की झाडी जल जाती है। गाँठ में आग लगने पर ये पिस्तौल जैसा शब्द करके फट जाते हैं। पत्थर या पक्की दीवार होती हुई गड-प्राचीर के ध्वसावशेष केवल चउद्वार, वारवाटी, और सारग गड में दिखाई देते हैं। व्रिटिश शासन में इन सव दीवारो के पत्थर तोडकर दूसरी जगह काम में लगाये जाते थे। अमरावती या छतिआ में एक छोटा किला था। इसके चारो ओर पत्थर की दीवार थी। इस दीवार का ध्वसावशेष अव भी

# ओड़िया भाषा

## डा० कुंजविहारी त्रिपाठी

बगाली, असामी और विहारी भाषाओ की तरह ओडिया भाषा भी भारोपीय भाषा-परिवार की आर्य-भारतीय शाखा की प्राच्य या मागधी गोष्ठी के अन्तर्भुक्त है। यह भारत के पूर्वांचल में समुद्र-तटीय अचलो में वोली जाती है। इसके उत्तर में वँगला और भोजपुरी की भाषाएँ और दक्षिण में द्राविड परिवार में अन्तर्भुक्त तेलगु भाषा प्रचलित है। ओडिया भाषा पश्चिम मे काफी दूर तक फैली हुई है। यह क्रमश पश्चिमी हिंदी की उपभाषा छत्तीसगढी, वस्तर की 'भत्री' नामक ओडिया की उपभाषा और मराठी की उपभाषा 'हलवी' में परिणत हो गई है। सक्षेप में यह ओडिशा और उसके आसपास के प्रदेशो के कई अचलो में (उदाहरण के लिए विहार प्रदेश के सिंहभूम जिले में)[1] बोली जाती है। मोटे तौर पर यह ८२,००० वर्गमील के अचल में वोली जाती है।[2] इस सिलसिले में यह स्मरण रखना चाहिए कि अव ओडिशा की जनसख्या १४६ लाख है। १९२१ ई० की जनगणना में यह लगभग १०१½ लाख थी।

ओडिया भाषा प्रधान रूप से मागधी प्राकृत और अशोक के शिलालेख की प्राच्य उपभाषा के वीच से होकर अतिम वैदिक भाषा से व्युत्पन्न हुई है। अशोक के शिलालेख की भाषा और वैदिक भाषा, इन दोनो के वीच में पाली भाषा और सस्कृत भाषा है। इसलिए ओडिया भाषा पाली भाषा से भी सपृक्त है।

अशोक के धउली और जउगड शिलालेखो और अधिकाश स्तभ-लेखो में व्यवहृत होने-वाली प्राच्य भाषा (Eastern dialect) के कई विशिष्ट लक्षण है। जैसे 'र' की जगह 'ल' का व्यवहार, अकारान्त शब्द के कर्तृकारक एक वचन में 'अ' विभक्ति और अधिकरण कारक के एक वचन में 'असि' विभक्ति का प्रयोग तथा सयुक्त-व्यजन वर्णों मे समीकरण। लेकिन गिर-नार में व्यवहृत प्रतीच्य भाषा (Western dialect) में 'र' का व्यवहार, एकारान्त पुल्लिग शब्द के कर्तृकारक एक वचन में 'ओ' विभक्ति और अधिकरण कारक के एक वचन में 'अम्हि' विभक्ति का प्रयोग तथा सयुक्त व्यजनो का व्यवहार (यथा—प्र, त्र आदि) भी देखा जाता है। प्रथमोक्त दो भाषागत वैशिष्ट्य सस्कृत नाट्य साहित्य में व्यवहृत और वैयाकरणो के द्वारा उल्लिखित मागधी प्राकृत में दिखाई पडते है। सौरसेनी की भाँति धउली और जउगड की भाषा

---

१. सेन्सस रिपोर्ट, १९३१, विहार ऐण्ड ओडिशा, पृ० २३४।

२. लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इडिया, खड १, भाग १, पृ० ४९०।

सामजस्य देखा जाता है। 'न' को 'ण' में परिवर्तन न करने की जो प्रधान प्रवृत्ति पाली मे दिखाई पडती है वह खारवेल के लेख की भाषा में है पर अर्द्धमागधी में नही है।

खारवेल के लेख की भापा में कई दृष्टियो से अर्द्धमागधी से साम्य और पाली से वैषम्य दिखाई पडता है।

अकारान्त शब्द के कर्तृकारक एक वचन मे 'ए' विभक्ति का प्रयोग (जो अशोक के जउगड-घउली लेख मे[1] और नाट्य साहित्य की मागधी प्राकृत में देखा जाता है) आधुनिक ओडिया भाषा में कई स्थानो पर मिलता है। जैसे—ये, से, आदि (हिंदी में जो, सो), जणे (एक आदमी), दडे (एक क्षण), टका या टके (एक रुपया), हाते (एक हाथ), गछे (एक पेड) आदि। आधुनिक ओडिया में 'र' और 'ल' दोनो का व्यवहार होता है। वर्तमान ओडियाभाषी सिर्फ 'स' का उच्चारण करता है। लेकिन लिखते समय सस्कृत वर्णमाला के अनुसार 'श', 'ष', 'स' का भी व्यवहार करता है। जउगड और घउली भाषा के अधिकरण कारक एक वचन मे 'असि' प्रत्यय था लेकिन आधुनिक ओडिया में व्यवहृत 'यहिं' 'तहिं', काहिं (जहाँ, तहाँ, कहाँ) में "हिं" विभक्ति तथा प्रत्यय का व्यवहार होता है। अनुमान है कि कृष्णाचार्य के चर्यापद में सप्तमी एक वचन के 'हिं' का प्रयोग (चर्या० ७–५) 'असि' से आया है।

मोटे तौर पर ओडिया भाषा मागधी प्राकृत और मागधी अपभ्रश से विकसित हुई है। अनुमान है कि इस पर अर्द्धमागधी का प्रभाव पडा है।

सन् १९०१ ई० में हरप्रसाद शास्त्री ने बौद्धगान ओ दोहा नामक ग्रन्थ नेपाल से खोज निकाला और सन् १९१६ में उसका सपादन कर प्रकाशित किया। 'चर्यापद' नामक ग्रथ इसी ग्रन्थ में अन्तर्भुक्त है। इस ग्रन्थ में लुईपाद, कान्हुपाद और शबरपाद आदि कई सिद्धाचार्यों के अनेक पद या गान देखने को मिलते हैं। इस चर्यापद की भाषा पर विचार करते हुए किसी ने उसे प्राचीन बँगला, किसी ने प्राचीन मैथिली, किसी ने प्राचीन ओडिया और किसी ने प्राचीन असामी कहकर ग्रहण किया है। लेकिन इसकी भाषा को प्रधान रूप से मागधी अपभ्रश मानना ठीक होगा। इसमें कुछ हद तक बँगला, असामी, मैथिली और ओडिया भाषा के कई लक्षण खोजे जा सकते हैं। इन पदकर्ताओ में से कई प्राचीन बगाल, ओडिया, आसाम तथा मिथिला के रहनेवाले हो सकते हैं।

लुईपाद आदि नाम प्राचीन ओडिया साहित्य में मिलते हैं।[2] हरप्रसाद शास्त्री ने "बौद्ध-

---

१ अशोक के घउली-जउगड लेख के कई शब्द और धातु (Root) आज भी पहले की भाँति तथा कुछ परिवर्तित होकर उडिया में व्यवहृत होते हैं। किछि (Some) संस्कृत–किंचित्।

तिनि=यातिनि, नतिपनति=या नाति=पणनाति, सस्कृत में–नप्तृ प्रनप्तृ, महालके =या, महालिके (A Surname)–च घ्=या–चाहें-(Desire) आदि।

२ लोहिदास मठ करि थाति एठारे लय करि थाति निराकार ध्यान परे, एठारे

| चर्यापद | साहित्यिक ओडिया |
|---|---|
| काआ तरुवर पचविडाल | काया तरुवर पच विडाल् |
| चचल चीअे पइँकाल | चचल चित्ते पइठ काल |
| दिढ करिअ महासुअपरिमाण | दढकरि महासुख परिमाण |
| लुइ भणइ गुरु पुछिअ जाण ॥१॥१-२॥ | लुइ भणअि गुरु पुछि जाण |
| ता देखि कान्हु, विमन भअिला ।७।१। | ता देखि कान्हु विमन होइला |
| जे जे आअिला तेते गेला ।७।४ | ये ये आइला, से मे गला |
| नगर वारिहि रें डोफि तोहरि कुडिआ | नगर वाहाररे डोमि तोहरि कुडिआ |
| छोइ छोइ याअि सो वाह्मनाडिआ ॥१०।१ | छुँइ छुँइ याअि से ब्राह्मनाडी |
| हाथेरे काकाण मा लोअुदापण | हातरे ककण न नोउदर्पण |
| अपणे अपा बुझतुनिअमण इशइ | आपणे आपे वुझ तुनिजमन |
| जइ तुमहे लोअ हे होइिव पारगामी ५।५ | यदि तुम हे लोक हे होइव-पारगामी |
| कहृति गुरु परमार्थोर वाट | कहृति गुरु परमार्थर वाट। |
| (बौद्ध गान ओ दोहा, पृ० १६) | |

चर्यापद में कैसन, राउत, और दूसरे कई तद्भव, देशज, और ग्राम्य शव्द है जो आधुनिक ओडिया में भी है, लेकिन आसपास की दूसरी भाषाओ में नही है।

उपरोक्त प्रमाणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन ओडिया का पूर्वरूप कई चर्यागीतो में है। इन चर्यागीतो का समय लगभग ८वी या ९वी शताव्दी है।

१६वी शताव्दी के ओडिशा के लेखक मार्कण्डेय ने अपने 'प्राकृतसर्वस्व' में औड्री विभाषा से निम्नाकित पद उधार लिया है—

"देव जसोआ-णन्दण करमअि करुणा लेस
अेतिके जमअु अछअि (?) पिटइ सव किलेस"

इसकी भाषा औड्री अपभ्रश (मागधी अपभ्रश का एक भेद) है।

सन् १०५१ से १५६८ ई० के अतिम स्वाधीन राजा मुकुद के शासनकाल तक ओडिशा और ओडिशा के वाहर से प्राप्त ओडिया के उत्कीर्णित लेखो की सख्या लगभग १०० है। १०५१ ई० का खुदा हुआ लेख चिकाकोल का उरजो गाँव का शिलालेख है। यह शिलालेख ओडिशा के प्रथम गगवशी सम्राट् चोल गगदेव के पितामह का है। यह शकाव्द ९७३ अर्थात् १०५१ ई० में लिखा गया था। यह लेख आर्य भारतीय भाषाओ (माडर्न इडो आर्यन लैंग्वेज) में प्राचीनतम है। इसकी ५वी पक्ति से १०वी तक का अश यहाँ दिया जा रहा है।—"श्रीमद् अनत वर्म्मदेव विजय राज्य सम्वत्सर १५ तुला (तुला) माम

| | | |
|---|---|---|
| ७ | गीतगोविन्द की टीका | वासुदेव मिश्र |
| ८ | हितोपदेश की टीका | श्रीवर |
| ९ | वेताल पर्चावश | शिवदास |
| १० | वतिश सिंहासन | |
| ११ | प्रणव व्याहृति गीता | महंत विप्रगणेश्वर दास |
| १२ | शुधि चद्रिका | |
| १३ | चयिनी चकडा | फकोरी चयिनी (१६ शताब्दी) |
| १४ | मादला पाजी | |
| १५ | भजवशमालिका | |
| १६ | कालाहाडि मादला | |
| १७ | चतुर-विनोद | व्रजनाथ वडजेना (लगभग १७७० ई०) |
| १८ | शुकविलास | |
| १९ | पुरुषोत्तम-देवालय-कार्यविधि | |
| २० | माधवनिदान का ओडिया अनुवाद | |
| २१ | सूर्यसिंघल का ओडिया अनुवाद | |

प्राचीन ओडिया पद्य-साहित्य काफी समृद्ध है। ओडिया भाषा के विकाश के अध्ययन के लिए नीचे लिखे ग्रन्थ आलोचनीय हैं—

१ महाभारत, विलका रामायण, चडीपुराण—शारला दास (१५वी शताब्दी)
२ परशुराम व्यालोगस्य ओडिया गीत—कपिलेश्वर देव (१५वी शताब्दी)

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३ | कलमा चउतिशा | वत्सा दास | |
| ४ | केशव कोइल | मार्कण्ड दास | |
| ५ | जैमिनी भारत, पद्मपुराण, देउल तोला | नीलाम्बर दास | |
| ६ | निर्गुणमाहात्म्य, विष्णुगर्भ पुराण | चैतन्य दास | |
| ७ | वीरसिंह चउतिशा | वीर सिंह | |
| ८ | आगत भविष्य | वालिगा दास | |
| ९ | रामविभा | अर्जुन दास | |
| १० | हरिवश | विप्रनारायण दास | |
| ११ | वलराम दास | रामायण | |
| १२ | जगन्नाथ दाम | भागवत | |
| १३ | हरिवश, शून्यमहिता | अपुनानन्द दान | १५-१६ शताब्दी |
| १४ | रुक्मिणी विभा | कार्त्तिक दाम | |

'च' वर्ग के पहले चार व्यजनो को स्पष्ट घृष्ट (Affricate) रूप में लिया जा सकता है क्योकि उनके उच्चारण में अल्प घर्षण ध्वनि सुनाई पडती है। बहुत लोगो द्वारा ओडिया तवर्ग कहा जाने पर भी वास्तव में यह दन्तमूलीय है। 'ड' और 'ढ' पद के आदि में न आने से शिथिल रूप में उच्चारित होते हैं (जैसा हिन्दी भाषा में)। ग्रियर्सन ने इसको मूर्धन्येतर कहा है। साधारणत 'य' पद के आदि में रहने के कारण 'ज' के समान उच्चारित होता है और लिखने में चिह्न द्वारा प्रकट किया जाता है। जैसे—'समय', लेकिन 'यात्री' बगला में भी ऐसा ही है। मागधी-प्रसूत भाषा-गोष्ठी के बीच 'ल' ध्वनि ओडिया का वैशिष्ट्य है। यह कभी पद के प्रारम्भ में नही आता है। यह एक सातिशय ताडित ध्वनि है (Highly Flapped Sound)। व्यजन ध्वनि के समान उच्चारण न करने से हिन्दी की 'व' ध्वनि 'ब' (B) के रूप में उच्चरित होती है। श, ष, और स ध्वनियो में से ओडिया मे केवल 'स' ध्वनि उच्चारित होती है। अर्थात ओडियाभाषी लोग इन तीन उष्मवर्णों का उच्चारण केवल 'स' रूप में करते हैं। व्यापक अर्थ में दन्त्य कहा जाने पर भी 'स' वास्तव में ओडिया उच्चारण के अनुसार दतमूलीय है। ओडिया के दूसरे कई युक्ताक्षरो का उच्चारण नीचे दिया गया है —

क्ष—ख या ख्य यथा—साखी, भिख्युक, ग्य, ण्य, न्य, ञ्न-र्न
म्ह—म्भ, ह्—घ यथा—नरसिघा
र्ण—र्न, य, —र्ज्य, ज्न—स्न या ष्ट
ह्न—न्ह, ह्य=झ्य, य्य=ज्य (न्याय्य)

ओडिया भाषा का यह वैशिष्ट्य है कि इसमे साधारणत अकारान्त शब्द विरामान्तक न होकर अकारान्त उच्चारित होते हैं। यथा—

| ओडिया मे | हिन्दी और बगभाषा आदि में |
|---|---|
| राम | राम् |
| वन | वन् |
| जन | जन् |

## लिंग

सस्कृत भाषा का व्याकरणगत लिंग (Grammatical Gender) ओडिया में नही चलता। यह माना जा सकता है कि कथित ओडिया केवल स्वाभाविक (Natural) पुल्लिग और स्त्रीलिंग है, क्योकि पुल्लिग और नपुसक लिंग को लेकर शब्दाकृति में पार्थक्य नही है। लेकिन साहित्यिक ओडिया में कई अशो तक सस्कृत का व्याकरणगत लिंग प्रयुक्त होता है। जो कुछ भी हो, हिन्दी भाषा में शब्दो के लिंग को लेकर जो अनियमितता है, वह ओडिया भाषा में बिलकुल नही है।

निकट-निर्देशक—अे, अि*　　अेमाने, अि-माने*
सपर्क-वाचक —ये, येअु, येन्*　　येमाने, येअुमाने, येन्-माने*
प्रश्न-वाचक —के, केअुं, केन्*　　केअुंमाने, केन्-माने*
सम्मान-वाचक—आपण, आपन्*　　आपण-माने, आपन-माने*
आत्म-वाचक —आपणा, आपे, अप्ना*

तारकचिह्नित रूप पश्चिमी ओडिया में व्यवहृत होते हैं सर्व (सबु), अन्य (आन), आदि सर्वनाम भी ओडिया में प्रचलित है।

प्रथम वैयक्तिक और द्वितीय वैयक्तिक सर्वनाम के कर्म और सप्रदान के एकवचन में क्रमश 'मोते', 'तोते' (मुझे, तुझे) व्यवहृत होते हैं।

एकवचन में, विभक्ति, अनुप्रयोग, और अनुप्रयोगस्यानीय शब्द षष्ठी एकवचन के रूप सहित (यथा—मोर, मोर्*, मो, तोर, तोर्* तो, तार, तार*, ता) युक्त होते हैं।

बहुवचन में, षष्ठी बहुवचन के रूप के साथ यथा—आम्भमानकर, आम मानकर, आम्मानकर*, तुम्म, मानकर, सेमानकर आदि युक्त होते हैं।

## क्रिया

ओडिया में क्रिया रूप काफी सरल और प्रणालीवद्ध है।

अनुज्ञा (लोट) को मिलाकर क्रिया के १५ काल और अवस्थाएँ हैं। 'अछि', अटे, थाये, याअे, गला, आदि कई अपूर्ण या खडित क्रियाओ को छोडकर दूसरे सब धातु (या क्रिया) के १५ कालो और अवस्थाओ के (In the tenses and moods) निम्नांकित रूप हो सकते हैं—

| | | |
|---|---|---|
| १—वर्तमान शुध्य | २—वर्तमान असपन्न | ३—वर्तमान सपन्न |
| ४—अतीत शुध्य | ५—अतीत असपन्न | ६—अतीत सपन्न |
| ७—भविष्यत् शुध्य | ८—भविष्यत् असपन्न | ९—भविष्यत् सपन्न |
| १०—सभाव्य (अभिप्रायात्मक) शुध्य | ११—सभाव्य असपन्न | १२—सभाव्य संपन्न |
| १३—आभ्यासिक असपन्न | १४—आभ्यासिक सपन्न | १५—अनुज्ञा (अवस्था) |

### धातुरूप

| कर | या | अछ |
|---|---|---|
| समान्य शुद्व | असपन्न | सपन्न |
| प्रथम पु०—एक वचन—करइ, करे, थाइ, थाये, अछि | करुअछि | करि-अछि |
| व०—करु, थाउ, अछु | —अछु | —अछु |

| | | |
|---|---|---|
| म० पु०—ए० व० | थाउ | थाउ |
| व० व० | थाअ | थाअ |
| अ० पु०—ए० व० | थाइ | थाइ |
| व० व० | थाति | थाति |

## (कर और था धातु)

### अनुज्ञा

प्र० पु०—ए० व० —
व० व०—
म० पु०—ए० व०—कर, था
व० व०—कर, थाअ
अ० पु०—ए० व०—करु, थाअु
व० व०—करतु, थाआतु

### णिजत क्रिया या प्रेरणार्थक क्रिया

साधारणत अणिजत धातु में प्रेरणार्थक प्रत्यय आ (प्राकृत—आव, संस्कृत—आप) लगाकर अणिजत क्रिया की तरह रूप चलाने से णिजत क्रिया वनती है।

| अणिजत | णिजत तृतीय पु० एकवचन, प्रथम पु० एक व० में तिवन्त 'इ' स्थान में ए होता है। |
|---|---|
| करइ | कराए |
| करिला | कराइला |
| करिव | कराइव |
| जाअइ | जणाए |
| खाअइ | खुआए |

### असमापिका क्रिया

धातु में 'इ' प्रत्यय (पद्य में 'इ' या इण) के मिलाने से असमापिका क्रिया वनती है। जैसे—कर + इ = करि, (कर + इण = करिण) 'कहि, छाडि' आदि।

### तुमुनत क्रिया

धातु में 'इवाकु' मिलाने से तुमुनत क्रिया वनती है। यथा —कर + इवाकु – करिवाकु, स्ना इवाकु स्नाइवाकु, 'इवालागि' और 'इवापाइँ' भी उसी अर्थ में लिये जा सकते हैं।

# ओड़िया लिपितत्त्व

## डा० कुंजविहारी त्रिपाठी

ओडिया लिपि, अन्य सहोदरा लिपियो के समान, प्राचीन भारत की ब्राह्मी लिपि मे विवर्तित होकर ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से लेकर १४वीं शताब्दी तक विकास के कई स्तरो से गुजरी है। शेपोक्त शताब्दी मे यह गोलाकार ओडिया लिपि मे परिणत हुई। ओडिशा और भारत के विभिन्न अचलो से प्राप्त अनेक शिलालेख इस स्तर के साक्षी हैं। अतएव इन शिलालेखो की लिपियो को कई श्रेणियो में बाँट कर निम्नाकित ऐतिहासिक कालानुक्रम में विभक्त किया जा सकता है—

१—ब्राह्मी लिपि (लगभग ई० पू० तृतीय शती से लेकर तृतीय शताब्दी तक)।

२—तथाकथित गुप्तलिपि (लगभग तृतीय शती से षष्ठ शती तक)।

३—कठकशीर्षक और कीलकशीर्षक लिपियो के साथ सूक्ष्मकोणी लिपि (६ठी शताब्दी से ११वी शताब्दी तक)।

४—प्रत्नवगीय लिपि प्रोटो वगाली स्क्रिप्ट (११वी शताब्दी से १४वी शताब्दी तक)।

५—प्राचीन ओडिया लिपि (१४वीं शताब्दी मे-१६वी शताब्दी तक)।

६—आधुनिक ओडिया लिपि (१६वी शताब्दी से आज तक)।

इन पहले और वाद की प्रत्येक लिपि में एक अतर्वर्ती अवस्था है, क्योकि प्रत्येक लिपि अलक्ष्य भाव से शनै -शनै एक दूसरी में मिल जाती हैं। इसके अतिरिक्त उपरोक्त काल-विभाजन प्रायिक रूप में किया गया है। किंतु लिपियाँ समयानुसार एक दूसरी के समानान्तर गति करती हैं। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि प्रत्नवगीय और सभवत सूक्ष्मकोणी वर्णमालाएँ अपनी परवर्ती अवस्था में, समय-समय पर, नागरी वर्णमाला द्वारा प्रभावित होती रही हैं।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे ही उत्तरी भारत की ब्राह्मी लिपि में अनेक परिवर्तन दिखाई पडते हैं। उनका सुन्दर उदाहरण कुशाण अभिलेख में है। कुशाण सम्राटो के साथ इस लिपि का लौकिक सबध प्रतीत होता है। अतएव कहा जा सकता है कि ब्राह्मी लिपि की निम्नाकित दो मुख्य अवस्थाएँ हैं—

सम्राट् अशोक के अभिलेख मे उदाहृत—

१—पूर्ववर्ती ब्राह्मी अथवा मौर्य ब्राह्मी और

२—परवर्ती ब्राह्मी अथवा कुशाण ब्राह्मी।

परवर्ती कलिंग लिपि (७वी शताब्दी से १२वी तक)[1]

यह दक्षिणी वर्णमाला से विशेष प्रभावित था। इसी दक्षिणी अचल मे इसका विकास भी हुआ। गजाम और विजगापट्टम अचल में प्रचारित प्राचीन ओडिया लिपि मे पाये जानेवाले कई अक्षर इसी से आये थे। इसके अलावा कलिंग नगरी के परवर्ती गगराजाओ के शासनकाल मे समय-समय पर व्यवहृत होनेवाली प्रत्नवगीय लिपि देखी जाती है।

७वी शताब्दी से ११वी तक के मध्य उत्तरी भारत के अनेक अभिलेखो में व्यवहृत वर्णमाला में कई प्रधान और विशिष्ट लक्षण देखे जाते हैं। इन्ही लक्षणो के कारण यह वर्णमाला कीलक-शीर्षक, कटकशीर्षक, सूक्ष्मकोणी, सिद्धमातृका और कुटिल आदि नामो से अभिहित की जाती है।

७वी शताब्दी में सूक्ष्मकोणी लिपि सामान्यत कीलकशीर्षक दृष्टिगोचर होती है। ऐसी लिपि पहले-पहल शैलोद्भववश के दिये हुए ताम्रपत्रो में मिलती है। जैसे—

(१) ३०० गुप्ताब्द (सन् ६१९-६२० ई०) में अकित (डेटेड) शशाक के समसामयिक महाराज महासामत माधव नरेश के गजाम ताम्रपत्र।[2]

(२) सैन्यभीत-माधवराज का खोर्दा ताम्रपत्र।[3]

सूक्ष्मकोणी वर्णमाला या सूक्ष्मकोणी और प्रत्नवगीय, इन दोनो वर्णमालाओ की मध्यवर्ती अवस्था की वर्णमाला [ जिसमें सब कीलकशीर्षक धीरे-धीरे छोटे अनुप्रस्थ (Horizontal) ऊर्ध्व रेखा मे परिणत होते हैं ] ओडिशा में निम्नाकित सनदो (Charters) में पाई जाती है। ७वी-८वी या ८वी, १०वी शताब्दियो के भौमकरवशी राजाओ और उनके समसामयिको के आज्ञापत्र (सनद) १०वी शताब्दी के बीच से आरम्भ होकर १२वी शताब्दी के आरभ तक के हैं। सोमवश के आरभिक राजाओ और उनके समसामयिको के आज्ञापत्र भी मिलते हैं।

इनमें कुछ निम्नलिखित हैं।

(क) (१) शुभाकर का नेउलपुर फलक (ई० आई० १५, पृ० १)।

(२) दडि महादेवी के दो दानपत्र (Grants) (ई० आई० ६, पृ० १३३ कीलहार्न द्वारा सपादित)।

(ख) (१) विद्याधर भज का आज्ञापत्र (सनद)। (जे० ए० एस० बी० ४६, भाग १, फलक ९, आर० एल० मित्र द्वारा सपादित।

(२) नेट्टभज का ताम्रफलक दानपत्र (जे० बी० ओ० आर० एस० १८, पृ० १०४—मिश्र द्वारा सपादित)।

(ग) (१) कटक के सोमवशी राजाओ के अभिलेख (ई० आई० ३, पृ० ३२३ फ्लीट द्वारा सपादित)।

---

१. दे० ब्यूहलर का भारतीय लिपितत्त्व, ३०वा अनुच्छेद (सेक्शन)।

२ ऐपिग्राफिया इडिका, ६ठा भाग, पृ० १४३।

३ वही, सन् १९०४, भाग १, पृ० २८४।

गये अनेक ओडिया अभिलेखो में इस लिपिका व्यवहार हुआ है। उनमें से कुछ नीचे दिये गये हैं —

(१) कटक जिले के याजपुर के आसपास सिद्धेश्वर गांव में चतुर्थ नरसिंह देव का (१९ अक का) शिलालेख मिला है। इसका समय १३९४ ई० है। (एपिग्राफिआ इडिका, खड २९, पृ० १०७)।

(२) गुन्टूर जिले से कपिलेश्वर देव का त्रैभाषिक ताम्रपत्र मिला है। इसका समय १४५८ ई० है। (दे०, आर्कलाजिकल रिपोर्ट आव् साउथ इडियन एपिग्राफी १९३४-३५, पृ० ६८) मेदिनीपुर जिले के (मेदिनीपुर सब-डिविजन में) गगनेश्वर गांव में कपिलेश्वर देव का शिलालेख भी प्राप्त हुआ है। (दे०, मेदिनीपुर जिला गजेटिअर।)

(३) पुरुषोत्तम देव का परशु शीर्षक ताम्रपत्र, बालेश्वर जिले के गडपडा से मिला है। इसका समय १४७२ ई० है। (दे०, जे० बी० ओ० आर० एस०, खड ४ (१९१८) भाग ४, पृ० ३६१)।

(४) प्रताप रुद्रदेव का लेख कृष्णा जिले के कोडपल्ली पर्वत के ऊपर किले के पास पत्थर में खोदा गया है। (दे०, साउथ इडियन इन्स्क्रिप्शन्स, खड ६, न० ६५४) इसका समय १५०७ ई० है।

(५) पुरी जगन्नाथ मदिर के जयविजय द्वार मे १२ शिलालेख हैं। इनमें ५ तो कपिलेश्वर देव के, ४ उनके पुत्र पुरुषोत्तम देव के और दो उनके पुत्र प्रतापरुद्र देव के हैं तथा एक गोविंद देव का है। (१५४१-१५४९) दे०, जे० ए० एस० बी०, खड ५२ (१८९३) पृ० ९२।

(६) विशाखापत्तन जिले के सिंहाचलम् के लक्ष्मीनारायण मदिर की दीवारो पर ३१ शिलालेख खुदे हुए मिले हैं। इनमें २५ पहले कहे गये कपिलेन्द्र देव के हैं और शेष मुकुन्द देव के हैं। (१५५९-१५६८) (एस० एम० आई० खड ६, १९२८)।

लगभग १७वी शताब्दी के प्रारभ में प्राचीन ओडिया लिपि धीरे-धीरे आधुनिक ओडिया लिपि में परिणत हुई। इसमें अक्षरो के ऊपरी भाग की वक्र रेखाओ ने गोलाकार रूप धारण किया। १७वी शताब्दी और उसके बाद के लेखो, ओडिशा की अगणित तालपत्र की पोथियो और आजकल के मुद्रित लेखो मे यही लिपि व्यवहृत होती आई है। आधुनिक ओडिया लिपि के दो भेद या पद्धतियाँ हैं (१) पाठशालीय पद्धति जो स्कूल, कालेज और पुस्तको में व्यवहृत होती है, (२) करणी रीति जिसे मुहर्रिर कचहरी के कागज-पत्रो में लिखते हैं। इन पाठशालीय और करणी लिपियो के अनेक अक्षर समान हैं। इन दो भेदो के उदाहरण के लिए जे० बी० ओ० एम० खड १० (१९२४) पृ० १६८ को देखा जा सकता है।

व्युहलर ने १८९६ ई० में जर्मन में प्रकाशित अपने 'इडिसे पालिओग्राफी' नामक ग्रन्थ में (इनके अग्रेजी अनुवाद के लिए इडियन एटिक्वेरी खड ३४ का परिशिष्ट देखना चाहिए) लगभग ईसा पूर्व ३५० से लेकर १३०० ई० तक भारतीय लिपियो के विकास की आलोचना के सिलसिले मे जउगड मे प्राप्त अशोक-ब्राह्मी और भुवनेश्वर के हाथीगुफा मे प्राप्त अशोकोत्तर-ब्राह्मी की

प्राचीन ओडिया के उत्कीर्णित लेख में व्यवहृत तथा वर्तमान प्रचलित ओडिया वर्णमाला के अक्षरो के पर्याप्त अश स्पष्ट रूप में 'प्रत्नब्रगीय' लिपि से विवर्तित हुए है। इन अक्षरो को दो श्रेणियो में विभक्त किया जा सकता है। पहली श्रेणी के अक्षर 'प्रत्न-ब्रगीय' और नागरी दोनो मे दिखाई पडते है। दूसरी श्रेणी में अन्य कई अक्षर है जो केवल 'प्रत्न-ब्रगीय' में मिलते है। निम्नाकित अक्षरो को दूसरी श्रेणी मे अन्तर्मुक्त किया जा सकता है। प्रारभिक या आदि मे व्यवहृत (Unitial) अ, आ, इ, उ, ए, ऐ, ओ, औ। वीच में व्यवहृत या मध्यवर्ती ए, ऐ, आ, औ, ख, छ, झ, ट, ण, त, म, र, और श। इनसे उत्पन्न अक्षर प्राचीन ओडिया के उत्कीर्णित लेखो तथा आधुनिक ओडिया में दृष्टिगोचर होते है। लेकिन केवल प्रारभिक अ, आ, श और म को छोडकर अनुरूप नागरी अक्षरो से उत्पन्न अक्षर उसमें नही मिलते। ओडिशा से प्राप्त सस्कृत और ओडिया के सभी लेख स्पष्ट वताते है कि 'प्रत्न-ब्रगीय' धीरे-धीरे किस प्रकार प्राचीन या मध्ययुग की ओडिया में परिणत हुई। इसलिए कहा जा सकता है कि ओडिया लिपि 'प्रत्न-ब्रगीय' से वनी है।

यद्यपि ओडिया वर्णमाला 'प्रत्न-ब्रगीय' के अन्तर्मुक्त है, फिर भी प्राचीन ओडिया के खुदे हुए लेखो में नागरी का प्रभाव भी देखा जाता है। समय समय पर 'प्रत्न-ब्रगीय' लिपि में लिखे हुए ओडिशा के उत्कीर्णित लेखो में नागरी के अनेक अक्षर मिलते है।[1]

इन सव अक्षरो के विवर्तित रूप आधुनिक ओडिया मे नही है। यद्यपि नागरी 'ग' का विवर्तित रूप आधुनिक ओडिया मे प्रचलित नही है तो भी प्राचीन ओडिया के खुदे हुए एक लेख में यह दो वार व्यवहृत हुआ है। इससे मालूम पडता है कि कभी-कभी लोग नागरी अक्षरो का भी व्यवहार करते थे।

ओडिया मे अनेक अक्षरो के वैकल्पिक (Alternauve) रूप है, जैसे प्रारभिक या मातृक अ, आ, स और प, पा आदि। अक्षरो के इन दो रूपो में मे पहला 'प्रत्न-ब्रगीय' मे विवर्तित है और दूसरा नागरी से विवर्तित। उपरोक्त उदाहरण मे विवृत (Open) अ, आ, और सवृत 'स' नागरी लिपि के अनुरूप अक्षरो से विवर्तित है। इस प्रकार 'प्रत्न-ब्रगीय' और 'नागरी' में ऐसे कई अक्षर मिलते है जिनका आकार दोनो लिपियो मे समान है, जैसे क, घ, ज, ड, ढ, द, न, प, व, म, प, ल। अव प्रश्न यह है कि ये सव कहा से वने, 'प्रत्न-ब्रगीय' से या नागरी से। 'नागरी' लिपि का प्रभाव ओडिया के कई अक्षरो पर होने के कारण यह सोचना युक्तियुक्त है कि इन अक्षरो का ओडिया रूप नागरी से न वन कर 'प्रत्न-ब्रगीय' से वना है।

ओडिया लिपि पर परवर्ती कलिंग लिपि का प्रभाव अधिक नही है। मध्ययुग के खुदे हुए ओडिया लेखो में कई प्राचीन अक्षर व्यवहृत हुए है।

ये सव और दूसरे कई चिह्न दक्षिणी वर्णमाला (पूर्ववर्ती कलिंग लिपि) से विवर्तित है।

---

१ पुरी के त्रिमाली और शकरानद मठ से प्राप्त सस्कृत-ओड़िया ताम्रपत्र। देखिए ओ० एच० आर० जे० खड ५, सख्या १-२, (एप्रिल-जुलाई, १९५६)।

# उत्कलीय लिपि का ऐतिहासिक विकास-क्रम

## श्री सत्यनारायण राजगुरु

जिस प्रकार हस्ताक्षर मनुष्य-चरित्र का एक प्रतिविम्व है, वैसे ही यह भी कहा जा सकता है कि जातीय लिपि जातीय सस्कृति का एक आलेख है। प्राचीन काल से ओडिशा में प्रचलित लिपि ओडिया जातीय-जीवन को कुछ अशो में प्रकाशित करती है।

यदि ईसा पूर्व लगभग तीसरी शताव्दी के प्रारभ से आधुनिक युग तक के दो हजार वर्षों के इतिहास को सामने रख कर ओडिशा में व्यवहृत वर्णमाला तथा उसकी क्रमपरिणति के सवध में विचार किया जाय तो मन में यह धारणा दृढ हो जाती है कि भारतवर्ष के उत्तर, पूर्व, पश्चिमाचल में युगो से प्रतिष्ठित विभिन्न प्रकार की सस्कृति और ज्ञान में समन्वय स्थापित करने में यदि भारत की कोई लिपि तथा भाषा समर्थ है तो वह है कलिग तथा ओडिशा की लिपि और भाषा। इस सिद्धान्त पर उपस्थित होने के लिए ओडिशा के प्राचीन धर्म, कला और साहित्य के गवेषको को जिन जटिल प्रश्नों के सम्मुख उपस्थित होना पडता है उन्हें ओडिशा की लिपि तथा उसके क्रमविकास के तथ्य ने सुवोध कर दिया है। इसलिए इसकी आलोचना गुरुत्वपूर्ण और सावधान सापेक्ष्य है।

ओडिशा की भौगोलिक परिस्थिति ने प्राचीन काल से ही कुछ विशिष्टताएँ वना रखी हैं। एक ओर दीर्घ पूर्वोपकूल तथा सागर और दूसरी ओर विस्तृत पूर्वी घाट पर्वतमाला, उपजाऊ मालभूमि तथा उपत्यकाएँ हैं। गगा से गोदावरी तक के (६००० वर्गमील) विस्तृत प्रदेश के निवासी भारत तथा विदेश में कलिग के नाम से परिचित थे। तीसरी शताव्दी में कलिग को जीत कर मौर्यवशी राजा अशोक ने कलिग-निवासियो के लिए धउली पहाड और जउगड में जो दो लेख खुदवाये हैं, वे ही इस प्रदेश की सव से प्राचीन लिपियाँ हैं। इसके डेढ सौ या दो सौ वर्ष वाद चेदीवशीय महाराज खारवेल की जो शिलालिपि खण्डगिरि मे उत्कीर्णित है वह अशोक की लिपि का विकास-क्रम है।

राजनीतिक कारणो से कलिंग की सीमा कभी विस्तृत और कभी सकुचित होती रही। लेकिन अशोक और खारवेल के युग की भाषा तथा लिपि में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। भारत के विभिन्न स्थानो से धर्मयाजको, मताचार्यों और पडितो ने यहाँ आकर इसे अपना उपनिवेश वनाया था। तृतीय शताव्दी के वाद वडी सख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यहाँ आकर वस गये। उनके साथ स्थानीय निवासियो का मेल होने से यहाँ गुप्त-युग की सस्कृति तथा सामाजिक जीवन का प्रसार हुआ और इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हुई।

वारण की। नवागत उच्च शिक्षित लोग आर्यावर्त की सभ्यता तथा नीति से अनुप्राणित थे। अत: उन लोगो ने इन्ही पडितो के द्वारा अपने-अपने वश की प्रशस्तिया सस्कृत में लिखवाई और आर्य पडितो को गुरु, पुरोहित तथा अमात्य के रूप में स्वीकार किया। व्यासोक्त धर्मशास्त्र के अनुसार दाता की वश-प्रशस्ति के साथ गृहीता का परिचय तथा ताम्रपत्र में दानशासन या गाव के उल्लेख करने की विधि नीचे दिये श्लोक से मालूम पडती है—

"स्थान वशानुपूर्वं च देश ग्राममुपागतम्।
ब्राह्मणाना तथा चान्यान् मान्यानधिकृतान् लिखेत्॥
कुटुम्बिनोथ्य कायस्थ दूत वैद्य महत्तरान्।
म्लेच्छचाण्डालपर्यन्तान् सर्वान् सम्बोधयान् तथा॥
मातापित्रोरात्मनश्च पुण्यायाथ्मुकसूनवे।
दत्त मयाथ्मुकायाथ्य दानं सब्रह्मचारिणे॥"

प्रत्येक दान के अत में कुछ निषिद्धादेश निम्नाकित विधि से उल्लिखित करने का प्रचलन था।

"षष्ठिवर्षसहस्राणि दानाच्छेदफलं तथा।
आगामिनृपसमन्त बोधनार्थं नृपो लिखेत्॥"

यह सभी मानते थे कि ऐसे भूमिदान मे अपूर्व पुण्य-कार्य होता है। इसलिए तृतीय शताब्दी से लेकर विभिन्न युगो में लिखे गये जो अनेक ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं उनकी प्राचीन लिपियाँ ही उस युग की पर्याप्त सूचनाएँ देती है। इनमें से लिपियो के सबन्ध में जो सन्धान मिला है, उससे पता चलता है कि महाराज खारवेल के समय में अर्थात् ईसा पूर्व पहली शताब्दी में कलिंग में जो लिपि प्रचलित थी उसकी मौलिक आकृति में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ किन्तु लेखन-शैली बहुत कुछ बदल गई थी। मालूम होता है कि तीसरी शताब्दी में लिपि को सुबोध्य और सरल बनाने की इच्छा लोगो में अधिक थी।

आजकल ओडिशा से जितने ताम्रपत्र आविष्कृत हुए हैं उनमें से कलिंग के माठर वशीय राजाओ के प्रदत्त दानपत्र ही सर्वप्रथम हैं। उन्होने महेन्द्र पर्वत के निकटस्थ अंचलो में शासन किया था। इस वंश के प्रथम राजा विशाख वर्मा के ताम्रपत्र से पता चलता है कि गुप्ताक्षरो के मिश्रण के कारण कलिंग की तत्कालीन लिपि कोणयुक्त आकार में गठित हुई थी। वास्तव में यह अशोकाक्षर का विकासक्रम है। दोनो लिपियो में लगभग ६०० वर्षो का अन्तर है, फिर भी इनमें पर्याप्त आक्षरिक साम्य है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि रक्षणशीलता इस प्रदेश के रहने वालो के सामाजिक जीवन को विशेष रूप से नियन्त्रित करती थी। फिर भी अनेक बातो में प्राचीन सामाजिक प्रथा को तोडकर इन लोगो ने उन्नति का पथ प्रशस्त किया था। जिस प्रकार उन्होने विन्ध्याचल के दक्षिण यात्रा कर इस प्राचीन प्रथा का लोप कर दिया था उसी प्रकार जल-

इसके विषय में अधिक विचार करना इस प्रवन्ध का लक्ष्य नही है। सिर्फ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि दूर-दूर देश की भाषा, लिपि और सभ्यता के एकत्रीकरण के लिए, भौगोलिक तथा राजनैतिक कारणो से कलिंग ही उपयुक्त क्षेत्र-रूप में विवेचित हुआ था। इसलिए इस देश के रहनेवाले काफी आसानी से विभिन्न अचलो की लिपि सीख सकते थे।‡

उदाहरण के लिये —

कृष्णानदी के तटवर्ती नागार्जुनी कोण्डा के अधिवासी ५वी शताब्दी में जैसी लिपि का व्यवहार करते थे, ठीक वैसी ही लिपि केउझर जिले के अन्तर्गत सितार्बिजि नामक ऐतिहासिक स्थान से प्राप्त कई शिलापृष्ठो में देखी जाती है। सभवत दक्षिण से आकर ओडिशा में बसने वाले वौद्ध या जैन श्रमणो की सहायता से दाक्षिणात्य लिपि और भाषा यहाँ प्रचलित हुई। ६ठी शताब्दी के पूर्व चिलिका के उत्तराश में ब्राह्मण धर्म प्रविष्ट नही हुआ था, क्योकि वह भाग वैदिक धर्म-विरोधी सप्रदाय और जातियो द्वारा अधिकृत था। इसीलिए ६ठी शताब्दी के पहले के कोई भी दानपत्र उत्तरी ओडिशा से आज तक नही मिले हैं। लेकिन गजाम, कालाहाडि, वस्तर और मध्य भारत समेत आन्ध्र देशो से ऐसे ताम्रपत्र पर्याप्त सख्या में मिलते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि उत्तरी भारत से दक्षिण जानेवाले ब्राह्मणधर्मावलम्वी छत्तीसगढ और गजाम के अन्तर्गत कलिंगाघाट होकर महेन्द्र गिरि के निकटवर्ती देश में आते थे। यहाँ से सुविधानुसार वे दाक्षिणात्य या पूर्वी द्वीपपुज की यात्रा करते थे। सालकायन, विष्णुकुडिन् आदि दक्षिणी राजवशो के साथ माठरो का वैवाहिक सवध भी था। इस कारण उनकी सहायता से इस आर्य वशीय शिक्षित सप्रदाय ने गोदावरी और कृष्णा के तटवर्ती अचलो में उपनिवेश स्थापित किया था। उस समय उन अचलो में वैदिक रीति के अनुसार याग-यज्ञ भी अनुष्ठित होने लगे थे। काल्डवेल (Caldwell) के मतानुसार दक्षिण के आर्य उपनिवेश के मूल में ब्राह्मण पुरोहितो का धर्म-प्रचार ही सन्निहित है (Vide Com Gram Intro p 115)। उस समय उत्तरी भारत में प्रचलित सस्कृत और प्राकृत के काफी शब्द द्रविड भाषाओ में आने लगे। केवल इतना ही नही, वल्कि दक्षिण के राजा लोग राजदत्त अनुशासनो में भी इन सभी भाषाओ का व्यवहार करने लगे।

---

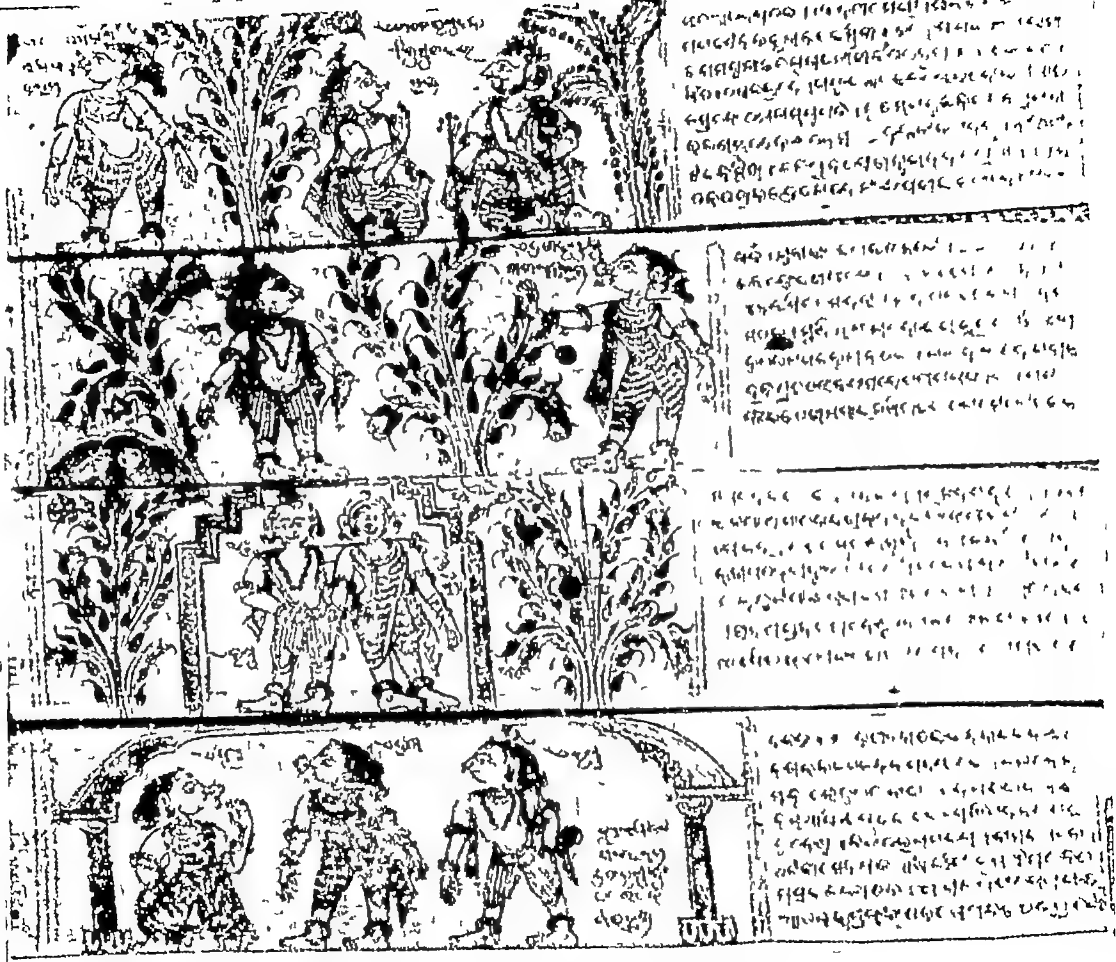
‡उत्तरी भारत की लिपि और लेखन-शैली के साथ सहयोग कर दक्षिण भारत में प्रचलित ७वीं या ८वीं शताब्दी की लिपि समान ताम्रपत्रों में समान रूप से व्यवहृत करने के लिए लेखक को उत्साहित करनेवाले कलिंग राजाओं में गगवशी इन्द्रवर्मा और वज्रहस्त प्रधान हैं। उनके समय की लिपि इसके साथ दिये हुए दूसरे प्लेट के ४ और ६ नवर की पंक्ति में प्रदर्शित है।

किसी-किसी पडित के मत में कालिदास के "मेघदूत" में वर्णित रामगिरि कलिंग में स्थित महेन्द्र के निकट का रामगिरि है। लेकिन इस विषय में आज तक कुछ भी निश्चित नहीं हो सका है। फिर भी मेरा विश्वास है कि महेन्द्र की प्रधानता की दृष्टि से उसके पास का रामगिरि ही सभवत. 'मेघदूत' का निर्विष्ट स्थान हो सकता है।

(Light House) के समान यह भूले-भटके यात्रियो का उपकार करता है। एक वार चीनी परिव्राजक हुएनसाग ओडिशा के चारित्र्य नामक वदरगाह से एक घोर अँधेरी रात को दूर आकाश की सीमा-रेखा में, ज्योतिष्क के समान, एक उज्ज्वल आलोक देखकर ऐसा मुग्ध हुआ था कि इस वात को वह अपने भ्रमण-वृत्तात में लिखे विना न रह सका। सभवत उस समय देवमदिरो के समान ओडिशा के वौद्ध चैत्यो के ऊपर भी ऐसा ही "आकाश दीप" जलता रहा होगा।

एक यात्री प्रयाग से या ा शुरू करके सुरुगुजा, यशपुर, विलासपुर, रायपुर होकर काला-हाडि और गजाम के रास्ते सुविधापूर्वक थोडे समय में महेन्द्र गिरि पहुँच सकता है। महाराज समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत से ठीक इसी मार्ग से आकर अपना दक्षिण का अभियान समाप्त किया था। राजनैतिक, सामाजिक, वाणिज्य और धर्म-प्रचार के उद्देश्य से दक्षिण जानेवाले यात्री इसी पथ से जाते थे। अत उस युग में यह रास्ता एक राजपथ में परिणत हो गया था। इस मार्ग के आस-पास गाँवो में देवपीठो और धर्मशालाओ का प्रवन्ध रहता था।

शत्रु के प्रतिशोध के लिए कई स्थानो में दुर्ग भी वनाये गये थे। स्थान-स्थान पर आज भी उनके खडहर दिखाई पडते हैं। यद्यपि प्राचीन भारत की यात्रा पर विचार करना इस प्रवन्ध का उद्देश्य नही है फिर भी उत्तरी भारत के अक्षरो के साथ दक्षिणी भारत की वर्णमाला की साम्य-रक्षा के लिए ६ठी शताव्दी के वाद से कलिंग में क्यो और कैसे प्रयत्न हुए थे, इस रहस्य को समझने के लिये इसकी सम्यक् आलोचना आवश्यक है। महाराज समुद्रगुप्त उपरोक्त महाकातार से होकर महेन्द्रगिरि पहुँचे थे। वहाँ उस समय व्याघ्रराज शासन करते थे। थोडे दिन हुए, विलास-पुर जिले के अन्तर्गत मल्लार गाँव से प्रसन्नपुर के श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय द्वारा महाराजा व्याघ्र-राज का ताम्रपत्र आविष्कृत हुआ है। व्याघ्रराज के पिता जयभट्टारक सभवत तीसरी या चौथी शताव्दी के प्रारभ में जीवित थे। मालूम होता है कि उस समय मोद्गल या स्तम्भेश्वरी के भक्त राजे तेल नदी के तटवर्ती अचल में शासन करते थे। उनके ताम्रपत्रो में जो लिपि व्यक्त हुई है, वह "पेटिकाशिर" (Pox-Head) नाम से विख्यात है, क्योकि इस प्रकार की लिपि के अन्तर्गत हर एक अक्षर के शिर पर पेटिका या वाक्स की तरह एक चतुरस्र चिह्न दिखाई देता है। मध्यभारत मे वाकाटक, नल, शरभपुरीय राजवशो द्वारा भी इस प्रकार की लिपि व्यवहृत होती थी। इसलिए यह वहाँ भी प्रचलित थी। उस पथ से कलिंग को आनेवाले पडितो और लेखो की सहायता से यहाँ के गगवशी नरेशो ने उस लिपि को कुछ समय तक अपने देश में भी प्रचलित किया था। महाराज इन्द्रवर्मा, हस्तिवर्मा, सामत वर्मा आदि राजाओ के अनुशासनो में वही लिपि देखने को मिलती है। प्रथम नवर के प्लेट में ९वी और १०वी पक्ति से यही लिपि व्यवहृत हुई है। यद्यपि यह लिपि देखने में सुन्दर थी फिर भी अधिक काल तक स्थायी न हो सकी, क्योकि उसमें सरल रेखा और कोण रहने के कारण तालपत्रो में लिखते समय पन्नो के फट कर थोडे समय में ही ग्रथो के नष्ट हो जाने की सभावना वनी रहती थी। धीरे-धीरे 'कुटिला-क्षर' ने 'पेटिकाशिर' लिपि का स्थान ले लिया। जो कुछ भी हो, लकिन मध्यभारत के साथ कलिंग की सास्कृतिक घनिष्ठता का प्रमाण यही पेटिकाशिर लिपि ही है। कलिंग से दक्षिण की ओर



प्राचीन तालपत्र-पोथी में ओडिआ लिपि तथा चित्रकारी के नमूने



तालपत्र पोथी पर अंकित चित्रकारी का और एक नमूना

के लिपि-राज्य में एक परिवर्तन दिखाई पडने लगता है। उत्कलीय लिपि वगाल के सेनवशी और आसाम के पाल नामान्त राजाओ की लिपि के साथ साम्य वनाती हुई प्रकट हुई। १३वी शताव्दी से यद्यपि उत्तरी भारत की लिपि किसी किसी ताम्रपत्र में व्यवहृत हुई है फिर भी अधिकाश क्षेत्र में स्थानीय लोगो के लिए ओडिशा की मौलिक लिपि ही प्रचलित हुई। इसीलिए राजा-नरसिंह देव के शासन में दोनो प्रकार की लिपियाँ देखने को मिलती हैं। द्वितीय प्लेट की १०वी पक्ति में यह प्रवृत्ति दिखाई पडती है।

१३वी शताव्दी के वाद जो लिपि और भाषा ओडिशा के शासन-कार्य में व्यवहृत हुई, वही उत्कलीय भाषा और लिपि है। सस्कृत-प्रधान होने के कारण तत्कालीन कई ताम्रपत्रो में उत्तरी भारत में प्रचलित नागरी लिपि व्यवहृत हुई है। लेकिन ऐसी द्वैध प्रक्रिया राजकीय व्यापार में अधिक काल तक न रह सकी। १५वी शताव्दी में गगवंश के अवसान के वाद सूर्यवशीय गजपतियो और दूसरे राजवश के नरेशो ने ओडिया में राज्य-विस्तार कर पूर्ण रूप से ओडिया भाषा और लिपि का आश्रय लिया। उसी समय से ओडिया भाषा ने साहित्यिक रूप में विकास किया है।



PLATE—I

| Name of Kings | A अ | ka क | kha ख | ga ग | cha च | ja ज | ta ट | da ड | na ण | ta त | tha थ | da द | dha ध | na न | pa प | bha भ | ma म | ya य | ra र | la ल | va व | śa श | sa स | sha ष | ha ह |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 Asoka (3rd Century B C) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 2 Khāravela (1st Cent. B C) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 3 Āndhra, Sātavāhana (2nd Cent A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 4 Kushan Kings of Mathura (2nd Cent. A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 5 Śaka Queen, Dakshamitrā (2nd Cent A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 6 Umāvarman, Māthara of Kalinga (3rd-4th Cent A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 7 Guptā, Samudragupta (4th Cent. A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 8 Vigraha, Prthivi Vigraha of Kalinga (6th Cent A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 9 Ganga, Hastivarman of Kalinga (7th Cent A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 10 Tivaradeva, Pānduaof D Kosala (7th Cent. A D) | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |

परितृप्ति के लिए जितना आवश्यक है उतना ही दिया गया है, क्योकि मेरी यह व्यक्तिगत अनुभूति है कि साहित्यिक पत्रिकाओ में अत्यत पारिभाषिक विषय को पढकर, अर्थ मालूम करने की हिम्मत साधारण पाठको की नही होती। तीसरी बात यह है कि ओडिया ध्वनियो का जो कोष्ठक दिया गया है वह आधुनिक ध्वनि-विज्ञान-सम्मत है, किंतु यहाँ ध्वनियों का वर्णन तथा वर्गीकरण भारतीय ध्वनिक्रम के अनुसार किया गया है। आशा है कि साधारण पाठको के लिए यह बोधगम्य होगा। चौथी बात यह है कि आवश्यक जगहो पर विशेष रूप से अंग्रेजी और हिंदी ध्वनियो की तुलना कर दी गई है, क्योकि यह निबध हिंदी जाननेवाले पाठको के लिए ही लिखा गया है। पाँचवी बात यह है कि ध्वनि-सबधी तथ्यो को अच्छी तरह से हृदयगम कराने के लिए जितने प्रकार के चित्रो की आवश्यकता है उनको यहाँ देना सभव नही हुआ। छठी बात यह है कि ओडिया ध्वनितत्त्व का पूर्ण विचार अब तक किसी ने नही किया है। इसलिए यहाँ कही गई कुछ बातें, यत्र से परीक्षित न होने तक, चरम निष्पत्ति के रूप में ग्रहण नही की जा सकती।

## ओड़िया ध्वनि चार्ट

| | | द्वयोष्ठ्य | दंत्योष्ठ्य | दंत्य | वर्त्स्य | मूर्द्धन्य | ताकु वर्त्स्य | तालव्य | कंठ्य | काकल्य |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| व्यंजन | स्पर्श | प ब<br>फ भ | | त थ<br>द ध | | ट ठ<br>ड ढ | | | क ग<br>ख घ | (?) |
| | स्पर्श संघर्षी | | | | | | च ज<br>छ झ | | | |
| | नासिक्य | म | | | न | ण | | | ङ | |
| | पार्श्विक | | | | ल | ळ | | | | |
| | कुण्ठित वा लोल | | | | र | | | | | |
| | उत्क्षिप्त | | | | | ड़ | | | | |
| | संघर्षी | (फ् भ) | | स | | | | | | ह |
| | अर्द्धस्वर | व | | | | | | य | | |
| स्वर | संवृत | उ | | | | | | अग्र | पश्च | |
| | अर्द्ध संवृत | ओ | | | | | | इ ए | उ औ | |
| | अर्द्ध विवृत | अ | | | | | | | अ | |
| | विवृत | | | | | | | | आ | |

क, ख, ग, घ—इन सबका उच्चारण-स्थान समान है। हिंदी और ओडिया दोनो भाषाओ में ये प्राय समान उच्चरित होते हैं। इनमें से "ख" का उच्चारण कही कही इतना अग्रीकृत होता है कि वह कठ्य न होकर तालव्य के निकटतम एक ध्वनि में वदल जाता है। जैसे खिआ, आखि। अग्रस्वर "इ" के पहले होने से "ख" में ऐसा परिवर्तन होता है। ग, घ आदि सघोष ध्वनियो के वारे में एक अजीव वात देखने को मिलती है। सावारणत प, न, आदि नासिक्य व्यजनो का उच्चारण करते समय हवा नाक में से होकर निकलती है। लेकिन विज्ञानशाला में यत्र से परीक्षा करके लेखक ने देखा है कि ग, घ, ड, व, आदि सघोष ध्वनियो को उच्चारण करते समय भी नासारन्ध्र से भी कुछ अश मे हवा का सचालन होता है। इस तथ्य को पहले भी कुछ ध्वनि-विदो ने स्वीकार किया है। जैसे—

कथा (कथा) गला (गया)
आखु (ऊख) घर (घर)

च, छ, ज,—इन सभी ध्वनियो के उच्चारण का स्थान समान है। हिंदी ध्वनियो से इनकी ध्वनि अलग नही सुनाई पडती है। लेकिन अग्रेजी च, ज, (Church, Judge) वोलते समय जैसी शक्ति की आवश्यकता पडती है, वैसी ओडिया में नही है। ओडिया उच्चारण शिथिल मालूम पडता है। इन ध्वनियो का सावधानी से विचार करना चाहिये, क्योकि इनके नये-पुराने अनेक तथ्य हैं और विभिन्न भारतीय भाषाओं में इनके स्वरूप विभिन्न मालूम पडते हैं। प्राचीन शास्त्रीय-मत में ये तालव्य-स्पर्श के रूप में परिचित हैं। लेकिन यान्त्रिक परीक्षा करने के बाद लेखक ने मालूम किया है कि ये वस्तुत तालु-वर्त्स्य स्पर्श सघर्षी ध्वनियाँ हैं। इन ध्वनियो को उच्चारण करते समय जीभ भी कठिन तालु के साथ नही मिलती वरन् वर्त्स के ठीक पीछे और कठिन तालु के अग्रभाग के साथ मिलती है और जिह्वा की नोक दाँत के पास चिपक जाती है। जीभ के भी अपने मिलन-स्थान से धीरे-धीरे मुक्त होते समय एक प्रकार की सघर्ष-ध्वनि सुनाई पडती है। इन ध्वनियो में तालु और वर्त्स के वीच के स्थान का व्यवहार होता है। पहले स्पर्श होकर धीरे-धीरे सघर्ष होने के कारण इनको ओडिया में तालुवर्त्स्य स्पर्श सघर्षी के रूप में अपनाना चाहिये। यह सिद्ध करना कुछ कठिन नही है कि ये ध्वनियाँ स्पर्शी नही वल्कि सघर्षी हैं। सघर्षी ध्वनियो की तरह च, ज को हम क्रमश च् च् च् च्, ज् ज् ज् ज्, के रूप में उच्चारण कर सकते हैं। ओडिया, वॅगला आदि भाषाओ में च, ज, तालुवर्त्स्य स्पर्श-सघर्षी हैं, लेकिन तेलुगु और मराठी भाषाओ में इन ध्वनियो का दत्यरूप भी है। वे ts और dz की तरह सुनाई पडती है। इन भाषाओ में उनके अर्थ-भेदकारी मूल्य हैं। ओडिया भाषा में ज ध्वनि के लिए ज और य दो सकेत होने के कारण विद्यार्थी ज और य के व्यवहार में वरावर गलती करते हैं।

उदाहरण—चक (पहिया) ज्वर (वुखार)
छवि (चित्र) झरणा (झरना)

ट, ठ, ड, ढ,—इनका उच्चारण हिंदी ध्वनियो से भिन्न नहीं है। साधारणत ये मूर्द्धन्य हैं जिसके कारण जिह्वा ऊपर उलटकर मूर्द्धा के साथ मिलती है। सस्कृत शास्त्र में जिस मूर्द्धा-

है। प्राय ओडिया "ह्" सघोष के रूप में उच्चरित होता है। किंतु विशेष स्थलों में यह अवश्य अघोष के रूप में उच्चरित हो सकता है। आदमी दुख पाते समय जो दु ख-सूचक ध्वनि 'इह उह्' प्रकट करता है उसमें अघोष ह् का उच्चारण सुनाई पडता है। न और ह् को एक साथ वोला जा सकता है। "वह्नि" शब्द की परीक्षा करके देखा गया है कि न और ह् के एक साथ उच्चरित होते समय ह् के लिए जिस समय मुँह से हवा निकलती है, उसी समय न के लिए भी नाक से हवा निकलती है। ल और ळ के साथ ह के उच्चारण के वारे में पहले कहा जा चुका है।

उदाहरण—हर (शिव)।

व—यह कण्ठोष्ठ्य-अर्धस्वर वैदेशिक शब्दो में सुनाई पडता है। अग्रेजी में इस ध्वनि को उच्चारण करते समय ओष्ठ पर शक्ति लानी पडती है। ओडिया उच्चारण में वैसा नही है। ओडिया उच्चारण इतना हलका है कि सावधान होकर उच्चारण न करने से वह उच्चारण उ की तरह सुनाई पड सकता है। उदाहरण—वागन (वागन), वारट (वारण्ट)।

य—यह तालव्य अर्वस्वर हिंदी की तरह ओडिया में भी सुनाई पडता है। यह कई भापाओ में श्रुति (Ilide) के रूप में व्यवहृत होता है। साधारण वोलचाल की भापा में यह "य" के रूप में न होकर दो स्वरो के सयोग की तरह सुनाई पडता है। अपढ लोग इसका ठीक-ठीक उच्चारण नही कर पाते। वे "दया" के स्थान पर "दइया" और "माया" के स्थान पर "माइया" कहते हैं। 'ह्' के साथ मिलने से इसे कुछ लोग य के रूप में और कुछ लोग ज्य के रूप में उच्चारण करते हैं। यथा —सह्य शब्द को कोई "सह्य" और कोई "सज्य" की तरह उच्चारण करते हैं। ओडिया शब्दो के प्रारभ में य का व्यवहार नही होता। उदाहरण—लय।

ओडिया की ध्वनि-पद्धति में यह ध्वनि गृहीत होने पर भी अह, ओह आदि कुछ व्यगात्मक उच्चारण करते समय अ और ओ की तरह उच्चरित होती है। इसे ध्वनि-विज्ञान में काकल्य-स्पर्श कहते हैं। यह छोटी सी खाँसी की तरह सुनाई पडती है।

**ओडिया स्वर**

आजकल किसी भाषा के स्वर को समझाते समय स्वर त्रिकोण की मदद ली जाती है। स्वर त्रिकोण में जहाँ वडी-वडी काली विंदियाँ लगाई गई हैं, वे मानस्वरो के स्थान हैं। उन मानस्वरो की तुलना में अन्य भाषाओ के स्वरो को स्वर त्रिकोण के अन्दर निर्देश किया जाता है। वास्तव में स्वर त्रिकोण एक चतुष्कोण होने पर भी परपरा से इसे त्रिकोण कहा गया है। चूँकि यह निवन्ध अत्यन्त सीमित अर्थात् निर्दिष्ट पृष्ठो में लिखना था और सावारण पाठकों के लिए लिखे जाने के कारण अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारो को छोड दिया गया है। अ, आ, इ, उ, ए, ओ, आदि ओडिया स्वर अघोष के रूप मे अनुनासिक के रूप में भी उच्चरित होते हैं।

हिंदीभाषी वच्चो के साथ खेलने के वाद कहती है कि हिंदी वच्चे कलम को कलम् और कागज को कागज् कहते हैं। भाषातत्त्व तो दूर रहा, विना भाषा मालूम किये ही छोटी वच्ची भी इस भेद को पकड लेती है।

आ—ओडिया आ कवृत्त अग्रमान स्वर और कवृत्त पश्चमान स्वर की वीच वाली एक ध्वनि है। यह अँग्रेजी शव्द Fa hcı के a की तरह गभीर नही है और हिंदी के आ की तरह दीर्घ नही है। इसलिए ओड़िया द्वारा हिंदी आ को वरावर ह्रस्व के रूप में उच्चारण करने के कारण मालूम पड जाता है कि वे अहिन्दी-भाषी हैं। ओडिआ आ एक ह्रस्व ध्वनि है जिसे कहीं-कही स्वरघात और स्वरलहर के अनुसार दीर्घ उच्चारण कर सकते हैं। गा (गाओ) शव्द को हम कही-कही ह्रस्व आ और कही दीर्घ आ के रूप में उच्चारण कर सकते हैं। लेकिन सिर्फ आ के ह्रस्व दीर्घ के अनुसार हम देशज और ओडिया में प्रचलित विदेशी शव्दो में अर्थ-भेद मालूम कर सकते हैं। दीर्घ आ ध्वनि विदेशी शव्दो में विशेष सुनाई पडती है। उदाहरण के लिए दो शव्द पर्याप्त होगे—किसका (ह्रस्व आकार), गाडी (दीर्घ आकार)। शीघ्रता के साथ वोलते समय ओडिया "आ" कई स्थानो में अग्रेजी But शव्द के u की तरह (ʌ) उच्चरित होता है।

ई, इ—ओडिया दीर्घ ई, मानस्वर (ई) से कुछ अश में निम्नकृत और पश्चात्कृत है। हिंदी दीर्घस्वर से यह भिन्न नही है। अग्रेजी दीर्घ स्वर में जैसी सयुक्त स्वर हो जाने की प्रवृत्ति है, वैसी इनमें नही है। यह ह्रस्व की लवाई है। ओडिया शव्द "तिनि" को क्रम से एक, दो, तिनि कहते समय इ दीर्घ सुनाई पडता है, लेकिन लिखते हैं ह्रस्व वल्कि ओडिया में जो दीर्घ ई (सीता, गीता) लिखते हैं उसे ह्रस्व इ की तरह उच्चारण करते हैं।

ओडिया ह्रस्व इ दीर्घ ई से अधिक निम्नकृत और पश्चात्कृत तथा शिथिल भी है। लेकिन यह हिंदी ह्रस्व इ और अग्रेजी ह्रस्व ई से उच्चतर है। हिंदी ह्रस्व इ का उच्चारण इतना धीमा है कि कभी सुनाई नही देता। उसके स्थान पर एक तरह का अ उच्चारण सुनाई देता है। जैसे—भाँति भाँत। ओड़िया भाषा में लिखित दीर्घ ई प्राय ह्रस्व इ की तरह उच्चरित होता है। रूसी भाषा में जैसे ह्रस्व-दीर्घ के कारण अर्थ में कुछ फर्क नही पडता, वैसे ओडिया भाषा में भी है। फिर भी विदेशी भाषा के प्रभाव से कुछ दीर्घ ध्वनियाँ ओडिया भाषा में आ गई हैं। हाँ, उपभाषाओ में दीर्घ ध्वनियाँ हो सकती हैं पर मुझे उसका ठीक-ठीक पता नही है। लेकिन दीर्घ ध्वनि होने पर भी वह अर्थ भेदकारी है या नही, यह परीक्षणीय है।

ऊ, उ—ऊ और उ मानस्वर (ऊ) से कुछ अश में निम्नकृत तथा अग्रकृत है। क्रमश एक, दुइ, तिनि, गिनते समय ओडिया "दुइ" शव्द के उ का उच्चारण दीर्घ सुनाई पडता है। ह्रस्व उ सावारणत अग्रेजी ह्रस्व उ से उच्चतर है। अग्रेजी ह्रस्व उ जैसे अग्रेजी दीर्घ सुनाई पडने की सभावना से युक्त है वैसे ही ओडिया ह्रस्व उ की भी दीर्घ और ऊँचा सुनाई पडने की हो सकती

## वलाघात और स्वरलहर

किसी भी भाषा के स्वराघात और स्वरलहर की समीक्षा के लिए विशेष प्रकार की परीक्षा की आवश्यकता होती है, क्योकि उसमें विभिन्न प्रकार के प्रश्न लगे हुए है। शायद आज तक किसी भारतीय भाषा में इनकी यथार्थ समीक्षा नही हुई है। इसलिए यहाँ उसके वारे में विशेष कुछ न कहकर साधारण तौर पर कुछ कहा गया है।

किसी शब्द का उच्चारण करते समय किसी एक स्थान पर अधिक हवा निकलने से उस स्थान पर ध्वनि अधिक स्पष्ट होती है। ऐसी स्पष्ट ध्वनि को वलाघात-युक्त (Stressed) ध्वनि कहते हैं। वलाघात को (ˈ) इस चिह्न के द्वारा सूचित किया जाता है। अंग्रेजी की तरह कुछ भाषाओ में वलाघात से एक निश्चित अर्थ सूचित होता है। लेकिन ओडिया, वँगला, हिंदी आदि भाषाओ के शब्दो में स्वराघात का कोई अर्थ-भेदकारी मूल्य नही है। हिंदी भाषा में साधारणत उपात्य स्वर पर वलाघात होता है, जैसे—कमल। वँगला भाषा के शब्दो में वलाघात प्रथम स्वर पर होता है। असामी भाषा में साधारणत आदि स्वर में नही होता। ओडिया भाषा के वलाघात के विषय में भी छानवीन करने की आवश्यकता नही है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने एक स्थान पर कहा है कि पद्रहवी शताव्दी में ओडिया भाषा में आद्य स्वर पर स्वराघात नही था और अव भी नही है। यह कुछ हद तक ठीक होते हुए भी पूर्ण रूप से ठीक नही है। इस विषय में निश्चित रूप से कहने के लिए एकाधिक अक्षरोंवाले शब्दो को विशेष परीक्षा का विषय वनाना होगा। निम्नलिखित शब्दो में वलाघात देखिये—

| दो अक्षरोवाले शब्द | तीन अक्षरोवाले शब्द | अधिक अक्षरोवाले शब्द |
|---|---|---|
| ˈघर | अˈनेक | पुˈरुषोत्तम |
| ˈसारु | सˈसार | सˈरघरिया |
| ˈपुअ | अˈरट | उˈपुगारिआ |

यहाँ सिर्फ असयुक्त शब्दो में होनेवाले वलाघात के नमूने दिये गये हैं। इस विषय में पूरा विवरण जानने के लिये अधिक परीक्षा करने की आवश्यकता है, फिर भी वाक्यो के वीच वलाघात का परिवर्तन दिखाने के लिए कोशिश नही की गई है।

## स्वरलहर

स्वर-लहर एक जटिल व्यापार है। उसका उपयुक्त विश्लेपण न होने तक कुछ कहना आसान नही है। फिर भी एक लघु वाक्य के साधारण तथा प्रश्नात्मक स्वरूप का नमूना यहाँ दिया जा रहा है। वाक्य में किसी अक्षर का तान विशेप उच्च नही है, वल्कि एक प्रकार से अक्षर ही लयतान की सूचना देते हैं। प्रथम वाक्य में स्वर-लहर अवरोही और द्वितीय वाक्य में आरोही है।

ाकृतिक दृश्य ❁

( बगल में ) मरालमालिनी चिल्का झील का मनोमुग्धकार दृश्य
( नीचे ) चिल्का झील के वक्ष पर नौकाविहार के दो मनोरम दृश्य

# ओड़िया साहित्य का विकास-क्रम

## (क) प्राचीन

### अध्यापक वंशीधर महान्ति

भारतीय गणतत्र के अतर्गत प्रधान रूप से बोली अथवा लिखी जाने वाली भाषाओ में सिंधी और नेपाली को छोडकर शेष हिंदी, उर्दू, बँगला, तेलगू, तामिल आदि १४ भाषाओ के साथ ओडिया भी सविधान के अनुसार राजकीय भाषा के रूप में स्वीकृत है। यदि ओडिया के वाहरवाले ओडिया-भाषी अचल को छोड दिया जाय तो १९५१ की जनगणना के अनुसार ६० हजार वर्ग-मील के इस विस्तृत भूखण्ड की जनसख्या एक करोड ४६ लाख है[1], जिसमें सपूर्ण जनसख्या का २० २६ प्रतिशत भाग अथवा ३० लाख व्यक्ति आदिवासी भाषा-भाषी हैं। इनमें शवर, कध, कोल्ह, साताल, हो, मुडारी, परजा, गदला, उराउँ आदि भाषाएँ मुख्य हैं।

भारतीय भाषाओ में एक मुख्य भाषा होते हुए भी हिन्दी, बँगला, विहारी, और आसामी की भाँति ओडिया की उपभाषाएँ नही हैं पर इसकी आचलिक भाषाएँ हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन के मतानुसार कटक, कलाहाण्डि, झासपुर, कण्टाई, दान्तण, वस्तर, सम्वलपुर आदि की भाषाएँ आचलिक भाषाएँ हैं। इसके अतिरिक्त वालेश्वर तथा गजाम की भाषाएँ आचलिक भाषाएँ मानी जा सकती हैं।

भाषा तत्त्वविदो के मतानुसार पूर्वांचल मागधी से केवल ओडिआ ही नही वल्कि विहारी, बँगला और आसामी भी निकली हैं।

"ओडिआ" तथा "ओडिशा" शव्द वहुत प्राचीन है। शवर भाषा में "उर-रो" शव्द खेती और काश्तकार के अर्थ में वहुत प्रचलित है।[2] किसान को पुरानी तामिल में "उकल" तथा कन्नड में "ओडिसु" कहते हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीन "उड" शव्द खेती के अर्थ में और "ओडिशा" कृषको के देश के अर्थ में प्रचलित था।

पुराण तथा धर्मशास्त्रो में "उड" नामक किसी अनार्य जाति का स्पष्ट सकेत मिलता है। भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार उड जाति शवर, आभीर, चाण्डाल आदि अनार्य जातियो से सवधित

---

१ लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया, ग्रियर्सन, खड ५, पृ० ३६९।

२ इंगलिश-सोरा डिक्शनरी, राममूर्ति, पृ० ५६, ५८।

उ-अगाडि, कड्डजेम् (तामिल) उ-कडा, कड्डु (तेलगु उ-कडा, कुनि (तेलगु) उ-सान आदि शव्द हैं। इनमें कोइलि की आलोचना करते हुए कहा जाता है कि यह शव्द तेलुगु से आया है जिसका अर्थ है मन्दिर। को-भी-इल (ko-v-ıl) तेलुगु में मन्दिर को कहते हैं। जो हो, ओडिआ एक आर्य भाषा है और शताधिक वर्षों तक राज करने पर भी द्राविड का प्रभाव ओडिया पर वहुत अधिक नही पडा है।

वास्तव में ओडिया का विकास भारत की अन्य आर्य भाषाओ की भाँति पाली, प्राकृत और अपभ्रश से ही हुआ है। और उसका घनिष्ठतम सवध उन्ही से है। कई विद्वानो का कहना है कि वौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ त्रिपिटक की भाषा कलिंग और उसके दक्षिणाचल की भाषा थी। विनय-पिटक की भूमिका में हरमान उलडेनवर्ग ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है। इसकी पुष्टि में उनकी युक्ति है कि अत्यन्त प्राचीन काल से सिंहल के साथ कलिंग तथा उसके राज्यो का घनिष्ठ सवध था। नासिक के शातकर्णियो और खडगिरि में प्राप्त मेघवाहन के शिलालेखो की भाषा का पाली भाषा से घनिष्ठ सवध है।[1] इसी आधार पर ओडिया और पाली की समानताओ पर खोज करते हुए ऐसे वहुत से शब्दो को उपस्थित किया जा सकता है जो उक्त दोनो भाषाओ के सवध को प्रकट करते हैं। वस्तुत ये शव्द ओडिया के पूर्व सवध की घोषणा करते हुए दिखाई पडते हैं। जैसे —

गृहिणी>घरनी>उ० घरणी, अग्नि>अग्नि>अगि, अलक्ष्मी>अलक्खी>अलखी पुत्र>पुत्त>पुत्र, षष्>छ>छ, षड्विंशति>छवीस>छविस, एति>एहि>एहि, ज्वाला जाला>जाला, खर्जुर>खज्जुरी>खज्जुरी, शाल्मली>सिम्वली>सिम्वली, मेण्ढो>मेण्ढा, मेण्ढा, मिथ्या>मिच्छा>मिच्छ, मज्जा>मिजा>मजा, अवलम्व>अलम्वो>उलम, प्रधान> पधान>पवान, पर्यंक>पल्लको>पलक, सत्य>सच्च>सच्च, शृग>सिंग>सिंग, तत्र>तन्त> तन्त, स्थाल>थाल>थाल, स्तन>थना>थन आदि शव्दो के विकास-क्रम को देखते हुए ओडिया के स्रोतस्थल का अनुमान सहज ही में लग जाता है। भाषातत्त्वविद् तथा प्राकृत वैयाकरणो का मत है कि ओडिया के साथ मागधी और वहुत अशो तक शौरसेनी प्राकृत का भी सवध था।

आधुनिक आर्य भाषाओ—विहारी, आसामी, वॅगला, ओडिया आदि भाषाओ—में हमे कई दृष्टियो से अपूर्व साम्य मिलता है। इसका एकमात्र कारण यही है कि उनका विकास एक निश्चित प्राकृत से प्राय एक ही समय में हुआ। किंतु ओडिया की प्रकृति अन्य सहोदरा भाषाओ से थोडी भिन्न है। वह एक रक्षणशील भाषा है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण उसमे वहुत से प्राचीन सस्कृतेतर शव्द आज भी अँटके रह गये ह। प्राकृत काल में प्रचलित शव्दो के प्राय अविकल रूप इसमे आज भी वर्तमान हैं। ऐसे शव्दो के उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं जो अपनी विकसित दिशा मे आज भी मूल का सकेत देते हैं —

---

१ विनय-पिटक, हरमन ओल्डेनवर्ग, भाग १, भूमिका पृ० Liii & पृ० LIV

यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि यह व्रजबोली भाषा सन् १५००–१८०० तक प्रचलित थी।

रामानन्द राय, माधवी दासी, जगन्नाथ दास, वृद्ध चम्पतिराय तथा अन्यान्य कवियित्रियो और कवियो का व्रजबोली सगीत ओडिशा का प्रचलित लोकप्रिय वैष्णव सगीत है। अभी तक खोर्धा में रामानन्द राय के वशधर रहते हैं और वे शुद्ध ओडिया हैं। डा० सेन का अनुमान है कि रामानन्द राय के वशधर बगाली थे[1] किंतु उनके इस अनुमान का कारण नही प्रतीत होता। १६वी शताब्दी के प्रारभ में ओडिशा में वैष्णव धर्म का विपुल अभ्युत्थान हुआ था। अनेक गन्थो से यह प्रमाणित हो चुका है कि इस समय मैथिली और ओडिया मिश्रित व्रजबोली भाषा में अनेक ओडिशा के सत कवियो की प्रभूत पद्य रचनाएँ मिलती हैं। रामानन्द राय की लेखनी से तो व्रजबोली अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। इनकी 'पहिलहि राग नयनभग भेल' या माधव दासी की "नीलाचल हैते शचीरे देखिते आइसे जगदानन्द" आदि गीति-पक्तियाँ अभी तक ओडिशा के लोगो के मुख से सुनाई पडती हैं। प्राचीन ओडिया साहित्य का बहुत सा व्रजबोली सगीत यहाँ वहाँ असकलित अवस्था में बिखरा पडा है।

प्राचीन ओडिआ साहित्य के विकास का समय निरूपण करते समय हमें पहले 'बौद्धगान ओ दोहा' के विषय में विचार करना होगा। साहित्यिक बौद्धगान ओ दोहा की आलोचना करते थकते नही हैं। यह बौद्धगान ओ दोहा किस भाषा की ओर निर्देश करता है, उसका ठीक विचार अभी तक नही हो पाया है। अनेक आलोचको का कहना है कि प्राचीन ओडिआ भाषा के साथ बौद्धगान ओ दोहा का सबध है और अधिकाश कवि ओडिशा के निकटवर्ती या अधिवासी हैं। इस मत को इस ग्रथ के सपादक शास्त्री महाशय भी स्वीकार करते हैं।

डा० विनयतोष भट्टाचार्य, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री आदि का कहना है कि चारो तात्रिक बौद्धपीठो में सर्वश्रेष्ठ उडियान पीठ ही था जो ओडिशा मे है। १६वी शताब्दी के ओडिया सन्त साहित्य के योग-प्रसगो में इन तात्रिक पीठो का नाम अनेक बार आया है, जैसे श्रीहट्ट पाटणा, काउरी मण्डल, पुण्य गिरि तथा जालन्धर आदि। शरीर में स्थित इन्ही तान्त्रिक पीठो तथा उनमें अधिष्ठित देवी-देवताओ के नामो का भी उल्लेख किया गया है। ओडिशा के आदि साहित्य सारला महाभारत में भी 'कामाक्षी पीठ, कामाक्षी देवी या काउरी देश के साथ ओडिशा के सबध के विषय में बहुत से तान्त्रिक उपाख्यान वर्णित हैं।

सिद्ध साहित्य की सम्यक् आलोचना करने पर मालूम होता है कि कान्हुपाद, शबर पाद, लोहिपाद, राजा इन्द्रभूति, विरूप, जालन्धरि, कम्बल, राहुलभद्र, अमितघ्न, वुद्ध श्रीज्ञान, अभयकर गुप्त, धमलवर्ग, निर्वाण श्री, शान्तिगुप्त, प्राज्ञ आदि प्रधान तान्त्रिक धर्मप्रचारक, पद्मसम्भव और बौद्ध श्री आदि बौद्ध सिद्धाचार्य ओडिशा या उड्डियान पीठवासी थे अथवा उड्डियान से निकले सिद्धाचार्य थे। इन सिद्धाचार्यो का समय सन् ६००–१००० ई० के भीतर

---

१ बगला साहित्य का इतिहास—सुकुमार सेन पहला भाग, पृ० १६२।

अधिकाश शब्द आज भी ओडिआ भाषा मे व्यवहृत हैं।[1] डा० वागची के मम्पादित दोहा कोप ग्रन्थ में तथा डिल्लोपा और सरहपाद की दोहावली में अनक ओडिया शब्दो के स्वरूप दिखाई पडते हैं। पादीय दोहा के पइमइ, भणइ, पढिल देक्ख, पलाइ, पढेइ, कढाइ आदि शब्द उदाहरण स्वरूप हैं।[2]

मैथिली साहित्य के इतिहास-लेखक डा० जयकान्त मिश्र ने बौद्धगान ओ दोहा तथा मैथिली भाषा के सबध पर विचार किया है। उन्होने उदाहरणो द्वारा समझाया है कि इस भाषा के साथ मैथिली का सबध था। किन्तु बौद्धगान ओ दोहा में प्रयुक्त ऐसे अनेक शब्द हैं जो आज भी ओडिया भाषा में विशेष रूप से प्रचलित हैं। जैसे—आजि, चाषि, भिडि, तेन्तुलि, सासु, वेढिलि, गराहक, थाही, उपाडि, कोठा, भात, एतकाल, भगत, चौदिस, डाल, पइठा, भणइ, खाड, एकेली आदि।[3] अत उनके इस कथन में सत्याश होते हुए भी इस तथ्य की उपेक्षा नही की जा सकती कि बौद्धगान ओ दोहा प्राचीन ओडिया का ही प्रकाश है। हो सकता है कि प्राचीन ओडिआ और मैथिली में तत्कालीन सिद्धाचार्यों के कारण शब्दों का आपसी आदान-प्रदान हुआ हो। बौद्धगान ओ दोहा के कतिपय निम्न पद उक्त तथ्य के उद्घाटन में सहायक हो मकते हैं जिनमे उपरोक्त प्रचलित ओडिया शब्दो का प्रयोग हुआ है।

प्राचीन ओडिया साहित्य में उपेन्द्र भज आदि कवियो ने दोहो की भी रचना की है। आधुनिक भाषा में दोह शब्द "दुआ" या "दुआ वरिवा" नाम से प्रचलित है। बौद्धगान ओ दोहा

मारिअ शासू नणन्द घरे शाली
माअ मारिआ कान्ह भइल कावाली (दो० १०, पृ० १९)
वलद विआएल गविआ वाँझे,
पिटा दुहिए एतिना साँझे। (दो० ३३, पृ० २१)
उँचा उँचा पावत तहिं वसइ सवर वाळी
मोरंगि पिच्छ परहिण शवरी गिवतगुजरी माळी। (दो० २८, पृ० ४३)
नगर वारिहिरें डोम्वि तोहोरि कुडिआ
छइ छोइ याइसो वाम्ह नाडिआ
× × ×
तुलो डोम्वी हाउँ कपाली
तोहर अन्तरे माए घेलिलि हाडेरि माळी
सरवर भाजीअ डोम्वी खाअ मोलाण
मारमि डोम्वी लेमि पराण। (दो० १०, पृ० १९)

---

१ इडियन लिंग्विस्टिक्स भाग १० : ओल्ड वगाली टेक्स्ट : एस० सेन द्वारा सपादित एवं अनूदित · १९४८ के अनुसार।

२. दोहा कोश पी० सी० वागची द्वारा सपादित . पृ० १०।

३. मैथली लिट्रेचर डा० जे० मिश्र . भाग १ पृ० १०८।

वन्दइ सावरी नाथ मुल कमल धारी
वन्दइ कक्षडी नाथ गहिर गम्भिरि।
वन्दइ जालान्धेरी ज्ञान तत्व परिमाणि
वन्दइ गोविन्द चन्द्र लक्ष पमणि

(अमरकोष गीता—पृ० १, पाण्डुलिपि)

नाथो की इस वदना में धर्म नरेन्द्र, हरिचन्दन रूप सत्यवादी (सत्यनाथ?) चउरगी आदि सिद्धाचार्यो के नामो का भी उल्लेख है। इन सव विपयो के कारण नाथगुरु गोरखनाथ का प्रभाव प्राचीन ओडिआ साहित्य (१५वी शताब्दी) के वाद के सन्त साहित्य पर भी पडा था।

प्राचीन ओडिया साहित्य विशेप रूप से नाथ धर्म की यौगिक साधना, पिण्ड ब्रह्माडवाद, और काया साधना, तथा धर्म दर्शन की धारा से प्रभावित है। प्राचीन ओडिया साहित्य के आलोचन से प्रकट हो जाता है कि सारला पूर्व साहित्य में नाथ साहित्य का एक स्वतन्त्र स्थान ही था।

प्राचीन ओडिया भापा तथा साहित्य के विकास के स्पष्टीकरण मे प्राचीन ओडिया शिलालेख वहुत कुछ सहायक होते हैं। इन शिलालेखो का साहित्यिक मूल्य नही है फिर भी भापा तथा साहित्य के विकास-पथ में इनका ऐतिहासिक मूल्य है। लिपितत्त्वविद् श्री सत्यनारायण राजगुरु का कहना है कि अभी थोडे दिन पहले प्राप्त हुई एक जैन मूर्ति में उल्लिखित दो पक्तियाँ ओडिया के प्राचीन अभिलेखो में प्राचीनतम हैं। लिपि की लिखावट तथा गठन आदि से शिलालेख को दशवी-ग्यारहवी शताब्दी के वीच का ठहराया जाता है।[1] अभिलेख का एक पद यह है —

"देव कही भगति करुण आच्छन्ति भो कुमारसेण"

हाल ही में ढेंकानाल में कपिलास पहाड के शिखरेश्वर मन्दिर के कलश से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह शिलालेख प्रथम नरसिंह देव (सन् १२११-१२३८) के समय का है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रयोदश शताव्दी तक ओडिया भापा पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। उक्त शिलालेख के पद इस प्रकार हैं—

"(स्वस्ति) श्री वीर नरसिंह देव राज्ये १८ श्राहि कैलाश देव कै तुलसी सेनापति रपा ग्राम चतुसीमान्त दत्त"। अनुमान किया जाता है कि १२४८-४५ ई० में यह शिलालेख खोदा गया होगा। इस शिलालेख की भापा से मालूम देता है कि त्रयोदश शताव्दी तक ओडिया भापा विकसित हो चुकी थी।

डा० कुजविहारी त्रिपाठी ने ओडिया के इस शिलालेख का समय श्री हस्तदेव के राजकाल

---

१. द स्क्रिप्ट यूज्ड इन इट विलाग्स टू नॉर्दर्न टाइप आव् अल्फावेट्स आव् द टॅय-एलेवॅय सेन्चुअरीज ए० डी०। द लाग्वेज इज ओरिया। इट इज द अर्लियस्ट ओरिया इस्क्रिप्शन सो फार नोन टू अस. एच० आर० जे०, भाग २, पृष्ठ २१।

ओडिया भापा का नमूना मिलता है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार यह प्राचीन ओडिया भाषा का सबसे पुराना लेख है। १५वी शताब्दी से ओडिया साहित्य का विराट् युग प्रारभ होता है।[1] यह शिलालेख एक ओर तामिल लिपि में खोदित है और दूसरी ओर प्रोटो ओडिया लिपि में। प्रव्रधमाने, कार्तिक, क्रीष्ण, समये, माढ , घेतल्ला, उत्त्रेसर, करन्ते, स्यानापती, कील्ला, दिल्ला आदि वहुत से शब्द ओडिया भाषा की सूचना देते है।[2]

इसके अतिरिक्त अन्य कई शिलालेखो से हमें प्राचीन ओडिया भाषा के विकास-क्रम का पता लग सकता है। १५वी शताब्दी अर्थात् गजपति कपिलन्द्र देव के राजकाल मे इस प्रकार से विकसित होती हुई ओडिया भाषा और साहित्य का पूर्ण प्रस्फुटित रूप मिल जाता है—

"वीर श्री प्रताप कपिलेश्वर देव माहाराजाकर विजय राज्ये समस्त ४ अक शाही धनु अमावै सौरिवारे श्री पुरुपोत्तम कटके परमेश्वरक दर्शन समये महापात्र ककाई सान्तरा महापात्र जलसर सेन नरेन्द्र महापात्र गोपीनाथ मगराज महापात्र, काशी विद्याधर महापात्र वेलश्वर प्रहराज महापात्र लिखन पुरोहित पटनायक दामोदर महासेनापती थाइ परमेश्वरक श्री चरण अग्रते भोग परीक्षा पात्र अग्नि सर्मा मुद्रहस्तर गोचरे वोइला मुदले श्री पुरुपोत्तम देवक देउलद्वारे लेखन करिवा आम्भर ओडिशा राज्यर लोण कउडी मूलकर न्याय्य छाडिलि छाडिलि छाडिलि एहा राजा होइ जे लघइ से श्री जगणाथ देवकु द्रोह करइ"।[3]

यहाँ गजपति कपिलेन्द्र देव या कपिलेश्वर देव के शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं। इनमें समस्तन्ती, नीडका, मरक्त (मरक्त) पद्रक, काशफुल लागि कराइले, सवुहें छाडिले, मुइ, कटकाइ मान्तरा (सामन्तराय) एथकु लिहाइला, दखीण, तु, आणु, जिस, अवधारीत, कृतिवास भुवनसर, प्रभृति शब्दो के प्रयोग से मालूम होता है कि कपिलेन्द्र देव के समय तक ओडिया भाषा का विकास हो चुका था। १५वी शताब्दी के पूर्व के शिलालेखो मे अपूर्ण वाक्यो तथा अनेक सस्कृत शब्दो के प्रयोग मिलते है। कपिलेन्द्र देव के समय तक वह ओडिया भाषा अपनी पूर्ण विकसित अवस्था प्राप्त कर चुकी थी जिसकी आरम्भिक अवस्था अपभ्रश तथा वौद्धगान ओ दोहा मे निहित थी।

ओडिया शिलालेखो और ताम्रपत्रो से ओडिया भाषा तथा लिपि का यथार्थ इतिहास मिलता है। सन् १०५१ से १८०३ तक के जितने शिलालेख मिलते हैं उनकी शैली आदि एक सी दिखाई पडती है। अनुमान है कि इस ढग के प्राय १५० शिलालेख हैं। गंगवश तथा गजपति नरेशो के काल मे ही ओडिया भाषा तथा साहित्य का विकास हुआ है। गगवशी राजाओ की मातृ-भाषा तेलुगु है फिर भी वे इसे राजाभाषा के रूप में गृहीत कर सस्कृत तथा ओडिया भाषा के प्रसार मे सहायक वने हैं।

---

१. आई० एच० क्यू०, भाग २३, १९४७, पृ० ३३७

२ जे० ए० एस० वी०, भाग २०, १९२४, पृ० ४१

३ ओरिया इस्क्रिप्शन्स आव् द फिफ्टींथ, सिक्सटींथ सेन्चुरी ए० टी०, चक्रवर्ती जे० ए० एस० वी० १८९३, भाग LXIII.

हुई घटनाओ का उल्लेख इसमें ठीक-ठीक रूप से लिपिबद्ध किया गया है। पर उसके पहले की घटनाएँ काल्पनिक तथा परम्परानुक्रम से लोकमुख की सुनी हुई बातो का लौकिक स्वरूप मात्र हैं। इसलिये ऐतिहासिको का कहना है कि मादला पजिका में वर्णित मुगल पूर्व युग की घटनायें केवल लोकमुख तथा कल्पना पर आश्रित हैं।[1] इस "मादला" पाजि में अवश्य ही कई प्राचीन शब्दो का उल्लेख है, फिर भी उपरोक्त भाषा को समय की भाषा कहना समीचीन नही है। ऐतिहासिको के समय निर्द्धारण के अनुसार "मादला पाजि" का समय १७वी शताब्दी है।

प्राचीन गद्य साहित्य के प्रसग में यह कहा जा सकता है कि गौरेख नाथ रचित शिशुवेद की गद्यव्याख्या अत्यत प्राचीन ओडिया गद्य का आभास देती है। उसके कुछ अश नीचे दिये जा रहे हैं—

"दसगुरु वन्दिले पाइवा सरूप विचार। अचल थे सून्यटी से। ये दुहिकरि रेख रीप नाहिं। चलु निरजन शून्य थेनि वर्न तिनि नाहिं। भितरे निराकार पुरिमकु देखि रहिले एहाकु निस्वती योग सम्भादि वोली। सवद ये से ब्रह्मा धुनी टी निसवद जे से नीर्न चक्षुटी। सुणिमाकु मन चक्षु यमइ टि। शृति मँवरे चइतन रीप होइ टी। ब्रह्म धुनीरे हेतु कला वेनी रहिले येहाकु अलेकयिव समादि वोली टी।"[2]

इसके बाद प्राचीन गद्य-साहित्य की दूसरी एक प्रधान पुस्तक है रुद्र सुधानिधि। इसके रचयिता हैं एकाम्र-कानन-निवासी नारायणानन्द अवधूत स्वामी। ओडिया साहित्य क्या भारत के अन्यान्य प्रादेशिक साहित्य में भी इस प्रकार के आलकारिक छन्द-पूर्ण, योग, तन्त्र, मन्त्र तथा दार्शनिक तथ्य पूर्ण गद्य-ग्रन्थ का होना कठिन है। इससे कवि के अगाध पाण्डित्य का आभास मिलता है और साथ ही ओडिया साहित्य में उनकी आश्चर्य-जनक दक्षता का भी पता चलता है।

कवि ने अपने पाण्डित्य का सामान्य आभास देते हुए ग्रन्थ का आरभ इस प्रकार किया है —

"श्री हरिहराभ्या नम। श्री एकाम्वर वन आश्रित। श्री भुवनेश्वरी देवीर वरपुत्र। निर्दोष वाक् विशप। आगम जन्म। पुसावतार शारदा। दिग्गज पण्डितकु विक्रम केशरी। शुद्ध धीरे मत गर्वित। पण्डित जन समूह कु उन्मत्त युवा। क्षुधा पचानन। नराकृति कठीरव। पचम वेद। षट शास्त्र। नवधा व्याकरण। अष्टादश विद्या। गीता पुराण। नव नाटक स्तम्भन मोहन वश्य उच्चाटना गोटिक अजन . लगन। रस रसायन। भल्लूक कुहुक मणिमन्त्र औषधी। इत्यादि विद्या पटल। पाहिक वेकणि ब्रह्म सुधा ग्रन्थे नवरत्न जडित मणि। नारायणा नन्द अवधूतर काव्य वाग्विशेष। शिव, शिव नम शिवाय।"[3]

इसमें स्थान-स्थान पर गद्य रचना में सस्कृत की छन्दमय आलकारिक गद्य-शैलि दिखाई

---

१ नोट्स फ्रॉम द 'मादला पाजि': आर० पी० चंद: जे० बी० ओ० आर० एस० १९२७, भाग १३, पृ० १०-२७।

२. शिशुवेद (पाण्डुलिपि), पृ० ६-७।

३ रुद्र सुधानिधि-उत्कल युनिवर्सिटी पाण्डुलिपि, पृ० १।

ए छार हि किस अवा स्वपन वोलइ। नवद्वार घरर मेरदामर्झर आत्मा दीप्त प्रायेक होइ पुरिअछि। एमन्त वोलि आत्माकु दीपर प्राये करि जगि वसियिले हें कि कार्य। मात्विकि मते वोलइ। समस्त पासोरिले जे रहइ से आत्मा। एमन्त वोइले किस भाव होइला। उपनिषद मते वोलइ चतन्य मात्र हि से ऐ जगतरे अछि। आत्मा प्रभाव ए जगत एमन्त होइले। आत्मार प्रतिभाव कथा जगत वोलि कल्पि मरुअछि। यिले हे कि सुखटि। वेदान्त शास्त्र वोलइ। तदमृत भय ब्रह्ममय ज्ञान स्यान्त ब्रह्म होइले हे। एहा जाग्रतरे जाणइ। स्वप्न होइले हेतु होइ। सुसुप्ति रे त ज्ञान। वोइले शिष्य मिथ्या गुरु पाइला। नायक काण, शिष्य जड। पढाइवा चाट काल। एहाकर ताहाकर येमन्त सवु एमन्त परा लोचाये सेटि। गधमानकु दाउणि पछे वान्वि वुलाइवा पराए सेटि। निविउद्धकारें (?) केहित सूक्ष्म बोलि न जाणिले। देवता पदहि किस पदही किम पद जेवे सवन्ध करि वाच्छा करिवा। सेमाने हे पुरुजल (?) धर्म सिना। स्वर्गऋत जगत भ्रष्ट होउ थान्ति। चिन्तामणि मत वोलइ। एसन जहिकि ध्यान करिवा सेहि जीव (ब्रह्म) होइ होइले जगत कार्य त ब्रह्मा। एहाउ त वड पद नाहिं। ब्रह्मपदकु विचारि मव्ये न देवा। देइ करि ब्रह्म होइवा। तेणे करि कि कार्य। मुण्ड चारिगोटा होइव। हसे गोटिये। प्रान्ते पुणि सन्निपात व्यावि करिवा। करकारे वश कु जीव एहि कयाटि। ऐतेकेहे केहुणिसि मतरे हें केहि वर्म सूक्ष्म न जाणि वुलि मरुयान्ति। अहकार ऋपि माने ये जाहा मत वोलाइ परजा करि। ग्रन्य भोग ए कले।"[1]

स्थान स्थान पर च उलिगा रीति मे गीतगोविन्द के लालित्य से भी वढकर, यमक, अनुप्रासपूर्ण मधुर पदविन्यास की योजना पृष्ठो में की गई है। प्राचीन ओडिआ साहित्य अलकार-पूर्ण नही है। मध्ययुगीन काव्य साहित्य में ही शब्दालकार तथा अर्यालिकार का प्राचुर्य देखा जाता है। फिर भी रुद्र सुधानिधि का आलकारिक आदर्श प्राचीन संस्कृत आलकारिक गद्य रचना के अनुसरण पर है। उसी तरह भापा भी सस्कृत भापानुसारी है। शिवस्तुति प्रसग मे 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के प्रत्येक वर्ण से श्री अवधूत स्वामी ने सुन्दर स्तवक माला की रचना की है। यह पचाम वर्णो की स्तुति है —

"शिवाय नम। शिव, शिव, शिव।

जय जय कुल मुकुन्द कुरग धर कर्पूर ववल। कम्बु सम कण्ठ। कोकनदमाला कर आभरण। कर कलित ब्रह्म कपोल। करपन जोडिकाकादर काकिनी। कुरग चर्मकटी शोभन कालानल नयन।

कर्णे कुण्डल मण्डित। कृष्णवर्ण भुजगम कर। कलाधर कलानिधि धारण कला प्रचण। कालिका सेवित चरणतल। कालान्तक रूप। कपिलाम कन्दर यान।

---

१. रुद्रसुधानिधि उत्कल युनिवर्सिटी पाण्डुलिपि, पृष्ठ ४५-४६

इसको गद्य-रचना के अतर्गत नही रक्खा जा सकता है। इसमें यतिपात देखा जाता है। उससे यह मालूम होता है कि यह विशिष्ट प्रकार की पद्यात्मक गद्यरीति है। गद्य को अतिशय छन्दमय तथा कवित्व-पूर्ण करने के लिये यतिपात का प्रचलन हुआ था। पर वह सर्वत्र नही है।

समय-निरूपण के विपय में पण्डित सूर्यनारायण दास का कहना है कि यह सारलादास के पूर्व की रचना है पर निश्चित रूप से किस शताव्दी का है, यह उन्होने नही वताया है। भाषा की प्राचीनता के साथ साथ शैवधर्म की जो पराकाष्ठा ग्रन्थ में प्रतिपादित हुई है, उससे मालूम पडता है कि यह ग्रन्थ चतुर्दश शताव्दी में लिखा गया होगा। ग्रन्थ के एक स्थान पर है—"पराकृत भाषा हिंसु थाइ" है।[1] इससे अनुमान किया जाता है कि प्राकृत भापा के प्रति पडितो की हिंसा थी। इसलिए इस ग्रन्थ की रचना तभी हुई होगी जव कि लोग प्राकृत भाषा का आदर करते थे अथवा ओडिया भापा के आविर्भाव काल में इस ग्रन्थ की रचना हुई होगी।

पहले कहा जा चुका है कि ओडिया साहित्य के आदि महाकवि सारलादास है। ये प्राचीन साहित्य के स्तभ और ठेठ ओडिया के महान कवि थे। नीचे उनकी रचनाओ की विशेपताओ पर प्रकाश डाला गया है।

## कलसा चौतीसा

चौतिशा रचना प्राचीन ओडिया साहित्य की एक प्रधान विशेषता है। इसमें 'क' से लेकर 'क्ष' तक प्रत्येक वर्ण को पद के आरभ में स्थान दिया जाता है। किंतु कोई कोई चौतिशा उलटे 'क्ष' से आरभ होकर 'क' में खतम होती है। इस प्रकार की चौतिशाओ को विपरीत चौतिशा कहते है। चौतिशा इतनी लोकप्रिय है कि जिमे हरएक कवियो ने काव्य रचना के साथ इसको भी लिखा है।

प्राचीन ओडिया साहित्य के प्रथम उन्मेप में ही हम चौतिशा साहित्य का परिचय पाते है। इस प्रथम चौतिशा का नाम है 'कलसा'। इससे शैव धर्म का परिचय मिलता है और इसका नामोल्लेख सारला महाभारत में भी है। भाषा की प्राचीनता की दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सारला महाभारत के पूर्व की रचना है। इसका रचना-काल सन् १४०० है।[2]

इस चौतिशा की विपय-वस्तु शिव-पार्वती-परिणय है। वृद्धरूप शिव जी के वेश-भूपा-वर्णन के साथ रूपवती युवती पार्वती के परिणय-सवधी विचार में कवि ने हास्य की उद्भावना की है। सखियाँ शिव जी को नाना प्रकार की गालियाँ देती है और फिर दोनो का परिणय वहुत ही सुन्दर ढग से सम्पन्न हो जाता है।

---

१ रुद्रसुधानिधि पाण्डुलिपि–पृष्ठ–३८

२. (क) प्राचीन गद्यपद्यादर्श का मुखवन्ध, डा० आर्तवल्लभ महान्ति के द्वारा सम्पादित, पृष्ठ ७५।

(ख) साहित्य ओ संस्कृति—श्री वंशीधर महान्ति।

अथवा
विधि पूर्व मते वदन्ति कलसा
वशिष्ठ मारकण्ड आवर दुभासा"
(मध्यपूर्व पाण्डुलिपि, पृ० ३१५)

सारलादास

आदि महाकवि शूद्रमुनि सारला दास ओडिया साहित्य तथा भाषा के वास्तविक समृद्धिकारी हैं। इनके पूर्व का साहित्य इनके साहित्य के समान स्पष्ट और उज्ज्वल नही है। सारला साहित्य के समान एक विराट् साहित्य सारला दास के पूर्व ओडिशा में नही था। इसलिए उर्जस्वल ओडिया साहित्य के स्वरूप का प्रकाश हमें सारला साहित्य में मिलता है। इस महान प्रतिभाशाली महाकवि ने महाभारत, विलका रामायण, चण्डीपुराण, लक्ष्मीनारायणी-वचनिका आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं। ये कटक जिला के झकड प्रगणास्थ सारला देवी मन्दिर के निकटस्थ कनकावती नगर या आधुनिक कनकपुर के निवासी थे। ऐसा मालूम पडता है कि उनका पहले का नाम सिद्धेश्वर था किन्तु वाद में उन्होने सारला देवी की कृपा से अपने को शारलादास के नाम से परिचित कराया। उन्होने ग्रन्थ में कई स्थानो में इसका उल्लेख किया है कि उन्होने सारला देवी के आदेशानुसार ग्रन्थो की रचना की है।

ग्रन्थ के विभिन्न स्थानो में अत्यत नम्रतापूर्वक प्रकाशित किया है कि वे पहले कृषक थे, हल उनका एकमात्र शस्त्र या आश्रय था। हल जोतकर वे अपना पेट पालते हैं। वे अपण्डित हैं, मूर्ख हैं, कुस्थान-वासी हैं किन्तु देवी के प्रत्यक्ष आविर्भाव तथा आदेश से वे महाभारत तथा चण्डीपुराण जैसे विराट ग्रन्थ-समूहो की रचना करने में समर्थ हो सके हैं। उन्होने चण्डीपुराण में लिखा है—

"जन्मेण मूर्ख मुइ पण्डित मोर गोति
वलराम सहख धारी कृषि क्रमेण व्रति"
जन्मेण शूद्रमु अपण्डित ज्ञाता
कुस्थानवासी मुहि किस मु कविता"
अहो अशिण मास सुशल पक्ष दशमी अपराजिते
रात्रेण स्त्री एक मेटिला आसि मोते।
से मोते रातेण वसि कहइ याहा
समक्षर परियन्ते मु लेखन करइ ताहा"।[1]

सारलादास के समय निरूपण से यह मालूम होता है कि ओडिशा के सूर्यवश के प्रथम राजा

1 चण्डी पुराण पाण्डुलिपि पृष्ठ २५६

आम्भन्त, किस, हादे, कइटप, (कैटभ) योधि, युजेष्ठि, युजिष्ठि, (युधिष्ठिर), अमोह, (अमोघ) नेमा (नेवा), अन्तरीछ, (अन्तरीक्ष) पइसइ, सामि, (स्वामी) छण के (क्षण के) कोन्ती (कुन्ती) मुकुइ, नाराज, (नाराच), सकोतला (शकुन्तला) नघोष (नहूष) घेति, सचपि (सक्षेपि) तले (तल्लय), अपछरा, नह (नख) कान्तायनी, (कात्यायिनी) अमालायण (अम्लान), माहातमाणी, ग्रिधनि, गोसामणी, तुकु (तोतें) मुकु (मोतें) देवती (देवी) मृघुना, अजगम (अजगव) शोणेहा इत्यादि।

इसी तरह के ग्रामीण शब्दो के सम्भार से सारला साहित्य पूर्ण है। भाषा तथा विषय वस्तु में लौकिक विभाव रहने के कारण यह ओडिशा के गाँवो में अत्यत लोकप्रिय साहित्य के रूप में आज भी स्थान वनाये हुए है।

सारला महाभारत चण्डीपुराण तथा विलका रामायण में भाषा के अतिरिक्त छन्दो का भी वैचित्र्य देखने को मिलता है। ओडिशा में सारला महाभारत दाण्डी महाभारत के नाम से परिचित है, क्योकि महाभारत जिस छन्द में लिखा गया है वह दाण्डिकृत है। महाभारत के पदो में वर्ण-समता विल्कुल नही है। इसमें पूर्व पद १३ अक्षर का है तो दूसरा १३ या उससे कम या कही कही ३२ वर्ण तक चला जाता है।[1] यही दाण्डिवृत्त मराठी साहित्य में भी परिलक्षित होता है। प्राकृत-पिंगल नामक छन्द ग्रन्थ में दडक वृत्त का उल्लेख मिलता है।[2] इसके अतिरिक्त किसी समय अपभ्रश भाषा में भी दाण्डि वृत्त का विशेष प्रचलन था।[3] लगता है, अपभ्रश का यही दाण्दिवृत्त क्रमानुसार लोकप्रिय होकर प्राचीन ओडिया साहित्य में प्रवान स्थान पा गया था। सारला दास के परवर्ती साहित्य में इस वृत्त का अनुसरण कर दाण्डि रामायण, हरिवश तथा विष्णुगर्भ आदि वहुत से ग्रन्थ लिखे गये थे।

## महाभारत

सारला महाभारत प्राचीन ओडिया साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। खेद की वात यह है कि इस अमूल्य ग्रन्थ का विशुद्ध सस्करण नही हुआ है। सस्कृत महाभारत की विषय वस्तु के ढाँचे पर निर्भर होते हुए भी सारला महाभारत के प्रत्येक वर्णन में कवि की मौलिकता झलकती है। विपय-वस्तु को छोड देने पर भी पर्वों के नामकरण में वहुत व्यक्तिक्रम मिलता है।

सारला महाभारत के मध्य पर्व, गदा पर्व, काइशिका पर्व तथा हरिवश पर्व के नामकरण में स्वातन्त्र्य दिखाई पडता है। सस्कृत महाभारत के विभिन्न उपपर्वों का नाम सारला महाभारत में नही मिलता है।

---

१. खवड सेनर ये नोहिला सन्तति
समुद्र कूले तप करइ राय नित्यासिथिला नग्रकु दश योजन परियन्ति (मध्यपर्व)

२ प्राकृत पिंगल, पृष्ठ २६९

३ अपभ्रश एण्ड मराठी मीटर्स : एन० आई० ए०, १९३८, खण्ड १ पृष्ठ २१५–२२८

अनुपस्थिति में वालक भीम द्वारा खा जाना और माता-पिता को परेशान करना, शिशु भीम के पैर की उँगली के आघात से वाघ का मरना आदि विचित्र चरित्र है। अग्नि देवता ने भीम को वर दिया था कि खाने में भीम सर्वदा अतृप्त रहेंगे। बिना काटा हुआ, विना पिसा हुआ और कच्चा पदार्थ जो भी पेट में जायगा, सव आग के समान भस्म हो जायगा। खाने-पीने, शृगार तथा सग्राम में वे हमेशा अतृप्त रहेंगे।

इसी तरह सैकडो अत्यत अद्भुत उपाख्यानो से सारला महाभारत परिपूर्ण है। मध्य पर्व में अर्जुन तथा सुभद्रा-परिणय के प्रसग में सुभद्रा ने मायादेवी की सहायता से अर्जुन को अपने वश में करने के लिए यन्त्र-मन्त्र का उपयोग किया था। वह विषय मूल महाभारत में नही है। महाभारत के विभिन्न स्थानो में तन्त्र-मन्त्र का जो वर्णन किया गया है वह सारला दास के तत्र-ज्ञान का परिचय प्रदान करता है।

सारला महाभारत के मध्य पर्व के अतर्गत सुगन्धि के पुष्प-हरण प्रसग में कामाक्षी व्रत का जो विस्तृत वर्णन दिया गया है तथा विभिन्न स्थानो में कामाक्षी देवी की तन्त्र-सिद्धि के बारे में जो विभिन्न उपाख्यान ह उनसे आसाम तथा ओडिशा के प्राचीन सास्कृतिकसवध का परिचय मिलता है। मध्य पर्व में आये हुए अर्जुन हनुमान-भेंट, चन्द्रावती-हरण, निलन्दी-हरण, शोभावती-हरण आदि वर्णन सस्कृत महाभारत में नही हैं। वनपर्व में पाण्डवो के तीर्थ-भ्रमण प्रसग में उत्कल के पुरी, कोणार्क, एकाम्र और विरजा आदि तीर्थ-वर्णन तथा अनेक उपाख्यान जैसे कि अर्क दैत्य-वध, एकाम्र क्षेत्र में पार्वती द्वारा कृति तथा वात्स नामक दो दैत्यो को पातालस्थ करना आदि कवि की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। ओडिशा के तीर्थ तथा विभिन्न देव-देवियो के महिमा वर्णन तथा तत्कालीन ओडिशा की उदार धर्मचर्या का परिचय प्रदान करता है। लेकिन सहजिया धर्म का प्रभाव पूर्णरूप से न होने से सत्यवती के जन्म और श्रीकृष्ण का दूती के साथ गुप्त प्रणय के कारण शनिवार जन्म वृत्तात सारला दास के महाभारत में है।

गोरखनाथ द्वारा कथित अनेक तन्त्र-मन्त्र, गोरख का नाम स्मरणकर शकुनि का पासा फेंकना, कदली वन में नकुल की गोरखनाथ से भेंट, तथा मत्स्येन्द्रनाथ, सत्यपा, दण्डपा आदि सिद्धो के प्रसग में पूर्ववर्ती नाथ धर्म के वहुत-से सकेत प्रदान करता है। वनपर्व के नल-दमयन्ती उपाख्यान में शुरू से लेकर अन्त तक वहुत सी नवीनताएँ मिलती हैं। अकेली वन मे नल को खोजते समय नागमाता वहुला ने दमयन्ती को पाँच साल तक आश्रय प्रदान किया था। वाद में कर्कोटिक नाग द्वारा नल के दशित होने पर दमयन्ती ने प्राण त्याग दिया। किन्तु वहुला की प्रार्थना से उनके पिता कमला उरगनाथ ने मृत्यु-सजीवनी मत्र के वल से दमयन्ती को वचा लिया।

उद्योग पर्व के वेलाल सेन की कथा भी वैसे ही सारला दास की नूतन कल्पना है। भीम के पुत्र वेलाल सेन को युद्ध मे अजेय समझकर श्री कृष्ण ने उसे चक्र से मारा था। कारण यह है कि महाभारत युद्ध १८ दिन तक चलना चाहिए था किन्तु यदि वेलाल सेन युद्ध मे प्रवृत्त रहता तो यह युद्ध एक दिन में ही खतम हो जाता। इसलिए लीलामय श्रीकृष्ण ने वेलाल सेन को चक्र से मार डाला था। वाद में वेलाल सेन की प्रार्थना से उन्होने उसे दिव्यचक्षु प्रदान कर उसके शिर

दण्डुआसि, जगिआ, मल्ल, महामल्ल आदि पदवियाँ आज भी क्षत्रिय परिवार में हस्ताक्षर के रूप में व्यवहृत हैं।[१]

प्राचीन ओडिशा की अनेक रीतिनीति की झाँकी सारला महाभारत तथा उनके अन्यान्य ग्रन्थो में मिल जाती है। अत्यत प्राचीन काल से ओडिशा भारतीय धर्मपीठ के रूप में प्रख्यापित है। जैन, वौद्ध, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य तथा वैष्णव आदि अनेक धर्मो-उपधर्मों की अनेक तीर्थ-स्थली ओडिशा में मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त श्रीक्षेत्र प्राचीन काल से ही सभी धर्मों का समन्वय स्थल रहा है। सारला दास ने अपने महाभारत में सर्वत्र जगन्नाथ को परमात्मा कहा है। ओडिशा सन्त-साहित्य में जगन्नाथ अवतारो तथा मत्स्य, कच्छप, राम-कृष्णादि देव अवतार-स्वरूप कहे गये हैं। श्रीक्षेत्र के जगन्नाथ मन्दिर तथा विग्रह में जैन तथा वौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव पडना शास्त्र-प्रसिद्ध है। वज्रयानी सिद्ध इन्द्रभूति के 'ज्ञानसिद्धि' तथा अनग वज्र के "प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि" ग्रन्थो में जगन्नाथ जी को वुद्ध रूप में ग्रहण किया गया है।[२]

तान्त्रिक वौद्धधर्म के प्रचार तथा प्रसार से ही ओडिशा एक तान्त्रिक धर्मपीठ के रूप मे परिचित था। अव भी ओडिशा के रत्नगिरि से गुप्तयुग के अत्यत प्राचीन वौद्ध स्तूप का अवशेष मिलता है। सारला महाभारत में पूर्व-परम्परा के कारण जगन्नाथ जी वुद्ध रूप में वदित हैं।

"कलियुग चारिलक्ष वतिश सहस्र वरष परिजन्ते
वउद रूपे पूजा पाइवे नील सुन्दर पर्वते
कलियुगे वउद केशव प्रतिमा
मुहिं होइवि नील सुन्दर गिरि ये उत्तमा—वनपर्व पृ० ३५५-५६

ग्रन्थ में शाक्ति धर्म का प्रभूत प्रभाव है। विमला, भैरवी यत्र जगन्नाथ स्तु भैरव' परवर्ती पचसखा युग के शून्यवाद का स्वरूप भी विभिन्न स्थानो में दृष्टिगोचर होता है—

"आद्य हू शून्य शून्यरु पवन
पवनरु जात योग पुरुष मान
अण्ड फुटिण से होइला निरजन निर्गुण उतपति होइला विवुव निरजनरु ये होइला शक्ति यान"

---

शुकल गन्ता से गोटिये वान्धिला।
कस्तुरि तिलेक से मथारे घेनिला।
निश्वास वारिण से अनुकूल घेनिला। मध्य पर्व-पृष्ठ ७३६

१ सारला साहित्य ओ ओडिशार समर विभव-वशीधर महान्ति, झकार वर्ष ८ प्रथम सख्या पृष्ठ १५९-१६२

२ "प्रणिपत्य जगन्नाथ सर्वजिनवरार्च्यितताम्'
तत्र तत्र जगन्नाथेर्देशित करुणात्मभि।" प्र. वि. सि द्रष्टव्य

लिखा है कि उड्डियान पीठ की देवी कात्यायनी हैं।[१] कई आलोचक इस कात्यायनी देवी को याजपुर की विरजा देवी से अभिन्न मानते हैं।

चण्डी पुराण में महिषासुर महिष सिंह के रूप से वर्णित है। कई राक्षसो के नामकरण में कवि की काल्पनिकता पर्याप्त रूप से परिदृष्ट है। उन्होने कहा है कि कपिल सिंह नामक राक्षस का पुत्र महिषासिंह था। धर्मरेखा कपिलसिंह के शृगार से डर कर सिंहल देश चली गई थी।[२] वहा यमवाहन कृतान्तक महिष का वलात्कार पूर्वक महिष रूपिणी धर्मरेखा के साथ रमण करने के कारण महिषासुर का जन्म हुआ। कपिल सिंह ने अपनी स्त्री का सधान और विषय कपिल ऋषि से सुनकर उससे सिंहल में भेंट की। फिर उससे सारी बातें सुनकर महिषासुर को अपने पुत्र रूप में ग्रहण किया और उसका नाम महिषासुर रखा। मार्कण्डेय और देवी भागवत पुराण की अत्यत छोटी कथावस्तु को लेकर कवि ने एक वहत् पुराण की रचना की है तथा उसमें अपनी मौलिक कल्पना का यथेष्ट उपयोग किया है। इसमें महिषासुर की तपस्या तथा वरप्राप्ति, महिषा-

---

१. कात्यायनी चौड्डि याने कामाख्या काम रूपिणी। पूर्णश्वरी पूर्ण गिरौ चण्डी जालन्धरे गिरौ कालिका पुराण, अ१८।४९-५०

२. महिषासुर ने कुश द्वीप के राजा प्रचण्डासुर के राज्य पर आक्रमण किया। महिषासुर प्रचण्डासुर का संबधी था, अत. संधि प्रस्ताव शुरू हुआ। महिषासुर ने प्रचण्डासुर के दोनो पुत्र-चड-मुण्ड को अपना सेनापति बनाने का प्रस्ताव किया। प्रचण्डासुर की अनिच्छा के कारण महिषासुर का उसके साथ युद्ध होता है, फिर युद्ध में परास्त महिषासुर की सधि होती है। तत्पश्चात् चंड-मुण्ड महिषासुर के सेनापति वनते हैं। देवी भागवत और मार्कण्डेय पुराण में रंभ दानव ने अग्नि से अजय पुत्र रूप वर प्राप्त कर महिषी (भैंस) के साथ रमण किया और पाताल पुर को चला गया। वहाँ दूसरे एक भैंसे की गर्भवती भैंस पर वह प्रेमासक्त हो गया। इसलिये रभ के साथ उसका युद्ध हुआ और रभ मारा गया। फिर चिताग्नि में स्वामी के साथ प्रवेश किया और आग में महिषी गर्भ से महिषासुर (और रभ के रक्तवीज रूप में) पैदा हुआ। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार महिषासुर के द्वारा देवताओ की पराजय हुई। विष्णु के परामर्शानुसार देवताओ की शक्ति से देवी का आविर्भाव हुआ और उनके द्वारा महिषासुर का वध हुआ। महिषासुर के वध के वाद देवी नें देवताओ को कहा कि विपत्ति के समय तुम मेरी सहायता ले सकते हो। बहुत समय के वाद शुम्भ, निशुम्भ के आक्रमण से देवता तग आ गये और देवी की सहायता के लिये उन्होने स्तुति की वही स्तुति चण्डीपाठ है। इसके वाद देवी का आविर्भाव हुआ और शुम्भ, निशुम्भ की, साथ उनका युद्ध हुआ। चण्ड, मुण्ड और रक्तवीज, शुम्भ, निशुम्भ के सेनापति हैं, महिषासुर के नहीं। सारलादास ने महिषासुर के वश, जन्म, विवाह और दिग्विजय और शुम्भ, निशुम्भ की मृत्यु के वाद महिषासुर की मृत्यु आदि का वर्णन अद्भुत कल्पना-शक्ति से किया है।

# ओड़िया साहित्य का विकास-क्रम

## (ख) पूर्व मध्यकालीन

आचार्य आर्त्तवल्लभ महान्ति, एम० ए०, डी० लिट्०

सारलादास उत्कल के आदि महाकवि माने जाते हैं। यदि उन्हें हम आदिकवि न कहकर आदि महाकवि ही कहें, तो अनुचित न होगा क्योंकि वे उत्कलीय काव्य के आदिस्रोत नही हैं। उनके पूर्व 'बौद्ध गान ओ दोहा' जैसी कविताएँ भी पाई जाती हैं। नियमित, श्रृंखलाबद्ध तथा छन्द-बद्ध कविता (जिसके विकास-क्रम में ओडिया साहित्य की चरम अभिवृद्धि हुई है) भी सारलादास के पूर्व बच्छादास ने की थी। "कलशा चौतिशा" अवश्य ही 'बौद्धगान ओ दोहा' के बाद की रचना है। अतएव छन्दबद्ध कविता की दृष्टि से बच्छादास जी को आदिकवि माना जा सकता है। परन्तु रचना शैली की रीति चाहे जैसी क्यो न हो, इसे कोई अस्वीकार नही कर सकता कि 'बौद्धगान ओ दोहा' के रचयिताओ ने ओडिया भाषा में सर्वप्रथम काव्य-रचना की है। इसलिए 'दाण्डिवृत्त' रचना शैली (बेजोड वर्ण-विशिष्ट की दो-दो पक्तियो वाले पद) के अनुसार 'बौद्धगान ओ दोहा' के कवि तथा छन्दबद्ध कविता शैली की दृष्टि से "कलशा चौतिशा" के रचयिता बच्छादास जी को आदि-कवि माना जा सकता है। 'बौद्धगान ओ दोहा' से प्राचीनतर कविता तथा 'कलशा चौतिशा' से प्राचीन-तर चौतिशा अभी तक प्राप्त नही हुई है, इसलिये उत्कल के आदिकवि के सबध में ऊपर जो कुछ कहा गया है उसमें भूल की समावना नही मानी जा सकती। इस सबध में और एक बात ध्यान देने योग्य है। वह यह कि ओडिशा के सबसे प्राचीन छन्दबद्ध काव्य राम-विवाह में प्रयुक्त कलशा चौतिशा वृत्त के अतिरिक्त मेढतोला वृत्त, चक्रकेलि वृत्त, मुनिवर वाणी वृत्त, सगमतिआरि वाणी वृत्त भी उल्लेखनीय हैं क्योकि इस काव्य के कई छन्द इन वृत्तो के अनुसार नियोजित हैं। इनमे से केवल कलसा का ही मूलगीत प्राप्त है और सभी विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये हैं। दैवयोग से यदि वे सब मिल जायें तो ओडिया के कवियो तथा काव्यो के समय-निरूपण में आसानी होगी।

**सोमनाथ व्रत के अज्ञातनामा लेखक**—(१४वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध)

सारला दास के पूर्व एक अज्ञातनामा कवि ने 'सोमनाथ व्रत कथा' नामक एक छोटी सी गद्य पुस्तक लिखी है। उत्कल में १०वी शताब्दी से लेकर १४वी शताब्दी तक शैव धर्म की प्रधानता थी। यहाँ के अधिकाश शिव-मन्दिर इसी समय के निर्मित हैं। अनुमान किया जाता है कि नारायण नन्द अवधूत स्वामी का प्रसिद्ध गद्य काव्य 'रुद्र सुधानिधि' भी इसी समय लिखा गया था।

में चचलता भर जाती है और उनकी सुप्त भावराशि जागृत हो जाती है। वे कोयल को अपने हृदय की करुण-विषादपूर्ण कहानी सुनाकर अपने जी को कुछ हलका कर लेते हैं। ओडिया कवियों ने कोयल को पुत्र-विरह—विधुरा माता तथा कान्तविरह विधुरा कान्ता के शोक भाव के मर्मज्ञ रूप में मानकर कई कोयल सबधी कविताएँ रची हैं। मार्कण्ड दास की "केशव कोइली" ओडिया-साहित्य की प्रथम कोयल-कविता है। यह कविता मथुरा-गमन के समय श्री कृष्ण जी के विरह में आतुर माता यशोदा के हृदय-विदारक आकुल-करुण-उच्छ्वास से पूर्ण एव चौतिशा नियम के अनुसार लिखित है। इसके हरेक पद में वात्सल्य रस की मन्दाकिनी प्रवाहित हो उठी है जो प्रत्येक हृदय को छू लेने में पूर्ण समर्थ है। अग्रेज कवि शैली का कहना है कि करुणापूर्ण भाव ही साहित्य की मधुरतम कविता है—(Our sweetest songs are those that tell of saddest thought) इस दृष्टि से 'केशव कोइली' छोटा होने पर भी ओडिशा के मधुरतम काव्यों में अन्यतम है। निम्नाकित पक्तियाँ वात्सल्य रस से सरावोर कारुण्य की उत्ताल तरगें हैं—

कोइली खण्ड खीर देवि मु काहाकु
खाइवार पुत्र गला मथुरा पुरकु लो कोइली॥
कोइली गला पुत्र वाहुडि नइला
गहन त वृन्दावन शोभा न पाइला लो कोइली॥
कोइली घर मोर न मणन्ति नन्द,
घटण नदिशे पुर न थिले गोविन्द लो कोइली॥
कोइली नन्द देह पाषाणे गढिला
नयने कज्ज्वल देइ रथे वसाइला लो कोइली।

(केशव कोइली)

उनका दूसरा ग्रन्थ महाभाष है। इसमें परम ब्रह्म श्री रामचन्द्र जी की महिमा वर्णित है। "श्री रामचन्द्र के ध्यान में ही ज्ञानोदय होता है"—यही इस ग्रन्थ का मूल विषय है। कैलाश के एकान्त में महादेव पार्वती जी को इस ब्रह्मज्ञान की कथा सुना रहे थे। पर पार्वती के सो जाने पर शुकपक्षी के रूप में शुकदेव ने वृक्ष के कोटर से हुँकारी भरते हुए सारी कथा सुन ली। यह जानकर महादेव उनकी हत्या करने को उद्यत हुए, पर वे वहाँ से भाग गये और वाद में इस लब्ध ब्रह्मज्ञान को ससार में प्रचारित कर दिया। महाभाष में परम ब्रह्म श्री रामचन्द्र जी को ल य कर शुकदेव द्वारा सारा उपदेश प्रचारित किया गया है।

महाभाष तत्वज्ञान सबधी उच्च कोटि का ग्रन्थ है किंतु मार्कण्ड दास जी की केशव कोइली उससे कही अधिक जनप्रियता और प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है।

वाद में महापुरुष जगन्नाथ दास ने इस काव्य की व्याख्या करते हुए 'अर्थ कोइली' की रचना की है। केशव कोइली यदि देश में व्यापक तथा प्रसिद्ध न हुआ होता तो जगन्नाथ जैसे महापुरुष इस छोटे से ग्रन्थ को इतना महत्व न देते। प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिये प्रत्येक काव्य

अरुण कोमल आखि । अमर कातर देखि ।
प्रसन्न वदन तार । मूरति सार ये ।

अहल्या के गर्भ से वालि और सुग्रीव के जन्म-वृत्तान्त का वर्णन जिस तरह अर्जुन दास ने किया है उसी तरह परवर्ती युग में वलराम दास ने भी अपने जगमोहन रामायण में किया है।

अर्जुन दास ने हनुमान की माता को अजना न कहकर यमजानी कहा है। उनके मतानुसार अजना का जन्म गौतम के औरस द्वारा अहल्या के गर्भ से हुआ था। रामविभा की भाषा, शब्दालकार तथा अर्थालकार उत्कृष्ट हैं।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि उस समय ओडिशा में क्रमानुसार शैव धर्म, शाक्त धर्म तथा वैष्णव धर्म की प्रधानता थी। भुवनेश्वर के शिलालेख, कलसा चौतिशा, रुद्रसुधानिधि और सोमनाथ व्रत कथा शैव धर्म की, सारला दास के महाभारत, चण्डीपुराण, और विलका रामायण शाक्त धर्म की तथा केशव कोइली, महाभाष और रामविभा वैष्णव धर्म की प्रधानता के द्योतक हैं। मार्कण्डदास, अर्जुनदास तथा वाद के कई कवियो ने राम और कृष्ण को विष्णु-अवतार मानकर समान रूप से उपासना की है।

**कपिलेन्द्र देव**—इन्ही से ओडिशा में सूर्यवशीय राजाओ का शासन आरभ होता है। इन राजाओ का राज्य-काल सन् १४३५ से १५४० ई० तक था। इस वश के प्रथम राजा कपिलेन्द्र देव (१४३५-१४६८) हैं। इनके द्वारा रचित परशुराम विजय नामक एक सस्कृत नाटक प्राप्त हुआ है। अमर राग में लिखित इसके ओडिया सगीत का उद्धरण नीचे दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि वौद्ध गान ओ दोहा युग से धार्मिक गीत और पुराण आदि दाण्डिवृत्त में लिखित होने पर भी निर्दिष्ट स्वरवद्ध सगीत का अभाव न था। इसके पूर्व वच्छादास के द्वारा रचित कलशा चौतिशा के विपय में कहा जा चुका है। कलशा चौतिशा जैसी लवी रचनाओ को उत्कल के लोग छाद या गीत कहते हैं। किंतु शृखलित और निर्दिष्ट स्वरवद्ध लघु रचनाएँ ही सगीत हैं।

**कपिलेन्द्र देव रचित सगीत**

(अमर रागेण गीयते)

केवण मुनि कुमर परशु दक्षिण कर
वामेण शोहे धनुशर ना
कोपेण वोलइ वीर त तु जे मो वधिलु तात।
आज तोर छेदिवइँ माथ ना
शुण राजन हो। किए तोर राज्ये ब्रह्म वधे ना ॥१॥
ए तोर चन्द्र वदन मेघे कि ढाकिला जन्ह
ताहा देखि विचल मो मन ना
आवर देख अरिष्टि राज्ये तो रुधिर वृष्टि
पुर वेढि रोदन्ति शृगाल ना ॥२॥

रसाणिला तीक्ष्ण शर अटइ से पुणि
याहाकु विन्धइ सेहि लोटइ धरणी। (पद्मपुराण)

**चैतन्यदास**—चैतन्य दास बौद्धधर्म की महायान शाखा से प्रभावित वैष्णव हैं। इनकी विष्णुगर्भ पुराण तथा निर्गुण माहात्म्य नामक दो रचनाओ की खोज की जा चुकी है। उत्कल में बहुत काल तक महायान मत का प्राबल्य था। किंतु इस मत के साहित्य-ग्रन्थ यहाँ नही मिलते। इस दृष्टि से विष्णुगर्भपुराण का मूल्य अधिक है। ब्राह्मण धर्म के आक्रमण से जब बौद्धधर्म का अस्तित्व लोप होने जा रहा था उसी समय महायान पन्थ का आविर्भाव हुआ था। बौद्ध यति नागार्जुन ने ब्राह्मण धर्म के सृष्टि-तत्त्व से कुछ समानता रखते हुए, महायान पन्थ की सृष्टि की थी। विष्णु-गर्भ पुराण में लिखित सृष्टि-तत्त्व अधिकाश महायानी सृष्टि-तत्त्व के अनुरूप है।

विष्णुगर्भ पुराण में लिखा है कि अलेख से अखिल सृष्टि नि सृत हुई है। अलेख का रूप, वर्ण या चिह्न कुछ नही है। वह निर्गुण निराकार है। अलेख शून्य से मिलकर महाशून्य में रहता है। सृष्टि की इच्छा से अलेख महाविष्णु के रूप में आविर्भूत होकर अपने गर्भ में करोडो ब्रह्माण्डो की सृष्टि करता है, अतएव उसके गर्भ को विष्णु-गर्भ कहा जाता है। विष्णु-गर्भपुराण में सनक वक्ता तथा सौनक श्रोता हैं। परन्तु सस्कृत पुराणो में सूत वक्ता है। अलेख ने उत्तर, दक्षिण आदि चारो दिशाओं और नीचे तथा ऊपर के लिये विशिष्ट रग के विभिन्न छ विष्णुओ और उनके लिये केवल चार ब्रह्माओ की सृष्टि की थी। चैतन्य दास ने निर्गुण और निराकार के उपासक होते हुए भी सगुण रूप की उपासना को भी स्वीकार किया है। उनके मतानुसार जीवात्मा का बन्धन माया और काल के द्वारा सघटित है। योग-साधना के द्वारा अलेख का स्वरूप-दर्शन हो जाने पर जीवात्मा की मुक्ति हो जाती है तथा योग-साधना के लिये मनुष्य शरीर के षट्चक्र की एकान्त आवश्यकता है।

देवताओ के शरीर में इस षट्चक्र का अभाव है अत वे योग साधना के योग्य नही हैं तथा अलेख की पूर्ण उपलब्धि के लिये अक्षम हैं। इस ग्रन्थ के अनुसार विष्णुधर्मरक्षक या स्वय-धर्म है। इस ग्रन्थ में महायानी के आदि धर्म या आदि प्रज्ञा के विषय में कोई उल्लेख नही है, यह पुराने ग्रन्थो की तरह दाण्डिवृत्त में लिखा गया है। नीचे कुछ उदाहरण दिये गये हैं —

**अलेख का सगुण प्रकाश**

अलेख पुरुष ये अटइ महाशून्य
आकार नाहिं अणाकार ताहार परमाण।
तेणु करि अलेख मनरे विचारिले
आकार स्वरूप त नोहिला मोर तुले।
आकार स्वरूप मान होइब येउँ रूपे
सेहि विधिमान मु करिबि यथा कल्पे।

इस ग्रन्थद्वय का यथेष्ट आदर है। ओड़िया साहित्य का इतिहास उत्कल के भिन्न-भिन्न युगों में प्रतिष्ठित भिन्न-भिन्न धर्मों का भी इतिहास है। बौद्धगान ओ दूहा, विष्णुगर्भ पुराण और निर्गुण माहात्म्य उत्कल में बौद्धधर्म की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के परिचायक हैं।

निर्गुण माहात्म्य की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टान्त-स्वरूप उपस्थित की जा सकती हैं—

**ज्ञान और कर्म**

काष्ठ भितरे अग्नि थाइ। काष्ठकु न पारइ दहि
मन्थिले करि वाहुवल। तक्षणे जन्मइ अनल
जन्मिण धरे तेज उष्म। तक्षणे काष्ठ करे भस्म।
सेहि प्रकारे देव हरि। अग्नि स्वरूपे भूते पूरि
ज्ञान मन्थन कले नित्ये। प्रकाश हुवन्ति पच भूते।
तेवे से पापकु नाशइ। जीवकु अभय कराइ।

**कर्म-काण्ड की निन्दा**

कर्म देखाइ वेद कहे। कर्म प्राणीक मन मोहे।
कहुछि जीव मुक्ति खोजि। जीव कर्म न पारे बुझि।
जीव परम कर्म करे। से कर्म फल क्षरे वले।
तरिवा लाभे थाइ आश। वाहुडि हुअइ निराश।

**कवि का परिचय**

शुद्रकूले मो अवतार। जात मोहर मालाकार
ये मोते देला जन्म कर्म। कहिवि माता पिता नाम।
दादीक नाम धर्मोत्तर। पिताक नाम बुद्धेश्वर।
माताक नाम मेघावती। से मोते जन्म कले क्षिति।
गुरुक नाम ध्यान दास। से देले ज्ञान उपदेश।

**वीरसिंह**—वीरसिंह सिद्ध बौद्ध सन्यासी (नागान्ति बौद्ध) थे। उनका आश्रम पुरी जिले में प्राची नदी के तट पर था। वे तामिल देश के निवासी और रसायन विद्या में निपुण थे। १५वी शती के कवि महापुरुष अच्युतानन्द ने अपने शून्य संहिता मे लिखा है कि वीरसिंह, लोहीदास तथा वालिगा दास आदि बौद्धयोगी प्राची नदी के किनारे आश्रम वनाकर योगाभ्यास में निमग्न रहते थे। आगे यह भी लिखा है कि गोरख और मल्लिका भी प्राची नदी के किनारे पर्वत-गुहा में रहकर तपस्या करते थे। वीरसिंह द्वारा ओडिआ भाषा में लिखित एक चौतिशा प्राप्त हुई है जो बौद्ध रहस्यवाद से परिपूर्ण है।

पचसखा या पच महापुरुष प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होने धर्म मत स्थापन के लिए शक्तिशाली साहित्य की सृष्टि की थी। उत्कल के जातीय जीवन में पहले तो जैनधर्म और वाद में वौद्धधर्म के महायान और वज्रयान पन्थो का जो प्रभाव पडा उस सवध में महापुरुष अच्युतानन्ददास ने कही-कही लिखा भी है। अतएव यह कहा जा सकता है कि वज्रयान के प्रवृत्तिमार्ग से प्रभाव न ग्रहण कर उन्होने निवृत्ति मार्ग का आश्रय लिया था। उनकी किसी भी कृति में स्वेच्छाचार का समर्थन नही किया गया है। इन्द्रिय-दमन उनका ध्येय था।

इसी सिलसिले में यह भी उल्लेखयोग्य है कि चैतन्य देव इन पचसखाओ की योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति धारा को स्वीकार करते थे। उन्होने अन्यतम महापुरुष जगन्नाथदास को अत्यत ऊँचा पद दिया था। इसीलिए उनके वशगत भक्त प्रतिवाद करने लगे थे और पुरीधाम को त्याग कर वृन्दावन में रहने लगे थे। उन्होने वैष्णव सम्प्रदाय द्वारा स्वीकृत महामन्त्र—

"हरे राम हरे राम। राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे," को वदलकर
"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्णकृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे,"

कर दिया था। कृष्ण दास कविराज के "चैतन्य चरितामृत" वृन्दावन दास के "चैतन्य भागवत" और लोचनदास के चैतन्य मगल आदि वगीय ग्रन्थो में प्रसिद्ध पच सखाओ के प्रभाव का उल्लेख नही है। कारण सुस्पष्ट है।

इस प्रसग में पचसखा के परवर्ती कवि दिवाकर दास ने अपने "जगन्नाथचरितामृत" में श्री चैतन्यदेव तथा महापुरुष जगन्नाथदास के सवध में निम्नलिखित पक्तियाँ लिखी है —

वैष्णव वृन्द येते थिले। देखि एमन्त विचारिले।
उत्कली व्राह्मण सगते। भाव वढाइले निरते।
एहि राज्यरे ए रहिवे। उत्कली कर्म आचरिवे।
ए सग छडाइवा आम्भे। एमन्ते विचारि आरभे।
वोइले उत्कली व्राह्मण। अण उपदेशी आपण।
एहाकु कर्म करिवारे। निषेध अछइ शास्त्ररे।

× × ×

अतिवड वोलि वोलन्ते। वैष्णवे दुःख कले चित्ते।
ओडिया व्राह्मण अणाइ। वोइले अति वड एहि।
आज पर्यन्त सेवाकलु। समस्ते सान पदे गलु।
एहाक नगे येवे थिवा। एहि कथा सिना शुणिवा।

के अनुसरण पर रामायण लिखे हैं, किंतु जगमोहन रामायण के समान कोई भी जनप्रिय नही हो सका है। कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज ने "वैदेहीश-विलास" महाकाव्य के मूलछन्द में वलरामदास को जनपरिचित कृपासिद्धि पद प्रदान कर यह प्रकट किया है कि वे जगमोहन रामायण के कितने ऋणी हैं। श्री जगन्नाथ महाप्रभु की कृपा से सिद्ध वलरामदास गजपति प्रताप रुद्रदेव के द्वारा परम गुरु के रूप में सम्मानित हुए थे। वे महापुरुष जगन्नाथ दास के भी गुरु थे। वलरामदास लिखित जगमोहन रामायण सारला महाभारत के समान ओडिया जाति की अमूल्य निधि है। दोनो महाकाव्यो के रचयिता युग-युग तक ओडिया जाति के नमस्य होकर रहेंगे क्योंकि भारत के दो प्रसिद्ध महाकाव्यो को ओडिया रस देते समय इन्होने ओडिया जाति के वीरत्व, परम्परा, धर्मधारणा आदि का सन्निवेश कर उत्कली जातीय जीवन को दृढ रूप से प्रतिष्ठित किया है। कहना न होगा कि योरोपीय जीवन में ओडेसी तथा इलियड के समान सारला महाभारत और दाण्डि रामायण उत्कल में सर्वदा सर्वमान्य रहेंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि जगमोहन रामायण मूल सस्कृत रामायण से कई अशो में स्वतत्र है। पार्वती ने जव महादेव से पापक्षय तथा रोग-मुक्ति का कारण पूछा तो महादेव ने उनको रामनाम-माहात्म्य और रामचरित सुनाया है। इसी तरह सपूर्ण रामायण हर-पार्वती-सवाद के रूप में है। किंतु सस्कृत मूल रामायण का प्रारभ इससे भिन्न है। जगमोहन रामायण के कई प्रसग-ऋष्यश्रृग जन्म चरित, अगस्त्यचरित, शिवधनु-भग के लिये वाणासुर, रावण तथा इन्द्र की विफल चेष्टा, परशुराम-चरित तथा सहस्रार्जुन के विरुद्ध उनका इक्कीस वार अभियान और अत में विष्णु की आराधना के फलस्वरूप सहस्रार्जुन वध आदि वाल्मीकी रामायण से स्वतत्र हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रसग हैं। उदाहरण स्वरूप इतना ही वताया जा सका है। तामिल रामायण कव के रचयिता की भाँति वलराम दास ने भी कई घटनाओ को अपने प्रान्त में घटित माना है। उनका कहना है कि महादेव का स्थान (कैलास पर्वत नही) उत्कल का कपिलास पर्वत है। रावण ने उत्कल के विरजा क्षेत्र में तपस्या कर महादेव से वर प्राप्त किया था। श्री राम के वानर सेनापतियो का जन्म-स्थान उन्होने उत्कल के कोणार्क, धवलि गिरि, विरजा क्षेत्र या जाजपुर और पुराने देशीय राज्य, वणाइ, वामण्डा और रणपुर, शतश्रृग गिरि, उदय गिरि और पचधार आदि माना है। वलरामदास का ओडिशावासियो के ऊपर इतना प्रभाव था कि वे जो भी लिखते थे उसे वेदवाक्य समझा जाता था। वाद में वहुत से रामायणो की रचना की गई है पर जगमोहन रामायण के समान कोई भी जनप्रिय नही हो सके। वलराम दास के परवर्ती कई कवि कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज, धनजय भज, महादेव दास, हरिहर दास, कान्हुदास, विश्वनाथ खुण्टिआ, पीताम्वर दास और मागुणि पटनायक आदि जगमोहन रामायण से प्रभावित हुए हैं।

जगमोहन रामायण की भाषा उत्कल की मिट्टी-पानी से परिपुष्ट जन-भाषा है। यह सरल, मधुर तथा सर्व-जनवोध्य है। साथ ही साथ आध्यात्मिक ग्रन्थो के भाव वहन के लिए उपयोगी है। केवल भाव ही नही भाषा के लिए भी उत्कल मे यह अत्यत प्रिय है।

वलरामदास की अन्यान्य रचनाओ में 'भावसमुद्र' ओडिया के भक्ति-साहित्य का अमूल्य

एका पिण्डरे सात सिन्धु याक
मात ताल फुटे एका काण्डक
नाथ तू सामर्थ सवुठावकु
किस कहिवि मु प्रभु पणकु
हरिहो
एकाकाण्डके जे वालिकि मारु
दास वलिआकु रखि न पारु ॥३५६॥

इसके अतिरिक्त "पणस चोरि" तथा "वट अवकाश" से मालूम होता है कि उनके ऊपर श्री जगन्नाथ का पूर्ण अनुग्रह था। वट अवकाश से स्पष्ट सूचित होता है कि उस समय ओडिशा में शाक्त धर्म का प्रभाव था। वलरामदास लिखित पुराण शक्ति पूजा और साधना का द्योतक है। कमल लोचन चउतिशा, कान्त कोइली, वारमासी, वेढा परिक्रमा ओ वउला गाई गीत कोमल सगीत में निवद्ध होने के कारण विशेष जनप्रिय हैं।

उनके व्रह्माड भूगोल, गुप्त गीता, व्रह्मगीता, वेदान्तसार और विराट् गीता आदि योग तन्त्र और वेदान्त से भरपूर हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होने श्रीमद्भगवद्गीता का ओडिआ अनुवाद भी किया था। इस प्रकार अमूल्य ग्रन्थो के रचयिता, भक्ति राज्य के कृपासिद्ध वलराम दास अत्यन्त उच्च स्थान के अधिकारी हैं।

**महापुरुष जगन्नाथदास**—जगन्नाथदास भी अपने दीक्षागुरु वलराम दास की भाँति परमसिद्ध महायोगी थे। ओडिया साहित्य को उनका दान मूल्यवान् है।

जगन्नाथदास जी का जन्म सन् १४९० ई० में हुआ था। उनके पिता का नाम भगवान दास तथा माता का नाम पद्मावती था। जगन्नाथ आजन्म व्रह्मचारी और सस्कृत के परम पण्डित थे। कई लेखको का कहना है कि वे एकाधिक सस्कृत काव्य के प्रणेता भी थे किंतु आज तक उनका एक भी सस्कृत ग्रन्थ प्रकाशित नही हुआ है। १६ वर्ष की उम्र मे घर-वार छोड १८ की उम्र में श्री चैतन्य देव की मण्डली में सम्मिलित हो गये। इतनी छोटी उम्र में ही उन्होने सिद्धि लाभ की थी। श्री चैतन्य ने उनके अलौकिक गुणो पर मुग्ध होकर उन्हें "अति वडी" उपाधि प्रदान की थी। उत्कल में महापुरुष जगन्नाथ ने जिस वैष्णव-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की थी वह "अति वडी" सम्प्रदाय नाम से परिचित है। जगन्नाथ जी २४ वर्ष की उम्र तक श्री चैतन्य देव के साथ रहे और वाद में ६० माल तक पूर्ण योग-निष्ठ साधना में लगकर लोकोत्तर सिद्धि के अधिकारी हुए थे। महाराज प्रतापरुद्रदेव ने उनकी कठिन परीक्षा लेकर, अन्त में गुरुरूप में स्वीकार किया था। ६० साल की उम्र में उन्होने शरीर छोडा था। कहा जाता है कि उनकी आत्मा श्री जगन्नाथ जी के विग्रह में लीन हो गई थी।

उनके रचित ग्रन्थो में भागवत सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त दीक्षा सवाद, गुप्त भागवत, गजस्तुति, अर्थ कोइली, तुलाभिणा, पाखड-दलन, वोले हूँ, मन शिक्षा, व्रह्माड भूगोल, भागवत सार,

अपने गुरु के समान उन्होने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया था तथा क्षत्री रघुराम की कन्या से विवाह किया था। सर्वश्रेष्ठ कृतियो में से हरिवश, शून्य सहिता, गुरुभक्ति गीता, पद्मकल्प टीका, अष्टगुज्जरी, शरणपजर स्तोत्र, दूतीवोध चउतिशा, गोपालक उगाल, उल्लेख योग्य हैं। गुरुभक्ति गीता में वैष्णवो का आचार और कृष्णलीला तथा चैतन्य लीला का विस्तृत वर्णन है।

अन्यान्य गीताओ में योग, तन्त्र और वेदान्त तत्त्व के विषय में लिखा गया है। टीका और मालिकाओ में आगत भविष्य के विषय में कहा गया है। अष्ट गुज्जरी, शरण पजर, दूती वोध चउतिशा भाव-प्रधान हैं। हरिवश सस्कृत हरिवश का अनुवाद नही है वल्कि उसमें अच्युतानन्द की निजी भावना है।

ओडिशा के सहस्रो निवासी उनके शिष्य हैं तथा उनके ग्रन्थो के पूजक हैं।

**महापुरुष यशोवन्त दास**—चौथे महापुरुष श्री यशोवन्त दास भी अन्य महापुरुषो के समान योगी तथा सिद्ध थे। अनुमान है कि सन् १४९२ ई० में उनका जन्म हुआ था। उन्होने उपयुक्त शिक्षा प्राप्त की थी। वे सस्कृत के विद्वान् थे। उनका ओडिया स्वरोदय ग्रन्थ सस्कृत स्वरोदय ग्रन्थ का सुन्दर अनुवाद है। १२ वर्ष की आयु में उन्होने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। भारत के अनेक तीर्थों का भ्रमण कर वे अन्त में श्री क्षेत्र पहुँचे और श्री चैतन्य देव से दीक्षा ग्रहण की। उन्होने गृहस्थाश्रम भी ग्रहण किया था। अढग के राजा रघुराम की कन्या अजना के साथ विवाह कर वे अपनी मातृभूमि में ही निवास करते थे। योग और भक्ति-वल से उन्होने श्री जगन्नाथ जी को वशीभूत किया था और उन्ही के द्वारा विपत्तियो से त्राण पाया था। उनकी "चौराशी आज्ञा" अत्यत प्रसिद्ध है। श्री जगन्नाथ जी की कृपा से उनकी साधना में कई अद्भुत वातो का समावेश हो गया था। उनके रचित ग्रन्थो में स्वरोदय, प्रेमभक्ति, ब्रह्मगीता, गीतगोविन्द चन्द्र, गीता राम तथा मालिकाएँ प्रधान हैं। ये सभी जनप्रिय भजन के रूप में प्रचारित हैं। प्रेम, भक्ति ब्रह्मगीता का मुख्य उद्देश्य योग-महात्म्य है जैसे योग-वल से ब्रह्मोपलब्धि तथा ब्रह्मोपासना होती है, योग-वल से ही गोपीभाव की प्राप्ति होती है तथा श्रीकृष्ण में प्रगाढ प्रेम उत्पन्न होता है। योग, तन्त्र तथा वेदान्तो के कई तत्त्व उन्होने अपने ग्रन्थ में सम्मिलित किये हैं। निश्वास नियन्त्रण के द्वारा उन्होने इन्द्रिय-दमन का उपाय निकाला था। समाधि अवस्था में किस प्रकार त्रिकुटी पर राधाकृष्ण का नित्य रास देखा जा सकता है, इसके यौगिक उपायो का उन्होने निर्देशन किया है।

**महापुरुष अनन्त दास**—पचम महापुरुष अनन्तदास का जन्म सन् १४९३ ई० में पुरी जिला के वालिपाटणा ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम कपिल महान्ति तथा माता का नाम गौरी था। उन्होने साक्षात् सूर्य देवता से सूर्यनारायण एकाक्षरी मन्त्र और मन्त्र के साथ अभ्यास के लिए १००० श्लोक भी प्राप्त किया था। उन्हें अनन्त जी की मालिका लिखने तथा श्री चैतन्य देव से दीक्षा ग्रहण करने के लिए आज्ञा मिली थी। उत्कलवासियो में उनसे सवधित अनेक अद्भुत कृत्यों की गल्प-कथाएँ प्रचलित हैं। चैतन्यभागवत के कवि श्री ईश्वरदास ने लिखा है कि योगवल से शिशु वनकर अनतजी महालक्ष्मी की गोद में गये थे इसलिये श्री जगन्नाथ ने प्रसन्न होकर उनको

वली प्रकाशित हो चुकी है और प्राचीन वगीय साहित्य के उत्कृष्ट नमूने के रूप में मानी गई है। श्री चैतन्य देव के आगमन के पूर्व उत्कल में शुद्धाभक्ति धारा कितनी पुष्ट थी, यह वात राय रामानन्द के जीवन चरित से मालूम पडती है।

**माधवी दासी**—श्रीमती माधवी दासी श्री चैतन्यदेव के अन्तरग भक्तो में से एक है। ये भक्त शिखी महान्ति की वहन थी और शुद्धाभक्ति मार्ग की अनुगामिनी थी। इनकी व्रजवुलि में लिखी वैष्णव पदावली वगीय वैष्णव पदावली में निहित है। नीचे इनके आविष्कृत ओडिया भजन की कुछ पक्तियाँ नमूने के लिये दी गई है—

'चका नयन हे । जगुजीवन श्री हरि ।
कातरे जणाण करुछि छामुरे,
शुण प्रभु श्रुति डेरि ॥०॥
केते सकटु काहाकु रखि नाहँ
दयालु सारंग धारी,
ता वर्नि वसिले पोथिकर पाठ
कि वर्निव ए पामरी ॥१॥

× × ×

जीवन्ती पिगला आदि वारवाला
मसारु गले निस्तरि
अपार महिमा केतन उडाइ
रखिछ कीरति शिरी ।
मुं छार निर्माखी तुम्भर सेवकी—
पणकु अयोग्य नारी ।
करुछि दइनि योडि कर वेनि
शुण माधवी गुहारी ॥

**दिवाकरदास**—ये महापुरुष जगन्नाथ दास के सम्प्रदायानुयायी थे और १६वी शताब्दी के प्रथमार्द्ध तक जीवित थे। इन्होने "जगन्नाथ चरितामृत" तथा "एकादशी महात्म्य" नामक दो ग्रथो की रचना की थी।

**शिशु शकरदास**—अनुमान है कि इनका जन्म पद्रहवी शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ था। अर्जुन दास के "राम विवाह" के पश्चात इनके द्वारा रचित "उपाभिलाप" छन्द-बद्ध काव्य के रूप में प्रसिद्ध है। श्रीमद्भागवत तथा खिलहरिवश की कथावस्तु को लेकर कवि शिशु शकर ने इस मनोहर काव्य-सौध की सृष्टि की थी। कहा जाता है कि ये सस्कृत के वडे विद्वान् थे। इनकी भाषा प्राचीन होते हुए भी परिमार्जित और प्रसादपूर्ण है। उत्कल के परवर्ती काव्य लेखको पर उपाभिलाप का वहुत प्रभाव पडा है। यहाँ तक की कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज (१६८५-१७२५)

गृहीत है। नायिका उर्मिला महासती हैं। उन्होंने सावित्री के समान अपने पति ऋतुपूर्ण को यमपाश से मुक्त किया था।

प्राय देखा जाता है कि उत्कल में "राम-विवाह" के पश्चात् छन्दवद्ध कविता लिखने की प्रणाली का आरभ हुआ। धर्मविषयक ग्रन्थो और पुराणो के लेखक धर्मस्थापन की दृष्टि से उसे असमान सख्या की विशिष्ट पक्तियोवाले दाण्डिवृत्त में लिखते थे। काव्य-रसिक विदग्ध व्यक्ति मनोविनोद के लिए गीति-तत्त्वो से पुष्ट छन्द-वद्ध कविता लिखते थे जो प्राय हृदयग्राही कथा-वस्तुओ को लेकर लिखी जाती थी। इस प्रकार दोनो तरह की रचनाओ का निर्माण दीर्घकाल तक समान भाव से होता रहा, वाद में सगीत की प्रधानता के कारण पुराण-लेखन पीछे छूट गया और काव्य सृष्टि आगे वढ गई।

**कपिलेश्वरदास**—इनके द्वारा रचित "कपट केलि" दस सर्गों का विशिष्ट काव्य ग्रन्थ है। इसमें वर्णित राधाकृष्ण लीला अत्यत सरल और मुग्धकर भावो से ओतप्रोत है। श्रीकृष्ण स्त्री का छद्म वेश वनाकर मानिनी राधा के पास पहुँचते हैं। समान दशा के नाते स्त्री-वेशधारी कृष्ण राधा की सहानुभूति पाकर उनकी सखी वन जाते हैं। रात को एक शय्या पर सोते समय श्रीकृष्ण राधा आत्मस्वरूप प्रकाश के द्वारा राधा का मान मोचन करके क्रीडा करते हैं। कथावस्तु के अनुरूप ही काव्य का नाम कपट-केलि (क्रीडा) दिया गया है। इसमें प्रयुक्त कथावस्तु नितात अभिनव है। इस काव्य के प्रत्येक छन्द के पहले भाग में (गाहा) गाथा की पद्यमय विषय सूची है। छन्दवद्ध काव्य-जगत् में यह सर्वथा एक नवीन सृजन है।

**हरिहरदास (नायक)**—हरिहर दास जाति के गणक थे। उनके रचित काव्य का नाम है "चन्द्रावती-विलास"। इस काव्य में "कपट केलि" की तरह प्रत्येक छन्द के अत में परवर्ती छन्दो की विषय सूची पद्य में (गाहा रीति) दी गई है। कथावस्तु प्रेम सबधी है। दुर्योधन की लडकी चन्द्रावती के साथ श्रीकृष्ण के पुत्र शाम्ब का गुप्त प्रणय चल रहा था। श्री दुर्गा के प्रसाद से मिलन के वाद चन्द्रावती को लेकर भागते हुए शाम्ब पकडे गये और उन्हें दुर्योधन ने वन्दी वना लिया। वलराम इस सवाद से क्रुद्ध होकर हस्तिनापुर को हल से खोदकर यमुना में मिलाने चले। दुर्योधन उनकी शरण में जाकर क्षमा-याचना करने लगा। खूब समारोह के साथ दोनो का विवाह-कार्य सपन्न हुआ। काव्य की भाषा सरल तथा माधुर्यपूर्ण है।

**देवदुर्लभदास**—ये "रहस्य मजरी" काव्य के रचयिता हैं। इसमें श्रीकृष्ण की रानियो के प्रेम से गोपियो के प्रेम को वडा वताया गया है। कथा है कि रानियो के सन्देह-मोचन के लिए कृष्ण उन्हें गरुड पर वैठाकर वृन्दावन पहुँचे। वहाँ पहुँचकर रानियो को छिपा दिया और स्वय वशी वजाकर रासलीला करने लगे। इस प्रकार कृष्ण ने रानियो को रासलीला की अलौकिकता तथा गोपियो के श्रेष्ठ प्रेम का अनुभव कराया और उन्हें लेकर द्वारका लौट गये।

भाषा तथा भाव दोनो दृष्टियो से रहस्य-मजरी काव्य का स्थान ऊँचा है। ये पच-सखामार्ग के पथिक थे।

**चान्दकवि**—चान्द कवि दामोदर चम्पतिराय के समकालीन थे। इन्होंने भी ब्रजवोली में श्रीराम, कृष्ण और श्री जगन्नाथ की महिमा का गान किया है।

**रामचन्द्र देव**—ये शुद्धाभक्ति मार्ग के पथिक थे। इन्होने बँगला और ओडिया में नवानुराग, वशी-चोरी, रास आदि प्रसगो को लेकर कृष्ण-सम्वन्धी एक ग्रन्थ लिखा था।

**सालवेग**—सालवेग १६वी शती के सन्त कवि थे। उनके पिता लालवेग मुसलमान सेनापति थे तथा माता अपहृत ब्राह्मणी कन्या थी। यौवन काल में युद्ध में क्षत-विक्षत होने के कारण इन्होने घोर यन्त्रणा भोगी और अन्त में आत्महत्या करने की ठानी। पर माता के उपदेशानुसार ये श्री जगन्नाथ जी की शरण में गये। वहाँ श्री जगन्नाथ जी के कर-स्पर्श से वे रोगमुक्त हुए। उसी दिन उन्होने ससार त्यागा और वैरागी वन गये और अन्त तक श्री क्षेत्र में रहकर श्री जगन्नाथ जी के ध्यान में अपना समय विताया। इनकी लिखी भजनावली अत्यत सरल है अत यह लोगो में खूब प्रचलित है। भजन साहित्य की दृष्टि से ओडिया को हम धनी नही कह सकते, फिर भी सालवेग भजनावली उनमे विशेष आदरणीय है।

उदाहरण—

मोते सेहि रूप देखाअ हरि
जय श्री राधे राधे बोलि डाके बाशरी ॥
येउँ रूपे वलि द्वारे हेल भिकारी ॥०॥
डाहाणे श्री हलपाणि मध्ये सुभद्रा भउणी
वाम पाशे वसिछन्ति शख-चक्र-गदा धारी ॥
कहे सालवेग हीन जातिरे अटे यवन
कस अष्ट मल्ल मारि काहाकु न अछ तारि ॥

**गोपेन्द्र कवि**—"मधुप चौतिशा" के सिवा इनकी कोई अन्य कृति आज तक नही उपलब्ध हो सकी है। ये १६वी शताब्दी के द्वितीयार्द्ध के कवि हैं। श्रीकृष्ण की रासलीला उपरोक्त रचना की कथावस्तु है।

**धरणीधरदास**—ये १६वी शताब्दी के अतिम चरण के कवि हैं। इन्होने उत्कलीय जनता के लिये जयदेव रचित गीतगोविन्द का ओडिया अनुवाद किया था। गीतगोविन्द का यह अनुवाद अत्यन्त प्रसिद्ध है।

**कार्त्तिकदास**—ये १६वी शताब्दी के अत में हुए थे और ओडिया में छन्द-वद्ध कविता के अन्यतम प्रतिनिधि माने जाते हैं। नवानुराग तथा रुक्मिणी-विवाह इनके दो काव्य-ग्रन्थ हैं। प्रथम में नवानुराग का विषय पाँच छन्दो में वर्णित है। इसके पश्चात् श्री राधा और श्रीकृष्ण के मिलन का वर्णन अत्यन्त माधुर्यपूर्ण शैली में किया गया है। रुक्मिणी-विवाह की छन्द-सख्या दस है। इसमें रुक्मिणी के वरण करने के लिये आये हुए शिशुपाल का पराभव, रुक्मिणी के द्वारा भेजे गये दूत के सवाद के अनुसार श्रीकृष्ण का रुक्मिणी-हरण आदि विषय अत्यन्त मधुर शैली में

समय दोनो में प्रेम हो जाता है और यौवनागम पर दोनो गुरु की आज्ञा से देशातरी हा जाते हैं। शशीशेणा की पति-परायणता और बुद्धिमत्ता के कारण ये अनेक विपत्तियो से मुक्ति पाते हैं। शशीशेणा के उपदेशानुसार अहिमाणिक्य राजकुमारी चन्द्रावती के साथ विवाह करते हैं और अत में तीनो स्वदेश लौट आते हैं। सक्षेप में यही उसकी कथा है।

कवि प्रतापराय ने सर्वसुलभ और सरल भापा में, इस छन्दवद्ध काव्य की रचना की है। यह सच है कि उसमें चमत्कार उत्पन्न करने के लिये अलंकारो का प्रयोग नही है किंतु काव्य की चमत्कार-पूर्ण कथावस्तु गीत के सावलील सरल प्रवाह के साथ हृदय को मुग्व कर देने में पूर्ण समर्थ है। उत्कल के अत्यन्त जनप्रिय कवियो में शशीशेणा के लेखक प्रतापराय अन्यतम हैं। उदाहरण-स्वरूप निम्नांकित पक्तियाँ उद्धृत की गई हैं—

शशीशेणा का शोक—

येते रस कउतुक पढिवार वेले
से कथामान कि सवु पासोरिल ढाले
सत्य कराइण मोते होइल ये विभा
आज्ञा देल चाल सखि विदेशकु जिवा।
माता पिता वन्धुवर्ग छाडिण मुहाँस
तुम्भर चरणे एका वलाइलि आश।
येते येते विदेशरे पडिला विपत्ति
ईश्वर पार्वती सिना से दुख जाणन्ति
निमिषक लक्ष युग न देखिले मोते
दारुण हृदय एवे होइल केमन्ते
छाडिल सेनेह तेडे वढाई पीरति
एवे छाडिकरि गल अनाथ युवती। (१२ वा० छान्द)

**वृन्दावनदास**—कवि धरणीधर के वाद वृन्दावन दास ने सस्कृत के प्रसिद्ध काव्य गीत-गोविन्द का ओडिया मे 'रसवारिधि' नाम से छन्दवद्ध अनुवाद किया है। इस अनुवाद में सगीत तथा कृष्णभक्ति की धारा प्रवाहित हो उठी है।

निम्नलिखित पक्तियाँ मूल सस्कृत पदो के साथ तुलनीय हैं—

वासन्ती लता वसन्ते आमोद। कुसुम वेढि भ्रमरक खेद
राधिका मदने विकार पाइ। वहु विहिते कृपानुसरइ

से कन्दर्प ज्वर,
हृदरे घेनिला चिन्ता अपार॥९॥

जन्म अन्ध जेन्हे थाइ सेहिक्षणि चक्षु पाइ
जेसने दरिद्र धन प्रापत होइ
अपुत्रिकर जेसन पुत्र जात हेले मन
राज्य भ्रष्ट राजा तार राज्यकु पाइ
भीम राजा तेडे हरष
सगते दुहिता घेनि पुरे प्रवेश॥

**भीमा धीवर**—ये १७वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवि थे। ये जाति के केवट थे। इन्होने 'भारत सावित्री' तथा 'कपट पाशा' नामक काव्यो की रचना की है। 'कपट पाशा' की भाषा सरल तथा सुमधुर है। अत यह जनप्रिय भी है।

**ईश्वरदास**—ये जाति के गणक और भीमा कवि के समकालीन थे। इन्होने ओडिया मे चैतन्य भागवत ग्रन्थ लिखा है। चैतन्य भागवत में चैतन्य देव के जीवनचरित तथा ओडिशा मे रहते समय उनकी लीला का विशद वर्णन है। इसमें जगह जगह पर भ्रान्तिपूर्ण तथा अतिरजित वर्णन मिलते है। ईश्वरदास पचसखाओ के मतावलम्बी, अर्थात् ज्ञानमिश्रा भक्ति पन्थ के पथिक थे। उनका कहना है कि श्री जगन्नाथ ही बुद्धदेव है और श्री चैतन्य जी बुद्ध के अवतार है। उनकी कृति से मालूम होता है कि बौद्ध, कबीरपन्थी, नानकपन्थी आदि ने भी चैतन्य देव का शिष्यत्व ग्रहण किया था।

**गुरुवारिदास**—ये १७वी शती के प्रथम भाग के कवि थे। कर्म महिता मे उन्होने पिण्ड (घट) को ही ब्राह्मण माना है जो सभी देवी-देवताओ का निवास-स्थल है। पिण्ड-सम्बन्धी सम्यक् ज्ञान को उन्होने उत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान माना है।

**यदुपतिदास**—यदुपतिदास राजा नरसिंह देव के (१६०५–१६३५) समसामयिक थे। उन्होने ब्रजबोली में नरसिंह की प्रशस्ति गाई है। नीचे नमूने के रूप मे कुछ पक्तियाँ उद्धृत है—

सर्व अवनी पूति विक्रमे शकति विविध रग रति विहरतिया
लावण्ये गजति लाख रजनीपति गौरवे और की गिरिपतिआ
देवी भानुमती रसवती सगति विविध रग रति विहरतिआ
नीलगिरि को पति चरण कमले मति विजय तु नरसिंह नरपतिआ
उदिनले नृप नरसिंह धरणी तल।

**हलधरदास**—हलधर दास राजा मुकुन्द देव (१६५१–८५) के समकालीन थे। ये अनन्त पट्टनायक नामक मुकुन्द देव के अनुज और हलधर अनन्त के कनिष्ठ पुत्र थे। सन् १६८१ में इन्होने अध्यात्म रामायण की रचना की थी। यह मूल संस्कृत का सरल अनुवाद है जो जनप्रिय तथा व्यापक है।

मनोज तथा राजकुमारी कचनलता का जन्म हुआ। कवि ने दोनो के विवाह, मिलन आदि का वर्णन वडी दक्षता से किया है। अनुमानत वे १७वी सदी के कवि हे।

**विष्णुदास**—ये जाति के ब्राह्मण तथा विद्वान् थे। उनके परवर्ती कवि रघुनाथ हरिचन्दन के लावण्यवती काव्य से पता चलता है कि इन्होने वहुत-सी रचनाएँ की थी। हरिचन्दन इन्हे गुरु मानते थे। उनके कथनानुसार उत्कल में वे उस समय प्रसिद्ध हो चुके थे। उनकी लिखित प्रेमलोचना, कई चौतिशाएँ तथा गीत आदि आविष्कृत हुए हे। अनुमान है कि 'प्रेमलोचना' सन् १६४० मे लिखी गई थी। जिस छन्द का प्रयोग अर्जुन दास ने रामविवाह में शिशु शकर ने 'उपाभिलाष' मे, कार्तिक दास ने रुक्मिणी विवाह तथा श्रीधर दास ने कचनलता मे किया था उसे विष्णुदास तथा हरिचन्दन आदि शिष्यो ने भी श्रीमण्डित किया।

**रघुनाथ हरिचन्दन**—रघुनाथ हरिचन्दन वाणपुर राज्य के राजा थे। उन्होंने "लीलावती" नामक काव्य लिखा था। अनुमानत यह १७५५ई० की रचना है। इसमे इन्होने लिखा है कि मैने अनेक सगीतविदो से सगीत की शिक्षा ली है तथा कई विद्वानो को परखने के वाद विष्णुदास को अपना गुरु माना है और उनसे काव्य-कला की शिक्षा प्राप्त की है। लीलावती काव्य के छन्दो मे स्पष्ट रूप से ताल और लय वतलाये गये हें। इसमे सगीत के नियमो का पालन किया गया है। लीलावती की कथावस्तु अनवद्य है। धनजय भज, लोकनाथ विद्याधर, कवि सम्राट् उपेन्द्रभज ने भी इस काव्य को आदर्श-स्वरूप स्वीकार किया है। इनकी छ रानियाँ थी जिनमे शकुन्तला पटरानी थी।

**रसानन्द**—ये ओडिशी सगीत के रचयिता तथा जनप्रिय कवि थे।

इस प्रकार ओडिशा में पुराण, छन्दवद्ध काव्य, गीत तथा सगीत (Lyric) इन तीनो मुख्य स्रोतो में पद्य-साहित्य का विकास हुआ है। पुराणो के छन्द सीमित हे। पुराणो मे दाण्डि-वृत्त, चौदह अक्षरी, तेरह अक्षरी, ग्यारह अक्षरी तथा नवाक्षरी का प्रयोग है। इनमे सुकुमार सगीत कला के विकास का अवकाश न था। गभीर तत्त्व को आधार मानकर कहानियाँ लिखी गई हे, जिसके वीच कविता ने भी आत्मप्रकाश किया है।

किन्तु ओडिशावासी सगीत-विलासी आत्मा की शान्ति के लिये पुराने कवियो से अलग होकर छन्दवद्ध रचना करने लगे थे। इन्ही छन्दो मे ओडिशा जाति की काव्य-प्रतिभा जागृत हुई है। कवि हरिचन्दन ने अपने काव्य लीलावती द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि सगीत तथा अलकार के द्वारा उत्कृष्ट काव्य लिखे जा सकते हे। उनके परवर्त्ती कवियो और महाकवियो ने इन्ही के द्वारा काव्य निर्माण किया है।

हम देखते हे कि वच्छा दास की कलसा चौतिसा तथा राम-विवाह मे वृत्तो की सृष्टि

# ओड़िया साहित्य का विकास-क्रम

## (ग) उत्तर मध्यकालीन

### विच्छंद चरण पट्टनायक

**धनजय भज**—यह स्पष्ट ही है कि १७वी शताब्दी में घुमसर के राजपरिवार ने ओडिया छन्दकाव्य की रचना का नेतृत्व किया था। वच्छादास के "कलसा चौतीशा" तथा अर्जुनदास के "रामविभा" ने खण्ड कविताओ के द्वारा ओडिया साहित्य को सगीतमय बनाने का जो प्रथम प्रयास किया था और जिसे शिशु शकर, श्रीधर दास, प्रतापराय आदि कवियो ने पुष्ट किया था, उसी परपरा को धनजय भज ने काफी आगे वढाया। वे सन् १६३७ से १७०१ ई० तक जीवित रहे तथा रघुनाथ विलास, त्रिपुर सुन्दरी, मदन मजरी, अनगरेखा, इच्छावती आदि काव्यो, चौपदी भूषण नामक एक सगीत-समुच्चय और कई चौतीशाओ के कवि थे। इनके अतिरिक्त इन्होंने रत्नपरीक्षा, अश्वपरीक्षा और गजपरीक्षा नामक तीन विज्ञानग्रन्थ छन्दो में लिखे थे। सस्कृत के पडित होने के नाते इन्होंने अपने काव्यो को सगीत-मधुर बनाने के उद्देश्य से भाषा मे पर्याप्त सस्कृत शब्द भरे। वास्तव मे उच्चकोटि की काव्य-रचना के लिये यह रीति या पद्धति अपरिहार्य थी। तभी से दिव्य (सस्कृत) और अदिव्य (प्राकृत) शब्दो का कुशल समावेश होने लगा था। इसलिये काव्य-रचना का मान या आदर्श भी बढने लगा था और आगे चलकर इसीके आधार पर ओडिया साहित्य को सस्कृत साहित्य की कोटि तक ले जाने के लिये प्रयत्न भी हुए। इसी विकासक्रम की चरम परिणति परवर्ती कवि दीन कृष्णदास और उसके बाद कवि सम्राट् उपेन्द्रभज की कृतियो मे सम्यक् रूप में दिखाई पडी।

**शिखरदास**—ये 'नीलसुन्दर गीता' नामक रचना के कवि हैं। इनकी इस कृति मे १७वी शताब्दी के ओडिशा इतिहास की कई घटनाओ पर प्रकाश पडता है।

**दीनकृष्णदास**—ये द्वितीय मुकुन्द देव (१६५१-८६) और दिव्यसिंह देव (१६८६-१७१३) के शासन काल मे जीवित थे। उन्होने कई जगह अपने को कृष्णदास लिखा है। ये जाति के राजू थे। इनका निवासस्थान बालेश्वर जिले के जलेश्वर ग्राम में था। इन्होने रस विनोद में लिखा है—

पूर्व वासना आदि मूले। जनम राज पुत्र कुले।
सुवर्ण रेखा नदी तीर। कटक नामे जलेश्वर।
सपत पुरुष मो तहि। गला जे एते काल वहि।

दीनकृष्ण को दो व्यक्ति प्रमाणित करने की भरपूर कोशिश की है। किन्तु वास्तव में दीनकृष्ण एक और अभिन्न हैं।

वे उत्कल के जनप्रिय कवि थे। सभी श्रेणियों के पाठकों के लिये उन्होंने रस परिवेषण किया है। उनकी नावकेलि और अलकार-वोलि अत्यत सरल भाषा में लिखी जाने पर भी उनकी रससृष्टि अनवद्य है। रसविनोद और प्रस्तावसिन्धु के उपाख्यान और दृष्टान्त नीतिशिक्षा की दृष्टि से अमूल्य हैं।

उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति रसकल्लोल पदलालित्य के लिये समस्त उत्कल में अनुपम है। कहा जाता है कि इनका पदलालित्य जयदेव जी के गीतगोविन्द के पदलालित्य के समान है। जनश्रुति है कि कविसम्राट् उपेन्द्रभज ने नीचे लिखे पद का उच्चारण कर दीनकृष्ण के प्रति सम्मान दिखाया था—

"कहे उपइन्द्र भज टेकि दुइ बाहाकु।
धरातले कविपणे न गणे मु काहाकु
जयदेव दीनकृष्ण एका मोर शरण
आन कविकर मुण्डे मो वामचरण।"

वास्तव में कविसम्राट् ने ये पद कहे थे या नही, इस विषय में प्रमाणपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु इससे यह अवश्य सूचित होता है कि कविसम्राट् तथा उत्कलीय जनता का इन दो कवि गुरुओं के प्रति कैसा प्रगाढ अनुराग और सम्मान था जो लालित्यपूर्ण पदविन्यास में धुरधर थे।

दैत्यारिदास—ये अर्थगोविन्द नामक काव्य के रचयिता थे। यह काव्य जयदेव जी के गीतगोविन्द का पद्यानुवाद है। कवि ने इसमें गीतगोविन्द का मर्म उद्घाटन करते हुए अपनी कई कल्पनाएँ मिलाई हैं। इनकी भाषा सरल तथा सर्वजनबोध्य है। इसका रचना-काल १६७४ ई० हो सकता है।

नारायणदास—ये शुद्धाभक्ति मार्ग के अनुयायी थे। इनका पचामृतसिंधु खोज में प्राप्त हो गया है। इस पुस्तक में श्री कृष्ण जी का माहात्म्य और भक्त के साधन वर्णित हैं।

वृन्दावती दासी—वृन्दावती दासी 'पूर्णतम चन्द्रोदय' नामक रचना की कवियित्री हैं। उनके पिता जगन्नाथ दास एक बडे कवि थे। उन्होंने श्रीकृष्ण जी की लीला के विषय में कई सगीतों की रचना की थी। वृन्दावती दासी का विवाह पुरी जिला के मलिपडा गाँव में हुआ था। उनके पति चन्द्रशेखर दास शुद्धाभक्ति रसाश्रित थे और उन्होंने १६९५ ई० में कृष्णतत्त्व-चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इनके पुत्र भीमदास ने "भक्तिचन्द्रोदय' और 'भक्ति-रत्नमाला" नामक दो ग्रन्थों की रचना की थी जो सन् १६९७ में समाप्त हुई थी। भीमदास के पुत्र कृपासिन्धु दास ने १६९८ ई० में उपासना-चन्द्रोदय की रचना की थी। ये सारे ग्रन्थ शुद्धा-

त्रिविक्रम का कनकलता काव्य उसी कृतित्व का निदर्शन है। कनकलता में श्लेष, यमक, गोमूत्र-छन्द, अर्तलिपि और वहिर्लिपि आदि अलकारो का अपूर्व समावेश हुआ है। त्रिविक्रम भज कविसम्राट् उपेन्द्र भज के चाचा थे।

लोकनाथ विद्याधर—लोकनाथ विद्याधर पुरी जिले के अतर्गत बाणपुर के अधिवासी थे। उनके पिता का नाम जगन्नाथ विद्याधर था। घुमुसर राजवशियो तथा विष्णुदास, रघुनाथ हरिचन्दन और दीनकृष्णदास की तरह लोकनाथ विद्याधर भी छन्दोवद्ध काव्य-रचना के दृढ-स्तभ थे। इनकी रचना-शैली में कोमल-कात पदावली का समावेश है। उनके कथनानुसार वे पाचाली रीति के अनुगामी थे, अर्थात् जयदेव की रचना-रीति के साथ उनकी रचना-रीति का साम्य दिखाई देता है। छन्दोवद्ध काव्य-रचना के सर्वश्रेष्ठ कवि सम्राट् उपेन्द्रभज के पूर्व जिन्होंने चरम काव्योत्कर्ष का पथ-प्रदर्शन किया उनमें से वे प्रधान थे। उन्होंने सर्वांगसुन्दरी, पद्मावती-परिणय, चित्रकला, रसकला और वृन्दावनविहार आदि काव्यो की रचना की हैं। वृन्दावन-विहार कृष्ण-लीला सबधी काव्य है। दूसरे काव्य काल्पनिक कथावस्तु के आधार पर रचित हैं। लोकनाथ विद्याधर के काव्यों में श्लेष, यमक, अर्तलिपि, वहिर्लिपि तथा गोमूत्र आदि बहु-विध अलकारो का समावेश हुआ है। इनके काव्यो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे एक असाधारण शक्तिसपन्न कवि तथा उच्चकोटि के पडित थे। उनके पद्मावती परिणय काव्य का रचनाकाल सन् १६९९ ई० माना गया है। १८वी सदी उत्कल के छन्दोवद्ध काव्य-रचना का चरमोत्कर्ष-काल था। ओडिया का प्रथम छन्दोवद्ध काव्य "रामविभा" (विवाह) था। तब से लेकर १८वी शताब्दी तक पूरे तीन सौ वर्षों अर्थात् विष्णुदास और रघुनाथ हरिचदन से लेकर धनजय भज, त्रिविक्रम भज तथा लोकनाथ विद्याधर तक के विभिन्न प्रतिभाशाली उत्कलीय कवियो ने ओडिया काव्य-रचना को सस्कृत के समकक्ष लाने का अथक प्रयत्न किया और उन लोगो के ये प्रयत्न सफल भी हुए थे। इसका प्रमाण उन लोगो के विभिन्न काव्य हैं जो कि सारस्वत-क्षेत्र में समुन्नत कीर्तिस्तम्भ के रूप में हैं। उत्कल के कुछ राजवशी भी साहित्य-साधक थे और साहित्य साधना के प्रबल पृष्ठपोषक थे। उन लोगो की राजसभाएँ पडितो से सुशोभित और गौरवान्वित थीं। सस्कृत काव्यो की भाँति अर्थालकारो और शब्दालकारो से पुष्ट ओडिया काव्य-रचना करना और कराना इन राजवशियो के प्रिय कार्य थे। उपरोक्त तीन शताब्दियो में ओडिया के छन्दो-वद्ध काव्य की परपरा इन राजाओं के द्वारा विकसित होकर उत्कर्ष की चरम सीमा को पहुँच चुकी थी और बहुत सीमातक सस्कृत काव्यो की रचना-रीति की समानता प्राप्त कर ली थी। उत्कलियो की सगीतात्मा को सार्थक बनाने के लिये कवियो ने इन काव्यों के विभिन्न सर्गो को अनेक छन्दो में रचकर अपूर्व मूर्छना भर दी थी। रघुवश, नैषध और माघ आदि षट् महाकाव्यो पर उन्होंने पूरा अधिकार प्राप्त किया था और वात्स्यायन के कामसूत्रो का अध्ययन करके शृगार-विज्ञान के पडित बन सके थे। साहित्य-दर्पण, काव्यादर्श और सरस्वती-कठाभरण आदि सस्कृत अलकार ग्रन्थो के आदर्श पर उन्होंने स्वरचित काव्यो में अलकारो का समावेश किया है। १८वी शताब्दी तक ओडिया काव्यो में सस्कृत का कोई भी अलकार अछूता नही रह गया था। पुराण-

बनाने के लिये युगो पूर्व से काव्यकारो और गीतिकारो ने जितने छन्दो और राग-रागिनियो का आविष्कार किया था और सस्कृत साहित्य के आदर्श पर अपनी-अपनी कृतियो मे जिन शब्दालकारो और अर्थालकारो का प्रयोग किया था, उपेन्द्र भज ने उन सबका पूर्ण उपयोग कर जो-जो रचनाएँ की थी वे सब काव्य-कला के चरम उत्कर्ष-स्वरूप विवेचित हुई है।

उपेन्द्र भज प्रसिद्ध घुमुसरराजवश मे उत्पन्न हुए थे। ये कविवर धनजय भज के पोते और नीलकठ भज के पुत्र थे। इनका जन्म सन् १६८५ ई० में हुआ था। कविवर धनजय भज सर्वदा अपने दरबारी पडितो के साथ सारस्वत-विलास मे ही समय बिताया करते थे। बचपन मे इस विद्या-विलास की चर्चा ने उपेन्द्र पर गभीर प्रभाव डाला। उपेन्द्र भज ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति वैदेहीश-विलास की निम्नलिखित पक्तियो मे इसकी सूचना दी है —

बरही वशे उद्भव नृप धनजय,
विशिष्टे घुमुसर अधिप गुणालय जे।
वेनि अर्थे से कवि गणेश बोले नाण
वन्दन तद्वत ताक नन्दन प्रमाण ये (जे)
वसुधापति मे नीलकठ नामे ख्यात,
विधानरे मुहि ताहाकर ज्येष्ठ सुत जे।
वीरवर पद उपइन्द्र मोर नाम।
बारे बारे सेवारे मनाई सीताराम जे।
विचित्र कवित्वमार्गे प्रसरिला बुद्धि
विरचिलि रामायण ए मो वड सिद्धि जे।

उपेन्द्र की लोकोत्तर कवि-प्रतिभा उनके बचपन से ही प्रकाशित होने लगी थी। वशपरम्परा-क्रम से वे इसके अधिकारी थे ही और बचपन मे यह उनमे दिखाई भी देने लगी थी। इसलिए सभी सतानो में ये धनजय भज की अति प्रिय सतान थे।

धनजय भज उन्हें पलभर के लिये भी आँख से ओट नही करते थे। पहले कहा जा चुका है कि घुमुसर के दरबार में अनेक पडितो, कवियो और गुणी व्यक्तियो को राजाश्रय प्राप्त हुआ था। धनजय भज की राजसभा मे भी यही क्रम जारी रहा। विद्वानो की इस सभा में सर्वदा समय व्यतीत करने के कारण उपेन्द्र ने अपनी छोटी आयु मे ही सारस्वत-राज्य के राजराजेश्वर बनने का स्वप्न देखा था। उन्हें उसी समय अपने दादा धनजय भज से भी अधिक सुन्दर काव्य रचना कर सकने का आत्मविश्वास हो गया था। दीन कृष्ण के रस-कल्लोल को भी वे अधिक पसद नही करते थे। उन्हें यह विश्वास था कि वे अवश्य ही काव्य-साहित्य को और अधिक कोमल-मजुल बना सकेंगे।

मातृ-साहित्य को समृद्ध सस्कृत साहित्य के जोड का बनाने तथा सस्कृताभिमानी पडितो की हेय भावना से उसे मुक्त करने के लिये उन्होने साधना शुरू कर दी। पदसभार के प्राचुर्य के लिये उन्होने अमर, त्रिकाड यादव, शाश्वत, मेदिनी तथा विश्वप्रकाश आदि मुख्य कोष-ग्रन्थो

कहा जाता है कि एक रात नुआगड के रास्ते मे उन्होने एक तन्त्र-साधक को देखा जो श्मशान में एक शव की पीठ पर बैठकर काली का आवाहन कर रहा था और कालीदेवी जब चतुर्दिशाओ को आलोकित कर अचानक आविर्भूत हुई तो अपने पुण्य के अभाव के कारण साधक उन्हें देखकर मूर्च्छित हो गया। उपेन्द्र तुरत घोडे से उतर कर शव पर बैठ गये उन्होंने बलिप्रदान कर काली की यथाविधि पूजा की। काली द्वारा प्रसन्न होकर वर माँगने के लिये कहने पर उपेन्द्र ने रामभक्ति और लोकोत्तर काव्य-शक्ति की भिक्षा माँगी थी। काली "तथास्तु" कहने के साथ साथ उन्हें नुआगड जाने से पहले "ओडगाँ" के श्री रघुनाथ जी के चरणों पर पूर्णतया आत्मसमर्पण करने का आदेश देकर अतर्हित हो गई।

पत्नीवियोग-जनित दु ख और सिंहासन के लिये पारिवारिक चालो की भावी दुष्परिणति की चिंता ने उपेन्द्र के मन को मथ डाला। अत में उन्होंने काली के आदेशानुसार श्री रघुनाथ के चरणो में आत्म-समर्पण करके वैराग्य की गोद में आश्रय लिया। वे राजकुमार-सुलभ ऐश्वर्य और भोग को तुच्छ और अनित्य समझकर योगिजनसुलभ स्थिति के लिये उद्विग्न हो उठे।

उपेन्द्र नुआगड पहुँचकर साधकोचित वेश में अपनी प्रथम पत्नी के दहेज के रूप में मिले गयागड के मालीसाही ग्राम में रहने लगे। तत्पश्चात् उसी नुआगड के ओडगाँ में अधिष्ठित रघुनाथ जी की आराधना में वे दिन व्यतीत करने लगे। कहा जाता है कि स्वय रघुनाथ जी उपेन्द्र की ऐकातिक भक्ति से प्रसन्न होकर काली के कथन को सार्थक करने के लिए मालीसाही में प्रकट हुए और उपेन्द्र को रामतारक मंत्र की साधना करके रामभक्त महाकवि बनने का उपदेश दिया। अत में उपेन्द्र ने गुरु के उपदेशानुसार निकटवर्ती सिद्ध गुफा में रामतारक मत्र यथाविधि जपकर सिद्धि प्राप्त की। सिद्धि-लाभ के बाद रघुनाथ जी ने सन्यासी के वेश में फिर एक बार उपेन्द्र को दर्शन दिया किंतु उपेन्द्र उनकी माया-पटल को भेदकर उन्हें पहचान नहीं सके। सत तुलसीदासजी पर भी श्री रघुनाथ जी ने ठीक ऐसा ही अनुग्रह किया था और बाद में साक्षात् दर्शन दिया था। उपेन्द्र के भाग्य में भी वही सघटित हुआ। रामतारक मत्र की सिद्धि के बाद उपेन्द्र की कवि-प्रतिभा का अलौकिक स्फुरण हुआ। उन्होने सीताराम जी के सतोष के लिए "व" अक्षर के आद्य नियम से वैदेहीश-विलास महाकाव्य का प्रणयन कर ओडगाँ के श्री रघुनाथ जी के मदिर में उनका प्रथम पारायण किया था। वैदेहीश-विलास के बाद कोटि ब्रह्माड सुन्दरी, लावण्यवती, सुभद्रा-परिणय, कला-कौतुक, रसलेखा, अवना रस-तरग, चित्रकाव्य बन्धोदय, रसपचक, सुवर्ण-रेखा, भावबती और शशिरेखा आदि साठ काव्यों, असख्य गीतो और सगीतो की रचनाकर उन सबको श्री रघुनाथ जी के चरणो में चढाया था। इससे माता काली का वरदान सार्थक हुआ। उपेन्द्र का यश नुआगड के मालीसाही ग्राम से लेकर सारे उत्कल में शीघ्र ही फैल गया। सभी ने एक स्वर से उन्हें उत्कल के कवि-सम्राट् का आसन देकर उनकी कविता मदाकिनी के अमृत प्रवाह में अपने को बहा दिया। नुआगड के राजा ने हर्षोत्फुल्ल चित्त से उन्हें वीरबर की पदवी प्रदान कर उनकी प्रतिभा का आदर किया था।

के सभी उत्कर्षित रूप उनकी कविताओ में पुजीभूत है। हिमालय की तरह उपेन्द्र की कविताओ का वैचित्र्य अकलनीय है। उन्होंने अर्थालकारो और शब्दालकारो से गुफित कर 'व' अक्षर के आद्य नियम से सपूर्ण रामायण की रचना की है। अर्थात् इस छन्दोबद्ध महाकाव्य की प्रत्येक पक्ति का आद्य वर्ण "व" है।

ऐसी सार्थक साधना, शब्दभडार पर उनके पूर्ण अधिकार का ही परिणाम थी। प्रातीय भाषाओ मे ही क्यो, सस्कृत मे भी कोई कवि ऐसे असाध्य साधन में समर्थ नही हुआ है। उनके रामचरित-मूलक एक अन्य काव्य का नाम "अवना रस तरग" है। इसमें केवल स्वरवर्णो तथा अकारात व्यजन वर्णो का प्रयोग हुआ है। केवल वर्णविन्यास के वैचित्र्य मे ही इसका उत्कर्ष सीमित नही है, अपितु सुदिव्य अर्थालकारो के सभार मे भी यह काव्य अनवद्य है। उपेन्द्रकृत सुभद्रा-परिणय की प्रत्येक पक्ति का आरभ 'स' अक्षर से हुआ है और उनकी कृष्ण चरितात्मक रचना "कलाकौतुक" की प्रत्येक पक्ति का आद्य और प्रात वर्ण "क" है। ये दो काव्य शब्दालकारो और अर्थालकारो से परिपूर्ण है। उपेन्द्र के शृगार काव्यो में लावण्यवती, कोटि ब्रह्माडसुन्दरी, प्रेम-सुधानिधि, रसिक-हारावली तथा रसलेखा आदि मुख्य है। इनमें भी सभी अल्कार से छन्दे-छन्दे गुफित है। विकास के पथ पर निरतर गतिशील रहकर जैसे कोणार्क मदिर के द्वारा उत्कलीय भास्कर्य और स्थापत्य कला का चरम उत्कर्ष हुआ है, वैसे ही कविसम्राट् उपेन्द्र भज की काव्यावली में उत्कलीय काव्यकला का चरम उत्कर्ष ससिद्ध हुआ है। उनका सरल से सरल और कठिन से कठिन भाषा पर कैसा अधिकार था, इसे अच्छी तरह जानने के लिये उनके समस्त काव्यो का अध्ययन अपरिहार्य है। कविसम्राट् की विपुल और विराट् सृष्टि के प्रत्येक स्थल मे उत्कलीय कला और सगीत-प्राणता प्रतिबिंबित होती है। इसलिए उत्कलीय अतरात्मा का पूर्ण परिचय केवल कविसम्राट् की रचनावली से ही मिल सकता है। कवि सम्राट् की तरह अन्य किसी भारतीय कवि ने पदो और अर्थो के वैचित्र्य के साथ ऐसा सश्लेष साधन शायद ही किया हो। उनके प्रेम-सुधानिधि नाम के रसकाव्य के एक छन्द के २० पदो में से प्रथम दस पदो मे जो है, वर्णदृष्टि से द्वितीय दस पदो में बीसवें से ग्यारहवे पद तक अनुलोमरीति से—याने उलटा पढने पर ठीक वही होता है। परन्तु बीस पद एक साथ एक ही प्रसग के क्रमिक रूप से विकसित प्रकाश है। कोटि ब्रह्माडसुन्दरी नामक रस काव्य के एक छन्द के १५ पदो में अपूर्व कौशल से तीन ऋतुओ (ग्रीष्म, वर्षा और शीत) के वर्णन निहित है। पूर्ण पक्तियो में वर्षाऋतु का वर्णन है और छन्द का राग निन्ता देशाक्ष है। पक्तियो के आद्य वर्ण निकाल देने से छन्द "काफी कामोदी" में परिणत होकर शीत ऋतु के वर्णन को व्यक्त करने लग जाता है। फिर प्रत्येक पक्ति के प्रथम दो दो वर्ण निकाल देने से वह छद मालवराढि राग में परिणत होकर ग्रीष्म ऋतु के वर्णन मे परिणत हो जाता है। यह जादू केवल लोकोत्तर प्रतिभा से ही सभव है। अत यह ठीक ही कहा गया है कि उपेन्द्र भज कविसम्राट् पद के यथार्थ अधिकारी थे। उनकी तुलना उन्ही से की जा सकती है। भारतीय वाङ्मय में औपेन्द्रीय रचना का स्थान वैसा ही उच्च है जैसा कि भारतीय स्थापत्य और भास्कर्य कला में कोणार्क मदिर का। कविसम्राट् ने ब्रह्मभावापन्न होकर वैदेहीश-विलास की रचना की

नीपवन सुखदान कर रभसे स्तोकरट मसृण जे झिलिका वसे ।
वक्रोक्ति —अभग और सभग श्लेष ।

**राग कलहंस केदार और भूपाल**

(इस छन्द में प्रत्येक पाद से श्लेष या ध्वनि द्वारा नायक और नायिका का गुणवर्णन प्रकट होता है। कलहस केदार राग में गाने से नायक का गुण और भूपाल राग में गाने से नायिका का गुण प्रकट होता है।)

नागरमणि सार शूर-भी-धाम-नाहिं श्रुतिरे ताहा कीरति सम जे
सुना सादृश काति कि मनोरम-कमनीये धइर्य हतकु यम जे।
लोके केशरी बोलि स्तुति कि मणि-करिअरि जयकु मघ्यरे पुणि जे।
विधिरचित दु ख से पाडला जे-वश जेमारे त्राहि वचिवा खोजे जे।

**प्रकृति पीठ पर विवाह का वर्णन**

**राग-कनडा**

देखिले आराम अति अभिराम जे देखिव एहि प्रतीति
मनरु उत्पत्ति रति काम मूर्तिमते कि विभा हेउछति ।
कोकिल । गायक उच्चे गाए गीत
झिकारी झकार खजरीट प्रातहत सुवाद्यरे विदित ।। (कोटि ब्रह्माण्डसुन्दरी)

**प्रकृति के अनवद्य आलेख्यकार**

लावण्य सरसी शोभा वहिलाणि सपूर्ण गुण गभीरे
लपन नलिन सुउरु पुलिन सलिल भउरी नाभिरे
रसिक । हास कुमुद नेत्र मीन
चक्रवाक स्तन मराल गमन दर्शने तार करे मन ।

(लावण्यवती)

**कलिंग की सूक्ष्म वन कला**

वेढरे पादरे लेखिले लाक्षा
वाढ़ हेला वेनि रग कि दक्षा
विकशित कोकनद मघ्यर
वेढि भ्रमे कि सरस्वती नीर
वशनली रे थिवार जे
वाछि पिन्धि दुर्वा-दलनीलचेल
कोल इच्छि श्रीरामर जे। (वैदेहीश विलास)

आलकारिकता अतीव चित्ताकर्षक है। कृपासिंधु पट्टनायक दाशरथिदास की तरह शुद्धा भक्ति मार्ग के पथिक थे। उपरोक्त काव्य का रचना-काल १७४८ ई० है।

**मंदरधर भागीरथि**—ये वालेश्वर जिले के जलेश्वर ग्राम के अधिवासी थे। १७४७ ई० में रचित इनका राधाविलास नामक काव्य आविष्कृत हुआ है। ये कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज के समान विविध अलकारो के द्वारा सरस रचना करने में सिद्धहस्त थे।

**रघुनाथ भज**—रघुनाथ भज मयूरभज रियासत के प्रसिद्ध नरपति थे। उनका राजत्व-काल सन् १७२८ से १७५० ई० तक था। उन्होने कविसम्राट् की लावण्यवती की शैली में "रस-लहरी" नामक काव्य की रचना की है। पद-विन्यास और आलकारिता के कारण यह काव्य जनप्रिय है।

**जयसिंह**—जयसिंह धराकोट रियासत के नरपति थे। अनुमान है कि उनकी साहित्य साधना का समय १८ वी शताब्दी का प्रथम चरण था। उनके रचित ग्रन्थो में से द्रोणपर्व महाभारत, क्षेत्र माहात्म्य और श्रीमद्भगवद् गीता का अनुवाद उल्लेखनीय है।

**सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा**—सदानन्द कवि सूर्य का जन्म स्थान नयागढ रियासत है। ये काव्य-रचना में कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज के अनुगामी तथा धुरधर पडित थे। इन्होने "कीर्तन उज्ज्वल" नामक ग्रन्थ के प्रणेता वावा किशोरदास जी को अपना गुरु वनाया और उनसे शुद्धाभक्ति की दीक्षा ली थी। उस समय के गजपति महाराजा ने इनकी रचना पर मुग्ध होकर इन्हें "कविसूर्य" की उपाधि दी थी। इनका दीक्षा नाम साधुचरण दास था। इन्होने अनेक लोकप्रिय ग्रन्थो की रचना की है। वैदेहीश-विलास को आदर्श मानकर इन्होने "व" आद्य वर्ण के नियम से "विश्वभर-विलास" नामक महाकाव्य की रचना की थी। इनकी अन्य रचनाओ में "प्रेमतरगिणी, प्रेमलहरी, ललितलोचना, चौर चिन्तामणि, युगल रसामृत-लहरी, युगलरसामृत चउँरी, प्रेम-चिंतामणि और स्मरदीपिका" आदि प्रधान हैं। उन्होने वहुत से सगीत, जणाण और चउतिशाएँ लिखी हैं। उपेन्द्र भज के अनुगामी होने पर भी इनकी भाषा उनसे सरल है। आलकारिक कवियो में इनका स्थान मुख्य है। इनकी रचनाओ में युगल प्रेम की अपूर्व मन्दाकिनी प्रवाहित है। ये कविवर अभिमन्यु सामन्त सिंहार के दीक्षागुरु और रचना-गुरु थे। अभिमन्यु पर सदानन्द का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनकी "कलाकाईंच" गीतिका से अभिमन्यु के प्रसिद्ध छन्द "धीरे धेन कानन रे कृष्ण विलवित" का वहुत ही साम्य दिखाई पडता है।

**व्रजवधु सामंतराय**—ब्रजवधु सामतराय अनुगुल राजवश के उत्तराधिकारी थे। उन्होने २१ सर्गोवाले "रामलीलामृत" काव्य की रचना की है। इसमें लका काड का विषय छदो में है। कवि की भाषा में माधुर्य और आकर्षण पर्याप्त मात्रा में है। ये सन् १७२० से १७८० ई० तक जीवित थे।

**अरक्षित दास**—अरक्षित दास वडखेमुडी के राजकुमार थे। उन्होने गौतम वुद्ध की तरह युवावस्था में घर छोडकर सन्यास ले लिया था। तत्पश्चात् कटक जिले के ओलागुणी पर्वत में अपना स्थान निश्चित किया और वही रहने लगे। अव भी उनके द्वारा प्रतिष्ठित सप्रदाय के लोग

से मुग्ध होते हैं। इसकी रचना-शली अनवद्य है। भक्तिसाहित्य में यह उच्च स्थान का अधिकारी है।

**पीतांबरदास**—पीताबरदास, सात भागो में लिखे गये प्रसिद्ध नृसिह पुराण के रचयिता थे। वे एक भिक्षाशी ब्राह्मण और परम साधक थे। सन् १७६१ ई० में उन्होने नृसिंह पुराण की रचना आरभ की थी। पीतावरदास का पुराण सस्कृत नृसिंह पुराण का अनुवाद नही है। यह पीतावर की मौलिक सृष्टि है। इसमें उन्होने स्वकल्पित उपाख्यानो के साथ विभिन्न सस्कृत पुराणो, सारला महाभारत, जगमोहन रामायण तथा ओडिया हरिवश के उपाख्यानो का सन्निवेश किया है। नृसिंह पुराण का आदर उत्कल के घर घर में है। भाषा और भक्ति तन्मयता आदि सभी दृष्टियो से नृसिंह पुराण उत्कल में सर्वमान्य तथा अत्यत जनप्रिय है। घर-घर में लोग इसको बाँचते ही नही, वल्कि इसकी पूजा भी करते हैं। इसकी कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"सहजे अनलपाशे रखिदेले जउ
तरलि न जाइ कि के पाइले ता कहु।
लवणी भाडकु रखिदेले अग्निपाशे।
कठिन होइ कि सेहि रहिव निमिषे।
युवाकु युवती याचि वले देले देही।
जेते से मानी होइले पारिव कि रहि॥"

(नृसिह पुराण)

• **श्यामसुन्दर देव**—श्यामसुन्दर देव उत्कल के गजपति महाराजा वीरकेशरी देव (१७३६ १७७९ ई०) के आत्मज और "अ" आद्य नियम से रचे गये विशिष्ट अनुराग कल्पलता नामक सगीतमय काव्य के रचयिता थे। पोइ, दुहा, छान्द और चउपदी आदि विभिन्न जनप्रिय गीतो के समन्वय से इस ग्रन्थ की रचना हुई है। इसमें शब्दालकारों और अर्थालकारो का अपूर्व समावेश है। ओडिया साहित्य में कवि सगीतज्ञ और आलकारिक के रूप में श्यामसुदर देव का स्थान वहुत ऊँचा है।

**केशव पट्टनायक**—ये "गोपविनोद" नामक मनोज्ञ आलकारिक काव्य के कवि थे। इस छन्दवद्ध काव्य में अत्यन्त दक्षतापूर्वक व्रजलीला का चित्रण हुआ है। इसमें कुल ३६ सर्ग हैं।

**विश्वनाथ खुंटिया**—ये गजपति द्वितीय दिव्यसिंह देव (सन् १७७९-१७९५ ई०) के समसामयिक थे। इनका विचित्र रामायण नामक छदवद्ध काव्य वहुत ही लोकप्रिय है। इसका वर्ण्य-विषय रामचरित है जो अत्यत तरल और सरल भाषा में उपस्थित किया गया है। इसकी वर्ण्य-शैली ऐसी अनुपम है कि मन अपूर्व आनन्द से भर जाता है। दनेइ दास की गोपी भाषा, रामदास के दार्ढ्यताभक्ति-रसामृत और पीतावर दास के नृसिंह पुराण की भाँति, विचित्र रामायण उत्कल के घर घर में समादृत है। इसकी निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

से मुग्ध होते हैं। इसकी रचना-शली अनवद्य है। भक्तिसाहित्य में यह उच्च स्थान का अधिकारी है।

**पीतावरदास**—पीतावरदास, सात भागो में लिखे गये प्रसिद्ध नृसिह पुराण के रचयिता थे। वे एक भिक्षाशी ब्राह्मण और परम साधक थे। सन् १७६१ ई० में उन्होने नृसिह पुराण की रचना आरभ की थी। पीतावरदास का पुराण सस्कृत नृसिह पुराण का अनुवाद नही है। यह पीतावर की मौलिक सृष्टि है। इसमें उन्होने स्वकल्पित उपाख्यानो के साथ विभिन्न सस्कृत पुराणो, सारला महाभारत, जगमोहन रामायण तथा ओडिया हरिवश के उपाख्यानो का सन्निवेश किया है। नृसिह पुराण का आदर उत्कल के घर घर में है। भाषा और भक्ति तन्मयता आदि सभी दृष्टियो से नृसिह पुराण उत्कल में सर्वमान्य तथा अत्यत जनप्रिय है। घर-घर में लोग इसको बाँचते ही नही, बल्कि इसकी पूजा भी करते हैं। इसकी कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"सहजे अनलपाशे रखिदेले जउ
तरलि न जाइ कि के पाइले ता कहु।
लवणी भाडकु रखिदेले अग्निपाशे।
कठिन होइ कि सेहि रहिव निमिषे।
युवाकु युवती याचि वले देले देही।
जेते से मानी होइले पारिव कि रहि॥"

(नृसिह पुराण)

**श्यामसुन्दर देव**—श्यामसुन्दर देव उत्कल के गजपति महाराजा वीरकेशरी देव (१७३६ १७७९ ई०) के आत्मज और "अ" आद्य नियम से रचे गये विशिष्ट अनुराग कल्पलता नामक सगीतमय काव्य के रचयिता थे। पोइ, दुहा, छान्द और चउपदी आदि विभिन्न जनप्रिय गीतो के समन्वय से इस ग्रन्थ की रचना हुई है। इसमें शब्दालकारों और अर्थालकारो का अपूर्व समावेश है। ओडिया साहित्य में कवि सगीतज्ञ और आलकारिक के रूप में श्यामसुदर देव का स्थान बहुत ऊँचा है।

**केशव पट्टनायक**—ये "गोपविनोद" नामक मनोज्ञ आलकारिक काव्य के कवि थे। इस छन्दवद्ध काव्य में अत्यन्त दक्षतापूर्वक व्रजलीला का चित्रण हुआ है। इसमें कुल ३६ सर्ग हैं।

**विश्वनाथ खुटिया**—ये गजपति द्वितीय दिव्यसिंह देव (सन् १७७९-१७९५ ई०) के समसामयिक थे। इनका विचित्र रामायण नामक छदवद्ध काव्य वहुत ही लोकप्रिय है। इसका वर्ण्य-विषय रामचरित है जो अत्यत तरल और सरल भाषा में उपस्थित किया गया है। इसकी वर्ण्य-शैली ऐसी अनुपम है कि मन अपूर्व आनन्द से भर जाता है। दनेइ दास की गोपी भाषा, राम-दास के दाढर्यताभक्ति-रसामृत और पीतावर दास के नृसिह पुराण की भाँति, विचित्र रामायण उत्कल के घर घर में समादृत है। इसकी निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

के राजा नि शक राय के साथ १७८८ ई० में इनका विवाह हुआ था। इन्होने भजीयरीति में "पद्मावती अभिलाष" नामक एक काव्य लिखा था।

**भक्तचरण दास**—"मथुरामगल" के रचयिता भक्तचरणदास रणपुर राज्य के अतर्गत सुनाखला ग्राम में जन्मे थे। वे सन् १७८० से १८०५ ई० तक जीवित थे। उनका पितृदत्त नाम वैरागीचरण पट्टनायक था। दीक्षा ग्रहण के वाद वे भक्त चरण के नाम से परिचित हुए। वे पच-सखा मतावलवी गृही वैष्णव थे। इनका मथुरा मगल छन्दो में रचित है। इसमें श्रीकृष्ण के मथुरा गमन से कसवध तक का चरित वर्णित है। मथुरा मगल मुख्यत विप्रलभ शृगार का काव्य है। इसमें श्री राधा और गोपियो की कृष्ण-विरह जनित व्यथा पत्थर को भी पिघला देनेवाली भाषा में वर्णित हुई है। भाषा की सरलता के कारण मथुरा-मगल ओडिशा में वहुत ही लोकप्रिय है। इसके छन्दो की मूर्छना अतीव हृदयस्पर्शी है। व्रजभावविलासी वैष्णवो के लिये यह अमूल्य निधि और उत्कल के आवाल-वृद्ध-वनिता का कण्ठहार है।

भक्त चरण की मथुरा विजे चउतिशा मथुरा नारियो के कृष्ण-दर्शन-जनित विभ्रम के वर्णन से वहुत ही मधुर और कमनीय वन पडी है। उत्कल में यह व्यापक रूप से लोकप्रिय है।

भक्त चरण रचित मनवोध चउतिशा शकराचार्य के मोह मुद्गर की तरह वैराग्य और नीति शिक्षा से पूर्ण है। रमणीय और सुमार्जित भाषा तथा रचना की सावलीलता के कारण भक्त चरण दास उत्कल के लोकप्रिय कवियो में से एक थे।

उदाहरण—

कृष्ण वोलति शुण रमणीवृद  
कर्पूर समान कि मास्कर गन्ध गो॥  
पद्म समान काहिं हेव कूटज।  
समान कला लोक सिना निर्लज्ज गो॥  
पाट टसर काहिं समान मूल  
हीरा सगरे नीला हेव कि तुल गो॥  
पित्तल नोहे कलधउत सम  
चन्द्र पारुशे काहिं रहिव तम गो॥  
सेहि प्रकारे काहिं मथुरा नारी।  
से हेवे तुम कउ गुणरे सरि गो॥ (मथुरामगल)

**गौरागदास**—गौरागदास नृसिह पुराण के रचयिता पीतावरदास के पोते थे। उन्होने १८ वी शताव्दी के अतिम चरण में अपना "दामोदर पुराण" लिखा था। दामोदर पुराण में गौरागदास ने पीतावरदास की भाँति अनेक ओडिया और सस्कृत पुराणो का सन्निवेश किया है। इस प्रकार दामोदर पुराण को हम एक सार्थक और मौलिक सकलन कह सकते हैं।

**पुरुषोत्तमदास नरेन्द्र**—पुरुषोत्तम नरेन्द्र इतिहास पुराण के रचयिता थे।

ग्राम में एक क्षत्रिय परिवार में पैदा हुए थे। सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा इनके काव्यगुरु और दीक्षा-गुरु थे। बचपन में ही इनमें काव्य-शक्ति का स्फुरण हुआ था। आयु-वृद्धि के साथ-साथ इन्होंने वेद, दर्शन, पुराण, इतिहास, वैष्णव शास्त्र और अलकार शास्त्र पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इन्होंने कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज और सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा के काव्यादर्श पर अपने काव्य सौध का निर्माण किया है।

श्रद्धा और भक्ति इनके जीवन की नियामक थी। रूप-सनातन और जीव गोस्वामी के शास्त्रों का गंभीर अध्ययन कर ये कविता क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। "विदग्ध-चितामणि" इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है जो दीनकृष्ण के रसकल्लोल और कविसम्राट् के वैदेहीश-विलास के बाद ओडिया साहित्य में श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। दीनकृष्ण, कविसम्राट् उपेन्द्र भज और सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा का अनुगमन करने पर भी उनकी मौलिक प्रतिभा इतनी प्रखर थी कि अपने एकात पदसयोजन, भावसावल्य और अलकारो के समावेश आदि के कारण उनका विदग्ध-चितामणि काव्य एक स्वतत्र और मौलिक सृष्टि है। यह श्रीकृष्ण की ब्रजलीला-विषयक एक ऐसा काव्य है, जो सस्कृत के विदग्ध माधव और ललित माधव आदि वैष्णव शास्त्रो के साथ सफल प्रतिद्वद्विता करता है। यह दिव्य ओडिया छन्दो की मूर्छना से कमनीय और महिमान्वित है तथा वैष्णव भावराशि का अमृतमय भडार और सगीतो की अमल मदाकिनी है। यह पिछली दो सदियों से उत्कलीयो के अतर को वैष्णव भाव से स्पदित और परितृप्त करता आ रहा है। इसकी मूर्छना से उत्कल की अन्तरात्मा सदा पुलकित होती रही है।

अभिमन्यु ने विशिष्ट काल्पनिक कथाओ के आधार पर प्रीति चिंतामणि, सुलक्षणा, रसवती, प्रेमकला और रसकला नाम के प्रेम काव्यो की भी रचना की है। ये सब उनके प्रथम कवि-जीवन के उच्छ्वास हैं। इन सबमें सरस भावो का समावेश हुआ है। परतु अभिमन्यु के कवि-जीवन की चरम परिणति विदग्ध-चिंतामणि में ही सघटित हुई है। यह उनके परिपक्व शास्त्रज्ञान और अटल भक्ति का सर्वश्रेष्ठ प्रकाश है।

विदग्ध चिंतामणि की निम्नाकित पदावलियां मनन करने योग्य हैं—

**राग-कामोदी**

सुधीरे धेन वीरे छान्द कला-निधिरे
तुल सुस्वाद सुधादायी।
स्पर्शे आह्लाद कर जिव ताप निकर
आनन्दाव्धि वर्द्धन होइ हे। धीर दिने।
हृद्कुमुद मुद हेव। तमसकुल क्षय जिव।
राधाकृष्ण नूतन मिलन सु यतन
श्रवणे सुगति लभिव है।
राधावृन्दाकानने मिलि शोभा आनने
चन्द्र काति कि म्लान कले।

**गौरचरण अधिकारी**—इनका जन्म पुरी जिले के लेहेंग गाँव में हुआ था। इन्होंने वहुत से सकीर्तन, जणाण और भजन लिखे हैं। इनके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ का नाम कृष्णलीला है। इसमें ३६५ गीत हैं। यह पहले अभिनीत भी होता था। इनकी भाषा अत्यत सरल है। ये शुद्धा-भक्ति मार्ग के पथिक तथा गृही वैष्णव थे और रणपुर रियासत के एक मठ के अधिकारी थे। निम्नलिखित उद्धृताश उनकी प्रतिभा का परिचायक है —

**गोचारण वेश**

"प्रिय आलि! अना गो गोष्ठकु विजे वनमाली (घोषा)
सुवल स्क धरे भुज भरा दत्त करि चित्तवित चोरा
ढलि कि विधिरे चालति सघीरे
आगे धेनु वत्सावृन्द चालि।"

**कृष्णचरण पट्टनायक**—कृष्णचरण पट्टनायक गजाम जिले के अतर्गत धराकोट के निवासी थे तथा सस्कृत महाभारत के अनुवादक राजा कृष्णसिह के दीवान थे। उन्होने सस्कृत के वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, कल्कि पुराण और वामन पुराण का अविकल अनुवाद किया था। वे १८१५ ई० तक जीवित थे।

**सूर्यमणि च्याउपट्टनायक**—सूर्यमणि च्याउपट्टनायक का जन्म सन् १७७३ ई० में हुआ था। इन्होंने सस्कृत के अध्यात्म रामायण का सरल ओडिया में अनुवाद किया था जो ओडिशा में वहुत ही जनप्रिय है। ये १८२८ ई० तक जीवित थे।

**गोपालकृष्ण पट्टनायक**—इनका जन्म गजाम जिले के अतर्गत पारलाखेमुण्डि में १७८५ ई० में हुआ था। ये १८५६ ई० तक जीवित थे। वचपन से ही उनमें कवित्व-शक्ति का परिचय मिलने लगा था। आयुवृद्धि के साथ-साथ वे शुद्धा भक्ति मार्ग के पथिक वन गये और श्रीकृष्ण के व्रजलीला-सवधी गीतो की रचना भी करने लगे। इनके कृष्ण-सवधी गीत सुन्दर रागरागिणियो में आवद्ध हैं। उनकी भाषा सरल, सरस और सुमधुर है, वे एक भावुक व्यक्ति थे। इनकी रचनाओ में राधाकृष्ण भाव की पूरी तन्मयता मिलती है। सगीतो के भाव और मूर्छनाएँ वहुत ही हृदयस्पर्शी हैं। उत्कल के सगीत लेखक कवियो में वे वनमाली के समान थे। उनकी कविताओ में प्रणयी और प्रणयिनी के हृदय की भावराजि असाधारण मनोवैज्ञानिक-दक्षता के साथ चित्रित है। भाषा की माधुरी, भावो का सभार और सगीत की मूर्छना ने गोपाल कृष्ण की कविताओ को उत्कल में वहुत ही जनप्रिय वनाया है। इनके वशधर अव भी पारलाखेमुण्डि में वास करते हैं।

सगीत के निम्नाकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

दया न करतु मु दासी सिना रे। पद।
दुःख देइ श्याम कु राधा सुखी हेवाकु
रुपिव कलु कि ए आलोचना रे।

मधुसगी रति वधुयिव जीव नेव मु एकाकी ललना ।
नुहइ उचित किंचित कुचित कुतला करना कलना ।
मह अहसे । वहइ नाहिं से सोरिषे, जेवे वा वहिव
तेवे पलाइव तव लोकने किशोरी से ।"

(प्रवध पूर्ण चन्द्र)

**कविसूर्य वलदेव रथ**—कविसूर्य वलदेव रथ का जन्म गजाम जिले के आठगड राज्य में हुआ था। कहा जाता है कि उन्होने देवी की कृपा से असाधारण पाडित्य और कवित्व-शक्ति प्राप्त की थी। उनका सगीत ज्ञान उच्चकोटि का था और वे स्वय एक कुशल गायक थे। ये जलतर, आठगड और उत्कल के गजपति महाराजाओ के आश्रय मे रहे। उन्होने अपने असपूर्ण "चन्द्रकला" काव्य में भी उपेन्द्र, अभिमन्यु और यदुमणि की सी शक्तिमत्ता प्रदर्शित की है। उत्कल के सगीतकार कवियो में उनका प्राधान्य अप्रतिहत है। अनुप्रास-पूर्ण, खड कविता की रचना में वे अग्रणी थे। अपने किशोर चन्दानन चपू, रत्नाकर चपू और असख्य खड काव्यों में उन्होने जैसी पदविन्यास-पटुता प्रदर्शित की है और दिव्य मूर्च्छंना भर दी है, वैसी चमत्कारिता और किसी ने नही दिखाई है। इसी के कारण उनको महान् कवियो में ऊचा स्थान दिया जाता है। किशोर चन्द्रानन चपू की नाटकीयता और कथोपकथन अनवद्य और अतुलनीय है। मूर्छना-गर्भित सगीतो ने किशोर चन्द्रानन चपू और रत्नाकर चपू को उत्कलीय जनता का कठहार वना दिया है। प्रेम-मूर्ति राधाकृष्ण के लीलाविलास ने कविसूर्य की अलकार-पूर्ण कविताओ में अपूर्व रूप पाया है। कविसम्राट् की सारस्वत सृष्टि में समवेत भाव से सव प्रकार की कविताओ ने सस्कृत रचनाओ के साथ जैसी सफल प्रतिद्वद्विता की है उसी तरह कविसूर्य की गीतिकाएँ पद-सयोजन और मूर्छनामयत्व से सस्कृत गीतिकाओ की प्रतिद्वद्वी वन सकी हैं। प्राकृत काव्यो को ऐश्वर्यशालिनी सस्कृत भारती के जोड तोड का वनाने के लिये रस-कल्लोल में दीनकृष्ण, वैदेहीश-विलास में कविसम्राट् उपेन्द्र, विदग्ध-चितामणि में अभिमन्यु और प्रवधपूर्णचन्द्र में यदुमणि ने जो प्रयत्न किया था, कविसूर्य वलदेव ने अपनी चन्द्रकला और चपुओ में उसकी अतिम सार्थकता का सपादन किया है। उनकी कृतियो के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

"मधुरे, मन्द मन्द होइ गन्धवह प्रसरिला कदवनिकुज सीमारे।
मरन्द सेके चमकि लोके भापिले इषि मारे,
मिलिन्दलता दभवनिता-वदने मिशि मारे।"

× × ×

राग पुरवी। ताल—आठताल
तुहि परा, मो हृदय-मणिमय-हारा रे। घोपा।
सहि तु मोहर सकल सपद, मदन फणि-रदन-विषगद,
अखिल विभव आखण्डल-पद-आरोहण-परपरा रे॥

मिछ कथाकु पसरा करिअछि, सरिलाणि देखु सकल काम।
दिन न सरि अपमृत्यु हेउछि, विअर्थरे बान्धि नेउछि यम।।२।।
अग्नि अगीकार पुरुष अटन्ति, ताक तुले केहि नुहन्ति सम।
चारि तीर्थ आसि शर्णागति पशि, श्रीचरण तले से चउधाम।।३।।
जे आश्रित हेव गुरुधर्म नेव, आकाशकु चाहिं कर नियम।
न धइले रटि गण्डि जिव फिटि, पश्चान्ते पाइव पथशरम।।४।।
सप्त ब्रह्म.ण्डकु सातथर होइ, फेरि आसिलाणि अलेख धर्म।
जाणि शुणिकरि चित्तरे न धरि, मायारे किंपाइ हेउछ भ्रम।।५।।
अक्षरे न वसे रूपरे न दिशे, से प्रभुकु नाहिं पाइले काम।
आत्मा ग्यान हेले तेवे जाइ मिले, भणं भीम भोइ पामर हीन।।६।।

**लडुकेश्वर महापात्र**—लडुकेश्वर साहु नयागड रियासत के निवासी थे। उन्होने "आदि काव्य" नाम की अपनी कृति में रामकथा लिखी है। यह सात भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग अनेक मूर्छनामय छन्दो से परिपूर्ण है। लडुकेश्वर की रचना निराडवर और सरल है।

**गगाधर पट्टनायक**—भारतचरितामृत नामक काव्य के रचयिता गगाधर पट्टनायक कटक जिले के अतर्गत वाकी सुवर्णपुर के निवासी तथा मधुसूदन पट्टनायक के पुत्र थे। अपने उपरोक्त काव्य की रचना में इन्होने समग्र महाभारत, सारला महाभारत और दूसरे सस्कृत पुराणो की पूरी सहायता ली है। यह १९ भागो में विभक्त है। इसी में हरिवशचरित भी अन्तर्मुक्त है।

**गंगाधर प्रधान**—गगाधर प्रधान सवलपुर जिले के निवासी थे। इन्होने "सिद्ध हरिवश गगाभारत" नामक काव्य की रचना की थी। सिद्ध हरिवश सस्कृत हरिवश का हूवहू अनुवाद है। किंतु इसमें कवि की अपनी मौलिक दृष्टियाँ भी पर्याप्त हैं।

इस प्रकार उत्कलीय आध्यात्मिक सृष्टि के वाहन के रूप में उत्कल का यह कला और सगीतमय साहित्य अनुकूल वातावरण से सवर्द्धित और परिपुष्ट होकर चरम उत्कर्प में उपनीत हो सका था। कविसम्राट् के परवर्ती कवियो ने उनकी जोड में काव्य रचना करने का भरसक प्रयत्न किया था। छन्दोवद्ध काव्य और उसके वाद गीत तथा सगीत उत्कलीय सरस हृदय के मनोज्ञ माध्यम वने। पाला, दास-काठिया, रामलीला, भारतलीला, राधाकृष्ण प्रेमलीला, रास, घुडुकिनृत्य, यात्रा और स्वाग आदि ने उत्कलीय सारस्वत सृष्टि को जनता मे कुशलता से परिवेष्टित करके देश में इसकी सुदृढ प्रतिष्ठा की है। कवियो और महाकवियो की चित्ता-कर्पक रचनाओ ने इन कलाशिल्पियो के स्वरो और अभिनयो के माध्यम से सारे भूखड को एक सिरे से दूसरे सिरे तक मदाकिनी के समान परिप्लावित किया है। १६वी सदी के आरभ से अग्रेजी शासन के पूर्व तक अपनी स्वाधीनता खो देने पर भी कोई विजातीय प्रभाव उत्कल की शिक्षा और सस्कृति को कलुपित नही कर सका था। उत्कलीय सारस्वत का स्वातत्र्य पूर्णतया

# ओड़िया साहित्य का विकास-क्रम

## (घ) आधुनिक ओड़िया साहित्य

### श्री नटवर सामंतराय

आधुनिक ओडिया साहित्य का वास्तविक आरभ ओडिशा पर अग्रेजी के अधिकार के पश्चात् ही हुआ। सन् १८०३ में ओडिशा अग्रेजी शासन के अन्तर्गत आ चुका था। इस नये शासनाधिकार ने ओडिया जाति के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक क्षेत्रो में जो अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित किया, उससे साहित्य को एक महत्वपूर्ण तथा नवीन दिशा की ओर मुड जाने का अवसर मिला। आधुनिक साहित्य उसी परिवर्तन का परिणाम है।

ब्रिटिश काल के पूर्व ओडिया साहित्य एकोन्मुखी था। सस्कृत और ब्रज साहित्य इसके काल्पनिक, रीतिवादी तथा वैष्णव साहित्य के प्रेरणा केन्द्र थे। वस्तुत इस देश का जीवन स्रोत एक ही धारा में प्रवाहित था और गतानुगतिक ढग से सचालित होनेवाली शिक्षा, सस्कृति, सभ्यता और चिन्ताधारा में भी प्राचीन परपरा का ही पूर्ण अनुमोदन था। साहित्य के क्षेत्र में इस पर-पराप्रियता ने एक सधी-सधाई लीक अथवा रूढि बना रखी थी। वैचित्र्य-विहीन, सामाजिक तथा परपराबद्ध काव्य-निर्माण की रूढि ने चारो ओर अपनी जडें जमा ली थी और जो नवीनता के अभाव में दिनोदिन खोखली तथा अशक्त होती जा रही थी। विकास के सपूर्ण मार्ग अवरुद्ध होकर उसे जर्जर बना चुके थे। आधुनिक युग के पूर्व तक आते आते ओडिया साहित्य के ये दोष अपनी चरम सीमा को पहुँच गये थे।

जीवन और साहित्य के ठीक इसी अवरुद्ध वातावरण में ओडिशा पर अग्रेजो ने अधिकार जमाया और इस अधिकार के साथ ही साथ विजित जाति विजेता की सभ्यता और साहित्य के सम्पर्क मे आई। फलत उसके जीवन तथा साहित्य के आगिक और आत्मिक तत्वविभव मे परि-वर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। आगे चलकर इसी परिवर्तन ने ओडिया साहित्य में अचिन्त-नीय क्रान्ति उपस्थित की और निर्धारित तथा परपरित रूढ मान्यतायें सारहीन समझी जाने लगी। फलत. आधुनिक कवियो ने प्राचीनता का केंचुल उतार फेंका और नवीनता का स्वागत खुलकर किया। किंतु विदेशी शासक की सभ्यता अथवा चिन्ताधारा के सपर्क में आते ही सहसा कोई उल्लेखनीय परिवर्तन उपस्थित नही हुआ बल्कि प्रभावशाली और स्पष्ट परिवर्तन का इतिहास विजेता और विजित के सास्कृतिक सघर्ष के फलस्वरूप, सपर्क के वर्षों बाद शुरू हुआ। इस सघर्ष का उदय प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षा-सभ्यता के मेल मे हुआ जब कि विजित जाति विजेता के

उसके उपयोग लायक पाठ्य पुस्तके, आधुनिक शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज तथा आधुनिक साहित्य इन चारो में जो अन्योन्याश्रित सबध है, उसको कोई अस्वीकार नही कर सकता। उन्नीसवी शताब्दी में भारत के जिस प्रात में, जितना ही पहले आधुनिक शिक्षा-प्रणाली चली, उस प्रात की पाठ्य-पुस्तको तथा मध्यमवर्गीय समाज ने उतना ही शीघ्र अभ्युत्थान किया है। फलत उस प्रात का आधुनिक साहित्य उतना ही पहले विकसित हो सका। आधुनिक बगला साहित्य की ओर दृष्टिपात करने पर इस कथन की वास्तविकता सहज ही प्रमाणित हो जाती है। उत्कल में वही मध्यमवर्गीय समाज तथा साहित्य बहुत वर्षों के बाद प्रकट हुआ। इसका कारण यही था कि इस उपेक्षित प्रात मे उचित समय पर नई शिक्षा का प्रसार नही हो पाया था। आधुनिक ओडिया साहित्य कहने से जो आज समझा जाता है, वास्तव में वह १८७० ई० के बाद ही उत्पन्न हुआ था।

## मिशनरी युग या रुचि-परिवर्तन का युग १८०३-१८४२

अग्रेजो के आधिपत्य के साथ ही साथ देश में बहुत पहले से कार्यरत ईसाई मिशनरियो का जाल फैलने लगा। ईसाई धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक था कि वे प्रचार-क्षेत्र की भाषा सस्कृति आदि को अच्छी प्रकार समझ सकें और धार्मिक बातो को उसमें व्यक्त भी करें। धर्म-प्रचार के इसी उद्देश्य को लेकर उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे विलियम केरी, मार्शमान और वार्ड साहब ने बगला-गद्य साहित्य को बढाया ही नही वरन् उसे एक नया रूप भी दिया। ठीक इसी प्रकार ओडिया भाषा में भी गद्य-रचना हुई। केरी साहब ने सर्वप्रथम दूसरो की सहायता से बाइबिल (१८०९) तथा धर्म सबधी अनेक पुस्तके ओडिया गद्य में लिखी। किंतु उनका प्रधान कर्म-क्षेत्र बगाल था, अतएव बगला भाषा और साहित्य की अपेक्षा वे ओडिया भाषा और साहित्य के प्रति बहुत कम कार्य कर सके। ईसाई धर्म प्रचार के निमित्त उन्होने भारत की ३५ भाषाओ में बाइबिल का अनुवाद कराया था। उसी सिलसिले में ओडिया अनुवाद की व्यवस्था भी की गई थी। इस कार्य को केरी साहब ने स्वय अपने हाथ में लिया किंतु इसके बाद ही ओडिया गद्य में पाठ्य पुस्तको की रचना का भार मिशनरी सटन साहब के ऊपर पडा। अतएव केरी साहब उसके अतिरिक्त और कुछ न कर सके।

सन् १८१३ में कपनी की घोषणा के अनुसार शिक्षा विभाग के लिये वार्षिक व्यय की पृथक् व्यवस्था अवश्य हुई किंतु अनेक वर्षो तक ओडिया को इसका कुछ भी अश प्राप्त नही हुआ। मिशनरियो ने यहाँ सर्व प्रथम सन् १८२२-२३ ई० में १५ देशी विद्यालयो की स्थापना की जिसके द्वारा आधुनिक शिक्षा प्रसार की नीव पडी। इस कार्य के लिये धनी लोगो से आर्थिक सहायता ली गई और कार्यकर्त्ताओ तथा सचालको ने अदम्य उत्साह और धैर्य से शिक्षा-प्रसार में महत्वपूर्ण योग-दान दिया। इन कार्य कर्त्ताओ के सामने कई व्यावहारिक कठिनाइयाँ थी जिनको दूर किये बिना कुछ भी करना सभव नही था। ऊपर बताया जा चुका है कि इन लोगो का उद्देश्य धर्म-प्रचार था। अतएव जिस क्षेत्र मे प्रचार-कार्य होता था, वहाँ की भाषा का यथेष्ट ज्ञान

साहब के वाइविल की ओडिया की अपेक्षा सटन साहब की पाठ्य पुस्तकों की ओडिया वगला के प्रभाव से कुछ मुक्त थी।

## सन् १८४२ से १८७० तक की अवस्था

प्रथम दो दशको में (१८२२-४२) मिशनरियो ने शिक्षा-प्रसार और पाठ्य पुस्तक रचना की जो नीव डाली थी, वह इस आलोच्य काल (१८४२-७०) के वीच तनिक मजवूत वन गई थी। अर्थाभाव के कारण सन् १८२३ में स्थापित कटक इगलिश चैरिटी स्कूल को मिशनरियो ने १८४१ में कपनी को सौंप दिया। उसी समय से यह विद्यालय ओडिशा के शिक्षा-प्रसार का मुख्य कॆंद्र वन गया। पहले यह हाईस्कूल था, वाद में एफ० ए० (१८६८) और वी० ए० (१८७६) की कक्षायें भी खोली गई। आजकल इसी का नाम रैवेंशा कालेज है। आगे चलकर दो और हाई स्कूल वालेश्वर और पुरी में खुले (१८५३ ई०)। १८७० ई० तक ओडिशा में केवल तीन ही हाई स्कूल थे। उस समय हाई स्कूल की शिक्षा ही ओडिशा में उच्चशिक्षा समझी जाती थी। सन् १८४४ ई० में लार्ड हार्डिज के आदेश से समूचे वगप्रदेश में जो १०१ देशी विद्यालय खोले गये थे, उनमें से ओडिशा के हिस्से में केवल ८ ही पडे थे। उपरोक्त तीन हाई स्कूलो के अतिरिक्त ये आठ स्कूल भी सरकार के प्रत्यक्ष दायित्व में चलते थे जिसमें ओडिया भाषा ही पढाई जाती थी। किंतु अग्रेजी शिक्षा की उपादेयता अधिक समझी जाने के कारण आगे चलकर इन विद्यालयो में से कई वद हो गये थे।

सन् १८४२ में कपनी सरकार ने उत्तरभारत के समस्त विद्यालयो के लिये उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें चलाने की एक योजना वनाई। २० जून सन् १८४२ ई० को शिक्षा कौंसिल के सेक्रेटरी श्री एच० वी० वेली ने विभिन्न स्थानो की शिक्षा-कमेटियो को एक सर्कुलर भेजा था जिसमें प्रचलित पाठ्य पुस्तको की दशा और उनकी उन्नति के लिये प्रस्ताव मागा गया था। इस पर कटक की शिक्षा-कमेटी ने ओडिशा में प्रचलित समस्त पाठ्य पुस्तको के विवरण सहित, नई पुस्तको के प्रणयन का प्रस्ताव दिया था। इसी कार्य के अतर्गत सटन साहव ने वगला से ओडिया में अनुवाद करने के लिये विश्वभर विद्यालकार के नाम का समर्थन किया था। इस समय ओडिया की जो पाठ्य पुस्तकें तैयार की गई थी उनमें विभिन्न वर्ग के विद्यार्थियो के मानसिक विकास की ओर ध्यान दिया गया था। पहले सटन साहव और प० विश्वभर विद्यालकार तया वाद मे मि० लेसी और जे० फिलिप्स आदि लेखको ने विभिन्न विपयो की पुस्तकें लिखकर शिक्षा-प्रसार में विशेप योग दिया था। किंतु यह सव होते हुए भी लगता है कि लगभग ५० वर्षों (१८२२-७०) के इस काल में नई शिक्षा को प्रचलित करने का जो प्रयास ओडिशा में किया गया, उनमें कोई सतोपजनक प्रगति नही हो पाई। इसमें निम्नाकित कारणभूत कठिनाइयो को उपस्थित किया जा सकता है—

(क) विशाल वग-प्रदेश के विभाग रूप में होने के कारण ओडिशा उनकी अपेक्षा अत्यन्त अवहेलित और उपेक्षित रहा। यद्यपि वंगाल के साथ ओडिशा के इस राजनैतिक वधन

इसी आघात की प्रतिक्रिया का फल था कि सन् १८७० के पश्चात् सर्वथा एक नई साहित्यिक सृष्टि के लिये लोग उत्तेजित हो उठे थे।

आधुनिक ओडिया साहित्य के प्रारभिक दशक (१८७०-८० ई०) के छोटे समय में यथार्थवादी साहित्य की सृष्टि के लिए जो अभिनव उन्माद और उत्साह ओडिओ के हृदय मे उत्पन्न हो गया था, वह सचमुच आलोकप्रद और विस्मयकर है। विचारणीय है कि यदि घोर दुर्भिक्ष और भाषा-विलोप आन्दोलन न हुए होते तो ओडिया भाषा और साहित्य के सरक्षण तथा सवर्द्धन के लिए ओडिया और राजपुरुष इतने सचेष्ट और सचेत न होते। अत ये दोनो इसके लिए परम आशीर्वाद सिद्ध हुए। वगला साहित्य की अपेक्षा ओडिया के आधुनिक साहित्य ने ५० वर्षों वाद जो विकास किया, उसके दो ही मुख्य कारण हम लक्ष्य कर सकते है। स्वतन्त्रता के लोप होने के पश्चात् वगाल की भाँति दूसरे प्रातो में भी देश की सर्वांगीण उन्नति का महान दायित्व, राजा महाराजाओ के हाथ से निकलकर जनसाधारण के ऊपर पडा। वगाल मे भूमि के स्थायी वदोवस्त के कारण धनी जमीदारो की एक अलग श्रेणी ही प्रादुर्भूत हुई जो जनता का शोषण करने लगी थी। किंतु वगाल का यह जमीदार वर्ग आधुनिक शिक्षा से अनुप्राणित होकर देश की भलाई के लिये प्रयत्नशील था और शिक्षा के अधिकाधिक प्रचार के नाते वहाँ निम्नमध्यम-वर्ग भी सिर उठा रहा था। इसी नवोत्पन्न शिक्षित मध्यमवर्ग ने नये जमीदारो और सरकार की प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता से सन् १८२० के वाद से ही स्वतत्र नवसाहित्य का निर्माण प्रारभ कर दिया था। किंतु ओडिशा की दशा इससे नितात भिन्न थी। शिक्षा-प्रसार की अवहेलना के कारण यहाँ इस शिक्षित मध्यमवर्ग का विकास १८७० ई० से प्रारम्भ हुआ। ओडिशा मे भूमि की घोर अव्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त कलकत्ते में ओडिशा की जमीदारियो के नीलाम होने का जो अवाछित विधि-विधान वना, उसके कारण सन् १८१८ के पूर्व ही यहाँ की दो तिहाई जमीदारियाँ कलकत्तावासी वगाली कर्मचारियो के हाथ चली गई। अत इस प्रात का परपरागत प्राचीन जमीदार वर्ग तहस-नहस हो गया। दूसरी ओर साहित्य निर्माण का नेतृत्व करनेवाला शिक्षित वर्ग अत्यत गरीव था। आधुनिक शिक्षादीक्षा से अनभिज्ञ होने के कारण सन् १८७० तक यहाँ का रियासती राजन्यवर्ग भी साहित्य-विकास के लिये कुछ भी सहयोग नही कर सका था। अतएव सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि सन् १८७० तक इस प्रात के साहित्य-विकास के लिये अनुकूल परिस्थितियो और कारणो का नितात अभाव था।

सन् १८६९ ई० मे ओडिशा के विद्यालयो में ओडिया भाषा चलाने की सरकारी आज्ञा जारी की गई। सरकारी अधिकारियो—विशेषकर ओडिशा के कमिश्नर रेवेंशा साहव तथा स्कूल इस्पेक्टर आर० एल० मार्टिन ने शिक्षा प्रसार के लिये पूरा प्रयत्न किया। तव जाकर कही विद्यालयोपयोगी विविध पाठ्य पुस्तकें तैयार हो सकी। इस पहले क्षेत्र के प्रधान अगुये मिशनरी लोग ही थे लेकिन अव यहाँ के वगाली निवासी, मराठी और ओडिया भी सामने आये। वास्तव में १८७० से १८८० का यह आलोच्य काल पाठ्य पुस्तक-रचना अथवा रुचि परिवर्तन का द्वितीय विकास युग है। चूंकि अग्रेजी भाषा के माध्यम से इस प्रात में अग्रेजी साहित्य और ज्ञान-विज्ञान

समालोचना की रचना इसी समय से आरभ हो गयी जिसने परवर्ती नाटको, काव्यो, गल्प साहित्य की सृष्टि के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार किया था। यद्यपि पहले का वगला मिश्रित गद्य इस समय पूरी तरह तिरोहित नही हो गया, फिर भी आधुनिक ओडिया गद्य वगला के प्रभाव से वहुत कुछ मुक्त होकर स्वतत्र विकास करने मे समर्थ हो सका। मवुसूदन के विभिन्न प्रवन्ध तथा 'उत्कल मधुप' की साहित्यिक समालोचनाएँ उन्नत ओडिया गद्य की प्रथम मार्ग-दर्शिका ही रही। इन कई रचनाओ से लोगो ने यह अनुभव किया कि गद्य में उन्नत चिन्तन, वलिष्ठ अभि-व्यजनाशक्ति तथा सार्थक शैलियो के वहन करने की यथेष्ट क्षमता है।

राधानाथ और मधूसूदन के परस्पर सहयोग से 'कवितावली' का प्रथम और तृतीय प्रकाशन क्रमश सन् १८७६ और १८८५ ई० में हुआ। यह आवुनिक ओडिया काव्य-क्षेत्र का प्रथम और सार्थक अवदान है। उस समय की सैकडो पाठ्यपुस्तके आज हमारे सामने से लुप्त हो गई है, परन्तु पाठ्य पुस्तक होने पर भी कवितावली अपनी वलिष्ठ रूपसपद के लिये आज भी महत्वपूर्ण वनी हुई है। इस पुस्तक की कविताएँ भाव और शैली (आगिक और आत्मिक रूप-विभव) की दृष्टि से सर्वथा नूतन, स्वतत्र और मौलिक काव्य प्रतिभा की द्योतक हैं। राधानाथ का वेणीसहार नामक काव्य पुराण रीति से रचित होने पर भी प्राजल भाषा, सुनियन्त्रित यतिपात और उपधामिलन आदि में उसकी अपनी स्वतत्र विशेषता है। अलेक्जेंडर सेल कार्क नामक अग्रेजी कविता पर आधारित मवुसूदन की 'निर्वासितर' विलाप कविता को अपनी शब्द-योजना, ललित स्वर-झकार और भावाभिव्यक्ति की स्वाभाविकता के कारण एक विशेष गौरव प्राप्त है। इसमें कुछ प्राचीन छदो के आधार पर निर्मित कुछ सरल छदो के साथ साथ अग्रेजी छदो, जैसे 'आकाशप्रति' का 'एकातरमित्र' और 'निशीथचिंता' का 'स्पेन्सीरियन स्टेंज़ा' का भी अनुसरण किया गया है। इसके अतिरिक्त राधानाथ की 'भारतेश्वरी' कविता में तुकात पदो का आग्रह मिलता है, फिर भी वह अग्रेजी छन्दो से प्रभावित है। मवुसूदन की भारती-वन्दना का रूपगत तथा छन्दगत वैचित्र्य ओडिया साहित्य में विलकुल एक नई चीज है। कवितावली की कविताओ का भाव-पक्ष (आत्मिक गौरव) तो और भी चमत्कारपूर्ण और विचित्र है। शृगार-वहुल मव्ययुगीन ओडिया साहित्य में, विशेपकर पुराणो में, कही कही वीर रस की भी झलक मिल जाती है। लेकिन लघु कविता के लघु परिसर में साधारणतया इस रस का सम्यक् विकास नही हो पाया था। जातीयता के सर्वथा नये भावो मे ओतप्रोत राधानाथ की वेणीसहार और शिवाजिक उत्सा-हवाणी नामक रचनाओ में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। मव्ययुगीन साहित्य में करुण-रस सर्वदा शृगार रस के आश्रित था किंतु "निर्वासितर विलाप" अथवा "सीता-वनवास" कविता मे करुण रस दूसरे रसो का अनुगामी न होकर स्वतत्र रूप से प्रतिष्ठित हुआ है। जीवनचिन्ता और विशेपकर आकाशप्रति कविता मे यद्यपि भारतीय आर्य सस्कृति की धार्मिक चिंता दिखाई पडती है तथापि यह ब्राह्म धर्मावलवी मवुसूदन के ब्राह्ममत से पूरी तरह परिपुष्ट है। शरत् प्रभात कविता में जिस ग्रामीण विपय-वस्तु की प्रतिष्ठा है वह इस साहित्य का सर्वथा एक अभि-नव प्रयोग है। धनिकवर्ग का भोगमय जीवन जिस साहित्य का प्रधान उपजीव्य विपय है क्या

उषा (१८८८), पार्वती (१८८९) और वाद में लिखी चिलिका (१८९०), महायात्रा (१८९२), ययातिकेशरी (१८९४), काव्य रचनाएँ समूची उन्नीसवी सदी के ओडिया साहित्य की समुज्ज्वल मणियाँ है।

सन् १८८१-९० के वीच जिस साहित्य ने एक अभिनव रूप-सपद से विमण्डित होकर अभूतपूर्व विकास किया था वह १८९१-९७ के वीच एक सार्थक और सपूर्ण परिप्रकाश अवस्था तक आ गया था। उत्कल-प्रभा मासिक पत्रिका (१८९१) इस विकास का प्रथम और प्रवान कारण थी। २० साल पूर्व लोगो के मन मे जिस नये निर्माण के प्रति उत्साह पैदा हो गया था और भिन्न भिन्न समयो मे विभिन्न दिशाओ में प्रगति कर रहा था, वह अव इसी उत्कल प्रभा का आश्रय लेकर अपनी पूर्ण विकसित अवस्था को पहुँच गया था। सर्वश्री गणपति दास, विजयचन्द्र मजुमदार, विश्वनाथ कर, अभिन्न नायक, लाला रामनारायण राय आदि के अनेक उच्चकोटि के प्रवन्ध मघुसूदन का "ऋषि प्राणे देवावतरण" (१८९१) मणिचरण महापात्र, चन्द्रमोहन महाराणा, फकीरमोहन सेनापति, दामोदर मिश्र, गोविन्दचन्द्र महापात्र आदि विभिन्न लेखको की विभिन्न गीति कविताएँ, श्री रुद्रनारायण पडगी और श्री कन्हैयालाल वसु के विभिन्न काव्य, रामशकर का विवासिनी उपन्यास (१८९२)और श्री राघानाथ राय के चिलिका, महायात्रा तया ययाति-केशरी आदि काव्य अपनी अभिनव कलात्मकता के कारण ओडियासाहित्य में अद्वितीय और अनुपमेय है। यह न भूलना चाहिये कि ये सारी रचनायें पहले उत्कल प्रभा मे ही प्रकाशित हुई थी। इसी समय (१८९१-९७) राघानाथ की प्रतिभा का चरम परिस्फुरण हुआ था। मवुसूदन की गीति-कविता जो इसके पूर्व ही विकसित हो चुकी थी, इस समय परिणत अवस्था की ओर गतिमुख हो उठी थी। अतएव साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि सन् १८८१-९७ ई० तक के समय का प्रथम चरण आधुनिक साहित्य का वास्तविक उन्मेपकाल और अन्तिम चरण उसका चरम-उत्कर्ष काल है। इस प्रकार सपूर्ण १९वी शताव्दी में (अतिम चरण के अतिरिक्त) जिनकी लेखनी ने ओडिया साहित्य को समृद्ध तथा विकासोन्मुख किया, उनमें श्री राधानाथ राय तथा श्री मवुसूदन अग्रणी है।

श्री राधानाथ राय जी की शिक्षा केवल एफ० ए० तक थी लेकिन उन्होने अंग्रेजी, ग्रीक वगला, हिंदी, सस्कृत तथा मध्ययुगीन ओडिया साहित्य पर अभूतपूर्व दक्षता प्राप्त की थी। उनकी सारी कृतियो मे उनके विशाल पाण्डित्य, वहुशास्त्रदर्शिता तथा गभीर अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है। सन् १८६४ से १९०३ ई० तक के ४० वर्षो तक वे शिक्षाविभाग में नियुक्त रहे। प्रथम ८ वर्षो तक उन्होने शिक्षक जीवन विताया था, शेष प्राय ३२ साल तक शिक्षाविभाग मे इस्पेक्टर रहने के कारण उन्हें वहुत वार सपूर्ण उत्कल के भ्रमण का सौभाग्य मिला था। जीवन के इस जीवत और ठोस अनुभूति के साथ उनके विशाल पाण्डित्य तथा प्रकृष्ट रचनात्मक प्रतिभा के सयोग ने उन्हें ओडिया में विल्कुल नवीन और स्वतन्त्र काव्य रचना की वलिष्ठ प्रेरणा दी थी। अग्रेजी कवि स्काट की तरह इन्होने ओडिशा के प्राचीन इतिहास, पारपरिक रीतिनिति और कहानियो तथा किंवदन्तियो का पहले पहल जीवत चित्रण किया। ओडिशा के गिरि-कानन, ह्रद-

(केदार गौरी की कहानी भी काव्य के लिखे जाने के बाद की है ) के साथ इस प्रकार मनोहर ढग से मिला दिया गया है कि इन काव्यो को इस देश की मिट्टी की ही उपज मानने में कोई सन्देह नही रह जाता। कथाकार और शिल्पनिपुण राधानाथ जैसी रचनात्मक प्रतिभा और अपूर्व काव्य-निर्माण की क्षमता केवल ओडिया साहित्य ही नही, सपूर्ण उन्नीसवी शताब्दी के समृद्ध वग-साहित्य में भी मिलना कठिन है।

विदेशी साहित्य ही राधानाथ जी की दृष्टिभगी की सृष्टि का प्रधान उत्स रहने के कारण लोगो ने पहले पहल इनके साहित्य को अधिक सम्मान नही दिया, क्योकि उन्होने अपने साहित्यगत चरित्र-चित्रण में इस देश के सामाजिक नीति-नियम और आचार-व्यवहार की विशृ खलता और जीवन तथा धर्म की एक अपूरणीय असपूर्णता और अभावबोध का निरीक्षण किया था। उस समय जबकि एक सशक्त जातीय भाव इस देश के शिक्षित लोकचित्त को उन्मादित कर चुका था, माँ बाप की आज्ञा के बिना केदार और गौरी के बीच प्रेम सबध की प्रतिष्ठा और उसी स्वाधीन प्रेम की परिणति में दोनो की मृत्यु, कोणार्क के अधिदेवता प्रेमाभिलाषी अर्कदेव का ऋषिकुमारी चन्द्रभागा के पीछे पडना, चन्द्रभागा का पानी में डूब जाना, अर्कमन्दिर का पतन, राजनन्दिनी नन्दिकेश्वरी का विधर्मी शत्रु से प्रेमनिवेदन करना, पिता के जैत्रमणि को प्रदान करना और अत में इस प्रत्याख्याता नारी का मृत्युवरण, योधृवेशी उषा का पुरुषोचित कर्कश जीवनयापन, दौड प्रतियोगिता में राजकुमारो के साथ योगदान और राजपुत्र जयन्त तथा उषा का मृत्युवर्णन, उज्ज्वल गगवश के श्रेष्ठ नरपति गगेश्वर देव का अपनी कन्या कौशल्या से पाप-प्रणय-सपादन, ययातिकेशरी का नारी वेश में प्रेमिका का रूप धारण आदि काव्य की इन कथावस्तुओ में लोगो ने इस देश की जातीय परपरा के व्याहत होने का अनुभव किया था। राधानाथ का दुर्भाग्य है कि उनके इन काव्यो का प्रणयन ठीक उसी जातीय भावोदय के समय हुआ था। इसलिये लोगो ने इस साहित्य का मूल्याकन केवल जातीयता के मानदड से किया और इनके प्रति उनके विचार भी अच्छे नही रह गये। इतने पर भी यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि सौंदर्य के कलाकार राधानाथ की अमलिन प्रतिभा ने इन काव्यो में एक विशिष्ट रस-सपद की सृष्टि की है। नर-नारियो की स्वाधीन चित्तवृत्ति का स्वाभाविक परिप्रकाश, राजप्रासादवन्दिनी राजकुमारी के प्रकृष्ट नारीत्व की प्रतिष्ठा में ही सार्थकता का प्रतिपादन, प्रेम के प्रकाश में हृत्तन्त्रियो के सूक्ष्मतम स्पदन का चित्रण, मन की सहज दुर्बलताओ मे जीवन का अनवद्य चित्राकन आदि इस देश के परपरित काव्य-उपादान के लिये विराट् व्यतिक्रम ही है। किंतु इसी व्यतिक्रम में राधानाथ की महान् काव्य-प्रतिभा का अक्षय सौंदर्य भी प्रस्फुटित हुआ है। इनके साहित्य की समीक्षा करते समय विदेशी साहित्य की कथावस्तु को प्राधान्य कदापि नही देना चाहिए। वस्तुत इस प्रसग में हमें निम्नाकित तीन विषयो पर विशेष घ्यान देना चाहिए।

(१) विदेशी कथा-वस्तुओ का आहरण,

(२) इस आहरण का इस देश की मिट्टी से साम्य-दर्शन और

(३) उभय उपादानो का अतिम समीकरण ।

वर्णित है, किंतु वह सामान्य इतिहास ही नही वल्कि अनेक उपादानो से गठित एक महाकाव्य है। इस देश के पुराणो और इतिहासो की विषय-वस्तु का अस्थिककाल लेकर और उसमें विदेशी साहित्य के उपादान मिलाकर राधानाथ ने एक जीवन्त काव्य शरीर खडा किया है। इस काव्य के प्रधान उत्स मर्जिय का इलियड काव्य, दान्ते का डिवाइन कॉमेडी और मिलटन का पैराडाइज लस्ट हैं। यदि हम यह कहें कि इसकी रचना वगीय कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाद-बध नामक काव्य के अनुसरण पर हुई है तो इसका अर्थ यह होगा कि हम महायात्रा के सृष्टि-सौन्दर्य को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर रहे हैं। ऐतिहासिक माध्यम से जाति का अधोपतन वतलाकर एक गभीर करुण रस की प्रतिष्ठा करना, महायात्रा की सृष्टि का प्रधान लक्ष्य है। यह करुण-रस राधानाथ के दूसरे काव्यो के पात्रो में केन्द्रित होकर उपस्थित हुआ है। लकिन महायात्रा में यह समग्र जाति को केन्द्रित किये हुए है। इस करुण रस का अभिनव रूप अमित्राक्षर छन्द के स्वर-झकार की महायता से प्रतिष्ठित हुआ है। इसमें कुछ भी अत्युक्ति नही कि कविकल्पना की सुदूरप्रसारी चिन्ताराशि, यादुकरी शब्द-योजना, वर्णन परिपाटी की अपूर्व चित्रमयता, सृष्टि-परिकल्पना की मौलिक दृष्टिभगी, अमित्राक्षर छन्द के वैचित्र्य आदि ने काव्य के लोभनीय परिसर के बीच कवि प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है।

राधानाथ साहित्य इस देश के लिये पूर्णरूप से नया है। इस साहित्य-सौन्दर्य के परिशीलन के लिये एक स्वतत्र अभिरुचि और रसबोध की आवश्यकता है। इसकी सगीत-माधुरी का अनुभव करने के लिये अलग कान की जरुरत है। इसकी कलात्मकता के पर्यालोचन के लिये स्वतत्र चक्षु की जरूरत है। जिनकी ऐसी अभिरुचि, ऐसे नाक-कान नही हैं, राधानाथ साहित्य उनके लिए वास्तव मे ग्रीक-लैटिन ही है।

भक्त कवि मधुसूदन राओ (सन् १८५३-१९१२ ई०) जब कटक कालेज में अपनी एफ० ए० की पढाई कर रहे थे उस समय वे उसी कालेज के दर्शन के अध्यापक, ब्राह्म धर्मावलवी श्री हरनाथ भट्टाचार्य से प्रभावित होकर श्री प्यारीमोहन आचार्य के साथ ब्राह्म धर्म में दीक्षित हुए थे। इस ब्राह्म धर्म ने ही आगे चलकर उनके व्यक्तिगत जीवन तथा साहित्य साधना को नियत्रित किया था। आलोचना करने पर हम सहज ही जान सकेंगे कि ब्राह्मधर्म, मधुसूदन का व्यक्तिगत जीवन और उनकी रचनाएँ—ये तीनो परस्पर घनिष्ठ रूप मे सवधित हैं। उनकी रचनाएँ उक्त दोनो की एक सार्थक परिणति हैं। जीवन का सारा समय ओडिशा शिक्षा विभाग में बिताते हुए उन्होंने ओडिया पाठ्य पुस्तको के दारुण अभाव का अनुभव किया था। इसी अभाव को दूर करने के लिये उन्होंने कई पाठ्य पुस्तको की रचना की है। उनके लेखो में अनेक स्थानो पर हम स्रष्टा मधुसूदन की अपेक्षा उनके शिक्षकरूप को ही अधिक देखते हैं। फिर भी उनकी पाठ्य पुस्तकें विभिन्न विशेषताओ से परिपूर्ण हैं। इसीलिये इस देश की स्त्रियां, वच्चे और बूढे पिछले साठ सालो तक मधुबाबू की वर्णबोध पुस्तक से अक्षरशिक्षा ग्रहण करते आ रहे थे। ओडिया भाषा के अतर्गत इस युग में जैसा गौरवपूर्ण स्थान इस पुस्तक का था वैसा अन्य किसी पुस्तक का नही। पाठय पुस्तको में भी मधुबाबू के गभीर भक्ति-भाव, ईश्वर-प्रेम और जातीयता-बोध

दृष्टिकोण की आलोचना की जाय तो हम अनुभव कर सकते हैं कि मधुसूदन के धर्मवाद को प्रकाशित करने वाले साहित्यिक उपादानो की क्रमश किस प्रकार अभिवृद्धि हुई है। जिस प्रकार राधानाथ पाश्चात्य शिक्षा सघर्ष के अमृतमय फल है, उसी प्रकार मधुसूदन उन्नीसवी शताब्दी में प्रचारित ब्राह्म धर्म आन्दोलन के प्रतीक हैं। ऋषिकठ की यह उदात्तवाणी कि 'आनन्द से इस जगत् का जन्म हुआ है, आनन्द में इसकी परिवृद्धि है और आनन्द मे ही इसका अवसान होता है, ऋषिप्राण मधुसूदन के जीवन की सर्वश्रेष्ठ पथप्रदर्शिका थी। एक सर्व-शक्तिमान, अचिन्तनीय विराट् पुरुष की अनन्त शक्ति ही जगत् का एकमात्र सत्य हैं और उसी के मगलमय आशीर्वाद को प्राप्त करना प्राणिजीवन की अन्तिम अभिलाषा है, यही मधुसूदन के जीवन की परम और चरम आकाक्षा थी। जीवन का यह आदर्श उनकी कई कविताओ में यथार्थ साहित्य के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ है। मधुसूदन ने ऋषियो की आँखें पाई थी। उसी ने उनके जीवन तथा ओडिया साहित्य को नये जीवन से उद्‌भासित कर दिया था।

राधानाथ काव्यभाषा के सस्कारक थे। सहज, सरल, निराडम्बर, भाषा की लोभनीय परिपाटी, उन्नत भाव की अभिव्यक्ति के समय क्लिष्ट कल्पना का वर्जन, वर्णनो मे अत्यन्त स्वाभाविकता, अलकार और छन्द की कठिन योजनाओ का परिहार आदि राधानाथ साहित्य की इन्ही विशेषताओ का अनुसरण प्राय सभी परवर्ती लेखको, यहा तक कि सत्यवादी लेखको के समुदाय ने भी किया था। मधुसूदन साहित्य मे परिष्कृत रुचि के प्रथम प्रवर्तक तथा उन्नत दार्शनिक चिन्तनो के आदि प्रख्याता थे। इसी रुचि और चिन्तन धारा ने भावग्राही दास, चतुर्भुज पटनायक, साधुचरण राय तथा रेवाराय आदि लेखक-लेखिकाओं को पर्याप्त मानसिक खाद्य दिया था। २०वी शताब्दी के प्रथम बीस वर्षों में हम प्रेम का जो सयत रूप देखते हैं वह मधुसूदन द्वारा प्रवर्तित इसी रुचि के द्वारा नियन्त्रित हुआ था।

उन्नीसवी शताब्दी के ओडिया साहित्य का परिशीलन करते समय राधानाथ और मधुसूदन के अतिरिक्त एक अन्य श्रेष्ठ साहित्यिक श्री रामशकर राय पर भी हमारी दृष्टि पडती है। प्रारभ मे काव्य (प्रेमतरी) और उपन्यास में हाथ डालने पर भी वे नाटककार के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। ओडिआ साहित्य के प्रथम उपन्यासकार रामशकर ने 'विवासिनी' उपन्यास की रचना के पूर्व 'पद्ममाली' नाम का एक और उपन्यास लिखा था। स्रष्टा के अमृत करस्पर्श ने निर्जीव इतिहास भी नवीन चेतना से स्पन्दित हो जाता है। पद्ममाली की अपेक्षा विवासिनी उपन्यास इस अभिमत की सत्यता को काफी हद तक प्रमाणित कर देता है। मरहट्टा राजत्व की अराजकता और अपशासन को आधार बनाकर जिस कलात्मक शैली के द्वारा यह उपन्यास उपस्थित किया गया है, वह चमत्कारपूर्ण है। परन्तु यह बात सच है कि परवर्ती युग मे फकीरमोहन के उपन्यासो ने 'विवासिनी' की लोकप्रियता को बहुत कम कर दिया है।

१८७० ई० से जिस जातीयता के भाव ने इस देश के लोकचित्त में एक अपूर्व उन्माद की सृष्टि की थी, उसे रामशकर की 'काञ्चि कावेरी' नाटक के भीतर यथार्थ अभिव्यक्ति मिली। यह नाटक नाट्य साहित्य के कठिन नियमो में पूरी तरह से आबद्ध है। ओडिया का प्रथम नाटक

कर बैठे। उत्कल साहित्य (मासिक पत्र जनवरी, १८९७) के प्रतिष्ठाता श्री विश्वनाथ ने साहित्य की इस धारा को अधिक गतिशील किया था। वास्तव में उत्कल साहित्य ही इस नवसाहित्य का जन्मदाता और पालनकर्ता है। ओडिशा के जनप्रिय उपन्यासकार एव व्यास कवि फकीरमोहन ने इस साहित्य का प्रतिनिधित्व किया था।

व्यास कवि फकीरमोहन सेनापति (१८४३-१९१८) तरुण वय मे (१८६९) ओडिया के रक्षा-समर के एक अद्वितीय सेनापति थे। आगे चलकर सन् १८९७ से वे इस साहित्य की यथार्थ प्राणप्रतिष्ठा में एक असाधारण शिल्पी बने। प्रारभ में जब कि वे बालेश्वर में शिक्षक थे, उन्होने ओडिया पाठ्य पुस्तको के अभाव को हटाने के लिये 'भारतवर्ष का इतिहास' (१८६९) जैसी कई पुस्तकें लिखी। लेकिन १८७१ से ९६ तक ओडिशा की विभिन्न रियासतो के शासन कार्य मे रहने के कारण उन्हें साहित्य-सेवा से वचित रहना पडा। पुत्र-शोक मे पत्नी के सन्तोष के लिये उन्होने सस्कृत रामायण का अनुवाद किया था। मूल महाभारत और भगवद्गीता भी उन्ही के द्वारा अनूदित हुई थी। पत्नी-वियोग में उन्होने जिन कई गीति-कविताओ की रचना की थी, वे 'पुष्पमाला' और 'उपहार' मे सगृहीत हैं। पुत्र तथा पत्नी-वियोग और शोक ने ओडिया साहित्य को समृद्ध करने के लिए उन्हें सहायता की है।

फकीरमोहन की वास्तविक साहित्य-रचना १८९७ ई० से आरभ हुई है। समालोचना प्रबन्ध, गीतिकविता और काव्य (बौद्धावतार) आदि मे हाथ डालने पर भी वे उपन्यास और क्षुद्र गल्पो के कारण ही अमर यश के भागी बने हैं। इनका साहित्य इनकी अपनी वशपरपरा तथा व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियो पर ही प्रतिष्ठित है। २५ वर्षो के दीर्घकाल तक शासक-जीवन बिताने के कारण उन्हें लोक-चरित्र के व्यापक अध्ययन का सुयोग मिला था। लोकचरित्र के निरीक्षण की यथार्थ अन्तर्दृष्टि, मनुष्य की दुर्बलताओ के लिये मन में असीम सवेदनशीलता, सर्वोपरि जीवन के अमृतरसास्वादन के लिये मन की तीव्र अभिलाषा ने सेनापति साहित्य को अत्यन्त उन्नत कला-सृष्टि में बदल दिया है।

फकीरमोहन के चारो उपन्यास (लछमा, छमाण आठगुण्ठ, मामु और प्रायश्चित्त), ओडिशा की राजनीतिक और सामाजिक भित्ति पर प्रतिष्ठित और उपन्यास-सृष्टि-सपद मे गरीयान् हैं। इन उपन्यासो मे हम दो सौ साल (१७२० से १९२०) के उत्कलीय सामाजिक जीवन की झाँकी का दर्शन करते हैं। इनमें मरहट्ठो के अपशासन और अत्याचार तथा ब्रिटिश युग की सामाजिक परिस्थिति का सुन्दर चित्राकन किया गया है। जीवन्त समाज ही इन उपन्यासो की पृष्ठभूमि है। अत इनके चरित्र अत्यन्त प्राणवत और मुग्धकर बन पडे हैं। मरहट्टा-अपशासन के निर्मम कशाघात से उत्कल की सामन्तवादी सभ्यता किस प्रकार रसातलगर्भ में पडी है, उसका मर्मन्तुद और हृदय-विदारक चित्र लछमा में दिया गया है। ब्रिटिश युग के प्रारम्भ मे इस देश के पुराने जमीदार अपना पारपरिक गौरव खो बैठे थे। कुछ ऐतिह्य हीन नये जमीदार किस प्रकार निर्लज्जतापूर्वक जनता का रक्त शोषण करने लगे थे, इसका एक विशद चित्र जमीदार रामचन्द्र मगराज के चरित्र में प्रस्फुटित हुआ है। इसके अतिरिक्त आधुनिक

शोषित हृदय सेनापति-साहित्य के इस प्राणकेन्द्र में प्रतिबिंबित तथा प्रतिध्वनित है। इस जाति के पोषण और शोषण के ऐसे चित्र अन्य किसी रचना में प्राणवत नही हो सके है।

हास्य और विद्रूप, चरित्र-चित्रण और भाषा, सेनापति साहित्य की एक-एक अभिनव सार्थक सृष्टि है। इनके उत्कल-भ्रमण (१८९२) मे जिस शुद्ध हास्यरस और विद्रूप की नीव पडी थी, आगे चलकर वही उनके उपन्यासो और छोटी कहानियो में सशक्त कौशल के साथ प्रतिष्ठित हुई है। इनके पहले पिटीपिटाई घरेलू भाषा और वातावरण साहित्य के प्रधान उपजीव्य उपादान थे। किन्तु फकीर मोहन उपेक्षित गाँव की सन्तान थे, जिन्होने अपने मुह की स्वाभाविक भाषा में ही साहित्य सौध का निर्माण किया। सेनापति-साहित्य के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ओडिया जाति ने इस देश की भाषा तथा मनुष्य को पहले-पहल ही देखा हो, मानो ओडिया ने सेनापति-साहित्य में पहले-पहल अपनी आत्म-सत्ता के आविष्कार की सुविधा पाई हो और इस साहित्य की चेतना से शून्य इस जाति का प्राण पहली बार प्रतिस्पन्दित हो उठा हो। सेनापति जी की भाति जाति तथा मनुष्य के आविष्कार का इतना विपुल गौरव और किसी ने नही अर्जित किया है। राधानाथ और मधुसूदन पाश्चात्य और प्राच्य सभ्यता के प्रतीक है लेकिन फकीरमोहन ओडिया प्राण के यथार्थ प्रतिनिधि है। राधानाथ की परिकल्पना जितनी महान् है उतनी ही विराट् है। इनके साहित्य का ललित सौन्दर्य जनता के लिये सपूर्ण रूप से दुरधिगम्य है। मधुसूदन को लोग शिक्षक के रूप में देख सकते है किंतु कवि के रूप में वे जनता के लिये अबोध्य है। परन्तु फकीरमोहन ने हमे यह माटी की सन्तान दी है इसीलिये वे इतने अपने और निकट के लगते है। यह अस्वीकार नही किया जा सकता है कि सेनापति के साहित्य की जनप्रियता इसी अभिमत पर प्रतिष्ठित है।

'उत्कल साहित्य' ने नवयुग की जिस सूचना के द्वारा कवियो को उद्बुद्ध किया था, वह नन्दकिशोर और गगाधर आदि कवियो से परिपुष्ट हुआ। श्री नन्दकिशोर बल (सन् १८७५-१९२८ ई०) ने गाव की धूलमाटी, हवापानी, श्वास-प्रश्वास को काव्य की सरल और तरल भाषा में प्रकाशित किया था। गाँवो के प्रवचनो, कहावतो और सगीत के द्वारा उन्होने काव्य में देहाती जीवन की प्रतिष्ठा नये ढग से की थी। अपने एकमात्र उपन्यास कनकलता में वे एक विप्लवी और समाज-सस्कारक के रूप में आये है। राजपूत जाति के बलिष्ठ आत्मत्याग को लक्ष्य कर उन्होने जिस तीव्र जातीयता से ओतप्रोत काव्य की रचना की है उसी ने उन्हें ओडिशा से सबधित अनेक जातीय कविताओ को लिखने की प्रेरणा दी है। ओडिया गीति काव्य के इतिहास मे मधुसूदन के बाद नन्दकिशोर का ही स्थान निर्देश किया जा सकता है। शिशुमनोरजन के साहित्य मे आपने अपूर्व दक्षता अर्जित की थी। उनकी कविताओ मे गाव की आनन्द-माधुरी तथा ग्राम-सौन्दर्य की अमलिन रूपविभा पाठक के हृदय मे अमिट छाप डालती है। श्री गगाधर मेहेर (सन् १८६२-१९२४ ई०) ने आधुनिक शिक्षा-दीक्षा से वचित होकर भी आधुनिक साहित्य के निर्माण में जो अपूर्व कविप्रतिभा दिखाई है, वह इस साहित्य में अद्वितीय और दुर्लभ है। उन्होने पहले मध्ययुगीन ओडिया साहित्य के आदर्श पर अपना कवि-जीवन शुरू किया था किन्तु आगे चलकर

दिये हैं। गोविन्दचन्द्र शूरदेव ने भी यात्राओं में संस्कार उपस्थित कर लोकचित्त में आनन्द एवं मार्जित रुचि पैदा करने की असामान्य साधना की है।

आलोच्य समय (१८९७-१९२०) में निबन्ध, समालोचना और गवेषणा की प्रगति बिलकुल सन्तोषजनक नहीं है। निबन्ध साहित्य को राधानाथ जी के सुयोग्य पुत्र श्री शशिभूषण राय का अवदान असीम है। पण्डित गोपीनाथ नन्द ने कई संस्कृत नाटकों तथा खण्ड काव्यों का ओडिया में अनुवाद किया और ओडिया भागवत, दाण्डी रामायण, खासकर सारला महाभारत की आलोचना में उन्होंने जिस सुतीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि, गभीर पाण्डित्य, बहुशास्त्र-दर्शिता और अगाध ज्ञान का परिचय दिया है, वह असाधारण तथा अपूर्व है। पाली, प्राकृत और संस्कृत भाषा का अध्ययन कर उन्होंने "ओडिया भाषातत्व" लिखा जो अपने आप में बेजोड़ है। आपने ओडिया अभिधान का संकलन करके भी विशेष यश कमाया है। नन्दजी ने ओडिआ कविता में संस्कृत गण नियम का अनुसरण किया था। पंडित मृत्युन्जय रथ के गवेषणात्मक निबन्ध, सारलादास की जीवनी का संग्रह और महाभारत की आलोचना से इस देश के आलोचकों को यथेष्ट सहायता मिली है। इनके अतिरिक्त ओडिया साहित्य के कवियों के जीवनीसंग्रह तथा उनके काव्यों के अनुशीलन में श्री श्याम सुन्दर राजगुरु ने जैसा नेतृत्व किया, इस साहित्य में आज भी अविस्मरणीय है।

उत्कल सम्मिलनी (१९०३) की प्रतिष्ठा वंगविच्छेद आन्दोलन (१९०५) और विहार ओडिशा प्रदेश के गठन (१९१२) आदि की घटनाओं ने बीसवीं सदी के प्रथम चरण के ओडिया शिक्षित युवकों में नवोत्साह और बलिष्ठ जातीय भाव का संचार किया था। उत्कल सम्मेलन के स्थापक श्री मधुसूदन दास इस नवजागरण के जन्मदाता हैं और उत्कल मणि गोपबन्धु दास इसके वास्तविक प्राण-प्रतिष्ठाता हैं। श्री गोपबन्धु दास ने अन्य सहकर्मियों की सहायता से सत्यवादी के वकुल-विद्यालय को केन्द्र बनाया जिसमें जातीय भावना का स्रोत बहाकर नूतन ज्ञानालोक का वितरण किया था और जो इस जाति के इतिहास में एकान्त अभिनव और विस्मयकर है। परंपरागत प्रणाली में केवल छात्रों को परीक्षा उत्तीर्ण कराने की नीति छोड़कर उनके मनुष्यत्व का ठीक-ठीक विकास कराना इस वन विद्यालय शिक्षा का चरम लक्ष्य था और इसकी पूर्ति के लिये सत्यवादी के कार्यकर्ताओं ने अपने स्वार्थों का कम त्याग नहीं किया। उन कर्म-प्रवण कार्यकर्त्ताओं के क्रिया-कलाप उनकी रचनाओं में भी प्रतिफलित हुए हैं। समाज-सुधार, देशभक्ति तथा नरनारायण सेवा यही तीनों उनके कार्य तथा साहित्य के आभिमुख्य थे। गोपबन्धु इन तीनों के प्राण-केन्द्र थे। नीलकण्ठ, गोदावरीश, कृपासिन्धु, लिंगराज और हरिहर उनके इसी मंत्र से दीक्षित हुए थे। इनके साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि ये सब के सब गोपबन्धु की चिन्ताधारा के जीवन्त परिप्रकाश ही हैं। हरिहरदास ने तो उसी दिन से जनसेवा को अपने जीवन का एकमात्र पथ चुन लिया। पण्डित लिंगराज यथार्थ पण्डित ही थे। संस्कृत के अनन्य ग्रन्थ रामायण का ओडिया में अनुवाद कर आप विपुल यश के अधिकारी बने हैं। कृपासिन्धु मिश्र ने ओडिशा इतिहास की रचना में जिस बलिष्ठ भित्ति की स्थापना की है, वह एकान्त अभिनव है। आपके

इस पुस्तक के प्रत्येक कविता को जिस तरह सार्थक सृष्टि में रूपायित किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

सत्यवादी चिन्ता धारा उपयुक्त अवसर पर उत्पन्न हुई थी। यह एक सामाजिक स्फुरण नही है। इस स्फुरण की ज्योति जितनी प्रकाशपूर्ण तथा अभिनव थी उसकी कार्यशक्ति भी उतनी ही व्यापक और वलिष्ठ थी। इसके स्रष्टाओ ने ससीम के भीतर जन्म लेकर जिस असीम का सकेत दिया है उसके लिए परवर्ती युग के युवचित्त में एक प्रलयाग्नि धधक उठी थी।

## आधुनिक ओड़िया साहित्य का तीसरा पर्व (१९२१–३६)

सन् १९२१ के प्रारभ में इडियन नेशनल काग्रेस ने महात्मा गान्धी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक असहयोग मन्त्र में दीक्षित होकर सारे भारत में जातीयता की जो आग जलाई थी, उससे उत्कलवरी नही रह सका था। इसी अभिनव मन्त्र में दीक्षित होकर श्री वाछानिधि महान्ति और श्री वीर किशोरदास आदि कई कवियो ने सरल तरल भाषा तथा सुमधुर सगीतात्मक कविताओ के द्वारा जिस नूतन अग्निमयी उत्तेजना का प्रवाह इस देश में प्रवाहित किया था, वह आज भी लोकचित्त में अकित है। गोपवन्धु जी के अथक परिश्रम से 'उत्कल सम्मिलिनी' सामयिक रूप से काग्रेस के साथ मिल गई थी। फलत उत्कल का जातीय भाव महाभारतीय भाव में वदल गया। सन् १९२१ के पहले और वाद की ओडिया जातीय कविताओ के निरीक्षण से मालूम पडता है कि उसमें क्रमश उत्कल और फिर भारत को मुख्य स्थान दिया गया है। भारत को विदेशी शासकों की लौह शृखला से मुक्त करने और स्वाधीन भारत की प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिये इस अहिंसा आन्दोलन न साहित्य निर्माण की दिशा में भी जिस आश्चर्यजनक उन्मादना की सृष्टि की थी, उसके सर्वश्रेष्ठ प्रतीक उत्कल के सत्यवादी वकुलवनविद्यालय के अधिनायक सर्वस्वत्यागी गोपवन्धु दास है। इसके पहले गोपवन्धु ने यथावसर अपनी विभिन्न चिन्ताओ के आश्रय से कई छोटी-छोटी कविताओ की रचना की थी जिनमें उत्कल के अव पतन तथा निपीडित जनता के प्रति गभीर सहानुभूति का स्पष्ट चित्रण हुआ था। सन् १९२३–२४ मे जब वे विहार के हजारी-वाग जेल में कारादण्ड भोग रहे थे, उसी समय उन्होंने "काराकविता", "वन्दीर आत्मकथा", "धर्मपद", "गोमहात्म्य" और ब्रह्मतत्त्व आदि पुस्तको की रचना की थी। उन पुस्तको में उनके व्यक्तिमानस के अनिन्द्य चित्र दिखाई पडते है। उग्र जातीय भाव, अत्याचारी विदेशी शासक के कुशासन के प्रति कठोर विद्रूप, देश के अव पतन के प्रति गभीर सहानुभूति, देश और जाति की कल्याण-कामना में आत्मोत्सर्ग की मनोवृत्ति—ये सभी उन रचनाओ में अपने प्रकाश से उद्दीप्त हो उठे है। 'धर्मपद' गोपवन्धु के कवि-मानस की एक अमर सन्तान है। इसकी निर्जीव कहानी प्रतिभा के स्पर्श से एक नये आलोक में उद्भासित हो उठी है। ओडिया लोगो के मन की जडता दूर करना, कूपमण्डूकपना छोड समूचे भारत तथा विश्व के प्रति इनकी दृष्टि को विकसित करना, ओड़ियाओ के हृदय में प्रलय की ज्वाला प्रज्ज्वलित करना और उन्हें नये जीवन से भर देना ही गोप-

का प्रकाशन भी किया था। इसीलिए साधारणतया लोग इनको सवुजकवि और इनके साहित्य को 'सवुज साहित्य' कहते हैं। इनमें से केवल दो व्यक्ति कालिन्दी और वैकुण्ठ, १९३० से आज तक अवाध रूप से साहित्य समृद्धि करते आ रहे हैं।

यदि सवुज साहित्य के नाटक, गीति-कविता, उपन्यास, क्षुद्र गल्प, समालोचना-गवेषणा, भ्रमण साहित्य आदि प्रत्येक विभाग के साहित्यिक गौरव का अनुशीलन किया जाय तो उसमें एक युवकोचित रचना-शक्ति और अमेय आत्म-प्रकाश की अभिलाषा दिखाई पडती है। 'समर ओ साहित्य', 'वसन्तगाथा' और पद्मपाखुडा पर श्री अन्नदाशकर तथा 'मथुरामंगल' पर श्री कालिन्दी चरण की समालोचना में आलोचना की दृष्टि भगी, विषय-आहरण और पर्यवेक्षण की चमत्कारिता—खासकर मथुरामगल की आलोचना की गभीर गवेषणात्मक प्रवृत्ति—वास्तव में प्रशसनीय है। वैकुण्ठनाथ के एकमात्र नाटक "मुक्तिपथे" में नारी-स्वतत्रता की जैत्र-पताका फहराई गई है। कालिन्दीचरण की लघु कथाओ में विषयवस्तु के निर्वाचन तथा परिवेषण की नूतनता, शैली (आगिक विभाग) की चमत्कारिता, विषय वस्तु की स्वाभाविकता आदि विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। क्षुद्र गल्पो का रूपात्मक और तत्त्वात्मक (आगिक और आत्मिक) अध्ययन करते समय फकीरमोहन के बाद कालिन्दीचरण जी की कहानियो पर ही दृष्टि जमती है। अन्नदाशकर की 'विलात चिठी' तथा 'वासन्ती' उपन्यास एक अभिनव प्रयास का अमृतमय फल है। नये लेखको और लेखिकाओ के सम्मिलित प्रयास पर प्रतिष्ठित यह उपन्यास मानो ओडिया उपन्यासो में एक नवीन पदक्षेप है। सामाजिक कुसस्कारों के विरोध की जययात्रा ही उस उपन्यास का लक्ष्य नही है वल्कि इन्ही सामाजिक कुसस्कारो के आधार पर उसकी रचना हुई है। वह भी कोई वहुत वडी सामाजिक समस्या नहीं है। फिर भी इस दुर्वल सामाजिक समस्या को मूलाधार मानकर इसमें चरित्र-चित्रण का जो मनोहर चित्रपट अकित किया गया है, वह वासन्ती के पहले के ओडिया उपन्यासो में देखने को नही मिलता। वासन्ती युग के उपन्यासो में उपन्यासकारो की दृष्टि घटना पर रहती थी। परस्पर विरुद्धात्मक घटनाओ के घात-प्रतिघात से किस प्रकार पात्रो का मानसिक द्वन्द्व विचित्र गति से धावित होता है, पहले के उपन्यासकारो ने जैसे इसकी ओर दृष्टि ही नही दी थी। वासन्ती के लेखक और लेखिकाएँ इस गौरव के प्रथम अधिकारी हैं।

सवुज साहित्य की गीति कविताएँ शैली और विषय (आगिक तथा आत्मिक रूप विभव) के नाते पाठको की दृष्टि आकृष्ट करती हैं। अन्नदाशंकर की कुछ कविताओ की पर्यालोचना करने से इन कविताओ पर एक निश्चित धारणा वनाई जा सकती है। साधारण पाठक इन कविताओ में प्रतिष्ठित सामाजिक सस्था के प्रति विद्रोह की घोषणा, पार्थिव जगत् के साधारण मनुष्य से अपने को दूर रख सुदूर परी-राज्य में विचरण करने की मनोवृत्ति का पोषण, साधारण प्रेम की अपेक्षा एक ज्ञानमय सौन्दर्यमूलक प्रेम पर निष्ठा, ऐकान्तिक प्रकाश, साधारण विषय और भाषा को असाधारण रूप से विभिन्न छदो में प्रयोग, एक स्वप्नमय जगत में विचरण करने की अनन्त पिपासा, छन्दमय भाषा को द्रुतगति छद रूप देने के प्रयास में ओडिया भाषा की विशेषता का विनाश

उसी प्रकार अत्यन्त मनोहर भाषा में निर्भीकतापूर्वक प्रकाशित किया है। यह विचार-बोध उनका अपना ही है। आगे चल कर इस विचार-बोध ने अनेक लेखको को योग्य मानसिक खाद्य पहुँचाया है। इन सबके बाद गीति-कविताएँ ही मानसिंह की कवि-प्रतिभा के विशिष्ट अवदान हैं। जातीयता-बोध और प्रेम उनकी अधिकाश कविताओ के मूलपिण्ड हैं। यह जातीयता भाव नूतन छन्द-योजना के महनीय परिवेश के भीतर प्रतिष्ठित है। प्रेममूलक कविताओ में पार्थिव जगत् के नरनारियो के प्रेम ने ही मुख्य स्थान पाया है। इस प्रेम में विराट् दर्शन तो अवश्य है परन्तु उच्चादर्श नही है। किंतु उस साधारण प्रेम की वाणी चलचचल छदो के ताल में नृत्य-मुखर हो उठी है। मानसिंह जी का प्रथम वाणी-अवदान "धूप" ही प्रेममूलक ओडिया गीति कविता-राज्य में रस-वाणी का एक सार्थक नैवेद्य है। "साधवझिअ" कविता में प्रेम की जो अभिनव प्रकाश-भगी नूतन छन्द के नूपुर निक्वण के साथ मुखरित हो उठी थी, वही प्रेम का वैचित्र्य "पुष्पिता" नाटिका, "शुभदृष्टि" कविता, "पुजारिणी" गीति-नाट्य और विशेष रूप से "कोणार्कर लास्य लीला" नामक कविता में चरम अवस्था को पहुँच गया है। इन रचनाओ की सृष्टि-परिकल्पना, सगीत तथा छन्द-सयोजना, रस और रूप के प्रकाश की अभिनव व्यजना, इस साहित्य में सपूर्ण नूतन है। कवि-कल्पना की महनीय शक्ति से कोणार्क की जड-निर्जीव पाषाण मूर्तियाँ नृत्यचचला, भावविह्वला तथा प्राणपरिपूर्ण हो उठी हैं। कला-प्राण ओडिया जाति का शिल्पचूडामणि कोणार्क मन्दिर, सत्यवादी मजुबकुलवन के अधिदेवता साक्षीगोपाल, नौयात्रा-प्रिय ओडिया वणिक् की अपूर्व जीवन-कहानी तथा पुराण की कथावस्तुओ के भीतर मानसिंह की कवि-प्रतिभा का अमर सृष्टि-सौन्दर्य विकसित हुआ है। इन स्थानो में अतीत ही अनिन्द्य विभा और नूतन रूपमाला से, उद्भासित हो उठा है। जेमा, कमलायन, बुद्ध आदि रचनाओ में हम नये छन्दो के सहारे काव्यो का एक एक आगिक प्रयोग देख पाते हैं।

इस समय (१९२०–३६) के भीतर नाट्यकार अश्विनीकुमार घोष, ग्राम (पल्ली) कवि सच्चिदानन्द राउतराय, छन्दरसिक राधामोहन गडनायक, निबन्धकार कुलमणि दास, वैष्णव चरणदास, निकुजकिशोर दास, उपेन्द्रकिशोर दास आदि कवियो और लेखको की रचनात्मक प्रतिभा का उन्मेष और विकास हुआ था। 'वारुणी' (१९२६) पत्र ने अपनी छोटी जिन्दगी में ही ठेठ ओडिया भाषा तथा ओडिया चेतना का परिचय देने में सफलता पाई थी। गोदावरीश के बाद नाट्यकार अश्विनीकुमार घोष ने विभिन्न पौराणिक और किंवदन्ती विषयमूलक नाटको की रचना कर इस जाति के प्राण में जो नाट्य रस उडेला, वह अविस्मरणीय है। नाटक के आगिक रूप-विभव तथा आत्मिक रस-सपद की रक्षा करते हुए उन्होने जिन कई नाटको में पारदर्शिता दिखाई है, उनमें से कोणार्क भी एक है। सच्चिदानन्द का 'पाथेय' और 'पूर्णिमा' सवुज साहित्य के आदर्श पर आधारित है। 'पल्ली श्री' में उनकी सार्थक कवि-प्रतिभा का चरम निदर्शन मिलता है। उस पुस्तक की (पहिल रज) कविता में ओडिया जीवन का जो निर्दोष चित्र खीचा गया है, वह काव्यिक प्रकाश भगी, सुमधुर अलकार-सयोजना और वास्तविक जीवन की कहानी के कारण अत्यन्त हृदयस्पर्शी हुआ है। इस समय उनकी कई एक हास्यरसात्मक कविताएँ भी निकली हैं।

यह साहित्य अनेक प्रसिद्ध और और अप्रसिद्ध लेखको की वरणीय रचनाओ से परिपूर्ण
कृष्णचन्द्र कर, गोकुलानन्द रायचूडामणि, सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी, मोहनदास, नवकृष्ण चौ
मोहन मिश्र, अनन्त पटनायक और सच्चिदानन्द राउतराय जैसे अनेक लेखको ने इस नूत
धारा में दीक्षित होकर साहित्य को समृद्ध बनाया है। इनमें से शेषोक्त तीन व्यक्ति इ
के यथार्थ कर्णधार हैं। अनन्त पटनायक अपनी अनेक कविताओ द्वारा मार्क्सीय चिन
परिप्रचार के साथ-साथ साहित्य की गौरव-प्रतिष्ठा में यत्नशील बने। आजकल की न
ताओ से बराबरी करने के लिये वे जिस प्रकार की दुर्बोध्य भाषा का अनुसरण कर रहे ह
कहाँ तक चिन्तन गौरव के अधिकारी बन सकेंगे, यह एक विचारणीय विषय है। स
की विप्लवी मनोवृत्ति "चित्रग्रीव" उपन्यास तथा "अभियान" कविता पुस्तक से सूचित
ये कविताएँ पूर्ण रूप से प्रचारमूलक हैं। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि इनका चिर
नही है। समय के विशाल प्रागण में इन कविताओ ने सामयिक मधुर नूपुर-ध्वनि सुन
भी सच्चिदानन्द की रचनात्मक प्रतिभा की सशक्त आधारशिला के रूप में इन्हें अब स्व
लेना चाहिए। "बाजीराउत" कविता में जो समर्थ व्यक्तिपूजा का अर्घ्य दिया गया है उ
विप्लवी चिन्ताधारा यथार्थ साहित्यिक रूप-विभव से महीयान हो उठी है। इनकी अमृत
बल पर ही ढेंकानाल के मामूली खेवैये का बेटा निष्पेषित, शोषित समाज का प्रतिनिधि
समर्थ हो सका है। सामाजिक कुसस्कारो, अन्यायो और अत्याचारो को केन्द्रित कर स
ने साधारण उत्कलीय जीवन की अभिव्यक्ति के लिये जो कई एक कहानियाँ
मार्क्सीय चिन्ताधारा की राजनीतिक पोशाक फेंक कर एक अपूर्व शिल्पगौरव से
हुई हैं।

१९३६ से गीति-कविता, गल्प, उपन्यास, नाटक और आलोचना—प्रत्येक
आगिक और आत्मिक रूप-विभव अपूर्व परिवर्तनो से होकर गुजरा है। परपरित शिल्
से अनुप्राणित होकर सर्वश्री मानसिंह, गडनायक तथा कुजविहारी दाश आदि कवि
सगीतमय भाषा तथा छन्द-सौन्दर्य की प्रतिष्ठा में यत्नवान् बने। लेकिन इसी समय
दीख पडता है कि गीति-कविता अपना सारा सौन्दर्य खो बैठी है और इसके स्थान पर ग
अधिकार जमा बैठा था। प्राथमिक अवस्था में गीति-कविता के अपने सगीत धर्म व
हद तक सरक्षण हुआ था और आगे चलकर वह भी तिरोहित हो गया। अत गद्यमर
गद्यात्मक रूप विभव ही गद्य कविता के श्रेष्ठ आगिक रूप के तौर पर स्वीकृत हुआ था।
कविता के वाह्य रूप में गद्य रूपान्तर ही एकमात्र परिवर्तन नही बल्कि निर्दिष्ट भावद
ने भी पूरी तरह से नया वेश ग्रहण किया था। परपरित शिल्प-सौन्दर्य के द्योतक अलका
भावप्रकाशक शब्द आदि इस समय छोड दिये गये और उनकी जगह एक ऐसी भाषा व
देश के लोगो की जीवन-यात्रा के मार्ग मे बिल्कुल नई थी। जीवन की परिधि तथ
परिसर बढ जाने के कारण कविता में विदेशी अलकार, उपमान यहा तक कि विदेशी शब
किसी बाधा के अपना आसन जमाने लगे। ये लेखकगण इस परिवर्तन से भी सतुष्ट न

उसे प्रतिक्षण अनुकूल या प्रतिकूल घटना-सघातों का सामना करना पडता है। जब अनेक समस्याओ के कारण सामाजिक जीवन ध्वस्त अथवा खण्ड विखण्ड हो जाता है, सामाजिक जीवन का मूल्यबोध तीव्रतर परिवर्तनो के भीतर से होकर गुजरता है, व्यक्ति की आत्मसचेतनता आत्म-केन्द्रित प्रतिष्ठा में ही पर्यवसित होने लगती है। राजनीतिक घटपरिवर्तन पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन-धारा पर निष्ठुर आक्रमण कर उसके स्वाभाविक प्रवाह में अनावश्यक परिवर्तन लाता है, उस समय मनुष्य मन की प्राकृतिक क्रिया में प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है। दुनिया को और दुनिया के मनुष्य मन की इस प्रतिक्रिया को हम देखते हुए भी नही देखते। लेकिन निपुण कला-शिल्पी मनुष्य-मन की इस प्रतिक्रिया पर अन्तर्दृष्टि डालता है और अपनी अपूर्व प्रतिभा से उसे अविस्मरणीय रस-रूप देता है। समाज की मिट्टी और हवा से मनुष्य को लेकर उसके विचित्र मन के घात-प्रतिघातो तथा हृदय के सैकडो विचित्र स्पन्दनो की सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्यालोचना करना आलोच्य युग के गल्प, उपन्यास और नाटक का श्रेष्ठ आत्मिक-विभव है। अचेतन मन की सुप्त कामनाएँ, परिस्थिति तथा पात्र के सघात से नये नये रूप धारण करती है। उसी नवीन रूप-वैचित्र्य का खोजी निपुण कलाकार किस प्रकार उस अवचेतन मन को नये सिरे से उपस्थित करता है—यही इस समय के साहित्य का एक विशिष्ट रूप है।

## १९४७-७ का ओड़िया साहित्य

१९३६–४७ के भीतर ऐसे अनेक लेखक मिलते है जो अब भी लेखनी चला रहे है। अत इस काल-विभाग का अध्ययन करते समय इन दोनो समयो के लेखको पर ध्यान देना चाहिए। इसीलिए १९३६–४७ के साहित्य-विकास में उनकी स्वतत्र आलोचना नही की गई है। इस प्रसग में एक बात याद रखनी चाहिए कि देश के सामाजिक विशेषत राजनीतिक वातावरण के साथ ही साथ लोगो के मन में नूतन जीवन-बोध की जाग्रत चेतना अनुभूत हुई है। लोगो के दृष्टिकोण का परिसर बढ गया है तथा देश में राजनीतिक 'वाद' आ पहुँचे है। इसके अतिरिक्त अनेक साहित्यिक आदर्श धाराएँ भी आई है। नूतन जीवन-बोध की नई अनुभूति और विदेशी साहित्य के सपर्क से प्रसूत विविध आगिक और आत्मिक रूप-विभव, दोनो ने पहले १९३६ से ४७ तक के भीतर निर्मित नव साहित्य रचना का जो सकेत दिया था वही १९४७ से ५७ के भीतर बलिष्ठ रूप में ज्योतित है। इसलिए इन दोनो युगो के साहित्य के स्वर में कोई विशेष पार्थक्य नही दिखाई पडता। इनमें केवल परिमाण और परिणति के ही भेद परिलक्षित होते है, वैसे तो रूप या स्वरगत प्रभेद इनमें जैसे है ही नही।

पिछले दस-बीस वर्ष के ओडिया साहित्य की समीक्षा करते समय समग्र साहित्य की गति, प्रकृति अथवा आभिमुख्य का एक परिचय देना जितना आसान और निरापद है, प्रत्येक लेखक की सारी रचनाओ पर कोई स्थिर अभ्रान्त अभिमत प्रकट करना उतना ही कठिन और प्रमादो से खाली नही है। यद्यपि इन बीस वर्षों के भीतर दिखाई पडने वाली साहित्य की परिमाणगत विशालता और विभिन्नता, आगिक और आत्मिक रससपद की विचित्रता तथा

यद्यपि इनकी रचनाएँ अभी सन्देह के क्षेत्र में है तथापि इसे कोई भी अस्वीकार नही कर सकता कि ये ही जाति के भविष्य की आशा के उज्ज्वल आलोक के सदृश है।

(घ) एक वर्ग के लेखक और है जिनकी साहित्य-साधना की आयु प्राय दस साल या उससे कम की है। साधनाकालीन विशिष्ट गौरव इन्हें नही प्राप्त है, फिर भी इन्होने बहुत कम समय में अपनी रचनात्मक प्रतिभा तथा निरवच्छिन्न अध्यवसाय के बल पर जो साहित्यिक यश अर्जित किया है, वह वास्तव में सराहनीय है। समय की दृष्टि से ये (ग) श्रेणी के अन्तर्गत गिने जाने योग्य होने पर भी इनकी गिनती (ख) श्रेणी में करना उचित है। एक उदाहरण लीजिये। श्री सुरेन्द्र महान्ति की साहित्य सेवा दस साल से अधिक की नही है। लेकिन १९३६ से लिखते आनेवाले श्री गोपीनाथ महान्ति अथवा श्री राजकिशोर राय की कहानियो से सुरेन्द्र महान्ति की कहानियो की टेकनीक तथा आत्मिक-सौन्दर्य की तुलनात्मक पर्यालोचना करने पर हम शेषोक्त लेखक की कहानियो से विशेष मुग्ध होते है। केवल कहानी ही नही समालोचना, नाटक, एकांकिक, उपन्यास आदि क्षेत्रो में भी थोडे ही समय में कृतित्व अर्जित करनेवाले कई लेखक देखने में आते है। ऐसे लेखको की सख्या अवश्य ही कम है किंतु इनकी साधना का आदि भाग जैसा उज्ज्वल है, भविष्य भी वैसा ही सन्देह-शून्य है।

समय के प्रकोष्ठ के भीतर लेखको को चिह्नित कर उनकी रचनाओ मे अन्तर्निहित सौन्दर्य का अवधारण करना यद्यपि अवैज्ञानिक समालोचना है, तथापि प्रतिभा का विकास, पारिपार्श्विक परिस्थिति और समय के द्वारा नियन्त्रित होने के कारण, इस प्रकार के विभागीकरण में हम विशेष अयथार्थता नही देखते। लेकिन वर्तमान क्षेत्र मे समय के अनुसार लेखको के इन विभागो का प्रकृत लक्ष्य आधुनिक ओडिया साहित्य के भविष्य पर कुछ आलोकपात करना ही है। भारत के अन्य प्रान्तीय साहित्य के साथ साथ गति करनेवाले ओडिया साहित्य के आगामी लेखको के विषय में ज्योतिषी की भविष्यवाणी की तरह कोई नि सन्देह अभिमत प्राकाश करना अप्रासगिक तथा असगत है। परन्तु यह साहित्य भविष्य में उन्नति की ओर ही गति करेगा, ऐसा अनुमान तो सत्य ही है। यह हम इन चार विभागो से ही जान सकते है। यही कारण है कि इन चार विभागो में से केवल पहले भाग को छोडकर शेष तीन विभागो, यहा तक कि दूसरे विभाग के लेखको की प्रतिभा आज भी घटी नही है। अन्तिम दो विभागो के लेखको के साहित्यिक जीवन का तो श्रीगणेश ही हो रहा है।

उन्नीसवी सदी के प्रथम ७० सालो का समय ओडिया गण जीवन के लिये एक घनघोर अन्धकार-युग है। यह उस समय शासको के अपशासन में शोषित और निष्पेषित था। इस शोषण तथा निष्पेषण की तीव्रता और व्यापकता असीम थी, क्योकि उस समय इस शोषण के विरुद्ध सिर उठाने की शिक्षा या सामर्थ्य इस जाति में थी ही नही। सन् १८६५–६६ के नअंक दुर्भिक्ष और खासकर १८६९–७० के भाषा-उच्छेद आन्दोलन ने इस जाति के जीवन मे सामयिक चित्तविप्लव पैदा किया था। इस विप्लवात्मक मनोवृत्ति ने पाठ्यपुस्तक की रचना तथा आधुनिक शिक्षा और साहित्य की वृद्धि की दिशा में बडी सहायता की थी। यह

आज का लेखक अर्थनीतिक अव्यवस्था और सामाजिक परिवर्तन का प्रत्यक्ष शिकार बन गया है ।

इस यान्त्रिक युग के बहुविध वैज्ञानिक आविष्कारो ने ससार का नक्शा बहुत दिनो से बदल दिया है। लेकिन ओडिशा पर इसका प्रभाव केवल १९४० ई० से दिखाई देता है। १९४० ई० के बाद से विभिन्न राजनीतिक मतवादो ने, तथा साहित्यिक मानदण्ड ने इस देश के शिक्षित वर्ग के मन में एक नवीन जीवन जिज्ञासा तथा जीवनादर्श की गभीर रेखा खीच दी है। जीवन के छोटे दायरे के भीतर रहने पर भी लेखक देश के वृहत्तर परिवर्त्तन तथा सारी पृथ्वी की चिन्ता, आदर्श तथा उद्‌भावनो से अपने को दूर नही रख सकता। इसलिए वह एक ही स्थान में रहकर सारे देश तथा पृथ्वी के साथ सपर्क बनाये रख सकता है। आज के साहित्य में जो हाहाकार, दु ख, दैन्य तथा शोषण स्थान पा चुके है, वह दुनिया की चिन्ता और साहित्यादर्श के द्वारा प्रभावित है ।

ओडिया साहित्य की अभिवृद्धि के लिये पिछले दस सालो के भीतर कई अनुकूल वातावरण भी पैदा हो गये है। स्वतन्त्र 'उत्कल विश्वविद्यालय' के स्थापन (१९४४ ई०) के कारण शिक्षित वर्ग को विकास का मौका मिला है। भारतीय साहित्य अकादमी साहित्य के प्रसार के लिए सहायता दे रही है। इधर उत्कल विश्वविद्यालय भी इस दिशा में काफी अर्थ व्यय करता है। इसके अतिरिक्त देश के कई ख्यातनामा साहित्यिक पत्र-लेखको को प्रोत्साहित करने में लगे हुए है। इनमें से 'झकार' पत्रिका अग्रगण्य है। इस पत्रिका का कलेवर ओडिशा के अधिकाश लेखको के उन्नत लेखो से परिपुष्ट रहता है। इस पत्रिका के इतने उन्नत स्तर को पहुँचने का सारा श्रेय ओडिशा के एक लब्ध प्रतिष्ठ ऐतिहासिक तथा साहित्यिक डाक्टर श्री हरेकृष्ण जी महताब को है जिनके सदुद्यम से इसका प्रकाशन सभव हुआ है।

डाक्टर महताब जी में अपूर्व और विस्मयकर सगठनशक्ति है। झकार और प्रजातन्त्र प्रचार समिति का 'विपुव मिलन' इस शक्ति के मूर्त्तिमन्त प्रतीक है। 'विपुव मिलन' इस समिति का वार्षिक साहित्यिक अनुष्ठान है और प्रति वर्ष वैशाख सक्रान्ति के दिन अनुष्ठित होता है। इसमें देश के भिन्न भिन्न स्थानो से विभिन्न मतवादी साहित्यिको का मिलन होता है, साहित्यिक आलोचनाएँ होती है। इसमें सदेह नही कि इससे लेखको के मन में साहित्य निर्माण के लिए गभीर अनुराग और नव आशा-उत्साह का सचार होता है।

साहित्य की रचनात्मक प्रगति के अतिरिक्त साहित्य समालोचना तथा गवेषणा में भी पिछले दस सालो के भीतर सन्तोषजनक उन्नति हुई है। इस दिशा में साहित्य के अध्यापक लोग जिस विचारधारा की नीव डाल रहे है, आशा है कि वह परवर्ती पीढी के लिये काफी सहायक सिद्ध होगी। ओडिया भाषा और ध्वनितत्त्व, ओडिया लिपि का क्रम विकास, ओडिशा में बौद्ध-धर्म, ओडिया पल्ली गीत तथा कहानियाँ—ऐसे कई विषयों में जो मौलिक गवेषणा की गई है, वह अत्यन्त सराहनीय है। आदि युग से लेकर आधुनिक युग तक के साहित्य की विभिन्न दिशाओ में जो गभीर और सुचिंतित आलोचनाएँ की जा रही है, उससे समालोचको का उन्नत रुचिबोध,

# भारतीय संस्कृति को उत्कल की देन

## पं० नीलकण्ठ दाश

भारत के अन्य प्रातवासियो में से चाहे बहुतो को यह न ज्ञात हो कि यहाँ उत्कल अथवा ओडिशा नामक कोई प्रात है किंतु प्रसिद्ध तीर्थ होने के कारण जगन्नाथ धाम का ज्ञान प्राय सब को है। हिंदू धर्म और व्यवस्था पर आस्था रखनेवाले लाखो यात्री प्रतिवर्ष भारत के कोने-कोने से यहाँ आते है। उत्तरी और पश्चिमी प्रदेशो के पैदल तीर्थयात्री भी यथावसर ओडिशा की रियासतो से होकर गाते-बजाते हुए यात्रा करते देखे जाते है। अब तो ऐसे यात्रियो की सख्या कम हो गई है, किंतु रेलगाडी चलने के पूर्व पैदल यात्रा की ही प्रथा थी। उस समय उनके गीतो में यह सुना जाता था—

बौद्ध-रूपे बैठ रहे समुद्र किनारे,
साधु माँगे दर्शन महाप्रसाद।

श्री जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए आये हुए यात्रियो में ओडिया लोग पडो के आत्मीय अथवा निजी व्यक्ति होते है, आसामी और बगाली उनके नजदीकी होते है और अन्य यात्री अतिथि-स्वरूप होते है। अपने चाल-चलन और यात्री-सेवा में पडे पहले अत्यत उदार, विनीत और चिरस्मरणीय होते थे। सभव है, अब भी परपरानुसार उनमें ये गुण पाये जाते हो। यात्रा में आये हुए सभी यात्री पुरी के इन्ही पडो के अतिथि होते, नि शुल्क भोजन और स्थान पाते तथा बदले में वे श्री जगन्नाथ जी को 'भोग' या 'आटिका' चढाते समय अपनी सामर्थ्य के अनुसार पडो को जो कुछ भी दे देते, वे उसी से सतोष कर लेते थे। प्राय देखा गया है कि यात्रीगण महीनो इसी प्रकार पुरी में रहने के पश्चात् केवल आठ आने 'आटिका' चढाकर विदा ले लेते है और बहुत से यात्री तो इस तरह का आतिथ्य पाने के बाद अपना राहखर्च भी उन्ही से उधार लेकर चल देते है।

परन्तु इस अतिथि-सत्कार में अब एक स्वतत्र नीति बरती जाती है। वह यह कि ओडिशा के यात्री जब पुरी आते है तो घरेलू होने के नाते पडे उनके रहने और खाने की कोई व्यवस्था नही करते है। पडोसी आसाम और बगाल से यदि कोई यात्री आता है तो उन्हें एक दिन के लिए स्थान और भोजन की सुविधा दी जाती है। लेकिन भारत के अन्य भागो से आये हुए यात्री की उपरोक्त आवश्यकताएँ इच्छानुसार पूरी की जाती है।

ऐसी विराट्, विशाल और उदार सेवा-पद्धति और भी कही है, ऐसा देखने-सुनने में नही आता। इस रीति से भारत को ओडिशा का जो दान है, वह वर्णन करने की बात नही। इस

का मत है कि इन व्यापारियो का प्रभाव, उन देशो की वेश-भूषा और सामाजिक रीति-नीति में आज भी देखने को मिल जाता है।

ओडिशा के शैलोद्‌भव राजाओ ने इन व्यापारियो के पश्चात् पूर्वी द्वीपसमूहो में अपना विशाल राज्य स्थापित किया था। यह प्राय सातवी-आठवी शताब्दी की बात है। उस समय से प्राय चार सौ वर्षों तक यह साम्राज्य वैसे ही बना रहा। आज भी सिंहल, ब्रह्मा तथा पूर्वी द्वीपो में उस काल के भारतीय व्यापार और राजत्व के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है। अब भी ब्रह्म देश और पूर्वी द्वीपो में विलग या कलिंग नामक जाति मिलती है। सिंहल में तेरहवी शताब्दी तक यह नियम था कि वहाँ के राजा यदि पुत्रहीन होते और उनकी इच्छा गोद लेने की होती तो वे सिर्फ कलिंग राजवश के राजकुमार को ही गोद लेते थे।

ऐसी बहुत सी सूचनाएँ मिलने पर भी सबधित सामग्री को खोज निकालने तथा सब कुछ स्पष्ट रूप से समझा देने का अवकाश यहाँ नही है। यहाँ केवल श्री जगन्नाथ की कथा कही जायगी। यही भारतीय सस्कृति को उत्कल का महादान है।

श्री जगन्नाथ का दूसरा नाम पुरुषोत्तम है। इस नाम से वे सारे भारत मे परिचित है। इन्ही पुरुषोत्तम की कथा को जरा सूक्ष्मता से विचारें तो लाभदायक निष्कर्ष पर पहुँचने में सरलता होगी। पुरुष की कहानी भारत में अत्यत प्राचीन काल से प्रचलित है। वेद के मत्रो में इसका प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद का पुरुषसूक्त बहुतो को गप्प मालूम पडेगा। वहाँ पुरुष शब्द अवश्य ही थोडे विशेष अर्थ में व्यवहृत हुआ मालूम पडता है। यहाँ पुरुष का अर्थ मानव या देहधारी मनुष्य हो सकता है, बल्कि शरीर पर ही यहाँ विशेष जोर दिया गया है।

पशु के मास को काट कर यज्ञ जैसा कर्म यहाँ विश्व पुरुष को काट कर सपादित किया गया है और उस यज्ञ के पशु पुरुष से ब्राह्मण, क्षत्रिय से लेकर पशु-पक्षी, यहाँ तक कि चन्द्र-सूर्य के उत्पन्न होने की बात कही गई है। बाद में वेद के दर्शन की कल्पना में पुरुष का जो आध्यात्मिक सकेत मिलता है, वह यहाँ है या नही, ठीक-ठीक नही कहा जा सकता, शायद नही है।

साख्यदर्शन की यह पुरुष-कथा अपने अर्थ में स्वतत्र है। यह अध्यात्म है और यह कितना प्राचीन है, कहा नही जा सकता, तो भी वेद तथा उपनिषद् में लिखा है—

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया,
समान वृक्ष परिषस्वजाते।

अर्थात "दो समान पक्षी एक दूसरे को सखा समझकर एक ही वृक्ष पर रहते है।" किन्तु अर्थ में व्यक्ति का सकेत जीव और आत्मा के प्रति है और उस व्यक्ति में विश्वात्मा और परमात्मा का आश्रय है। असल में, यहाँ इन्ही दो बातो पर ध्यान दिया गया है। आगे चलकर जो पुरुषोत्तम भाव पैदा हुआ वह यही परमात्मा है। जीव ही पुरुष रूप में प्रकट हुआ है।

साख्यदर्शन के दार्शनिक भाव में जीव को पुरुष और निर्जीव को प्रकृति के रूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। जैन दर्शन में पुरुष प्रकृति के मूलतत्त्व के रूप में प्रकाशित

कि इसका आदि नाम वासुदेव धर्म है। वैयाकरण पाणिनि के समय में यह एक प्रचलित धर्म था। ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी के शिलालेखो से भी इस विषय में निर्दिष्ट सकेत मिलते हैं।

वासुदेव सर्वमिति, स महात्मा सुदुर्लभ ।

अर्थात् "वासुदेव सब कुछ है, यो समझनेवाला महापुरुष अत्यत दुर्लभ है।" यह वासुदेव भाव भक्तो द्वारा कल्पित और प्रतिष्ठित ईश्वर के अवतार भाव से निकला था। अनुमान है कि यह साख्य या योग-दर्शन काल के पश्चात् ही प्रकाशित हुआ होगा। बहुत सभव है कि यह वासुदेव विष्णु या यादव कुल के कृष्ण ही हो। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के रचनाकाल में कृष्ण, विष्णु, ईश्वर और पुरुषोत्तम सब एक हो गये थे। गीता के पन्द्रहवें अध्याय में पुरुषोत्तम योग है। किन्तु साख्य के पुरुष या योग दर्शन के प्रधान पुरुष गीता के पुरुषोत्तम से बिलकुल नई व्यवस्था में विवेचित हुए हैं। यहाँ इस व्याख्या की आवश्यकता नही है, किन्तु उसमें अवश्य ही विश्वात्मा के साथ जीवात्मा का सपर्क हुआ है और दोनो एक हुए हैं। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्री जगन्नाथ की भूमि में जो पुरुषोत्तम उस समय लोगो में उपास्य रूप में प्रतिष्ठित थे वे सभी अवतारो के अवतार कृष्ण ही हैं। इस सबध में गीता के निम्न श्लोकाश पर ध्यान देना आवश्यक है—

अतोऽह लोके वेदे च, प्रथित पुरुषोत्तम ।

अर्थात् इसलिए मैं वेद और उपासक लोगो में पुरुषोत्तम नाम से प्रतिष्ठित हूँ। यहाँ लोगों में प्रतिष्ठित पुरुषोत्तम नामक किसी उपास्य देव के प्रति स्पष्ट लक्ष्य किया गया है। यह अवश्य ही बहुत दिनो पहले की बात है। अब जिस रूप में गीता है, उसमें पुरुषोत्तम कही न कही अवश्य हैं।

पहली बात यह है कि महाभारत का पहले का नाम जय था। उसके बाद उसका नाम भारत पडा। तत्पश्चात् महाभारत नाम से वह सपादित और प्रकाशित हुआ। पहले से हो या न हो, महाभारत रूप में सपादित होते समय उस ग्रन्थ में विष्णु अर्थात् वासुदेव रूपी विष्णु के साथ वैष्णवो की प्रतिष्ठा और प्रतिपत्ति अच्छी तरह प्रकट हो गई है। यह समझना कठिन न होगा कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता जैसा अश विशेषकर तत्कालीन वैष्णवो की कृति है। किंतु वह समय क्या था? प्रतीत होता है कि वह भारत के "जय" या 'भारत' नाम के समय का काल नही है। यह ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी के भीतर या उससे थोडा और प्राचीन हो सकता है, क्योकि भगवद्‌गीता की रचना तक शाक्यमुनि बुद्ध के मध्यम मार्ग के अन्तर्गत जैन धर्म का सस्कार अच्छी प्रकार प्रतिष्ठित हो चुका था। इसका स्पष्ट सकेत गीता के छठवें अध्याय में मिलता है। इसमें ध्यानयोग के साधनामूलक अग-प्रत्यग की बात कहकर मोक्ष को 'निर्वाण परमा शान्ति' नाम दिया गया है। उसके ठीक बाद कहा गया है—

स्वतत्र वात भी कही जा सकती है कि गीता के रचना-काल तक पुरुषोत्तम पुरी या पुरुषोत्तम क्षेत्र भी भारतवर्ष में एक सास्कृतिक पीठ के रूप में विख्यात हो चुका था।

यह पुरुषोत्तम कौन है, इस पर भी थोडा विचार कर लेना चाहिए। सिंहल के दाठावश तथा महावश आदि में कहा गया है कि वुद्धदेव के शिष्यो ने उनकी चिता से उनकी वाईं ओर का विशिदत लेकर थेरक्षेम के हाथो कलिंगराज ब्रह्मदत्त के पास भेज दिया था।

वौद्ध आख्यायिकाओ में ब्रह्मदत्त की वहुत कहानियाँ मिलती है। उन्ही में दूसरे देशो के राजाओ के नाम भी ब्रह्मदत्त के साथ जुड गये है। कलिंगराज वौद्ध थे या अन्य मतावलवी थे, इस सवध में विचारने की भी आवश्यकता है। वुद्ध ने अपने जीवन-काल में कलिंग के साथ कोई सपर्क रखा हो, इसका भी प्रमाण नही मिलता। उत्तर भारत की किसी किंवदती में वुद्ध के शिष्यो द्वारा ऐसे दाँत के भेजे जाने का कोई उपाख्यान भी नही मिलता। यह उपाख्यान केवल लका का है।

सिंहल में, खासकर उसी दाठावश में, कलिंग के इस वुद्ध-दाँत का एक लवा इतिहास है। उसमें लिखा है कि आठ सौ वर्षो से अधिक समय तक सारे उत्तर भारत, विशेषत मगध के सम्राटो और मुख्य व्यक्तियो ने इस दाँत को कलिंग से वलपूर्वक छीन लेने का घोर प्रयत्न किया था। उत्तर भारत तथा मगध आदि स्थानो में इस दाँत के अद्भुत प्रभाव और प्रचड आधिपत्य के सवध में अनेक उपाख्यान मिलते है। उत्तर भारत को या उस काल के भारतवर्ष को इस प्रकार से प्रभावित करनेवाली और किसी दूसरी वात का उल्लेख आज तक नही मिला। यह सव इतिहास का अन्तिम पर्याय होता है। इस कलिंग राजा की राजकुमारी और दामाद—दतकुमारी और दतकुमार—के साथ गुप्त रूप से यह दाँत सिंहल को भेज दिया गया था। उसका ठीक समय सन् ३१० ई० है। दाठावश से प्राप्त दाँत की यह कहानी "स्टोरी आफ दी टूथ" नामक एक पुर्तगाली मिशनरी के सगृहीत ग्रन्थ में भी मिलती है।

यह दाँत नाना स्थानो में रहा और फिर क्रमश नाना स्थानो में भेज दिया गया। लेकिन यह वात लोगो में प्रचलित हो गई है कि अनेक स्थानो में भेजे जाने पर भी यह दाँत अपने प्रथम स्थान में ही अविचल रूप से वना रहा और उसके स्थान पर नकली दाँत भेज दिया गया था।

इस स्थान या पुरुषोत्तम क्षेत्र की भारतव्यापी विभूति के सवध में और भी एक उपाख्यान है। केवल उपाख्यान ही नही, इतिहास में भी इसका सकेत है। ईसवी सन् से पूर्व की शताब्दी या एक सौ साल और पहले कलिंग में खारवेल नामक एक सम्राट् थे। उनका एक शिलालेख भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि की हाथीगुफा में मिला है। उससे मालूम होता है कि इस ओडिशा में (अधिक सभव है पुरुषोत्तम पुरी में) एक "जिनासन" था। वह जिनासन क्या था, यह समझ में नही आता। किन्तु उसकी पूजा के लिए या उसे हिन्दू उपास्य वनाने के लिए भारतवर्ष में, विशेष-कर मगध में अनेक शताब्दियो तक वडा आग्रह रहा।

खारवेल से अनेक शताब्दियो पूर्व मगध के नन्द राजा कलिंग को जीत कर यह जिनासन उठा ले गये थे। उन्होने उसे न तो फेंका और न तोडा ही। अधिक सभव है कि उनका उद्देश्य

समारोह के साथ भारत की धर्मध्वजा सँभाल रखी थी। वहाँ करोडो रुपयो की वार्षिक आमदनी होती थी। आधुनिक समय में जिस प्रकार जगन्नाथ और तिरुपति (वेंकटेश्वर) के निकट जन-समागम और समारोह होता है, इससे कही अधिक समारोह उस समय वहाँ होता था। यह कहना अतिशयोक्ति नही है कि तत्कालीन भारत का यह अपने ढग का एकमात्र हिन्दू तीर्थक्षेत्र था।

इसके बाद प्राय दो शताब्दियो के भीतर ही भारतवर्ष का हिन्दू जगत् मुसलमानो की विजय से, विशेष रूप से देवमदिरो और पीठो आदि के सर्वनाश से, अत्यत जर्जरित हो उठा था। इधर बख्तियार खिलजी की वग-विजय से और उधर मलिक काफूर की दिल्ली से कन्याकुमारी तक की विजय-यात्रा की प्रचड ज्वाला से हिन्दुओ को आराम से साँस लेना भी दूभर था। इसी समय ओडिशा में कलिंग के गगवशियो ने साम्राज्य-विस्तार भी किया। उनमें प्रधान और प्रथम सम्राट् गगेश्वर या चोड गगदेव थे। वे शैव थे जो बाद में घोर वैष्णव बन गये।

उन्होने पुरुषोत्तम क्षेत्र नामक हिंदुओं की पीठस्थली में जगन्नाथ का वर्तमान उत्तुंग देवालय बनवाना आरभ किया। उससे पूर्व भारत की धर्म-धारणा और ईश्वर तथा विष्णुभक्ति इसी पुरुषोत्तम क्षेत्र में पर्य्यवसित और परिपुष्ट हुई थी। अत भारत की सस्कृति का केन्द्र भी यही पुरुषोत्तम पुरी हुआ। इसका भारतव्यापी प्रभाव आज भी सारे देश में सुविदित है।

इस प्रकार भारतवर्ष को उत्कल का यह दान और समय-समय पर प्रचारित होनेवाला ओडिशा का यह पवित्र प्रभाव, ऐतिहासिक गवेषणा का गभीर विषय होने पर भी भारत की सस्कृति में अत्यत स्मरणीय है।



लम्वी हो गई। हम लोग कुछ नीचे की सीढियो की तरफ आगे चले गये ताकि वहाँ से उनका प्रथम अभिनन्दन करें। शखघ्वनि, अलट चामर के साथ सदल-वल उनके पहुँचते ही हम लोगो ने अभि-वादन-पूर्वक उनका स्वागत किया और उनके पीछे हो गये। जिनके हाथ में धूप अगरवत्ती वगैरह थी, वे जलाने लगे। इस प्रकार वे जैसे-जैसे आगे वढे, सीढियो के दोनो तरफ खडी भिक्षु-भिक्षुणियाँ और उपासक-उपासिकाएँ पक्ति के पीछे होती गईं और इस प्रकार स्वागत-पक्ति वढती गई।

जव वे मन्दिर में पहुँचे तो एक ऊँचे आसन पर वैठ गये। वह आसन उस मन्दिर की विशाल वुद्ध-मूर्ति के ठीक सामने वनाया गया था। उसकी ऊँचाई उस वुद्ध-मूर्ति के भद्रासन के वरावर थी। वे उस आसन पर, उस मूर्ति की तरफ पीठ कर, वैठ गये। उनकी प्रारम्भिक पूजा के वाद हम लोगो को दर्शन की अनुमति मिली। हम लोग एक कतार वनाकर एक-एक करके उनके सामने गये। अव 'खाता' की आवश्यकता हुई। उनको 'खाता' चढाकर या भेंट में देकर उनके चरणों में हम लोगो ने प्रणाम किया। स्वीकृति के रूप में आशीर्वाद देकर वेत के दो टुकडो से, जिसके अग्रभाग में एक फुर्ला (Tussel) झूलता था, वे हम लोगो के मस्तक स्पर्श करते गये। उनको पार करते ही 'खाता' के वदले वीच में गाँठवाले लाल कपडे का एक टुकडा मिलता था जिसे देने के लिए एक आदमी खडा था। यह क्रिया वहुत देर तक चली। उसके वाद उन्होने तिव्वती भाषा में सूत्रोपदेश दिया—कण्ठस्थ सूत्रपाठ सुनाया। अनुशासन के वाद भोग लगाने की क्रिया शुरू हुई। अरवा चावल के भात को चीनी कटोरी में भरकर उसके वीच चीनी मिट्टी से तैयार एक चीनी चम्मच रख दी गई थी। कुछ कटोरो में तरकारी वगैरह भी थी। उन कटोरो से एक-एक लेकर कुछ लामा एक पक्ति में उनके सामने ले गये। वहाँ भोग लगने के वाद उसको प्रसाद के रूप में वाँट दिया गया और उसमे से कुछ कण पाने के लिए काफी घूम भी मची। इसके वाद दोनो तरफ खडे होकर दो विद्वानो न शास्त्रार्थ किया और शास्त्रार्थ के वाद सभा समाप्त हुई।

इस समारोह को देखकर मुझे जगन्नाथ पुरी और जगन्नाथ जी की याद आई। जगन्नाथ पुरी में भी 'खाता' के समान एक प्रकार का कपडा विकता है जो अन्यत्र मैंने नही देखा है। पुरी मन्दिर में भी पडो के खुण्टिआओ के वेत की मार प्रसिद्ध है। 'श्री कपडा' के नाम से लाल रग का वस्त्र-खण्ड जगन्नाथ धाम में वहुत विकता है और इस विश्वास से खरीदा और धारण किया जाता है कि यह जगन्नाथ जी का श्रीअग-सेवित वस्त्र है। भोग-मडप में जव भोग जाता है तो सूआर (सूपकार) लोग भी पक्वान्न को कतार में ले जाते हैं और भोग लग जाने के वाद जाति-निर्विशेष में अभडा या प्रसाद सेवन प्रसिद्ध है। सुखाये हुए प्रसाद (भात) को निर्माल्य रूप में यात्री लोग वहुत दूर-दूर तक ले भी जाते हैं।

जगन्नाथ जी और पन् चन् लामा की इस पूजा-विधि को देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि दोनो में वहुत कुछ साम्य है और एक के ऊपर दूसरे का प्रभाव है, एक को दूसरे की देन है। तो हम लोग इसे किसको किसकी देन कहेंगे? अवश्य तिव्वत को भारत की या तिव्वती सस्कृति को भारतीय सस्कृति की देन कहना पडेगा। यही ओडिशा और भारत की सस्कृतियो का सवध है, दोनो अभिन्न हैं। दोनो को अलग-अलग विचार करना असभव है।

तत्र-काल में भी ओडिशा को एक केन्द्र माना गया है। नि श्वास तत्र में तत्र के पाँच केन्द्र—जालधर, पूर्णगिरि, श्रीपर्वत, ओडियान और कामाख्या माने गये हैं। जालधर पजाव का आधुनिक जालधर ही है। पूर्णगिरि पूना को कहते हैं। श्रीपर्वत गुटूर जिले में है और उसे वज्रयान का उत्पत्ति-स्थल माना जाता है। ओडियान या उड्डियान ओडिशा है। कामाख्या तो उसी नाम से प्रसिद्ध है ही। कालिका पुराण में चार पीठो का उल्लेख है—उड्र, जालशैलक (जालधर), पूर्णपीठ और कामरूप। उसमें श्रीपर्वत का उल्लेख नही है। उसी में अन्यत्र देवी कोठ का उल्लेख मिलता है। ओडिशा में तत्र का वहुत प्रचार था, अभी तक है। इसीलिए ओडिशा को एक पीठ माना गया था और एक तात्रिक वध भी उड्डियान वध के नाम से आज तक चला जाता है। यही भारत को ओडिशा की देन है। तत्र को शिव-प्रवर्तित माना जाता है। इसलिए षट्चक्र-भेदन के वाद स्वाधिष्ठान चक्र में शिव का साक्षात्कार ही अभीष्ट है। वौद्ध धर्म में जव तत्र का प्रवेश हुआ तो वहाँ वुद्ध, वोधिसत्त्व या युगनद्ध ही साक्षात्कार के विषय हुए, प्रक्रिया वही रही। उसी प्रकार पचसखा युग में हम देखते हैं कि नित्य गोलोकविहारी युगल राधाकृष्ण ही स्वाधिष्ठान चक्र में साक्षात्कार के विषय के रूप में स्थापित हुए। षट्चक्र-भेद की प्रक्रिया में विशेष कोई अन्तर नही है। सक्षेप में ओडिशी वैष्णव धर्म का यही मूलतत्त्व है।

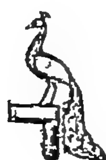
ओडिशा की यही एक विशेषता है कि अपने-अपने धर्म मे रहते हुए भी लोग दूसरो के धर्म या सप्रदाय के प्रति पूर्ण सम्मान दिखाते हैं। पचसखाओ को लें तो देखेंगे कि वलराम दास रामतारक मन्त्र के उपासक थे, जगन्नाथ दास सोलह नाम या वत्तीस अक्षर मत्र के उपासक थे, यशोवत्त दास श्यामानन्दी थे और श्याम पचाक्षर के उपासक थे, अनन्त दास सूर्यनारायण एकाक्षर मत्र के उपासक थे और अच्युतानन्द दास अणाक्षर मत्र के उपासक थे। लेकिन पाँचो पचसखा थे। उनमें पूर्ण हृद्यता थी। तिक्तता का लेश भी नही था। वे सभी वैष्णव कहलाते थे, फिर भी वलराम दास ने गोरखपथी सप्तागयोगसार टीका लिखी थी। यशोवन्त दास ने शिवस्वरोदय का अनुवाद किया था और गोविन्दचन्द्र गीता लिखी थी। एक अन्य परपरा के अनुसार वलराम दास विष्णु श्याम (स्वामी) पथी कृष्ण-मत्र के उपासक, जगन्नाथ दास आंकेश नासार्ध तिलक, हरिमदिरधारी अति वडी सप्रदाय के राधामत्र के उपासक थे, शिशु अनन्त ऊर्ध्व पुण्डरीक तिलक-धारी रामानन्द सप्रदाय के गोपाल मत्र के उपासक थे। यशोवन्त दास नासार्ध तिलक वैठी और कपाल में हरिमदिरवाले मध्वाचार्य सम्प्रदाय के श्याम पचाक्षर मत्र के उपासक तथा अच्युतानन्द दास नासाग्र से केश पर्य्यंत हरिमदिरवाले निमाइ सप्रदाय के राजमत्र या प्रेमषोडशी मत्र के उपासक थे। लेकिन सव के सव योगमार्ग-प्रेरक ज्ञान-मिश्रा भक्ति के साधक थे और जगन्नाथ महाप्रभु को लेकर ही उनकी साधना केन्द्रित थी। जगन्नाथ ही सवके उपास्य थे।

पुरी का जगन्नाथ मदिर एक विचित्र मदिर है और जगन्नाथ महाप्रभु विचित्र महाप्रभु हैं। जगन्नाथ मदिर को विष्णुमदिर माना जाता है। लेकिन वेढे के भीतर ऐसा कोई देवता नहीं है जो वहाँ न हो। वेढे में काशी विश्वनाथ, पातालेश्वर, यमेश्वर आदि कई शिवमदिर हैं। सत्य-नारायण ठाकुर, लक्ष्मी, सरस्वती तो हैं ही, मगला, विमला, भुवनेश्वरी भी हैं। विमला कुच-

जिस प्रकार पूजा की जाती है, कुष्ठ रोगियों की भी उसी प्रकार सेवा करनी चाहिए। इसी से ओडिशा की सस्कृति का महत्त्व प्रतिपादित होता है। इस प्रकार विना किसी साम्प्रदायिक विशेष और विरोध के यहाँ सभी देवताओ का समावेश किया जाता है। कोणार्क मदिर में एक फलक है जिसमें एक सिंहासन में महिषमर्दिनी दुर्गा की मूर्ति है और एक सिंहासन में शिवलिंग और जगन्नाथ की मूर्ति है। पुरी मदिर के भी एक फलक में दुर्गा, शिवलिंग और जगन्नाथ एक साथ हैं। वे सव समान रूप से सवके उपास्य हैं।

जगन्नाथ केवल आर्यों के नही, आर्येतरो के भी देवता हैं। प्रवाद है कि पहले वे शवर जाति के देवता थे। विश्वावसु नीलाचल वन के भीतर दारु ब्रह्म के रूप में उनकी पूजा करता था। मालव के राजा इन्द्रद्युम्न को स्वप्नादेश हुआ। इसलिए उन्होने अपने ब्राह्मण मत्री विद्यापति को खोज करने के लिए भेजा। लेकिन विश्वावसु शवर ने उनको सधान नही दिया अत विद्यापति ने विश्वावसु की लडकी से प्रणय कर तथा उसकी सहायता से दारु ब्रह्म को देखा। फिर वहाँ से जाकर इद्रद्युम्न को ले आया। अत में दोनो का विवाह हो गया और विश्वावसु शवर के वशधर 'दइता' कहलाये और विद्यापति के वशधर 'पति'। दइता-पतियो को आज तक पूजा का अधिकार है और रथयात्रा के समय वे ही पूजा करते हैं। यही ओडिशा की सस्कृति है। यहाँ के देवता जाति-निर्विशेष के देवता हैं और उनकी पूजा के सभी अधिकारी हैं। ओडिशा उत्तरी और दक्षिणी भारत के तथा आर्य और आर्येतर सस्कृति के वीच अवस्थित है, इसलिए यहाँ दोनो का समान रूप से समन्वय हुआ है। यहाँ भाषा, सगीत, नाट्य आदि सभी में दोनो का समिश्रण हुआ है।

इतना ही नही कि यहाँ के देवताओ में जगन्नाथ, वलभद्र, सुभद्रा में सिर्फ सभी का समन्वय और पूजाधिकार है वल्कि इनका अन्न भोग सवका महाप्रसाद भी है। ब्राह्मण-शूद्र सव एक ही साथ भोजन करते हैं। इसमें उच्छिष्ट तक का विचार नही है। जहाँ जाति-विचार इतना प्रवल है वहाँ अन्न भोग को सभी विना किसी द्वेष भाव के सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं। यही ओडिशा की सस्कृति है। ओडिशा में कई जगह अन्न महाप्रसाद (अभडा, अवढा—अपरिवेपित) के रूप में विना जात-पाँत के विचार के एक ही साथ ग्रहण किया जाता है। विष्णुक्षेत्र जगन्नाथपुरी में, शिवक्षेत्र लिंगराज भुवनेश्वर में और रघुनाथक्षेत्र ओडगा में महाप्रसाद का प्रचलन है। यह सिर्फ ओडिशा में है, भारतवर्ष में अन्यत्र कही नही। सक्षेप में यह सव भारतीय सस्कृति को ओडिशा की देन कही जा सकती है।



को स्वधर्म में लाने के लिए वे जीवन भर उद्यम करते रहे। उनकी जनशिक्षा थी कि लोग एक दूसरे के प्रति सुन्दर, शुद्ध आचरण करें। किसी एक खास धर्म का प्रचार न करके उन्होने सिर्फ शुद्ध आचरण की शिक्षा पर जोर दिया था।

उन्होने स्वतत्र कलिंग-अनुशासन में अपने कर्मचारियो को आदेश दिया था कि सीमान्त-वासी आटविक जाति के लोग यदि पूछें कि राजा ने हमारे लिए क्या किया, तो उनसे कहना कि राजा तुमको अपनी सन्तान की तरह स्नेह, श्रद्धा और प्रेम करते हैं। आज कई शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, लेकिन धउली और जौगढ के अनुशासन आज भी प्रेम और स्नेह-सन्देश पग-पग भेदकर झकृत हो रोमाचित कराते हैं। यही सदेश है भारतीय सस्कृति का मूल मत्र।

भारतीय सस्कृति का मौलिक उपादान है सहनशीलता और विभिन्न धर्मों और मतो के प्रति सम्मान तथा सहानुभूति। गत दो हजार वर्षो के दर्म्यान अशोक के इन महत्त्वपूर्ण सास्कृतिक कार्यों में, समय समय पर बहुत-सी बाधाएँ आई हैं, परन्तु सहनशीलता का मौलिक तत्त्व क्रमश, धीरे-धीरे, भारतीय सस्कृति में घुल-मिल गया है।

यह सयोग की बात है कि भारतीय सस्कृति की नीव, हमारे ओडिशा में, अशोक के हृदय-परिवर्तन से हुई है। भारत के इस भूभाग या इलाके में कुछ ऐसी विशेषता थी जिसके फल-स्वरूप ऐसी युगान्तकारी घटना घटी थी। कलिंग की जनता ने असीम साहस के साथ युद्ध किया था। उसमें उसने अपने प्राणो की बाजी लगा दी थी। कलिंग की जनता का असीम साहस अशोक के हृदय-परिवर्तन का कारण बना होगा। इसके सिवा कुछ नही कहा जा सकता है।

इसमें सन्देह नही कि जिस सदाचार और सहनशीलता से भारतीय सस्कृति की नीव पडी उसके भी प्रचार का श्रीगणेश यही भुवनेश्वर था।

यह मूल नीति की प्रतिक्रिया भारत के कई स्थानो में दिखाई पडी थी। परिणामस्वरूप अव्यवस्था होने लगी। परन्तु हमारे इस भूभाग में दोनो नीतियाँ (सिद्धान्त) दृढता से प्रतिष्ठित हुई हैं। जितने धर्म और धार्मिक सम्प्रदायो का अभ्युत्थान यहाँ हुआ है, वे सारे के सारे ऐसे आपस में मिल गये कि ओडिशा का एक भी मन्दिर किसी एक धार्मिक सम्प्रदाय का नही रहा। सभी मन्दिर सभी सम्प्रदायो के हैं। पुरी और भुवनेश्वर के दोनो मुख्य मन्दिरो में ब्राह्मण और अब्राह्मण पुजारी सेवक का कार्य करते हैं। गाँवो में आज भी ग्राम-देवताओ के पूजक अधिकाश अब्राह्मण और आदिम जाति के लोग हैं। सास्कृतिक सयोग की प्रगति इस प्रकार हुई है कि आदिम जातियो की बहुत सी श्रेणियाँ भारत की अन्य दूसरी जातियो में भी मिल गई हैं। भारत के अन्य भागो मे आदिम जातियो की जो समस्या है वह ओडिशा में वैसी नही है। यहाँ वोट-सूची मे दर्ज आदिम जातियो के साथ अन्य सवर्ण जातियो से विवाह-सम्बन्ध स्वच्छन्द रूप से होता है। आदिवासी जमीदारो के यहाँ ब्राह्मण पुरोहित होते हैं। आदिवासी और अनादिवासियो मे जो विरोध अन्यत्र दिखाई पडता है, वह उत्कल में नही है। सैकडो वर्षों से ओडिशा में जगन्नाथ महाप्रभु देवता के रूप मे प्रतिष्ठित हैं। यहाँ सभी धर्मो और सम्प्रदायो का भेद-भाव दूर होता है और एक जगन्नाथ धर्म ही रह जाता है।

# हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

## श्री परशुराम सिंह एम० ए०

भविष्य के गर्भ की थाह लेते हुए साहित्य की वर्तमान गति-विवि का संवव अतीत के उन सूत्रो से जोडा जा सकता है जो उसे अक्षुण्ण रूप से, प्रत्यक्षत या परोक्षत प्रभावित करते रहते है। अतीत का यही प्रभाव वर्तमान साहित्य की पृष्ठभूमि होता है जो और स्पष्ट शब्दो में सस्कृति है । वास्तव में सस्कृति है क्या ? दर्शन, राजनीति, इतिहास, परपरा आदि का मिश्रित रूप ही सस्कृति है। यह रूप एक दिन का या एक वर्ष का नही होता। शत-सहस्र वर्षों की मानव-भावनाएँ और उसके उद्गार सस्कृति का निर्माण करते है। इसी मस्कृति को साहित्य युगानुकूल प्रवृत्तियो की धूप-छाँह से नि सृत होता हुआ भी प्रदर्शित करता है। किसी भी देश का साहित्य अपनी सास्कृतिक पृष्ठभूमि के विना अपने अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध नही कर सकता। साहित्य अगर दर्पण है, तो प्रतिविम्व ग्रहण करने की क्षमता उसमें होनी ही चाहिए। हाँ, सावारण दर्पण की ग्राह्य-सीमा सकुचित और एकदेशीय होती है, पर साहित्य-दर्पण विशाल है और वर्तमान को दर्शाते हुए अतीत को भी प्रतिविम्वित करता है, साथ ही भविष्य का भी आभास देता है। इसलिए किसी भी साहित्य के विकास का परिचय प्राप्त करने से पूर्व उसकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि को समझना और जानना अति आवश्यक हो जाता है। आज का हिन्दी-साहित्य-वृक्ष, जो युग-वक्ष पर अपनी शीतल, स्निग्ध और स्फूर्तिदायिनी छाया फैलाता जा रहा है, उसकी शाखाएँ भी उसी सास्कृतिक पृष्ठभूमि से पालित-पोषित है। इस पृष्ठभूमि की उत्कृष्टता पर ही साहित्य की उत्कृष्टता निर्भर करती है। यही पृष्ठभूमि उसकी उन्नति अथवा पराभव का कारण वनती है, यही उसे प्रेरणा देती है या गतिहीन वना डालती है। सास्कृतिक पृष्ठभूमि के इस महत्त्व को दृष्टि में रखकर ही हम आज के हिन्दी साहित्य का यथोचित मूल्याकन कर सकते है।

मोटे तौर पर हिन्दी साहित्य को हम आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजित कर सकते है। यह विभाजन या अन्य विस्तृत विभाजन साहित्य में ऐसी नपी-तुली सीमात रेखाएँ नही खीचते, जो एक काल की छाया दूसरे काल पर नही पडने देती अथवा यह सूचित करती है कि एक काल की विचार-धारा का सवव दूसरी मे नही होता। विचार-धाराएँ कभी भी सीमा-वद्ध नही होती। वे प्रवाहित होती रहती है, कभी वेग से, कभी क्षीण होकर। इन धाराओ की शिथिलता या प्रखरता का कारण वही सास्कृतिक पृष्ठभूमि होती है। काल-विभाजन का इतना ही प्रयोजन है कि वह एक विशाल विस्तृत रूप को पृथक्-पृथक् कर ग्रहण करने में सहायता पहुँचाता है और अन्त में सम्पूर्ण रूप या सत्य का वोध करा देता है। मध्यकाल से आदिकाल का

साहित्य की अवस्था भी वही थी। उस काल के सामने सस्कृत, प्राकृत और देशी भाषाओ का साहित्य था। सस्कृत अपनी उच्चता पा चुकी थी। अब उसकी गिरावट के दिन नजर आ रहे थे। अलकार और वर्णन-कौशल पर ही लेखनी की शक्ति की परीक्षा हो रही थी। प्राकृत की भी अवस्था उसी मार्ग का अनुसरण कर रही थी। अपभ्रश और देशी भाषाओ की रचनाएँ अधिकतर धार्मिक विचारो को लेकर चल रही थी। देश की उथल-पुथल, जनता की आकाक्षाओ और व्यक्ति के दायित्व की उन्हें चिन्ता नही थी। हर ओर नवोन्मेष का अभाव दिखाई दे रहा था।

इसी पृष्ठभूमि पर—राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक अस्थिरता के इसी आधार पर हिन्दी के आदिकाल की आधार-शिला खडी हुई। हर ओर एक अव्यवस्था, असगठन तथा उच्छृखलता फैल रही थी और उसी का प्रतिबिम्ब लेकर साहित्य को आगे चलना था। जहाँ तक उसके गुण का सबध है, उसने युग के प्रतिबिंब को ग्रहण किया, लेकिन कोई ऐसा व्यक्तित्व नही उत्पन्न किया जो उस अस्थिरता पर अपनी पैनी दृष्टि गडा कर उसके अन्त को पढ सके तथा आगे का मार्ग प्रदर्शित कर भविष्य का आलोक दिखा सके।

इसके बाद हमारे सामने मध्यकाल आता है। मध्यकाल की साहित्यिक सृष्टि आदिकाल से बहुत अधिक और विभिन्न मार्गगामिनी हुई। धर्म ने साहित्य पर जो एकाधिकार स्थापित किया था वह सर्वथा नही मिटा, वरन् भिन्न-भिन्न दिशाओ में उसके शत-सहस्र स्रोत फूट निकले और इन स्रोतो में प्रवाहित-भक्ति का आवरण ओढे, जीवन की विलासिता ने भी अपना रूप सँवारा। फलस्वरूप शृगारिक कविताओ का भी अबार-सा लगा। चूँकि यह सब एक ही बार न होकर कालक्रमानुसार हुआ, इसलिए हम इस मध्यकाल की दो परिधियाँ खीचें—एक पूर्व मध्य की, दूसरी उत्तर-मध्य की।

पूर्व मध्यकाल की रचनाएँ भक्ति को लेकर चली। भक्ति की दो श्रेणियाँ हुईं—निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। निर्गुण भक्ति के भी दो रूप हुए—एक ज्ञानमार्गी, दूसरा प्रेममार्गी। ज्ञानमार्गियो ने अपने सामने उपलब्ध सभी सामग्रियो को अपनाया—नाथपथियो का योग, उपनिषदो का ज्ञान तथा भिन्न-भिन्न पौराणिक कथाएँ। सबसे अपने काम की चीजें ली और उसे अपने योग्य बनाया। सामाजिक कुव्यवस्था तथा धार्मिक आडम्बर ने भी उन्हें सहायता पहुँचाई। जिस प्रकार भी इनके ज्ञान के प्रचार में सहायता पहुँची, उसे इन्होने अपनाया। इसी लोभ ने इन्हें सूफियो के प्रेम को अपने ज्ञान के आश्रय मे लेने को बाध्य किया। इस धारा के प्रवर्तक कबीर और उनके अनुयायी थे।

प्रेममार्गी रूप विशेषकर उन मुसलमान कवियो और फकीरो का था, जिन्होने इस्लाम के प्रचार की महिमा तलवार के बल पर उचित न समझकर उदारता और सहानुभूति के मार्ग मे उचित समझी थी। उन्होने प्रेमाख्यान रचे और उनमें हिन्दू घरो की कहानी अपनाकर इस्लाम की रूह भर दी। हाँ, इस ओर सजग रहे कि कही जनता में अरुचि न फैलने पावे और इस हेतु उसी के रग में अपने को प्रदर्शित किया। यह जायसी, कुतबन, मझन आदि का कारवा था।

नीच समझी जानेवाली जातियो में भी धीरे-धीरे घृणा की आग सुलग रही थी। जव उन्होने देखा कि उच्च कहे जानेवाले लोगो में कोई वास्तविकता नही रह गई, तो उन्होने भी उनकी उच्चता को चुनौती दे डाली। अगुआ कवीर हुए। अन्त्यजो के लिए इन्होने ज्ञानमार्गी भक्ति की राह खोल दी और साफ-साफ एलान किया कि कोई छोटा-वडा नहीं, कर्तव्य छोटा और वडा वनाता है। ईश्वर की दृष्टि मे सव समान हैं। समाज में जहाँ एक ओर इस तरह का विक्षोभ उत्पन्न हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर सामजस्य की भावना का भी उद्भव हो रहा था। हिन्दू और मुसलमान पडोसी वन कर एक दूसरे को समझने का प्रयास कर रहे थे। फलस्वरूप साहित्य के क्षेत्र में प्रेममार्गी सूफियो और कृष्ण की उपासना करनेवाले अनेक मुसलमान कवियो के दर्शन हुए। पहले की झिझक मिटती जा रही थी और उसकी जगह मुलायमियत आ गई थी। कुछ दूरदर्शी और नर्मदिल मुसलमान वादशाहो ने भी हिन्दुओ के प्रति अपनी सदाशयता दिखा कर और उनके व्यक्तित्व का आदर कर समाज को कुछ सप्राण किया। साहित्य के क्षेत्र में दोनो का सहयोग दोनो के सामाजिक जीवन के सामजस्य का परिणाम है।

धार्मिक स्थिति भी डावाँडोल थी। मुसलमानो के क्रूर व्यवहार और धर्म-प्रसार से हिंसात्मक विधानो के कारण जनता के हृदय से आस्तिकता की भावना ही दूर होती जा रही थी। राजाओ का पराभव इसलिए हुआ कि उनके पास राज्य था, पर निरीह जनता पर वज्रप्रहार इसलिए हो रहा था कि वह काफिर थी, हिन्दू थी। दूसरी ओर शैव, शाक्त और वैष्णव अपनी खडनात्मक और मडनात्मक नीति मे लगे हुए थे। कुछ अशो मे उन्होने सिद्धो की गुह्य साधना को भी अपनाया। साथ ही मुसलमानो का एकेश्वरवाद और योगियो की उपासना-पद्धति का पल्ला पकड समाज का वह दलित अश जाग रहा था, जिसे आज तक धर्म की छाया ही नही मिली थी। कुछ दूरदर्शी प्रवर्तको ने विष्णु के अवतार की कल्पना की। राम और कृष्ण उनके रूप वतलाये गये। साहित्य में राम के जिस रूप की सृष्टि हुई, कृष्ण के उस रूप की नही हो सकी। उनका सरस रूप ही रखा गया, जो पीछे चल कर भक्ति की आड में विलास-वासना को प्रश्रय देनेवालो का सहारा वना। इस तरह धर्म के क्षेत्र में अनेकानेक आदर्शो की नीव पड़ी, जिन सवका प्रभाव इस काल के साहित्य में पाया जाता है।

राजनीति, समाज और धर्म की इसी पृष्ठभूमि में भक्तिकाल के साहित्य का निर्माण हुआ। भक्त कवियो और सप्रदायों का निर्माण करनेवालो को भले ही मुक्ति मिल गई अथवा आत्मसतोप प्राप्त हुआ हो, पर वे ऐसे साहित्य की सर्जना नही कर सके, जिसकी दृष्टि व्यापक हो और जनता के अभावो को आँकने की जिसमे शक्ति हो। भक्त जिस ऊँचाई पर पहुँचकर टिका रह सकता है, वहाँ पूरा जन-समूह नही ठहर सकता। वह पृथ्वी का वासी है और निरन्तर मिट्टी की ओर ही उन्मुख होता है। इस क्रिया में वह भटकता है, गिरता है, पर भटकने और गिरने के दिन भी समाप्त होते हैं और उसे गतव्य मिलता है। पूर्व मध्यकाल की भक्ति-भावना उत्तर मध्यकाल मे भी चलती रही, पर पूरे रग में नही। उत्तर मध्यकाल के साहित्यकार कुभनदास के इस सिद्धात, "सतन कहा सिकरी सो काम" को माननेवाले नही थे। उन्हें किसी न किसी तरह की 'सिकरी'

यह प्रदर्शित कर दिया कि जनता कोरे त्याग और आदर्शों के चक्कर मे और अधिक नही रह सकती थी। उसे भी अपनी प्रतिभा और शक्ति का मूल्य चाहिए था, भले ही वह प्रशसा कर ही प्राप्त हो। तत्कालीन परिस्थिति में इससे अधिक सभव भी नही था।

यो तो हिन्दी साहित्य के कालो की कहानी सघर्ष और भीषण उथल-पुथल के मध्य से होकर गुजरी है, पर जो प्राञ्जलता और व्यापकता उसे आधुनिक काल में प्राप्त हुई वह पूर्ववर्ती कालो में उपलब्ध नही थी। यद्यपि अन्य कालो की भी पृष्ठभूमियाँ थी, पर साहित्य ने जैसे अपने लिए छाँटकर, चुनकर एक अछूता मार्ग बना लिया था, जो जीवन और सघर्ष के चौकोर अकन से नितात अलग था। उसने जीवन के विशिष्ट रूपो, अगो और तथ्यो का ही समावेश किया। समय के उलट-फेर और सघर्ष से वह उदासीन रह एक शाश्वत सत्य की टोह में लगा रहा। साथ ही उसकी अनुभूतियाँ विशेषकर पद्य में ही अभिव्यक्त हुईं। गद्य तो नाममात्र का था। पर आधुनिक काल अनेकानेक परिस्थितियो के सघर्ष और सामजस्य का परिणाम हैं। पद्य के साथ-साथ यह गद्य की भी जोरदार कहानी है। वर्षों से पतनोन्मुख एव जर्जर समाज के ऊर्ध्वमुख होने के प्रयत्नो, धार्मिक रूढियो और अधविश्वासो को मिटा देने की प्रतिज्ञाओ तथा दासता की जजीर को तोड फेंकने की क्रातियो का यह सजीव चित्र है। इस युग के साहित्य ने चिर-उपेक्षित को श्रेष्ठासन पर बैठाया, जीवन को उसकी कुरूपता और सुदरता के साथ ग्रहण किया और सीमा की प्राचीर गिरा कर उन्मुक्तता का दर्शन पाया। जीवन की अनुभूतियो को ग्रहण करने तथा उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए उसने अनेक अगो और उपागो की सृष्टि की। विपदाओ से यह जा भिडा, सघर्षों से मुँह नही मोडा और सगठन की रागिनी छेड पृथक्करण की भावना को दूर भगाया। नवीन चेतना और नवीन विचारो से सशक्त हो इसने नवजागरण का शख फूँका। राष्ट्रीय चेतना इसकी सबसे बडी विशेषता है। पूर्ववर्ती धाराओ का इस काल में नितात लोप नही हो गया, लेकिन उनके ग्रहण और अभिव्यजन की पद्धति बदल गई। भक्ति-काल की धारा एक नई सज-धज के साथ प्रवाहित हुई और वीरगाथा की धारा ने एक नई भावना से प्रेरणा ली। हाँ, जो धाराएँ अशक्त थी, जिनमें सामर्थ्य नही थी, वे अवश्य मरणासन्न हो गईं। कबीर, सूर, तुलसी, चन्द, भूषण आदि कवियो का एक नया रूप हमारे सामने उपस्थित हुआ। इस काल में गद्य की बहुत अधिक रचनाएँ हुईं और उसका विकास भी विविधतासम्पन्न रहा।

आधुनिक काल की इस विशालता, सजीवता और सजगता का कारण उसकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि है।

राजनीति के क्षेत्र मे शिवाजी के पदार्पण ने एक नई चेतना का प्रादुर्भाव किया। विशाल मुगल साम्राज्य को हराकर एक सगठित हिन्दू-राज्य कायम करना शिवाजी का लक्ष्य था। उन्होंने उन सभी गलतियो का परित्याग किया, जिनके कारण देश की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। अपने सघर्षमय जीवन में वे छत्रपति हुए भी, लेकिन उनके दुर्बल उत्तराधिकारियो को मुगलो से हारते देर नही लगी। साथ ही मुगल सल्तनत की नीव भी हिल चुकी थी और औरंगजेब की मृत्यु ने उसे और भी दुर्बल बना डाला। मराठे पुन राज्य-स्थापना का स्वप्न देख रहे थे कि नई विदेशी

को इस परिस्थिति में एक वहुत वडा पार्ट अदा करना था और उसे उसने सफलतापूर्वक निभाया।

इन परिस्थितियो के अलावा विज्ञान ने और दूर-दूर देशो के सम्पर्क तया उनके विचारो एव दर्शनो के आदान-प्रदान ने भी एक नई ज्योति जलाई। अग्रेज पादरियो ने ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया, जिसके लिए उन्होने सर्वप्रथम हिन्दी को अपनाया। जनता के साथ विचारो के आदान-प्रदान के लिए भी एक भाषा की आवश्यकता महसूस हुई। साथ ही शासन-कार्य-सचालन के लिए अँगरेजी पढे-लिखे कर्मचारियो की भी आवश्यकता हुई। नये ढग के स्कूल और कालेज खुले। हिन्दी का रूप सर्वप्रथम फोर्ट विलियम कालेज में गढा गया।

हिन्दी साहित्य को इस वदलती परिस्थिति का सामना करना पडा। कविता के क्षेत्र में विना परिवर्तन किये भी गद्य की नितात आवश्यकता थी। हिन्दी ने युग की इस पुकार का स्वागत किया और भारतेन्दु युग ने हिन्दी गद्य का लालित्य प्रदर्शित किया। उसके वाद से तो उसका रूप वनता-सँवरता ही चला गया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के हाथो पड हिन्दी का सरल-सुष्ठु रूप सामने आया। वाद में पद्य के क्षेत्र में भी खडी वोली में प्रयास हुए और आज तो वह एक सर्वांगीण और सशक्त भाषा है। आज जो उसे राष्ट्रभाषा और राजभाषा का पद मिलने जा रहा है, इसका कारण उसकी व्यापकता और सुवोधता तो है ही, साथ ही उसकी सघर्ष करने की शक्ति और दायित्व की भावना भी है।



विकास का यही युग था। यह एक अजीव घोलमेल का समय था, इसीलिए सामाजिक अथवा साहित्यिक चित्तवृत्ति के अनुसार साहित्यकारो को इस युग के नामकरण में कठिनाइयाँ हुई है। यद्यपि महापडित राहुल ने इसको सिद्ध-सामत युग कहा है, किंतु यह नाम उस युग की आत्मा को पूरी तरह से अभिव्यक्त नही कर पाता है। अस्तु, वहुत उपयुक्त न होते हुए भी आदिकाल के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम अव तक जम नही पाया है।

तीन सौ वर्षों में रचित साहित्य के भीतर पैठकर जव प्राप्त सामग्री के आधार पर हम इसकी आत्मा को पकडने का प्रयत्न करते है तो वह हमें दो गवाक्षो के पास भटकाती है, एक तो विलकुल आध्यात्मिक, दूसरा साहित्यिक। आध्यात्मिक झरोखे का दृश्य वडा ही कुतूहलपूर्ण, रोचक और भयकारी है। एक ओर वज्रयानी सप्रदाय के ८४ सिद्ध अपने अलौकिक चमत्कारो से जनता के ऊपर प्रभाव का आतक जमा रहे थे। उनकी साधना के साधन मद्य और मानिनी (डोमिन मे लेकर धोविन तक) वने हुए थे, विना इनके निर्मुक्त सेवन के 'महासुख' की प्राप्ति असभव थी। युगनद्ध (स्त्री-पुरुष) नग्न सहवास की मुद्राएँ प्रचलित हुई और इनमें रहस्य की गुह्य भावना का समावेश करके दूसरा साकेतिक अर्थ भी व्यजित करने का प्रयास किया गया। विलास और व्यभिचार के अतिरिक्त (जो निरर्थक ही सिद्ध हुआ) जनता पर आध्यात्मिकता का प्रभाव तो न पडा, हाँ समाज में एक चरित्रहीनता की लहर दौड गई। कौलाचार और कापालिक मत इन्ही वज्रयानियो की देन है। इनके काव्य की भाषा देशी मिश्रित अपभ्रश थी। महामहोपाध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री ने वँगला अक्षरो में जव 'दोहाकोश' प्रकाशित कराया तव इनकी सूचना मिली। महापडित राहुल साकृत्यायन ने भी वज्रयान सवधी अनेक रचनाओ का उद्धार किया और नागरी लिपि में "वौद्ध गान व दोहा" का सपादन किया है। इन ८४ सिद्धो—यथा सरहपा, लुइपा, कण्हपा आदि—नामो के अन्त में "पा" शव्द आदरसूचक भाव से जोडे जाने की प्रथा थी।

दूसरी ओर नाथसप्रदायवालो की दशा इनसे वहुत अच्छी मिलेगी। यद्यपि कुछ लोगो ने नाथपथियो को वज्रयानियो के भीतर ही मिलाकर देखने की चेष्टा की है किंतु यह भ्रम इसलिए हो गया है कि इन योगियो मे भी शिव-शक्ति की भावना के कारण शृगार का आभास दिखलाई पडता है, यद्यपि वज्रयानियो के व्यभिचारी आचरण से ये विलकुल अलग रहे। वास्तव में इन पर पतजलि के योग-दर्शन का प्रभाव हठयोग के रूप में पडा था। इन नाथो की सख्या नौ रही है। सिद्ध जलधर को आदिनाथ माना गया है। हिंदी के आदिकालीन साहित्य के ऊपर जितना प्रभाव इन नाथो का पडा है, उतना सिद्धो का नही। तत्कालीन हिंदू जनता के साथ ही साथ मुसलमानो पर भी इनके ईश्वरवाद का प्रभाव पडा, क्योकि जहाँ ये हठयोगी पद्धति पर ईश्वर में विश्वास करते थे, वही मूर्तिपूजा, तीर्थ-यात्रा जैसे पाखडो का खडन भी। अतस्साधना को प्रधान लक्ष्य मानकर वाह्याडवरो की व्यर्थता पर इन लोगो ने करारी चोट की थी। इनका विश्वास था कि नाद और विन्दु के योग से जगत् की उत्पत्ति हुई है। सिद्धो का यह प्रभाव लक्ष्य करने योग्य है। नाथो में गुरु गोरखनाथ का साहित्यिक दृष्टि मे अधिक महत्त्व है। ऐसा कहा

ऐसा भी था जव अपभ्रश की रचना साहित्य के उच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी और उसने लोक-जीवन से अनेक तत्त्वों को ग्रहण कर परवर्ती साहित्य में अनेक परम्पराएँ स्थापित की। कालान्तर में इस भाषा का स्थान देशी भाषा ने ले लिया।

आदिकालीन साहित्य की उपलब्धि के लिए जहाँ हम विदेशी विद्वानो के प्रति कृतज्ञ है, वही हमारे यहाँ के विद्वानो ने भी इस दिशा में अत्यत प्रशसनीय कार्य किये है। प्रो० हीरालाल जैन, राहुल साकृत्यायन, मुनि जिनविजय जी, आदिनाथ उपाध्ये, नाथूराम प्रेमी, पी० एल० वैद्य आदि ने अपने अथक परिश्रम से इसका उद्धार ही नही, सशोधन और सपादन भी किया है। पहले अपभ्रश का साहित्य जितना अधकाराच्छन्न था उतना अब नही रह गया है। नये-नये ग्रथो के प्रकाश में आ जाने के कारण इसके सवध में उठनेवाली वहुत-सी आशकाओ का निवारण हो गया है और कालान्तर में परवर्ती साहित्य पर इसका कितना अधिक प्रभाव पडा है, यह स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। हिन्दी में मात्रिक छदो की देन अपभ्रश की ही विशेषता है। राग-रागिनियो में गाये जानेवाले गीतो की परम्परा जहाँ जयदेव से मानी जाती थी, अब उसका श्रेय भी सिद्धो को ही देना पडेगा। रासक की परम्परा और लोक-जीवन में प्रचलित कथा आख्यायिको तथा कथानक रूढियो का वाद में अपनाया जाना, जीवन की भूमि से उठे हुए इसी साहित्य की देन है।

## वीरगाथाकाल अथवा मिश्रित-काल

अपभ्रश साहित्य के वाद का जो साहित्य इतिहासकारो द्वारा कालानुसार विभाजित किया गया उसे वीरगाथाकाल के नाम से जाना जाता है। आधुनिक खोजो के अनुसार जिस प्रकार के साहित्य के कारण यह नाम दिया गया है, अब उसके आधार पर इस नाम का वहुत अधिक महत्त्व नही रह गया है। खुमान रासो, वीसल देव रासो तथा पृथ्वीराज रास। में से पहली दो तो वहुत वाद की रचनाएँ सिद्ध हो गई है। (१) पृथ्वीराज रासो के सवध मे भी वहुत वडा विवाद उठा था, किंतु मुनि जिनविजय जी को जब से पाँच छप्पय रासो के प्राचीन ग्रथो में मिल गये तव से यह तो नही कहा जा सकता कि रासो पूरा का पूरा जाल है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि रासो का जो वृहत् रूप आज है, वह वास्तव मे उतना वडा नही था। अनेक प्रक्षिप्त अश जोड दिये गये हैं। ग्यारहवी से लेकर १४वी शताब्दी तक का काल ऐतिहासिक दृष्टि से वहुत उथल पुथल का था। युद्ध और विलास दो वस्तुएँ राजन्यवर्ग की शोभा थी। अस्तु, चारणो ने या तो राजा की प्रशसा करके अपनी ओजस्विनी वाणी मे उनको युद्ध के समय उत्साहित किया अथवा उनकी तुष्टि के लिए शृगार-प्रधान कविताओ की रचनाएँ की। वीर और शृगार रस की प्रवृत्ति तत्कालीन काव्य में प्रकट है, जो वहुधा प्रवन्ध और वीरगीतो के रूपो में अभिव्यक्त हुई। शुक्ल जी ने इसी आधार पर इसका नाम वीरगाथाकाल रखा था। इस नाम की सार्थकता के लिए पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक घटनाओ और परिस्थितियो के सत्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती (किंतु जो आधार था उसी के सन्दिग्ध हो उठने पर यह प्रश्न विचारणीय

थे। गडकी के किनारो की उदासी को सभवत मैथिल-कोकिल के उपरात आज तक कोई दूर नही कर पाया।

## भक्ति-काल

वीरगाथा-काल के समाप्त होते-होते साहित्य को प्रभावित करने के अनेक कारणो का सयोग अपने-आप हो गया। देश की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थितियो का सघटन कुछ इस प्रकार हुआ कि जनमानस की चित्तवृत्तियो का स्वरूप इस योग्य हो गया कि सभावित अनेक नवीनताओ को ग्रहण कर सके। क्रमश मुसलमानी शासको के आतक और राजपूत रजवाडो के आपसी झगडो ने जनता के जीवन से सारे उत्साह और उल्लास को समाप्त कर दिया था। नाथो, सिद्धो और सन्तो की यौगिक पद्धति के चमत्कार का प्रभाव जनता पर अवश्य था, किंतु उनकी रूखी उपासना-पद्धति हृदय की रागात्मिका वृत्ति को कोई उत्तेजना देने में समर्थ नही हो पा रही थी। ऐसे सिद्धो और नाथो ने जहाँ एक ओर अन्धविश्वास, रूढि, परपरा, कर्मकाड, तीर्थाटन आदि के रहस्यो का पर्दाफाश किया, वही दूसरी ओर उनके "थानो" की अवस्या स्वत विलासिता के मायाचक्र में पडकर निन्दनीय हो गई थी। मानव की श्रद्धा, उपासना और माधुर्य-भावनाओ को कही शरण नही थी। ऐसे ही समय में दक्षिण से जो भक्ति की लहर उठी वह धीरे-धीरे उत्तर तक व्याप्त हो गई। सन् १६७३ में रामानुजाचार्य ने जिस सगुण भक्ति का प्रवर्तन किया था, वही जनता के लिए वरदान वन गई और प्रतिभाशाली कवियो का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो गया।

भक्ति-काल की मुख्य साहित्य-विधाओ को देखते हुए विद्वानो ने उसे दो भागो में विभाजित कर दिया है—निर्गुणात्मक और सगुणात्मक। इन दोनो मे भी दो-दो शाखाएँ है। निर्गुणभक्ति को ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी तथा सगुण भक्ति को कृष्ण-सवधी तथा राम-सवधी सम्प्रदायो में बाँटा जा सकता है।

निराकार ब्रह्म को माननेवाले निर्गुणवादियो ने उपनिषदो के ब्रह्मज्ञान और योग-साधना को मिलाकर अपने काव्यदर्शन को प्रतिपादित किया है। कहना न होगा कि यह भारतीयो के लिए कोई नई वस्तु नही थी। हाँ, एक जो वहुत वडा लाभ और उपकार इस प्रकार के कवियो द्वारा हुआ वह यह कि दलित, जड और मिथ्याडवरो मे फँसी जनता को एक ऐसी दृष्टि और तेजस्विता अवश्य मिली, जिससे उनके अन्दर अपने को कुछ समझने की भावना जागृत हुई। वैसे इनका प्रभाव शिष्ट और समुन्नत समझे जानेवाले उच्च वर्ण के लोगो पर तो न पडा किंतु शूद्र और अस्पृश्य समझी जानेवाली जातियो ने इस मार्ग का अनुसरण किया। कवीर, दादू, रैदास, धर्म-दास, नानक, मुन्दरदास, मलूकदास आदि अनेक कवि हुए है जिनकी वाणियाँ आज भी झाँझ-करताल के साथ सगीतमय लहरी में उत्तर भारत के गाँवो और नगरो को गुंजाती रहती है। कुछ कवि तो अत्यन्त ही प्रतिभाशाली थे जैसे कवीर, दादू, मलूकदास आदि। इनमें सवसे ऊँचा स्थान कवीरदास का है। जीवन की जीवित अनुभूतियो को लेकर इस मसि और कागद न छूनेवाले

कृष्ण को लेकर दो धार्मिक सप्रदायो की स्थापना क्रमश रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य जी ने की थी। रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित श्री सप्रदाय की वागडोर जव राघवानन्द जी के वाद रामानन्द जी के हाय में आई तो उन्होने भक्ति का द्वार मनुष्य-मात्र के लिए खोल दिया। यद्यपि वे लोकहित के लिए वर्णाश्रम धर्म की उपेक्षा नही करते थे तथापि उपासना के क्षेत्र में वे जातिपांति, वर्ण-भेद जैसी तुच्छ भावनाओ को भी प्रश्रय नही देते थे। इसी का परिणाम था कि उनके वारह शिष्यो (अनतानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानद, नरहर्यानद, भावानद, पीपा, कवीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती और सुरसरी) में कवीरदास और रैदास जैसे भी प्रमुख शिष्य थे। इन्ही शिष्यो ने रामानन्द जी के मत का प्रचार और विस्तार करके गद्दियाँ स्थापित की, जिनके द्वारा रामभक्ति का निरतर विकास होता गया। राम को आराध्य देव मानकर अनेक भक्ति-सवधी छिटपुट पद गाये जाते रहे। किंतु कालातर में चलकर गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे विश्वकवियो में श्रेष्ठ कवि ने अपनी अमृत वाणी द्वारा हिंदी साहित्य को एक ऊँचे धरातल पर ला खडा किया। इस विश्वशिरोमणि कवि ने "रामचरितमानस" की रचना कर तत्कालीन धर्म, ज्ञान, दर्शन और अध्यात्म-सवधी अनेक विवादो, शैव और वैष्णवो के झगडो तथा राजनीतिक स्थितियो के कारण हताश जनता में समन्वय की भावना भरी और उनकी टूटती हुई वह श्रद्धाभक्ति जो निर्गुणवादियो के निराकार ब्रह्म और यौगिक पद्धति द्वारा पथच्युत कर दी गई थी, उसमें फिर से एकत्व और प्राण-सजीवनी का सचार किया। उन्होने केवल नाना-पुराण-निगम-आगमो से तत्त्व ग्रहण कर रामचरितमानस को एक पौराणिक शक्ति ही नही प्रदान की वरन् जीवन के सभी क्षेत्रो से अनुभूति ग्रहण कर तत्कालीन प्रचलित सभी काव्यरूपो और भाषा-पद्धतियो को अपनाकर साहित्य में नवीन प्रयोग भी किया। अपने पूर्ववर्ती छप्पय, कवित्त, पद, दोहा-चौपाई से लेकर घर-घर में गाये जानेवाले सोहर तथा नहछू जैसे लोक-छन्दो में अपनी मधुर रचनाएँ की। जहाँ हम शुद्ध अवधी का स्वरूप जानकीमगल, पार्वतीमगल, वरवैरामायण और रामलला-नहछू आदि में पाते हैं वही विनयपत्रिका, गीतावली और कृष्णगीतावली मे ब्रजभाषा के माधुर्य का आस्वादन भी करते हैं। यही नही, उन्होने साधारण अवधी भाषा में सस्कृत का पुट देकर तथा मुहावरो को माँजकर एक शुद्ध साहित्यिक भाषा का स्वरूप रामचरितमानस मे विकसित किया। उत्तर भारत में घर-घर मे, वात-वात में उद्धृत की जानेवाली चौपाई का महत्त्व केवल राम-जैसे महत्त्वपूर्ण नायक का चित्रण कर देने मात्र से ही नही है, वरन् उनके काव्य में त्याग, शौर्य, क्षमा, शील, विनय आदि के जो उदाहरण मिलते हैं, वे व्यक्ति से लेकर परिवार और परिवार से समस्त मानव-जाति को प्रेरणा देनेवाले सजीवनी तत्त्व हैं जो म्रियमाण व्यक्ति, जाति और राष्ट्र को प्रत्येक स्थिति से ऊँचा उठाने का सदेश देते हैं। महल से लेकर झोपडी तक व्याप्त हो जानेवाले उस महाकवि का यही रहस्य है। जैसे-जैसे हिंदी साहित्य का प्रचार और प्रसार वढ़ता जायेगा वैसे-वैसे गोस्वामी तुलसीदास का महत्त्व भी ससार को ज्ञात होगा। रूसी लेखक और प्रसिद्ध साहित्यकार वारान्निकोव ने रामचरितमानस का उन्ही छदो में अनुवाद कर विश्व के अन्य साहित्यको के सामने एक प्रशसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

हिंदी साहित्य में सूर और तुलसी दोनो ही समान रूप से आदृत और समान आसन के अधिकारी हैं। मौलिकता की दृष्टि से सूरदास का महत्त्व तुलसी से अधिक है, यह कहना अनुचित नही होगा। दूसरे कवि हैं नददास जिनके भ्रमरगीत-सार का माधुर्य कुछ अशो मे सूर से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। रसखान कृष्ण के मुसलमान भक्तो में से हैं जिनके रसपूर्ण कवित्त और सवैये व्रजभाषा के श्रेष्ठ रत्न हैं।

भक्तिकाल वास्तव मे हिंदी साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण काल है। इसमें न केवल तुलसी और सूर जैसे विश्वकवि ही मिले, अपितु केशवदास ऐसे महाकवि भी, जिन्होने रस, अलकार, छन्द आदि शास्त्रो का निरूपण किया। वरवै छन्द के प्रवीण मुसलमान कवि अब्दुर्रहीम खानखाना, कादिर, मुवारक, प्रकृति-वर्णन के कवि सेनापति, पुहकर, सुदर आदि अनेक महत्त्वपूर्ण कवियो ने अपनी सरस्वती से हिंदी साहित्य का भाडार समृद्ध किया है। इस काल का महत्त्व न केवल रामचरितमानस, हरिचरित्र, रुक्मिणी-मगल, सुदामाचरित्र, रामचद्रिका, वीरसिंहदेवचरित, लक्ष्मणसेनचरित, पद्मावत, अखरावट, तथा अर्द्धकथानक आदि अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक, आत्मकथात्मक आदि काव्य-ग्रथो के कारण ही है, वरन् इस काल में व्रजभाषा गद्य का साहित्य भी अपनी सपूर्ण महत्ता के साथ विकसित हो रहा था। मौलिक और अमौलिक दोनो प्रकार की रचनाएँ उसमे हो रही थी। कुछ साहित्यकारो का यह मत, कि व्रजभाषा मे गद्य की रचना हुई ही नही अथवा बहुत ही कम हुई है, ठीक नही है। सभवत उन लोगो के लिए वही बात है जो आचार्य शुक्ल के आदिकाल के सवध में आधुनिक विद्वानो द्वारा कही गई है अर्थात् व्रजभाषा गद्य का साहित्य उस समय तक उतना प्रकाश में नही आया था। अस्तु, इन मौलिक और अमौलिक प्रकार की रचनाओ में रामभक्ति, कृष्णभक्ति तथा पुराण, महाभारत, नीति, चरित्र-लीला-वर्णन आदि सभी प्रकार के विषयो पर रचनाएँ प्राप्त हैं। इसी प्रकार अमौलिक श्रेणी में टीकाओ और अनुवादो का स्वरूप परिलक्षित किया जा सकता है जो विषय की विविधता तथा साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से न तो नगण्य है, न कम ही कहे जा सकते हैं। अस्तु, यह कहने में कोई सकोच नही है कि भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल था, जिसमें साहित्य के सभी अगो के विकास की सभावना पूरी तरह चरितार्थ हो रही थी।

## शृंगारकाल

भक्तिकाल के उपरान्त जिस काव्य-साहित्य का प्रणयन हुआ उसे प्राय रीतिकाव्य की सज्ञा से विभूषित किया जाता है, किंतु "रीति" के नामानुसार उस काल (१७००-१९००) की प्रवृत्तियो की पूरी तरह अभिव्यक्ति नही हो पाती, क्योकि कुछ कवि ऐसे भी थे जो रीति-ग्रथो की परपरा से हटकर अत्यत सुन्दर कविताएँ लिख रहे थे। अस्तु, शृगार रस थोडा व्यापक और कम दोषपूर्ण नामकरण लगता है, यद्यपि शृगार की रचनाएँ भी प्रारभिक काल मे होती चली आ रही थी। अस्तु, जैसा कहा जा चुका है, काव्यप्रवृत्तियो के अनुसार इस काल को दो मुख्य धाराओ में बाँटा जा सकता है (१) रीतिबद्ध और (२) रीतिमुक्त रीतिबद्ध मे भी प्राय दो प्रकार

## आधुनिक काल

किंतु आधुनिक काल का प्रारंभ होते ही साहित्य के दरबार में खुसरो के काल से निरंतर हाजिरी देनेवाली उपेक्षिता, 'खड़ी बोली' से उसका जमकर सामना हुआ। इस बोली ने सीधे ब्रजभाषा पर आक्रमण नहीं किया बल्कि इतने काल तक जैसे वह उसके दुर्बल पक्षों की टोह लेती रही। उसे यह पता चलते देर न लगी कि ब्रजभाषा का हृदय जितना शक्तिशाली था उतना पैर नहीं। इसलिए गद्य की ओर से ही वह बढ़ी और उसके सभी क्षेत्रों पर उसने अधिकार कर लिया। भारतेंदु काल तक आते-आते उसने पद्य पर भी अपना दावा पेश कर दिया। बड़ी कशमकश और तू-तू, मैं-मैं के बाद वह काव्यक्षेत्र की सम्राज्ञी भी बन बैठी। लेकिन इसको एक सगी बहन उर्दू से भी सामना करना पड़ा, जिसका पालन-पोषण बड़े लाड-प्यार से गिलक्राइस्ट साहब कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में (हिंदुस्तानी नाम से) कर रहे थे। लेकिन यह चीज बहुत दिनों तक न चली। सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ और लल्लूलाल जी ने जिस भाषा का प्रचलन किया वह उर्दू की अपेक्षा कहीं हिंदीपन लिये थी। कालेज के दूसरे पंडित सदल मिश्र थे जिन्होंने हिन्दी गद्य की ओर और ध्यान दिया। जागरण के इस युग में खड़ी बोली का प्रचार करने में कई प्रकार की स्थितियों ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण योग दिया है जैसे अंग्रेज कर्मचारियों को देशी भाषा की शिक्षा दी गई, स्कूलों और पाठशालाओं में हिंदी भाषा के माध्यम से पढ़ाई प्रारंभ करने के निमित्त पाठ्य पुस्तकों का निर्माण किया गया, मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार, प्रेस और अनेक समाचारपत्रों का प्रकाशन तथा प्रतिद्वंद्विनी उर्दू भाषा ने भी काफी सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त कई प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष शक्तियों का भी खड़ी बोली के प्रचार में काफी हाथ रहा, जैसे आर्यसमाज जैसी समाजसुधारक संस्थाओं के आन्दोलन, राष्ट्रीय कांग्रेस संस्था की अनुप्रेरणा, पत्र-पत्रिकाएँ इत्यादि। फिर भी कहना न होगा कि खड़ी बोली का प्रारंभिक साहित्य भी भाषा-संबंधी कशमकश से गुजर रहा था। उर्दू, ब्रजभाषा और हिंदी की त्रिवेणी साहित्य के उपकूलों में प्रवाहित हो रही थी।

इसी समय एक अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति का हिंदी में आविर्भाव हुआ। वह थे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, जिन्होंने हिंदी साहित्य के केन्द्र में अवस्थित होकर उसके संपूर्ण वृत्त को परि-चालित किया था। रचनात्मक और क्रियात्मक दोनों ही ढंग से उन्होंने हिन्दी की सेवा की, प्रेरणा दी, माँजा-खरादा और उसका एक स्तर स्थापित कर दिया। जहाँ उन्होंने २० नाटक, ८ आख्यान उपन्यास, २७ काव्य, ७ स्तोत्र, १८ परिहास प्रहसन, ८ अनुवाद, ८ धर्म-इतिहास-संबंधी लेख तथा अनेक राजभक्ति, देशप्रेम, साहित्यप्रेम सम्बन्धी लेख लिखे वहीं उन्होंने चार नवीन रसों की स्थापना की। अवधी हिंदी, खड़ी बोली, उर्दू आदि के अतिरिक्त गुजराती, बँगला और अनेक प्रांतीय भाषाओं में भी रचनाएँ कीं। ब्रजभाषा में जहाँ सूर, बिहारी, मतिराम, पद्माकर की विशेषताओं में उनके दर्शन होते हैं, वहीं लोक-जीवन की आत्मा को मुखरित करनेवाले छंदों, होली, कजली, लावनी, भजन आदि में भी उन्होंने रचनाएँ उपस्थित कीं। वे व्यक्ति नहीं संस्था थे, साहित्य-

कार्य को आगे वढाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग मे हिंदी साहित्य की वहुमुखी अभिवृद्धि, उसका प्रचार-प्रसार वडे ही जोश-खरोश के साथ हुआ।

## महावीरप्रसाद द्विवेदी का युग

भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र जी ने हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए जो व्यापक आधार-शिला प्रस्तुत की थी, उस पर ईंट रखकर महल निर्माण करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी को है। व्रजभापा वनाम खडी वोली को (काव्य में) लेकर जो विवाद छिडा हुआ था, उसके प्रतिपक्षियो का कहना था कि खडी वोली में काव्य-रचना के उपयुक्त छन्द मिल ही नही सकते। द्विवेदी जी ने सस्कृत के अनेक छदो में काव्य-रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि वह काव्य-रचना के पूर्णतया अनुकूल है। इस प्रकार जहाँ छदो का पुनर्जागरण किया वही उन नये लेखको को, जो लिखना प्रारभ कर रहे थे, किंतु व्याकरण की अशुद्धियो की ओर ध्यान न देते थे, शुद्ध भापा लिखना सिखाया। यह सौभाग्य की ही वात थी कि 'सरस्वती' पत्रिका के वे सपादक थे, जिसके कारण तत्कालीन अनेक लेखको से उनका सपर्क हुआ। भापा के सवध में उन्होंने जो कठोरता वरती उसके परिणामस्वरूप हिंदी भापा का एक ऐसा स्तर हो गया, जिसे लेकर वह तत्कालीन अन्य प्रातीय भापाओ के साहित्यकारो के सामने अपना सिर ऊँचा रख सकती थी। द्विवेदी जी ने न केवल भाषा और छदो का सुधार ही किया वरन् सस्कृत के विशाल साहित्य से हिंदीवालो का परिचय अपने लेखो द्वारा कराकर उन्होंने विचार, अनुभूति और व्यापकता का नया क्षेत्र खोल दिया। मराठी और वँगला का अव्ययन भी उनका था। अस्तु, उनकी गतिविधि से परिचित होकर ये हिन्दी को समयानुकूल वनाने का वरावर प्रयत्न करते रहे। उनके लेखो और पुस्तको की एक लम्वी तालिका है जो उनकी जिज्ञासु और अव्ययनशील मनोवृत्ति को प्रकट करती है। सस्कृत साहित्य और हिंदी साहित्य, भापा तथा आलोचना सववी विपयो के अतिरिक्त उन्होंने जलचिकित्सा, नाट्यशास्त्र, पुरातत्त्व प्रसग, विज्ञानवेत्ता, विदेशी विद्वान्, सपत्तिशास्त्र आदि विपयो पर भी अपनी लेखनी चलाई थी। इसके अतिरिक्त आलोचना का कार्य यद्यपि भारतेन्दु के समय से ही प्रारभ हो गया था पर उसका शास्त्रीय और व्यावहारिक रूप द्विवेदी जी के करकमलो द्वारा ही सपादित हुआ। अपनी प्रौढ लेखनी से उन्होंने जिन कवियों को उत्साहित कर तैयार किया उनमें श्री मैथिलीशरण गुप्त का नाम सवसे पहले आता है।

वास्तव में द्विवेदी युग आन्दोलन तथा साहित्य की श्रीवृद्धि का युग है। गद्य, पद्य, व्याकरण, दर्शन, अलकार, छद आदि के अतिरिक्त निवध, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि साहित्य के विविध अगो की उन्नति भी हुई। इस काल के लेखको और कवियो में प्रमुख हे वालमुकुन्द गुप्त, रामचरित उपाध्याय, कामताप्रसाद गुरु, रामदास गौड, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रूपनारायण पाडेय, मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी', मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पाण्डेय और रामनरेश त्रिपाठी आदि।

भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक ही साहित्यिक प्रवृत्तियो मात्र का अव तक हमने निरूपण किया है, जिसमें मुख्यता प्राय काव्य की ओर ही रही है। यद्यपि इस वीच गद्य को

का अनुवाद किया। सस्कृत के नागानद, मृच्छकटिक, महावीरचरित, उत्तररामचरित, मालती-माधव आदि का अनुवाद राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० ने किया। इसी प्रकार ज्वाला-प्रसाद मिश्र, प० सत्यनारायण कविरत्न आदि ने कुछ और सस्कृत के नाटको का अनुवाद किया। मौलिक नाटको के लेखक बहुत कम रहे। उनमें कुछ ही प्रमुख है जैसे प० किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिह उपाध्याय, प० बलदेवप्रसाद मिश्र, शिवनदन सहाय, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि।

प्राय इन (मौलिक) नाटको के विषय पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा समकालीन जीवन से सबधित होते थे।

## कथा-साहित्य

इशा अल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी, लल्लूलाल जी की सिंहासनबत्तीसी, वैताल-पचीसी तथा सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान से आधुनिक युग के कथा-साहित्य का विकास माना जा सकता है। वैसे उपन्यासो का श्रीगणेश भी भारतेन्दु काल से ही मानना चाहिए। लाला श्रीनिवासदास, ठा० जगमोहनसिंह, भट्टजी, गौरीदत्त, कार्त्तिकप्रसाद, मिश्रजी (प्र० ना०), हरिऔध आदि लेखको ने उपन्यास लिखे। लेकिन उपन्यासो के क्षेत्र में क्रातिकारी परिवर्तन देवकी-नदन खत्री के तिलस्मी उपन्यास चन्द्रकाता-सतति ने किया। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासो की भी काफी धूम रही है। मौलिक उपन्यासो के अतिरिक्त अग्रेजी, बँगला और उर्दू में भी काफी सख्या में अनुवाद किये गये।

कहानियो का आरभ 'सरस्वती' की पुरानी फाइलो में देखने को मिल जाता है। सवत् १९५७ से सवत् १९६४ तक क्रमश किशोरीलाल गुप्त, मास्टर भगवानदास, रामचन्द्र शुक्ल, गिरिजादत्त बाजपेयी तथा 'बग महिला' की इदुमती और गुलबहार, प्लेग की चुडैल, ग्यारह वर्ष का समय, पडित और पडितानी, दुलाईवाली कहानियो में से कुछ ही मार्मिक बन पडी थी। कथा-साहित्य का यह क्षेत्र द्विवेदी युग तक बहुत महत्त्वपूर्ण नही समझा गया था।

## आलोचना

भारतेन्दु के पूर्व आलोचना का सैद्धान्तिक रूप रीतिकालीन कवियो की टीकाओ में था, किंतु बिलकुल नगण्य। वास्तव में आलोचना का भी सूत्रपात भारतेन्दु के ही समय में हुआ, वह भी साकेतिक रूप में। काव्य-सबधी आलोचना प्राय शिष्ट नही समझी जाती थी इसलिए इस अग को उतना प्रोत्साहन नही मिला। फिर भी भारतेन्दु, प्रेमघन, भट्ट, मिश्र आदि के लेखो में थोडी बहुत प्रवृत्ति अवश्य लक्षित की जा सकती है, विशेषत उन निबधो में जो ब्रजभाषा और खडी बोली को लेकर लिखे गये। द्विवेदी युग मे अवश्य ही अध्ययन और विवेचन-सबधी लेख दृष्टिगत होते है। कवियो के गुणदोषो का परिचय, विश्लेषण सरस्वती में होता रहा। मिश्रबंधु अम्बिकादत्त व्यास, पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन, किशोरीलाल गोस्वामी, बदरीनाथ भट्ट

सबसे बडी विशेषता छायावाद और छायावादोत्तर कवियो की यह रही है कि कविता में उन्होंने अन्य सभी ललित कलाओ के गुणो का—जैसे सगीत से सगीतात्मकता, नाटक से सजीवता, चित्र से चित्रात्मकता—समन्वय करके, जीवन की एक नयी व्यजना का कलात्मक दृष्टिकोण अपनाया है।

## प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

छायावादोत्तर काल की ये दोनो शैलियाँ प्राय छायावाद से भिन्न मानी जाती हैं, किंतु सच तो यह है कि ये छायावाद के विकास के परिणाम-स्वरूप ही हैं। छायावाद जहाँ स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था, प्रगतिवाद वही पुन सूक्ष्म के प्रति स्थूल अथवा दूसरे शब्दो में अयथार्थ के प्रति यथार्थ का विद्रोह था। मार्क्सवादी सिद्धातो को लेकर जब तक यह काव्य जनता, जीवन और वास्तविकता का सदेशवाहक था तब तक तो यह काव्य की प्रेरणा की वस्तु रहा, किंतु ज्योंही इस सिद्धात से च्युत होकर एक विशेष मतवाद का पोषक हो गया, अपनी साहित्यिक महत्ता खो बैठा। परन्तु इसने छायावाद के विलासोपकरण से साहित्यकारो का ध्यान खींच कर उनमें ओज, शक्ति और पौरुष को पुन उद्दीप्त किया। इस धारा के कवि प्राय वही हैं जो छायावाद के उन्नायक थे और स्वच्छन्दतावाद के अनुगामी केदारनाथ अग्रवाल, डा० रामविलास शर्मा, नागार्जुन आदि अनेक कवियो ने इसमें योग दिया।

इस प्रगतिवादी काव्यधारा के साथ राष्ट्रीय गुलामी से मुक्त होने की प्रबल आकाक्षा मिल गई। परिणामस्वरूप जो राजनैतिक साम्यवाद साहित्य को अपना प्लेटफार्म बनानेवाला था, न बना सका। क्षेम की क्रान्ति लेकर स्वाधीनता का स्वर फूट निकला, करो या मरो, अग्रेजो भारत छोडो, की प्रतिक्रिया से दीप्त होकर गोपालसिंह नेपाली, सोहनलाल द्विवेदी, दिनकर आदि कवियो ने क्रान्तिकारी भावनाओ से ओतप्रोत कविताएँ लिखनी शुरू की।

## प्रयोगवाद

इस प्रकार छायावाद और प्रगतिवाद ने मिलकर साहित्य के प्राय सभी अभावो को दूर कर दिया। काव्य-चेतना के लिए जितने भी पोषक तत्त्व, दर्शन, सिद्धान्त अथवा अनुभूतियाँ प्रचलित थी, उन सबका समाहार हिंदी साहित्य में प्राय हो गया था इसलिए काव्य की गति कुछ अस्थिर पड गई। आश्चर्य की बात है कि सम्पूर्णता की इस स्थिति को अनेक आलोचको ने गतिरोध की सज्ञा दी। वास्तव में वह विराम और विजय की स्थिति थी, जिसमें आश्वस्त होकर कवि की चिन्ताधारा अपनी अभिव्यक्ति के नये रास्ते ढूंढ रही थी। सभव था कि काव्य में जितनी जल्दी प्रयोगवाद आ गया उतनी जल्दी न आया होता तो शायद स्थिति कुछ और भी परिपक्व होती। किंतु नवीनता और प्रयोग का मायामृग दिखाकर यशातुर कुछ व्यक्तियो ने बिना किसी जीवन-दर्शन के जो भुलावा दिया उसका परिणाम तत्काल बहुत अच्छा न हुआ। सब अपनी-अपनी डफली और अपने-अपने राग में मस्त हो गये। नतीजा यह हुआ कि मैदान खाली देखकर

उनका व्यावहारिक पक्ष उत्तरी भारत की मास्कृतिक परपरा को अब तक जीवित करता आ रहा है। कहा जा चुका है कि भारतेन्दु के समय में ही नाटको का लेखन प्रारभ हो गया था किंतु उसका विकास आगे चलकर प्रसाद और प्रसादोत्तर नाटककारो ने किया। ऐतिहासिक, मास्कृतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्राय सभी प्रकार के नाटको की परपरा हिंदी मे प्रारभ हुई। 'प्रसाद युग' के प्रमुख नाटककारो मे उल्लेख योग्य नाम है—जयशकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, प्रेमचद, उग्र, गोविन्दवल्लभ पत, कौशिक, जी० पी० श्रीवास्तव, वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री, लाला सीताराम, गोपालराम गहमरी आदि। प्रसादोत्तर नाटककारो में मुख्य है—श्री हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, रामकुमार वर्मा, अमृतलाल नागर, रघुवीरशरण मित्र, विष्णु प्रभाकर , जगदीशचन्द्र मायुर, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', लक्ष्मीनारायण लाल आदि।

## एकांकी

एकाकी नाटको का विकास भी प्रसाद से ही मानना चाहिए। उनके 'एक घूंट' के पहले एकाकी का स्वरूप हिंदी में नही मिलता। बर्नार्ड शॉ और इब्सन ने हिन्दी के एकाकी साहित्य को बहुत प्रभावित किया है जिसका उदाहरण भुवनेश्वरप्रसाद का 'कारवा' है। एकाकी नाटको के विषय भी विविध और व्यापक है। इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाले व्यक्ति है, डा० रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, प्रेमी, गोविन्ददास, 'अश्क', सद्‌गुरुशरण अवस्थी, जगदीशचद्र मायुर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भगवतीशरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा आदि ।

## रेडियो रूपक

रेडियो के प्रचार के कारण दृश्य नाटको की अपेक्षा ऐसे नाटको की आवश्यकता पडी जो श्रव्य हो और जिन्हें प्रसारित किया जा सके। ध्वनि के माध्यम से रसानुभूति करानेवाले इस प्रकार में शिल्प-विधि की कुशलता अत्यधिक आवश्यक होती है। इसमें प्रमुख है जगदीशचद्र मायुर, उदयशकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भगवतीचरण वर्मा और अमृतलाल नागर, प्रभृति ।

## उपन्यास

सामाजिक, जासूसी, तिलस्मी तथा ऐतिहासिक नाटको का विकास द्विवेदी युग तक हो चुका था। परवर्ती काल में साहित्य में नये वादो के जन्म से वस्तु और शिल्प दोनो दृष्टियो से जिस प्रकार काव्य प्रभावित हुआ उसी प्रकार उपन्यास-साहित्य भी हुआ। प्रेमचद इस युग के उपन्यास-सम्राट् हैं । उनके अतिरिक्त कौशिक प्रसाद, जी० पी० श्रीवास्तव, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, निराला, राहुल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्र, इलाचद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'अज्ञेय', यशपाल, रागेय राघव प्रभृति कुछ ऐसे

नागरीप्रचारिणी सभा, राष्ट्रभाषा-प्रचार सभाएँ तथा अन्य हिंदी की सस्थाएँ हिन्दी-प्रचार और प्रसार के लिए जो व्यापक प्रयत्न कर रही है, उसके द्वारा अन्य अहिंदी प्राती के लेखको तथा साहित्यकारो की रचनाओ से भी हिंदी साहित्य का ज्ञान-भडार बढता ही रहा है। आये दिन पत्र-पत्रिकाओ की सख्या की अभिवृद्धि हिंदी के नये लेखको को प्रकाश में लाने का कार्य तो कर ही रही है किंतु उसके साथ ही साथ हिंदी की लोकप्रियता भी निरतर ही बढाती जा रही है। जिन लोगो का यह कहना है कि हिंदी का साहित्यिक स्तर उतना ऊँचा नही है, जितना अन्य भाषाओ का, वे बिलकुल भ्रम में है। यह उनका पूर्वाग्रह है जो उनकी आँखो को बन्द किये रहता है। भारतवर्ष की किसी भाषा के साहित्य से हिंदी का साहित्य घटकर नही है और यह नितात सत्य है कि जितना रचनात्मक और आलोचनात्मक कार्य साहित्य के विभिन्न अगो को लेकर हिन्दी में हो रहा है, उतना शायद किसी भी भाषा में नही है। बहुत लोग हिंदी बोलते है इसलिए नही, वरन् उसका साहित्य भी इतना यथेष्ट, सर्वांगपूर्ण और सम्पन्न है कि उसको राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त होना ही है।



इस क्षेत्र में स्वयम् शिव की प्रतिष्ठा के कारण इसका माहात्म्य और भी वढ गया है। ये विष्णु के क्रोड-समान है। उनको भक्तिपूर्ण हृदय से प्रणाम करनेवाले विष्णुलोक पाते है। मृत्यु के बाद विष्णुलोक पाने की कामना विरजा क्षेत्र में स्थापित स्वयम् शिव जी के दर्शन से ही पूर्ण होती है। इसी से यह क्षेत्र प्राचीन काल से एक तीर्थ माना गया है। इस क्षेत्र में पिडदान करने से पितृपितामह आदि को अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है।[1] यहाँ विरजा देवी के ईशान कोण में स्थित पूर्वपुरुषो को मुक्ति देनेवाला परम पवित्र नाभिगया तीर्थ है।[2] विरजा क्षेत्र का यह माहात्म्य सर्व-विदित है कि उपरोक्त नाभिगया तीर्थ में पिण्डदान करने से पूर्वपुरुषो को मुक्ति मिलती है। इसी तीर्थ के कारण यह क्षेत्र हिंदुओ में वहुत प्रसिद्ध है।

जव जगन्नाथ-सडक जाजपुर से होकर जाती थी उस समय जाजपुर तीर्थयात्रियो का एक दर्शनीय स्थान था। किंतु जव से वह कवाटवव के कारण हटा दी गई और रेलमार्ग जाजपुर से वहुत दूर पड गया, उसी समय से यह यात्रियो की पहुँच से काफी दूर हो गया है।

उपरोक्त माहात्म्य से स्पष्ट है कि विरजाक्षेत्र अत्यन्त प्राचीन काल से पिंडदान, विष्णु-लोक-प्राप्ति का स्थान, सप्तपुरुषो के उद्धार की तीर्थ-भूमि और पापमोचनहारी पुण्यस्थली के रूप में मान्य है।

इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में कई अन्य पवित्र स्थान है जिनके कारण यह और भी लोकप्रिय वन गया है। यहाँ कपिल, गोग्रह, सोम, अलावु, मृत्युञ्जय, क्रोड, वासुक और सिद्धेश्वर नामक अष्ट तीर्थ है। इन तीर्थों का विधिपूर्वक सेवन करने से मुक्ति और ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।[3] यहाँ वराहमदिर में मुक्तिदायक विष्णु के वाराह अवतार[4],

---

१. विरजे यो मम क्षेत्रे पिंडदान करोति वै।
स करोत्यक्षयां तृप्ति पितृणा नात्र सशय ॥—ब्रह्मपुराण ४२।९

२ तत्र श्री विरजे क्षेत्रे देव्या ईशानकोणतः।
गयानाभिर्महापुण्य पितृणां मुक्तिदायक.॥—कपिलसहिता।

३ कपिले गोग्रहे सोमे तीर्थे चालावुसज्ञिते।
मृत्युंजये क्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकेश्वरे।
तीर्थेष्वेतेषु मतिमान् विरजे सयतेन्द्रियः,
गत्वाष्टतीर्थं विधिवत् स्नात्वा देवान् प्रणम्य च।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थित ।
उपगीयमानो गंधर्वैमम लोके महीयते। वायुपुराण, अ० ४२-६, ७

४ वराहरूपी भगवान् तत्रास्ते मुक्तिदायक ।—कपिलसंहिता।

में देवताओ द्वारा स्तुत मृत्युजय नामक एक तीर्थ और है जिसमें स्नान करने से मृकण्डु-तनय ने मृत्यु पर विजय पाई थी।[1]

विरजा क्षेत्र के उपरोक्त माहात्म्य प्रकट करते है कि यह अत्यत प्राचीन काल से वहुत ही प्रसिद्ध तीर्थ रहा है। इस सुरम्य नगरी में निर्मित अधिकाश मदिर मुसलमानो द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो गये है। उनमें विरजा मदिर, वराहनाथ मदिर और हीरापुर के पास गोपीनाथ जी का मदिर अव तक विद्यमान है। विरजा मदिर की मरम्मत कई वार की जा चुकी है। इसका प्रमाण मदिर की भीतरी दीवार और स्तम्भ में मिलता है। हीरापुर के निकट गोपीनाथ जी का मदिर है, जो अत्यत सुन्दर और नक्काशी से पूर्ण है। जाजपुर नगरी में एक प्रस्तर-निर्मित स्तम्भ है जो थोडा झुक गया है। इसकी ऊँचाई ३३ फुट है। इसका दारुकार्य अत्यत सुन्दर है। विरजा क्षेत्र सैकडो वर्षों से पवित्र तीर्थस्थान और सुन्दर नगरी के रूप में प्रसिद्ध है। यह वहुत दिनो तक भौमिक राजाओ की राजधानी भी रहा है।

## कपिलास क्षेत्र

विरजा क्षेत्र के वाद कपिलास क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन करने योग्य है। यह क्षेत्र ढेंकानाल गड से १२ मील दूर, पहाड के शिखर पर है। विरजा क्षेत्र (जाजपुर) और एकाम्र क्षेत्र (भुवनेश्वर) के वीच कैलास पर्वत पर स्थित है। यहाँ सर्वपापहारी श्री शिखरेश्वर महादेव है।[2] कैलास-धाम का स्थान अत्यत मनोरम और शान्त है। पुराणो में वर्णन आता है कि रावण ने जव कैलास पर्वत को उठाया तो कैलास का एक शृग विच्छिन्न होकर अलग आ पडा। तव से इसका कपिलास नाम पडा। वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यत रमणीय है, जिसका पता इन श्लोकों से चलता है—

वकुलैश्चम्पकैर्वृक्षै सपुष्पैरुपशोभितै ।
सपत्रैश्च तु पुन्नागै नारिकेलै सचामरै ।
अशोकैर्मालितीभिश्च माधवीभि कदवकै ।
सेवतिकाभि कुदैश्च कचनै श्वेतरक्तकै ।
एव नानाविधैर्वृक्षै नानाविधवरैरपि ।
विश्वनाथस्य तत्स्थान पुनीत वै समन्तत ।

—कपिलसहिता

---

१ तत्र मृत्युजय नाम तीर्थं देवगणै स्तुतम्।
मृकण्डुतनयो यत्र स्नात्वा मृत्यु जिगाय च।—क० सं०।

२. विरजैकाम्रमध्ये कैलासं च श्रुतं द्विजाः।
सर्वपापहरो देवस्तत्र श्रीशिखरेश्वर ।—वही।

## कृत्तिवास क्षेत्र अथवा एकाम्रकम्

ओडिशा के तीर्थों में कृत्तिवास क्षेत्र भारत-विख्यात है। प्राचीन काल से यह बहुत ही पवित्र और प्रतिष्ठित माना जाता है। छठी और सातवी शताब्दी मे इस पुण्यभूमि पर अनेक मन्दिरो का निर्माण हुआ था। इन मदिरो को विभिन्न राजवशो के शासको ने समय समय पर बनाकर इस तीर्थ का गौरव बढाया था।

दशवी और ग्यारहवी शताब्दी में उत्कीर्णित ब्रह्मेश्वर मन्दिर के शिलालेखो से पता चलता है कि भुवनेश्वर का नाम एकाम्र था। गगवशी राजाओ के शिलालेखो में इसका नाम कृत्तिवास क्षेत्र (कृत्तिवास कटक) खुदा हुआ है। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि काशी के समान यह सर्व-पापनाशक है। वहाँ एक कोटि लिंग है। अष्ट तीर्थों में यह एकाम्र नाम से प्रसिद्ध है।[1] यहाँ सभी लोगो के हितार्थ स्वय भुक्ति-मुक्तिदाता कृत्तिवास वृषध्वज शिव वास करते है।[2]

**विंदुसरोवर**—विन्दु सरोवर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन चन्द्रा देवी के अनन्त वासुदेव मन्दिर के शिलालेख में भी मिलता है। शिलालेख में कहा गया है कि उपमा में सागर सा अतुल-नीय, पथिको की क्लान्ति को मिटानेवाला, अमृततुल्य विन्दु सरोवर तीर्थ को लोगो के हितार्थ शिव जी ने बनाया था। इसका जल शिव जी की जटा से बहते हुए गगा-जल सा पवित्र और निर्मल है। इससे किसी दूसरे तीर्थ की तुलना नही की जा सकती है। यह तीर्थ प्राणिमात्र के दु ख और सताप का नाशक है।[3] ब्रह्मपुराण का कथन है कि रुद्रदेव ने पृथ्वी के सभी पवित्र तीर्थों, नदियो, सरोवरो, तालावो, कूपो और सागरो से अलग अलग एक एक बूंद जल देकर ससार के हितार्थ ऋषियो के साथ इसी क्षेत्र में एक तीर्थ का निर्माण किया था। रुद्र द्वारा निर्मित उस तीर्थ का नाम विंदुसरोवर है।[4] इस विंदुसरोवर में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता

---

१. शृणुष्व मुनिशार्दूल प्रवक्ष्यामि समासत ।
सर्वपापहरं पुण्य क्षेत्र परमदुर्लभम्।
लिंगकोटिसमायुक्त वाराणसिसम शुभम्।
एकाम्रकेति विख्यात तीर्थाष्टकसमन्वितम्।—ब्रह्मपुराण, अ० ४१। १०, ११।

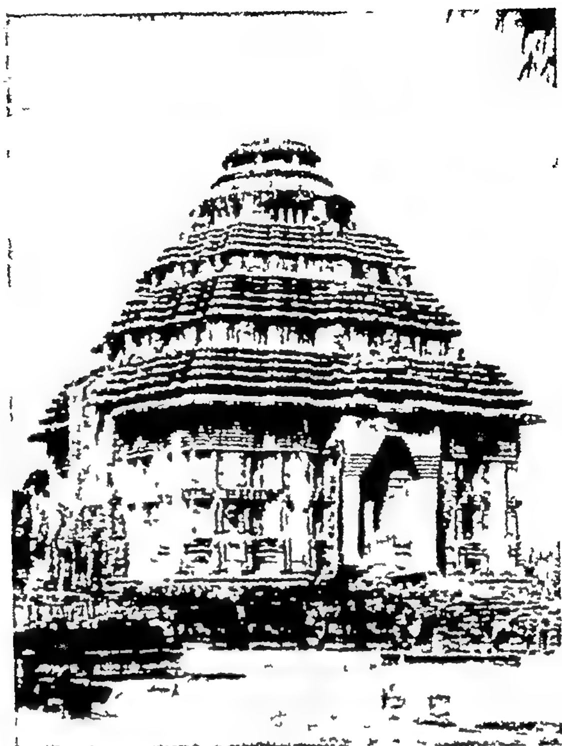
२. आस्ते तत्र स्वय देव कृत्तिवासा वृषध्वज.।
हिताय सर्वलोकस्य भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः।

३ यस्मिन् बिन्दुसरः सरस्वदसदृगहृक पेय पायः यत्
पान्थ शान्तिहर सुधा जनिता नि स्यन्दवपु शाम्भवी।
यद्बिन्दोरपि नानुयान्ति पदवीं तीर्थानि तानि स्फुट
भूतानुग्रहनिर्मितं पुरजिता लोकैकशोकापह॥

४ पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरासि च।
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्य· कूपाश्च सागरा.।



नरेन्द्र सरोवर, पुरी



( ऊपर ) सूर्यमन्दिर, कोणार्क ( नीचे ) गज-सिंह मूर्त्ति, कोणार्क



**मेघ वा मेघेश्वर तीर्थ**—मेघेश्वर मन्दिर के शिलालेख से पता चलता है कि स्वप्नेश्वर देव ने १२वी शताब्दी में मेघेश्वर तीर्थ मे[1] मेघेश्वर नामक एक शिवालय का निर्माण कराया था। यह तीर्थ अत्यत पवित्र और पापनाशक तथा पुण्यवर्द्धक है।[2] इसमें स्नान करके पितरो को जल देने से इन्द्रलोक प्राप्त होता है।[3]

**सिद्धतीर्थ**—इसी तीर्थ मे मेघेश्वर की स्थापना एव महिमा का उपरोक्त उल्लेख मेघेश्वर मदिर के शिलालेख और स्वर्णाद्रि महोदय में भी किया गया है। ये सभी एकाम्र तीर्थ (भुवनेश्वर) के अतर्गत हैं।

भुवनेश्वर के सिद्धेश्वर तीर्थ मे स्नान करने पर सारी कामनाएँ पूरी होती हैं[4] और त्रिभुवन के तीर्थों का फल मिलता है।[5]

**अलावू तीर्थ**—एकाम्र कानन में अलावू (अलाल) नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। इस तीर्थ में स्नान कर अलालेश्वर जी के दर्शन करने से मनुष्य नन्दीलोक को जाता है।[6] स्वर्णाद्रि महोदय में लिखा है कि इन्द्रवाक् नामक ब्राह्मण ने यहाँ एक लाख वर्ष तक तपस्या की थी। उसकी तपस्या से महादेव जी ने प्रसन्न होकर उसे वर माँगने को कहा। विप्र ने अपने भिक्षापात्र को एक पवित्र जलकुण्ड मे वदलने तथा उसे तीर्थ की स्याति पाने का वर माँगा। इस प्रकार यह स्थान शिव जी के द्वारा अनुमोदित होकर तीर्थ वन गया।

**रामतीर्थ**—भुवनेश्वर में रामतीर्थ या अशोक तीर्थ नामक एक दूसरा प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ स्नान करने पर मनुष्य विष्णुलोक को जाता है।[7] यही रामचन्द्र जी ने शिव जी की पूजा की थी, इसी से इसका रामेश्वर नाम पडा। 'स्वर्णाद्रि महोदय' में वर्णन है कि रामचन्द्र जी ने लका में राक्षसो का वध करके अयोध्या को लौटने पर असुरो को मारने के पाप से मुक्ति पाने के लिए गुरु वशिष्ठ से परामर्श लिया। वशिष्ठ जी ने उन्हें एकाम्र तीर्थ में एक शिवालय की

---

१ मेघेश्वर च तत्रास्ते तीर्थं परमपावनम्।—स्व० म०।

२. मेघे तीर्थे नर स्नात्वा सतर्प्य पितृदेवता.।
मेघेश्वर समालोक्य शक्रलोकमवाप्नुयु.।—वही।

३ तत्र मेघेश्वर तीर्थं पापघ्न पुण्यवर्द्धनम्।—वही।

४. तीर्थं सिद्धेश्वरं नाम सिद्धिद सर्वकामदम्।—क० स०।

५ सिद्धेश्वरे मनोज्ञे च प्रसन्नसलिले शुभे।
स्नात येन दिनैकं च स्नात तेन जगत्त्रये।—वही।

६. अलावूतीर्थं तत्रास्ते शोभितं तत् स्वरूपत.।
तत्र स्नात्वा शिव दृष्ट्वा नन्दीलोक व्रजेत् नरः।—स्व० म०।

७ अशोकाक्षरसज्ञा या स्नात्वा रामेश्वर हरम्।
दृष्ट्वा पापक्षयं कृत्वा विष्णुलोकमवाप्नुयात्।—वही।

वर्णन मिलता है। आठ तीर्थ बिंदुसरोवर, सिद्धतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, मेघेश्वर तीर्थ, अलाबू तीर्थ, रामतीर्थ या अशोक झर, कोटि तीर्थ और कपिल तीर्थ हैं।

**अन्यान्य तीर्थ**—देवीपदतीर्थ लिंगराज मदिर के पूर्वी भाग में अवस्थित है। इसमें स्नान करने पर अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।[1]

**गन्धवती तीर्थ**—भुवनेश्वर के पास गन्धवती (गँगुआ) नदी बहती है। पुराणो के अनुसार यह नदी उत्कल में प्रयाग के तीर्थराज के समान मान्य है। इसमें स्नान करने से मुक्ति मिलती है। यह प्रच्छन्नरूपिणी गगा के नाम से प्रसिद्ध है।[2]

**पुरी या शखक्षेत्र**—लगभग ७१७ ईसवी में इन्द्रभूति द्वारा लिखित ज्ञानसिद्धि नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि उस समय तक पुरी में जगन्नाथ जी की पूजा का महत्त्व चारो ओर स्थापित हो गया था। गगवशी राजाओ के द्वारा दिये गये ताम्रपत्रो से पता चलता है कि पुरुषोत्तम क्षेत्र और महोदधि का माहात्म्य भारत भर में फैल गया था। इसी पुरुषोत्तम क्षेत्र का दूसरा नाम पुरी है। नीलाद्रि महोदय तथा अन्य ग्रन्थो से पता चलता है कि इसका दूसरा नाम शखक्षेत्र भी था और इसका क्षेत्रफल पाँच कोस का था।[3] यह नीलाचल नाम से भी विख्यात है।[4]

ओडिशा में यह एक अन्यतम तीर्थ है और इसका माहात्म्य युगो से सुविदित है। इस पुरुषोत्तम क्षेत्र के अतर्गत महोदधि, इद्रद्युम्न, मणिकर्णिका आदि अनेक तीर्थ हैं।[5]

**महोदधि तीर्थ**—पुरुषोत्तम क्षेत्र के नाना तीर्थों में यह भी एक तीर्थ है जो वैष्णवो की पुण्यस्थली है। इस तीर्थ के स्पर्श से ही यह (महोदधि) तीर्थराज के नाम से प्रसिद्ध हो गया है।

---

१. देवीपदद्वय तत्र तीर्थं त्रैलोक्यपावनम्।—ब्रह्मपुराण।

२ नाम्ना गन्धवती ख्याता याति गगा सरित्वरा।
तत्रैव च प्रयागस्तु तीर्थराज प्रकीर्तित.।
प्रच्छन्नरूपिणी गगा शिवोपासनतत्परा।—स्व० म०।
स्नात्वा गंधवतीतीर्थं दृष्ट्वा ब्रह्मेश्वर हरम्।
स्वकुलैरेकविंशत्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्।

३. पच क्रोशायतियुत शंखाकारं मनोहरम्।
शखाकारोऽपि तन्मध्ये राजते नीलभूधर·।—नीलाद्रि महोदय।

४. नीलाचलसमुल्लासं पापराशिविनाशनम्।—वही।

५. नानातीर्थसमायुक्तम् कोटिब्रह्मांडदुर्लभम्।
गन्तुं समर्थास्ते सर्वे ये वै भक्ता जनार्दने।
यत्क्षेत्रस्पर्शतो विप्राः समुद्रतीर्थराट् स्मृत·।—वही।

ब्रह्मपुराण में इस तीर्थ का विवरण जगन्नाथ देव और ब्रह्मा के वार्तालाप के माध्यम से उपस्थित किया गया है। जगन्नाथ जी ब्रह्मा से कहते हैं—दक्षिणी सागर के तट पर जहाँ न्यग्रोव वृक्ष है वही दस योजन के विस्तृत क्षेत्र में पुरुषोत्तम क्षेत्र भी है। इस क्षेत्र के वृक्ष कल्पपूर्व के है। अनेक उल्कापातो से भी वे नष्ट नही होते। वहाँ मैं स्वय रहता हूँ। उस वटवृक्ष के दर्शन और छाया से अन्य पाप क्या, ब्रह्महत्या से भी मुक्ति मिल जाती है।[1] इसमें चक्र और नरेन्द्र नामक दो और तीर्थ है। नी० म० में अन्य कई तीर्थों का भी उल्लेख है।[2]

**कोणार्क या अर्कक्षेत्र**—ब्रह्मपुराण में इस तीर्थ का उल्लेख आया है। उसमें ब्रह्मा मुनियों से कहते हैं कि समुद्र के तट पर दिवाकर का सुन्दर तीर्थ अवस्थित है। यह क्षेत्र चारो ओर से वालुका की राशि से आकीर्ण है।[3] वहाँ सूर्य का जगत्प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र है। वह एक योजन के विस्तार में फैला हुआ है।[4] इस क्षेत्र में साक्षात् सहस्राशु दिवाकर वास करते है। वे साधको को भोग और मोक्ष प्रदान करते है।[5] यहाँ पहुँचकर जब तक सूर्य को यथाविधि अर्घ्यदान न दे ले तब तक विष्णु, शिव अथवा सुरेश्वर किसी की पूजा न करे।[6]

---

वेनातवनामाकिन कुरु विप्र शिवालयम्।
उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम्।—ब्रह्मपुराण ५६। ६८।
मार्कण्डेयह्रदो नाम नरलोकेषु विश्रुत।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशन.।—वही ५६।७२,६३।

१ दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति।
दश योजनविस्तीर्णं क्षेत्र परमदुर्लभम्।
यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महल्लुकानिवर्हणे।
विनाशो नैवमभ्येति तत्रैवाहमवस्थित.।
दृष्टमात्रे वटे तस्मिन्छायामाक्रम्य चासकृत्॥
ब्रह्महत्या प्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा।
प्रदक्षिणा कृता यैस्तु नमस्कारश्च जतुभि·।
सर्वे विधुतपाप्मानस्ते गता केशवालयम्।—ब्रह्मपुराण।

२ एतादृश महाक्षेत्र नानातीर्थसमन्वित·।—नी० म०।

३. लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे।
सर्वत्र वालुकाकीर्णे देशे सर्वगुणान्विते।—ब्रह्मपुराण २८-११।

४ क्षेत्र तत्र रवे. पुण्यमास्ते जगतीविश्रुतम्।
समन्ताद् योजन साग्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।—वही, २८।१७।

५ आस्ते तत्र स्वयं देव· सहस्रांशुर्दिवाकरः।
कोणादित्य इति ख्यातो भुक्ति-मुक्ति फलप्रद।—वही, २८-१८।

६ यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम्।
तावन्न पूजयेद् विष्णुं शकर वा सुरेश्वरम्।—वही, २८।४०।

राजा इन्द्रद्युम्न नारद की आज्ञा से चर्चिका देवी को साष्टाग प्रणाम कर बहुत प्रसन्न हुए थे। उनकी स्तुति करते हुए उन्होने कहा था—हे देवी, मुझ पर दया करो जिसके कारण मैं जगन्नाथ का दर्शन कर सकूंगा।[1]

**प्राची नदी-माहात्म्य**—ऊपर लिखे तीर्थों के समान प्राची नदी के किनारे स्थित पवित्र स्थानो और देव-मदिरो का वर्णन तीर्थ के रूप में कपिलसहिता में नही मिलता, लेकिन हिन्दुओ के मत से प्राची नदी पवित्र मानी जाती है। यद्यपि यह तीर्थ नही है तो भी पुण्यवर्द्धन की दृष्टि से इसका माहात्म्य सर्व-विदित है। कपिलसहिता में इन स्थानो, तीर्थों का माहात्म्य वर्णित है।[2]

प्राची नदी के अतिरिक्त उत्कल की परम पवित्र और सभी पापो को हरनेवाली महानदी या चित्रोत्पला भी एक प्रसिद्ध नदी है। यह विंध्यपर्वत से निकल कर दक्षिण सागर में मिलती है। यह गगा की भाँति महास्रोता है।[3] पुराणातर में लिखा है कि कलियुग में चित्रोत्पला गगा के समान है।

ऊपर लिखे तीर्थ ओडिशा में प्रधान माने जाते है। प्रतिवर्ष सहस्रो हिन्दू यात्री इन तीर्थों का दर्शन कर कृतार्थ होते हैं।

---

१. सीमामुत्कलदेशस्य विभजन्तीं वनांतरे।
मार्गस्था चर्चिकां प्राप चर्चिता मुण्डमालया।
अवतीर्य रथाद्राजा विनतो नारदाज्ञया।
साष्टांगपात ता नत्वा तुष्टावानंदचेतन.।
चराचरगुरुं देव नीलाचल-निवासिनम्।
अनुगृहीष्व मां देवी यया पश्ये स्वचक्षुषा।—स्कन्धपुराण, अध्याय ११ ।

२ महीपाल शृणुष्वाय प्राचीं गुप्तसरस्वतीम्।
एकाम्रकाननात् पूर्वं योजनान्ते महीपते।
नाम्ना प्राचीति विख्याता सरिदास्ते सरस्वती।
क्रोशे क्रोशे तटे लिग ततः प्राची सरस्वती।
तस्या स्नात्वा महीपाल ज्योतिर्लोकं व्रजेन्नर·।
सर्वपुण्यप्रदा धन्या वैकुण्ठभुवनप्रदा।
साक्षात्सरस्वती प्राची नान्यया नृपसत्तम।
तत्र विल्वेश्वरो नाम विल्वमूलाश्रितो हर।
अमरेश समालोक्य नरो, ह्यमरतामियात्।
तस्यास्तटे महेशस्तु कपिलेश्वरसंज्ञक:।
एव वहूनि लिंगानि सन्ति तस्यास्तटे शुभे।

३ नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता।
चित्रोत्पलेति विख्याता सर्वपहरा शिवा।
गंगातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी।
महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा।—ब्रह्मपुराण ४६।४-५ ।





साधव वहुओं को-नोहित वन्दापन।

विवरणो के ज्ञान के लिए प्राय जनश्रुतियो पर ही निर्भर होना पडता है। इसके सबव मे विश्वसनीय ऐतिहासिक विषय-सामग्रियो का नितात अभाव है।

ईसा की पहली शती मे भारतीय नौजीवन की कहानी जानने के लिए अनेक विश्वसनीय विवरण प्राप्त होते है। उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसवी सन् की पहली और दूसरी शताब्दियो में भारत से होनेवाली दक्षिण-पूर्व एशिया की समस्त यात्राएँ कलिंग-उपकूल से ही होती थी। इसके अतिरिक्त यात्रा का अन्य कोई मार्ग ही नही था। ईसा की प्रथम शती में लिखित "फेरिपल्स आफ दी एरिथ्रिएनसी" नामक पुस्तक के लेखक का कहना है कि उस समय के सभी जहाज भारतीय समुद्र के पूर्वी उपकूल के किनारे-किनारे एक बदरगाह को जाते थे, जहाँ से गगा का मुहाना विशेष दूर नही था। वही से समुद्र के भीतर प्रवेश कर सुवर्ण द्वीप जाना सभव होता था।

फेरिपल्स के लेखक का "भारतीय समुद्र के पूर्वी उपकूल" का पोताश्रय यदि ताम्रलिप्ति नही तो पालूर बदरगाह ही रहा होगा जिसको उसने पूर्वी भारतीय उपकूल के वृहत्तम बदरगाह के रूप में स्वीकार किया है। उसके लेख से विदित होता है कि उस समय के समुद्री जहाज उपकूल से होते हुए पालूर तक आते थे और वहाँ से सुवर्ण द्वीप आदि को जाने के लिए समुद्र में प्रवेश करते थे।

उपरोक्त दोनो सुविख्यात ग्रीक लेखक स्पष्ट रूप से सूचित करते है कि ईसा की दूसरी शती तक ब्रह्मदेश, मलाया, जावा आदि द्वीपो के साथ केवल कलिंग उपकूल का ही सीधा सपर्क था। अतएव जनश्रुतियो मे प्राप्त तथ्यों से इस ऐतिहासिक सत्य का मेल हो जाता है कि उन देशो में कलिंग ने ही सर्वप्रथम अधिवासी उपनिवेश स्थापित किया था।

ब्रह्मदेश का उपकूल कलिंग उपकूल से निकट होने के कारण इनमें वाणिज्य तथा सास्कृतिक सबध बहुत पहले प्रतिष्ठित हो गया था और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ईसवी सन् की पाँचवी शती तक ब्रह्मदेश के विभिन्न स्थानो में कलिंग-अधिवासियो के छोटे-बडे उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। उस समय ब्रह्मदेश के मध्याचल में प्यु जाति और दक्षिणाचल में मन् जाति रहती थी। प्यु जाति के लोग कलिंग से आये थे। मन् जाति का निवास-स्थान पेगु अचल का "उसन्" नामक स्थान बताया जाता है जो उस देश का नामातर-मात्र है।

प्यु जाति की राजधानी में बहुत से मन् निवास करते थे। मन् जाति के निवास-स्थल "उसन्" नामक स्थान के निकट एक और मन् अधिष्ठित राज्य था, जिसे "तैलंग" कहा जाता है। यह तैलग कदाचित् त्रिकलिंग का नामातर है। भारत मे त्रिकलिंग की अवस्थिति पर विद्वानो मे मतभेद है, किंतु ओडिशा के गग और सोमवशीय राजाओ के दान-पत्रो से स्पष्ट मालूम पडता है कि कोशल और कलिंग के मध्यवर्ती अचल में त्रिकलिंग राज्य स्थित था।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसी त्रिकलिंग राज्य के अधिवासी ब्रह्मदेश के तैलंग अचल मे रहते थे। तैलग राज्य धनधान्य से परिपूर्ण और उन्नत राज्य के रूप में ख्याति-प्राप्त था तथा मन् जाति के लोगो का प्रधान भू-खड था।

आज तक इसी प्राचीन राज्य के नामानुसार ब्रह्मदेश में मन् जातियो को तैलंग कहा जाता है। प्यु राज्य के पूर्वोत्तर उत्कल नामक मनो का एक और उपनिवेश था। इस नाम से यह

चेलितोला के समुद्रतट पर ताराच्छादित सन्ध्या के समय खडे होकर हुएनसाग ने सिहल-गामी जहाजो को देखा था और हठात् उक्त द्वीप में स्थित वुद्धदन्त का स्मरण कर वह आत्म-विभोर हो गया था। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो वुद्धदन्त में लगी हुई मणि की किरणो से दक्षिण दिशा का चक्रवाल आलोकित हो उठा हो। व्यापारियो और अन्य यात्रियो के साथ कलिग के कई वौद्ध-यात्री हर साल दन्त-पूजा करने के लिये सिहल जाते थे। उक्त द्वीप के राजा अग्निवोधी (६०१-६११) के राजत्व-काल में कलिग के राजा, रानी और मत्री ने प्रजावर्ग के कई व्यक्तियो के साथ वहाँ की धर्मयात्रा की थी। इसका उल्लेख वौद्ध ग्रथ चेलिवश में मिलता है। सिहल राजा विजयवाहु ने कलिग-राजकुमारी तिलकसुन्दरी के साथ विवाह किया था, यह भी उसी ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ से इतना और ज्ञात होता है कि कलिग राजवश के वहुत से राजपुत्र सिहल के सिहासन पर वैठ चुके थे।

सिहल के इतिहास के अनुसार वारहवी शताब्दी के पूर्व कलिग के राजा गोपराज के दो पुत्रो—निशकमल्ल और साहसमल्ल—के वारी वारी से सिहल द्वीप में राज्य करने की सूचना मिलती है।

कलिग और सिहल के इस घनिष्ठ संपर्क के कारण दोनो देशो के नौ-वाणिज्य में काफी उन्नति हुई थी। सिहल द्वीप से वडे-वडे कछुए, मुल्यवान् सीपियाँ और मणि-मुक्ताएँ कलिग को आती थी। कभी-कभी तो धान, अदरक, यव आदि का भी आयात होता था। कलिग और सिहल में वडे-वडे हाथियो का आदान-प्रदान होना मेगस्थनीज के वर्णन में आया है। मेगस्थनीज और कौटिल्य दोनो ने कलिग के हाथियो की विशालता तथा साहसिकता की प्रशसा की है किन्तु मेगस्थनीज ने अपेक्षाकृत सिहल के हाथियो को और भी विशालकाय वताया है। वहुत दिनो तक सिहल और कलिग के वीच हाथियो का यह कारोवार चलता रहा और धीरे-धीरे वहाँ इसी के कारोवारियो की वस्ती भी वसने लगी थी। उस समय के चीनी लेखक ने उन्हें होलियाने कलिग कहा है। चिलका झील को घेरते हुए आधुनिक गजाम और पुरी जिले का कुछ अश कलिग उपकूल के नये राज्य के रूप में स्थापित हुआ था। उसका नाम था कगोद, और उस राज्य का निर्माता था शैलोद्भव वश। जहाँ तक मालूम होता है, यह प्रदेश इस वश के राज्य-काल में जावा के रूप में प्रसिद्ध था। वहुत से गवेषको का अनुमान है कि जावा में जो शैलेन्द्र वश का साम्राज्य फैला था, उसी से शैलोद्भव राजवश सभूत है। यही शैलेन्द्र साम्राज्य धीरे-धीरे जावा, सुमात्रा तथा मलाया तक में फैल गया। शैलेन्द्र वौद्ध धर्म की महायान शाखा के पृष्ठपोषक थे। जावा द्वीप के सुविख्यात वोरोवुदुर, चण्डी, क्लामन मन्दिर आज तक उनकी अमर कीर्ति के रूप में खडे हैं।

वोरोवुदुर मन्दिर में कई प्रकार के जहाज के चित्र अत्यत सावधानी से उत्कीर्ण है। उन चित्रो से उस समय के जहाज-निर्माण की प्रणाली का पता चलता है। उस समय जहाज के निम्न भाग वडी-वडी लकडियो (काठगड) द्वारा वडी मजवूती से वनाये जाते थे। इससे समुद्र की हिलोरो में जहाजो के नष्ट होने का डर नही रहता था। जहाज के वीच यात्री अपना-अपना सामान लेकर वैठते थे। यह अश चिकने पायो द्वारा दोमजिला मकान के समान वनाया जाता था।

देशातर अथवा द्वीप तर को जाने की अपेक्षा, उस समय के लोगो का उद्देश्य सुसज्जित नौका में जल-विहार का आनद लेना रह गया था।

इतिहास भी इसी तथ्य का अनुमोदन करता हुआ प्रतीत होता है। किंतु इसके कई प्रमाण हैं कि सत्रहवी शताब्दी तक ओडिशा का नौ-वाणिज्य लुप्त नही हुआ था। मुगल-काल में पिपिली तथा वालेश्वर में जहाज के कारखाने थे जो विशेष उन्नत थे। इन कारखानो में वडे वडे पालवाले विशिष्ट प्रकार के जहाज वनते थे। सन् १६६४ में वग सूवेदार शाएस्ता खाँ ने पुर्तगीज जलदस्युओ का दमन करने के लिए वालेश्वर और पिपिली वदरगाहो के कई जहाज लिये थे। उस समय भी ओडिशा के उपकूलो में छोटे-वडे कई वदरगाहो का विकास हुआ था। वालेश्वर उपकूल में वालेश्वर तथा पिपिली के अतिरिक्त सारथा, छनुया, लइछनपुर, चुरामन घाम्रा, कटक में हरिहरपुर पारा-द्वीप, मरीयपुर, पुरी में अस्तरग और मणिक पाटणा और गजाम में गजाम आदि वदरगाह तत्का-लीन नौ-वाणिज्य केन्द्रो में पर्याप्त प्रसिद्ध थे। इन वदरगाहो से वस्त्र, नमक, चावल, नारियल, कपडा और अन्यान्य पण्य द्रव्य ब्रह्मदेश, टेनासेरिम, मलाया और सिंहल आदि देशो को भेजे जाते थे। सवलपुर और अन्य कई रियासतो में निर्मित कुटीर उद्योग की कला-वस्तुएँ महानदी, ब्राह्मणी, वैतरनी, आदि नदियो के द्वारा मँगाई जाती थी और विदेशो को भेजी जाती थी। इसी-लिए इन नदियो के किनारे वहुत से समृद्धिशाली नगर वस गये थे। महानदी-तट के वैदेश्वर, कटिलो, पद्मावती और कटक आदि नगर इस वाणिज्य के कारण उन्नत हो गये थे।

सोलहवी और सत्रहवी शताब्दी में भी ओडिशा के सामुद्रिक-वाणिज्य ने कई लेखको और कवियो को प्रभावित किया था। सोलहवी शती के कवि कर्ण ने अपनी "पाला" में कई स्थानो पर ओडिशा के नौ-वाणिज्य का उल्लेख किया है। कवि-सम्राट् उपेंद्रभज ने "लावण्यवती" नामक काव्य में, ओडिशा तथा सिंहल के नौ-वाणिज्य-सवध को केंद्र मानकर "तअपोइ", 'कुहुक मण्डल चढेइ", "चारि महाजन पुअ" आदि कहानियाँ अत्यत प्रभावशाली ढग से लिखी हैं। ये रोमाचकारी कहानियाँ ओडिशावासियो के प्राणो में आज भी स्वाभिमान, उत्साह और चेतना का सचार करती हैं।

मालूम होता है कि पुर्तगीज जलदस्युओ की लूट-पाट ने ओडिशा के नौ-वाणिज्य मे मर्मातक आघात पहुँचाया था। इन दस्युओ के अत्याचार से अनेक ओडिया सौदागरो का सर्वनाश हो गया। यही कारण है कि समुद्रयात्रा धीरे-धीरे सकटग्रस्त होकर नौ-वाणिज्य के लिए अवरोधक सिद्ध हुई। पुर्तगालियो के पश्चात् अन्य विदेशी व्यापारियो ने ओडिशा के उपकूलो पर अपनी व्यापारिक कोठियाँ वनाना आरभ कर दिया। वालेश्वर वदरगाह पर पुर्तगालियो, डचो, अग्रेजो और फारसियो के वाणिज्य-गोदाम खुलने लगे और व्यापार क्षेत्र में विदेशियो का प्रभाव दिनोदिन वढने लगा। ओडिया व्यापारी इन विदेशियो से होड नही कर सके, अतएव उनका व्यापार सीमित और कुठित हो गया। किंतु ओडिशा के व्यापारिक रगमच के पटाक्षेप में केवल विदेशी और जल-दस्यु ही कारण नही थे वरन् प्रकृति भी उसके पतन मे सहायक हुई। नदियो के मुहाने वालू से भरने लगे। फलस्वरूप वे समुद्र के उपकूलो से हटने लगी अथवा उथली हो जाने के कारण जहाजो

# उत्कल का कुटीर शिल्प

## डॉ० भिकारीचरण पटनायक

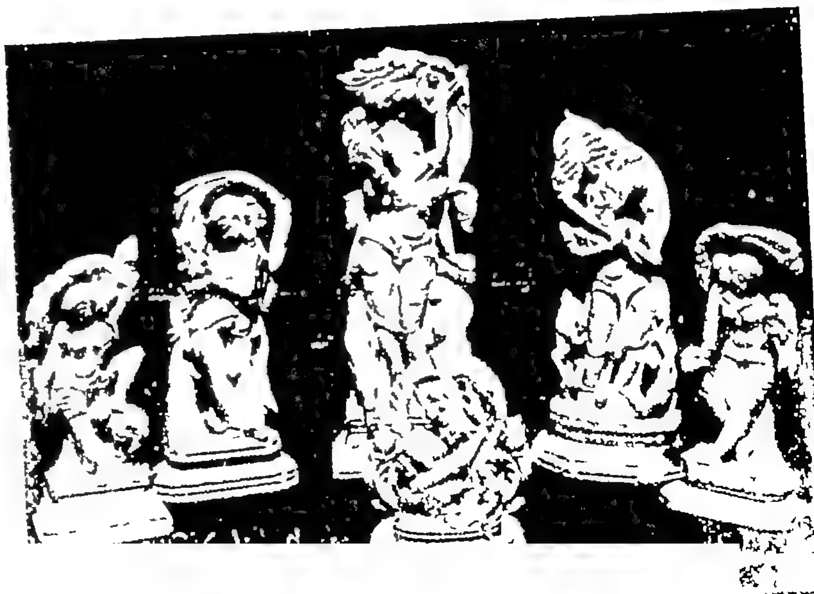
प्राचीन काल में ओडिशा के कुटीर शिल्प का स्थान बहुत ऊँचा था। ओडिया लोग कुटीर शिल्प के प्रसाद से सर्वदा सुखी जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि यह एक कृषि-प्रधान देश है तथापि लोग वर्ष भर खेती में लगे न रहकर खाली समय में अपने घर के लिए आवश्यक पदार्थ बनाकर अपनी जरूरत पूरी करते और बनी हुई चीजो को बेचते तथा उसी पैसे से अपने दूसरे खर्च चलाते थे। औरतें रसोई तथा घर के अन्य कामो से जब अवसर पाती तो नाना प्रकार के कारु-कार्य तथा कुटीर शिल्प के विशिष्ट पदार्थ बनाती थी। क्रमश इन चीजो का आदर विदेशो में बढने लगा और ऐसी एक श्रेणी की उत्पत्ति हो गई जो इन चीजो को दूर विदेशो के बाजार तक पहुँचाने की फिक्र में रहा करती थी। इसका फल यह हुआ है कि वे समुद्रवाही पोत भी बनाने और चलाने मे समर्थ हुए। इससे निश्चित है कि प्रकृति की क्षमता उनमें पर्याप्त थी। वायु की गति, नदी तथा समुद्र के स्रोत और लहरो के बलाबल आदि का अध्ययन कर और उसी पर निर्भर रह कर वे पोत द्वारा ओडिशा की कुटीर शिल्पजात वस्तुओ की बिक्री समुद्र के उस पार के देशो मे अधिक मूल्य में करते थे।

ओडिशा के लोग अपनी शिल्पोपयोगी सामग्री के लिए दूसरो पर निर्भर नही रहते थे। अपने अपने गाँव के आसपास पैदा होनेवाले काठ, बाँस, लता, पत्र और घास को इकट्ठा कर हाथ से ही ऐसी चीजें बनाते थे जिसे देखकर कोई भी मुग्ध हो जाता था और विदेश के लोग तो उनके लिए अधिक मूल्य भी देने में नही चूकते थे। इन चीजो के बनाने के लिए जिन यन्त्रादि की आवश्यकता होती थी, उन्हें भी वे अपने गाँव या पासवाले गाँव में बनवा लेते थे। इन प्रयोजनो के आधार पर बढई, लोहार आदि जातियो की सृष्टि हुई। क्रमश इन वस्तुओ की उन्नति होने लगी। कुटीर-शिल्प के उपयोगी यन्त्रो के अतिरिक्त निर्मित वस्तुओ को देश-विदेश भेजने के लिए आवश्यक समस्त वाहन और उन्हें बनाने के यन्त्र भी गाँव-गाँव में बनाने की उन्हें शिक्षा मिली थी।

**प्रस्तर शिल्प**—ओडिशा में शिल्पोपयोगी जितनी सामग्रियाँ मिलती है उनमें से पत्थर भी एक है। पत्थरो पर वे लोग जैसी हस्तकला दिखाते थे, उस नमूने के पत्थर ओडिशा में आज भी बहुत है। विदेशो याने युरोप, अमेरिका आदि के लोग यहाँ के कोणार्क, पुरी, भुवनेश्वर आदि के शिल्पकार्य देखकर आश्चर्यचकित होते है। अनेक लोग तो विश्वास ही नही कर पाते कि इन्ही ओडिया लोगो के पूर्वपुरुष ही इन प्रस्तर-शिल्पो के कलाकार थे, क्योकि आजकल लोग एक साधारण भवन के निर्माण में मापयन्त्रो से लेकर ऐसे अनेक यन्त्रो का प्रयोग करते है जो वैज्ञानिक

पत्थर की मूर्त्तियाँ और उसका कारीगर



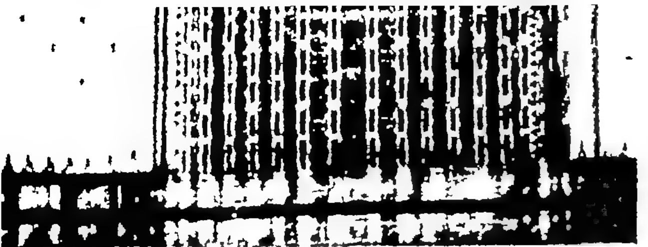


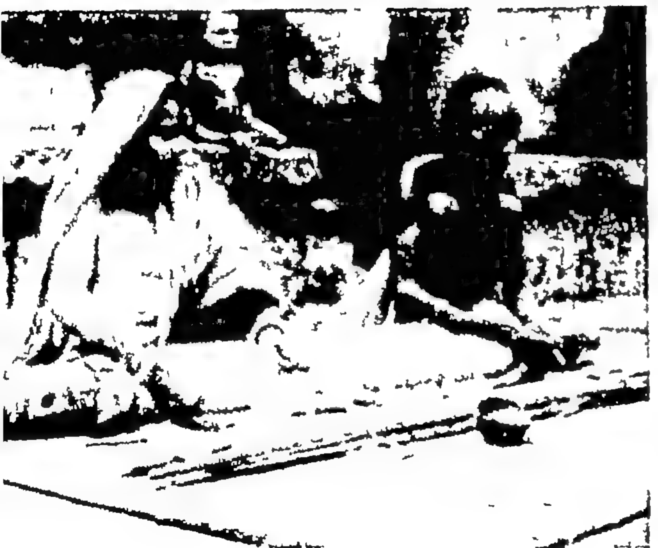
मृण्मय मूर्त्तियों तथा खिलौनों के कुछ नमूने



मृण्मय मूर्त्तियों तथा खिलौनों के कुछ नमूने



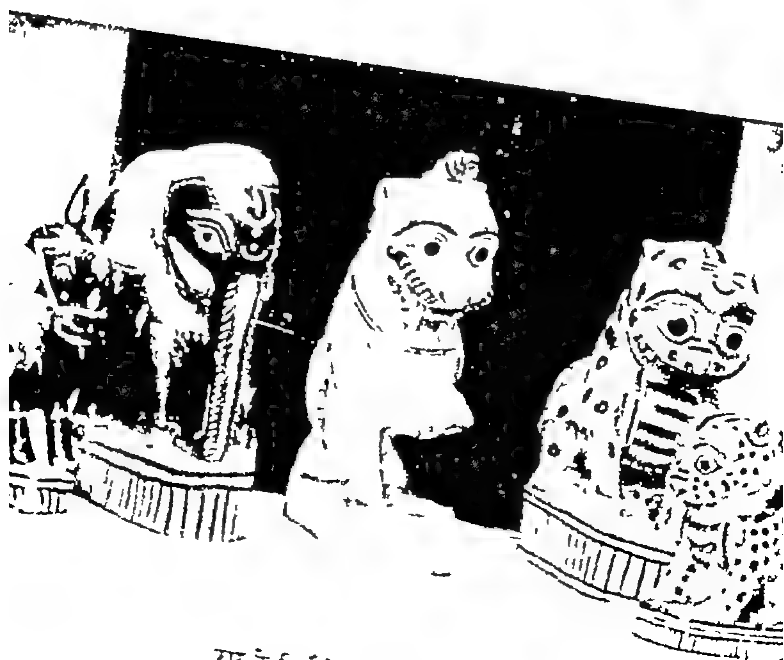




## ★ उत्कल का कुटीर शिल्प ★



चमड़े का शिल्प



काठ के खिलौने

उनके लिए ही बहुत सूक्ष्म हथियारों का व्यवहार हुआ होगा। पत्थर पर काम करने के लिए ही नही, उस समय लडाइयो मे व्यवहृत तीर, बर्छा, खण्डा, तलवार आदि का निर्माण भी इन्ही ओडिशा के लोहारो की भाथियो से होता था। यह लोहा यही के पहाडो से प्राप्त लोह प्रस्तर मे बनाया जाता था। अब लोहा बनाने का यह उद्योग यन्त्रशिल्प के प्रभाव से एकदम बन्द सा हो गया है।

**काष्ठ और मृत्तिका शिल्प**—पत्थर और लोहे की तरह ओडिया जाति ने काष्ठ और मृत्तिका शिल्प में भी कृतित्व हासिल किया था।

प्राचीन काल में सम्पन्न लोगो के घर बनाने में काठ के जो उरा, गुज, चौकाठ और किवाड आदि बनते थे, उन पर बढई लोग नाना प्रकार का कारुकार्य दिखाते थे। इनके अतिरिक्त गृहोपकरण अर्थात् सदूक, बक्स, पलँग, पालकी आदि मे भी कला-चातुरी का अभाव नही रहता था। आजकल अवश्य रुचि-परिवर्तन के कारण उन चीजो को कोई पसन्द नही करता परन्तु उन्ही कारीगरो के वशधर अब आधुनिक रुचि के अनुसार काठ की उत्कृष्ट और समयोपयोगी वस्तुएँ बनाकर लोगों को सन्तुष्ट करते है। बडे-बडे शहरो, खासकर कटक के बढइयो के काठ के सामान इतने अच्छे और सुन्दर होते है कि प्रान्त के बाहर के दूसरे शहरो के लोग अधिक वेतन देकर उन्हें कार्य में नियुक्त करते है। कटक आदि मे निर्मित काठ की वस्तुएँ कलकत्ते आदि बडे शहरो को भेजी जाती है।

## स्वर्ण एवं रजत-शिल्प

सोना-चाँदी का काम ओडिशा में बहुत दिनो से प्रचलित है। कटक की तारकशी का काम बहुत दिनो से प्रसिद्ध है। सन् १८५१ ई० की लदन-विश्वप्रदर्शनी में कटक की तारकशी की चीजें प्रदर्शित हुई थी। हाथ से इस प्रकार की चीजें भी बन सकती है, यह देखकर सभी मुग्ध हो गये थे। लेकिन नाना प्रकार की विदेशी चीजो की आमदनी के कारण, परिश्रम के मुकाबले में, ये चीजें महँगी होने लगी और व्यवसाय मदा पडने लगा। इसी उत्कृष्ट शिल्प के अधःपतन पर स्वर्गीय मधुसूदन की दृष्टि पडी थी। वे बीसवी सदी के प्रारभ में इस उद्योग की उन्नति में जी-जान से लग गये। उन्होने यहाँ के सोनारो को प्रोत्साहित करने के लिए एक सस्था भी बनाई और विदेश से कुछ विचक्षण कारीगरो को अधिक वेतन पर बुलाया। कुछ दिनो की परीक्षा के बाद देखा गया कि वे विदेशी कारीगर बहुत दिनो तक प्रयत्न करके भी यहाँ के बारह-चौदह वर्ष की उम्रवाले सोनार के लडको के साथ होड नही कर सके। इससे सिद्ध होता है कि सोने-चाँदी की तारकशी का काम कटक के सोनारो का एक अस्थिमज्जागत और पारपरिक सस्कृति जैसा है। मधु बाबू अपने कारखाने में युगोपयोगी रुचि के अनुकूल विभिन्न वस्तुएँ बनवाकर इंगलैंड, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशो को भेजने लगे और इनकी ख्याति भी खूब बढी। अब भी दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता आदि स्थानो में इन चीजो का व्यापक बाजार खुला है तथा अन्य प्रान्तो के पूँजीपति इन सोनारो से चीजें बनवाकर यहाँ बेचते है और बाहर भी भेजते है। कटक में सोने-चाँदी के ऐसे कई कारखाने है।

फिर भी ओडिशा के जुलाहो में से केवल एक तिहाई भाग को, जो इन समितियों के सदस्य बन गये हैं, यह सुविधा प्राप्त होती है। दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि के भीतर ५० प्रतिशत जुलाहो को सदस्य बना लेने की आशा की जा रही है।

**चर्म शिल्प**—ओडिशा के चर्म शिल्प मे भी कई विशेषताएँ थीं और हैं। यहाँ के 'खोल' और मृदग आदि वाद्ययन्त्र दूसरे स्थान, खासकर बगाल में अधिक आदृत होते हैं। स्वर्गीय मधुसूदन ने जब देखा कि शिल्प की उन्नति पर ही इस जाति की उन्नति निर्भर है तो वे एक के बाद एक कई उद्योगो पर ध्यान देने लगे। तारकशी के बाद चमडे और सींग के शिल्प पर आपकी नजर पडी। कटक में सीग का काम अच्छा चलता था, लेकिन वे चीजें समयोपयोगी रुचि के अनुकूल नहीं बनती थी। मधुबाबू ने उन कारीगरों को नये ढग की चीजें बनाना सिखाया और उनकी चीजो को भेजकर ओडिशा के बाहर व्यापक बाजार भी बनाया। आजकल कटक तथा पारला-खेमडी से सीग की चीजें देश-विदेश को भेजी जाती हैं।

चमडे का उद्योग इतना आसान न था। मधुबाबू ने इस उद्योग के विकास के लिए उत्कल टैनरी नामक एक लिमिटेड कपनी बनाकर और विदेशो से बहुत से यन्त्र तथा कल पुर्जे मँगाकर एक विशाल कारखाना बनाया। इस उद्योग की शिक्षा के लिए कई व्यक्तियो को विदेश भेजा। खुद भी इसके बारे में जहाँ जो कुछ साहित्य मिलता, पढकर अमल में लाते थे। विभिन्न केन्द्रो के शिक्षा-प्राप्त कारीगरो को कारखाने मे नियुक्त करके भी उन्हें सतोष नही होता था और खुद पठित ज्ञान के सहारे कुछ नये तथ्य भी सिखाते थे। कुछ दिनो के बाद उनके कारखाने की चीजो का आदर बहुत बढ गया।

कलकत्ते के बाजार में उस समय जब उत्कल टैनेरी के जूतो की पेटियाँ खुलती तो फुटपाथ पर भीड सी लग जाती थी। अपने कारखाने से सर्वश्रेष्ठ पदार्थ निकले, इस आशय से अधिक खर्च करने में मधुबाबू कभी मुंह नही मोडते थे, यहाँ तक कि जरा-सी भूल पर उस चीज को नष्ट कर दिया जाता था। एक बार सेना विभाग के लिए बूट जूतो का बहुत बडा आर्डर मिला। सारा का सारा माल तैयार हो गया तो एक बूट में किसी जगह पर उन्हें किसी एक काँटी के बिठाने में कारीगर की गलती मालूम पडी। इतनी बात के लिए उस बूट के साथ साथ सभी बूटो को नष्ट कर दिया गया और दूसरे ग्राहको को, चाहने पर भी, नहीं दिया गया। यही कारण था कि मधुबाबू के कारखाने की बनी चीजो में भूल रह जाने की धारणा किसी भी आदमी के मन में पैदा नही हो सकती थी।

यहाँ यह भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि पहले घडियाल, गोह और साँप के चमडे का व्यवहार नही किया जाता था। मधुबाबू ने इन चमडो से उत्कृष्ट चीजें बनवाना आरम्भ किया और उसमे उन्हें अच्छी सफलता भी मिली।

चर्म उद्योग में बहुत अधिक धन व्यय हो जाने के कारण अन्त में मधुबाबू गरीब अवश्य बन गये थे परन्तु उनकी प्रेरणा से जो हजारो उत्कृष्ट कारीगर इस देश में पैदा हो गये हैं और इस उद्योग का जो विकास हुआ, उसके लिए यह जाति उनकी चिरऋणी रहेगी।

लोग पखा, पेटी और डाला आदि बनाते थे, पर इन कामो मे इसकी बहुत कम खपत हो पाती थी। बहुत-सा हिस्सा नष्ट हो जाता था। कही-कही लोग झाडू भी बनाते थे। लेकिन आजकल उससे कई चीजें बनाई जाती है। इसके द्वारा निर्मित टेबुल मैट और मैनिटी बैग का आदर बहुत बढ गया है। विदेशो से भी इसके लिए आर्डर मिल रहे है लेकिन माँग की पूर्ति नही हो पाती है। इसके लिए अधिक लोगो को शिक्षा देने तथा बनानेवालो से सग्रह कर बेचने या बाहर भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए।

इस काईश के आचरण से जो मैनिटी बैग आदि चीजें बनती है वे अन्य बैगो से कहीं अच्छी होती हैं।

केवडा—ओडिशा में केवडा बहुत होता है, खासकर समुद्रतटीय क्षेत्रो में। केवडे के फूल का आदर सर्वत्र है। इससे इत्र और केवडाजल बनाते है पर ओडिशा में जितने केवडे मिलते है उनमें फूल देनेवाले केवडे बहुत कम है। शेष किसी काम में नही आते। लोग बगीचे में बाडा घेरने में इसका व्यवहार करते है और बहुत फैल जाने पर आग लगा कर जला भी देते है। उसके पत्तो में तीन कतार काँटे होते है। उसी बेकार चीज को बटोरना, किसी के लिए भी कठिन न होगा। गरीब आदमी आसानी से इसे सग्रह कर सकेंगे। यह सस्था इसी केवडे के पत्तो से चीजें बनाने की शिक्षा दे रही है। गरीबो के यहाँ दूसरी चीजो से जो चटाइयाँ बनती है उनसे इसकी चटाइयाँ सुन्दर होती है। ये चटाइयाँ अपेक्षाकृत मुलायम, मोटी और टिकाऊ होती है। इसी पत्ते को विभिन्न नाप से चीरकर और रँगकर अमीरो के गद्दो पर बिछाने योग्य चटाइयाँ भी बनाई जाती हैं। जो लोग शीतलपाटी नाम की चटाई व्यवहार करते थे, अब इसी केवडे की चटाई को पसन्द करने लगे है। इससे मैनिटी बैग भी बनते हैं। यही नही, इससे बरसाती कोट, टोपी और चट्टी-जूते भी बनाये जाते है। केवडे के पत्तो से काँटे निकालने तथा विभिन्न नापो से चीरने के लिए जिस औजार का व्यवहार किया जाता है, उसे भी बिना किसी खर्च के बनाने का कौशल सिखाया जाता है।

बेंत—केवडे की जड भी यहाँ काफी होती है। लोग इससे बाडा घेरने का काम लेते है और दातौन बनाते है। इस सस्था के द्वारा इससे विभिन्न प्रकार के बक्स, सूटकेस, डाले और बैठने के मोढे बनाये जाते है। इसी सिलसिले में बेंत के सामान भी बनवाये जाने लगे है। पहले पाण और डोम इन दो जातियो के हरिजन ही बेंत का काम करते थे पर जो महिलाएँ केवडे की जड से अच्छी-अच्छी चीजें बनाना सीख गईं, उन्हें आसानी से बेंत का काम दे दिया जाता है। जिस पहँसुल से औरतें तरकारी काटती है उसी से केवडे की जडो को काटने-चीरने आदि की शिक्षा दी गई थी। अब उसी पहँसुल से वे बेंत के छिलके उतारने, चीरने आदि का काम करने लगी है। इसके लिए अब हरिजनो के द्वारा व्यवहृत खास औजारो की आवश्यकता नहीं रही। इससे ऊँचे वर्ग की स्त्रियाँ बेंत पर काम करने में अपनी हेठी नही समझती है। ये महिलाएँ बेंत की कुर्सियाँ, मेज, बक्स, सूटकेस आदि सुन्दर और मजबूत बनाती है। घर की रसोई आदि करते हुए भी यह काम किया जा सकता है और महीने में ६०, ७० ) का भी उपार्जन किया जा सकता है। पहले बेंत के

**अणचरा** एक पौधा है। यह वरसात में पहाडी इलाके में होता है। इसे काटकर लोग झाड बनाते हैं। इसके छिलके के रेशो से जो कपडा वनाया जाता है, उसे देखने पर रेशम का भ्रम होता है।

**अण्डी**—ओडिशा में सर्वप्रथम १९२६ ई० में इसकी खेती, पुअर काटेज इण्डस्ट्री के द्वारा, प्रचलित हुई थी। सिर्फ चार साल के भीतर प्रान्त में चारो ओर इसका प्रसार हो गया। स्कूल के छात्रो से लेकर मध्यम वर्ग के गृहस्थो तक ने इसे अपना लिया था। इसके वाद सरकारी विकास विभाग ने इसके प्रचार का भार अपने हाथ में लिया, किन्तु अधिक उन्नति होने के वदले विलकुल वन्द सा हो गया। फिर इस सस्था के द्वारा इसका क्रमश पुनरुद्धार किया गया। अव यह कार्य सरकारी विभाग को हस्तान्तरित कर दिया गया है। ओडिशा में कटक, जगतसिंहपुर, डमण्डा, आठगड, चम्पेश्वर, इन्द्रुपुर, माटिआशासन, देओगा, छतामखाना, पलाशपगा, पटागी, जगन्नाथ प्रसाद, जि० उदयगिरि—इन १३ स्थानो में इसके केन्द्र वनाये गये हैं। पहले सरकार की ओर से अडे वाँटे जाते हैं। फिर लोग कोषा पैदा करने के वाद काफी अण्डे निकालते है। सरकार उन्हें खरीदकर फिर लोगो में वाँट देती है। लोगो से कोषा खरीदने और अण्डी की कताई, वुनाई सिखाने के लिए कर्मचारी नियुक्त रहते हैं।

इसके लिए चार समवाय केन्द्र खोले गये है, फिर भी आवश्यकता के अनुसार उत्पादन वहुत कम होता है।

**न टूटनेवाले खिलौने**—वच्चे लिखने के वाद वहुत-सा कागज फेंक देते हैं। उसके उपयोग के लिए पहले यहाँ के वच्चों को इसी रद्दी कागज और फटे कपडो के टुकडो से गुडिया वनाने की क्रिया सिखाई गई। पर इससे मुँह, हाथ, पैर सुन्दर न वनने के कारण उसी कागज को पानी में भिगोकर उसे पीसकर तथा कुछ गोद मिलाकर गुडियो के हाथ, मुंह सुन्दर वनाने की कोशिश की गई। इस काम के लिए वैज्ञानिक प्रणाली है। लेकिन उसमें कई दुर्लभ रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती हैं। अत अपनी उद्भावित प्रणाली में यह सस्था क्रमश अच्छे-अच्छे सुन्दर न टूटनेवाले खिलौने वनवाने लगी। अव तो इसी प्रणाली से वडी-वडी मूर्तियाँ, रिलीफ मैप, ग्लोव, स्टैच्यू और खासकर मेडिकल तथा स्कूल-कालेजो में व्यवहृत मनुष्य-शरीर के अग-प्रत्यग के नमूने वनाये जाते हैं। इन चीजो का आदर दिनोदिन वढने लगा है।

**ईंट**—पुअर काटेज इडस्ट्री ने घरेलू ढग से ईंटें, खपडे तया टाइल वनाने की प्रणाली निकाली है। ओडिशा जैसे गरीव प्रान्त में लोग वाँस और पुआल से ही अपनी-अपनी झोपडियो की छत वनाते हैं। अव इन चीजो की कीमत दिनोदिन वढती जा रही है। फिर आग का भय तो हमेशा लगा ही रहता है। इधर गरीवो के पास इतने पैसे कहाँ हैं कि वे वार-वार छत वनाते रहें या कोठा मकान वना लें। अत छोटे पैमाने में खपडे और टाइल अपने-अपने घर पर वना लेने की शिक्षा दी जा रही है। कोई भी आदमी प्राय हफ्ते के भीतर खपडे और टाइल वनाना सीख सकता है और उसे घर पर पका भी सकता है। रोज कुछ समय परिश्रम करने से लोग थोडे ही दिनो में अपने घर के लायक खपडे, टाइल और ईंटें वना सकते है। हाँ, यह सच है कि ईंटें पकाने

# ओड़िशा में संगीत की स्थिति

## श्री श्यामसुन्दर धीर, कविचन्द्र कालीचरण पट्टनायक

प्राचीन भारत के कलिंग और उत्कल का कुछ अश लेकर हमारा यह उत्कल प्रदेश गठित हुआ है। भारतवर्ष में जब से वेद की सृष्टि हुई है तभी से सगीत कला का प्रचलन है। भारतीय सगीतशास्त्र की पद्धति का अनुसरण करती हुई ओडिशा की सगीत कला आज तक चली आ रही है।

भारतीय सगीतशास्त्र में सर्वप्रथम "मार्गी" सगीत की सृष्टि हुई है। इसी से "देशी सगीत" उत्पन्न हुआ। भारत के विभिन्न प्रदेशो में उस "देशी" सगीत की जो रीति प्रचलित हुई वह उस प्रदेश में उस प्रदेश के देशी सगीत के नाम से अभिहित हुई। सगीतरत्नाकर में शार्ङ्गदेव ने लिखा है —

देशे देशे जनाना यद्रुच्या हृदयरजनम्।
गान च वादन नृत्य तद्देशीत्यभिधीयते॥[1]

इस समय मार्गी सगीत का प्रचलन नही है और देशी सगीत भारतीय सगीत के नाम से परिचित है।

शास्त्रीय सगीत को सरल भावो में लोगो के सामने रखने के लिए क्रमश भरत नाट्य-शास्त्र, नारदसहिता, सगीतरत्नाकर, वृहद्देशी, पारिजात और दतिल आदि कई शास्त्र लिखे जा चुके हैं। इनमें भरत, हनुमत, शैव, कृष्ण इन चारो मत्रो के अनुसार सगीत की आलोचना की गई है। इनके बीच किसी मत में यह भी उल्लेख हुआ है कि ६ राग, ३६ रागिनियाँ हैं, किसी में ६ राग, ३० रागिनियाँ और उनकी वशलता के साथ कई रागपुत्र और पुत्रवधू के रूप भी बताये गये है। इनमें हनुमत-मतानुसार उत्कल में अधिकतर ६ राग, ३० रागिनियो का सगीत चलता आ रहा है। भारत के अन्यान्य प्रान्तो में भी इसी प्रकार का प्रचलन है।

ओडिशा में ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के महामेघवाहन सम्राट् खारवेल के राजत्वकाल से सगीत कला के प्रकृष्ट निदर्शन विद्यमान हैं। विभिन्न प्रदेशो की लोकरुचियो, भाषाओ और उच्चारण के भेदो से सगीत की उपस्थापनाएँ भिन्न-भिन्न रूप में हुई हैं। इसी को सगीत के जन्म-

---

१. संगीतरत्नाकर श्लोक—२३
आनन्दाश्रम ग्रयाक ३५ स्वरध्याय।

आदिर्यती निशारु स्वात्व तालत्रिपुटस्तथा
रूपको झम्पको मण्ठ एकताली प्रकीर्त्तिता।
एभिस्तु नवभिस्तालै कल्पित सुत उच्यते।
एते मुख्या हि विख्याता प्रवन्धागत्रया पुन
एकोत्तरशत तालास्तेऽपि वाच्या क्रमादिह।"

(गीतप्रकाश में भी लिखित है।)

इन तालो की गति कुछ विलबित है, फिर भी यह द्रुत लय के भेद में प्रचलित है। सगीत-रत्नाकर में यह भी लिखा है—

"लय - ग्रह - विशेषेण तालाना नवता मता।
तालविश्रामतोन्येन विश्रामेण लयो नव ॥

(प्रवन्धार्थ श्लोक ३६४)

इस तरह ओडिशी सगीत में तालो का व्यवहार है। ओडिशा में प्रचलित देशीय ताल जैसे—अट्टताल, आठताल, कुतुक, एक ताल, रूपक, त्रिपुटा, मठ, झम्पा, आदि, यति, निशारु, आत् ताल, झुला-सरिमाल और पहपट आदि है। चौताल, धमार, और त्रिताल आदि तालों के गाने प्राचीन काल से प्रचलित है। इसके अतिरिक्त खेमटा, कव्वाली, कहरवा, दादरा आदि तालो के गाने प्राचीन कवियो के लेखो से हमें मिलते है।

इसके वाद प्राचीन काल में हमें कई देशी ताल देखने को मिलते हैं, जैसे—ब्रह्म ताल, पचम सवारी, शूल ताल आदि प्रचलित होने के वहुत से प्रमाण पाये जाते है। प्रचार और सावना के अभाव मे क्रमश उसका लोप होता जा रहा है। आजकल किसी किसी स्थान पर ओडिशी सकीर्तन में दशकोशी, लोगा आदि कितने ही ताल प्रचलित है। ऊपर लिखे तालो के अतिरिक्त ओडिशा में कई प्रचलित वाद्य-यन्त्र है। वीणा, सितार, एसराज, तानपूरा, वेहेला, सारगी, वशी आदि उच्च कोटि के वाद्य-यन्त्र प्रयुक्त होते आ रहे है। कई अच्छे किस्म के मृदग या मर्द्दल, पखावज, वार्यां तवला, मन्दिरा, कन्सी आदि भी प्रचलित है। इसके वाद मध्य जातीय खोल, ढोलक, करताल, सिंघा, वीर काहाली, शख, घण्ट, घण्टा आदि प्रचलित है और निम्न जातीय वाद्य केन्दरा, नागेस्वर, महुरी, भेरी, तुरी, उवका और नागरा, नाउघुडकी, डम्वरु, ढोल, वडकाठ, घउसा, धुमुरा, चागु, घसा ढोलकी आदि नाम से सवोधित होते है।

गीत, वाद्य और नृत्य का स्वतत्र रूप से विकास होने पर ओडिशा में सगील का प्रचलन हुआ। सन् १५६० के पश्चात् उत्कल की स्वाघीनता का लोप होने पर लगभग २०० वर्षों तक नायक-नायिका-भाव-सपन्न शृगार रस से पूर्ण गीत प्रचलित रहा। आघुनिक ओडिशा में शास्त्रीय उच्चाग और ओडिशी सगीत की चर्चा कम है। लेकिन जिस समय ओडिशा स्वाघीन था उस समय सगीत-चर्चा के विशेष प्रचार के प्रमाण मिलते है। गोविंद-लीलामृत से पता चलता

ओडिशी सगीत में जो राग-रागिनियाँ प्रचलित हुई है वे मूलत भारतीय सस्कृत शास्त्र के अन्तर्गत हैं। इस तरह उच्चाग सगीत के अतिरिक्त सगीत के क्षुद्र गीतो के अन्तर्गत गिनी जानेवाली रचनाएँ ओडिशा में छान्द, चउतिशा, चौपदी के रूप में प्रचलित हैं। और भी अनेक प्रकार के देहाती गीत जैसे वासि गीत, योगी गीत, चषा गीत विशेष अवसरो और पर्व-त्योहारो में गाये जाते हैं। शास्त्रीय क्षुद्र गीत के अन्तर्गत सघुवा, अघुवा, पाचाली और चित्रपदा आदि ओडिशा में चउतिशा और छान्द के नाम से प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त ग्राम्य गीत में तुन्दा, केला गीत, हलुआ गीत, नाउरी गीत, झेति घोडा आदि व्यावसायिक कार्यों और पर्व-त्योहारो में चले आ रहे है। इनके ज्वलत उदाहरण गीतप्रकाश, सगीतनारायण, सगीतमुक्तावली, सगीत-सरणी से प्रमाणित है।

वर्तमान ओडिशा में जितने राग प्रचलित है वे राग दूसरी जगह कही नही मिलते। वे सभी मूल सस्कृत शास्त्र के अन्तर्गत हैं। जैसे—तोडि, परज, पचम विराडी, तुकसर (ढवक) हावित् आदि राग-रागिनियाँ हैं।

सगीत की भाँति ओडिशी नृत्य मत भी भारतीय शास्त्र-रीति का अनुसरण करता है। भारतीय नृत्यशास्त्र में नृत्य के दो भेद है—ताडव और लास्य। पुरुष व्यक्ति के नृत्य को ताण्डव नृत्य कहते हैं। ये वीर, महोत्साह और रौद्र रस के होते हैं। स्त्री नृत्य को लास्य कहा जाता है। यह शृगार-रस-प्रधान होता है। इस तरह ओडिशी ढग से शास्त्रीय-नृत्य प्राचीन काल से प्रचलित है। मन्दिर की दीवालो में उत्कीर्णित नृत्य मूर्तियाँ इनकी साक्षी हैं। ओडिशा की स्वाधीनता के लोप होने के वाद नृत्य, नाट्य और नृत्य-चर्चा के पृष्ठपोषको का अभाव हो गया। कालचक्र से ताण्डव नृत्य प्राय लोप हो गया है। लास्य नृत्य अति कामाचार के कारण सिर्फ कवियो के गीतो का भाव ही व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त चर्चा और पृष्ठपोषको के अभाव के कारण लोग अनेक नृत्य भूल गये हैं। वर्तमान प्रचलित ओडिशी नृत्य कर्पूरहीन वस्त्र की तरह है। वस्तुत ओडिशी नृत्य पूरा का पूरा शास्त्रीय ढग पर है। इसमें सशय नही कि शुद्ध रीति के अनुसरण करने पर वह आदर्श स्थानीय होगा। शास्त्रो में नृत्य के जो जो विभाग देखे जाते है जैसे—काठी-जाकण, वाजावाती, हलायन और मण्डली नृत्य—वे प्राय सभी प्रचलित हैं। उनका आदर छउ, पाइक केउट (घोडे का नाच), शवर, आदिवासी, पाला, दासकाठिआ, यात्रा दल आदि के रूप में होता है। इसकी उन्नति के लिए यत्नवान् होना चाहिए। उपरोक्त ग्रथो से ओडिशा की सगीत-धारा की सुरक्षित अवस्था का पता चलता है और उसके वाद स्वर्गीय पटायत वलदेव चद्रधीर का भारत-सगीत विदित है। उसका प्रचार केवल ओडिशा में ही नही, सारे भारतवर्ष में है। इसमें राग, ताल, नृत्य, वाद्य आदि अपने लक्षणो के साथ प्रदर्शित हैं। उसके अप्रकाशित रहने और शास्त्रीय रीति-चर्चा का अभाव होने के कारण ओडिशी सगीत की रूप-रेखा प्रचारित नही हो सकी। इसमें तनिक भी सदेह नही कि यदि प्राचीन काल की भाँति उसकी शिक्षा दी जाय, तो ओडिशी सगीत सारे भारत तथा पृथ्वी में उच्च स्थान प्राप्त करेगा। इसके लिए सामूहिक चेष्टा या सहयोग की आवश्यकता है।

**द्वितीय चरण**—कुछ विद्वानो की राय में ओडिशा में ओडिया भाषा आठवी से बारहवी शताब्दी के बीच पाली, मागधी और शौरसेनी से उत्पन्न हुई है। यह उदयगिरि, खडगिरि और धौलीगिरि की गुफाओ में उत्कीर्ण अभिलेखो से स्पष्ट है कि पाली ही तत्कालीन उत्कलीय जन-साधारण की अभिव्यक्ति का सर्वसामान्य साधन थी। अस्तु, 'बौद्धगान ओ दोहा' के नवीन सस्करण से प्राप्त काह्नपाद, लुईपाद और अन्य बौद्ध सिद्धाचार्यों की रचनाएँ वोलचाल की जिस तत्कालीन भाषा में रची गई थी, वह प्राचीन ओडिया का निदर्शन ही है। विभिन्न विभाषाओ में रची जानेवाली विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाओ के इस मोड ने सस्कृत के प्रभुत्व और सर्वोत्कृष्टता को समाप्त कर दिया। इस समय तक नाटको का अभिनय न तो राजप्रासादो और न सस्कृत के जानकार लोगो तक ही सीमित रहा बल्कि सामान्य जनता इस प्रकार के अभिनयो में रुचि लेने लगी थी और चूँकि उन लोगो की समझ में सस्कृत नही आती थी अत वे नाटको में प्राकृत पद्यो और कथोपकथनो के समावेश की माँग करने लगे ताकि वे उसे सरलतापूर्वक हृदयगम कर सकें। अतएव सस्कृत से अधिकाधिक अनुरक्ति और प्राकृत के प्रति दुर्भावना रखनेवाले पडितो ने जनता की माँग के आगे घुटने टेक दिये। उन्हें आशका हुई कि यदि इस प्रकार की माँग को ठुकरा दें तो निश्चय ही वे अपने उन अनुयायियो की सहानुभूति को खो देंगे जो उन्हें वडे आदर की दृष्टि से देखते थे। इससे उनके यश को वहुत वडा धक्का लगेगा। इस प्रकार वे सस्कृत नाटको में प्राकृत भाषा का समावेश करने को वाध्य हो गये जो नाटक के द्वितीय स्तर के विकास में प्रथम चरण सिद्ध हुआ।

भुवनेश्वर-समूह के मन्दिरो का युग ८०० ई० से लेकर १००० ई० के बीच आँका गया है। भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर, राजारानी, लिंगराज और वैताल मदिर में ऐसे शिल्पिक कौतुक मिले हैं जो प्राचीन ओडिशा की कलात्मक प्रतिभा के मूक साक्षी हैं। इन मदिरो के स्थापत्य में 'मुद्राओं', "आसनो" और अनक वाद्ययत्रो से युक्त नृत्य के ऐसे दृश्य अकित है जो तत्कालीन समाज का विशद चित्र उपस्थित करते है। भुवनेश्वर के शिवमदिरो के चतुर्दिक् होनेवाले धार्मिक कृत्य, और तत्सवन्धी पर्व तथा शानदार प्रदर्शन उस काल के नियमित लक्षण थे। शिवसवधी उपाख्यानो में शिवगौरी-विवाह एक वहु-प्रचलित विषय था और प्रत्येक वर्ष ग्रीष्मकालीन शीतल षष्ठी के अवसर पर विवाह के ये दृश्य गान, नृत्य और भजनो के रूप में ग्रामीणो के सम्मुख उन लोगो द्वारा प्रदर्शित होते थे जो विभिन्न प्रकार के अभिनयो के लिए सुसज्जित होते थे। भिन्न भिन्न अवसरो पर शिव के अन्य कृत्य—जैसे राक्षसो से उनका युद्ध, गणो के मध्य उनकी भव्यता आदि—भी प्रदर्शित किये जाते थे।

इस प्रकार दूसरे स्तर के विकास का द्वितीय चरण प्रारभ हुआ। तव एक सशक्त परिष्कृत साहित्यिक शैली का प्रादुर्भाव हुआ जिसने एक निश्चित और सुस्थापित साहित्य का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार इस विकास का चरम उत्कर्ष १५वी शताब्दी के सत कवि सारलादास के ओडिया महाभारत में उपस्थित हुआ। पुरी के जगन्नाथ मदिर का निर्माण १२वीं शती के अत में हो गया था तथा कोणार्क का मदिर जिसे 'ब्लैक पैगोडा' भी कहते थे और जो कभी ससार का

अभिनय से चलकर उससे नितात भिन्न ऐतिहासिक नाटको का विकास हुआ। युद्धोपरात राज-महलो के सैनिकोत्सवो की समाप्ति पर अवकाश में घर जानेवाले इन सैनिको ने अपने-अपने गाँव जाकर इन नाटको का प्रचार किया।

यद्यपि इस स्तर तक नाटक सस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार प्राकृत में ही लिखे जाते थे तथापि किसी ने ओडिया में नाटक लिखने का साहस नही किया था। १५वी शताब्दी में ओडिशा के प्रसिद्ध राजा कपिलेन्द्र देव ने सस्कृत भाषा में लिखित अपने परशुराम व्यायोग नाटक में अमरराग का एक ओडिया सगीत सन्निवेशित किया। इस कार्य ने जनसाधारण को नाटक की ओर आकृष्ट किया और प्राचीन परपरा की इस चुनौती के कारण ये ओडिया नाटक के पथ-प्रदर्शक बने।

प्रतापरुद्र के समसामयिक राय रामानन्द ने सस्कृत में जगन्नाथवल्लभ नाटक लिखा था। उस नाटक की भूमिकाओ में पुरुष और स्त्री नट-नटियो के रूप से लिये गये थे। यह नाटक स्वय राय रामानन्द के निर्देश के अनुसार अभिनीत हुआ था। चैतन्य-चरितामृत से पता चलता है कि चैतन्य देव इस नाटक का गीतगोविन्दादि के साथ पाठ करते थे।

इसके अतिरिक्त महापुरुष अच्युतानन्द दास लिखित 'नित्यरासलीला' उन्ही के भक्तो द्वारा लगातार पाँच दिनो तक प्रदर्शित होती थी।

**तृतीय चरण**—इस समय ओडिशा मे अर्द्धनाटकीय मनोरजनो के विभिन्न रूपो का विकास प्रारभ हुआ। १७वी और १८वी शताब्दी में प्रसिद्ध कवि उपेन्द्रभज, सामत सिंहार, दीनकृष्ण दास, गोपालकृष्ण, कविसूर्य बलदेव रथ और अन्यों ने अपने अमर काव्यो तथा मधुर गीतो को उचित रागो और वृत्तो में लिखा।

ओडिशा तब गाँवो में बसता था और ओडिया-जीवन धर्म तथा सादगी से अत्यत प्रभावित था। उनके सीधे-सादे रस्म-रवाज गीतो और नृत्यो से जीवित हो उठते थे। किसी लडके के जन्म के अवसर पर पौराणिक ईश्वर सत्यनारायण के लिए "पाला" का प्रदर्शन किया जाता था और हरिजन्म के पवित्र दिन गोप-गोपियो के भिन्न-भिन्न प्रकार के वेश धारण कर लोग खुली हवा में गीतो और प्रदर्शनो के साथ मनोरजन किया करते थे। "पाला" कथोपकथन सहित गीत का एक प्रकार था। एक "पाला" दल में पाँच-छ व्यक्ति होते थे। "पाला" का यह प्रदर्शन नाटको से नितान्त भिन्न है। प्राचीन ओडिया साहित्य में ये विचित्र स्मरणशक्ति और पाडित्य का प्रदर्शन करते हैं।

रामनवमी के आसपास नौ दिनो तक रामलीलाएँ होती थी। राम का पूरा जीवन, उनके जन्म से लेकर रावण की मृत्यु तक, कई दृश्यो की शृखला में दिखाया जाता था। भिन्न-भिन्न वेशभूषा से सुसज्जित अभिनेता पहले सस्कृत पद्यो को राग और नृत्य के साथ गाते थे और फिर उस पद्य को नाटकीय भाषण, आजकल के मुक्त छद के रूप में उपस्थित करते थे।

इन धार्मिक रीति-रवाजो के साथ-साथ "यात्राओ" का भी प्रचलन था। इन यात्राओ में से अधिकाश की विषय-वस्तु धार्मिक होती थी और ये दृश्य-रहित नाटक के रूप मे प्रदर्शित

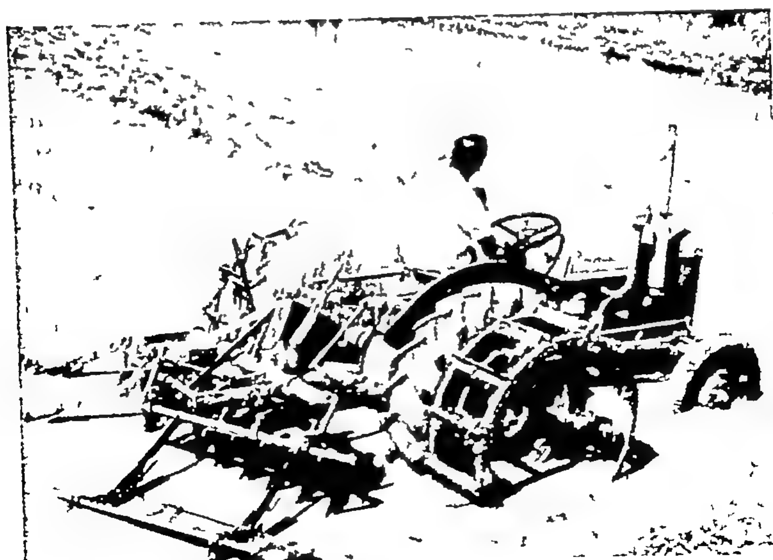
थे। यह समय १९वी सदी का अन्तिम भाग था। दक्षिणी भाग के नाटककार, जिनमें से अधिकाश राजा ही थे और जिन्होने विद्वता और विद्वानो का पोषण किया था, अपने उत्तरदायित्व के प्रति सदैव चैतन्य रहते थे ताकि उनकी ओडिया सस्कृति और भाषा तेलगुभाषी लोगो द्वारा तिरोहित न हो जाय। उनके नाटको में शव्दाडवर, सस्कृत के समास और लवे-लवे ऐसे शव्द-समूह होते थे जिनका समझना साधारण लोगो के लिए वहुत कठिन था। नाटको के शीर्षक ही उनके रूप और विषय के अतर को प्रकट करते थे, जव कि उत्तर का एक नाटककार "सीताविवाह" लिखता था तो दक्षिण का राजा नाटककार उसे "जानकी-परिणय" लिखता था। इसका फल यह हुआ कि दक्षिण में "प्रकृति-प्रणय", "उन्मत्त राघव", "परिमला-सहगमन", "पाचाली पहा-पहरण प्रताप", "वनदर्पदलन" आदि कालिदास और भवभूति के सस्कृत नाटको के नमूने पर लिखे गये ओडिया नाटक विलकुल कृत्रिम थे।

उत्तर में रगमच की स्थापना के वहुत पूर्व दक्षिण में जनसाधारण के रगमच की स्थापना हो चुकी थी। पार्लाखेमुडी के पद्मनाभरगालय में पडित गोपीनाथ द्वारा शकुन्तला का एक स्केच (रेखाचित्र) खेला गया था और तुरत वाद में राजा पद्मनाभदेव और उनके वधुओ द्वारा पौराणिक नाटक जनता को दिखाये गये थे। पार्लाखेमुडी के एक नये नाटक दल ने कटक में उत्कल-सम्मिलनी के वार्षिकोत्सव पर ध्रुव नाटक खेला था। ओडिया नाटक के इन दो विभिन्न प्रकारो में इसने एक प्रकार का झगडा खडा कर दिया। ये कटुतापूर्ण झगडे वहुत दिनो तक दो विभिन्न सम्प्रदायो द्वारा चलाये जाते रहे किंतु अत में प्रगतिशील दल की विजय हुई। चिकिटि के राजा राधामोहन राजेन्द्र देव, दक्षिण के एक दूसरे नाटककार थे जिनका नाम उल्लेखनीय है। उनके कुछ नाटक जैसे "परिमला सहगमन," "पाचाली पटा, प्रताप" और पौराणिक कथाओ या महाकाव्यो पर आधारित थे। इन नाटको की मुख्य विशेषता यह है कि वे महाकाव्यो के नमूने के सच्चे उदाहरण हैं। मजूषा के राजा किशोरचद्र देव इस प्रकार के एक दूसरे रचनाकार थे और खडियाल के राजा उन्ही का अनुसरण करते थे। रामशकर राय के समसामयिको में कामपाल मिश्र और भिकारीचरण पटनायक को विशेष यश मिला था। भिकारीचरण पटनायक का "कटक-विजय" यह प्रकट करता है कि रामशकर राय के स्थापित सप्रदाय का विकास किस प्रकार हो रहा था। किंतु ये नाटक परपरा से विलकुल अछूते नही रह सके। उनमें कुछ-कुछ काल्पनिक और अपौरुषेय तत्त्व भी थे। जैसे नियति, माया पुरुष, विधाता पुरुष, अदृष्ट कुमारी इत्यादि भी इनमें पाये जाते हैं। वे नाटक को एक वहुत लवी प्रस्तावना के वाद प्रारभ करते थे।

जाजपुर के निवासी स्वर्गीय कामपाल मिश्र ने "सीताविवाह" और 'वसन्तलतिका' नाम के दो नाटक लिखे हैं। 'सीताविवाह' नाटक ओडिशा के नगरो और पुरपल्ली में सैकडो वार खेला गया और अत्यन्त लोकप्रिय वना। दुर्भाग्य से आप पागल हो गये, नही तो आपकी वलिष्ठ लेखनी से और कई ऐसे नाटक अवश्य निकलते जिससे उत्कल साहित्य अत्यत समृद्ध हो सकता। कामपाल वावू ने पहले पहल सूत्रधार, नट, नटी आदि का नाटक से वहिष्कार किया था। प० मृत्युजय रथ ने 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद किया और प० हरिहर मिश्र ने 'परशुराम-विजय' आदि कई



प्राचीन प्रणाली से हल किया जा रहा है



खेत में ट्रैक्टर चल रहा है

घुरलीजोर क्षुद्र जलसेचन योजना के मुख्य स्लुइस से बहनेवाले जलप्रवाह का दृश्य

KABANG
IRRIGATION PROJECT
C.D. BLOCK, SUNDARGARH

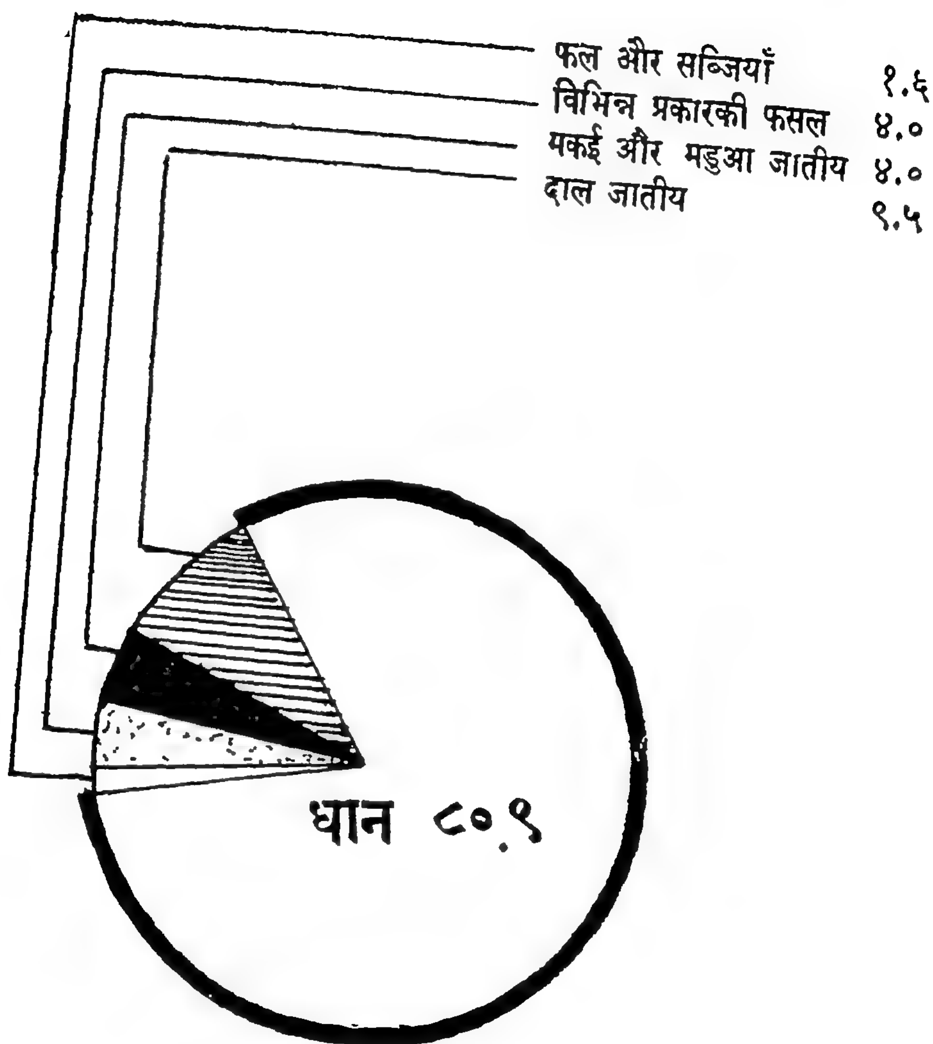
जिला सुन्दरगढ़

# उत्कल में कृषि की उन्नति

प्राचीन प्रणाली मे धान की खेती



जापानी प्रणाली से धान की खेती


फल और सब्जियाँ १.६
विभिन्न प्रकारकी फसल ४.०
मकई और मडुआ जातीय ४.०
दाल जातीय ९.५
धान ८०.९

वर्ष के अतर पर अकाल पडा करता था। १८६६-६७ का अकाल 'नअक' अकाल नाम से प्रसिद्ध है। सरकारी रिपोर्ट् से मालूम होता है कि इस दुर्भिक्ष में कम से कम एक-चौथाई लोग मरे थे। इस 'नअक' दुर्भिक्ष ने ओडिशा की कृषि और कृषि-अर्थनीति में एक नई क्रान्ति उपस्थित की। तभी से कृषि की स्थायी उन्नति के लिए सिंचाई की व्यवस्था का श्रीगणेश हुआ।

अँग्रेजी शासन-काल में ओडिशा पहले वग देश के साथ और वाद में विहार के साथ मिलाया गया था। इसलिए देश की कृषि में कुछ विशेष उन्नति नही हुई। सन् १९३६ ई० से ओडिशा एक स्वतंत्र प्रदेश वना। १५ अगस्त सन् १९४७ में भारत स्वतत्र हुआ। लोगो को आशा थी कि स्वाधीन होने पर देश में घी-दूध की नदियाँ वह उठेंगी। पर ऐसा कुछ न हुआ वरन् आज खाद्य-समस्या तथा कृषि-सवधी अर्थनीति और भी शोचनीय हो उठी है।

खाद्य-समस्या के कारण और उसके समाधान के उपाय पर विचार करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। खाद्याभाव होने पर कोई मानव-समाज जीवित नही रह सकता। क्षुधा-राज्य अराजकता को निमत्रित किया करता है। व्यक्ति यदि क्षुधा मे व्याकुल हो तो उसे चैन कहाँ? अत देश मे शान्ति तथा समृद्धि के लिए खाद्य-समस्या का समाधान और देश की कृषि सवधी अर्थनीति की उन्नति आज की सर्वप्रधान समस्या है।

## कृषि में आनेवाली वाधाएँ

(१) **अतिवृष्टि और अनावृष्टि**—भारतवर्ष में कृषिकार्य मौसमी वायु पर निर्भर है। मौसमी वायु के नियत समय में तथा नियमानुसार चलने से कृषि उत्तम होती है। उसमें थोडा भी परिवर्तन होने पर वाढ, नही तो सूखा अवश्य ही कृषि की हानि किया करता है। पिछले ८० वर्षों की जलवायु की स्थिति से पता चलता है कि ओडिशा मे प्रति आठवें या दसवें वर्ष वाढ अथवा सूखा आया करता है। इस वाढ और सूखे का विवरण सारिणी न० १ में दिया गया है।

**ओड़िशा में वाढ़-सूखा**

**सारिणी नं० १—**

| सन् | वाढ | सूखा |
|---|---|---|
| १८७५ | ० | |
| १८८३ | ० | |
| १८९६ | ० | |
| १९०० | ० | |
| १९०१ | | ० |
| १९२४ | | ० |
| १९२५ | ० | |
| १९३३ | ० | |
| १९३६ | ० | |
| १९५५ | ० | ० |
| १९५७ | | ० |

कटक, पुरी, वालेश्वर और गजाम जिलों में आवादी वहुत घनी है। महानदी की उपत्यका तथा पार्वत्य अचल में आवादी घनी होती जा रही है। जव कि चीन देश में प्रतिवर्गमील १२६ एव जापान में २०७ लोग रहते हैं, ओडिशा में प्रतिवर्गमील २४९ लोग रहते हैं। इसलिए ओडिशा घनी आवादी वाला प्रदेश हो चुका है। पिछले दस वर्षों की जन-वृद्धि के अनुपात को देखने पर ज्ञात होता है कि इस समस्या के उत्कटतर होने मे अधिक समय नही लगेगा।

अर्थनीतिज्ञ प्राध्यापक इष्ट की राय में एक मनुष्य को साल भर के भरण-पोषण के लिए कम से कम ढाई एकड भूमि चाहिए। प्राध्यापक राधाकान्त मुखर्जी के मत से भारतीय सस्कृति, समाज और खान-पान की दृष्टि से प्रति मनुष्य को डेढ एकड भूमि आवश्यक है। ओडिशा में कुल कृषि-उपयोगी भूमि १ करोड २५ लाख एकड है और जनसख्या १ करोड ४६ लाख है। अत सपूर्ण वर्ष के भरण-पोषण के लिए प्रतिमनुष्य ८ एकड भूमि पडी। पृथ्वी के भिन्न-भिन्न देशो में प्रति मनुष्य कृषि-भूमि तथा खाद्य के उत्पादन का परिमाण सारिणी न० ३ में दिया गया है।

**विश्व के विभिन्न देशो में प्रति व्यक्ति कृषि-भूमि एव खाद्य-उत्पत्ति की मात्रा**

**सारिणी न० ३—**

| देश | प्रति आदमी खेत (एकड) | प्रति एकड उत्पन्न खाद्य का परिमाण (केलारी) | उत्पन्न खाद्य की मात्रा (केलारी) |
|---|---|---|---|
| उत्तरी अमेरिका | ४–० | २,५०० | १०,००० |
| दक्षिणी अमेरिका | १ ५ | ४,७०० | ७,०५० |
| पश्चिमी यूरोप | ० ०७ | ७,५०० | ५,२५० |
| सोवियत् रूस | २ ० | २,३०० | ४,६०० |
| पूर्वी एशिया | ० ५ | ५,५०० | २,७५० |
| दक्षिणी एशिया | ० ८ | ३,६०० | २,९०० |
| भारतवर्ष | ० ९ | ३,८०० | २,८०० |
| ओडिशा | ० ८ | ३,५०० | २,५०० |

शिल्प-प्रधान देश प्रति वर्गमील अधिक आवादी को खिला सकता है परन्तु कृषि-प्रधान देश में प्रति वर्गमील में २०० से अधिक लोगो का रहना कष्टसाध्य है। ओडिशा की तरह न्यूजीलेंड, मिस्र, स्पेन, और फ्रास की समृद्धि कृषि-अर्थनीति पर निर्भर करती है। पर इन देशो की प्रति वर्गमील आवादी की तुलना मे ओडिशा की आवादी अधिक है।

| देश | प्रतिवर्गमील जन-सख्या |
|---|---|
| १–न्यूजीलेंड | ११ ८० |
| २–मिस्र | ३४ ०० |
| ३–फ्रास | १८४ ०० |
| ४–ओडिशा | २४९ ०० |

ओड़िशा में विभिन्न प्रकार की फसलो का क्षेत्रफल कृषिभूमि का कुल क्षेत्रफल
१२५२४७१९ एकड

सारिणी नं० ५––

| फसल की श्रेणी | फसल | क्षेत्रफल (एकड) | कुल क्षेत्रफल और संकडा एकड |
|---|---|---|---|
| खाद्य फसल | शारदा धान | ८,२२५,४९६ | |
| | बिआली धान | १,००३,१०५ | |
| | डालुआ धान | ७९,२२७,७ | |
| | गेहूँ | ११,६५६ | |
| | ज्वार | ६६,५१९ | |
| | जौ | ९६० | |
| | बाजरा | ९,०४० | |
| | माँडिया | ३१४,३९६ | |
| | मक्का | ५४,११२ | |
| | मूंग | १८५,८६४ | |
| | अन्यान्य खाद्य और दालीय फसलें | ११४९,९०५ | |
| | विविध खाद्य फसलें | ११,८४९ | |
| | फल तथा साग-सब्जी | १८४,३५६ | १०८९६५२४९१ ७ |
| तेलहन | तीसी | २१,६८४ | |
| | तिल | २८७,९७६ | |
| | सरसो | ७०,६२८ | |
| | मूंगफली | ५४,९४३ | |
| | नारियल | १०,९४९ | |
| | रेंडी | ४४,२४६ | |
| | अन्यान्य | ११७,४८१ | ६०७९०७<br>५८६२२३४ ८ |
| मसाला | मसालाजातीय फसल | २०,२३४ | २०२३४ |
| शर्कराजातीय | गन्ना | ६२,१४३ | ६२१४३ |
| ततुजातीय | कपास | ९,००० | |
| | पाट | ५१,००० | |
| | काउंरिया | ९,२४४ | ६९२४४ |
| रग जातीय | रगप्रद | १,२४५ | १२४५ |

| | |
|---|---|
| ४—साग-सब्जी | |
| (क) साग | २ औंस |
| (ख) दूसरे साग | ६ ,, |
| ५—फल | २ ,, |
| ६—दूध | ८ ,, |
| ७—तैल्य पदार्थ | २ ,, |
| ८—मास | २ ,, |

ओडिशा की जनसख्या १ करोड ४६ लाख है। लस्क के गुणक (Lusk's Co-efficient) प्रयोग के अनुसार यह आवाल-वृद्ध जनसख्या १ करोड २८ लाख युवको की जनसख्या के वरावर होगी। इन १ करोड २८ लाख युवको के लिए वर्ष भर के विभिन्न प्रकार के खाद्य-परिमाण को सारिणी न० ६ में दिया गया है।

**ओडिशा का वार्षिक खाद्य**

सारिणी न० ६—

| खाद्य | परिमाण (टनो में) | |
|---|---|---|
| १ शस्य जातीय | १,१२८,०६५ | |
| (क) चावल | | |
| (ख) अन्यान्य शस्य | ६६४,०३२ | |
| २ दाल | ३९२,०१० | |
| ३ शर्करा | २६१,३४० | |
| ४ सब्जियाँ | | |
| (क) साग | २६१,३४० | १३,०६,७०० |
| (ख) अन्य साग-सब्जी | ७८४,०२० | |
| ५ फल | २६१,३४० | |
| ६ दूध | १,०४५,३६० | |
| ७ तैल्य प्रदार्य (तेलहन) | २६१,३४० | |
| ८ मछली और मास | २६१,३४० | |

ओडिशा मे प्रचलित कृषि-पद्धति और फसल की खेती के अनुमार विभिन्न तरह की फसलो के वार्षिक उत्पादन की मात्रा सारिणी न० ७ मे दी गई है। इस उत्पादन की मात्रा में से वेहन रखते समय हानि की मात्रा निकाल देने से ज्ञात होता है कि ओडिशा केवल धान में ही धनी है। साल में प्राय ७५७ हजार मन चावल की वचत होती है। परन्तु दालीय फसल, शर्करा, तैल्य फसल, मसाला, मादक और भेषज द्रव्य, साग-सब्जी, फल, दूध और मछली का अभाव हुआ करता है।

अपेक्षा बहुत कम होती है। एक सामान्य कृषक ७-८ रुपये मन की दर से अपना धान बेचता है। इतनी सस्ती दर से ओडिशा प्रतिवर्ष पडोसी प्रदेशो को लाखो टन धान और चावल भेजा करता है। यहाँ से निर्यात होनेवाले धान के कई वर्षों के आँकडे निम्नांकित है—

| वर्ष | धान रफ्तनी की मात्रा (टनो में) |
|---|---|
| १९४३-४४ | ६२६२४ |
| १९४४-४५ | ८१९५१ |
| १९४५-४६ | ८४९११ |
| १९४६-४७ | १२५१४९ |
| १९४७-४८ | १३९९२० |
| १९४८-४९ | १२७७०० |

ओडिशा बहुत ही कम दर में धान का निर्यात करता है और अधिक दर मे वह आवश्यक वस्तुएँ तथा खाद्य पदार्थ बाहर से मँगाने को बाध्य होता है। अन्य प्रदेशो से खरीदे जानेवाले खाद्य पदार्थों तथा कपडो की वार्षिक मात्रा के आँकडे सारिणी न० ९ में दिये गये है।

सारिणी न० ९—

| श्रेणी | विशेष विवरण | |
|---|---|---|
| खाद्य शस्य | गेहूँ | १,६५० |
| | मांडिआ | १३० |
| | | १,७८० |
| दाल | | २७२ |
| | | १,८७० |
| | | २,१४२ |
| सब्जियाँ | | १,७८६ |
| | | ५३६ |
| | | २,३२२ |
| फल | | |
| | | ७८८ |
| | | १० |
| | | ७९८ |
| | | ९४४ |
| | | ९४४ |
| | | ५० २ |
| | | १,०९,९६१ वेल |
| | | ४२ |

कृषि-उन्नति के लिए विज्ञान की सहायता लेनी होगी। आज जो जाति वैज्ञानिक खादो को कृषि में व्यवहृत नही कर सकी है, वह कृषि में पिछडी हुई है। ओडिशा की कृषि-उन्नति की मुख्य योजना है, फसल-योजना। धान पैदा करने की मनोवृत्ति वदलनी पडेगी। इस वैज्ञानिक युग में 'जहाँ पानी वहाँ धान' की मनोवृत्ति छोडनी पडेगी। वर्तमान ओडिशा मे जितनी भूमि मे धान की खेती होती है, उसमें २०, ३० प्रतिशत की कमी करनी पडेगी। वाहर से आनेवाले आवश्यक खाद्य-शस्य तथा वस्त्र-शिल्प का स्थानीय उत्पादन वढाना होगा। धान के स्थान में अर्थ-करी फसल पैदा करनी होगी। कृषि-समृद्धि के लिए हमें वर्तमान समय में पैदा होनेवाले खाद्य-शस्य में वहुत इजाफा करना होगा। मक्का, ज्वार, गेहूँ आदि क्षुद्र शस्य को १०० गुना, दालीय फसल को २५० गुना, गुड-चीनी को १५० गुना, तेलहन आदि को २०० गुना, कपास को १०० गुना एव दूध को २०० गुना वढाना होगा।

धान की कृषि सिर्फ दारिद्र्य को ही नही वढाती, अपितु यह भूमि के ठीक-ठीक विनियोग में वाधा उत्पन्न कर मृत्तिका के क्षय को वढाने के साथ-साथ उसकी उर्वरता को भी नष्ट करती है। यह वाढ तथा सूखा पडने पर अकाल का प्रधान कारण वन वैठी है। धान की खेती 'कौलिक प्रथा' के अनुसार करने के कारण प्रति एकड यहाँ की उपज अन्यान्य प्रदेशो की तुलना मे वहुत कम हो गई है। ओडिशा में प्रति एकड विभिन्न फसलो की उपज की मात्रा सारिणी न० १० में दरसाई गई है।

**भारतवर्ष और ओडिशा में प्रति एकड उपज**

**सारिणी नं० १०—**

| फसल | प्रति एकड आमदनी | | | |
|---|---|---|---|---|
| | भारतवर्ष | ओडिशा | पृथ्वी | |
| | (पौंडो में) | (पौंडो में) | (वुसेल में) | पौंडो के हिसाव मे |
| धान | ९८८ | शारद-८००<br>विआली-६४०<br>डालुआ-७२० | ३२ | १४४० |
| गेहूँ | ८११ | ७०० | १४ | ८४० |
| मक्का | ९३३ | ८०० | २४ | १३४४ |
| जौ | १०२९ | ६०० | २० | ९६० |
| माडिया | ९२७ | ८०० | —— | —— |
| वाजरा | ८०० | ४५२ | | |
| ज्वार | ६२४ | ४०० | | |
| गन्ना | २९५६ | ४३२० | —— | २६ ६०० |
| कपास | ११० | १०० | | १६१ |
| तम्वाकू | ११२९ | ११२० | | ७७६ |
| तेलहन | ५३९ | ३६० | | ४८२ |
| दालीय फसल | ७०० | ४०० | १३ ७ | ८२४ |

मौसमी वायु बंगोपसागर से निकलकर इस अचल पर से गुजरती है, अत शीघ्र वर्षा होती है। यहाँ साल मे ५८″ से ६७″ तक वर्षा होती है। गर्मी में खूब लू चलती है।

इस क्षेत्र की मिट्टी लाल है। मृत्तिका-विज्ञान में इस प्रकार की मिट्टी को 'लाल मिट्टी' (Red Earth) कहते हैं। इस मिट्टी में बालुआ अश आलुमिना या पकीले अश मे अधिक होता है। इसमे लौहाश भी अत्यल्प है। किंतु यह सूक्ष्म आकार में नीचे घुलकर वह गई है। इसमें चूना, पोटाश सामान्य मात्रा में हैं। इस भाग के कुचिडा अचल में काली मिट्टी मिलती है। इस काली मिट्टी को रेन-जिना ((Ren-zina) कहते हैं। इसमे चूने का अश अधिक होता है। अमर्दा और वालदिडा अचल में चिकिडा और वन-मिट्टी अधिक है। इस मिट्टी को प्लानोसोल (Planonsol) कहते हैं।

(२) महानदी उपत्यका—ब्राह्मणी नदी का दक्षिणी तट एव महानदी तथा उसकी उपनदियों—इब, अग और तेल आदि—का अववाहिका भाग इस विभाग मे पड़ता है। नवलपुर, वालागीर, सोनपुर, रेढाखोल, आठमलिक अनुगुल, हिन्दोल, ढेकानाल, वौद, दसपल्ला, नयागड और नरसिंहपुर आदि स्थान इस उपत्यका के भीतर आते हैं। इस अचल के पश्चिमी और मध्य भाग मे कार्बनीफेरस युगो से मौजूद है, अत कोयला कई स्थानो मे देखा जाता है। नवलपुर के पहाड कुडापा जाति के पत्थरो मे गठित है और आठमलिक, वौद एव अनुगुल के पहाड गंडवाना श्रेणी के पत्थरो से बने हैं। ढेंकानाल से तिगिरिया तक के पहाड उद्‌वर्व गडवाना पत्थरो के बने है। उस भूभाग में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से वर्षा होती है। गरमी में अत्यत गरमी पडती है। वायु की आर्द्रता कम रहती है, अत दिन में लू चलती है और रात मे साधारणतया ठंडा रहता है।

इस भूभाग मे चार किस्म की मिट्टी मिलती है, यथा—पीली, काली, पुरातन जद्दर, गेरुआ लाटराइट। इब, चम्पाली उपत्यका में पाई जानेवाली मिट्टी पीली मिट्टी है। यहाँ पानी की अधिकता भी है। जान्तव पदार्थो के अभाव मे यह मिट्टी शीघ्र अनुर्वर हो जाती है।

काली कपास मिट्टी—वलागीर पटना के लोइसिंहा, वड़रा, मरलगा येत तुपरा, मडनला अचल, रेढाखोल, आठमलिक, अनुगुल, वौद, दसपल्ला और नयागढ में पर्याप्त काली मिट्टी पाई जाती है। लोइसिंहा अचल में ऊपरी सतह की फुट–डेढ फुट मिट्टी काली है पर नीचे की तह सफेद जैसी है। इसे छुई मिट्टी कहा जाता है। इसमें से पानी शीघ्र नीचे नही जा सकता। यह काली मिट्टी गरमी में फट जाती है और वर्षा ऋतु में फूल उठती है तथा दलदली हो जाती है। इसमें अच्छी तरह जुताई नही होती। अनुगुल, जटपडा अचल की काली मिट्टी में छोटे-बडे गेगुटी पत्थर मिले रहते हैं। अत मिट्टी खारी होती है। इसमे पोटाश का अश अत्यधिक मात्रा में है, परन्तु फासफोरस बहुत पैदा होता है।

पुरातन जद्दर—यह वडगड, अताविरा, भेडेन, विनिका अचलो में मिलती है। इस भूभाग की भूमि ऊँचाई-निचाई की दृष्टि से आट, माल, वेर्णा और वाहाल आदि चार भागो में विभक्त हैं।

(३) पूर्वी घाट का पहाडी इलाका—पूर्वी घाट की पर्वतमाला सबसे प्राचीन है। कोरा-

चीरने या तीन घंटे तक वासन माँजने में जितनी शक्ति आवश्यक है उतनी शक्ति आधे सेर वजन की घास मे निहित है।' मैदान की घास से चौगुनी शक्ति अनाज के दानो मे निहित रहती है।

घास पृथ्वी की नाइट्रोजन को अपनी जडो द्वारा प्रोटीन में बदल देती है। यह प्रोटीन ही प्राणी की जीवनी शक्ति है। इससे हमारे शरीर के क्षय की पूर्त्ति तथा मासपेशियो की रचना होती है। अमेरिका की वार्षिक आय मे से सात प्रतिशत आय केवल घास से ही होती है। घास चरकर गाये, बकरियाँ और भेडे पुष्ट होती हैं। अमेरिका वार्षिक ८ करोड पौंड वजन का मास गायो बकरियो और भेडो से प्राप्त करता है। घास के कारण ही अमेरिका के कृषक दूध, मलाई, मक्खन, पनीर आदि बेचकर प्रतिवर्ष ४०० करोड रुपये कमाते हैं। हिसाब लगाकर देखा गया है कि सयुक्त राज्य अमेरिका जितनी वार्षिक आय मोटर-इस्पात उद्योग द्वारा करता है उससे कही अधिक आय वह घास की खेती से करता है। वह मास के व्यापार से बारह सौ करोड, दूध के व्यापार से छ सौ करोड, सूखी घास से दो सौ करोड, गेहूँ, जौ, ओट, बाजरा आदि अनाजो और ईख आदि घास जातीय शस्यों से नौ सौ करोड मुद्रा कमाता है। घास की खेती के कारण सयुक्त राष्ट्र अमेरिका बाढ की यत्रणा से २५ सौ करोड मुद्राओ के कलपुर्जो, घरबार और अचल सम्पत्ति तथा ४० सौ करोड मुद्रा मूल्य के अनाज की रक्षा कर पाता है।

मक्का और घास की खेती का मृत्तिकाक्षय पर प्रभाव

सारिणी न० ११—

| मिट्टी की किस्म | जमीन का ढलाव | प्रतिएकड क्षय होने वाली मिट्टी की मात्रा (टनों में) | | प्रति एकड बहने वाले पानी का सैं० भाग | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | मक्का जातीय फसल | घास की फसल | मक्का जातीय फसल | घास जातीय-कृपि |
| पटुआ दोरसा | ९ ० | ३८ ३ | ०३ | १८ ७ | १ ३ |
| दोरसा | ८ ० | ५० ९ | १६ | २७ १ | ८ १ |
| महीन वालुई दोरसा | ७ ७ | १८ ९ | ०२ | १२ ५ | १ ० |
| पकीली दोरसा | १० ० | ३१ २ | ३१ | १२ ४ | १ ९ |
| महीन वालुई दोरसा मिट्टी | ८ ७ | २४ ० | ०८ | १९ ९ | १ ० |
| एजन् | १६ ५ | ६१ १ | ००५ | १४ ४ | ० ३ |
| चिकटा मिट्टी | ८ ० | २० ६ | ०२ | १३ ६ | ०५ |
| काली मिट्टी | २ ० | ७ ८ | ०८ | १० ५ | १ २ |

घास ही मृत्तिका-क्षय का अवरोध करती है। वह मैदान के पानी को रोक रखती है। वर्षा का पानी भूमि को पारकर झरने में चला जाता है। इनसे बाढ के आने की कोई आशंका नही रह जाती। घास ही विशाल सडको, रास्तो, घाटो और तालाबो को बाँधे रहती है, रेल के मैदान

गया है कि एक सौ पौंड सुअर के मास के लिए चार सौ पौंड दाना देना पडता है, किंतु गोचर-भूमि में चरने से सौ पौंड मास के लिए उन्हें किसी प्रकार का दाना नही देना पडता ।

**महानदी की घाटी**—महानदी उपत्यका की समस्या सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की तेनेसी नदी की समस्या से मिलती-जुलती है । बाढ और सूखा तेनेसी नदी के तटवासियो को आये दिन दुखी किया करता था । किंतु तेनेसी नदी की बाँध योजना ने जादू के समान इस उपत्यका को परी राज्य में बदल दिया है । तेनेसी बाँध योजना सिर्फ बिजली पैदा करती है । इस विद्युत् के सदुपयोग द्वारा इस परी राज्य की सृष्टि हुई है । इसी प्रकार महानदी उपत्यका की हीराकुद बाँध योजना से विद्युत् शक्ति की प्राप्ति के साथ-साथ सिचाई में भी सुविधा हुई है । ७४०००००० एकड फुट जल, जो समुद्र में व्यर्थ बह जाया करता था वह, आज मानव-सेवा में लग सकेगा । सबलपुर, बलागीर जिले में ६ लाख ७२ हजार एकड भूमि की सिंचाई के लिए पानी मिल सकेगा । इसके अतिरिक्त इस योजना से २ लाख ७० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न की जा सकेगी । वह इस उपत्यका की समस्या (१) जल का उपयोग तथा (२) बिजली द्वारा सिंचाई और शिल्प उद्योग की समृद्धि में सहायक होगी ।

हीराकुद बाँध योजना से बडगड की नहर ३ लाख ८० हजार एकड और शासन नहर ७१ हजार दो सौ एकड भूमि की सिंचाई करेगी । खरीफ की शत-प्रतिशत और रबी की ४८ प्रतिशत एकड भूमि की सिंचाई हो सकेगी । पहले ये सभी इलाके अनाज की उपज के लिए सिर्फ वर्षा पर निर्भर रहते थे । यहाँ की वार्षिक औसत वर्षा ६० इच है । यह वर्षा आषाढ मास से आश्विन मास तक रहती है । यहाँ वर्ष में आठ मास तक तालाब और कटा पर निर्भर रहना पडता था । अत वर्ष में ६ माह तक लोग खेती करते और शेष ६ मास आलसी बनकर बैठे रहते थे ।

सिंचाई की व्यवस्था से कृषि में अनेक परिवर्तन सम्भव हो गये हैं । अब एक फसल के बदले अनेक फसलें तथा बहुविध कृषि होने लगी है । सिंचाई के लिए प्राप्त जल में भूमिनाशक लवणाश अत्यल्प मात्रा में हैं । अत इसके द्वारा खेती के लिए पूरे वर्ष सिंचाई होती रहने पर भी भूमि के गुण की हानि होने की आशका नही है । महानदी के पानी में एक हजार भाग में से सिर्फ ८ से २६ भाग तक लवणाश है । जल के एक हजार भाग में ६० भाग तक का लवणाश मिट्टी का गुण नष्ट नही कर सकता, इसलिए महानदी के जल से सिंचाई होने पर भूमि के गुण नष्ट नही हो सकते ।

इस इलाके की मिट्टी पुरातन खद्दर, मटाल, मटाल दोरसा, बालिया दोरसा, और काली कपास की मिट्टी एव जगह-जगह की लाल रुगुडिया जमीन की ऊँचाई-निचाई के भेद से विभक्त की गई है । इस इलाके की भूमि को आट, माल, बेर्णा और बहाल भागो में विभक्त किया गया है । आट, माल ऊँची भूमि है, यहाँ पानी लगने की आशका नही रहती । पानी देने से भूमि शीघ्र मुलायम हो जाती है । बेर्णा, बहाल नीची भूमि है, अत यहाँ काफी देखभाल करके पानी देना पडता है । सिंचाई की दृष्टि से यह भूमि तीन भागो में बाँटी जाती है—ऊँची भूमि (७४ प्रति सै०), बेर्णा (१४ प्रति सै०) और बहाल (१२ प्रति सै०) ।

धान की कटाई करके डालुआ धान की फसल की जा सकती है। इसलिए महानदी उपत्यका में इस समय जितनी भूमि में धान की खेती की जाती है उससे कम जमीन में ही इतना ही धान पैदा किया जा सकता है।

आट-माल भूमि में धान की फसल न करके ईख, कपास, मूँगफली, तेलहन, अरहर आदि दालीय फसल और सागसब्जी, फल आदि पैदा किया जा सकता है। वर्तमान धान की जमीन में से २० प्रति सैं० कम करके यह अर्थकरी फसल पैदा की जा सकती है।

**नूतन कृषि-पद्धति**—वर्तमान कृषि-पद्धति को बदलकर खरीफ एव रवी की फसलो में कौन फसल कितने अनुपात में पैदा की जा सकती है, इसे सारिणी नं० १३ में दिया गया है।

**खरीफ व रवी में विभिन्न फसलो का अनुपात**

**सारिणी नं० १३—**

| फसल की किस्म | | प्रतिशत अनुपात | |
|---|---|---|---|
| | | खरीफ | रवी |
| १— | शस्य | ४०% | १०% |
| २— | छुंई | १०% | ८% |
| ३— | शर्कराप्रद | १०% | १०% |
| ४— | रेशाजातीय | १०% | २% |
| ५— | तेलहन | ५% | ५% |
| ६— | मसाला व मादक | २०% | २% |
| ७— | गो-चारा | २% | २% |
| ८— | हरी खाद | १०% | |
| ९— | साग-सब्जी | २% | ७% |
| १०— | गोचर भूमि | ४% | ४% |
| ११— | बगीचा | ५% | ५% |
| | | १००% | ५०% |

**पर्यायक्रम से फसलों की खेती**—नाइट्रोजन और जान्तव पदार्थ मिट्टी की उर्वरता के परिमापक है। परती और कुमारी मृत्तिका में ये दोनो यथेष्ट मिलते है। इसी से इस भूमि से एक ढेला उठाने से वह शोल के समान हलका मालूम पडता है। कुमारी भूमि में वारम्वार खेती करने से नाइट्रोजन एव जान्तव पदार्थों का क्षय होता है। भूमि की उर्वरता घट जाती है। ४० वर्ष की खेती के बाद कुमारी भूमि में कितना परिवर्तन होता है, उसका विवरण सारिणी नं० १४ में दिया गया है।

(३) छुइंजातीय फसल (Lequminous Crops) । जडप्रधान फसल के वाद रेशायुक्त जड-प्रधान फसल एव तीसरे वर्ष छुइंजातीय फसल पैदा करना आवश्यक है। इसका विवरण सारिणी न० १५ में देखा जा सकता है।

धान, मक्का, जौ, गेहूँ, आदि अनाज रेशायुक्त जडप्रधान फसलें है। इनकी खेती वार-वार करने से भूमि की उर्वरता किस प्रकार घट जाती है और इनके साथ छुइं जातीय फसल की खेती करने से वह किस प्रकार वढ जाती है, इस सवघ में जो निष्कर्ष दिये गये है, उन्हें सारिणी न० १६ में देखा जा सकता है।

**फसल पर्याय और जमीन की उर्वराशक्ति**

**सारिणी नं० १६—**

| | प्रतिएकड उपादान की मात्रा | |
|---|---|---|
| | हिउमस (टनो में) | नाइट्रोजन (पौंड के हिसाव से) |
| परती रहनेवाली भूमि | १७ ५ | २१७६ |
| ३० वर्पतक मक्का की खेती | ६ ४ | ८४० |
| ३० वर्ष तक जौ की खेती | ११ ४ | १४२५ |
| ३० वर्ष तक गेहूँ की खेती | ११ ० | १३१५ |
| मक्का, जौ, गेहूँ, छुइंजातीय फसल | १३ ४ | १७८० |

प्रतिवर्ष धान, मक्का, गेहूँ की खेती से हिउमस और नाइट्रोजन मिट्टी से विलुप्त हो जाते है। किन्तु इन फसलो के साथ छुइंजातीय फसल की खेती से इन दोनो का क्षय नही होता।

हरी खाद—अमेरिका में प्रति एकड ४० टन गोवर की खाद या हरी खाद खेत में डालते है। इससे १० टन हिउमस मिलता है। इस १० टन का चतुर्थांश अगार अम्ल में वदल जाता है। इससे ढाई टन वजन का अन्न उत्पन्न होता है। हिउमस के प्रयोग से अन्न अविक पुष्टिकारक हो जाता है तथा विटामिन की मात्रा वढ जाती है। हीराकुद जल द्वारा सिंचित भूमि में धनियाँ, सनई और मटर आदि हरी खाद की खेती होनी चाहिए। महानदी उपत्यका में फसल की एक प्रयोगमूलक सूचना सारिणी न० १७ में दी गई है।

पर्यायक्रम से होनेवाली खेती द्वारा भूमि की उर्वरता के साथ-साथ पैदावार भी वढती है और विभिन्न शिल्पोद्योग के लिए कच्चा माल भी मिलता है। दो या तीन वर्षीय फसल-पर्याय का सहारा लिया जा सकता है। इसका विवरण सारिणी न० १८ में दिया गया है।

सारिणी न० १८ में वताई गई पर्याय क्रमवाली फसलो में से किसान अपनी सुविवा के अनुसार कोई भी फसल पैदा कर सकता है। एक ही वर्ष के भीतर विभिन्न प्रकार की भूमि में एक फसल के वाद दूसरी फसल पैदा करने का विवरण सारिणी न० १९ में दिया गया है।

सारिणी नं० १८ (क)— दो वर्षीय फसल पर्याय

| भूमि | वर्ष | खरीफ | रबी | ग्रीष्मकालीन |
|---|---|---|---|---|
| ऊँची | (क) प्रथम वर्ष | कपास, दाल, | दालीय फसल | साग-सब्जी |
| आट, माल | द्वितीय वर्ष | हरी खाद। | आट, धान। | तेलहन |
| | (ख) प्रथम वर्ष | —एजन— | —एजन— | गन्ना। |
| | द्वितीय वर्ष | गन्ना | गन्ना | गन्ना। |
| | (ग) प्रथम वर्ष | हरी खाद | गेहूँ | हरी खाद। |
| | द्वितीय वर्ष | कपास | मटर या सरसो | |
| | (घ) प्रथम वर्ष | धनियाँ, हरी खाद | गन्ना | गन्ना |
| | द्वितीय वर्ष | गन्ना (मूली) | गन्ना | ग्रीष्मकालीन सब्जी |
| | (ङ) प्रथम वर्ष | नलिता। | गेहूँ। | हरी खाद |
| | द्वितीय वर्ष | धान। | दालीय फसल | |
| | (च) प्रथम वर्ष | मक्का वा ज्वार | मूंग | पाट की बोआई |
| | द्वितीय वर्ष | पाट | गेहूँ | साग-सब्जी। |
| | (छ) प्रथम वर्ष | वर्षाकालीन सब्जी | गन्ना की बोआई | गन्ना |
| | द्वितीय वर्ष | गन्ना। | गन्ना की पेडाई | |
| | (ज) प्रथम वर्ष | अरहर | अरहर की कटाई | माँडिया |
| | द्वितीय वर्ष | कन्दमूल | कन्दमूल की खुदाई | गोचारा |
| वेर्णाभूमि | (क) प्रथम वर्ष | धनियाँ, सनई करके धान रोपना | धान काटना और दालीय फसल वा तेलहन वोना | दालीय फसल |
| | द्वितीय वर्ष | पाट | आलू या गेहूँ | |
| | (ख) प्रथम वर्ष | हरी खाद के वाद धान रोपना | गन्ना वोना। | |
| | द्वितीय वर्ष | गन्ना | गन्ने की पडाई | |
| | (ग) प्रथम वर्ष | नलिता के वाद धान-रोपनी | धान काट करके ग्रीष्मकालीन साग-सब्जी | |
| | द्वितीय वर्ष | हरी खाद करके धान रोपना | धान काट करके सरसो आदि वोना | |
| | (घ) प्रथम वर्ष | कपास | गेहूँ | |
| | द्वितीय वर्ष | हरी खाद करके धान रोपना | धान काटकर दा-लीय फसल | |
| | (ङ) प्रथम वर्ष | | धान काटकर शीतकालीन कपास लगानाखू वोना | |
| | द्वितीय वर्ष | कपास तोडकर धान रोपना। | तम्वा मूंग तथा तम्वाखू | |
| | (च) प्रथम वर्ष | हरी खाद करना धान रोपना | वोना, गेहूँ। | |
| | द्वितीय वर्ष | मक्का, हरी खाद | | |

सारिणी न० १८ (ख) का शेष--

| जमीन | वर्ष | खरीफ | रवी | ग्रीष्मकालीन फसल |
|---|---|---|---|---|
| | (ग) प्रथम वर्ष | हरी खाद के वाद धान | | केले का लगाना |
| | द्वितीय वर्ष | केला | | |
| | तृतीय वर्ष | ,, | | |
| वाहालजमीन | (क) प्रथम वर्ष | पाट के वाद धान | दालीय जातियाँ | |
| | द्वितीय वर्ष | धान | ,, ,, | |
| | तृतीय वर्ष | नलिता या पाट | धान | |
| | (ख) प्रथम वर्ष | हरी खाद के वाद | कपास | |
| | द्वितीय वर्ष | ,, ,, | दालीय फसल | |
| | तृतीय वर्ष | पाट के वाद धान | परती | |

सारिणी न० १९--

| भूमि की किस्म | फसल के वाद फसल | वोने का समय | काटने का समय |
|---|---|---|---|
| धान के लिए अनुपयुक्त | मूंगफली, आलू, मक्का | मूंगफली १५ से ३१ मई | १५ से ३० सितम्बर |
| | | आलू ३० अक्टू० से १५ नवम्वर | ३० जून से १५ फरवरी |
| | | मक्का १५ फरवरी से २८ फरवरी | एक मई से १५ मई |
| आट्, माल | वियाली धान, आलू, मक्का | वियाली धान १५मई से ३१ मई | १५ सितम्वर तक |
| | | आलू १५ नव० तक | जून के अन्त से १५ फरवरी तक |
| | | मक्का १५ फरवरी | ३० अप्रैल तक |
| | विआली धान, कपास | वियाली धान, १५ मई से ३० मई | १५ सितम्वर तक |
| | | कपास ३० अगस्त से ३० सितम्वर तक | १५ मई तक |
| वेर्णो | हरी खाद, लघुधान, गेहूँ | हरी खाद १ से १५ मई | १ से १५ जुलाई तक |
| | | लघुधान २० से ३१ जुलाई तक | ३० नवम्वर तक |
| | | गेहूँ १५ दिसम्वर तक | ३१ मार्च तक |

उस आलू को भूमि से निकालकर विहन के लिए समतल मैदानो को भेजा जा सकता है। हर्मन के विकासमूलक प्रयोग द्वारा ताजे खोदे हुए आलू के अकुरित होने के समय को स्थगित किया जा सकता है। यह ताजा आलू अगहन मास मे विहन के रूप में रखा जा सकता है।

पार्लाखेमिडी का सउरा अचल कमला के लिए प्रसिद्ध है। फुलवाणी, सुवर्णगिरि, पोटागी और नदपुर की तरफ सतरा और समशीतोष्ण-मडलीय फल उत्पन्न किये जा सकते है। फल-सरक्षण और कैनिग शिल्प-विकास द्वारा किसानो को अधिक पैसा मिल सकता है। ओडिशा प्रति वर्ष सतरे, केले, आम और टिन में वद फल, जेली, जाम तथा चटनी आदि वाहर से मँगाता है। उत्तरी मालभूमि, पाललहड़ा और वणाई अचलो में फलो की खेती हो सकती है। महानदी उपत्यका में फलो के लिए उपयुक्त जलवायु है। यहाँ आम, सपेटा, लीची, अजीर, वेर, अमरूद, सतरा-जातीय फल और केले पैदा हो सकते है। इस काम में विकासमूलक सघ स्थापित करके किसानो को कम कीमतो पर कलमी आम के पौधो को जुटाने, जानकार मालियो की सहायता देने तथा फलो के वगीचो को लगाने के लिए पचायतो द्वारा आर्थिक सहायता देना आवश्यक है।

मालकन गिरि भूभाग उत्तरी तथा दक्षिणी भारत की सगमस्थली है। घास और वाँस यहाँ अधिक परिमाण में मिलते है। इस भूभाग की भूमि में घास और वाँस पैदा करके कागज-उद्योग का प्रसार किया जा सकता है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इस प्रकार की खेती के अयोग्य भूमि के सरक्षण तथा धन-प्राप्ति के लिए घास और पाइन पेड की खेती की है। १० वर्ष की पर्याय खेती करके तथा घास और वाँस काटकर कागज-उद्योग का विकास किया है। मालकन गिरि अचल में 'मोटु' जाति की गाये मिलती है। इस जाति की गायो की जनन-प्रणाली मे विकास करके दुग्ध-उद्योग वढाया जा सकता है। घास, कृषि और दूध उद्योग के साथ-साथ वकरी, भेड, शूकर और मुर्गी पालन आदि का उद्योग भी वढाया जा सकता है।

कालाहाँडी जिला के काशीपुर अचल में काफी, मसाला, सुनामकेड आदि अर्थकरी फसले उपजाई जा सकती है। सुनामकेड दक्षिण भारत की मुख्य अर्थकरी फसल है। दक्षिण भारत-वर्ष प्राय ४ हजार ८६ टन सुनामकेड (Cassia augustifolia) के पत्ते और ८० टन फल फ्रास, इटली, वेलजियम, वर्मा, सिहल, जापान, आस्ट्रेलिया एव सयुक्त राष्ट्र अमेरिका को भेजता है। किसानो को इससे लगभग सात लाख रुपये मिल जाते है। सुनामकेड मृदु विरेचक होती है। यह मद्रास प्रान्त के मदुराई, रामनाथपुर, तिरुचिनापल्ली एव तिरुनेरवेल्ली जिले मे उपजती है। इसे सीच-सीचकर उत्पन्न किया जाता है। इसे कुलथी की खेती में भी मिलाकर उप-जाया जाता है।

प्रति एकड पाँच सेर सुनामकेड का वीज आवश्यक होता है। ५-६ दिनो मे वीज अकुरित होता है। दिसम्बर तक पेड में फूल आ जाते है, फल लग जाते है। प्रति एकड ७५० पौड पत्ते एव ७५ पौंड फल मिलते है। सिचाई करने से प्रति एकड १४०० पौंड सूखा पत्ता एव १५० पौंड फल मिलता है। सुनामकेड छुईंजातीय फसल है। अत इससे मिट्टी की उर्वरता भी वढती है। हीराकुद की नहरो से नीचे जानेवाले भूभाग मे भी यह पैदा की जा सकती है।

# ओड़िशा की वन-संपत्ति

## श्री जी० एन० माथुर

यदि वनो का उचित प्रबन्ध किया जाय तो वे मनुष्यो के लिए अनिवार्य बहुत से कच्चे माल उत्पादन कर सकते हैं जो स्वत परिवर्तनशील होते हैं। वे खनिज पदार्थों की भाँति नही है, जो सपत्ति मे कम योगदान नही करते किन्तु जो लगातार शोषण किये जाने पर समाप्त हो सकते हैं। वे जीवित और सवर्द्धनशील वस्तुओ के बने है इसलिए उत्पादनो के असीम पुनर्नवीन होनेवाले साधन है। ओडिशा में इस प्रकार की अमूल्य सपत्ति बडे परिमाण मे है। ओडिशा के पास ८४५० वर्गमील रक्षित वन, १७४२ वर्गमील रक्षित भूमि और क्षेत्र है जिन्हें जगल के लिए सुरक्षित रक्खा गया है। इनके अतिरिक्त २०७ वर्गमील सुरक्षित (प्रोटेक्टेड) वन है तथा ७१२१ वर्गमील असुरक्षित वन है जिन्हें खेसरा वा देहाती वन कहते है। दिनाक १५-११-५७ को ७ हजार वर्गमील पुरानी जमीदारी के जगल, जो पहले रेवेन्यू विभाग के अतर्गत थे, अब वन विभाग को हस्तान्तरित कर दिये गये है। इस प्रकार जगलो के क्षेत्रफल का पूर्ण योग करीब करीब २४५२३ वर्गमील हो जाता है।

### क्षेत्रफल

ओडिशा के ६०१३६ वर्गमील क्षेत्रफल मे से २४५२२ वर्गमील वन है। इस प्रकार जगलो का क्षेत्रफल राज्य के समूचे क्षेत्रफल का ४१ प्रतिशत है। जगलो के क्षेत्रफल का यह प्रतिशत बहुत सतोषजनक प्रतीत हो सकता है किन्तु एक जिले मे इसकी अधिकता और दूसरे जिले मे इसका बिलकुल अभाव अनेक समस्याएँ खडी कर देता है। राज्य में जगलो का यह विषम वितरण, विशेषत समुद्री किनारी के जिलो मे जहाँ की जनसख्या ४० प्रतिशत है, ७००० वर्गमील के अरक्षित जगल है जहाँ से रैयत अपनी आवश्यक चीजें निकालते है और पुरानी जमीदारियो के जगल, जो कि अधिक शोषण के कारण करीब करीब ऊसर हो गये है, एक निराशापूर्ण चित्र प्रस्तुत करते है। केवल तिजारती वन, जो कि रक्षित है, राज्य के पूरे क्षेत्रफल के केवल १७ प्रतिशत है। राज्य के उत्तरी जिले जहाँ से मुख्य नदियाँ निकलती है और जो राज्य की बहुत सी सिचाई योजनाओ—हीराकुद बाँध—को जल प्रदान करती है, वहाँ पहाडियो के ढालो को सदाबहार जगलो से ढके रखना अत्यावश्यक है। यदि सभव हो तो इस क्षेत्र मे अधिक भूमि, समूची जमीन का लगभग ७ प्रतिशत, वन के लिए रखना चाहिए।

प्रवन्ध-इकाइयो को वन-प्रभाग कहते हैं, जो कि एक प्रभागीय वन-अधिकारी (डिवीजनल फारेस्ट आफिसर) के जिम्मे होता है। प्रत्येक प्रभाग रेंजो में बंटा हुआ है और प्रत्येक रेंज फारेस्ट बीट और फारेस्ट गार्डबीट में बंटे हैं। राज्यो के विलयनीकरण के पूर्व वन-अधिकृत प्रदेश की दशा अच्छी नही थी। हमारे पास केवल ९ वन-प्रभाग थे और १३९६ वर्गमील सरक्षित, २०९ वर्गमील सीमाकित सुरक्षित और १२६९ वर्ग सरक्षित भूमि थी। राज्यो के विलयन के साथ सरक्षित वनो का क्षेत्रफल १०१६७ वर्गमील वढ गया और अब २७ टेरिटोरियल डिवीजन तीन सर्किल कजर्वेटरो के अधीन हैं जो सरक्षित और दूसरे वनो के प्रवध की देखरेख करते हैं। वन-सपत्ति के अनुसधान-विकास और योजना के लिए एक विकास कजर्वेटर भी है जिसके अदर एक रिसर्च डिवीजन (अनुसधान प्रभाग, तीन वर्किंग प्रेन्स कार्यकारी योजना प्रभाग, एक उपभोग प्रभाग (युटिलाइजेशन, डिवीजन) और एक वनरोपण प्रभाग है। इस प्रकार हम लोगो के पास एक दृढ आधारित सगठन है जिसके शीर्ष पर चीफ कजर्वेटर आव फारेस्ट हैं जो प्रवध और राज्य में वहुत दूर तक फैली हुई वन-सपत्ति की देखभाल करते हैं।

## प्रबन्ध का उद्देश्य

दूसरा विचारणीय विषय है प्रवन्ध का उद्देश्य। किस दृष्टि से राजकीय वन इतने श्रम से रक्षित और प्रवन्धित होते हैं ? वन मुख्यत वर्तमान और भावी पीढी की स्वार्थ-सिद्धि की पूर्ति के लिए रक्षित किये जाते हैं। देश की प्राकृतिक और जलवायु-सवधी स्थितियो की स्थिरता कायम रखने के अतिरिक्त स्थानीय जनता के ईंधन, छोटे लट्ठे, कृपि सवधी औजारो और चरागाह-सवधी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए जगलो को भट्ठो और अन्य कच्चे सामानो का लगातार उत्पादन करना चाहिए ताकि हमारे उद्योगो और रेलवे को भी आवश्यक सामान मिलते रहें और उन जगलो का यथोचित विकास भी होता रहे। राष्ट्र की विभिन्न प्रकार की माँगो और आवश्यकताओ की शाश्वत पूर्ति के लिए जगलो का विकास इस सिद्धात पर होना चाहिए कि वे लगातार उत्पादन करते रहें। इस सिद्धात के अनुसार हमें उतना ही जगल काटने की अनुमति है जितना जगलो का वार्षिक उत्पादन है ताकि हमारी पूंजी और वर्धनशील भडार ज्यो का त्यो कायम रहे। प्रत्येक किस्म के पेड का वार्षिक उत्पादन वहुत अधिक परिमाण में वढाना सभव नही है। इस वात का पता लगाया गया है कि किसी क्षेत्र में शोषण करने योग्य किन-किन पेडो की वार्षिक वृद्धि हुई है और वे ही पेड जगल से हटाये जाते हैं।

**जंगलो का शोषण**—वैज्ञानिक ढग से जगलो के प्रवन्ध मे शोषण का आधार यह होता है कि हम इस वात का पता लगा लें कि किसी वनक्षेत्र या वन विभाग के साथ आगामी १० या १५ वर्षों में हम कौन-कौन से काम करेंगे, पूरे विवरण के साथ इसकी एक योजना वना लें। यह योजना हमें केवल यही नही वताती कि कौन-कौन सी वस्तुएँ वनो से लगातार हटाई जायें वल्कि यह भी वताती है कि वे कहाँ से हटाई जायें और कहाँ तथा किस प्रकार से उस क्षेत्र को पुनर्जीवित करें जहाँ से शोषण किया गया है। हमारे वनो का शोषण मुख्यत व्यक्तिगत अधिकरणो (एजेंसियो)

ओड़िशा के पहाड़ी इलाकों से धातुपिण्ड उत्तोलन



**शीशम (सीसो)** औसत कद का पेड होता है और सूखे स्थलो में पाया जाता है। इसकी लकडी कडी और टिकाऊ होती है और इसमें सुदर रवे होते हैं। यह फर्नीचर और गाडी के पहिये वनाने के काम आता है।

**महुआ** का पेड वडा होता है और उत्तरी जिलो के जगलों मे और वाहर भी पाया जाता है। इसकी लकडी कडी और टिकाऊ होती है और भवन-निर्माण तथा रेलवे स्लीपरो के रूप में प्रयुक्त होती है। इसका पेड अपने फल और फूलो के लिए मूल्यवान् होता है। फूल जानवरों और आदमियो के भोजन के रूप में प्रयुक्त होते हैं तथा इससे शराव भी चुआई जाती है।

**गम्हार** औसत कद का पेड होता है और सव जगह छिटफुट पाया जाता है। इसकी लकडी मुलायम और रवेदार होती है। यह साधारणत तख्ते और फर्नीचर वनाने के काम आती है।

**धौरा** औसत कद का होता है और पहाडियो तथा सूखे स्थलो पर पाया जाता है। इसकी लकडी वहुत सुदर होती है जो खेती के औजार, कुल्हाडी के वेट और मस्तूल वनाने के काम आती है। रेलवे स्लीपरो के रूप में भी इसका प्रयोग होता है।

**जाम (जामुन)** एक ऊँचे कद का पेड होता है जो अधिकतर नालो के किनारे पाया जाता है। इसकी लकडी टिकाऊ होती है जो भवन-निर्माण, जमोवट और वैलगाडी वनाने के काम आती है। रेलवे स्लीपरो के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

**वधन** एक साधारण कद का वृक्ष होता है और छितराया हुआ पाया जाता है। इसकी लकडी कडी, सुदर और वहुत टिकाऊ होती है। इसका प्रयोग मकान के खभो, वल्लो और गाडियो के वनाने में किया जाता है।

**कगडा** का पेड समुद्रतटीय जिलो की भूरी मिट्टी में तथा राज्य के पश्चिमी जिलो में, जहाँ इसकी ऊँचाई अधिक होती है, पाया जाता है। इसकी लकडी वडी कडी और टिकाऊ होती है और रेलवे स्लीपरो के काम में आती है।

**करला** औसतन छोटा होता है और राज्य के सूखे स्थानो में पाया जाता है। इसकी लकडी कडी, सुदर और वहुत टिकाऊ होती है। चूंकि इसकी लकडी मे दीमक नही लगते इसलिए गाँवो में वल्लो के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

यही भिन्न भिन्न प्रकार की लकडियाँ हैं जिनका शोपण अभी किया जा रहा है। राज्य के जगलो से लट्ठे के रूप में औसतन क्रमश ८२ लाख और एक करोड तिरपन लाख घनफुट लकडी उत्पन्न होती है। इनसे औसत वार्षिक आय क्रमश लट्ठे से ५८ लाख ६२ हजार ४ सौ सत्तर रुपया और ईंधन से १८ लाख ५७ हजार ३ सौ चौहत्तर रुपया होती है।

**वनो के लघु-उत्पादन**—विभिन्न प्रकार के लट्ठो और ईंधन की लकडियों के अतिरिक्त हमारे जंगल अन्य कई प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिन्हें हम लघुवन उत्पादन (माइनर फारेस्ट प्रॉडक्ट) कहते हैं जिससे राज्य को औसतन ४६०३३७० रु० वार्षिक की आय होती है। लघुवन उत्पादन की वस्तुओ का वर्णन निम्नाकित है—

## (ख) बाँस और बेत

(५) बाँस—अनुमान है कि राज्य में २६७२ वर्गमील में बाँस के जगल है। स्थानीय जनता की माँग की पूर्ति करते हुए एक लाख टन बाँस तीन कागज की मिलो में कागज बनाने के काम आते हैं। इस समय हमारे पास एक कागज की मिल व्रजराजनगर मे है और दो मिलें और स्थापित करने जा रहे हैं—एक चौद्वार में दूसरी कांसिगा में। चौद्वार मिल मे काम बहुत आगे बढ चुका है। आशा है कि अगले वर्ष इसमें उत्पादन आरभ हो जायगा। इस राज्य मे वनो से बाँस की उपज ३ ७५ लाख टन होगी। इस समय बाँसो से वार्षिक आय ८ लाख १८ हजार आठ सौ अडतीस रुपया है।

(६) बेत—समुद्रतटीय जगलो में सीमित मात्रा में घटिया किस्म के बेत पाये जाते हैं। इसकी वार्षिक उपज १५ मन और वार्षिक आय ५०० रु० है।

## (ग) औषधियाँ

(७) आरारोट—यह मरटाअरुन्डिनेशिया नामक एक पत्तीदार मूल से प्राप्त किया जाता है और दवा तथा भोजन के काम में आता है। इसकी वार्षिक उपज ६८ मन है। यह मयूरभज, कालाहाडी तथा कोरापुट जिलो में पाया जाता है। वार्षिक आय ३११ रु० है।

(८) इमली—इसका पेड खुले खेसरा वनो में गाँव के निकटवर्ती ऊसर जगलो मे और रक्षित जगलो के भीतर उजाड गाँवो में पाया जाता है। इसकी वार्षिक उपज २२ हजार मन है और आय ३० हजार रुपये। यह अधिकतर राज्य के दक्षिणी जिलो में ही उपजाया जाता है, क्योकि पडोसी आध्र राज्य में इसकी बडी माँग रहती है।

(९) कुचिला-बीज—यह स्ट्रिकनास नक्स वोमिका नामक पौधे का बीज होता है और दवा के काम आता है। यह समुद्रतटीय जिलो में पाया जाता है। इसकी वार्षिक उपज १६१४ मन और वार्षिक आय २५४० रु० है। कीमत कम होने के कारण हाल मे इसकी उपज भी कम हो गई है। हम उचित समय में इसकी उपज बढाने की आशा करते हैं।

(१०) मधु (शहद)—यह जगल में रहनेवाली परिगणित जातियो के द्वारा उन मधु-मक्खियो के छत्तो से निकाला जाता है जिन्हें मधुमक्खियाँ जगली पेडो और गुफाओ की शिलाओ पर लगाती हैं। वार्षिक उपज ५५३ मन है और अधिकतर मयूरभज से ही आती है। इससे रायल्टी के तौर पर ३०५० रु० वार्षिक आय होती है। इस साधन से आय मे वृद्धि करने और उन अवाछनीय खरीददारो को दूर करने के लिए, जो मधु इकट्ठा करनेवाली गरीब परिगणित जातियो का शोषण करते थे, इस साल विभाग की ओर से ही मधु इकट्ठा किया गया।

(११) महुए का फूल—इस राज्य मे जब तक महुवा के नियत्रण की सत्ता चालू थी तब तक बहुत आय होती थी किंतु अब जब कि महुये के फूलो के आवागमन में कोई रुकावट नहीं

होगी और गरीव जाति के लोग लाभान्वित होगे। इससे वार्षिक ४ लाख २४ हजार झाडू तैयार होती है और आय १०२४६५ रु० होती है।

(१८) सवाई घास—यह घास वहुत ही अच्छे किस्म के कागज वनाने और रस्सी के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होती है। यह उस कटानवाली भूमि में अधिक होती है जहाँ अन्य कोई कीमती पेड नही लगाये जा सकते। वारीपदा डिवीजन में इसकी रोपाई के लिए ४००० एकड का क्षेत्र हम लोगो के पास है। इस घास की सालाना उपज १,२२,७३७ मन और आय १३५०३० रु० है।

## (ज) गोद और रेजिग

(१९) गेंवुली का लासा—यह स्टर्कूलिया उरेंसी नामक पौधे मे खरोच लगाने के वाद निकलता है। यह पेड जगलो के सूखे भाग में पाया जाता है। इसकी वार्षिक उपज ७४८२ मन और आय ३५९९५ रु० है।

## (झ) चमड़ा कमाने और रँगाई के पदार्थ

(२०) मेरा वोलम—यह हरिदा (टर्मिनैलिया चेवुला) नामक पेड का फल होता है। एक लाख ८२ हजार मन से अधिक यह इकट्ठा किया जाता है और इससे वार्षिक आय ६३००० रु० की होती है। ये वीज टैनिन उद्योग में काम आते है। कुछ दिनो से इस राज्य में एक टैनिन फैक्ट्री के स्थापित करने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है किन्तु फैक्ट्री अभी तक स्थापित नही हो सकी है। छोटे पैमाने पर इस उद्योग की सभावनाएँ है।

(२१) खैर—खैर के पेड (अकैसिया कैचू) से कत्था निकलता है। यह लकडी को उवालने के वाद नियार कर वनाया जाता है। इसका पेड रक्षित और सरक्षित वनो मे पाया जाता है। इससे १,१२,०५० रु० की वार्षिक आय होती है और २१२५ मन कत्था उत्पन्न होता है। नियारने का भद्दा ढग ही काम मे लाया जाता है इसलिए साधारणत इसका रग काला होता है।

(२२) सुनारी छाल—यह सुनारी (कैशिया फिस्चुला) नामक पेड की छाल होती है। इसकी छाल का उपयोग टैनिन उद्योग में होता है। इसकी वार्षिक उपज २१ सौ मन और आय ३४९७ रु० है।

## (ट) वनस्पति तेल और तेलवीज

(२३) फोइना—(महुआ का वीज) यह महुए का फल होता है और इससे तेल निकाला जाता है। इसकी वार्षिक उपज १९२१७ मन और आय ६१८९ रु० है।

उपस्थिति और उनका विकास पर्याप्त न्याय्य है। जहाँ तक राज्य की आय के साधनो का सबध है, इन वनो में उत्पादन आय-कर में निषेध के कारण कमी होने से २ करोड रुपये से अधिक की आय बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई है। १०–५ वर्षों में वन की आय में जो वृद्धि हुई है वह निम्नाकित आँकडो से विदित हो जायगी।

| | | |
|---|---|---|
| १९५२–५३ | — | १८,७७,८०६ रु० |
| १९५३–५४ | — | १,११,१२,१०७ रु० |
| १९५४–५५ | — | १,४२,८७,५४५ रु० |
| १९५५–५६ | — | १,५८,६५,६८३ रु० |
| १९५६–५७ | — | १,८९,४५,६३७ रु० |
| १९५७–५८ | — | २,५७,९७,१९३ रु० |

**पचवर्षीय योजना के अतर्गत वनविकास**—प्रथम पचवर्षीय योजना मे ७ योजनाओ अर्थात् शिक्षण-परिशिक्षण, वनमार्ग का विकास और वृद्धि, निवासस्थान और कूप-निर्माण, वनो का सीमाकरण, नवीन वनरोपण और भूमि-सरक्षण मे १७ लाख ३४ हजार रुपये व्यय हुए। उपरोक्त योजना काल में ३१५ फारेस्टगार्ड परिशिक्षित हुए। ४०२ मील नई सडके बनी, ५७ मील की पुरानी सडको की मरम्मत हुई। १७६ निवासभवन बनाये गये, २६ कुएँ खोदे गये और सरक्षित वनो की १९८७ मील सीमा निर्द्धारित हुई तथा ८८१ एकड लघु वन रोपे गये। भूमि-सरक्षण योजना में भूमि के कटाव की रोकथाम और जमीन की क्षमता का सर्वेक्षण किया गया। योजना के लिए धनराशि, जैसा कि प्रतीत होता है, कम थी। दूसरी पचवर्षीय योजना में अधिक धन दिया गया। दिये हुए ५७,६९००० रुपये में से ४७७४००० रु० वनशाखा के लिए दिया गया और ५,९५००० रु० भूमि-सरक्षण शाखा के लिए। वनशाखा (फारेस्ट सेक्टर) में १२ योजनाएँ काम मे लाई जा रही है। आवागमन के लिए अधिक धनराशि लगाई जा रही है। वनमार्गों के लिए १४३१००० रु० नियत है। सागौन की रोपाई के लिए ४२७५०० रु०, नेशनल पार्क और आखेटगाह के लिए ४,७९००० रु० जमीदारी-उन्मूलन मे प्राप्त जगलो—Ex-Zamindary Forest—के लिए ९,५०००० रु० रक्खे गये है। भूमि-सरक्षण की मद में समुद्रतटीय रेतीली भूमि पर ५९५००० रु० की लागत से झउआ (Casuarina) और काजू (Cashewnut) की बडे पैमाने पर रोपाई की जा रही है। योजना का लक्ष्य अभी भी दूर है। द्वितीय पचवर्षीय योजना में ६६४ मील नई सडको के निर्माण, २१० मील पुरानी सडको की मरम्मत, ८१०५ एकड भूमि में सागौन की रोपाई और ४२६७ एकड भूमि मे झउआ की रोपाई का लक्ष्य किया गया है। योजना के प्रथम दो वर्षो मे कार्य और व्यय की प्रगति सतोषजनक रही है और विश्वास है कि लक्ष्य पूरा कर लिया जायगा। हमारे राज्य में अगम्य स्थानो में पहुँचने और बडे पैमाने पर रोपाई के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता है। ग्रामीण वनो को स्थानीय जनता की माँग की पूर्ति के पुन स्थापन को भी जोरो के साथ हाथ में लेना चाहिए।

६—कटानवाले खेसरा और जमीदारियो के वाहरवाले वनो की सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए और एक वैज्ञानिक प्रवन्ध के अतर्गत उनका काम होना चाहिए। उनमें जो उचित क्षेत्र हैं उन्हे शीघ्रातिशीघ्र सरक्षित कर लिया जाय और रोपाई के द्वारा उनके भडार की वृद्धि करनी चाहिए।

७—जहाँ पर लट्ठो और ईंधन के लायक लकडियो की कमी है—जैसा कि आज के समुद्र-तटीय जिलो में है—समुचित क्षेत्रो में शीघ्र वढनेवाले ईंधन के पेडो की रोपाई कर देनी चाहिए। इस प्रकार से वहुत सा गोवर, जो कि चूल्हे में जाता है वह, अव खेतो के उर्वर वनाने में प्रयुक्त होगा। वहुत ही अविक क्षेत्रो में, वडे परिमाण में, झउआ की रोपाई कर इस दिशा में कार्य प्रारभ कर दिया गया है।

यदि उपरोक्त कदम उठाये जायँगे तो वनो के प्रयोग में जो आज अपव्यय हो रहा है उनमें पर्याप्त कमी हो जायगी। इस समय तो जनता इसकी सराहना नही कर सकती किन्तु ये कदम अत्यावश्यक हैं। यदि एक वार ग्रामीणो को वन के प्रति चैतन्य वना दिया जाय और उन्हें यह अनुभव करा दिया जाय कि इन कडाइयो का उद्देश्य क्या है, तव वे इनकी प्रशसा करेंगे और तभी वे जगल के सरक्षण मे राज्य के सहायक होगे, क्योकि ये वन उनके मूल उद्योग अर्थात् कृषि के लिए वहुत आवश्यक है। मुझे दृढ विश्वास है, इस राज्य के ग्रामीण और कृपक वनो को कृपि की धात्री की तरह समझने लगेंगे जिसे यदि उचित सरक्षण दिया जाय और ठीक तौर से रक्खा जाय तो वे कृपि का उसी प्रकार उदारतापूर्वक लालन-पालन करेंगे, जैसे सभी माताएँ करती है।



प्रदेश के खनिज पदार्थों की विस्तारपूर्वक और समुचित रूप से खोज न होने के कारण पूर्ण रूप से पूरा विवरण नहीं विदित है फिर भी स्थूल रूप से कुछ मुख्य खनिज पदार्थों का विवरण नीचे दिया जाता है—

## (१) लोहा पत्थर

ऐसा लोहा पत्थर जिसमें ६० प्रतिशत से अधिक लोहा है, ओडिशा के अनेक स्थानों में पाया जाता है। इनमें से सुन्दरगढ के अन्तर्गत वोनाई, केउनझर मयूरभज ऐसे मुख्य स्थान हैं जहाँ पर आजकल खोदाई की जा रही है। वोनाई के प्रसिद्ध लोहा पत्थर के स्तर में १०००००००००० टन उच्च कोटि का लोहा पत्थर है। इसके एक भाग को खोदकर राउरकेला के लोहे के कारखाने का काम चलाया जायगा। केउनझर तथा मयूरभज जिलों में लगभग ९०० टन लोहा पत्थर है। उपरोक्त लोहा पत्थरों के ढेर का पता भली-भाँति चल चुका है। इनके अतिरिक्त लगभग ४०००००००००० टन लोहा पत्थर पाने की आशा की जाती है। इनमें से अधिकाश ऐसा लोहा पत्थर पाने की आशा है जिसमे अधिकाश लोहा पत्थर के ढेर पूर्व केम्वियन युग के हैं और वैण्डेड हेमेटाइट क्वार्जाइट के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये ढेर भारतवर्ष में सबसे प्रसिद्ध है और एक नये लोहे के कारखाने की सारी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकते हैं।

अभी हाल में केउनझर तथा कटक जिलोंके अन्तर्गत टोमकादैतरी क्षेत्र मे लोहा पत्थरके ढेर का पता चला है। अभी हाल की जाँच-पडताल से पता चला है कि इस क्षेत्र मे १३००००००००० टन हेमेटाइट नामक लोहा पत्थर है जिसमें ६० प्रतिशत से अधिक लौह भाग है। इसके केवल थोडे से भाग की खोदाई टोमका खान से हो रही है और प्राय १००० टन खनिज प्रतिदिन निकाला जा रहा है। यह ढेर समुद्र-तट के निकट होने के कारण पारा द्वीप में बननेवाले बन्दरगाह से आसानी से बाहर भेजा जा सकेगा।

उपरोक्त ढेरों के अतिरिक्त जो प्राय हेमेटाइट के रूप मे पाये गये हैं, कई अन्य ढेर मयूरभज तथा कटक जिलों की विचपटिया खान में मिले हैं। वे मैगनेटाइट के रूप में हैं। मयूरभज मे जो मैगनेटाइट मिला है उसमे वैनेडियम पर्याप्त मात्रा मे है। इन ढेरो को खोदने के लिए सरकार वैनेडियम लौह का एक कारखाना खोलना चाहती है। कोरापुट जिले के ओमरकोट स्थान से ५ मील दक्षिण-पश्चिम स्थित हीरापुर पहाडी में हेमेटाइट का पता चला है। इस खनिज में लिमोनाइट मिला है और लोहे की मात्रा ५४ ४५ से ६२ ७ प्रतिशत तक है। इस ढेर में ५० फुट की गहराई तक लगभग १०००००००० टन खनिज है। यह ढेर रेल से बहुत दूर होने के कारण अभी नही खोदा जा सकता किन्तु ऐसा अनुमान अनुचित नही होगा कि आवागमन की सुविधा हो जाने पर यह खोदकर बाहर भेजा जा सकेगा। सम्बलपुर जिले के अन्तर्गत लोहखण्ड में हेमेटाइट नामक लोहा पत्थर पाया जाता है जिसमें ५५ से ६० प्रतिशत लोहा है। अनुमान है कि इस ढेर में ५००००००००० टन खनिज है। ये ढेर छोटे-छोटे टुकडों में है और दूर-दूर तक छिटके हुए है तथा

कुछ उन्नति की जा सकती है और यदि ठीक से खोदाई करके देखा जाय तो कोयले के अधिक विस्तार का पता लग सकता है।

## (४) क्रोमाइट

क्रोमाइट केउनझर, ढेंकानाल और कटक जिले मे पाया जाता है। केउनझर के बाउला-नुआशाही में और कटक जिले के सुकिन्दा नामक स्थान में क्रोमाइट की खोदाई हो रही है। ओडिशा का क्रोमाइट उच्च कोटि का है और व्यावसायिक ढग से काम मे लाया जा सकता है। जहाँ तक क्रोमाइट का सवध है, सपूर्ण भारत में ओडिशा का स्थान प्रमुख है। यहाँ पर सबसे अधिक क्रोमा-इट निकाला जाता है (४०००० टन प्रतिवर्ष)। अनुमान है कि क्रोमाइट का ढेर पाँच लाख टन से भी अधिक है। आशा है कि ठीक से जाँच करने पर इसकी मात्रा और अधिक ही होगी।

## (५) लाइमस्टोन तथा डोलमाइट

सम्बलपुर तथा सुन्दरगढ जिलो में लाइमस्टोन तथा डोलमाइट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। प्रान्तीय सरकार के खोदाई विभाग के विस्तारपूर्वक खोज और डाइमण्ड ड्रिलिंग द्वारा यह पता चला है कि यह चीज ७००००००००० टन से भी अधिक सम्बलपुर के डुगरी नामक स्थान मे है जो सीमेण्ट बनाने के योग्य है। सुन्दरगढ में वीरमित्र, हतीवारी तथा घतीतानगर की खानो से लाइमस्टोन तथा डोलमाइट निकाल कर भिन्न-भिन्न लोहे के कारखानो को भेजा जाता है। कोरापुट के मालकनगिरि नामक स्थान पर लाइमस्टोन के अनेक ढेरो का पता चला है और आजकल उसकी जाँच-पडताल हो रही है।

## (६) ग्रेफाइट

गेनिस मिश्रित ग्रेफाइट अव्यवस्थित रूप से कई खन्दो से मिलता है। आजकल लगभग ९०० टन ग्रेफाइट बालगीर, सम्बलपुर और कोरापुट जिलो से निकाला जाता है। इन स्थानों में अधिक ग्रेफाइट का पता लगाने के लिए विस्तारपूर्वक जाँच-पडताल हो रही है। इस ग्रेफाइट से ताप को सहनेवाली प्यालियो और पेन्सिल का सीसा बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

## (७) फायरक्ले तथा चीनी मिट्टी

फायरक्ले तथा चीनी मिट्टी प्रान्त भर मे बहुत कम पाई जाती है किन्तु आर्थिक दृष्टि से इसका क्षेत्र सकुचित है। सम्बलपुर जिले के बेल पहाड नामक स्थान में फायरक्ले निकाला जा रहा है और टाटा की ओर से यहाँ एक रिफ्रैक्ट्री कारखाना खुल रहा है। सुन्दरगढ जिले के निकट राज-गगपुर में यह खोदकर निकाला जा रहा है। यहाँ पर भी एक रिफ्रैक्ट्री कारखाना तैयार किया जा रहा है। पुरी जिले में चन्दका नामक स्थान के पास चीनी मिट्टी की खोदाई होती है। यह मिट्टी के बर्तन तथा पैखानो मे लगाने की चीजो को तैयार करने के लिए बराग के ओडिशा इण्डस्ट्रीज

अधिकतर यह पिगमेटाइट ग्रेनाइट जेनिस के साथ मिलता है। कही कही पर यह धातु अच्छी तो है पर इसके टुकडे इतने छोटे हैं कि खोदाई करने से कुछ भी लाभ की सभावना नही है। भारतवर्ष विश्व में माइका का सबसे बडा स्थान है। यह मस्कोवाइट माइका विहार की कोडरमा नामक खान से तथा आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान के कुछ स्थानो से निकाला जाता है। आशा है कि ओडिशा मे भी माइका के वडे टुकडे मिलेंगे किन्तु अभी खोज करने की आवश्यकता है। कोरापुट जिले मे कुछ माइका आजकल भी निकाला जा रहा है।

## (१३) इल्मेनाइट तथा मोनेजाइट

ओडिशा के समुद्र-तट पर मायापुरा मोहाना तथा महानदी के वीच समुद्र-तट के वालू मे मिला हुआ इल्मेनाइट तथा मोनेजाइट कई स्थानो में पाया जाता है। इस वालू मे मोनेजाइट की मात्रा ट्राविनकोर के तट के वालू की अपेक्षा वहुत कम अवश्य है किन्तु कही कही पर इसकी मात्रा इतनी पर्याप्त है कि यह खोदाई के लिए उपयुक्त भी है। इसके अलावा सम्वलपुर के मुन्वर नामक स्थान के निकट इल्मेनाइट पाया जाता है। यह मेगनेटाइट धातु के साथ मिला हुआ कई स्थानो मे पाया जाता है।

## (१४) अस्वेस्टास तथा सोपस्टोन

अत्यन्त क्षारीय चट्टानो के साथ मिला हुआ यह अस्वेस्टास तथा सोपस्टोन अनेक स्थानो मे पाया जाता है। मयूरभज जिले में इसके कुछ ढेरो की खोदाई भी आजकल हो रही है। सुन्दरगढ जिले की वोनाई तहसील मे और केउनझर जिले में भी इसके ढेर है किन्तु यह पता नही है कि इन स्थानो में कितना माल है।

ऊपर जिन धातुओ का विवरण दिया गया है उनके अलावा और भी छोटी-मोटी धातुएँ ओडिशा मे पाई जाती है। इनमें से मुख्य स्टिलवाइट, फेल्मपार, क्वार्ज, वेरिल, गारनेट तथा भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टियाँ है। पहिले के कागजो से पता चलता है कि सम्वलपुर के निकट महानदी की घाटी मे हीरा भी पाया जाता था किन्तु आजकल सम्वलपुर में कही भी हीरा नही मिला है।

उपरोक्त कथन से यह विदित होता है कि व्यवसाय को समृद्धिशाली वनानेवाली प्राय सभी मुख्य धातुएँ ओडिशा मे पाई जाती हैं। यहाँ पर धातुओ की कमी नही है किन्तु आवागमन की असुविधा तथा इस प्रदेश की विस्तारपूर्वक खोज न होना ही इनके पूर्ण उपयोग में न ले आये जाने के मुख्य कारण है। यहाँ की सवसे वडी कमी यहाँ रेल की लाइन का अभाव है। तालचर से राउरकेला और सम्वलपुर से टिटलागढ तक भी रेलवे लाइन खुल जाने के वाद इस प्रदेश के खनिज पदार्थो को खोद निकालने की सभावना अत्यधिक वढ जायगी। यह भी आशा की जाती है कि जियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया के कार्य की पूर्ति में प्रान्तीय सरकार का खोदाई विभाग जो सहयोग दे रहा है उससे यहाँ की परिस्थिति वहुत कुछ सुधर जायगी और वहुत स्थानीय कारखाने खुल जायेंगे जिनका परिणाम यह होगा कि यहाँ की आर्थिक स्थिति वहुत सुधर जायगी।

## परिशिष्ट २

### ओडिशा राज्य में विभिन्न धातुओ के उत्पादन की सूची

| धातु का नाम | १९५५ | | १९५६ | |
|---|---|---|---|---|
| | उत्पादन (टनो में) | मूल्य (पी० एम० वी०) | उत्पादन (टनो में) | मूल्य (पी० एम० वी०) |
| १—मैंगनीज | टी ३,६४,५२१—०—० | ४,३८,३३,६४८ | टी ३,७२,४१५—०—० | ४,५२,५३,२८६ |
| २—कच्चा लोहा | टी १८,१५,०८२—०—० | १,७२,४३,२७८ | टी १७,९७,०१०—०—० | ३,०९,९७,६३३ |
| ३—क्रोमाइट | टी ४५,०१५—०—० | ४२,१४,२२९ | टी ४९,७३५—०—० | ३६,६२,०४५ |
| ४—डालोमाइट और लाइमस्टोन | टी २०,०१,२९२—०—० | ७९,३९,७८९ | टी ११,३०,२२१—०—० | ३९,५९,६७९ |
| ५—कोयला | टी ५,४५,५००—०—० | ७४,२०,५४९ | टी ५,८६,३१०—०—० | ९२,३६,३५४ |
| ६—चीनी मिट्टी | टी ३,६७५—०—० | १,४७,९११ | टी ९,६१०—०—० | ३,५४,३९९ |
| ७—फायरक्ले | टी ११,३८४—०—० | १,०६,३६१ | टी १०,०९७—०—० | १,००,९७० |
| ८—कीनाइट | टी २२४—०—० | ४०,८७० | टी २२३—०—० | ४४,९३४ |
| ९—सोपस्टोन | टी ६५—०—० | ५,२६५ | टी १८—०—० | ६४८ |
| १०—ग्रेफाइट | टी ११७—०—० | २,०१,७४० | टी ६३५—०—० | १,६८,००५ |

# ओड़िशा की आदिवासी जातियाँ

## श्री नित्यानंद दास

भारतवर्ष में ओडिशा को आदिवासियो के वास्तविक भडार-गृह की भाँति निरूपित करना अतिशयोक्ति न होगा। यहाँ वासठ से कम जातियाँ नही हे जिनकी जनसख्या तीस लाख से कुछ अधिक ही होगी, जो सपूर्ण ओडिशा राज्य की जनसख्या का २० २६ प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त ऐसी वहुत सी जन-जातियाँ हैं जिन्होने अपने आदिवासी-जीवन का परित्याग कर दिया है। किंतु उन्होने ऐसी वहुत सी विशेषताओ को अपने में वचा रक्खा है जिसके नाते उनकी गणना गैर आदिवासियो की अपेक्षा आदिवासियो में हो सकती है। देश में ओडिशा की एक विशिष्ट भौगोलिक स्थिति है। वगीय-गगा के मैदान के सिलसिले मे अनेक नदियो के डेल्टाओ से युक्त समुद्र का उपकूल, अत्यत प्राचीन काल से प्रव्रजन की धाराओ के लिए सदा खुला रहा है। समुद्री तट के परे पहाडियाँ, पठार और अधित्यकाएँ हैं। उत्तर की पहाडियाँ छोटा नागपुर पठार की शृखला में है और दक्षिणी भाग पूर्वी घाट की शृखला मे। पहले ये भाग अत्यत घने जगलो से आच्छादित और विभिन्न प्रकार के पशुओ से परिपूर्ण थे जो शनै शनै मानवीय दुराकाक्षाओ द्वारा विरल कर दिये गये हैं। इस प्रकार यह राज्य उत्तर और दक्षिण के मिलन-विंदु पर स्थित है। यही वह आधार-शिला है जिस पर हम ओडिशा की आदिवासी जातियो के समग्र नृवशशास्त्र (Ethnology) एव नृवश-शरीर-रचनाशास्त्र (Ethnography) की परीक्षा करते हे।

उपर्युक्त ६२ आदिवासी जातियो मे से १४ मुख्य आदिवासी जातियाँ कही जा सकती है। मोटे तौर पर उन्हें उत्तरी और दक्षिणी आदिवासियो में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में मुडा, सथाल, हो, भुईंया, जुआंग, उरावँ, किसान और खरिया सम्मिलित हे और दक्षिणी आदिवासियो में कध, सौरा, गादवा, परजा, कोया और वडा उल्लेखनीय समूह हे। भाषा की दृष्टि से उराँव, किसान और कध ऐसी उपभाषाएँ वोलते हें जो द्रविड भाषा-परिवार से सवधित हें और शेष कोलारी अथवा आस्ट्रिक भाषा-परिवार में से एक को वोलते है। उत्तर से दक्षिण तक फैले हुए गोडो की एक दूसरी ही जनपदीय विभाषा है। ओडिशा के आदिवासियो की भाषाओ का ठीक-ठीक अध्ययन अभी प्रारभ करना है। ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इडिया ग्रन्थ में यहाँ की प्रमुख आदिवासी वोलियो का मानचित्र वनाया है। कोलारी परिवार की भाषाओ का अध्ययन कुछ अधिक विस्तार के साथ किया गया है। हाफमैन का मुडारी विश्वकोश, वडिंग की सथाली पर निवध-पुस्तक और राममूर्ति का सौरा शब्दकोश आदि प्रशस्य ग्रथ हें। लेकिन गादवा और परजा भाषाओ में होनेवाले दीर्घ परिवर्तनो का अध्ययन अभी शेष है। सभी आदि-

में रक्खे गये हैं, किंतु वे अपनी शारीरिक वनावट को कायम रखे हुए हैं और समय के दौरान में अपनी उस वनावट को दूसरी जातियो में प्रविष्ट कर देते हैं। इसका निर्देश कर देना आवश्यक है कि यह जातीय-मिश्रण प्राय शक्ति और नये रक्त को उपस्थित करता है।

अव हम ओडिशा के आदिवासियो के सामाजिक एव सास्कृतिक परिपार्श्व का विश्लेषण कर सकते हैं। सभी आदिवासियो के लिए एक सयुक्त जातीय विशेषता का पता लगाना सभव नहीं है। अन्तर्वासीय भिन्नताएँ वहुत अधिक हैं। एक कध एक सौरा से उतना ही भिन्न है जितना एक फ्रासीसी एक जर्मन से। प्रत्येक आदिवासी के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज, परपराएं और विश्वास हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अतर्आदिवासीय भिन्नताएँ भी हैं। किसी एक आदिवासी जाति मे भौगोलिक अथवा वृत्ति-सबधी अतरो के कारण कुछ ऐसे समूह हो सकते हैं जो अपनी मूल आदि-वासी जाति से पूर्णरूपेण सादृश्य न रख सकते हो। उदाहरणार्थ, सौरो अथवा सावरो को ही ले सकते हैं। सावरो का वर्णन हमारे पुराणो में आया है और अधिकाश प्राचीन हिंदू साहित्य में इन आदिवासियो का उल्लेख मिलता है। सावरो में कम से कम दस विभाग हैं। कुछ विभाग पूर्णत आत्मसात् कर लिये गये हैं और उन्होने अपने मूल रीति-रिवाजो का परित्याग कर दिया है। कटक, पुरी और ढेंकानल के सावरो ने अपनी वोलियो का भी परित्याग कर दिया है और उनमें आदिवासी-लक्षण वहुत ही कम पाये जाते हैं। आजकल सौरा गजाम जिले के पारलाखिमिडी सव-डिवीजन और कोरापुट के गुनपुर तालुक में रहते हैं। वहाँ कम से कम उनके दस विभाग हैं। वहाँ एक विचित्र समूह उत्पन्न हो गया है जो अपने को सुधा कहता है। वे लोग हिंदू देवी-देवताओ की पूजा करते हैं और सौरो के साथ कोई भी सामाजिक सवध नही रखते अव भी आदिवासियो की सवसे प्राचीन शाखा लाजियासौरा की समृद्ध परपराएं और विस्तृत धार्मिक आचार हैं। ऐसी ही स्थिति कधो की भी है जो सवलपुर के सवसे उत्तरी भाग से लेकर राज्य के सवसे दक्षिणी छोर तक फैले हुए हैं। उत्तरी जिलो में कुछ उन्नत विभाग हैं जव कि कुटिया, डोगरिया, कध अति-प्राचीन आदिवासी अवस्था में हैं।

अत आदिवासी जाति की समस्याओ की पहेली में सबसे मुख्य विषय उनकी सस्कृति को समझना है। रीति-रवाजो, परपराओ, विश्वासो और भौतिक उपकरणो का समन्वय ही सस्कृति की परिभाषा है। कुछ लोगो की दृष्टि में इसकी परिभाषा 'सीखे हुए व्यवहार' में मिलती है। कुछ भी हो, सस्कृति की साफ-साफ परिभाषा देना कठिन है, क्योकि यह विभिन्न लक्षणो का पिंड-मात्र नही है वल्कि सपूर्ण शृखलाओ का संपूर्ण समन्वय है। अत साधारण शव्दो में, मनुष्य के धर्म, आर्थिक ढाँचे और सामाजिक तथा भौतिक जीवन उनकी सस्कृति के द्वारा शासित होते हैं। इसीलिए हम लोग तत्सामयिक आदिवासियों की सस्कृति को समझने के लिए अधिक जोर दे रहे हैं। आदिवासी सस्कृतियो के भिन्न-भिन्न प्रसार-क्षेत्र होते हैं। अतएव जव तक हम उनके जीवन की गहराई में प्रवेश नहीं कर जाते तव तक उनकी सस्कृति की जटिलताओ को नही समझ सकते। आजकल हम अखिल भारतीय भ्रातृत्व-भाव और विश्व-सघ की वातें सोच रहे हैं। ऐसे विचार तभी पल्लवित होगे जव विभिन्न प्रकार की सस्कृतियो के सश्लेषण को दृष्टिगत किया जायगा



परजा रमणी की वेशभूषा



जेवरों से लैस बण्डा रमणी



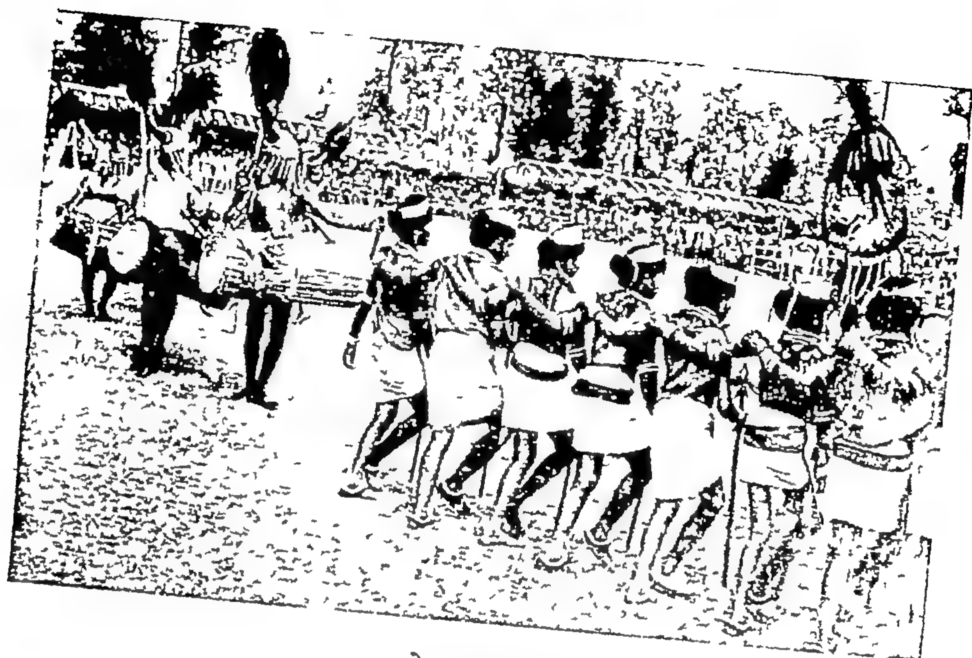
नाच के वेश में सउरा-लडकियाँ



यादवा जाति



कोल्ह नृत्य—मयूरभञ्ज



कोया नृत्य—कोरापुट

नृत्य ही आदिवासियों के प्राण हैं। वे नाच में आत्मविस्मृत हो संसार की सारी आविलताओं से दूर रहते हैं।



स्वास्थ्यवती कोयारमणी

वहुत ही सावधानी से सजाये जाते हैं। प्राय उन वस्तुओ में प्रयोगकर्ता की अपनी पूरी छाप रहती है। इनकी स्त्रियाँ भी गाने की वडी शौकीन होती हैं। उनमें रगीन गुडियो और आभूषणो का अत्यधिक प्रचलन है। आदिवासियो में गोदना गोदवाना सजावट की एक अत्यत प्रचलित प्रथा है। उनके वालो की सजावट से भी उनकी कलात्मक समृद्धि का प्रदर्शन होता है।

आदिवासी सस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू धर्म है। आदि-लेखको द्वारा उनके धर्म को भूतवाद (Animism) कहा गया है। किंतु इसमें मुख्य रूप से पितर-पूजा होती है और सर्वेश्वर ब्रह्म की कल्पना का अभाव है। यह पितर-पूजा केवल आदिवासियो तक ही सीमित नही है, वल्कि इसका प्रवेश उच्च हिंदुओ और चीनी लोगो में भी है। वस्तुत आदिवासी-धर्म आदिवासी-जीवन का विस्तार ही है। आदिवासियो के विचार से सूर्य, चद्र, वर्षा, विजली आदि साकार तत्त्व हैं। वे अनेक देवताओ और शक्तियो को मानते हैं और इनमें से अनेक उनके प्रतिदिन की चर्या से घनिष्ठ रूप से सवधित हैं। मुख्यत धर्म के दो स्वरूप हैं—एक तो विश्वास, दूसरा आचार। यद्यपि धर्म की कोई एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है किन्तु उनके इन दोनो स्वरूपो की व्याख्या करना सभव है। आदिवासियो के विश्वास उनमें गहरे जमे हैं जो विभिन्न प्रकार के आचारो द्वारा प्रकट किये जाते हैं। दक्षिणी ओडिशा के सौरा अपने धार्मिक आचारो के लिए वहुत प्रसिद्ध हैं। उनके यहाँ ऐसे वहुत से देवता हैं जो व्यक्ति के जीवन को नियत्रित रखते हैं। वे वलिदान माँगा करते हैं और जिसके न पाने पर अनेक कष्ट देते हैं। मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक पुरुष या स्त्री छाया में परिवर्तित हो जाता है और जव उनके उत्तराधिकारी गुआर समारोह में वलि चढाते हैं तव वे देवता हो जाते हैं। एलविन ने विलकुल ठीक ही लिखा है कि सौरा-धर्म को समझे विना उनकी अर्थ-प्रणाली अथवा दूसरे किसी सामाजिक सगठन को नही समझा जा सकता। उनके यहाँ वहुत से ओझइत (जिनके शरीर पर देवी-देवता आते हैं) होते हैं जो सदैव जीवितो और मृतको में सपर्क वनाये रखते हैं। ज्वर अथवा सिर-दर्द मात्र को दूर करने के लिए सौरा प्रदेश में उनके वृहत् समारोहो और व्यय-साध्य मनोरजनो को देखना एक मजेदार दृश्य होता है।

इसी प्रकार कध अपने वर्वर मानव-वलिदानो के लिए प्रसिद्ध हैं, यद्यपि अव वहुत दिनो से मेरिहा अर्थात् मानव-वलि की प्रथा वद है। अव कधो के देवता मानव-वलि के वदले भैंसो को ही स्वीकार करते हैं। मुडा और सयाल अपने देवताओ को पक्षी और सुअर की भेंट चढाते हैं और ठीक समय तथा ढग से आचार की परिसमाप्ति पर वे अत्यत सतुष्ट प्रतीत होते हैं। सौरो के अतिरिक्त ओडिशा के आदिवासियो में सर्वशक्तिमान् ईश्वर और सृष्टिकर्ता की कल्पना अज्ञात नही है। सौरा इन दोनो के विषय में द्विविधा में हैं। देवताओ के चरित्रो का वर्णन करनेवाली अनेक पौराणिक कथाएँ और उपाख्यान हैं। ये कथाएँ आदिवासियो की धार्मिक जटिलता को प्रकट करती हैं। उनके अनेक देवता मनुष्य के आकार के माने गये हैं, जिनमें से वहुतो की मूर्तियाँ भी वनाई जाती हैं। ये देवता दयालु और दुष्ट भी होते हैं। दुष्ट देवताओ पर अधिक ध्यान दिया जाता है। उनके यहाँ पुरोहित और ऐंद्रजालिक भी होते हैं। फ्रेजर का विश्वास है कि यह धर्म जादूगरी से ही उत्पन्न हुआ है। जादू ही धर्म का प्रारभिक रूप है। किंतु ऐसे विचार अव अमान्य

उसके वैवाहिक सबध को स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। उनके यहाँ आत्मनिर्भरता पर सदैव जोर दिया जाता है ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी गृहस्थी वसा ले।

ऐसा करने के लिए एक स्त्री का होना आवश्यक है। किंतु लडकी अपने माता-पिता एव भाई-बवुओ की अमूल्य सेवा करती है इसलिए उसकी सेवा से उसको वचित करने के लिए मुआवजा देने की आवश्यकता पडती है। अत सभी आदिवासियो में वधू की कीमत अदा करने का प्रचलन है। उरावो में यह मूल्य एक जोडी वैल, आठ रुपया, एक मन धान या कोई दूसरा अन्न और एक जोडा नया कपडा है। मुडा लोगो में यह राशि दस या पद्रह रुपयो के वीच निश्चित है। कभी-कभी यह रकम वधू के माता-पिता की हैसियत के अनुसार अधिक भी होती है। इसके अतिरिक्त एक वकरी, एक वैल, कुछ अनाज और कपडे होते हैं। हो लोगो में नगदी देय सवसे अधिक, कभी-कभी २०० रु० तक होता है। कध लोगो में यह केवल एक भैंसा, कपडे और गहने के रूप में होता है। कभी-कभी जव वाहरियो के साथ वात तय होती है, तव नगद रुपयो की माँग की जाती है। गजाम जिले के सौरो में वधू के मूल्य के रूप मे एक जोडा कपडा, गहने, शराव के वरतन और तीस से चालीस रुपये तक दिये जाते हैं। किंतु गुनपुर के सोरा नगद कुछ भी नही देते। वधू के लिए मूल्य देने के सिद्धात की निंदा नही की जा सकती। किंतु कालक्रम के साथ इसका दुरुपयोग होने लगा है। अनेक विरादरियो में वधू का मूल्य वहुत अधिक माँगने के कारण विवाह में वडी देर तक टालमटूल होती है और तव तक विवाह नही हो पाता जव तक मिथ्या लाछनो के परिणाम-स्वरूप भय से वाध्य न हो जायँ। हो लोगो में विवाह के अवसर पर विवाह-योग्य काफी सयानी लडकियो का पाणिग्रहण कराते हुए देखा जा सकता है, क्योकि वधू के मूल्य की वडी रकम उसके विवाहेच्छु (वर) द्वारा समय पर चुकाई नही जा पाती। इसके कारण व्यभिचार को प्रोत्साहन मिलता है और उनमें स्त्रियो का किसी के साथ निकल जाना साधारण सी वात हो गई है। इस प्रकार का उढारना और फुसलाना समाज द्वारा मान्य नही है और ऐसे मामलो मे लाजियासौरा वधू का मूल्य साधारण मूल्य से दूना माँगते हैं।

सभी आदिवासियो में विरादरी के वाहर विवाह-सवध स्थापित करने की प्रथा है। एक गोत्र के लोग आपस में भाई-वहन समझे जाते हैं। गोत्रीय विवाह उनमें वर्जित है। इसके अतिरिक्त गाँव में ही विवाह करना भी मना है। एक गाँव के विभिन्न गोत्रीय लोगो को आपस में विवाह-सवंध नही करने दिया जाता। किंतु लाजियासौरो में, जिनका कोई गोत्र ही नही होता, आपसी विवाह का न तो कोई वधन है और न एक गाँव में ही सवध निश्चित करने की रुकावट। पूर्व कथनानुसार, गृहस्थी वसाने की दृष्टि से ही उनके यहाँ विवाह को एक यथार्थ-सयोग माना गया है। उनमे भावना और आवेग की मात्रा कम होती है। स्त्री का समाज में एक पृथक् स्थान है। वह अपने पति की सक्रिय सहयोगिनी होती है और अपने पति के प्रत्येक कार्य मे हाथ वँटाती है। सौरा और कध जैसे आदिवासियो में, जो वदलती खेती (Shifting cultivation) पर अपना निर्वाह करते हैं, स्त्रियाँ एक मुख्य आर्थिक इकाई होती हैं। भोजन वनाने और वच्चो तथा पालतू जानवरो के पोषण करने के अतिरिक्त अधिकाश सामाजिक कार्य-कलापो में वे वहुत

उनमे कलह या तलाक होता ही नही। जब समाज द्वारा तलाक स्वीकृत हो जाता है तो दोनो अपना-अपना पथ चुनने के लिए स्वतत्र हो जाते है। यह केवल मनुष्यो को ही नही अपितु देवताओ को भी कुपित कर देता है। बहुधा अपराधी की हत्या कर दी जाती है। आदिवासी साधारणत गैर-आदिवासियो के साथ यौन-सबध स्वीकार नही करते। सथालियो में बिट्लहा (Bitlha) नामक एक प्रथा है। जब कोई आदिवासी लडकी किसी गैर-आदिवासी के साथ सबध करती हुई पाई जाती है तो वे हजारो की सख्या में इकट्ठे होकर अपराधी के घर को नष्ट कर डालते हैं तथा उसे लूट लेते है। यदि घर के लोग किसी सुरक्षित स्थान पर हटा न दिये जायँ तो सबको कत्ल भी कर दिया जाता है। प्रशासन को ऐसी घटनाओ के निरोधार्थ कडी कार्रवाई करनी पडती है। अब यह प्रथा बिहार के सथाल परगना के कुछ सीमित क्षेत्र में ही प्रचलित है। किंतु पहले सभी सथालियो में यह प्रथा रही होगी। यद्यपि यह सबसे बुरी प्रथा है किंतु इससे तो इतना प्रकट ही हो जाता है कि आदिवासी नैतिकता पर कितना जोर देते है। कुछ भी हो, सपर्क में आने से उनकी नैतिकता का यह मान चूर-चूर हो गया है। औद्योगिक क्षेत्रो मे रगीन वस्त्रो से सजी-धजी आदिवासी लडकियाँ रुपये-पैसे के प्रलोभनो में लाई जाती है। चूंकि वे बहुत गरीब होती है और सभ्यता की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर सकती इसलिए दूसरो को उन्हें फुसलाने में आसानी होती है।

ये आदिवासी प्राय अपने नृत्यो के द्वारा हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते है। जिस प्रकार कोकिल बिना गीत के, मयूर बिना पख के, चित्रकार बिना तूलिका और रग के प्रभावहीन होते है उसी प्रकार नृत्य-रहित होने पर आदिवासी होते है। इनके यहाँ पर्व अधिक सख्या में होते है। इन अवसरो पर उनके गाँवो से आती हुई ढोलक की आवाज दूर तक सुनाई देती है। सपूर्ण गाँव चहल-पहल और हो-हल्ले में डूब जाता है। पुरुष-स्त्री, जवान-बूढे सभी नृत्यमय हो उठते है। पहले युवक और युवतियाँ नृत्य प्रारभ करती है फिर, बाद में, सभी सम्मिलित हो जाते है और सभी प्रकार की चिंताओ, वैमनस्यो और व्यक्तिगत मतभेदो का विस्मरण कर उल्लास में डूब जाते है। आदिवासी-जीवन में अनवरत परिश्रम और कठिन कार्य करने पडते है। सुबह से शाम तक कोई न कोई काम उनके लिए रहता ही है, चाहे वह लाभप्रद हो या नही। नृत्य ही वह द्वार है जिससे उनकी चिंताएँ बाहर ठेल दी जाती है। इससे उनके शरीर तथा मन मे नई स्फूर्ति का सचार हो उठता है। अपने सभी उपकरणो के साथ नृत्य ही उनके जीवन में शाति लाता है। जब कभी विवाह, जन्म, मृत्यु और नये फलों का भोज होता है तभी नाच का आयोजन भी होता है।

ओडिशावासी सथाल और हो अपने नृत्य के लिए विख्यात हैं। वे नृत्य के समय मडल बनाते है जिसमें पुरुष और स्त्री क्रमश स्थान ग्रहण करते है। ढोल-वादक एक इकाई अलग ही बनाते है जो ऐसे ताल उत्पन्न करते है, जिसके अनुसार पुरुष-स्त्री पैर मिलाकर नाचते जाते है। भिन्न-भिन्न उत्सवो और अवसरो के लिए नाच भी भिन्न-भिन्न होते है। हो लोगो का विवाह-नृत्य अपनी श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध है। सथालो के झूमर आधुनिक नर्तको को भी मत्र-मुग्ध कर लेते है। नाचनेवालो का मिला हुआ पद-विन्यास और थिरकन अद्वितीय होती है। गादवा अपने

की एकता को अपनी शिक्षा-पद्धति में स्थान देना चाहिये ताकि आदिवासी विद्यार्थी निराश न हो। जहाँ तक गैर-आदिवासियो से उनके मुकावले का प्रश्न है, यह टेढी समस्या है। जव तक गैर-आदिवासी-जीवन को आदिवासी पूरी तरह से अख्तियार नही कर लेते, तव तक यह कठिनाई वनी रहेगी। कुछ क्षेत्रो में आदिवासियो ने वडी तेजी के साथ ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। विशेष कर सुदरगढ और गजाम जिलो में ईसाई मिश्नरियो के सुस्थापित केंद्र हैं। इन मिश्नरियो ने वडी लगन और अध्यवसाय से आदिवासी क्षेत्रो में शिक्षा का प्रसार किया है। उन लोगो ने आदि-वासियो के स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिया है और दूर देहाती स्थानो मे उनके लिए अस्पताल और दवाखाने खोले हैं। किंतु इन मिश्नरियो का एक मात्र उद्देश्य आदिवासी जनता को ईसाई धर्म में परिवर्तित कर देना है। इसलिए वे लोग आदिवासी-जीवन के उद्देश्यो और मूल्यो का महत्त्वाकन करना भूल गये हैं। धर्म-परिवर्तित लोग गैर धर्म-परिवर्तितो को नीच और ससारी समझने लग गये हैं। इस कारण वहुत से आदिवासी क्षेत्रो में आपसी विभाजन हो गया है। धर्म-परिवर्तित लोग अनुकरण द्वारा सभ्य-जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करते हैं जो उनके वश की वात नहीं है। इसलिए निराशा होती है। आदिवासियो में पहले जो नेतृत्व-भावना थी वह अव मिश्नरियो के हाथ में चली गई है। इन लोगो ने उनको विभिन्न प्रकार के जीवन अपनाने को वाध्य किया है। आदिवासियो के नृत्य जो उनकी आत्मा हैं, प्राण है, जीवन है—वद कर दिये गये है और वे पर्व तथा उत्सव, जो उनके जीवन मे समन्वय लाते है, नही मनाये जाते।

अव सरकारी और गैरसरकारी समितियाँ आदिवासियो की दशा सुधारने में लगी हुई है। उन समितियो में अनेक नि स्वार्थ सेवी है जो भरसक आदिवासियो की सहायता करने का प्रयत्न करते हैं। किंतु अभी भी कुछ छूछापन और कठिनाइयाँ है। उन कार्यकर्ताओ में से अधि-काश आदिवासियो की मनोवृत्ति, दिलचस्पी और समस्याओ से पूरे परिचित नही होते अत्र अच्छा यह होगा कि शासन, सामाजिक कार्यकर्ता और साधारण जनता सहानुभूतिपूर्वक आदिवासी-जीवन के मूल्य को समझें-बूझें।



अर्थात्—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी में ज्ञानी ही एकनिष्ठ भक्त है। मुझे ज्ञानी अति प्रिय है। ज्ञानी मेरी आत्मा है।"[१]

यही भागवत के, प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में भी समर्थित है। उसमें कहा गया है कि जो मुनि विषयासक्त नही है और आत्मा में परमात्मा को देखते है, वे भी अप्रयोजन में विष्णु की भक्ति करते है। फिर गीता के त्रयोदश अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि मुझमें सर्वात्म-दृष्टि एकान्त भक्ति है। अन्य सबके साथ ज्ञान की साधना है। भागवत में भक्ति की प्रधानता कही गई है। भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के चौदहवें तथा बीसवें अध्याय में भगवान् ने कहा है कि जिस प्रकार मुझे विशुद्ध भक्ति वशीभूत करती है उस प्रकार योग, साख्य, वर्णाश्रम-धर्म, वेदपाठ, तपस्या और दान वशीभूत नही कर पाते। गीता में भी वही कहा गया है। भगवान् ने अर्जुन से कहा है, "यत् करोषि यदश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्"। भक्ति का स्वरूप बताते हुए योगसूत्र मे कहा गया है कि परानुरक्ति ही ईश्वर की भक्ति है।[२] यहाँ परा शब्द का अर्थ अनन्यविषयक अनुराग या प्रेम है। नारद-पाचरात्र में कहा गया है कि इन्द्रियो के द्वारा हृषीकेश के निष्ठापूर्वक भजन को भक्ति कहते हैं। यह सेवा सब प्रकार की छलना से रहित है।[३] इसी "नारद-पाचरात्र" में यह भी लिखा है कि ऐसी भक्ति के बिना पचविध मुक्ति कभी नही मिलती।

वस्तुत तीन प्रकार की भक्ति है—कायिक, वाचिक और मानसिक। फिर रज, तम और सत्त्व गुण-भेद के कारण भी यह त्रिविध है। इसके अतिरिक्त भागवत में निर्गुण भक्ति की बात भी लिखी गई है।

सत्य युग में तपस्या की प्रधानता थी। त्रेता युग में यज्ञ का प्रवर्तन हुआ। यज्ञ करना राजस भक्तिजनित है। यज्ञ की पत्नी श्रद्धा है। भक्ति श्रद्धामूलक है। पहले यज्ञानुष्ठान में पशु-बलि का प्रचलन नही था। त्रेता युग में पशुबलि का प्रवर्तन हुआ। यज्ञ में पशुबलि का कार्य बढ जाने से लोगो ने ज्ञान का अनुसरण किया। तब उपनिषद् की सृष्टि हुई और कर्म के स्थान पर ज्ञान की प्रधानता हुई। उपनिषद् युग मे भी भक्ति के अनुशीलन का स्पष्ट सकेत श्वेताश्वेत उपनिषद् में मिलता है। उपनिषद् युग में वैदिक देवता ब्रह्म परमात्मा के रूप में मान्य हुए। इस युग के अतिम भाग मे और पौराणिक युग के आरभ में वैदिक देवताओ के बीच पञ्चदेवताओ ने प्रधानता प्राप्त की। ब्रह्म और भगवान् की निर्गुण भक्ति पचदेवताओं के सगुण रूप मे अर्पित हुई। ये पचदेवता है—विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य। वेद में विष्णु, रुद्र और सूर्य के सूक्त हैं। गणेश और शक्ति के सूक्त मुख्य नही हैं।

"गणाना त्वा गणपति हवामहे"—इस वैदिक मन्त्राश को लेकर गाणपत्यो ने गणपति

---

१. गीता, सप्तम अध्याय, श्लोक १६-१७।

२. 'ईश्वरे परानुरक्ति. भक्ति.' (योगसूत्र)।

३ "सर्वोपाधिविनिर्मुक्त तत्परत्वेन निर्मलम्। हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते।"

ही खारवेल के अभिषेक का उल्लेख आता है। इस प्रकार ओडिशा में जैन और बौद्धधर्म के प्रसार के साथ ही साथ वैदिक सनातन धर्म का भी अस्तित्व रहा।

वैदिक धर्म के वाद उत्कल में जैनधर्म और बौद्धधर्म का उत्थान हुआ। बौद्धधर्म की महायान शाखा में हिन्दू देवता अप्रधान और वुद्ध प्रधान देवता के रूप में पूजित हुए। ज्ञानप्रधान बौद्धधर्म ने आगे चलकर महायान शाखा के अतर्गत पूजा, अर्च्चनादि के रूप में भक्ति का आश्रय लिया।

'वौद्ध गान ओ दोहा' ज्ञानाश्रित होने पर भी भक्तिहीन नही है, क्योकि श्रद्धा या भक्ति के आश्रय के विना ज्ञान की प्रतिष्ठा नही हो सकती। कान्हुपाद, लुइपाद, शवरपाद आदि सिद्धाचार्य उत्कल के ही थे और उनकी गीतियाँ ओडिया भाषा और साहित्य के प्राचीनतम निदर्शन है। पण्डितो के मतानुसार इनका समय ईसा की सातवी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक था। बौद्धधर्म के पतन के वाद हमें उत्कल मे शैवधर्म की प्रधानता देखने को मिलती है। मुखलिंगेश्वर, महालिंगेश्वर और भुवनेश्वर के शिलालेखो में शिव जी की अर्च्चना का विधान किया गया है। "रुद्रसुधानिधि" और "सोमनाथ व्रत" में शिवभक्ति की महिमा वर्णित है। इसके अतिरिक्त शिवपूजा का अधिष्ठान अर्थात् शिवलिंग की स्थापना जितनी उत्कल में देखने को मिलती है उतनी भारत के किसी अन्य स्थान में नही है। इससे मालूम पडता है कि किसी समय उत्कल में शिव-पूजा का प्रवल प्रसार था।

यह निश्चित है कि शकराचार्य के द्वारा विशुद्ध शैवधर्म का प्रवर्तन हुआ था और इस धर्म की अनेक यथेच्छाचारिताएँ मार्जित हुई थी। उत्कल में इसी मार्जित शैवधर्म का प्रसार हुआ था। उसी समय शाक्त धर्म का प्रसार हुआ जो क्रमश जोर पकडता गया। इसी शाक्त धर्म के साहित्य ग्रन्थो में शारला दास का महाभारत, चण्डीपुराण और विलका रामायण आदि है। शारला दास ने अपने महाभारत में सभी देवताओ के प्रति भक्ति प्रदर्शन करने पर भी दुर्गारूपिणी सारला देवी को अपनी इष्टदेवी के रूप में मानकर उपासना की है। वे उनकी कृपा से इस अनोखे ग्रन्थ को लिखने में समर्थ हुए थे। उत्कल में दुर्गा के अनेक नामो के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है। इनमें विरला, विरजा, शारला, चच्चिका, तारा, चण्डी, भट्टारिका, कीचकेश्वरी, समलेश्वरी, मगला आदि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त उत्कल के हर एक गाँव मे ग्रामदेवियाँ भी विद्यमान है। हरएक घर में वृन्दावती के रूप में शक्ति ही पूजित है।

उत्कल मे दुर्गापूजा का जैसा प्रसार है वैसा कालीपूजा आदि का नही। काली की प्रस्थापित मूर्तियाँ वहुत कम है। गवेपको का मत है कि वौद्धधर्म के प्रभाव के कारण ही काली तथा अन्य देवियो की पूजा प्रचलित हुई। आवश्यक होते हुए भी यहाँ पर यह विषय विचारणीय नही है। किंतु उत्कल में दुर्गा के मृण्मय विग्रह की पूजा वहुत ही कम दिखाई पडती है, फिर भी दुर्गा के उत्सव के समय घर-घर में सिर्फ कलसी को प्रतिमा के रूप में रखकर पूजा की जाती है।

यथेच्छाचारिता दूर करने के लिए ही भगवान् से परकीया-प्रीति अर्थात् जीव-ब्रह्म के आपस में मिलने की लीला उद्भावित हुई।

उत्कल में मध्वाचार्य, नरहरि तीर्थ आदि के आगमन के कारण वैष्णव धर्म भी सुदृढ हुआ। इन महापुरुषो के आविर्भाव तथा भागवत पुराण के प्रचार के कारण चैतन्य देव के आगमन के पहले ओडिशा में वैष्णव धर्म की शुद्धाभक्ति और ज्ञानमिश्रा भक्ति का प्रचार तथा प्रसार हो चुका था, क्योकि भागवत में इन दोनो का वर्णन है। चैतन्य की उपस्थिति के समय यहाँ पचसखा ज्ञान-मिश्रा भक्ति के उपासक थे तथा राय रामानन्द श्रद्धाभक्ति के प्रधान उपासक थे। चैतन्य ने दोनो मत वालो को अपने सखा के रूप में ग्रहण किया, क्योकि वे अचिन्त्य भेदाभेदवादी थे। यह मत राय रामानन्द के द्वारा भी स्वीकृत हुआ था। इसका उल्लेख कृष्णदास कविराज ने अपने "चैतन्य-चरितामृत" में स्पष्ट रूप से किया है। ज्ञानमिश्रा भक्तो ने पुरुषोत्तम धाम को नित्यधाम और श्रीकृष्ण को अवतारी के वजाय अवतार के रूप में ग्रहण किया है। इनका भजन "हरे राम कृष्ण" है। श्रद्धाभक्ति के उपासक वृन्दावन को नित्यधाम और श्रीकृष्ण को अवतारी मानते है तथा उनका भजन "हरे कृष्ण राम" है। कलिसन्तरणोपनिषद में "हरे राम कृष्ण" भजन का उल्लेख है। अधिकारी के भेद से भजन के प्रभेद निर्देशित है। शुद्धाभक्तिवादी सायुज्य भक्ति के पक्षपाती नही थे। वे राधाभाव में अनुप्राणित होकर कृष्ण की सेवा करते थे। यही कारण है कि उनके भजन का स्वरूप भी अलग है। ज्ञानमिश्रा भक्त सायुज्य मुक्ति के पक्षपाती है इसलिए उनका भजन "हरे राम कृष्ण" है। ये भक्त मुक्ति के वाद भगवान् में अहैतुकी भक्ति करते है।

शारला दास के वाद हमें मार्कण्ड दास के "महाभाष" और "केशव कोइलि" नाम के दो पद्य-ग्रन्थ मिलते है। महाभाष में शिव के मुख से राम की प्रशस्ति और "केशव कोइलि" में वात्सल्य रस के द्वारा कृष्ण की महत्ता वर्णित है। ऊपर कहा जा चुका है कि शाक्त धर्म के वाद वैष्णव धर्म का प्रवल प्रचार हुआ था। वलराम दास की "रामायण" और अर्जुनदास के "रामविभा" काव्यो में राम की लीला वर्णित है। जगन्नाथ दास का "भागवत", अच्युतानन्द दास का "हरिवश" और विप्रनारायण दास का "हरिवश" तो वाद की रचना है। अन्यान्य सखाओ तथा अनन्त, अच्युत, यशोवन्त की कृतियाँ श्रीकृष्ण के महिमागान से पूर्ण है। उसमें कृष्ण निराकार तथा साकार दोनो रूपो में वर्णित है। पचसखा जगन्नाथ के सखा और शाखा के रूप में वर्णित है तथा उनकी गणना चैतन्य के सखा के रूप में भी है। पचसखा के वाद श्रीकृष्ण के आश्रय मे कई ब्रह्मतत्त्वात्मक ग्रन्थ लिखे गये है। कपिलेन्द्र या पुरुषोत्तम देव के समसामयिक दामोदर दास की "रस कोइलि चउतिशा" में विष्णुभक्ति का परिचय मिलता है। पचसखा युग के वाद काव्य युग आता है। इस युग के विभिन्न काव्यो में कवियो का भक्तिभाव भी प्रकट है।

पुराण, काव्य आदि से भक्ति-साहित्य के अनेक निदर्शन दिये जा सकते है। इनके अतिरिक्त अनुसन्धान करने पर मालूम पडता है कि अनेक प्रसिद्ध पीठो की अवस्थिति के कारण ही ओडिशा में भक्तिधर्म और भक्ति-साहित्य की सृष्टि हुई है। उदाहरण के लिए कटक के परमहस पीठ, पचसखा पीठ, अरक्षित दास का पीठ और महिमा गोसाई का पीठ, सम्वलपुर में समलेश्वरी,

है। उत्कल के भक्त पचदेवता के उपासक हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि शारला दास माँ शारला चण्डी के वरपुत्र थे। देवी की प्रसन्नता से ही उन्होंने महाभारत, विलका रामायण, चण्डी पुराण जैसे प्रकाड ग्रन्थ लिखे। उन्होंने महाभारत, रामायण और भागवत की रचना में अपनी स्वतत्र प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने लिखा है —

"वच्छा दास द्वारा लिखित "कलसा चउतिशा" में शिव के विवाह का वर्णन है। उन्होंने शारला दास के पूर्व शृगार, हास्यरस आदि के सम्मिश्रण से एक सुन्दर चउतिशा लिखी थी। इसकी रचना त्रयोदश शताब्दी के प्रथम भाग में हुई थी। इसमें उन्होंने लिखा है कि शारला चडी साक्षात् भैरवी हैं। मैं (कवि शारला दास) उनका पुत्र हूँ। सर्वमगलरूपिणी माता कुतूहल-पूर्वक (मेरे) ग्रथ का रस ग्रहण करती है। देवी ने ही प्रसन्न होकर आज्ञा दी है और मैंने विस्तार-पूर्वक महाभारत की रचना की है।[1] शारलादास के पूर्व शृगार, हास्य रसादि के सम्मिश्रण से वच्छादास ने कलसा चउतिशा नामक एक सुदर चउतिशा लिखी थी। इसमें शिव-विवाह का वर्णन है। इसकी रचना १३वी शताब्दी के प्रथम चरण में हुई थी। इसमें वच्छादास ने लिखा है कि जगत के ठाकुर कपिलास में है। अल्पबुद्धिवाले वच्छादास उनके लिए कलसा का पाठ कर रहे हैं।"[2]

मार्कण्ड दास ने श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्र जी का माहात्म्य गान किया है। "केशव-कोइलि" में कृष्ण और "महाभाष" में राम की स्तुति वर्णित है। "केशव कोइलि" तो वात्सल्य रस की एक मन्दाकिनी ही है। यशोदा कहती है—हे कोइलि, मेरा पुत्र केशव किसी के वहकावे में आकर मथुरा चला गया और फिर लौटा नही। खानेवाला पुत्र तो जाकर मथुरा में अँटक गया, मैं किसे दूध और खाँड दूं?[3]

चैतन्य के वहुत पहले उत्कल ने वैष्णव धर्म की लीलाभूमि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर

---

१ सर्वमंगलारूपिणी मात मत्तभोला,
ग्रन्थर रस घेनइ होइ कुतुहल।
शारला चण्डी साक्षाते अटइ भैरवी,
ताहार पुत्र शारला दास मु कवि।
सुप्रसन्ने आज्ञा भोते देले शाकम्भरी,
लभ तु विलास महाभारत विस्तारी।

२ क्षितिपति ठाकुर से कपिलासे स्थिति
क्षुद्रबुद्धि वत्सादास कलसा पठन्ति।

३. कोइलि, केशव ये मथुरा कु गला,
काहा बोले लगा पुत्र वाहुडि नइला लो कोइलि
कोइलि, खण्ड क्षीर देवि मुं काहाकु,
खाइवार पुत्र गला मथुरापुरकु लो कोइलि।

युग के स्मारक-स्वरूप अर्जुन दास का "राम विभा" काव्य ओडिशा में आज तक के प्राप्त काव्यो में प्रथम माना गया है। उसमें रामभक्ति का निदर्शन है। वाद में अनेक कवियो ने पुराणो के आधार पर कृष्ण-महिमा और लीला-कीर्तन-समन्वित काव्य रचे। उनमें शिशुसकर का "उषाभिलाष" और देवदुर्लभ दास का "रहस्यमजरी" अपूर्व ललित, मधुर और सगीतमय काव्य है। "रहस्यमजरी" काव्य में कृष्ण की अपूर्व महिमा का वर्णन है। गोपीरास के प्रसग में शिशुसकर एक स्थान पर लिखते हैं—

"गावन्ति वावन्ति व नृत्यन्ति वाला,
उन्मद मदन सरखे भोला।
झलमल झटकित ताटक गण्डे,
विद्युत खेले कि जीमूतखण्डे,
रगिमा अधरे भगिमा गारा,
लोचन वक्रे कृष्ण मुख चाहें।"[1]

कवि देवदुर्लभ ने राधाभाव से अनुप्राणित होकर कहा है—

"दूती तु कन्हाइ पाखकु याउ किना,
वसन ककण याहा मागु ताहा नउ किना।"[2]

एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं—

"चारि भक्ति मध्य प्रेमभक्ति अटे सार,
से भक्ति अटइ कोठ गोपी मानकर ये,
गोपिंकि भजिला भक्ति प्रेम भक्ति पाइ,
विना प्रेम भक्ति रे दर्शन मोते नाहि।"[3]

भक्त जगन्नाथ दास के जीवन-चरित्र के आधार पर दिवाकर दास ने "जगन्नाथचरितामृत" लिखा है। भक्त-जीवनी लिखने में वे सर्वश्रेष्ठ थे।

---

१. "वालाएँ मदमस्त होकर गाती और नाचती है। वे ताटक नामक आभूषण पहने हुए है। वह ताटक गाल पर झलमल-झलमल करता है और ऐसा लगता है कि मानो वादल के एक टुकडे पर विजली खेल रही हो।"

२ "हे वेटी, तू कृष्ण के पास जाती है न? और उनसे कपडा तथा कंकण माँगने से पाती है न?"

३ "चार प्रकार की भक्ति में प्रेम-भक्ति ही उत्तम है। वह भक्ति गोपियों की है। इसलिए गोपियों की जो भक्ति करता है वह प्रेम-भक्ति पाता है। विना प्रेम-भक्ति के कृष्ण के दर्शन नहीं होते।"

"महिमा अनन्त प्रभो ! महिमा अनन्त,
मनोहारी सहोदर होइ थाइ ख्यात।
अरिदर कर विभो अरि दर कर,
युगे युगे धर नाना विधि अवतार।"[1]

उपेन्द्र भज श्रद्धाभक्ति के उपासक नही थे। वे पचदेवता के उपासक तथा स्मार्त वैष्णव थे। उत्कल में चैतन्य के आगमन के पूर्व राय रामानन्द ने ब्रजभाषा में भक्तिरसात्मक पद्यावली की रचना की थी। उनके सस्कृत नाटक "जगन्नाथवल्लभ" में उनका भक्तिभाव प्रदर्शित है।

उपेन्द्र भज की समसामयिक वृन्दावती दासी श्रद्धाभक्ति की कवियित्री थी। वे और उनके स्वामी चन्द्रशेखर, ससुर जगन्नाथ, पुत्र भीमदास और पोता कृपासिन्धु दास आदि सभी कृष्ण-भक्त थे। उन्होने कृष्णलीलात्मक ग्रन्थो की रचना करके अपने जीवन को सार्थक बनाया है। वृन्दावती दासी का "पूर्णतम चन्द्रोदय" श्रद्धा-भक्ति-मार्ग का तत्त्वमय ग्रन्थ है। उस समय अद्भुतकर्मा नामक एक सारस्वत ब्राह्मण उत्कल में आये थे। उन्होने उत्कलीय भाषा सीखी और ज्ञानमिश्रा भक्ति के उपासक चैतन्य दास से दीक्षा ली थी। उन्होने जगन्नाथ दास के पट्ट शिष्य के रूप में अपने "प्रेम" पचामृत को सुन्दर, ललित, मधुर तथा लोकप्रिय भाषा में सुन्दर ढग से लिखा था। दीनकृष्ण की भाँति वे भी ज्ञानमिश्रा भक्तों में गिने जाते है, क्योकि कृष्ण को इष्टदेव के रूप में मानते हुए भी उन्होने उन्हें परमब्रह्म जगन्नाथ के अवतार के रूप में ग्रहण किया है।

सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मकिशोर दास के शिष्य थे तथा शुद्धाभक्ति मार्ग के उपासक थे। उनके द्वारा रचित "युगल-रसामृत-लहरी", "युगल-रसामृत भउँरी", "चउँरी" और "चौर चिन्तामणि", "प्रेम तरगिणी", "विश्वम्भर विलास" आदि श्रीकृष्णलीला काव्य हैं। इनके पट्टशिष्य भक्त-कवि अभिमन्यु थे। दिव्य कोयल के समान उन्होने कृष्णलीला का भी गान किया है। उनकी रचनाएँ शब्दालकार तथा अर्थालकार से भरपूर है। उनके "विदग्ध-चिन्तामणि" काव्य में प्रीति-भक्ति का अच्छा निदर्शन है। यह एक अपूर्व भक्तिमूलक काव्य है। ओडिया में ही नही, भारतीय भाषाओ और वैष्णव दर्शन मे ऐसा रसात्मक, अलकार-पूर्ण, भक्तिरसात्मक विराट् काव्य दूसरा नही है।

"श्री वृन्दावने श्री रासमण्डले,
प्रेम तन्मय शुद्धभाव भोले,
हा राधामोहन उच्चे उच्चारि,

---

१. प्रभु की महिमा अनन्त है। ससार भर में विख्यात है कि दुष्ट शत्रुओ को दलने के लिए नानाविधि अवतार लेते हैं।

मनवोध चउतिशा में उन्होंने लिखा है—

"कहइ मन आरे मो वाल कर,
कला श्रीमुख वारे देखिवा चाल रे।
खण्डिकि खण्डि तोर पिंजरा काठि,
खाउण थिवे श्वान श्रृगाल वाण्टि रे।
गण्ठिरे वान्धि नेले केते के घन रे।"[१]

कविसूर्य वलदेव अद्‌भुतकर्मा प्रतिभावान् कवि थे। उन्होंने "जगन्नाथ जणाण" लिखा है जिसका वास्तविक नाम "सर्प जणाण" है। उसमें उन्होंने व्याजस्तुति द्वारा जगन्नाथ की प्रार्थना की है और जगन्नाथ को सर्प के रूप में वर्णन करने में सकोच नहीं किया है।

"वाधिला जाणि क्षमा कर नोहिले रमारमण दण्डे दिअ टालि,
तुम्भकु जगन्नाथ आजि यो मनोरथ भरणा करि देवि गालि,
हे कृपानिधि, करुणासिन्धु वोलि करि,
कहन्ति वुधे डरि मरि,
कालसर्प आपण कवल कर प्राण पवन मानक सवुरि।"[२]

कवि सूर्य के 'किशोर चन्द्रानन चम्पू' में कृष्ण की माधुर्य लीला वर्णित है। सगीत की चमत्कारिता के कारण यह उत्कल में घर-घर आदरित तथा पठित है।

ओडिशा के लोकप्रिय भक्त-कवि, कवि कलहस गोपालकृष्ण ने भक्तिमूलक कविताएँ रची थी। उन्होंने लिखा है—

"भ्रम ना भव भोगलोभरे लभि घन प्रमदारे,
भव सरसिज भव दुर्लभ प्रेमभक्ति दारे।"

× × ×

---

१. "मन कहता है कि अरे, मेरे कहने के मुताविक कर। एक वार सांवले श्रीमुख को देखने के लिए चल। पिंजर की एक-एक हड्डी श्वान, सियार बाँटकर खा जायेंगे।

"तेरे साथ के जो लोग चल वसे हैं वे क्या अपने साथ पोटली में धन बाँधकर ले गये हैं ?"

२. "हे रमारमण, वाधा हुई जानकर क्षमा कीजिए अथवा दूसरे क्षण में टाल दीजिए। तुमको तो आज मेरा मनोरथ पूर्ण ही करना है, नहीं तो गाली दूंगा। ज्ञानी डरकर आपको कृपा-निधि, करुणासिन्धु कहते हैं, लेकिन आप काल-सर्प की तरह हैं जो सवका प्राणवायु खींच लेते हैं।"

# ओड़िशा के लोकगीत

## श्री चक्रधर महापात्र

सभी देशो की भाँति उत्कल के लोकगीत भी अलकार-विहीन हैं। श्रेष्ठ और सुसस्कृत भाषा में रचित साहित्य की कृत्रिमता की इसमें झलक भी नही मिलेगी। यह तो मिट्टी की सलोनी भाषा है जिसमें हृदय का स्वाभाविक सगीत सदा से आश्रय लेता आया है। यह गमलो में तैयार किया हुआ पुष्प-गुच्छ नही, वन्यभाग को अपनी सुरभि से महकानेवाली मालती है। धरती की चेतना से स्पदित, जीवन-रस से सरावोर, घनी अमराइयो या फसलो की हरियालियो में विचरण करनेवाले स्वच्छद गगनविहारी के विमुक्त गान के सदृश गुजरित, लोकगीत हृदय का गीत है। उसे न तो विचारो की दुर्बोधता और न अलकारमयी भाषा की आवश्यकता है। उसे व्याकरण के कठोर सयम की भी परवाह नही। उसमें आत्मा का नैसर्गिक स्वर फूटता रहता है।

यह कठोर चट्टान को फोडकर उगनेवाले देवदारु के समान अज्ञात काल से अज्ञात पुरुष न-जाने किस अज्ञात भावोन्माद में कुछ गुनगुनाया था जो युगो-युगो से काल के कठिन पाषाणखडो को वेधता हुआ अपने असख्य सस्कारो और मिश्रणो के वाद भी आज उसी प्रकार ताजा है।

कोइलि वोवाये डाले, घर कु गले मो माआ मारिव लो।
वुलु थिवि तोटा माले।[१]

इसमें सगीतशास्त्र के नियम नही, पर स्वर और ताल के मूलतत्व निहित है, स्वर-साधना नही पर उसकी सिद्धि वर्तमान है, रस-सिद्ध काव्य-कला नही लेकिन रसवत् रमणीयता का अजस्र स्रोत मौजूद है। वेदना और करुणा की जो थाती एकांत उपत्यकाओ और देहातो के वासी ढोते आये हैं उसी की अभिरुचि इन स्वरो में है। इस करुणा में सभी रस पुजीभूत हो उठे है —

---

१. कोयल डाल पर कूक रही है
घर जाने पर मां मुझे मारेगी
हे सखी, इसलिए मै अमराई में घूमती रहूँगी।

सुविधा चालिव मोटर,
आपत्ति होइले शुणा जिव नाहिं, विलव होइले वाजिव चट्टी।[1]

ओडिया जाति सदा से विदेशी अनाचारो की ही नही अपितु प्रकृति की विनाश-लीलाओ, समाज के अत्याचारो और दारिद्रय के अभिशापो की भी घोर यत्रणा सहती आई है। विपत्ति की चट्टानो से लडते-लडते उसका सपूर्ण शरीर वज्र हो गया था। उसमें शायद रोने के लिए न तो आँसू शेप रह गये थे और न हँसने के लिए कोई हँसी ही जीवित रह गई थी। फिर भी उसके मुख पर आज हसी है, जीवन मे आनन्द का अनुभव है और हृदय में उल्लास का रस है। सामाजिक अत्याचार के फलस्वरूप एक सुन्दर युवती का वृद्ध वर से विवाह होने पर उसके हृदय की मार्मिक व्यजना इन पक्तियो में किस तरह साकार हो उठी है। देखिये—

मोहर जेमत निश्वास थिव, वोउकिलो।
टन्का वार वोडि अगार हेव, वोउकिलो।
दोल मुकुट होई अजिला बेले वोउकिलो,
आठु माडि वूढा पडिला तले, वोउकिलो।
वापा वसियिले वेदी उपरे वोउकिलो
जडा डागे कान फुकिले खरे वोउकिलो।
पर्वत शिखरे पाचिछि वेल वोउकिलो
तोते लाज नाहिं वुढा मुडे नेइ—
खजि लु फुल-वोडकिलो।[2]

---

१ भाई, सडक की वेगारी याद आ रही है।
काम करते-करते सिर में घट्ठे पड गये।
सडक की मिट्टी ढो-ढो कर
ऊँचा-नीचा समान किया,
ताकि मोटर सुविधापूर्वक चल सके।
आपत्ति की कोई सुनवाई नहीं
और देरी करने पर जूते पडेंगे।

२ हे जननी, मेरे शाप में वल होगा तो पिता ने जिन वारह वोडि रुपयो में मुझे विक्रय किया है, वे अवश्य कोयला हो जायेंगे।

पर्वत-शिखर के वेल-फल के समान एक वृद्ध, जर्जर, केश-विहीन सिर पर, हे माँ, तूने जो फूल चढाये हैं, अपनी कन्या का स्वामी वना दिया है, इससे वढकर लाज की वात और हो ही क्या सकती है!

इस प्रकार ओडिया लोकगीतो मे ऐसे सैकडो हृदयस्पर्शी करुण चित्र हैं जिनको पढते ही आँखो से अश्रुधारा वरवस फूट पडती है। उनमें कन्या की विदाई का दृश्य तो प्राय इतना मनोरम होता है कि हृदय विकल हो उठता है। इन गीतो मे वस्तुत कठोर पाषाण को पिघला देने की अपूर्व क्षमता है।

प्राचीन काल में प्रत्येक ग्राम किस प्रकार एक कुटुव के रूप में रहता था, उसका वैसा मनोरम चित्र लोकसाहित्य के अतिरिक्त अन्यत्र नि सदेह दुर्लभ है। विधवा की कन्या की विदाई का निम्नाकित दृश्य ग्राम-कवि की सफलता का द्योतक है। कन्या की माता कहती है—

ककेइ तोहर थिले,
समधि अइला चहल कले लो, मो जीवन।
पाणि पिढा नेइदेले जेज वापा हाटुआ साहिरु,
नाहाक डकेइ दिन वार ठीक कले।
ददेइ वणिया साहिरू वणिया डकाइ अलकार गढाइले।
देठेइ तोराडि पिआइ हातकु चूडि देले,
खुडि कोलकु नेइ वेक कु हार देले।
मउला कला कुम्भ शाढि देले,
साइ पडिशाये फरुआ पानिआ देले।
दरिद्र विधवा पिउसि श्रद्धा देले,
आखिरु नीर वुहाइ।
गेष रे पीउसि घर तते देखिवाकु शरधा तार लो,
मो जीवन, नयनु वहइ नीर।[1]

---

खडी होने पर कहती है, क्या खभा हो गई है?
सोने से कहती है, मूसल की भाँति क्या लुढ़की पडी है!

१ हे प्राणप्यारी वेटी,
जव तुम्हें देखने के लिए समधी आये
तो तुम्हारे काका ने हलचल मचा दी।
तेरे आजा ने हाटुआगली से लाकर पानी पीढ़ा दिया
और पडित वुलाकर (विवाह के लिए) दिन-वार ठीक किया।
दादा ने सुनारगली से सुनार वुलाकर गहने वनवाये,
जेठानी ने पखाल खिलाकर हाथ के लिए चूडी दी।
चाची ने गोद में लेकर गले का हार दिया,
मामा ने काले घडे की छापवाली साडी दी।
पडोसवालो ने कघी और सिंघोरा दिया।

सयोगी वैष्णव सायकाल के समय हाथ में एकतारा लिये ग्राम-पथ पर आश्चर्य की सृष्टि करता है, जीवन की क्षणभगुरता का स्मरण कराता है, क्रोध, गर्व, अहकार तथा अभिमान के उच्छेदन के लिए उपदेश करता है—

चित्र प्रतिमा प्राय दिशु मुदर, चिरि भितरे देख कि नारखार रे।
छुइँबे नाहिं तोरे वोलिवे मडा, छह खडि काठ तोर होइव लोड़ारे।[1]

कभी-कभी ग्राम-मार्ग मे स्वार्थोत्सर्ग और स्वार्थ-नाश को अपना भाग्य समझनेवाला ताडपत्र का छाता लगाये, नतमुख और शान्तदृष्टि चकुलिया पडा (चक्रपडा) पवित्र आत्म-भाव से गा उठता है—

देले नेवे, डाकिले चाहिंबे, नचेत काहाकु किछि न कहि फेरि जिबे। आहे आपणे ! हे आपणे !
धर्मरु रामचद्र लका कले जये, अधर्मरु रावणर वश गला क्षये हे। हे आपणे !
देइ थिले पाइ, वुणि थिले डाइ, पडिया भूइँरे गोवन चराइ हे। हे आपणे ![2]

प्रति दिन नाना प्रकार के कार्यों में सलग्न गामीणों को कविता और गान जिस प्रकार उत्साहित करते है उसी तरह उन्हें सरस भी वना देते है। जीवन के अनुभवो, वास्तविक घटनाओ और नाना प्रकार के उपदेशो से भरी हुई वचनावलियाँ घर में तो नारियो और वाहर पुरुषो के मुख से फूट निकलती है। किशोरियो के खेल, व्रत-उपवास, पूजा-आरती आदि के गीतो द्वारा साँझ को क्रीडामग्न वीथियाँ सगीत से मुखरित हो उठती है। शिशुओ के खेल-कौतुक के लिए माताएँ तथा प्रौढाएँ काम के समय वच्चो को गोद में लिये लोरियो मे उन्हें जातीय कथा सिखाया करती है। मनोविनोद के लिए किसान कृषि-कर्म के समय, गाडीवान गाडी चलाते समय, केवट नौका खेते समय, सगीत गान करके गाम-जीवन को रसमय वना देते है। ग्राम के नर-नारी

---

मुझे राह नहीं मिलती कि कहाँ जाऊँ
और किस प्रकार दिन विताऊँ ?

१ देख तो रे, चित्र प्रतिमा की भाँति देह कैसी सुन्दर दिखाई पडती है किंतु भीतर नारखार (गदगी) भरा हुआ है। मरने पर शव को कोई छुएगा नही और तव केवल काठ के छ टुकडो की आवश्यकता रह जाती है।

२ हे पचो,
देने पर लेंगे, वुलाने पर देखेंगे, नहीं तो विना कुछ कहे लौट जायेंगे।
हे पचो,
धर्म से रामचन्द्र ने लका जीती, अधर्म से रावण का नाश हुआ।
हे पचो,
जो देगा सो पायेगा, जो बोयेगा, सो काटेगा, चरागाह में गोधन चराओ (धर्म करो)।

किसान हल जोतते समय अपने कष्टो को भूल जाने के लिए गा उठता है—

अे-रात्रत अध ठारु जुचि मुं देलि हल, विलकु जाउ जाउ पहडे हेला वेल।
नगल फादि देइरे कटिरे देलि हात, पछकु अनाइलि आसुत अछिभात।
भात त आसुअछिरे तोराणिकिछि नाहिं, हडा कु पेलिपेलि देहे मो ज्ञान नाहिं।
भात धरि कमला त हिड मुडे ठिआ, गीत त चारिपदरे वोलिवु हलिया।
पाठत पढि नाहिं लो नाहाक चाहालिरे, गीत त वोलि नाहिं लो पाच हलियारे।
कि गीत वोलिवि लो कमला, धरिछि हडा हले, हो।[1]

थका हुआ किसान अपनी थकान मिटाने के लिए गीतो का आश्रय लेता है। ऐसे ही किसान की एक सहचरी मेड पर खडी हुई कहती है—

अरे सुदरी के क्रीत दास हलवाहे, इस एकान्त मे चार पद गीत गा ले।

हलवाहा कहता है—'तेरे रूप-गुण के वर्णन करने की वुद्धि मुझमें कहाँ ? मेरा साथी कौन है ? जर्जर वैल और तेरे सिवा मेरा कौन है ?'' वास्तव में कृषक अपने जीवन में दो ही चीजो से परिचित रहता है—एक तो अपनी सुन्दर स्त्री से, दूसरे अपने विश्रान्तिदायक सगीत से।

उत्कल का ग्राम्य-समाज अत्यन्त सगीत-मुखर रहता है। यहाँ प्रतिदिन कवित्व का ज्वार उठा करता है। प्रतिमास नाना उत्सवो में कविता का स्रोत वह उठता है। फाल्गुन मास की रात्रि में सारा ग्राम्य-समाज घट-ध्वनि के साथ नाच उठता है—

---

ककर वाया (ऐसा भकाऊँ जो कुत्ते की तरह हो) वाइ चढेइ (एक पक्षी) वारी पास जा
कान्हुआ (मुन्ना, कन्हाई) कान खाली ऐंठ ही देना।
राधिका कान तो खा।

१ मैंने आधी रात की वेला में ही हल उठाया, खेत तक जाते-जाते पहर दिन चढ़ गया।
फाल चलाते हुए मूंठ पर हाथ रक्खा, (और) पीछे मुडकर देखा कि भात आ रहा है।
भात तो आ रहा है लेकिन इसमें तोराणि (पानी) नहीं है,
वुड्ढे वैल को ठेलते-पेलते मेरी देह में जोर नहीं रह गया है।
भात को रखकर कमला मेड़ पर खडी हुई कहती है—ऐ हलवाहे, चार पद गीत तो गा दे।
(किसान कहता है) मैंने पाठशाला में शिक्षक से पाठ नहीं पढा है, (और)
पांच हलवाहो के साथ गीत भी नहीं गाया है।
मैं कैसे गीत गाऊँगा रे, कमला जोडी वैल को पकडे है।

मदनमोहन, करिंद्र दन्त पल्लक तेजि प्रभु, नरेंद्र चापे गमन।

आषाढ की पहली वर्षा के साथ शिशु 'मेघ वरसिला टुपुर टापेरे, केसुर माइला गजा' कहकर नाच उठते हैं। तत्पश्चात् रथयात्रा के अंत में ओडिया के स्वर्गमणि जगन्नाथ के प्रति घट, मर्दल, गिनि वजाकर वह नाच उठता है। लक्ष्मी उन्हें मार्ग नही देती। पुरुष जगन्नाथ वाहर वर्षा में भीगते है। इससे यह प्रदर्शित किया जाता है कि अपनी सद्‌गुणवती भार्या को छोडकर अन्य स्थान में भोग-विलास करनेवाले पुरुष को कैसा दड दिया जाय। साथ ही यह भी प्रदर्शित किया जाता है कि यदि पुरुष नारी का क्रीत दास वन कर न रहे तो वह स्वेच्छाचारी वन जाता है—

प्रभो ढिंकि, पनिकि आदि नेल, आम्भ ठाकुराणिकु सगते न नेल।
ठाकुराणी आम्भ विरहे खिन्न, निष्ठुर हृदय जग जीवन।
नफेड़ दुआर, प्रभो वाहुडि जाओ जा गुडिचा घर।[1]

सावन लगते ही घर-घर में ढपा वज उठता है। गाँव के लोग जगल से मई की खोल निकाल लाते हैं और उसे दो काष्ठो से वजाते तथा गाते हैं—

सुता काटि गलि खिअे, जाइफुल, सुता काटि गलि खिअे। डेंगा होइ करि पतलाटिये कह ताकु मुरछिव किये लो लकामरिच फुल, तोते किये केते कला मूल लो, अदिन किया केतकी जाइफुल, अदिन किया केतकी तुहि चपा फुल, मुँहि मालती, हसिले जिव पीरति।

लो न जा तेलगा पेंठ, तेलि घणा डाके कट कट लो।[2]

देखते-देखते भाद्रपद आ जाता है। ग्रामकिशोरियाँ दलवद्ध होकर वरामदे की दीवारो पर चित्र वनाने में लग जाती हैं। नाव पर नाव का चित्र वनाकर मगलमयी मगला का एक ओर

---

(रथयात्रा में लक्ष्मी को साथ न ले जाने पर भक्त उनसे कहता है)—

१. "हे प्रभु, आपने ढेंकी और वइठकी (पहँसुल) जैसी वस्तुओ को तो साथ ले लिया
लेकिन हमारी ठकुराइन को साथ नहीं लिया।
हमारी ठकुराइन विरह से खिन्न है। हे जगजीवन, आप निष्ठुर-हृदय हैं।
हम द्वार नहीं खोलते हैं।
हे प्रभु, आप गुंडिचा घर वापस जाइये।"

२ हे जाइफूल, मैं सूत कातने लगी।
भला उस लवे पतले पुरुष को कौन भूल सकता है।
हे मर्चाफूल, तुझे किसने कितना दाम लगाया?
असमय में फूलनेवाले किया, केतकी और जाइफूल में
तू तो चंपा है और मैं मालती;
(किन्तु) हँसने (विकसित होने) पर प्रीति टूट जायगी।
तेलंगा-वाजार मत जा, तेली का कोल्हू कट-कट कर रहा है।

को भेद करने से क्षत्रिय निर्भय हो सकता है। मानदड और नोक—इन दोनो लक्ष्यो में तलवार को कौशलपूर्वक चला न सके तो क्षत्रिय जययुक्त नही हो सकता। दुष्ट दलन नामक दाउणि (म्यान) में तलवार रख सकना ही एक साधना है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा उत्सव कुमारोत्सव है। इसमें किशोर और किशोरियाँ सम्मिलित होकर गाती हैं। उसके बाद विधवाएँ अपने वैधव्य-दुःख को कम करने के लिए हाथ में कौडी लेकर 'राधादामोदर' खेल करती हैं और आत्मसतोष पाती हैं।

'शुद्ध सुवर्णर मडप मध्ये चदन कोठि, रही दामोदर खेलति ह्स्तेकौडी मुठि एक मुठि जुअ खेलते प्रभु होइले धदा, हसि कमलिनी कहन्ति दिय मुकुट बधा।'

उसके बाद कुडल, हार, फेरा, अँगूठी तथा पादुका आदि को बधक में दे देते है।

'सात मुठि जअ पडन्ते प्रभु हाइले धदा, हसि कमलिनी कहन्ति निजे रहिल बधा।'

पतिये वश माच—यही ओडिशा नारी की कामना है। घर-घर में लक्ष्मी-पूजा की धूम मचने पर चारो ओर उल्लास छा जाता है। धान की मणिका, धान का हार और धान से ही लक्ष्मी की पूजा होती है। चडाल से लेकर ब्राह्मण तक के हर घर मे लक्ष्मी की पूजा होती है। लक्ष्मी समान भाव से प्रति घर में प्रसाद बाँटती है। जो साफ सुथरे हे और जिनका घर साफ सुथरा है, चाहे वह चडाल ही क्यो न हो, वे उन्ही के घर जाती हैं। जहाँ फूल देखती है, वहाँ जाती है, चाहे वह चडाल का स्थान ही क्यो न हो। यह साम्यवाद पृथ्वी में कभी सोचा भी न गया होगा। लक्ष्मीपीठ का मदिर सभी के लिए उन्मुक्त रहता है। कथा है कि श्रिया चडालुणी की पवित्रता से प्रसन्न होकर जन लक्ष्मी ने उसकी पूजा ग्रहण कर ली तब बलभद्र ने उन्हें मदिर-प्रवेश के लिए मना कर दिया था। इससे लक्ष्मी रुठकर चली गई। फलत बलभद्र दर-दर के भिखारी बन गये। अन्त में लक्ष्मी से क्षमा माँगकर क्षुधा बुझाई और वर दिया कि आज से चडाल को भी मदिर-प्रवेश का अधिकार रहेगा तथा लक्ष्मी सर्वत्र समान रूप से रहेगी। उत्कल की यही लक्ष्मी-पूजा उनके लक्ष्मी पुराण गीतिका का आधार है।

इसके पश्चात् आम चीरने लगते है। हरिजन वृद्धा डोमन के वेश मे दो कुमारियो को साथ लेकर फसल के अच्छे-बुरे समाचार गाँव-गाँव देती है। बूढी गीत गाती है और सुन्दर बालाएँ जो जो कहती हैं। उसके ताड के छाते मे पुष्प-माल का एक गुच्छा लटका रहता है। वही हरिजन वृद्धा का देवता है। उस छाते को गाँव की सभी नारियाँ हल्दी, पानी, चदन, कुमकुम, कर्पूर, अक्षत आदि से 'बदापना' करती है। 'आम्र आसिब जो, पणस आसिब जो, महुल आसिब जो, जगल भयावह नाहि जो बाटी बसन्त पडिब नाहि जो, मा लो! हातकु सुवर्ण बाहि देबु जो, मा लो! कोलकु सात नदन देबु जो।''[1]

---

१. आम आयेगा, कटहल आयेगा, महुल आयेगा,-
जंगल डरावना नहीं होगा,

और भी—अे डेंगा ताल गछ त खाइले वादुडि, वोडतु सात भाइ नइले वाहुडि, वाप घरे झिय हो रहिला करम आदिरि हो।[1]

उत्कल के लोकगीत केवल ओडिया जाति के ही नही, वरन समस्त भारत या विश्व के कीमती रत्न हैं। हर व्यक्ति के मुख से हर समय 'ढग ढमालि' की जो स्वर-तरगे फूटा करती हैं, उनमें से कुछ एक यहाँ देकर यह प्रवध समाप्त किया जायेगा।

कअँल काकुडि वहल चोपा काटि देलि परिखाकु,
अल्प दिनकु वहुत कथा झुरि झुरि मरिवाकु।
कखारू चोर, लाऊ चोर, चोराऊ चोराऊ वड चोर,
कअल कहि राघा, घरकु गले कथा न कहन्ति,
वाटरे वड गरवा।
वाप मरि गले पीउसि थिव माअ मारिगले माउसि थिव।
वाप ओलि फिअ चढेदोलि माअ ओलिझिअ विके कोली
वाप ओलि पुअ खाये खडा, माअ ओलि पुअ चढे घोडा।
गरिवर नाइप समस्तक शाली। आदि

उत्कल में लाखो लोकगीत है जो एक दूसरे से किसी वात मे कम नही। जितने सगृहीत हुए है, वे तो वहुत कम है। नोटिस या विज्ञापन देकर उनका सग्रह नही किया जा सकता। 'वला दानिय मानाचेत सरसा विरसायते'। उसके रसिक ही उनका सग्रह कर सकते है। एक प्राइमरी शिक्षक की विधवा नारी या दरिद्र और अवहेलिता वृद्धा से ही इन गीतो का सग्रह करना विडम्वना मात्र है।

उत्कल में १९२८ के पूर्व इन आचलिक लोकगीतो के सग्रह की ओर किसी का वि कुल ध्यान ही न था। स्वर्गीय भापाकोपकार गोपालचन्द्र प्रहराज ने कुछ ठग-ढमालियो का सग्रह किया था। पजाव के श्री देवेन्द्र सत्यार्थी की प्रेरणा से इस लेख के लेखक ही ने सर्वप्रथम अपनी भार्या के साथ इन सवके सग्रह में मन लगाया था। उनके सग्रह मे उनकी माता ने वहुत सी सामग्री जुटा दी थी। निरक्षर होते हुए भी उन्हें सैंकडो गीत याद थे। तत्पश्चात् शान्तिनिकेतन के ओडिया प्राध्यापक श्री कुजविहारी दास ने विज्ञापन द्वारा ग्रामशिक्षको की मदद से कुछ लोकगीतो का सग्रह किया है। अव तक के सगृहीत समस्त गीत समुद्र की एक वूंद के समान ही होगे।

---

१ ताड के ऊँचे पेड को चमगादड खा जाते है।
जहाज से मेरे सातो भाई नहीं लौटे।
भाग्याधीन वेटी अपने मैके में है।

# ओड़िया लोक-गीत और लोक-कथा

## डॉ० कुंजविहारी दाश

लोक-गीत असख्य जनता के हृदय का स्मारक है। यह एक कठ से दूसरे कठ तक सदा प्रवाहित होता रहता है। प्रत्येक युग मे यह परिवर्तित और परिवर्धित होता रहा है। यह लोक-वेद है जिसकी गति एक श्रुति से दूसरी श्रुति तक हुआ करती है। एक युग के नर-नारी अपने पूर्वजो द्वारा इसकी सहायता से शिक्षित हुआ करते हैं। यह धारा अविच्छिन्न है। एक स्थान मे उत्पन्न होकर ये गीत लोक-मुख द्वारा सारे देश में फैल जाते हैं। स्थान, काल तथा गायको की इच्छा के अनुसार इन्होने नाना रूप धारण किये हैं। इसी से एक ही गीत एक अचल में या विभिन्न अचलो में नाना रूपो मे उपलब्ध होता है।

वहुत से गीत काम के समय गाये जाते हैं। हलवाहा हल जोतता है, गाड़ीवान गाड़ी चलाता है, कृषक खेत निराता है, धान काटता है, दौंरी करता है, ओलचा चलाता है, कोई कोठे की छत कूटता है, कोई नाव खेता है, कोई चरखा कातता है, कोई चक्की पीसता है—इन सभी कामो के साथ गीत गाया जाता है। गीत के मादक प्रभाव से देह का श्रम दूर हो जाता है, क्लान्ति का अनुभव नही होता। कार्य के साथ-साथ अगागी-भाव से गीतो का गाया जाना एक स्वाभाविक प्रचलन है। लेकिन लोग कठिन श्रम में गीत गा नही पाते, हाँफ जाते हैं। ऐसे समय जो गीत गाया जाता है, उसमें केवल स्वर मात्र रहता है, रस या अर्थ नही रहता। सवारी या पालकी ढोते समय ढोनेवाला जो मन में आता है गा उठता है—

हुमरा भाइरे हूँ, खवड खाडिरे हूँ,
धवट धाडिरे हूँ, पाणि कादुअरे हूँ।[1]

वर्तमान समय में गीत कार्य का अनिवार्य अग नही रह गया है। कल-कारखानों के तुमुल कोलाहल और धूल-धुएँ से प्राण सूख जाते हैं, गीत याद ही नहीं आते। अत श्रमिक को मेहनत असह्य मालूम पडती है।

गीत और नृत्य एक दूसरे के पूरक हैं; लेकिन नृत्य-विहीन गीत अथवा गीतविहीन नृत्य का पाया जाना कठिन नही है। नागा नृत्य में गाना नही होता। छऊ नृत्य में समय-समय

---

१. हाँ रे भाई हाँ, खाला-ऊँची हाँ,
चलते चलो हाँ, पानी-कीचड हाँ।

खान-पान, वस्त्र-अलकार की कथा और अनुभूतिमूलक प्रेम-कथाएँ रहती है। ढग-ढमालि, बार-मामी, पुचि खेल गीत, दोलि गीत, शिशुओ को दुलार करने का गीत, कादणा आदि अधिकाश कथा-गीतियाँ नारी की सृष्टि है।

पुरुषो के गीत वृत्त दीर्घ और भाषा अपेक्षाकृत कर्कश होती है। यह ओजगुण-सम्पन्न होते है। उद्दाम और आवेग-पूर्ण होने के साथ-साथ इसके स्वर के आरोह मे उग्र गति रहती है। ऐसे गीत प्राय काम के समय ही गाये जाते है।

'वालस्तावत् क्रीडासक्त' वालक-वालिकाओ के गीत क्रीडामय होते है। इनमें प्रयुक्त छन्द छोटे होते है और ये गीत आकार मे छोटे, स्वर मे उग्र, गति मे द्रुत और आरोह-अवरोह मे शून्य होते है। ये वहुत अशो में निरर्थक होते है, क्योकि वालक-वालिका ही आशिक रूप मे अपने गीतो के रचयिता होते है। ऐसे गीतो की रचना में नारी का योग-दान भी कम नही है।

लोकगीतो को समूहगत और व्यक्तिगत, इन दो भागो में विभक्त किया जा सकता है, क्योकि कुछ गीत सामूहिक रूप में और कुछ अकेले गाये जाते है। इन गीतों की रचना मे चाहे समूह का हाथ होता हो अथवा ये व्यक्तिगत रूप से रचे जाते हो किंतु इतना तो निश्चित है कि प्रतिभाशाली व्यक्ति ही लोक-गीत के स्रष्टा होते है। असख्य व्यक्तियो मे से किसी-किसी स्त्री-पुरुष को कवि-प्रतिभा प्राप्त होती है। सुयोग मिलने पर हो सकता है कि वे कविवर्ग में स्थान पा जाते, किन्तु अनुपयुक्त स्थान में पड जाने पर भी उनकी कवि-प्रतिभा मलिन नही होती और किंचित् अनुकूल वातावरण के स्पर्श से ही वह स्फुरित हो उठती है। उसी प्रतिभा की वाणी ग्राम-गीत है। ग्राम के अन्य व्यक्ति स्रष्टा नही होते, वे सिर्फ वाहक या धारक होते है।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में ओडिया लोक-साहित्य के सग्रह का प्रयत्न हुआ था। सन् १८७६ ई० मे ओडिशा के तत्कालीन कमिश्नर रेवेन्शा साहब की सहायता से प० श्री कपिलेश्वर भूषण नन्द शर्मा ने कुछ 'ढग' इकट्ठा करके प्रकाशित किया था। सन् १९०३ ई० में श्री नीलमणि विद्यारत्न ने कुछ ढग और श्लोकाश सग्रह करके प्रकाशित कराया और उसे लोकसाहित्य के पट्टपुरोधा श्री गोपालचन्द्र प्रहराज को समर्पित किया था।

उच्च अग्रेजी विद्यालयो की परीक्षाओ मे "प्रवाद" से प्रश्न आने पर परीक्षार्थी इस विषय की अनभिज्ञता के कारण सतोषजनक उत्तर नही लिख पाते थे। साधारण पाठक को "प्रवाद" सवधी ज्ञान बहुत कम होता था क्योकि साहित्य के विषय मे उनकी थोडी जानकारी होती थी। अत सन् १९१४ ई० मे श्री भगवान होता ने 'ओडिया प्रवादमाला' नामक प्रवाद-ग्रन्थ प्रकाशित कराया। उसी वर्ष श्री राघवानद दास ने कुछ कृषि-सवधी उक्तियो का सग्रह प्रकाशित कराया जो कृषि-जीविका के प्रधान उपाय, पालक और फल की गणना, कृषि-समय, बैल और यत्रो का विवरण, वीज डालने की विधि, जुताई आदि आठ भागो में विभक्त था। खेती की उन्नति के लिए कृषको में अनुभव-सिद्ध उक्तियों के प्रचार की आवश्यकता का अनुभव करके उन्होने "खाद और क्षार" की कथा और रोपण-विधि के सबध में दो निबंध लिखे थे।

कन्या के ससुराल जाते समय ओडिशा का गृह-प्रागण करुण गीतो से मुखरित हो उठता है। 'कादणा' में नारी का स्वाभाविक कवित्व साकार हो उठता है। इसमें धनी या सर्वहारा समाज का चित्र दुर्लभ है। आर्थिक अनिश्चितता ही निम्न मध्यवर्गीय नारी-समाज के दुःख का प्रधान कारण है। धनी घर की लडकी का विवाह धनी घर में होता है, वह सुख की गोद से सुख की गोद मे ही जाती है। धनाढ्य पिता अभाव के कारण अपनी कन्या का विक्रय नही करता या अपनी दुलारी बेटी को किसी वृद्ध के हाथो समर्पित नही करता। मजदूर वर्ग को भी आर्थिक चिन्ता व्याकुल नही करती। रोज कमाना, रोज खाना, मिला तो मालपुआ नही तो एकादशी, यही उसका जीवन है। जो लडकी बहू बनती है, उसे कोई बैठाकर खिलाता नही। मै यह बात अच्छी तरह जानता कि विवाह हुए एक माह भी नही बीतता कि वह खेत निराने या धान काटने जाने लगती है।

मध्यम वर्ग की कन्या को कभी-कभी अभाव से अनादर मे पडना पडता है। माँ बचपन से लाड-प्यार से रखती है। देह कुम्हला जायेगी, यह सोचकर धूप मे नही जाने देती, वह उसकी रक्षा आँख की पुतली के समान करती है। वही कन्या ऐसे स्थान में पहुँचती है, जहाँ वह तो सबकी देख-भाल करती है, पर उसकी देखभाल करनेवाला कोई नही। वहाँ सढई मे माँड बँटता है, कटोरी से नापकर भात परोसा जाता है, भीगा कपडा देह पर ही सूखता है। आँख के आँसू सूख जाते है पर वेदना का अन्त नही होता। सुकुमार वयस् में ही तानो की बौछार सहते-सहते उनका कोमल मेरुदड टूट जाता है। लाचार होकर वह अपनी अश्रुधारा में ही वेदना को कम करती है

"मुह पोडु तोर झिअ जनम्, जनम धरे लो नाहि मरण।
पालिकि बाउश मुठ रे जरि, अेतिकि वेलरे जाअतिमरि।
कमर सवारि जाआन्ता फेरि, मो बापा बसन्ते गुमान करि।
मो बोउ कादन्ता मो नाम धरि, अेका कादरू जाआन्ता सरि।"[1]

पादुआ यात्रा निम्न वर्ग मे प्रचलित है। इनमें वर्णभेद नही है। मनौती आदि होने पर इसमे उच्च श्रेणी के लोग भी सम्मिलित होते है। शिव-पार्वती इसके इष्ट देवता है। देवता की

---

१. जल जाय लडकी का जनम
जनम तो गई लेकिन मौत नहीं है।
पालकी की मूठ की रस्सी जल जाय
(और उसी से)
मैं मर जाती।
तब यह कस की सवारी लौट जाती
और मेरे पिता अभिमानपूर्वक चुप बैठे रहते।
मेरी मां मेरा नाम लेकर रोती।
एक ही रुदन में खेल खत्म हो जाता।

"पुचिखेल" का गीत अर्थहीन और अप्रासंगिक होता है, केवल नृत्य में ताल देने के लिए ही इसका उपयोग होता है। इसमें विचारों की कोई शृंखला नही होती। इसे बेमेल फूलों की माला कह सकते हैं जिसमे प्रत्येक फूल की स्वतंत्र महक है किंतु माला की महक का आभास नही मिलता। एक-एक गीत कितनी ही छाया-छवियों की समष्टि मात्र है। किशोर मन की तरगे गीत के पद-पद में भरी रहती हैं।

'बारमासी' गीत मे बारहो महीनो के सुख-दुःख का विवरण होता है। पूरे वर्ष की अनुभूति बारह महीनों के क्षुद्र घेरे मे समाकलित रहती हैं। वे अनुभूतियाँ अधिकाशत गम्भीर होती है। अत अभिव्यक्ति भावलील एव स्वच्छद होती है। 'बारमासी' पढने के लिए नही, गाने के लिए है। यह नारी का निजस्व है।

दोलि गीत आकार मे छोटा होता है। केवल तीन ही पक्तियों मे भाव भरा होता है। ऐसा होने पर भी यह अपने में सपूर्ण होता है। दोल, रज और कुमार पूर्णिमा के दिन कुमारियाँ एकत्र होकर एक को 'दोलरानी' बनाकर और उसे दोलि मे बिठाकर झुलाती है। उस समय वे दोलि छन्द में गीत गाती हैं। परिवार और स्थानीय समाज ही उसके विषय-वस्तु होते हैं। कैशोर जीवन के उत्साह मे वधू की सासु-घर की यात्रा, सासु तथा ननदो का अत्याचार, सौतिया झगडा, स्वामी की कठोरता, वृद्ध-विवाह से वधू की निराशा, प्रेम, विरह, अभिसार, पत्र-लेखन, पालटा कन्या-विवाह, दाम्पत्य कलह, साहु महाजन की कृपणता, देवरो का परिहास, राजाओं की स्वेच्छाचारिता आदि इस गीत के वर्ण्य विषय और स्रोतस्थल हुआ करते हैं।

हालिया गीत मे कल्पना-विलास नही होता, वाक्याडम्बर नही रहता। एक-एक पद मे काव्य सकेत फूटा पडता है। यह काव्य प्राणो का काव्य है। आँसुओ में उमड़ता रहता है। इसकी अनुभूति मे चमत्कारिता तथा स्वाभाविकता में सरसता होती है। हल चलाते समय हलवाहा इसे गाता है।

चैतपर्व मुख्यत घागडा-घागडियो का उत्सव है। यौवन, प्रेम और सौन्दर्य के प्रतीक अविवाहित और अविवाहिता इस महोत्सव में शरीक होते है। पूरे चैत मास भर नृत्य-गीत चलता रहता है। दो दलो के युवको और युवतियों मे गीत-प्रतियोगिता चलती है। युवती परास्त होने पर विजेता से विवाह करती है और विजेता कन्या को ले भागता है।

मत्र-गीत मुख्यत मगलसूचक होते है—अनिष्ट-निवारक, रोग-व्याधिनाशक। अनिष्टकारी मत्र रोगोत्पादक, विघ्नकारी होते है। इसमें कवित्व नही होता। उसमे समाज की असहाय अवस्था की सूचना मिलती है।

'पघतोला गीत' साँपो के पकडने और खेलाने मे व्यवहृत होता है। 'हुगो' कुमारियो का गीतनृत्य है। सूर्यास्त होने के पूर्व ही वे एक जगह एकत्र होकर दो दलो मे बँट जाती है। गीत में एक दल के प्रश्न पूछने पर दूसरा दल उत्तर देता है। इसमें नैहर की स्वाधीनता, सुख-स्वच्छदता, सासु-घर के दुःखादि वर्णित होते है।

'डालखाइ' नृत्य-गीत आश्विन मास में दुर्गाष्टमी के दिन होता है। इसमें विवाहित

थे। हो सकता है कि मकर्पण पडा उन्ही कथाकारो मे से एक हो और ढेंकानाल या केउझर राज-दरबार मे उन्होंने इसे सुनाया हो। उसे सुनकर उन दरबारो मे सबधित किसी कवि ने 'चतुर-विनोद' की रचना कर दी होगी। कथाकार की कथन-शैली में रचित इस गल्प की शैली उपर्युक्त अनुमान को दृढ करती है।

लेखक ने कहानी कहने मे किसी नूतन पद्धति को नही अपनाया है। उन्होंने 'कथासरित्-सागर' की रचना-रीति और गल्प-पडितो की कथन-शैली का समन्वय किया है। 'पचतन्त्र' की तरह इस पुस्तक मे कहानी मे कहानी, जजीर की तरह, लगी हुई है। भाव-सादृश्य के कारण एक कथा दूसरी कथा को मन में पैदा करती है। कथा की जटिलता मे फँसकर पाठक या श्रोता उसके मूल सूत्र को खो बैठता है, लेकिन यह अघटित नही है। पाँच व्यक्तियो के समूह मे एक व्यक्ति के एक कथा कह चुकने पर दूसरा व्यक्ति उसी भाव की और एक कथा कह उठता है। इसी तरह एक कथा अन्य कथा का स्मारक बनकर कथा की एक माला बनाने मे सहायक होती है।

ग्रन्थ का नाम 'चतुरविनोद' रखने का कारण उन्होंने कहा है कि 'हास-विनोद, रसविनोद, रीतिविनोद, प्रीति-विनोद' इस प्रकार चार प्रकार का विनोद होने के कारण इस कथा का नाम चतुरविनोद पडा, अथवा चतुर लोगो का विनोद होने के कारण इसका नाम 'चतुरविनोद' पडा। 'चतुरविनोद' की कथा मूल गल्प से अन्य चार शाखा-गल्प-कथाओं और प्रत्येक शाखा-गल्प मे तीन दूसरी गल्पो मे समाप्त हुई है। कथा के बीच-बीच मे गीत, श्लोक, ढग-ढमालियाँ व्यवहृत हुई है। व्यग्य द्वारा कहानी कहना लेखक की रचना-शैली की विशेषता है।

प्रसिद्ध कवि बलदेव रथ ने उन्नीसवी सदी के मध्य भाग मे "हास्य कल्लोल" नामक एकमात्र गद्य-पद्य-मिश्रित गल्प की रचना की थी। साहित्य मे वैचित्र्य-विधान के उद्देश्य से इसकी रचना नही हुई है। लेखक के आजीवन-पोषक आठगड के राजा वाजुकेश्वर हरिचदन के व्रण रोग से तीव्र यत्रणा भोग करते समय उन्हें हँसाकर घाव फोडने के उद्देश्य से उन्होंने इसकी रचना की थी। सचमुच यह हास्यरसात्मक कथा सुनकर राजा के हँसते ही उनका घाव फूट पडा था और वे पुन चगे हो गये थे। कथाकारो की कथन-शैली इस कथा में अनुसृत हुई है। आदि से अन्त तक हास्यरस लबालब भरा है। इसमें विपरीत कथाएँ कहकर हँसाने का प्रयत्न किया गया है।

अति गुणवन्त समस्त दोष, गुणज्ञ देखिले हुअति रोष।
चणा चोवाइले निवर्त्ते शोष, साधुकु निन्दिले मनरे तोष।
घुघुरि देखिले बोलन्ति हाती। कहि न पारन्ति के चण जाति।
ब्राह्मण मानक हातरे काति, भक्तिरे गुरु वैष्णव घाती।[1]

---

१ अत्यत गुणवान् होना सभी दोषों का मूल है,
गुणवान् को देखकर मुझे क्रोध लगता है।

प्रचलित गल्प साहित्य की तुलना करके तथा अनुकूल और प्रतिकूल रूप का कारण बताकर नाना तत्वो का आविष्कार किया जा सकता है।"

सन् १९२१ ई० में "उत्कल कहानी दर्पण" नामक लोक गल्प-सग्रह प्रकाशित हुआ। इसमे कुछ नवीनता नही है। उक्त दो पुस्तको की कथाएं रूपातरित की गई हैं। इसी समय ओडिया लोककथा को ओडिशा के बाहर प्रचलित करने की एक बार कोशिश हुई थी। सन् १९२५ ई० में उपेन्द्र नारायण गुप्त ने 'Folk Tales of Orissa' नामक पुस्तक कलकत्ते मे प्रकाशित की थी। इस पुस्तक की अधिकाश कथाएं 'उत्कल कहानी' और 'कथा लहरी' से अनूदित हैं।

बिहार ओडिशा शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर जि० ई० फॉक्स साहब ने इसकी भूमिका में लिखा है "अग्रेजी एक विदेशी भाषा है। अग्रेजी पुस्तक में भारत जैसे देश का चित्र न होने से वह अस्पृश्य विवेचित होता है। 'Folk Tales of Orissa' जैसी पुस्तक इस अभाव को दूर करने मे सहायक होगी।"

इस पुस्तक में कुल १५ कथाएं सगृहीत हैं। बीच में एक एक 'Lullaby', 'Fun', 'Riddle', 'Puzzle' एव कहानी के अन्त में विषय-वस्तु का अनुवाद दे देने से पुस्तक की उपयोगिता बढ गई है। गत पाँच वर्षों में ओडिशा के ग्रामाचल में लोकगीत सग्रह के उद्देश्य से घूमते समय मैंने बहुत सी नयी लोककथाओं की जानकारी पाई है। खोज करके मैंने देखा है कि सैकडो लोक गल्प आज भी प्रचलित हैं। तभी से लोक-गल्प सग्रह मेरा जीवन-व्रत बन गया है। अब तक दो सौ से अधिक लोक-कहानियाँ सगृहीत हो चुकी हैं। वे सब 'कथाटिये कहूँ' नाम से एक के बाद एक प्रकाशित हो रही हैं।

ओडिशा में प्राय दो प्रकार के कथा कहनेवाले मिलते हैं (क) ग्राम के प्रवीण वृद्ध-वृद्धा, (ख) गल्प-सागर, (ग) गल्प-कथन एक परपरित लोककला है। इसके लिए चमत्कारिक कल्पना, शिशुसुलभ सरलता, सहानुभूतिशील हृदय, मधुर कठ, मधुर कण्ठस्वर, श्रोता के चित्त को हिला देनेवाली वाग्मिता, सुदृढ चरित्र और बलिष्ठ व्यक्तित्व का होना आवश्यक है। कथा कहनेवाले को एक साथ वादक, गायक और अभिनेता बनना पडता है। केवल एक परिवार के नही बल्कि गाँव के अधिकाश लडके उस प्रवीण कथक के द्वार पर कहानी सुनने के लिए जमा होते हैं। सन्ध्या के शान्त वातावरण में कथक पूछता है—"सुख की कथा कहूँ या दुख की, या जिसे अनुभव किया है उसे कहूँ?" इस पर श्रोताओ में मतभेद उत्पन्न होता है। कोई राक्षस या भूत की कथा सुनना चाहता है तो कोई जीव-जन्तु की। ऐसे मौको पर कथक अपनी इच्छाशक्ति का सहारा लेता है। श्रोतागण गल्प के प्रवाह मे बह जाते हैं और कुछ एतराज नही करते। कथक आरभ करता है—

कथाटिये कहूँ, कथाटिये कहूँ।
कि कथा? बेंगुलि कथा! कि बेंगुलि? काठ बेंगुलि!

(ख) गल्प-सागर इन राष्ट्रीय कत्यको से भिन्न हैं। वे लौकिक गल्प मे नही वल्कि शास्त्रीय गल्प कहने मे धुरन्धर होते है। वे सुपडित, सुवक्ता, और परिहास-रसिक होते हैं। गल्प-कथन उनकी वृत्ति है। आज के युग में कहानी सुनाकर रोजी कमाना प्राय कठिन है। कुछ दिनो में भरण-पोषण के अभाव से यह सम्प्रदाय लुप्त हो जायगा।

गल्प-सागरो की कथन-प्रणाली चमत्कारपूर्ण होती है, स्वर मधुर होता है। वे कठ-स्वर सभी वाद्य-ध्वनियो का अनुकरण कर सकते है तथा अपनी कथन-शैली द्वारा हमारे मानस-पटल पर सभी दृश्यो को चित्रित करने मे समर्थ होते है। 'कथासरित्-सागर', 'दशकुमार चरित' तथा 'कादम्बरी' के गल्प कहकर वीच वीच मे पद्याश और गद्याश की आवृत्ति किया करते हैं। उनका कथा-क्षेत्र विराट् होता है। पौराणिक कथा, सन्त और भक्त-कथा, माहात्म्य-कथा, सत्य-नारायण पूजा कथा, ओषा और व्रत कथा, किंवदती और लौकिक कहानी इसके अन्तर्गत है। लौकिक कथा को निम्न नौ भागो में विभक्त किया जा सकता है। (क) उपदेशात्मक कहानी, (ख) देवता, असुर, भूत-प्रेत, ब्रह्मदैत्य की कहानी। (ग) चोर, डकैत, ठग, शठ की कहानी। (घ) पशु-पक्षी, सर्प और मत्स्य सवधी कहानी। (ङ) रजापुअ, मत्रीपुअ, साववपुअ, कटुआलपुअ आदि चार मित्रो के दुस्साहसिक कार्य-साधन-विषयक कहानी। (च) प्रश्नोत्तर कथा। (छ) शब्द-चातुर्य द्वारा उत्पन्न औत्सुक्य-पूर्ण समस्या का समाधान करनेवाली कहानी। (ज) नीति-शिक्षा और अपने जीवन मे उसके व्यवहार की कहानी। (झ) व्यग्य-रसात्मक कहानी।

प्राचीन काल में दुर्गम पर्वत-माला, निविड अरण्य और विशाल समुद्र द्वारा एक देश अन्य देशो से अलग रहा, फिर भी पृथ्वी के विभिन्न दूरवर्ती देशो के वीच कथा-विनिमय सभव हुआ करता था। उस दृष्टि से विचार करने पर निकटवर्ती भारत के विभिन्न प्रदेशो के वीच कहानी-विनिमय की वात नितान्त आश्चर्यजनक है। सस्कृति के अग्रदूत के रूप मे व्यापारी लोग एक अचल की कथा दूसरे अचल मे प्रचारित करते थे। धर्म-प्रचारक, तीर्थ-यात्री, विदेशी-स्वदेशी भ्रमणकारी, और सभा-पडितो के द्वारा ये कथाएँ प्रचारित हुआ करती थी। विभिन्न युद्ध-अभियान तथा एक राष्ट्र के अन्य राष्ट्र पर राजत्व द्वारा भी इनका आदान-प्रदान हुआ करता था। ओडिशा उत्तर और दक्षिण भारत का सास्कृतिक केन्द्र है। दोनो सस्कृतियो का सयोजक और पुरी एक प्रधान धर्मपीठ तथा तीर्थक्षेत्र होने के कारण यहाँ कहानी-विनिमय स्वाभाविक रूप से हुआ होगा। इस प्रकार ओडिशा की अनेक कहानियाँ अन्य प्रदेशो को गई होगी तथा अन्य प्रदेशो की अनेक कहानियाँ इस प्रदेश मे प्रचलित हुई होगी।

विभिन्न प्रादेशिक गल्पो में सादृश्य होने का एक अन्य कारण यह भी है कि सस्कृत प्रादेशिक भाषाओ की जननी है। सस्कृत साहित्य अधिकाश प्रादेशिक गल्पो की गगोत्री है।

भारत के विभिन्न अचलो में लोक-गल्प की गठन-रीति प्राय एक-सी है। उनमें स्थानगत विविध रीतियो और अभिप्राय मे थोडा सा अन्तर है। अतीत भारत के विचार, विज्ञान तथा विश्व-मानव की पारस्परिक चिन्ता-धारा ने ओडिया गल्प को किस प्रकार से पोषित सबल किया है, उसे इस छोटे से निबन्ध में विवेचित करना सम्भव नहीं है।

बैंक चालू किये गये। उक्त समितियो की सदस्य-सख्या ३१८२ और कार्यकारी निधि दो लाख अठत्तर हजार (२,७८,०००) रुपये थी। सन् १९१२ से १९२० के मध्य समवाय आन्दोलन कितना आगे बढा, वह निम्नलिखित विवरण से मालूम पड जाता है।

| सन् | समिति-सख्या | केन्द्रीय बैंक | सदस्य | कार्यकारी निधि |
|---|---|---|---|---|
| १९१२-१३ | ९४ | २ | ३१८२ | २,७८,००० |
| १९१३-१४ | १५५ | ३ | ५३९७ | ५,९७,००० |
| १९१५-२० | २४१ | १० | १२,२५० | १६,६१,००० |

ऊपर जो विवरण दिया गया है, उससे स्पष्ट होता है कि उस समय ओडिशा मे समवाय आन्दोलन बडे जोर से चालू था। उस समय साधारणत रेविन्यू विभाग के सरकारी कर्मचारी स्वच्छन्द भाव से समवाय-समितियो मे काम करते थे। इसलिए साधारण जनता के मन मे यह धारणा थी कि यह आन्दोलन एक सरकारी आन्दोलन है। उसी समय (सन् १९१२-१३ ई० मे) समवाय-समिति के रजिस्ट्रार ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट मे लिखा था कि वर्तमान सबडिविजनल अफसरो के द्वारा समवाय आन्दोलन के व्यापक प्रचार और प्रसार की सभावना अधिक है। वे उक्त आन्दोलन के प्रचार के लिए बहुत बडी सख्या में सगठको की नियुक्ति कर सकते है और अपने-अपने तत्त्वावधान मे समवाय बैंको और समितियो की देखभाल भी कर सकते है।

तत्कालीन सरकार की इस नीति के कारण तथा सरकारी कर्मचारियो की प्ररोचना और प्रत्यक्ष योग से १९१२ से १९२० के बीच समवाय आन्दोलन का शीघ्रतापूर्वक प्रसार और प्रचार हुआ। उस समय बेसरकारी लोगो को भी अवैतनिक ढग से समवाय-समिति के सगठक, प्रचारक और तत्त्वावधारक के रूप में नियुक्त किया जाता था। वेतन न दिया जाने पर भी उन्हें काफी भत्ता और राहखर्च मिलता था—विशेषत उन्हें सरकारी पदवी लाभ की आशा दी गई थी।

इसके बाद समवाय-समितियो की सख्या बढ़ने से उनकी देख-रेख और निरीक्षण के लिए अलग-अलग आञ्चलिक समवाय सघ (Guarantee Union) तैयार किये गये थे। ये सब सघ तत्कालीन ब्रह्मदेशीय प्रथानुसार स्थापित हुए थे। समवाय आन्दोलन का प्रसार-कार्य करने के साथ-साथ ये सघ उनके अधीन रहकर, देहातो में शिक्षा, साधारण स्वास्थ्य, पथ-निर्माण, पेय जल की व्यवस्था आदि तरह तरह के ग्रामसुधार सगठन का भार लेकर काम करते थे।

सारे 'विहार और ओडिशा' के समवाय केन्द्रीय बैंक तथा समितियो की देख-रेख, सचालन और हिसाब-किताब करने के लिए सन् १९१८ या १९ में एक प्रादेशिक समवाय फेडरेशन सगठित हुआ था। इस अनुष्ठान के अधीन रहकर अनेक समीक्षक कार्य करते थे।

यही उत्तरी ओडिशा के समवाय आन्दोलन का इतिहास है। उस समय दक्षिणी ओडिशा अर्थात् गजाम और कोरापुट जिले मद्रास प्रदेश के अन्तर्गत थे। १९०६ ई० में पहले पहल गजाम जिले के ब्रह्मपुर शहर में एक समवाय अर्बान बैंक स्थापित हुआ। यह आज भी अच्छी तरह काम

इस कमेटी का नाम 'मुदालियर कमेटी' हुआ, क्योंकि मद्रास के एक पुराने रजिस्ट्रार श्री देवशिखामणि मुदालियर केंद्रीय कमेटी के चेयरमैन थे। उस कमेटी ने जो रिपोर्ट दी वह 'मुदालियर कमेटी रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। उस रिपोर्ट के अनुसार समवाय आन्दोलन का पुनर्गठन शुरू हुआ। सरकार ने सभी केन्द्रीय बैंकों के परिचालन का भार अपने हाथ में ले लिया और समवाय-समितियों को भी सरकारी ऋण मिलने लगा।

१९३९ ई० से १९५१ तक उत्तर ओड़िशा के १३ केन्द्रीय समवाय बैंक सरकार की देखरेख में चलते रहे। मुदालियर कमेटी की सलाह के अनुसार व्याज का परिमाण आधा कम कर दिया गया। कर्ज लेनेवालों से धीरे-धीरे रुपया वसूल किया गया। अमानतकारियों के थोड़े थोड़े रुपये चुकाये गये। इस तरह समवाय आन्दोलन के पुनर्गठन का कार्य फिर से शुरू हुआ। इस पुनर्गठन कार्य में द्वितीय महासमर काफी सहायक हुआ, क्योंकि सभी चीजों के भावों में वृद्धि हो गई थी। इससे किसानों के हाथ में रुपया आ गया।

सन् १९४७ में देश आजाद हुआ। इसने समवाय आन्दोलन पर फिर जोर दिया गया। इन वर्षों में समवाय आन्दोलन कितना अग्रसर हुआ, यह निम्नलिखित विवरण से मालूम हो सकता है—

| वर्ष | समिति-संख्या | सदस्य-संख्या | कार्यकारी-मूल धन |
|---|---|---|---|
| १९४६–४७ | ३३१७ | १७५९३२ | २४०२४ |
| १९४७–४८ | ३४१२ | १९२६८५ | २२३४४ |
| १९४८–४९ | ४३३० | २३८६३६ | ३१९६७ |
| १९४९–५० | ४७३७ | २६८१४८ | ३६८३८ |
| १९५०–५१ | ५१४५ | २९४७२७ | ८२७६९ |
| १९५१–५२ | | | |
| १९५२–५३ | ५५४३ | ३१९७६५ | ८६६१६ |
| १९५३–५४ | ६०२२ | ३३३६७८ | ५५९२३ |
| १९५४–५५ | ७७६८ | ४८८२६६ | ७२३५६ |
| १९५५–५६ | ८६२३ | ६४६४५५ | १००७२५ |
| १९५६–५७ | ९१८८ | ७१[illegible]८१० | १०३५०० |

उपरोक्त विवरण से मालूम पड़ जाता है कि इन दस सालों के बीच ओड़िशा का समवाय आन्दोलन पहले से ३ गुना अधिक बढ़ा। इसी बीच इस आन्दोलन का एक नया रूप दिखाई पड़ा। भारत के रिज़र्व बैंक की स्थापित [illegible] अखिल भारतीय ग्राम्य ऋण अनुसंधान कमेटी की रिपोर्ट में भारत के कई प्रदेशों में ग्राम्य ऋण की जाँच करने के साथ-साथ समवाय आन्दोलन की आलोचना भी की गई है। उस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में निर्देश किया है कि यद्यपि ओड़िशा में भारतीय समवाय आन्दोलन आशा के अनुरूप फलप्रद नहीं हुआ, फिर भी इसको सफल बनाना ही

एक गाँव में घूम घूम कर शिक्षा दे रहे हैं। ओडिशा समवाय-सघ ने जनता को समवाय-शिक्षा देने की व्यवस्था की है। अब ओडिशा में 'ओडिशा कोआपरेटिव जर्नल (Orissa Co-operative Journel) नामक एक त्रैमासिक पत्रिका और 'कल्यानी' नामक एक ओडिया मासिक पत्रिका प्रकाशित करके समवाय का यथेष्ट प्रचार किया जा रहा है।

इस प्रकार समवाय आन्दोलन काफी तेजी से चल रहा है, लेकिन इस क्षिप्र गति के विषय में अच्छी तरह विचार करने पर मन मे एक आशका पैदा होती है। आज सरकार समवाय आन्दोलन से सबन्धित है, इसलिए सभी प्रगति के लिए व्यग्र हैं। सन् १९१२ से १९२५ तक समवाय आन्दोलन इसी प्रकार कार्य के द्वारा काफी तेजी से चल रहा था। किंतु बाद में उसे एक बडी असुविधा का सामना करना पडा और वह मिट्टी मे मिल गया। भय होता है कि वर्तमान समवाय के इतिहास में भी कही इस प्रकार का परिवर्तन न हो।

अब हमारे ओडिशा की हर एक ग्राम पचायत में एक एक समवाय धान-गोदाम खोला गया है। इन गोदामो के द्वारा लोगो को अच्छे किस्म के बीज और खाद आदि देने की व्यवस्था की गई है। इनके द्वारा धान-सग्रह भी किया जाता हैं। अब तक हमारे देश में लगभग १२ सौ धान-गोदाम समवाय-समितियाँ स्थापित हो चुकी हे। अब तो इन समितियो के द्वारा रुपया कर्ज देने की भी व्यवस्था की गई है।

इस प्रकार इन समवाय-समितियों के ऊपर एक बहुत बडा भार आ गया है। ये समितियाँ इस गुरु भार को उठाने में कहाँ तक समर्थ होगी, यह भी सोचने की बात है। सभी काम तो एक दिन मे हो नही जायेगा और यह सोचना भी असगतियों और विपरीत परिणामो से खाली नही है। समवाय सस्थाएँ विशेष रूप से गणतात्रिक सस्थाएँ हे। हर एक समिति का परिचालन-भार निर्वाचित परिचालक मडल पर निर्भर है। इसके कर्मचारी अभी अल्पशिक्षित और अनभिज्ञ है, क्योकि एक साथ इतने सुशिक्षित कर्मचारी पाना असभव है। इन परिस्थितियो को देखकर ही उन पर भार दिया जा सकता है। ऐसा न होने पर मन में यह आशका होती है कि कही समवाय-समितियाँ इस गुरु भार को उठाने में असमर्थ न हो जायँ।

अब हमारे समवाय आन्दोलन की प्रगति मे अनुसन्धान कर परामर्श देने के लिए भारत सरकार ने 'सर माकम् डार्लिग' नामक एक समवाय-विशेषज्ञ को विलायत से भारत बुलाया है। उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। उन्होने भी एक चेतावनी दी है कि भारत में जिस प्रकार समवाय आन्दोलन सरकारी मशीनरी की सहायता से काफी तेजी से बढा दिया गया है, उसका फल विषमय हो सकता है। विशेषत जो लोग समवाय आन्दोलन के कर्णधार हे या होंगे, उनकी शिक्षा-दीक्षा और अभिज्ञता के विषय में उस विशेषज्ञ ने एक मूल्यवान् राय दी है। वर्तमान समय मे अनेक पत्र-पत्रिकाओ में इस विषय के विचार प्रकट किये जा रहे हैं। अब राज्य सरकार और जनता को आगा-पीछा सोच कर तथा अतीत की अभिज्ञता पर निर्भर रह कर समवाय आन्दोलन को उपयुक्त दिशा में चलाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

हुआ है। अत पर्वों और त्योहारो के इतिहास की आलोचना मे इस दानपत्र का विशेष महत्त्व है। इसी से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि उत्कल में तिथि, वार, सक्राति, पूर्णिमा, अमावस्या आदि के अनुसार जो अनेक प्रकार के पर्व और त्योहार मान्य हुए थे, उनमें से कई तो नवी शताब्दी से ही प्रचलित हुए है।

भौम सम्राटो के समसामयिक शुल्कि और भजवशी राजाओ के दानपत्रो से पता चलता है कि वे स्तभेश्वरी देवी के परम भक्त थे।[1] पार्वत्य जातियो द्वारा पूजित 'काठखुट' नामक देवता का नाम उन लोगो के सतोष के लिए 'स्तभेश्वरी' रख दिया गया था। आधुनिक गजाम, माल, बोद, अनुगुल, कधमाल, सोनपुर आदि अचलो में, जहाँ शुल्कि और भजो ने शासन किया था वहाँ, आज भी स्तभेश्वरी या खभेश्वरी ठकुराइन के पर्व और त्योहार मनाये जाते है। इनमें महाष्टमी और दशहरा प्रधान है।

## भौम और सोमवंशी शासन-काल के पर्व

मुरारि कवि कृत अनर्घराघव नाटक की प्रस्तावना से पता चलता है कि नवी शताब्दी के मध्य वह पुरुषोत्तम जगन्नाथ की यात्रा के समय जगन्नाथपुरी की एक पडित-सभा में अभिनीत हुआ था।[2] टीकाकार विष्णुभट्ट ने इस यात्रा को जगन्नाथ महाप्रभु की रथयात्रा के रूप में ग्रहण किया है। अत स्पष्ट है कि नवी शताब्दी के आसपास उत्कल मे पुरी रथ-यात्रा की विशेष प्रधानता थी।

एक भजीय ताम्रपत्र से पता चलता है कि उस युग में विष्णु की उत्थापन एकादशी भी पर्व के रूप में मनाई जाती थी।[3] महाकवि कालिदास ने मेघदूत में इसकी ओर सकेत किया है।[4] अत यह स्पष्ट है कि अत्यत प्राचीन काल से ही इस उत्थापन-एकादशी की गणना पर्वों में होती थी। इसी उत्थापन दिवस की भाँति शयन-दिवस (आषाढ शुक्ल एकादशी) भी एक पर्व था। बाद में विष्णु के इन उत्थापन और शयन पर्वों की भाँति शिव के उत्थापन और शयन पर्व भी क्रमश आषाढ शुक्ल चतुर्दशी और कार्त्तिक शुक्ल चतुर्दशी के दिन मनाये जाने लगे थे।

इस युग के दूसरे पर्वों और त्योहारो की सूचना हमें पुरुषोत्तम क्षेत्रवासी भारत-प्रसिद्ध ज्योतिर्विद श्री शतानद आचार्य द्वारा सगृहीत "शतानदसग्रह" नामक धर्मशास्त्र से मिलती है। यह ग्रन्थ उत्कल के गग शासन (सन् १११२ से आरभ) के पहले का लिखा है जो अपूर्ण रूप में

---

१. स्तंभेश्वरी-लब्धवरप्रसाद

२. लवणोद-बेला-वनाली तमाल तरु कदलस्य त्रिभुवन मौलि मडन महानील मणे कमला-कुच-कलश-केलि-कस्तुरिकापत्राकुरस्य भगवत पुरुषोत्तमस्य यात्रायामु-पस्थानीया सभासदः. .. ..।

३ कार्त्तिक शुक्लपक्षे विष्णुरुत्थापन एकादश्या कार्त्तिक शुदि एकादशी पृ० २९९

४. शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ—उत्तर मेघ, श्लोक स० ४९

होने पर भी अब यह प्रचलित नहीं है। भाद्र पूर्णिमा या इन्द्र पूर्णिमा के दिन इन्द्र की पूजा की जाती है। पहले की भाँति अब इसकी प्रधानता नहीं है।

आश्विन मास के पर्वों में अपराजिता दशमी और कौमुदी पूर्णिमा का उल्लेख मिलता है। अपराजिता दशमी का दूसरा नाम विजयादशमी है। इस अवसर पर पराजय की आशंका से रहित विजयकामी राजे युद्ध-यात्रा आरंभ करते थे, इसलिए इसे अपराजिता दशमी कहते हैं। पहले इसी शुभ दिन में देवताओं और राजाओं द्वारा शर-संधान से लक्ष्यभेद करने का उल्लेख मिलता है। इसी दशमी के दिन श्री रामचंद्र के द्वारा रावण के साथ युद्ध-अभियान के कारण इसकी विशेष प्रसिद्धि रही है।[1] आज भी उत्कल के लोग इस दिन अपने-अपने देवताओं आदि की पूजा करते तथा अभीष्ट कार्य का प्रारम्भ करते हैं। यह ओडिशा का प्रधान जातीय पर्व है। दुर्गा की मृण्मयी प्रतिमा के पूजन का प्रसार होने से इसका प्राधान्य पहले से अधिक हो गया है।

कौमुदी पूर्णिमा अथवा कुमार-पूर्णिमा में महालक्ष्मी-पूजन और रात्रि-जागरण होता है। इस दिन लड़के और लड़कियाँ नया वस्त्र धारण करती हैं। युवकजन ताश, पण आदि खेल खेल-कर सारी रात जाग कर बिता देते हैं और लड़कियाँ प्रसन्न मन से धवल चंद्रिका में गीत गा-गाकर 'पुचि' खेल खेलती हैं। कार्तिक मास की प्रत्येक रात को आकाश-दीप जलाया जाता है और अमावस्या की रात को पूर्वजों के लिए दीप जलाने का विधान है, इसीलिए इसका नाम प्रदीपा-मावास्या अथवा दीपावली अमावस्या है।[2] यह पर्व उत्कल में बड़ी तड़क-भड़क से मनाया जाता है। लोग धूपबत्ती और दीप जलाकर तथा आतशबाजी छुड़ाकर इस समारोह को मनाते हैं।

माघ मास के पर्वों में वरदा चतुर्थी और श्रीपंचमी या वसंत पंचमी का उल्लेख है। माघ शुक्ल चतुर्थी अथवा वरदा चतुर्थी के दिन गौरी-पूजा और श्रीपंचमी या शुक्ल पंचमी के दिन सरस्वती-पूजा का विधान है। वर्तमान समय में वरदा चतुर्थी का प्राधान्य बिलकुल नहीं है लेकिन श्रीपंचमी उत्कल के हजारों शिक्षानुष्ठानों में अत्यंत समारोह के साथ मनाई जाती है। शतानंद ने इस संबंध में 'पंचम्यां च श्रिया देव्या पिष्टकैः स्वाध्यायिकं, छात्रगणैः पूजनं' लिखा है। यहाँ इस कथन में आये हुए 'श्री' शब्द का अर्थ गदाधर टीका में लक्ष्मी के स्थान पर सरस्वती किया गया है। फाल्गुन के पर्वों का उल्लेख करते हुए शतानंद ने लिखा है कि फाल्गुन पूर्णिमा के दिन गोविंद को झूले में झुलाकर 'फागु' उत्सव करना चाहिए।[3] अनेक लोगों की धारणा है कि श्री

---

१ दुर्गोत्सवानंतरवैष्णवर्क्षे तिथौ दशम्यामपराजितायाम्
रामो जिगीषुर्दशदिक्षु वेधं कृत्वा जगामारिपुरं प्रवीर ।

२ तुला प्रत्यगते सूर्ये अमावास्या तिथिर्भवेत्।
उपास्तसमये दीपान् पितॄन् दद्यात् शुभं शुचि.।

३ फाल्गुने पौर्णमास्यां तु कार्यं. फागुमहोत्सव ।
गोविंदं दोलया क्रीडेत् तत्रार्यमगतेरवं।

ज्येष्ठ मास मे आरण्यक षष्ठी, चपक द्वादशी और देवस्नान आदि पर्वों का निर्देश है। पहले ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी या आरण्यक षष्ठी में विध्यवासिनी देवी की पूजा की जाती थी। बाद में इसका नाम शीतल षष्ठी पडा। ओडिशा के नाना अचलो में इस दिन अत्यत समारोहपूर्वक शिवविवाह उत्सव मनाया जाता है।

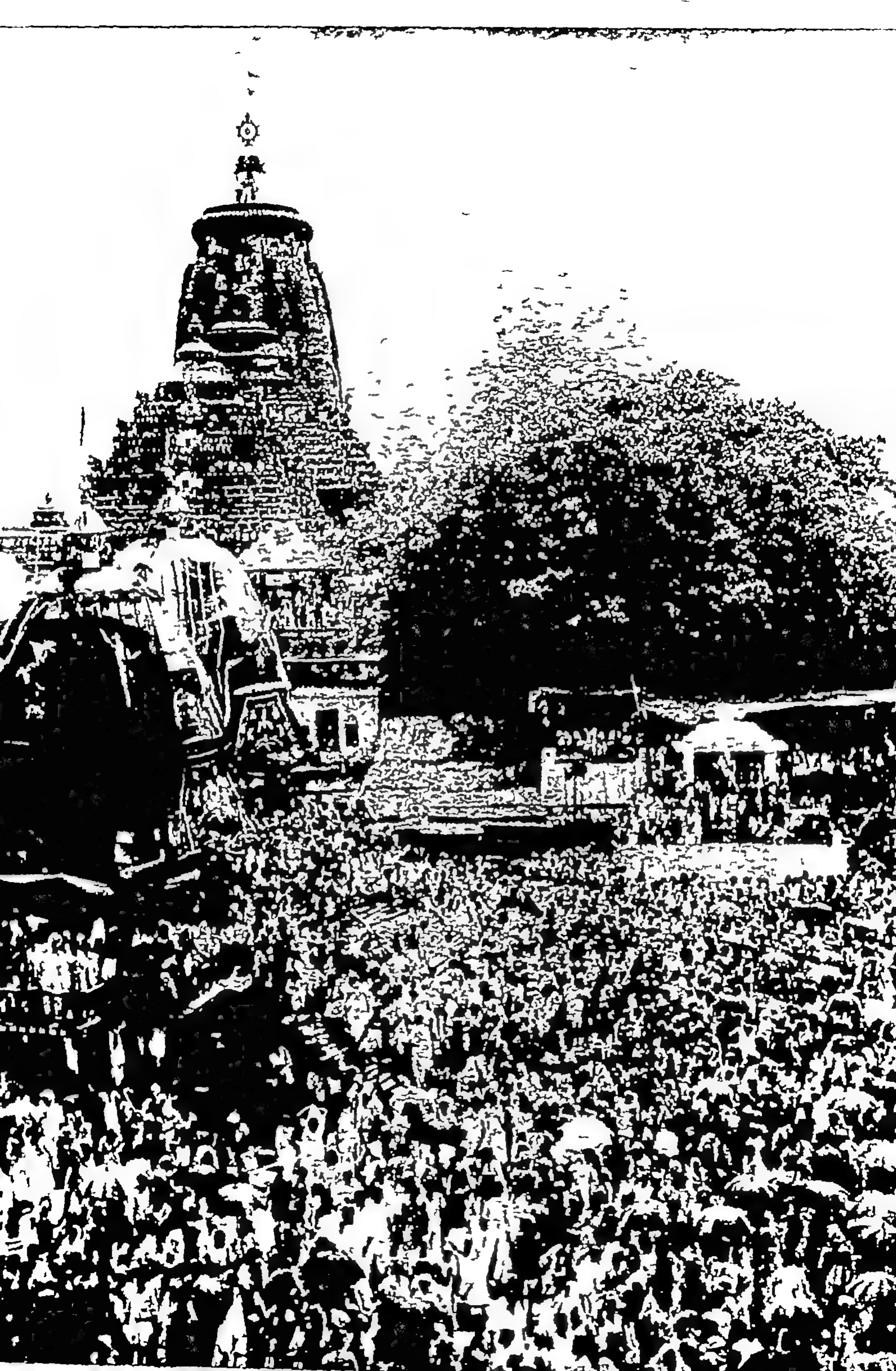
आषाढ शुक्ल द्वितीया के दिन पडनेवाली श्री गुडिचा यात्रा[1] ओडिशा का एक प्रधान पर्व है। उस दिन जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा देवी को तीन रथो में बैठा कर गुडिचा-मदिर की यात्रा की जाती है। पुरी रथयात्रा का प्रचलन यद्यपि गगकाल के बहुत पहले से है किंतु तीन ठाकुरो के विश्राम के लिए गुडिचा-मदिर का निर्माण अनत वर्मा चोलगग देव की पट्टमहिषी गुडिचो डिपाट के द्वारा बाद में हुआ। इसलिए तभी से इस यात्रा का नाम गुडिचा यात्रा पड गया। यह पर्व गगा से गोदावरी तक के विस्तृत भूखड अथवा ओडिशा में सर्वत्र समारोह के साथ सपन्न होता है। आषाढ शुक्ल एकादशी को श्री जगन्नाथ देव की बाहुडा यात्रा[1] होती है। इसी दिन इद्रद्युम्न महोत्सव भी मनाया जाता है। श्रावण पूर्णिमा बलभद्र की उत्थापन-तिथि है। अत इस दिन उनकी पूजा होती है। इस दिन से खेत की जुताई बद हो जाती है और किसान नये वस्त्र धारण करते तथा पीठा बना कर खाते है। वे इस अवसर पर गाय-भैंस आदि गृह-पालित पशुओ की पूजा करते है। पहले इसी पूर्णिमा के समय राजाओं का श्रावणाभिषेक होता था। प्राचीन समय से भाद्र कृष्ण पचमी और भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को सपन्न होनेवाली रक्षा-पचमी और अनत व्रत की पहले जैसी प्रधानता अब नही है।

आश्विन अमावस या महालया अमावस पितृपक्ष की अतिम तिथि है। इस दिन पितृ-सतोष के लिए तर्पण और श्राद्ध आदि करते है। इस मास का श्रेष्ठ पर्व महाष्टमी है। सभी देवताओ के उत्थापन के पश्चात् श्री दुर्गा देवी भाद्र शुक्ल अष्टमी को शयन कर आश्विन कृष्णाष्टमी या मूलाष्टमी को निद्रा त्यागती हैं। मूलाष्टमी से आश्विन शुक्लाष्टमी या महाष्टमी तक देवी-पक्ष माना जाता है। अत इन दिनो उत्कल में दुर्गा की पूजा बडी धूमधाम से होती है। महाष्टमी का एक दूसरा नाम वीराष्टमी भी है। इस दिन प्राचीन उत्कल के सैनिक व्यायाम, मल्लयुद्ध, नागा नाट, शरसधान आदि का प्रदर्शन करते थे। दुर्गा प्रधानत सग्रामकारिणी और विजयदायिनी देवी हैं। अत पहले इस अवसर पर उनके मदिर में शस्त्र और वाद्य भाड की पूजा का भी विधान था।[2]

---

१. रथयात्रा के समय जगन्नाथ-मदिर से महाप्रभु जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की तीनों मूर्तियो को रथासीन करके गुडिचा-मंदिर ले जाते हैं। इतनी यात्रा को गुडिचा कहते है। पुन दसवें दिन ये मूर्तियाँ गुंडिचा-मंदिर से जगन्नाथ-मंदिर को वापस आती है। इस यात्रा को बाहुडा यात्रा कहा जाता है।

२ दुर्गागृहे तु शस्त्राणि पूजितानि च पडितै ।
वाद्यभाडानि चान्यानि विविधा आयुधानि च ।





श्री जगन्नाथजी की रथयात्रा

नये वर्ष के अक लगाये जाते थे, इसीलिए इस तिथि का एक दूसरा नाम 'सुनिया' पड गया। उपरोक्त साल या अक का प्रचलन पहले-पहल गगवश के प्रथम सम्राट् चोलगगदेव के समय से हुआ अतएव वहुत समव है कि इस पर्व का प्रारंभ उसी समय से हुआ हो। ओडिशा मे चारो ओर यह तिथि नये वर्ष-दिन के पर्व रूप में अत्यत समारोह के साथ मनाई जाती थी, किंतु अव इसका प्रचलन विलकुल नहीं है। उस युग में आषाढ शुक्ल अष्टमी अथवा परशुरामाष्टमी को परशुराम जयती मनाई जाती थी। इसी समय मकर सक्राति भी एक प्रधान पर्व के रूप में मान्य थी। आज भी यह मयूरभज, केंदुझर, सिंहभूमि, सढेइकला, खरसुआँ, वणेइ, गागपुर आदि आदिवासी-प्रधान अचलो में, एकजातीय पर्व के रूप में, प्रचलित है। इस दिन भुवनेश्वर, पुरी, हटकेश्वर, सिंवेश्वर (निराकारपुर स्टेशन के समीप) आदि स्थानो में मेले लगते हैं।

उस युग में षष्ठी देवी और यम के सतोष के लिए दो स्वतत्र पर्वों की व्यवस्था की गई थी जो आज भी प्रचलित है। भाद्र शुक्ल षष्ठी को स्त्रियाँ अपनी सतानो की आयु, सौभाग्य और धनधान्य की वृद्धि के लिए षष्ठी देवी की पूजा करती हैं। इसी प्रकार कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया भी एक विशेष पर्व है। कहा जाता है कि इस दिन यम ने आयु-वृद्धि के लिए अपनी वहन यमुना के घर भोजन किया था। इसीलिए इसका नाम यमद्वितीया पडा। आज तक वहनें अपने भाइयो को आमत्रित कर इसी तिथि में भोजन कराती चली आ रही हैं।

इन प्रधान पर्वों के अतिरिक्त नागपचमी (श्रावण शुक्ल पचमी) और नागचतुर्थी (कार्त्तिक शुक्ल चतुर्थी) को नाग-पूजा का विधान है। पौष शुक्ल दशमी की तिथि मे सूर्य की पूजा करने से श्रीकृष्ण के पुत्र शाव कुष्ठ रोग से मुक्त हुए थे। अत इस तिथि को सूर्य-पूजन का निर्देश किया गया है।

उपरोक्त युग में नवान्नपर्व का भी प्रचलन हुआ था। यह पर्व आज तक सवलपुर, पाटणा, सोनपुर, कालाहाडि, वामडा, गागपुर आदि ओडिशा के पश्चिमांचल में अत्यत निष्ठापूर्वक पालित होता है। इसकी कोई निर्दिष्ट तिथि नही है। साधारणत यह आश्विन मास की किसी भी शुभ तिथि को मनाया जा सकता है।

## चैतन्यदेवोत्तर पर्व

सन् १५०९ से १५३३ तक, पुरी मे रहकर श्री चैतन्यदेव ने अपने मत का प्रचार किया था। उनके अविरल प्रचार के कारण उत्कल में श्री चैतन्यमत की प्रधानता वढती गई। इस कारण ११वीं शताब्दी से प्रचलित दोलपर्व के साथ गाँव गाँव मे 'ठाकुर मेलण' (देवता का मेला) का सयोग हुआ। अत इस दोलपर्व का गौरव और महत्त्व पहले से अधिक वढ गया। श्री चैतन्य-देव प्रचार-कार्य के निमित्त कार्त्तिक मास में ही श्रीक्षेत्र आये थे। इसलिए यह मास वर्ष के पुण्यतम मास में गिना जाता है और सपूर्ण मास हविपान्न भोजन कर जप, तप, नाम-कीर्तन, पुराण-श्रवण द्वारा व्यतीत करने का विधान है। कार्त्तिक का नाम रासपूर्णिमा भी है। अत्यत प्राचीन काल से समस्त उत्कल में इसी तिथि को सूर्योदय के पूर्व 'वोइत वंदाण' नामक उत्सव मनाया जाता

अमावस को होता है। ओडिशा की यह एक प्रसिद्ध यात्रा है और त्रिवेणी अमावस आज भी एक पुण्य पर्व के रूप में प्रचलित है।

वर्ष के दूसरे लौकिक पर्वों में माणवसा या लक्खी पूजा प्रधान है। कृषि-प्रधान देश में कृषि ही जीवन-धारण का प्रधान अवलबन होती है अत यहाँ रज, अक्षयतृतीया, वलभद्र पूर्णिमा और नवान्न की भाँति लक्खीपूजा भी प्रसिद्ध है। साधारणत मार्गशीर्ष के अन्तिम गुरुवार से आरम्भ होकर यह पर्व लगभग एक महीने तक प्रत्येक गुरुवार को मनाया जाता है। अतिम गुरुवार को लक्खीपूजा का उद्यापन होने पर लोग तरह तरह के पीठो का भोग लगाते हैं। यह इस प्रात का कृषि-उत्सव (Harvest Festival) है। अधिक सभव है कि यह पर्व चैतन्य के आगमन के पूर्व भी प्रचलित रहा हो।

उत्कलीय आदिवासियो का चइत पर्व भी उल्लेखनीय है। नये नये पुष्पो और पल्लवो से शोभित और मलयान्दोलित पार्वत्य-वनाचलो में प्रफुल्ल आदिवासी युवको और युवतियो के सामूहिक नृत्यो, गीतो तथा वाद्यो के द्वारा यह पर्व अनुष्ठित होता है। चैत्र मास में कई दिनो तक विशेष जन-समागम के बीच इस पर्व के कार्यक्रम चलते रहते है।

ओडिशावासी इस्लाम धर्मावलवियो का प्रधान पर्व मुहर्रम है। वे लोग चान्द्रमान मास का व्यवहार करते हैं। अत यह पर्व सौरमान मास के समान नही पडता। इस अवसर पर मुसलमान ताजिये का जुलूस निकालते हैं। जनसमागम, आडवर आदि की दृष्टि से यह पर्व दशहरे से तुलनीय है।

इस प्रकार उपरोक्त पर्वों और उत्सवो के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे ज्ञात-अज्ञात पर्व भी अनेक जातियो और स्थानो में भिन्न-भिन्न प्रकार से मनाये जाते हैं जिनका विवरण इस छोटे से लेख में प्रस्तुत कर सकना असभव है। अत इस लेख मे पर्वो का एक सामान्य विवरण ही उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है।



स्थापित हुए थे। दक्षिण के चारो वैष्णवधर्म-प्रचारको—श्री रामानुजाचार्य, श्री निम्बार्क, श्री विष्णुस्वामी और श्री माधवाचार्य—ने पुरी में अपने-अपने मठ स्थापित किये थे। गग सम्राटो के प्रवल धर्म-निष्ठा और विद्यानुराग के कारण उत्कल मे संस्कृत साहित्य की विशेष उन्नति हुई और आगे चलकर सूर्यवशी राज्यकाल में (सन् १४३५ से १५४० तक) तो यह उन्नति अपनी चरम सीमा को पहुँच गई थी।

गगयुग के प्रसिद्ध कवियो मे अत्यत लोकप्रिय "गीतगोविन्द" महाकाव्य के प्रणेता जयदेव का नाम सर्वाग्रगण्य है। जगन्नाथ महाप्रभु के समक्ष गाये जाने के लिए निर्मित एव ललित कोमल-कात-पदावली से युक्त होने के कारण, इस ग्रथ का नाम गीतगोविन्द पडा। जयदेव के समकालीन पुरीनिवासी कवि गोवर्धनाचार्य-कृत आर्यासप्तशती संस्कृत साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। गोवर्धन के भाई उदयनाचार्य ने मेघेश्वर और शोभनेश्वर नामक दो प्रशस्ति-ग्रथो की रचना के अतिरिक्त गीतगोविन्द पर अपनी सर्वप्रथम टीका भी लिखी। लागुला नरसिंहदेव के सभाकवि विद्याधर कृत एकावदी एक प्रसिद्ध अलकार ग्रथ है। १४वी शती के प्रथम चरण में आविर्भूत विश्वनाथ कविराज के पितामह कविराज नारायणदास ने गीतगोविन्द की "सर्वांगसुन्दरी" टीका लिखी थी। नरसिंहदेव के चौथे साधिविग्रहिक कृष्णानद महापात्र ने लगभग १३८५ ई० में सहृदयानद महाकाव्य लिखा। यह ग्रथ श्रीहर्षकृत नैषध महाकाव्य के जोड का है। स्वर्गीय नारायणदास के अनुज चण्डीदास ने काव्यप्रकाश के ऊपर काव्यप्रकाशदीपिका नाम की टीका लिखी थी। श्री विश्वनाथ के पिता चद्रशेखर ने पुष्पमाला नामक काव्य लिखा था। उसी समय के श्रेष्ठ कवि श्री विश्वनाथ ने राघवविलास महाकाव्य, कुवलयाश्वचरित, प्रशस्तिरत्नावली, चन्द्रकला नाटिका, नरसिंह-विजय नाटक, प्रभावती-परिणय, सुप्रसिद्ध साहित्यदर्पण और काव्य-प्रकाश दर्पण आदि ग्रथ लिख कर समस्त भारत में यशार्जन किया है। श्री विश्वनाथ के पुत्र अनन्तदास ने साहित्यदर्पण की लोचन टीका के अतिरिक्त महानाटक आदि कई ग्रथ लिखे थे। यह ग्रथ इस युग के उत्कलीय कवि श्री मधुसूदन मिश्र के द्वारा सकलित हुआ था।

सूर्यवशीय राजाओ के राजत्वकाल मे उत्कलीय संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्धि पर था। सूर्यवश के प्रवल पराक्रमी प्रसिद्ध सम्राट् गजपति कपिलेश्वरदेव ने "परशुराम व्यायोग" नामक एक ग्रथ लिखा था। उनके पुत्र गजपति पुरुषोत्तमदेव ने "अभिनव वेणीसहार" नाटक और अभिनव गीतगोविन्द नामक एक काव्य की भी रचना की थी। उनके राजकवि कविचन्द्रराय दिवाकर मिश्र ने महाभारत ग्रन्थ के आधार पर भारतामृत नामक एक महाकाव्य लिखा था। वह संस्कृत साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। इन्होने पारिजातहरण नाटक, प्रभावती नाटक, रसमजरी, पार्वतीशतक, हरिचरित चम्पू आदि अनेक उपादेय ग्रन्थो की रचना की थी। उनके प्रतिद्वन्द्वी कवि श्री डिंडिम जीवदेवाचार्य ने भक्तिभागवत महाकाव्य, उत्माहवती नाटक और भक्ति-वैभव नाटक लिखकर विशेष यश प्राप्त किया था। प्रताप रुद्रदेव के दरवारी कवि मार्कण्डेय ने रघुवश महाकाव्य के जोड का दशग्रीव-वध महाकाव्य लिखा। प्राकृतसर्वस्व नामक ग्रन्थ भी इनकी एक अमर कृति है। कवि डिंडिम के पुत्र जयदेव ने पीयूषलहरी और वैष्णवामृत नामक

के समस्त प्रसिद्ध काव्यो और नाटको पर टीकाएँ लिखी थी। इन टीकाकारो में शाण्डिल्य गोत्रीय आनन्द मिश्र के पुत्र श्री पुरुषोत्तम मिश्र सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी नैषध, अनर्घराघव, और हसदूत की टीकाएँ सगृहीत हुई हैं। महामहोपाध्याय श्री नरहरि पडा ने मेघदूत की ब्रह्मप्रकाशिका टीका और मृच्छकटिक की टीका लिखी थी। विभिन्न टीकाओ में कविराज गोपीनाथ रथ कृत नैषध की हर्षहृदय टीका, चन्द्रशेखर-रचित शिशुपालवध महाकाव्य की सन्दर्भ-चिन्तामणि टीका, विद्याविनोद कृत भट्टबोधिनी टीका, रघुनाथकृत भट्टिटीका, अग्निचित्त लोकनाथकृत शकुतला टीका, रामचद्र मिश्र कृत सौंदरानद महाकाव्य की बुधनदिनी टीका, विद्याधरपुरोहित कृत राघव-पाडवीय महाकाव्य की हृदयानन्दरसावह टीका, कविरत्न हरिसेवक सामन्तराय कृत गोविन्द-लीलामृत टीका, दामोदर सामन्तराय कृत भक्तिरसामृत-सिन्दूर टीका और श्रीधर द्विज कृत हितोपदेशटीका ग्रथ उल्लेखनीय हैं।

उत्कल मे रचित व्याकरण ग्रन्थो में कई ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें चागुदास कृत चागुकारिका, पाटणा के महाराजा वैंजलदेवकृत प्रबोधचन्द्रिका, मुरगी के नेत्रानन्द साहित्य पचानन-कृत जुमर-दर्पण, कृष्णमिश्र प्रक्रिया, वसुप्रहराज कृत वसुप्रक्रिया, मुरारी मिश्र कृत रत्नसार, पुरी निकटवर्ती गगानारायणपुर-शासन के अधिवासी श्री लक्ष्मीधर उद्गाताकृत नाम-निर्मल ग्रथ विशेष आदरणीय हैं।

काव्य, नाटक, अलकार और व्याकरण की तरह उत्कल के सुधी-समाज में सगीतशास्त्र का भी विशेष आदर था। उस समय के कृष्णदास बडजना महापात्र का सगीतप्रकाश, हलधर मिश्र कृत सगीतकल्पलता, कविरत्न पुरुषोत्तम मिश्रकृत सगीतनारायण, कविरत्न के पुत्र नारायण मिश्र द्वारा रचित सगीतसरणी, रघुनाथ रथकृत नाट्य-मनोरमा और सगीतार्णव-चन्द्रिका आदि अमूल्य ग्रन्थ आविष्कृत हुए है।

### पुराण, धर्मशास्त्र और दर्शन

१२०० ई० के आसपास समस्त उत्तर भारत में मुसलमानो का आधिपत्य हो गया था। किंतु १५६८ ई० तक ओडिशा की प्रचड पदातिक वाहिनी के कारण, दुर्ग और मदिर से परिपूर्ण, गगा से गोदावरी तक विस्तृत, उत्कल की स्वाधीनता अक्षुण्ण रही। उत्कलीय गजपति महाराजाओ की छत्रछाया में पडित-समाज ने हिंदू धर्म की सुरक्षा के लिए अनेक पुराण और धर्मशास्त्र रचे थे। चाटेश्वर शिलालेखो से पता चलता है कि तृतीय अनग भीमदेव के राजत्व-काल मे पुराणो का सस्कार किया गया था। चौदहवी शताब्दी में आविर्भूत भारत-प्रसिद्ध पुरी के गोवर्धन मठाधीश श्रीधर स्वामी ने भागवत महापुराण की भावार्थदीपिका नाम्नी टीका लिखकर वैष्णव धर्म की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्रीमद्भगवत्गीता की टीका भी लिखी थी। किसी परमहस परिव्राजकाचार्य श्रीनारायण सर्वज्ञ नामक सन्यासी द्वारा लिखित रामायण और महाभारत की टीकाएँ भी प्राप्त हुई हैं। कविचन्द्र कमललोचन खड्गराय ने भागवत की भागवत-लीला-चितामणि नाम्नी टीका लिखी थी। विद्याविनोद आचार्य कृत चडी

की थी जिनमें से कुछ के नाम नित्याचार-प्रदीप, वर्षप्रदीप, भक्तिप्रदीप, प्रायश्चित्तप्रदीप, श्राद्ध-प्रदीप, प्रतिष्ठाप्रदीप, शाकरभाष्यप्रदीप, समयप्रदीप, व्यवस्थाप्रदीप, चयनप्रदीप और दानप्रदीप है। इनमें नित्याचार-प्रदीप के चार भागो में से केवल दो ही भाग कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हुए है। नरसिंह जी अपने असाधारण पाण्डित्य और प्रतिभा के कारण गजपति मुकुन्द देव (१५६० ई० से १५६८ तक) और दिल्ली सम्राट् अकवर के द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत हुए थे। गजपति पुरुषोत्तमदेव ने जगन्नाथ महाप्रभु की पूजा के लिए गोपालार्चन-पद्धति का प्रणयन किया था। गजपति प्रतापरुद्रदेव के आश्रय में सुप्रसिद्ध आन्ध्र पडित लोल लक्ष्मीधर भट्ट ने सरस्वती-विलास नामक एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्र का सकलन किया था। यह ग्रथ आज भी आन्ध्र में अत्यत प्रचलित है। उसी समय प्रतापरुद्रदेव की सहायता से काशी क्षेत्र के निवासी पडित रामकृष्ण भट्ट ने प्रतापमार्तण्ड नामक धर्मशास्त्र ग्रन्थ की रचना की थी। प्रसिद्ध गौडीय पडित वासुदेव ने प्रतापरुद्रदेव की सहायता से मकरद आदि कई ग्रन्थो की रचना की थी। उनके राजत्वकाल में पुरुषोत्तम क्षेत्र के निवासी श्री नृसिंहाश्रम ने तत्त्वविवेक और विष्णुभक्ति-चन्द्रोदय आदि ग्रन्थ लिखे थे।

सन् १५६८ ई० में ओडिशा की स्वाधीनता के लुप्त होते ही पुरी जैसे सस्कृत साहित्य के केन्द्रस्थल का प्राधान्य और गौरव कुछ अशो मे नष्ट हो गया था, फिर भी भोई-वश के राजो और महाराजो की सहायता से उत्कल के पडितो ने अनेक धर्मशास्त्रो का सकलन किया था। इनमें गजपति रामचन्द्रदेव (१५६८-१६०६) के राजगुरु वर्धन महापात्र कृत दुर्गोत्सव-चन्द्रिका, विश्वनाथ मिश्र कृत स्मृतिसार-सग्रह, विप्रमिश्र कृत श्राद्धप्रदीप, दिव्यसिंह महापात्र कृत श्राद्धदीप, कालदीप और दिव्यसिंहकारिका आदि महत्त्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त विश्वम्भर मिश्र कृत स्मृतिदीपिका, मुरारी मिश्र द्वारा सकलित प्रायश्चित्त-मनोहर, वासुदेव त्रिपाठी कृत प्रायश्चित्त-विलोचन, लक्ष्मीधरमिश्र कृत शैवकल्पद्रुम, गोपालनन्द कृत नित्याचार-पद्धति और विष्णुशर्मा कृत स्मृतिसरोज-कलिका आदि ग्रथ सन् १५६८ से १७०० के बीच लिखे गये थे।

१८वी शती के प्रथम चरण में गजपति हरेकृष्णदेव के प्रधान पडित श्री गजाधर राजगुरु ने नरसिंह वाजपेयी के पदचिह्नो पर १८ धर्मशास्त्रो की रचना की थी। उनमें केवल कालसार और आचारसार प्रकाशित और शुद्धिसार, दानसार, व्रतसार आदि अप्रकाशित हैं। गजाधर द्वारा रचित ग्रन्थ उत्कल में आज भी प्रमाण-स्वरूप है। लोग कहते है कि गदाधर के समकालीन तथा प्रतिद्वन्द्वी पडित वासुदेव रथ ने भी १८ ग्रन्थो की रचना की थी। उनमें से कुछ ये है—आचारप्रकाश, न्यायप्रकाश, स्मृतिप्रकाश, मीमासाप्रकाश, मण्डलप्रकाश और भुवनेश्वरीप्रकाश। सस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में इन दोनो विद्वानो का योगदान अत्यत महनीय है। १८वीं शती में रचित अन्य स्मृतिग्रन्थो मे महामहोपाध्याय कृष्णमिश्र कृत कालसर्वस्व और वैष्णवसर्वस्व, योगी प्रहराजमहापात्र कृत स्मृतिदर्पण, कविभूषण गोविन्दसामन्त राय कृत स्मृतिसर्वस्व और सागुणि मिश्र कृत नित्याचार-पद्धति, शैव-पद्धति और प्रतिष्ठासार सग्रह आदि उल्लेखनीय है।

# उत्कल का खान-पान और वेशभूषा

## अध्यापक कान्हुचरण मिश्र, एम० ए०

यदि किसी जाति का परिचय प्राप्त करना हो तो उसकी वाह्य तथा आभ्यन्तर अभिरुचि, हाव-भाव, और क्रिया-कलाप का विश्लेषण करना आवश्यक है।

जातीय प्रगति के साथ ही साथ आचार-व्यवहार में भी परिवर्तन होना निश्चित है। यह देश-काल-पात्र-निर्विशेप में सर्वत्र परीक्षणीय है। उत्कल का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए उसके आचार-व्यवहार, खान-पान, वेशभूपा, विलास-व्यसन आदि का अनुशीलन तथा विश्लेषण जरूरी है। इसलिए खोज करनेवालो को अपने इच्छानुसार अपना मनोभाव व्यक्त करना ठीक नही है। विपय-वस्तु के सर्वांग सुन्दर परिशीलन तथा अनुशीलन के लिए जातीय परम्परा की उचित दृष्टि, साहित्यिक तथा ऐतिहासिक उपादानो का सकलन और दैनिक रीति के अनुसार उन सबका विचार करना चाहिये। विशेष रूप से उत्कलीय जैसी जाति, जिसके इतिहास में अनेक सास्कृतिक आन्दोलनो की छाप दृढ तथा गभीर रूप से अकित है, जिस जाति के सास्कृतिक विकास के साथ साथ पडोसी तथा वैदेशिक जातियो का राजनीतिक घात-प्रतिघात अगागी रूप से युक्त है, उसके अन्त करण को खोलने के लिए वहुमुखी तथा तथ्यपूर्ण विचार-वीयी की आवश्यकता है।

जीवन-धारण के लिए मानव खाद्य सचय करता है और दीर्घ जीवन पाने के लिए वह उपयुक्त तथा पुष्टिकर खाद्य पाना चाहता है। हमारे देश के पुराण-शास्त्र आदि ग्रन्थो में भी आहार-विहारादि का एक निर्दिष्ट क्रम तथा समय-निरूपण है। गीता के "मिताहार-विहारश्च" उपदेश पर विचार किया जा सकता है। रामायण, महाभारत, भागवत आदि मे इस सवध की जितनी उपादेय उक्तियाँ है, उन सभी के आलोचन की आवश्यकता है। महाभारत में धर्म तक के पूछने पर युधिष्ठिर ने कहा—"दिवस्याष्टमे भागे शाक पाचति यो नर, अनृणी च अप्रवासी च स वारिचर मोदते" अर्थात् जो नर दिवस के अष्टम भाग से साधारण अन्न-शाकादि खाता है वह नर ऋण और प्रवास मे रहित तथा सुखी रहता है। रात्रि-भोजन की अपेक्षा दिवस भाग का भोजन ही उचित है। यह शास्त्र-सिद्ध तथा सम्मत है।

भोजन में काल, समय, मौन, एकाग्रता आदि का पालन करना उचित है। इसे मनुसहिता में इस प्रकार कहा गया है—"वाग्यतो भूजि आचरेत्।" इसलिए मानव-मात्र के लिए भोजन करने के दो ही उपयुक्त समय—सायकाल और प्रात काल है। खाते समय मौन रहना शास्त्रसम्मत है।

ताहाकु सिझान्ते सेहि सिसे अति वेगि
नल विधि रान्धणा ये अटे सूर्य पागी।

उत्कल में अनेक जातियो के लोग रहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त अनेक आदिवासी तथा हरिजन इस भूमि के अधिवासी हैं। आचार-व्यवहार के समान खान-पान में भी भिन्न जातियो मे भिन्न रीतियाँ दिखाई पडती हैं। कही शाकजीवी, कही मासजीवी और कही कही उभय-जीवी दिखाई पडते हैं। अन्न व्यजन ही उत्कल का प्रधान खाद्य है तथा शाकान्न भोजन यहाँ के हर एक घर में व्यवहृत है।

उत्कलवासी सवेरे सामान्य जलपान, भूँजा चूडा, पेठा यहाँ तक कि "पखाल" (पानी भात) भी खाते हैं। मध्याह्न में उनका प्रधान भोजन भात-दाल आदि से सम्पन्न होता है। फिर सध्या का भोजन वही दाल-भात महुर (खट्टी मीठी तरकारी), वेसर (सरसो मिश्रित तरकारी) आदि से सम्पन्न होता है। साधारणतया चावल को ही नाना प्रकार से वनाकर, अथवा चावल का आटा, उडद का आटा या माडवा के आटे से नाना प्रकार के पिठे वनाकर खाते हैं।

उत्कल में वारह महीनो में तेरह पर्व होते हैं। अन्य कही भी इतने उत्सव पर्व-पर्वाणि नही दिखाई पडते। विशेष रूप से जगन्नाथ-मन्दिर में अनुष्ठित द्वादश यात्रा तथा पर्व आदि में भोगादि की जो व्यवस्था है और भिन्न भिन्न ऋतुओ में जगन्नाथ जी को भिन्न भिन्न भोग चढाने की जो पद्धति है उससे उत्कलीय जनसाधारण के सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन में कम प्रभाव नही पडा है। "यथा देहे तथा देवे" यही उत्कलियो का दृष्टिकोण है। इसलिए देव-मन्दिरो में जिस प्रकार भोग एव पिष्टकादिको का परिचय मिलता है उसी प्रकार उत्कल के प्रत्येक घर में भी अनुसृत है।

प्रतिदिन धूप-आरती के समय जगन्नाथ जी को अन्न महाप्रसाद और शताधिक पिष्टको का भोग लगाया जाता है। छेना, उरद, चावल, सूजी, तथा गेहूँ के आटे से जिन विविध प्रकार के पिष्टको का भोग लगाया जाता है। उनमें से निम्नाकित ५६ प्रकार के प्रव.न भोग हैं—काकरा, पिठा, आरिषा, सु, भजामण्डा, ठोलका, चितोउ मण्डा, पाणिमण्डा, पाणि गइँठा, छेना ताडिआ, ताडिआ, विरि ताडिआ, नडिआ वडा, वेसन वडी, चितोउ, मण्डा, एण्डुरि, कान्त, नलमन, गुपचुप, छेना खइ, छेना काटा, विरी वटा, जगन्नाथ वल्लभ, खुरुमा, लुणि खुरुमा, खजा, खुरी, मोहनभोग, लक्ष्मीविलास, गोपालवल्लभ, कदलि वडा, सुझि गजा, माठपुलि, टाकुआ, शरपिठा, विरिवरा जेनामणि, पत्रआरसा, पाग आरसा, चढेइ नेदा, झिरि नाडि, त्रिपुरी, थालिपका, मनोहर, कानिका, वडवडा, सरपुलि पिठा, कान्तिका, थिउडि, वडकोरा, सानपिठा, सानकान्ति पान अमालु, सिरउरडु, चिताउ आदि।

इसके अतिरिक्त उत्कलीय परिवारो में वुढा चकुलि, सरु चकुलि, चकुलि, खुद मण्डा, खुद चकुलि आदि कई प्रकार के पिठे वनाये जाते हैं। इन सव के स्वाद का अनुभव प्रत्येक गृहस्थ करता है।

"माघे दहि पुषे खइ
चइते निम चकुलि खाइ" तथा
अन्ते तिकत दन्ते लुण, पेट पुरिव तिनि कोण।
मयारे वसन पादे तेल, वइद सगरे करिव गेल॥

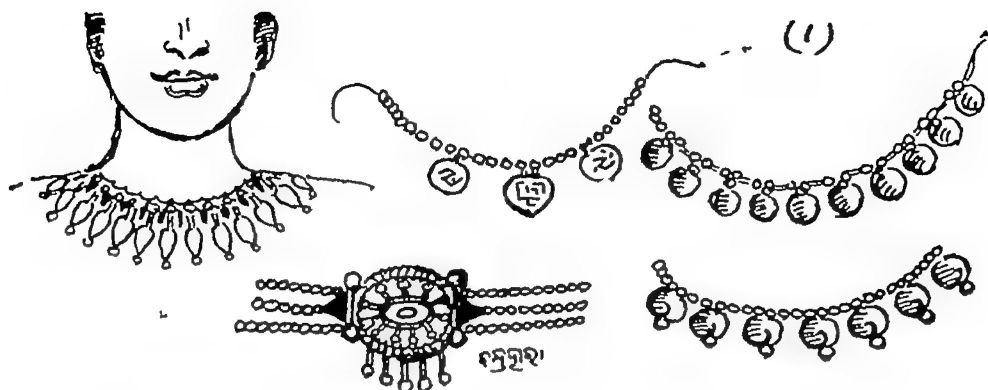
माघ मे दही, पौष में लाइ तथा चैत में नीम अत्यन्त उपकारी है। फिर पेट में हमेशा कुछ तिक्त पदार्थ पहुँचाना, भोजन से पेट का केवल तीन ही भाग भरना तथा ठूँसकर न खाना ही उचित है। प्रवचन के अनुसार दाँतो की मजबूती के लिए उन पर नमक का प्रयोग करना उचित है।

## वेश-भूषा

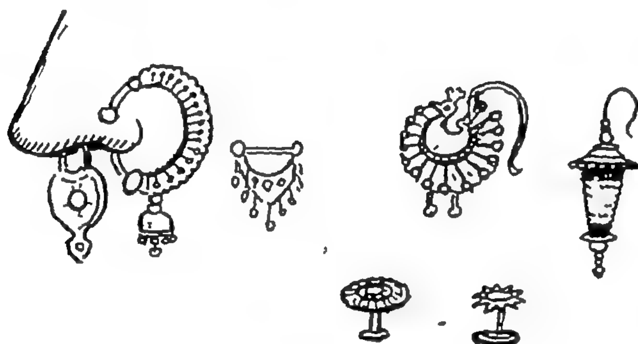
जिस प्रकार उत्कलवासी विविध खाद्य-सामग्री का व्यवहार करते है उसी प्रकार अपने को विभिन्न वेशभूषा में सजाना भी चाहते हैं। आजकल अवश्य ही हमारे शिक्षित समाज में वेश-भूषा, पोशाक-परिच्छद, चालचलन, आचार-व्यवहार में घोर परिवर्तन देखा जाता है, किन्तु प्राचीन काल में उत्कलीय जैसे सब विषयो में स्वतत्र थे वैसे ही वेशभूषा में भी अपनी स्वकीय विशेषता की रक्षा करते थे। इस कला और कल्पना-प्रिय जाति ने कभी कई प्रकार की वेशभूषा तथा अलकार की रचना की थी। आज से पाँच सौ वर्ष पहले आदिकवि सारला दास ने अपने महाभारत में पुरुषो तथा नारियो की वेषभूषा और अलकार का परिचय दिया है। यदि उन सवको एकत्रित करके लिखा जाय तो एक निवन्ध का रूप हो जायेगा। पहले हमारे देश में वयन-शिल्प वहुत उन्नत दशा में था। कवि-सम्राट् उपेन्द्र भज के "वैदेहीश-विलास" नामक काव्य में लिखा अत्यत सूक्ष्म वस्त्र वाँस की नली में समा जाता था।

वेतरे पादरे लेखिले राक्षा
वारि हेला वेनि रग कि दीक्षा
विकशित कोकनद मध्यरे
वोढि भ्रमे कि सरस्वती नीर से
वशी नलिरे थिवार ये
वाछिपद्धि दुर्वादल नील चेल
मेलइछि श्री रामर ये॥
पुनश्च—वश नलिरे रखि लखि वसन
नेले सीता पाड आणि
वहिले से गात्र लक्ष्मण इक्ष्यकुं कुलर ये चूडमणि।
वाहारिले से तिनि-वधि वोधन्ति राम जननी।

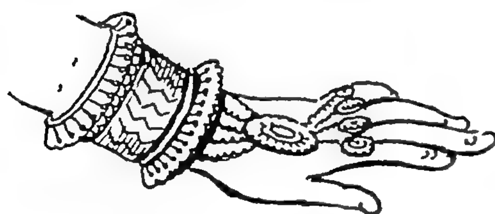
( कुछ अलंकारों के नमूने )

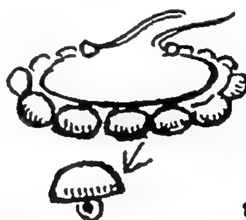



धानुआ या चम्पाकली, चापसरी (कण्ठा) पानपत्री हरड़कालिआ शखहार



दण्डि, नथ दण्डि नाकपुटकी नाकपुटकी मयूरगुणा, नाकचणा









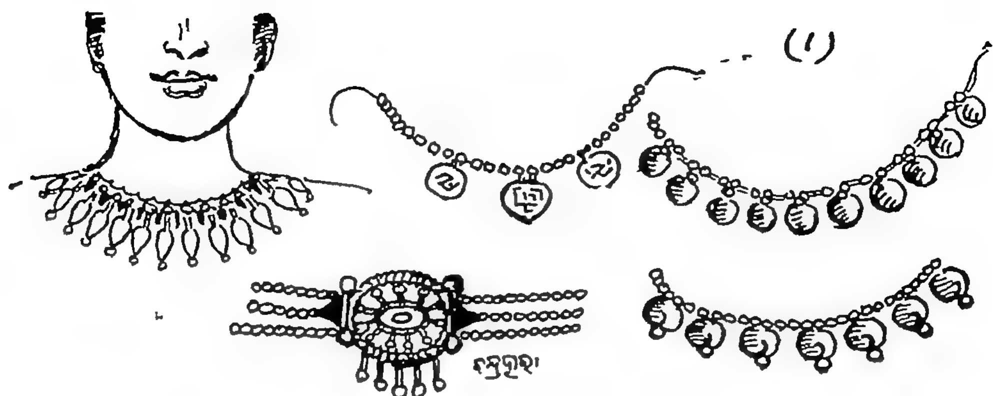




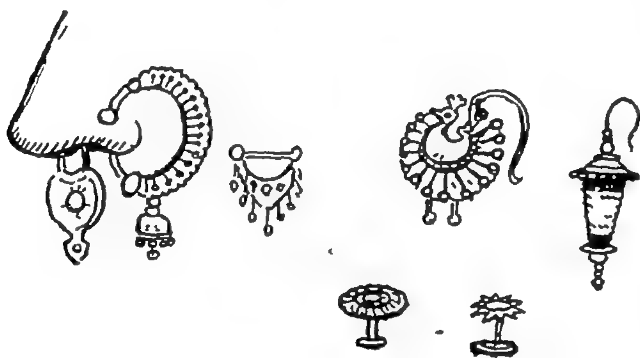
बाही चूड़ी, हस्तपद्म, कङ्कण, बाजुबन्ध अगिन कटफल, बाजुबन्ध तान्त

★ उत्कल का वेशभूषा ★

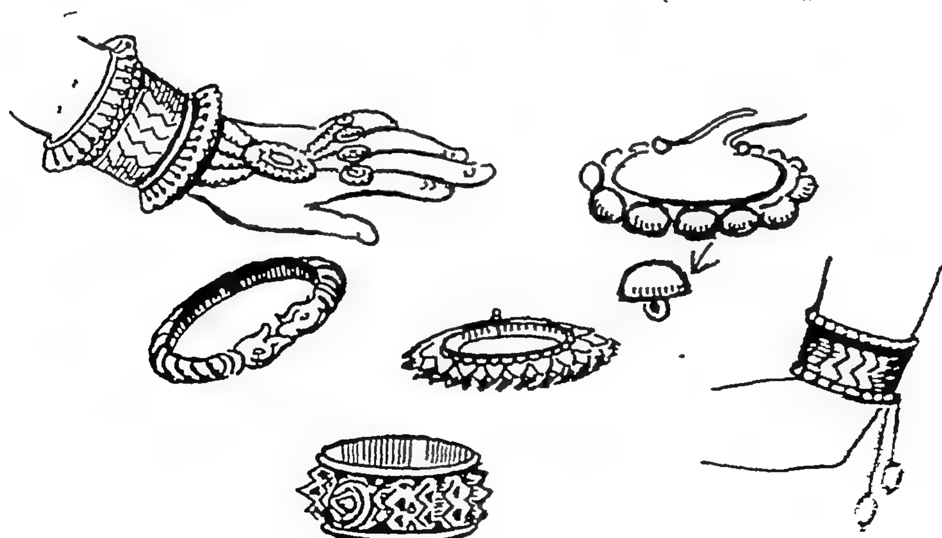
( कुछ अलंकारो के नमूने )




धानुआ या चम्पाकली,    चापम्गी (कण्ठा)  पानपत्री    हरङ्फालिआ    शखहार



दण्डि, नथ    दण्डि    नाकपुटकी    नाकपुटकी    मयूरगुणा,    नाकचणा



वाही चूडी, हस्तपम,    कङ्कण,    बाजुबन्ध

है। उडिआणी (ओडिआ स्त्रियो) के अतिरिक्त अन्य जाति की स्त्रियाँ भी सम्वलपुरी साडी पहनती हैं। यह वहुत सुन्दर तथा मजवूत होती है, इसलिए हर एक जाति में इसका आदर है।

उत्कल की स्त्रियाँ स्वभाव से अलकारप्रिय हैं। वे भिन्न-भिन्न अगों को विभिन्न अलकारो से सुशोभित करती हैं। पहले स्त्रियाँ वहुमूल्य रत्न, मणिजडित अलकार पहनती थी किन्तु आजकल यह राजा-जमीदारो की तथा सम्भ्रान्तवशीय स्त्रियाँ पहनती हैं। पहले ही क्यो, आज भी स्त्रियाँ वहुविध अलकार पहनती हैं। पैरो में, हाथो मे तथा सिर में सोने-चाँदी के नानाविध अलकार देखकर मालूम होता है कि पहले यह जाति अत्यत सुखपूर्वक रहती थी। वहुत दिनो तक अन्तर्जातिक तथा सामुद्रिक वाणिज्य-व्यवसाय के द्वारा यह जाति धनवान् तथा साहसी वन गई थी। जावा, सुमात्रा, वाली आदि द्वीपो को छोड देने पर भी यह जाति अन्तर्देशीय वाणिज्य में आगे थी।

रोम साम्राज्य में ऐसे ही वाणिज्य की उन्नति हुई थी। इसमें अधिकाधिक स्वर्ण रफ्तनी की गई थी। इसी से विख्यात ऐतिहासिक टालेमी ने इसे वन्द करने के लिए कहा था। उनके मत में अगर भारतीय वणिक् इसी तरह का व्यवसाय करते रहेंगे तो रोम अत्यत शीघ्र अन्त सार-शून्य हो जायगा। जो हो, विभिन्न प्रकार के मणि-मुक्ता-खचित अलकार केवल उत्कल मे ही देखने को मिलेंगे।

उत्कलीय स्त्रियो के मस्तकालकारो में रत्नझूम्पि, हिराकाठि, झरामोति, कुसुमझरा, झिलिमिलि, चद्रझुम्पि, झलका, पानपतरी, मथामणि प्रधान हैं।

कर्णालकारो में मरकत मणि से वना हुआ ताटक, वाली, ब्रजमलकढि, चम्पा, गोखरा, चउकी, वाउलि प्रधान हैं।

हस्तालकारो में झुम्पा, ताजि, ताड, खडु ककण, चुडी, अनन्त, वाजु, वाला, वटफल, काइच, हातपद्म तिखा, अतुल, खडु कमछडि, कमनुआ ताड प्रधान हैं।

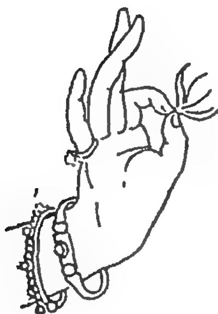
पैरो के अलकारो में वला, पापद्म, पाहुज, पाहुड, नूपुर, वाजेणी, पचम, झमक झुप्टिआ, गण्ठिवला, कमचकि वाकि प्रधान हैं।

कमर में भी चन्द्रहार, अष्टासुता, किंकिणी आदि पहनते हैं। गले में भिन्न-भिन्न प्रकार के हार, चापसारि आदि पहने जाते हैं। उनमे नक्षत्रहार प्रधान है। "विदग्धचिन्तामणि" के रचयिता अभिमन्यु ने अपने काव्य में उत्कलीय नारियो के अलकारो मे से कई अलकारो का परिचय दिया है। "अलकारकेलि" के कवि ने भी कई अलकारो का परिचय दिया है। उदाहरणस्वरूप निम्नाकित पक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं—

वनमालि भुजे वान्धिले पाडिव उछुलि
अग्नि डेउरिआ मालि अपार, ताड तलकु दिशिव सुन्दर।
मालिरे चापनरि सोरिसिआ मालि

वाहुदेशे तायित च ककण ताडकाद्वयम्।
रसोनवाकि ता माला निम्ने कवच भूषयेत्।
× × ×
पाददेशे दधद्रौप्य चापुआणि मनोहरे।
मण्डयेत् पाददेशेन नुपूर पाहुडवला ।

इसी प्रकार अन्य कई शास्त्रो से उत्कलीय वेशभूषा का यथेष्ट परिचय मिल सकता है।



हनन कर किया जा सके, एक बहुत ही नाजुक काम है और इसका समाधान वर्तमान स्थिति के उस विश्लेषण से किया जा सकता है जो विशुद्ध रूप से परिगणन पर आधारित हो। देखा जाता है कि प्राथमिक कदम पर शिक्षा-प्रसार का काम रुकता है, क्योकि ऐसे स्कूलो के लिए हमारे पास योग्य शिक्षको की पर्याप्त सख्या का अभाव है। माध्यमिक स्तर पर जब हम इस स्थिति की जाँच करते है, तो पता चलता है कि स्कूल में भरती होनेवाले प्रत्येक सौ विद्यार्थियो के समूह से केवल पच्चीस ही हाई स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा में उत्तीर्ण होते है। अत योग्यता पर आँच नही आने देते हुए प्राथमिक शिक्षा का प्रसार, माध्यमिक स्तर पर बरबादी की कमी के प्रश्न के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। मैट्रिक पास करनेवाले विद्यार्थियो की सख्या दूनी की जा सकती है, अगर आठवें वर्ग में दाखिल होनेवाले विद्यार्थियो की सख्या दूनी कर दी जाय। परन्तु यह तब तक सम्भव नही जब तक प्राथमिक वर्गों में विद्यार्थियो की सख्या दूनी नही हो जाती। चूंकि प्राथमिक वर्गों में विद्यार्थियो की सख्या बढाई नही जा सकती है, इसलिए हमें मैट्रिक पास विद्यार्थियो की सख्या में वृद्धि करने के लिए अन्य उपायो का आश्रय लेना पडेगा जिससे कि प्राथमिक स्कूलो में काम करने के लिए यथेष्ट सख्या में योग्य शिक्षक प्राप्त हो सकें। यह तभी सम्भव है जब हम माध्यमिक स्तर पर शिक्षण-कार्य को कौशल-पूर्ण बनाये और निरीक्षण की व्यवस्था पर कडी दृष्टि रखें जिसमें पच्चीस प्रतिशत सर्टिफिकेट परीक्षा पास करनेवाले विद्यार्थियो की जगह पर पचास प्रतिशत पास करनेवाले विद्यार्थी हो जायें। बिलकुल यही कार्य हम लोग माध्यमिक स्कूलो में करने का प्रयत्न कर रहे हैं। ठीक यही दशा विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर पर भी लागू होती है, क्योकि प्राथमिक स्कूलो के सबध में जो अवस्था माध्यमिक स्कूलो की है ठीक वही अवस्था स्कूलो के सबध में कॉलिजो की भी।

## प्राथमिक शिक्षा

द्वितीय योजना के प्रारम्भ में हमारे यहाँ चौदह हजार तीन प्राथमिक स्कूल, बाईस हजार सात सौ छिहत्तर शिक्षक और छ लाख नवासी हजार नौ सौ उन्यासी विद्यार्थी पहली से पाँचवीं कक्षाओ में थे। इस योजना की अवधि में हमने पाँच सौ नये स्कूल प्रत्येक वर्ष खोलने और एक हजार शिक्षको को नियुक्त करने का प्रस्ताव रक्खा था। किन्तु प्रसार की यह गति असन्तोषजनक पाई गई है, इसलिए हम लोगो ने १९५८-५९ वर्ष के भीतर २००० शिक्षको को नियुक्त किया है और शेष दो वर्षों की अवधि में और भी अधिक शिक्षको को नियुक्त करने की सभावना है। विधान की पैंतालीसवी धारा में यह बात रक्खी गई थी कि द्वितीय योजना की अवधि के अन्त तक चौदह वर्ष की आयु तक वाले सभी बच्चो को अनिवार्य और नि शुल्क शिक्षा दी जायेगी। परन्तु ऐसा जान पडता है कि इस उद्देश्य तक पहुँचना असभव है, क्योकि हमारे पास इतनी थोडी अवधि के भीतर इस लक्ष्य-सिद्धि के लिए न तो साधन ही है, न व्यक्ति ही। इसलिए प्लानिंग कमीशन ने इसमें सुधार किया है और अब हमारा लक्ष्य तृतीय योजना की अवधि में ६ से ११ वर्ष तक की आयुवाले विद्यार्थियो को नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा दे देना है। जब हम इस स्थानान्तरित

(४) कुछ ऐसे दूरस्थ गाँव है जिनकी जनसख्या कम है और साथ ही जो मानव-सम्पर्क से दूर भी है। ऐसे इलाको में स्कूल खोलना अथवा शिक्षको को भेजना वडा कठिन है।

(५) ओडिशा की जनसख्या का एक वहुत वडा अश आदिवासियो का है। इनको समझाना और यह विश्वास दिलाना कि उनके लिए शिक्षा उपयोगी होगी, वडा दुष्कर कार्य है।

(६) देखा जाता है कि स्त्री-शिक्षिकाओ की नियुक्ति जव प्राथमिक स्कूलो में होती है, तव विद्यार्थियो की सख्या शीघ्र ही वढ जाती है। परन्तु इस राज्य मे स्त्री-शिक्षिकाओ का मिलना कठिन है और अगर वे मिल भी जाती है, तो उन्हें प्राथमिक स्कूलो में शिक्षण करने के लिए भेजना कठिन है। इस कठिनाई को भी सुलझाने के लिए योजनाएं वन रही है।

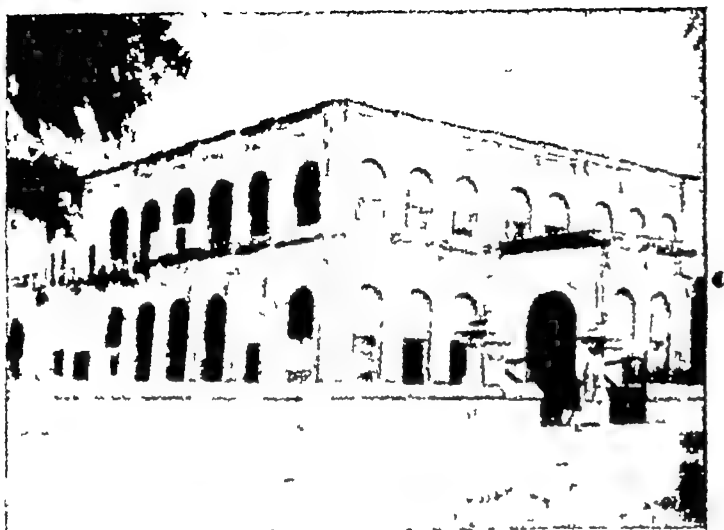
भारत की सरकार ने यह दृढ सकल्प किया है कि ६ से ११ वर्ष की आयुवाले वच्चो को अनिवार्य रूप से शिक्षित किया जाये और इसके लिए नियम भी वन रहा है, किन्तु अनिवार्य शिक्षा के लिए यदि नियम वन भी जाय, तो नियम का लागू होना तव तक असभव हो जायेगा जव तक वच्चो की अधिकाश सख्या स्वत स्कूल में दाखिल न हो। एक उदाहरण लीजिए—यदि किसी इलाके के तीस प्रतिशत ही विद्यार्थी स्कूलो में आ रहे है, तो किसी भी प्रशासन के लिए ७० प्रतिशत शेष विद्यार्थियो को स्कूल में आने के लिए दवाव डालना कठिन हो जायेगा अथवा उन्हें लाने के लिए दण्डीय उपाय भी काम में नही लाये जा सकते। अत यह आवश्यक है कि नियम की आजमाइश होने के पहले समझा-वुझा कर कम से कम पचहत्तर प्रतिशत वच्चो को लाने का पहले-पहल उपाय किया जाय।

## माध्यमिक शिक्षा

नीचे दिये गये कोष्ठक से पता चलेगा कि मिडिल और हाई स्कूलो मे छात्रो की सख्या द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में क्या थी और गत तीन वर्षो में कितनी प्रगति हुई—

| क्रमसख्या | कार्य | १९५५-५६ की स्थिति | १९५६-५७ तक प्राप्त सफलता | १९५७-५८ तक प्राप्त सफलता | १९५८-५९ की सभावित सफलता |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
| १ | हाई स्कूल (हाई स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा के लिए स्वीकृत) | २२८ | २३४ | २५० | २५९ |
| २ | विद्यार्थियो की सख्या | ३६,१४२ | ३९,८०७ | ४५,२९१ | ५३,००० |
| ३ | मिडिल स्कूल | ६७२ | ७०५ | ७५१ | ८०० |
| ४ | छठें और सातवें वर्गो में छात्र-सख्या | ४१,३७६ | ४२,५५० | ४९,०३५ | ५७,००० |

## उत्कल में शिक्षा की प्रगति



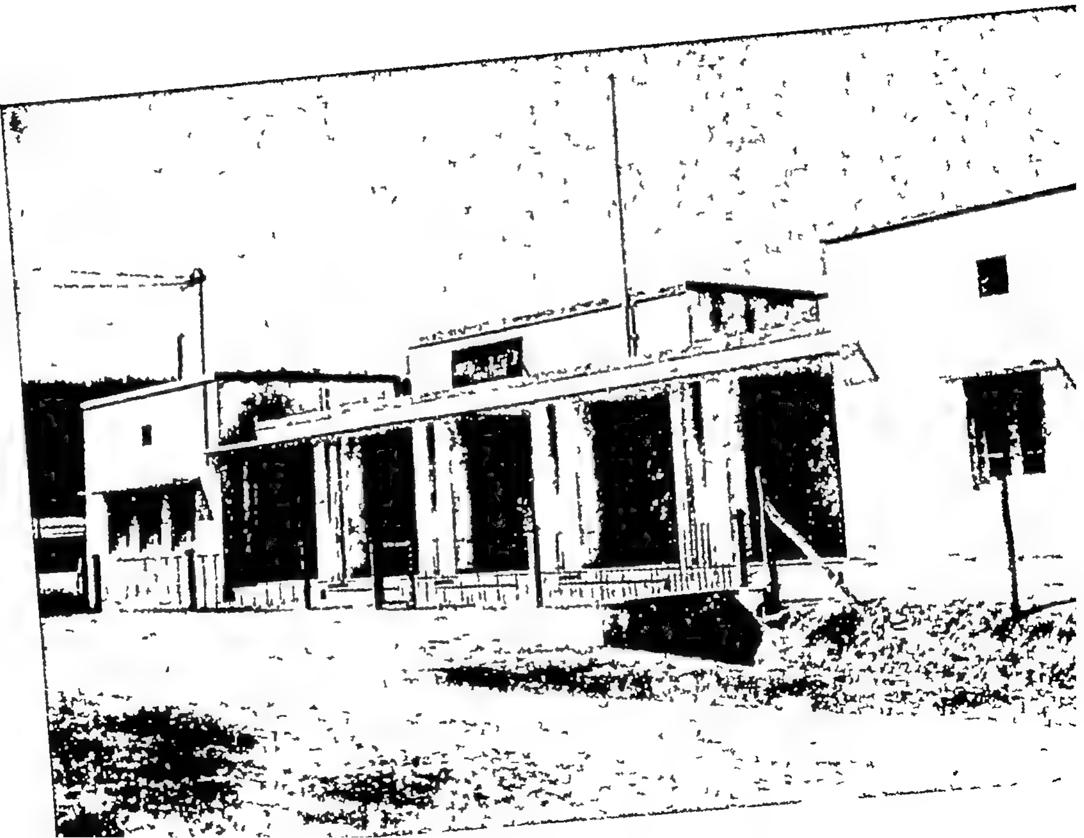




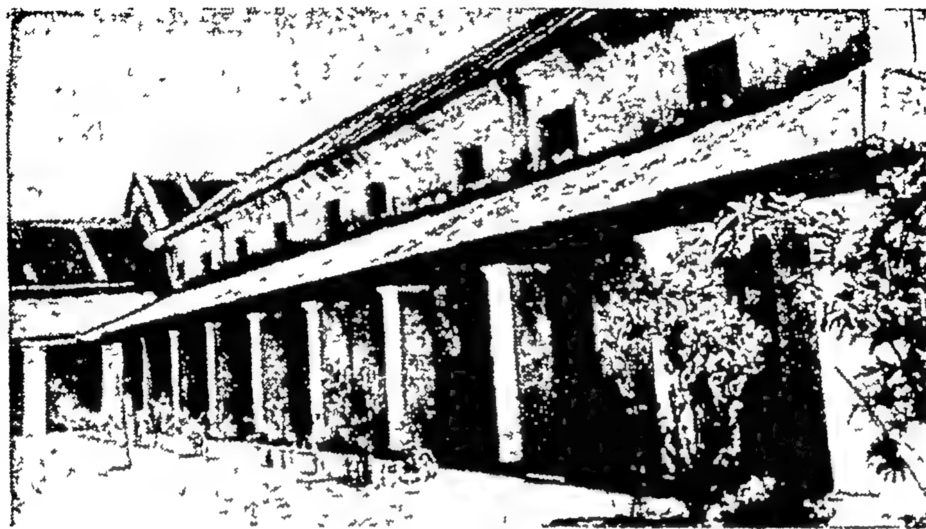
( बगल में ) उत्कल विश्वविद्यालय, कटक

( नीचे बायीं ओर ) रेवेन्सा कालेज के भीतरी हिस्सेकी एक झाँ

( नीचे दायीं ओर ) रेवेन्सा कालेज, कटक

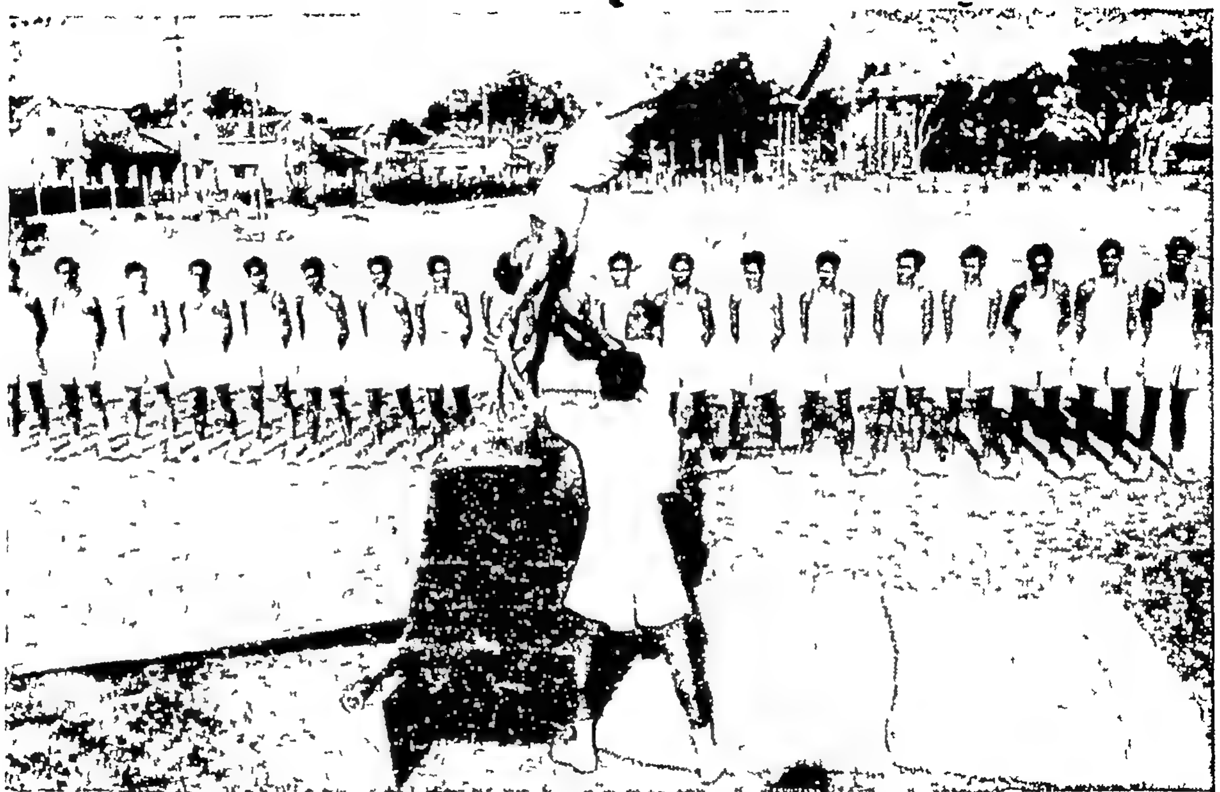


जिनीयरिंग कालेज, बुर्ला का एक दृश्य



महिला कालेज, ब्रह्मपुर





अभ्यास रत छात्र—शारीरिक शिक्षा तालीम कालेज, कटक

आवश्यक है कि पिछडे जिलो में शिक्षा की गति को बढाने के लिए कुछ रास्ते ढूंढे जायें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विशेष योजनाएँ बनाई जा रही है। शिक्षा को उपादेय बनाने के लिए यह नितात आवश्यक है कि माध्यमिक स्तर पर योग्य विद्यार्थी रक्खे जायें। सामान्यत शिक्षा-शास्त्रियो और विशेषत मुदालियर कमीशन ने इस बात पर विशेष जोर दिया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुत से रास्ते हैं, किन्तु सभी उपाय निष्फल होंगे अगर शिक्षक में वाछित योग्यता न हो। यह ठीक ही कहा गया है कि एक हाई स्कूल में, जिसके वर्गो में अनुभाग नही है, कम से कम चार ग्रेजुएट रखने चाहिए। ग्रेजुएटो की सख्या उसी अनुपात से बढेगी, जिस अनुपात से वर्गो के अनुभाग बढते जायेंगे। हमारे राज्य में ग्रेजुएट शिक्षको की सख्या इससे भी बहुत नीची है। इस राज्य के डिग्री परीक्षा पास करनेवाले विद्यार्थियो की सख्या कम है और स्कूलो में शिक्षण का काम करने के लिए तैयार ग्रेजुएटो की सख्या वास्तव में और भी कम है और यही वह अवरोध है जो हमे योग्यता की उन्नति करने अथवा सख्या की वृद्धि करने में बाधा उपस्थित करता है। विश्लेषण से पता चलता है कि सर्वोत्तम फल-प्राप्ति हो सकती है, यदि शिक्षण-कार्य स्वीकार करने वाले थोडे से प्राप्त ग्रेजुएटो को बुद्धिमत्तापूर्वक स्थापित स्कूलो मे नियुक्त किया जाय, ताकि माध्यमिक शिक्षा का लाभ विद्यार्थियो की अधिक से अधिक सख्या प्राप्त कर सके। वर्तमान स्थिति में यदि हमारे पास स्कूलो की सख्या अधिक हो और विद्यार्थियो तथा ग्रेजुएट शिक्षको की क्रमश न्यून एव न्यूनतर हो, तो यही कहा जा सकता है कि थोडे से उपलब्ध ग्रेजुएट शिक्षको का हम अनुचित उपयोग कर रहे हैं।

हाई स्कूलो को उच्चतर हाई स्कूलो की श्रेणी में बदल डालने की मुदालियर कमीशन की सिफारिश केवल भारतीय सरकार द्वारा ही नही, अपितु राज्य-सरकारो द्वारा भी स्वीकृत की गई है। उच्चतर माध्यमिक स्कूल को बहुधन्धीय स्कूल इसलिए होना पडेगा कि वह जाति की सेवा उचित रूप से कर सके। बहुधन्धीय उच्चतर (Multipurpose) माध्यमिक स्कूलो के लिए यह आवश्यक है कि उच्च वर्गों में से प्रत्येक में कम से कम दो-दो अनुभाग हो। यदि चालीस विद्यार्थियो का एक अनुभाग हो और भिन्न-भिन्न श्रेणियो के विद्यार्थियो के लिए यदि इसे दो अथवा तीन अनुभागो मे बाँट दिया जाय, तो हमें चालीस विद्यार्थियो के लिए एक शिक्षक के बदले दो अथवा तीन शिक्षको की आवश्यकता होगी और तब माध्यमिक शिक्षा अधिक व्ययवाली हो जायगी जो किसी भी राज्य के लिए अनुविधाजनक है। इसीलिए इस तरह की योजना बनाने की आवश्यकता है कि उच्च वर्गो में कम से कम दो अनुभागवाले माध्यमिक स्कूल रहें।

माध्यमिक शिक्षा की योग्यता को उन्नत करने के लिए जितनी योजनाएँ बनाई जा रही हैं, उनकी सूची नीचे दी जा रही है—

१—हाई स्कूलो को बहुधन्धीय स्कूलो (Multipurpose) में बदल डालना।

२—हाई स्कूल मे प्रशिक्षित आई० ए० की जगह पर प्रशिक्षित बी० ए० को रखना।

३—हाई स्कूलो मे जहाँ तीन उच्च वर्गो में से प्रत्येक में से विद्यार्थियो की सख्या चालीस से अधिक हो, एक अधिक प्रशिक्षित ग्रेजुएट को नियुक्त करना।

| | | | | (सभावित) |
|---|---|---|---|---|
| प्रथम वर्ष | २,१३३ | २,३६५ | २,७१९ | |
| द्वितीय वर्ष | १,६४५ | १,८१७ | २,०४० | |
| तृतीय वर्ष | ७२१ | ८४३ | ९१८ | |
| चतुर्थ वर्ष | ६१३ | ६५१ | ७७१ | |
| योग | ५,११२ | ५,६७६ | ६,३४८ | |

ऑल इडिया स्टैण्डर्ड के अनुसार हमारे पास वास्तव में ३० हजार ऐसे विद्यार्थियो की सख्या होनी चाहिए थी जिन्होने बी० ए० पास नही किया है और वृद्धि की वर्तमान गति को देख कर ऐसी आशा की जाती है कि अगले कुछ वर्षो मे यह उद्देश्य पूरा हो जायगा। द्वितीय योजना के प्रारम्भ में हमने योजना बनाई थी कि द्वितीय योजना की अवधि की समाप्ति तक आठ सौ आई० एस्-सी० के विद्यार्थी हो जायेंगे। लेकिन इसी वर्ष यह सख्या सात सौ साठ हो गई है और योजना की अवधि के अन्त तक यह बढ कर एक हजार हो जायगी। नीचे दिया हुआ कोष्ठक इस बात की सूचना देगा कि कुछ वर्षों के भीतर आई० ए०, आई० एस्-सी०, बी० ए० और बी० एस्-सी० की परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियो की सख्या में कैसी वृद्धि रही।

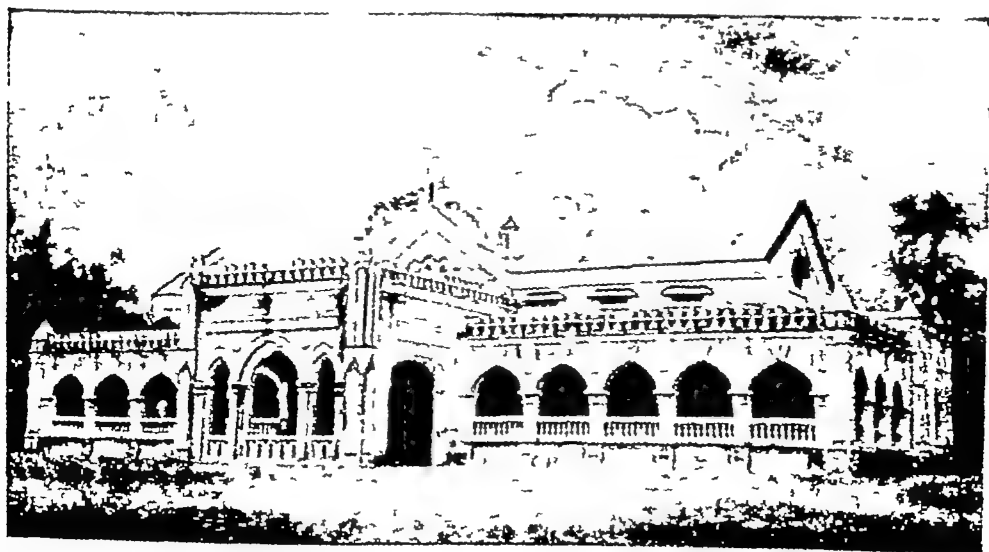
| परीक्षाएँ | १९५३–५४ | १९५४–५५ | १९५५–५६ | १९५६–५७ | १९५७–५८ |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
| आई० ए० | ५३६ | ५३३ | ६१९ | ७११ | ८९० |
| आई० एस्-सी० | ४८८ | ४८१ | ५५३ | ६२९ | ७५६ |
| बी० ए० (पास और आनर्स) | ३८६ | ५२८ | ४२० | ३६७ | ५७५ |
| बी० एस्-सी० (पास और आनर्स) | १५० | १९७ | १२२ | १५५ | १९१ |
| बी० कॉम० | २४ | ३८ | ४३ | ६८ | ७८ |

आशा की जाती है कि आगामी कुछ वर्षो मे प्रगति का यह क्रम और भी तेज होगा।

उत्कल विश्वविद्यालय का प्रारम्भ १९४३ ई० में हुआ, लेकिन अभी पिछले कुछ वर्षो तक यह प्राय स्वतत्र विश्वविद्यालय की स्थिति में काम नही कर रहा था। अब इसने शरीर-रचना-शास्त्र (Anthropology), परिगणन-शास्त्र (Statistics), मनोविज्ञानशास्त्र (Psychology), भूगर्भ शास्त्र (Yeology), दर्शनशास्त्र (Philosophy) और सस्कृत का शिक्षण एम० ए० वर्गो में प्रारम्भ किया है, साथ ही इसका ध्यान एल्-एल० बी० की डिग्री और परिगणनशास्त्र के डिप्लोमा के लिए शिक्षण वर्ग की व्यवस्था की ओर भी रहा है। इसने फ्रेंच और जर्मन विदेशी भाषाओ के शिक्षण की भी व्यवस्था की है। अब यह निश्चित हुआ है कि



रघुनन्दन लाइब्रेरी, एमारमठ, पुरी



म्यूजियम तथा वाचनालय, बारिपदा

आम पक्षपात कर रहे हैं, जिसे लोग भाँप जायेंगे। फलत समता की रक्षा के लिए एक हिन्दू-प्रधान प्रदेश की भी सृष्टि आवश्यक समझी गई।

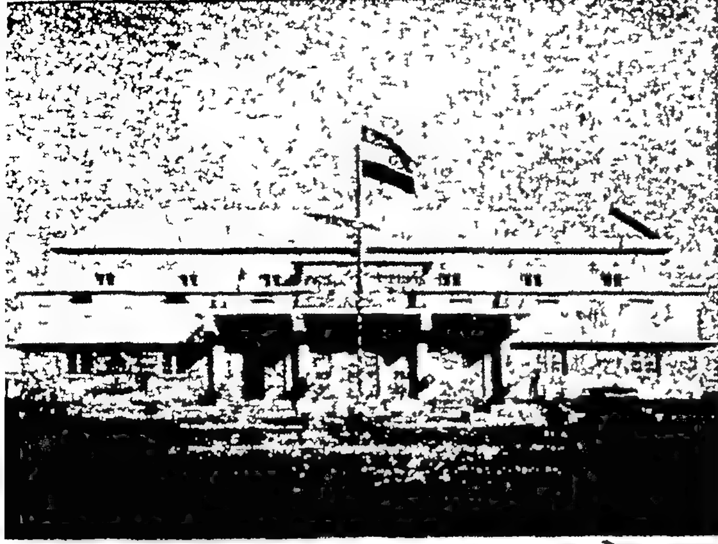
उस समय ओडिशा प्रान्त में मुसलमान केवल दो प्रतिशत थे, इसलिए इसको एक स्वतत्र प्रदेश के रूप में गठित करने का निश्चय हुआ। प्रदेश वन जाने पर वह कैसे टिका रहेगा, इसकी व्यवस्था भी जरूरी थी। अत दक्षिण के मद्रास प्रदेश से गजाम और कोरापुट जिलो के कुछ भाग ओडिशा के साथ मिलाकर इसे स्वतत्र प्रदेश के रूप में गठित किया गया। इसके उत्तर-पश्चिम और दक्षिण में अनेक ओडियाभाषी अचल छूट गये। इसके अतिरिक्त पश्चिमाचल की उन २६ रियासतो का शासन-सवधी सपर्क जो ओडिशा के साथ पूर्वकाल से चला आ रहा था, उसे नई व्यवस्था के अनुसार विच्छिन्न कर दिया गया।

इसी अवस्था में अग्रेजो ने भारत छोडा। स्वाधीनता के वाद सवसे वडा काम जाति-निर्माण का होता है। इस ओर अग्रसर होते समय यह अनुभव किया गया कि पश्चिम की २६ रियासतो को मिलाये विना ओडिशा का कल्याण नही है। अगस्त से दिसवर सन् १९४७ तक के पाँच महीनो मे अनुभव किया गया कि इन देशी राज्यो के द्वारा ओडिशा की उन्नति में सहायता तो कुछ मिलेगी नही वल्कि इनके द्वारा उसकी आइन-शृखला हमेशा दुर्वल वनी रहेगी। यह सभी जानते है कि हीराकुद में जो विराट् जल-भडार वना है उसके द्वारा ओडिशा की आर्थिक उन्नति का शिलान्यास हुआ है। लेकिन सन् १९४७ ई० में जव हीराकुद वन रहा था उस समय सवलपुर अचल के राजाओ ने इसके विरुद्ध आन्दोलन आरभ किया था। इसके अतिरिक्त अन्यान्य कारणो से भी एक जनवरी सन् १९४८ को इन देशी राज्यो को ओडिशा में मिला लिया गया। फलत ओडिशा का क्षेत्रफल लगभग दो गुना और जनसख्या करीव ५० लाख वढ गई।

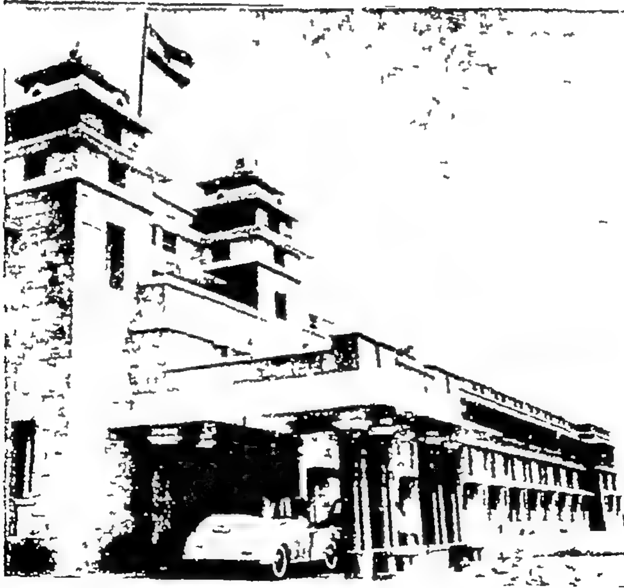
वर्तमान ओडिशा राज्य का क्षेत्रफल ६,०१,३५९ वर्ग मील है और सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार जनसख्या १,४६,४५,९४६ है। प्राकृतिक दृष्टि से यह दो भागो में विभक्त है—पश्चिमी भाग और तराई प्रदेश। ये भाग पर्वतों और घने जगलो से परिपूर्ण है। इसके पूर्वी सीमान्त से समतल भूमि क्रमश ढलुआँ होते हुए समुद्र के साथ मिल गई है। इस राज्य मे लगभग ३०० मील का समुद्री तट है। १३ जिलो में से केवल चार जिले तटवर्ती है। शेष ९ जिले पहाडी भाग है। इसमें अनेक नदियाँ, उपनदियाँ और उनकी शाखाएँ वहती है। इन सवका वहाव पश्चिम से पूर्व को है। ये नदियाँ अपनी वर्तमान अवस्था में नौकासचालन के योग्य नही है। अत इन पर निर्भर रहकर व्यवसाय-वाणिज्य नही किया जा सकता। वर्षा काल मे इनमें वाढ आती है, इससे राज्य की निचली तलेटी की भूमि क्षतिग्रस्त होती है। वर्ष के आठ महीनो तक ये नदियाँ रेत से भरी पटी रहती है। इन सवका प्रभाव उत्कल के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर क्या पडा है, यह जन-सख्या के विश्लेपण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

ओडिशा की कुल जन-सख्या (१,४६,४५,९४६) में से ७२,४२,८९२ पुरुष और ७४,०३,०५४ स्त्रियाँ है अर्थात् उत्कल में जितने पुरुष है उनसे दो लाख अधिक स्त्रियाँ है। यहाँ ९७,७१,२५२ लोग पिछडी जाति के है। उनमें से आदिवासी २९,८७,३३४, हरिजन २६,३०,

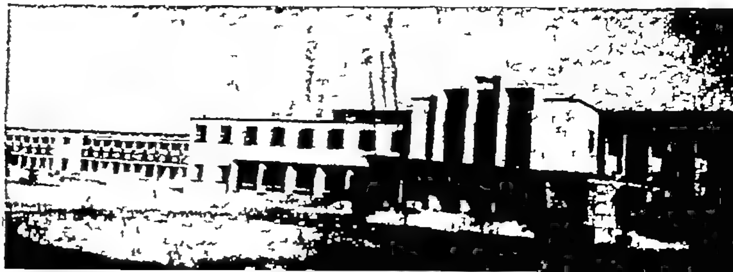
# विकासोन्मुख उत्कल



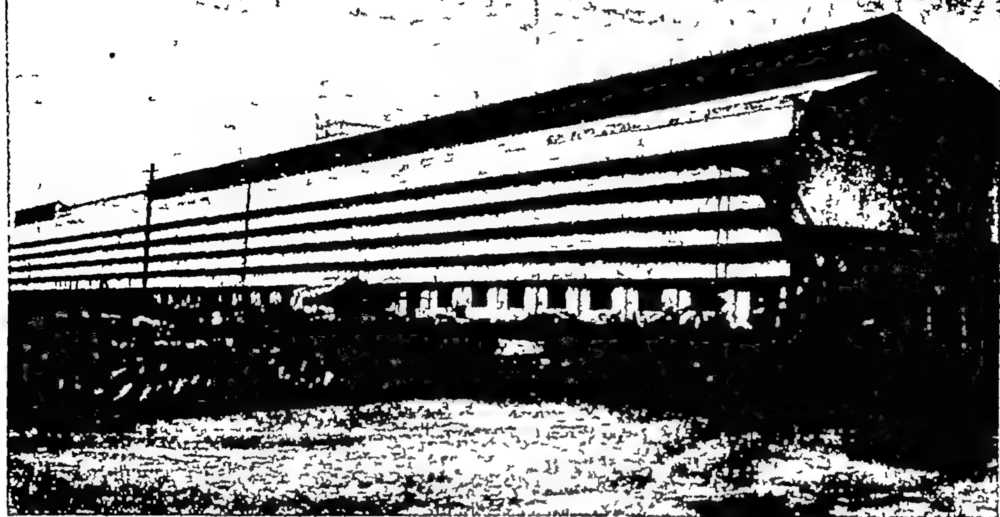
व्यवस्था सभा भवन, भुवनेश्वर



ओड़िशा सचिवाल
भुवनेश्वर



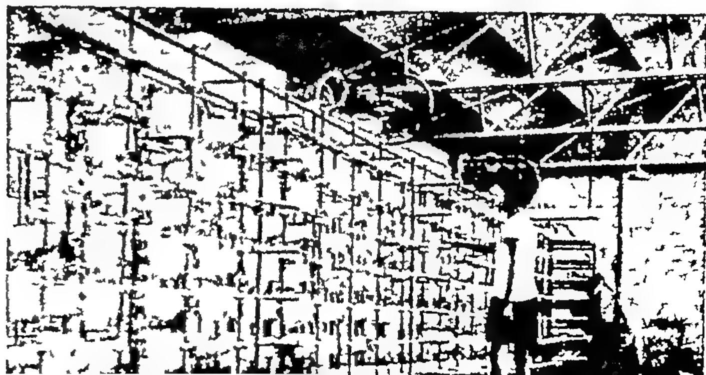
कृषि महाविद्यालय, भुवनेश्वर



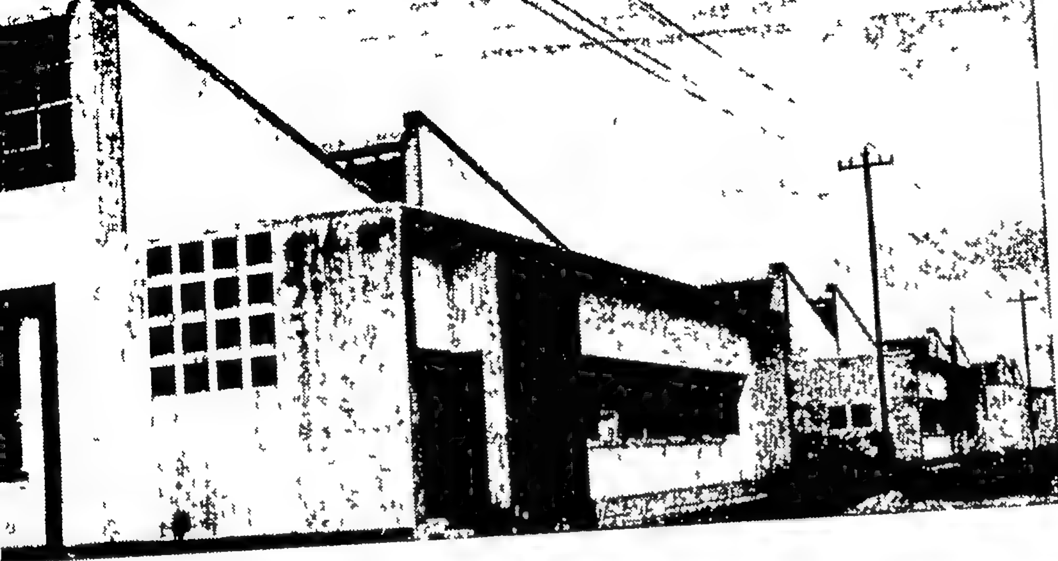
कलिङ्ग टिउब्स—चौद्वार



काठजोड़ी पुल, कटक

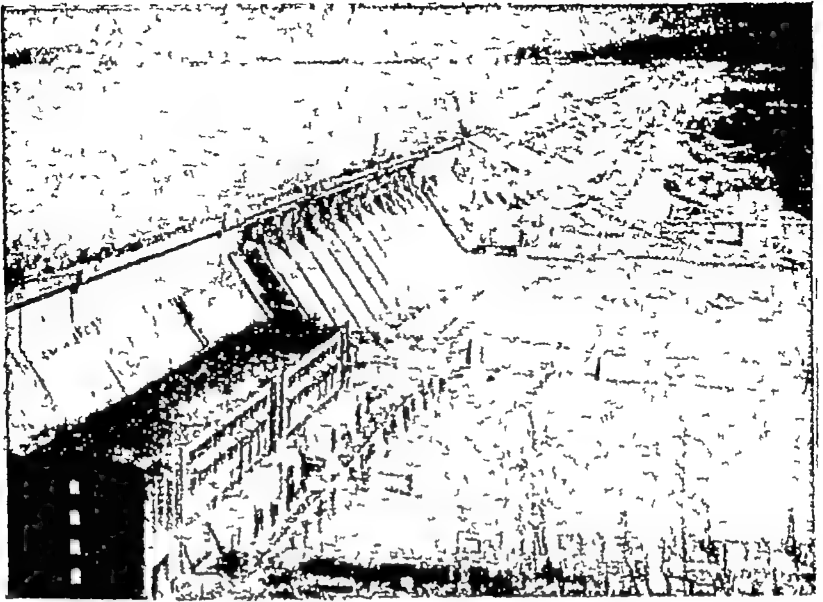


ओड़िशा टेक्सटाइल मिल्स
चौद्वार, कटक



नवनिर्मित कटक-शिल्पाञ्चल

…केन्द्र शस्यागार—बरगढ़, सम्बलपुर



( ऊपर ) हीराकुद बाँध का एक दृश्य ( नीचे ) हीराकुद बाँध निर्माण के समय का एकदृश्य

की इतिश्री समझ लेती थी। लोग मरें या सडे, इससे वह अपना कुछ सरोकार नही रखती थी। स्वास्थ्य और चिकित्सा की व्यवस्था अत्यत सामान्य थी। इस प्रकार सभी दृष्टियो से ओडिशा एक अनुन्नत प्रदेश था।

किसी भी देश की वजट-व्यवस्था से उसकी आर्थिक परिस्थिति स्पष्ट हो जाती है। इस दृष्टि से १९३६ से १९५६ तक के गत २० वर्षों में ओडिशा उन्नति-पथ पर कितना वढा है, उसका साधारण परिचय मिल सकता है। सन् १९३६ ई० में ओडिशा की आय १ करोड ६८ लाख और व्यय १ करोड ७१ लाख रुपयो का था। स्वाधीनता-प्राप्ति के दो वर्षों, अर्थात् १९-४९-५० में आय १० करोड ७२ लाख और व्यय ११ करोड ४ लाख तक पहुँचा। १९५५-५६ में आय १९ करोड ५७ लाख और व्यय २६ करोड ६३ लाख हो गया। कितनी शीघ्र गति से ओडिशा उन्नति-मार्ग पर वढ़ रहा है, उसकी एक सामान्य धारणा इससे हो सकती है।

इस वजट से और भी सूचनाएँ मिलेंगी। यदि सन् १९३६-३८ के आय-व्यय को आधार माना जाय तो प्रतीत होगा कि १९५२-५३ तक राष्ट्र-निर्माण में ओडिशा का प्रतिशत व्यय ३४६९गुना वढा है। इसमें शिक्षा के लिए ५८१गुना, स्वास्थ्य के लिए ५५७ गुना, कृषि के लिए ३४६९ गुना, पशुपालन के लिए १९४७ गुना, जगलो की उन्नति के लिए ८६३ गुना, शिल्पोन्नति के लिए १०९८गुना और समवाय-सगठन में ७५गुना खर्च वढा है।

आजादी के वाद से ओडिशा मे निर्माण-युग आरम होता है जो वर्तमान समय में भी चल रहा है और भविष्य में वर्षों तक चलता रहेगा। पहली जनवरी सन् १९४८ को पश्चिमाचल के देशी राज्यो को ओडिशा में मिला दिया गया। फलत राज्य की भूमि प्राय दुगुनी और जन-सख्या प्राय डेढ़गुनी वढ गई है।

वारह वर्ष पूर्व ओडिशा के एक स्वतत्र प्रदेश होने पर भी इसकी कोई पूर्णांग राजधानी नही थी। पुरानी राजधानी कटक से ज्यों-त्यो काम चला लेना पडता था। भुवनेश्वर में नई राजधानी के निर्माण का प्रस्ताव सरकार के ग्रहण कर लेने पर भी उसे कार्य-रूप में परिणत करने के लिए सवल न था। सन् १९४८ की अप्रैल की तेरहवी तारीख को प्रधान-मत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इसकी नीव डाली थी। सन् १९४९ की जून से सरकारी दफ्तरो का यहाँ आना आरम हुआ। अव यह धीरे-धीरे एक शहर का रूप लेता जा रहा है। नई राजधानी का जो नक्शा वना है उससें २५ हजार लोगो के वसने की व्यवस्था है। भविष्य में यह एक आधुनिक शहर में परिणत हो जायेगा।

ओडिशा के भाग्य में वाढ और सूखा ये दो प्रधान अभिशाप थे। फलत इस राज्य की आर्थिक अवस्था धीरे-धीरे पतित होकर चिंत्य हो गई थी। इसका शीघ्र प्रतिकार आवश्यक था। इसी उद्देश्य को लेकर हीराकुद योजना का सूत्रपात हुआ। इस वाँध के वनने के पूर्व महानदी और उसकी शाखा-प्रशाखाओ के द्वारा प्रतिवर्ष ओडिशा का जो विस्तृत अचल जल-प्लावन द्वारा विध्वस्त होता था, अव उसकी रक्षा हो सकेगी। साथ ही जो पानी किनारा तोडकर विनाश करते हुए अव्यवहार्य भाव से समुद्र में विलीन हो जाता था, वह एक विराट् वाँध के द्वारा सचित

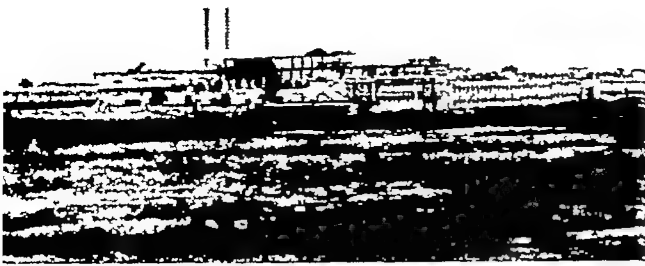
# ओड़िशा का औद्योगिक विकास

डा० एच० बी० महान्ति, एम० एस्-सी०, पी-एच० डी० (कैंटब)

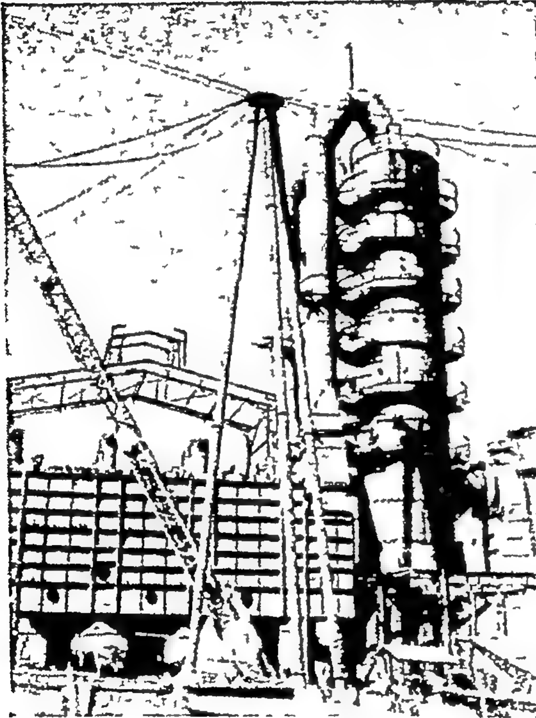
ओडिशा विशुद्ध रूप से एक कृषिप्रधान राज्य है। युद्ध-पूर्व के दिनो में यहाँ ऐसा कोई उद्योग मुश्किल से मिलेगा जो इसके नाम को सार्थक करे। यदि धान कूटने के कारखानो को उद्योग कहा जा सके तो, कृषि-सवधी प्रधान उत्पादन चावल होने के कारण, राज्य का प्रधान उद्योग धान कूटना था। धान कूटने के वहुसख्यक कारखानो के अतिरिक्त कृषि-उद्योग के रूप में एक छोटा-सा चीनी का कारखाना भी स्थापित था। वडे उद्योग के नाम पर केवल सवलपुर जिले के व्रजराज-नगर में एक कागज का कारखाना ही था। यह वाँस के कागजो का उत्पादन करता था जो ओडिशा के विस्तृत वनो से अत्यधिक परिमाण में प्राप्त हो जाते है। इन कृषि और वन-सववी साधनो के साथ-साथ राज्य में असीम खनिज, समुद्री और जल-शक्ति के साधन भी वर्तमान है। इन साधनो के विकास के लिए प्रवल प्रयत्न की आवश्यकता है ताकि ओडिशा भी भारत के औद्योगिक विकास में उचित भाग ले सके।

अधिक मात्रा में सस्ती विद्युत्शक्ति की तैयारी ही किसी भी औद्योगिक विकास की प्रारभिक आवश्यकता है। राज्य के सर्वांगीण विकास के लिए इस तथ्य के महत्त्व का अनुभव करते हुए सरकार ने राज्य की जल-शक्ति के साधन को विकसित करने की समस्या को ठीक ही उठाया है। युद्धोत्तर विकास-योजना के अतर्गत एक लाख किलोवाट की शक्तिवाली माछकुड और २० लाख एकड भूमि की सिंचाई की सुविधाओ के साथ दो लाख किलोवाट से अधिक की शक्ति-वाली हीराकुड परियोजनाएँ पूरी करने के निमित्त हाथ में ली गई। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् प्रथम काग्रेस सरकार ने डा० मेहताव के नेतृत्व मे ये दोनो परियोजनाएँ प्रवल उत्साह से आगे वढाई जो अव समाप्ति के निकट है। ओडिशा में जहाँ तक जितने औद्योगिक विकास की सभावना है, वह इन दोनो परियोजनाओ द्वारा सुलभ की हुई जल-विद्युत्-शक्ति के कारण ही है। ओडिशा में वैतरणी पर भीमकुड, महानदी पर टिकरपाडा, व्राह्मी पर रेंगाली, कोरापुर में सिलरु जैसी दूसरी वृहद् जलविद्युत् परियोजनाएँ और विशाल जल-सपत्ति अभी अनुसधान के अतर्गत है जो इस क्षेत्र में विद्युत्-शक्ति की वढती हुई माग को पूरी करने के लिए सभवत तृतीय पचवर्षीय योजना के अतर्गत हाथ में ली जायेंगी।

हीराकुड वाँध के निर्माण को हाथ में लिये जाने के प्रत्यक्ष परिणाम-स्वरूप राजगगपुर में दैनिक ६०० टन उत्पादन की सामर्थ्यवाले एक वृहत् सीमेंट प्लाट का स्थापन आवश्यक हो गया था। इसके निर्माण के तीन वर्षों में ही सीमेंट की माँग इतनी अधिक वढ गई थी कि कारखाने



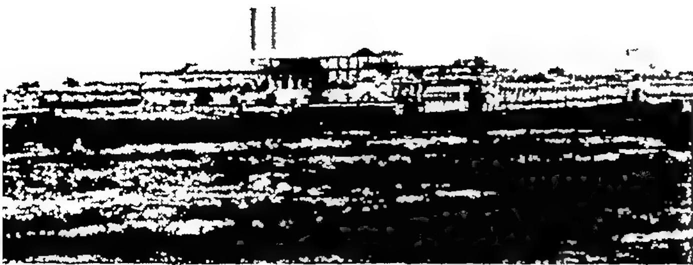
सिमेंट कारखाना, राजगागपुर



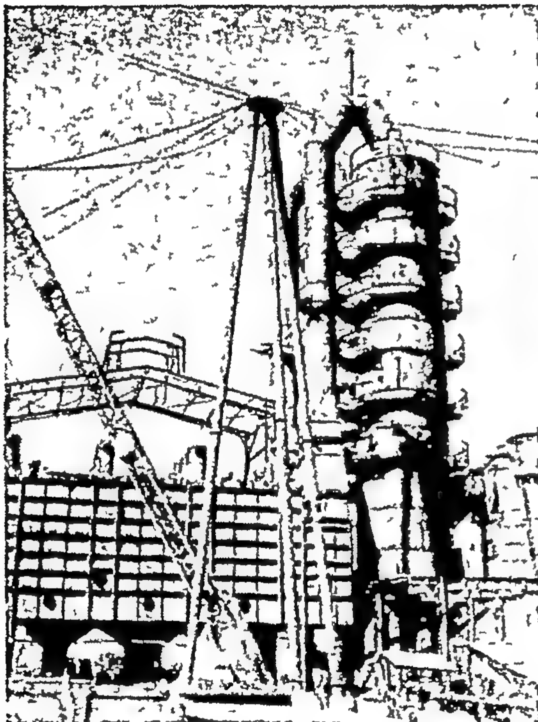
फौलाद कारखाने का एक हिस्सा
राउरकेला

नवप्रतिष्ठित शहर राउरकेला





सिमेंट कारखाना, राजगांगपुर



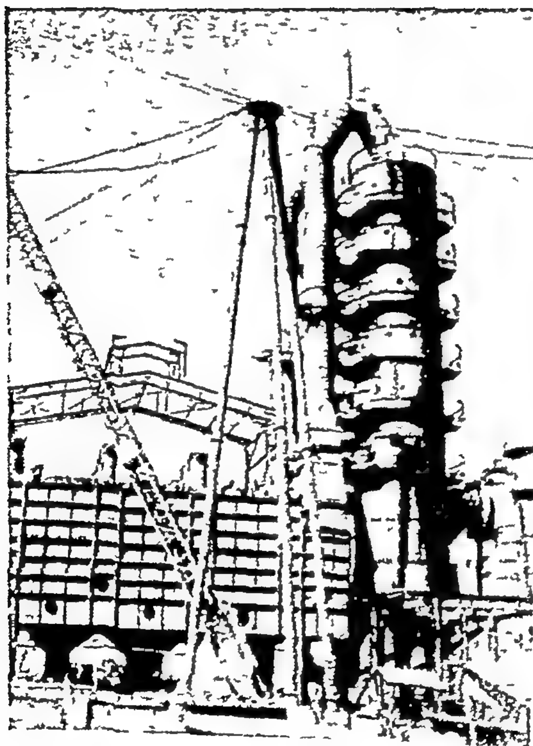
फौलाद कारखाने का एक हिस्सा
राउरकेला



नवप्रतिष्ठित शहर राउरकेला



सिमेंट कारखाना, राजगानपुर



फौलाद कारखाने का एक हि
राउरकेला

प्रारभ हो जायगा। राज्य में २५०७ मील के विस्तृत समुद्रीतट के कारण सामुद्रिक मत्स्योद्योग और नमक उद्योग के स्थापित होने की वहुत वडी सभावना है। साधारण नमक वहुत से भारी रासायनिक उद्योगों—जैसे कास्टिक सोडा, क्लोरीन, सोडियम कार्वोनेट इत्यादि—का आधार है। सस्ती शक्ति की प्राप्ति से नमक पर आधारित रासायनिक उद्योगो को वहुत अधिक सहायता मिलेगी इसलिए राज्य मे शीघ्र ही वडे पैमाने पर नमक के रासायनिक उद्योगो की स्थापना के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार विदित है कि राज्य मे गत १० वर्षों में औद्योगिक विकास में पर्याप्त प्रगति की गई है। राज्य सरकार द्वारा प्रोत्साहन मिलने के कारण और उचित प्रयत्न करने पर ओडिशा में अत्यधिक प्राकृतिक साधनो के आधार पर औद्योगिक विकास की वहुत सभावनाएँ है। यद्यपि अपनी इन सफलताओ पर हम गर्व कर सकते है किन्तु इसमे शिथिलता की गुजाइश नही है और राज्य मे अन्य अनेक उद्योगो के विकास के लिए द्विगुणित प्रयत्न करना चाहिए। उदाहरणार्थ, राज्य मे २० अरव टन से अधिक कच्चे लोहे के साधन की परिकल्पना है। जापान, जेकोस्लोवाकिया और जर्मनी ऐसे देशो की माँग की पूर्ति के लिए निर्यात कच्चे लोहे के अतिरिक्त हमारे पास जो साधन वच रहेगे वे देश में एक दर्जन इस्पात प्लाटो की स्थापना के लिए पर्याप्त होगे। यद्यपि हमें प्रसन्नता है कि ओडिशा में राज्याधिकृत इस्पात प्लाट की स्थापना हो चुकी है और इस वर्ष का अत होने के पूर्व ही उसमें उत्पादन प्रारभ हो जायेगा तथापि उपर्युक्त वातो के आधार पर हम अनुमान लगा सकते है कि इस क्षेत्र में और कितने काम करने शेष है और हमे कितना प्रयत्न करना है ताकि एक या दो और इस्पात प्लाट निकट भविष्य में स्थापित हो सकें। राज्य के जलशक्ति-साधनो की भी यही वात है जो अनेक औद्योगिक विकासो के लिए मुख्य और मूल आवश्यकता है। यद्यपि हमें प्रसन्नता है कि महानदी पर हीराकुड में पहले वाँध की स्थापना हो चुकी है जिसकी शक्ति उत्पादन-क्षमता २ लाख किलोवाट है और महानदी पर दूसरा वाँध तिक्करपाडा में है जिसकी शक्ति उत्पादन-क्षमता १० लाख किलोवाट है तथापि जव व्राह्मणी नदी का पूरा शोषण कर सकेंगे तो उससे १० लाख किलोवाट शक्ति और प्राप्त कर सकेगे। अत इन वहुमूल्य शक्ति-साधनो का शोषण करने के लिए हमे जी-जान से प्रयत्न करना चाहिये ताकि हम केवल ओडिशा के लिए ही नही वल्कि पश्चिमी वगाल और मध्यप्रदेश के पडोसी राज्यो की वढती माँगो की पूर्ति कर सकें और इस प्रकार अपने समूचे राष्ट्र की शीघ्र प्रगति और विकास में पर्याप्त सहायता पहुँचा सके।



भी निर्मित हुईं। बाद मे वैष्णव धर्म के उत्थान के साथ-साथ कृष्ण, वासुदेव, और राधाकृष्ण की मूर्तियाँ निर्मित हुईं। इस प्रकार विभिन्न धर्मों के उत्थान के साथ-साथ विभिन्न धर्मावलवियो की पूजा-उपासना के लिए देव-देवियो की मूर्तियो के गठन की आवश्यकता हुई। इस तरह ओडिशा में हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मो की मूर्तियो और विशेषत हिन्दू मदिरो का निर्माण हुआ। इन सब का विवेचन इस क्षुद्र लेख मे करना असम्भव है, इसलिए ओडिशा की कला और स्थापत्य का सक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

विशेषत आजकल भी गाँवो में लोग हस्तशिल्प के रूप में इन सभी वस्तुओ का प्रयोग करते है, लेकिन इस छोटे से लेख मे इन सब को स्थान नही दिया गया है। फिर भी ताँवा, पीतल, लोहा, आदि धातुओ की कुछ मूर्तियो में पारपरिक रूप में गठन का अभाव होने के कारण वे सब आलोचना के वाहर है। दूसरे सब पत्थर, मूर्तियाँ, या मदिर की चित्रकला, प्रतिमूर्ति, और प्रतिमा इन सवकी ओडिशा की स्थापत्य-कला के हिसाव से आलोचना की गई है। ओडिशा की कला और स्थापत्य साधारणत Sand stone, Laterite, Chlorite, and Granite Grey, पत्थरो में खोदे हुए या तैयार किये गये है।

लेकिन साधारणत मूर्तिकला और मदिर Sand Stone से निर्मित है। कारण यह है कि वारीक काम के लिए कारीगरो को दूसरे पत्थरो की अपेक्षा यह अधिक सुविधाजनक होता है और अधिक काल तक स्थायी भी रहता है।

प्राचीन और नूतन प्रस्तर युग के कुछ अस्त्र-शस्त्रो के अतिरिक्त कटक जिले की नराज, सम्वलपुर जिले की विक्रम खोल और उलफगड और कालाहाडि जिला के गुडहाडि पर्वत की गुफाओ में अनेक रेखाचित्र (Pictographic Paintings) अकित है[1]।

ओडिशा-कला के कई विशेषज्ञ सोचते है कि भुवनेश्वर के पास, धौली पर्वत में, अशोक के अनुशासनो के कुछ ऊपर खोदे हुए एक हाथी की मूर्ति ओडिशा के स्थापत्य का पहला निदर्शन है। (लेकिन खारवेल के हाथीगुफा-अभिलेख[2] से स्पष्ट मालूम होता है कि, अशोक के पहले से एक जैन-मूर्ति वहाँ थी, जिसे नदराज मगध ले गये थे,) किन्तु दूसरे कुछ कहते है कि अशोक के पहले से ओडिशा में नागपूजा होती थी[3]। भुवनेश्वर के पास से दो नाग-मूर्तियो का उद्धार किया गया है। नाग (साँप) की पूंछ पर मूर्ति खडी हुई है और पूंछ पैर तक लवी है। मूर्ति की कमर में एक धोती पहनाई गई है। कमरबध में एक तलवार लटकती है। मूर्तियो के भग्नावशेष से अनुमान किया जाता है कि उनके पाँच फन थे। ये मूर्तियाँ स्वतत्र नागदेवता के रूप में पूजी जाती थी, लेकिन परवर्ती काल में नागपूजा की प्रधानता कम हो गई। वौद्ध, जैन और ब्राह्म धर्मो में इसकी आशिक पूजा दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि आदिम मानव प्रकृति, वृक्ष, लता, पशु,

---

1 Journal of Kalinga Historical Society, Vol II, p 244

2 Old Brahmi Inscriptions

3 Journal of the Asiatic Society Letters Vol XVII, p 102

( ऊपर ) धउली पहाड—भुवनेश्वर

( नीचे ) मुक्तेश्वर मन्दिर गात्र में खोदित एक चित्र



( ऊपर ) शिकार और युद्ध — रानीगुफा, उदयगिरि ( नीचे ) गन्धर्व — रानीगुफा,





श्री गणेश ( लिङ्गराज मन्दिर )



गणेश ( न्यूनियन )



स्तम्भो में भी है। सारनाथ-स्तम्भ में अश्व भी है। हाथी बुद्ध-जन्म का प्रतीक है, जो धउली पहाड और कालसिल में अंकित है। संभव पद्मवद्य को मूल स्तम्भ के साथ संयुक्त करने के लिए पद्मवव और पीठ के निम्न भाग में एक छेद है। इस स्तम्भ के ऊपरी भाग में एक सिंह-मूर्ति थी। यह भास्करेश्वर के आसपास से आविष्कृत होकर अब ओडिशा म्यूजियम में संरक्षित है। सिंहमूर्ति को फोड दिया गया है। संभव है, शैव फोडकर सिंहमूर्ति को गाड दिया गया हो। सिंह की ऊँचाई ३ फुट ७ इंच और परिधि ८ फुट ७ इंच है। ओडिशा में अवस्थित अशोक की कला में साधारणत अशोक की शैली नही है, जैसे—अशोक के समय की सभी मूर्तियाँ और स्तम्भ मसृण है। ये सब चुनार के पासवाले पत्थर से निर्मित है, लेकिन ओडिशा मे पाये जानेवाले हस्तीमूर्ति और स्तम्भ स्थानीय बीलपत्थर से निर्मित है, इस कारण इनमें मसृणता का अभाव परिलक्षित होता है। पंडितो का मत है कि स्थानीय कलाकारो द्वारा यह स्तम्भ और हस्तीमूर्ति बनाई गई है।[1] उस समय ओडिशा में स्थानीय कलाकार और कारीगर थे। इस बात का पता भुवनेश्वर की नई राजधानी के पास खडगिरि और उदयगिरि की गुफाओ से चलता है। ये गुफाएँ प्राय समसामयिक है, या थोडे समय बाद की है। इसलिए इनमे पाई जानेवाली सभी मूर्तियो का विचार एक साथ किया जायेगा।

उदयगिरि की हाथीगुफा नामक वृहत् प्राचीन प्राकृतिक गुफा में खारवेल के प्रसिद्ध शिलालेख विद्यमान है।[2] विशेषज्ञ लोग खडगिरि की गुफा और मूर्तिकला को काठ के अनुकरण के अनुसार पत्थर पर खोदे हुए चिन्ह मानते है।[3]

प्रसिद्ध राणी गुफा में अनेक कारुकार्य विद्यमान है। इनमें से अनेक के नष्ट हो जाने पर भी मृगया और नारी-अपहरण दृश्य अत्यंत मनोहर हैं। इसके अतिरिक्त बंदरो के दृश्य और विशेष रूप से खोदे हुए बौद्ध धर्म की बाड उल्लेख योग्य है। इसके अतिरिक्त बर्छा-धारी द्वारपाल भी इस गुफा और दूसरी गुफाओ में दिखाई पडते है। नारी-हरण दृश्य गणेश गुफा में भी अंकित है। कल्पवृक्ष बाड (railing) के अन्दर रहकर पूजित होने का दृश्य जय-विजय गुफा में अंकित है। व्याघ्र गुफा नामक गुफा की छत बाघ के मुँह के समान दिखाई पडती है। इसमें वास्तव मे बाघ की आँखें, नाक और ऊपर के दाँत खोदे हुए है। दूसरी एक गुफा के ऊपरी भाग मे इसी तरह साँप का फन खोदा गया है, इसलिए इसे सर्पगुफा कहते हैं।

उदयगिरि की गुफाओ के सिवा खडगिरि में भी अनेक गुफाएँ है, जिनमें मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इस गुफा में स्वस्तिक चिह्न, कल्पवृक्ष, बाड (railing), सर्प, और पद्म पर खडी हुई गजलक्ष्मी के ऊपर, दो हाथी पात्र, उन पर पानी उडेलते हुए अंकित है।

---

1 The Asokan pillar at Bhubaneswar, p 4

2 J A S B Letter Vol XIII, p 98
Old Brahmi Inscription, p 1-48

3 E Viollet-le-Duc Lectures on Architecture, Vol I, p 39.

मूर्ति-गठन में किसी भी ठीक प्रणाली का अवलम्बन नहीं किया गया है। कोई मूर्ति एकाधिक बार खोदी गई है और कोई मूर्ति बिलकुल नहीं है। यह शिल्पी की अपारगता है। हेमचन्द्र जी ने तीर्यंकरो के वाहनो के विषय में निम्नांकित वर्णन किया है।

वृषो गजोऽश्व प्लगह् क्रौञ्च स्वस्तिक शशी।
मकर श्रीवत्स खड्गी महिष सूकरस्तथा॥
श्येनो वज्र मृगच्छागो नन्धावर्त्तो घटोऽपि च।
कूर्म्मो नीलोत्पल शखफणी सिंहोऽर्हता ध्वजा॥

इसके अतिरिक्त राणी गुफा की स्त्री-मूर्तियाँ, गधर्वमूर्ति और अन्यान्य गुफाओ के स्तम्भ प्राचीन कला के निदर्शन है। गधर्व का उत्तरीय, पुष्प और पात्र आदि अत्यत चमत्कृत है। पद्म ने प्राचीन भारतीय कला मे किसी न किसी रूप में स्थान पाया है। साँची, भरहुत, बोधगया और ओडिशा के खडगिरि, उदयगिरि मे पद्म का चित्र अकित है। राणी गुफा, गणेश गुफा और अनन्त गुफा में अर्द्ध प्रस्फुटित या पूर्ण प्रस्फुटित रूप मे पद्म अकित है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के उद्भिदो को भी इस कला में स्थान मिला है। जैसे अनेक प्रकार की लताएँ, प्रस्फुटित पुष्प, फल-पूर्ण वृक्ष, इसके अतिरिक्त आम, पणश, कदली आदि फल भी राणी गुफा के चित्रो में है। इसमें अनेक वन्य-जन्तुओ की पणिमूर्ति भी अकित है। हाथी अतिमात्रा में अकित है। वही मूर्ति बैठी, खडी, शुण्ड उठाये, शुण्ड से कमल आदि पकडे आदि चित्र वहाँ अकित है, विशेषत अनत गुफा में लक्ष्मी के ऊपर जो दो हाथी पानी उडेलते है और राणी गुफा में कई हाथी स्त्रियो के साथ लडते है, ये सब देखने लायक है। गणेश गुफा मे हाथी का चित्र द्वारपाल-रूप में है, लेकिन परवर्ती काल में सिंहमूर्तियाँ मदिरो के द्वारो मे रखी गई है। इसके अतिरिक्त गुफाओ में वानर, अश्व, हरिण, वृषभ, कुत्ते, सिंह, हस, मयूर, कच्छप, मछली आदि के चित्र अत्यत सुन्दरता के साथ अकित है।

राणी गुफा वाले स्तम्भ और मूर्तियाँ उल्लेख योग्य है। द्वारपाल की मूर्तियाँ घुटने तक जूता पहने हुए है। कई पडित इन जूतो को देखकर सदेह करते है कि यहाँ ग्रीक या रोमनो के जूतो का अनुकरण किया गया है, लेकिन यह ठीक नही है, क्योकि गुफाओ के स्तम्भ और ग्रीको के स्तम्भो में काफी अन्तर है। ग्रीको के स्तम्भ गोलाकार है, लेकिन ओडिशा की गुफाओ मे जो स्तम्भ है इनमें ४, ८ और १६ कोने है। इनके अतिरिक्त इनमें हेन (Architrave) दिखाई पडता है, लेकिन ग्रीक या रोमन स्तम्भो मे ये सब नही है।

पाश्चात्य पडितो ने कहा है कि भारत में पहले पत्थरो का कारकार्य ग्रीको ने प्रचलित किया था। "No Indian example in stone either of architecture or sculpture earlier than the reign of Asoka (260-232 B C) has yet been discovered and the

1 Old Brahmi Inscription, p 307

लगभग चौथी या पाँचवीं शताब्दी की है, क्योंकि उस वक्त भारत में पहले-पहल ईंटों से मंदिर-निर्माण का काम शुरू हुआ था।

ओडिशा के विभिन्न स्थानों में स्थानीय कला का प्रसार सप्तम शताब्दी से हुआ है, विशेष करके जाजपुर, कटक जिला के ललितगिरि, उदयगिरि, रतनगिरि, भुवनेश्वर, पुरी, कोणार्क और मयूरभंज आदि स्थानों में।

कटक जिले में वैतरणी नदी के पास विरजा क्षेत्र या विरजा या जाजपुर है। महाभारत में उल्लेख है कि वैतरणी नदी में स्नान करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और यात्री चाँद के समान स्वच्छ देखे जाते हैं।

"ततो वैतरणीं गत्वा सर्वपापप्रमोचनीम्।
विरजातीर्थमासाद्य विराजित यथा शशी॥"

अनुमान किया जाता है कि दुर्गा या विरजा के नामानुसार इस स्थान का नाम विरजा-क्षेत्र पड़ा है। इससे यह प्रमाणित है कि यह स्थान महाभारत युग में एक तीर्थक्षेत्र था। सप्तदश शताब्दी के पूर्व विरजा क्षेत्र में कुछ मंदिर थे, ऐसा मालूम नहीं होता है, फिर भी जाजपुर में भौमकर राजत्व-काल में अनेक मंदिर थे, इसका प्रमाण तत्कालीन मंदिरों के भग्नावशेष, हिन्दू, बौद्ध और जैन मूर्तियाँ तथा जाजपुर की बहुत सुन्दर सप्तमातृका मूर्त्तियाँ हैं। अब दो सप्तमातृकाओं का अवशिष्टांश बाकी है। पहली वाराही (८ फीट १० इंच) और इन्द्राणी (८ फीट ८ इंच)। ये मुगुनि पत्थर (Chlorite) से बनी हैं। इन दोनों मूर्तियों के साथ दूसरी पंचमातृका ब्रह्माणी, वैष्णवी, कौमारी, माहेश्वरी और नारसिंही एक मुक्तिमंडप में थीं। मालूम हुआ है कि मुसलमानों ने इस पंचमातृका को तोड़कर बंदूक का निशाना बनाया। उसके अतिरिक्त एक चामुंडा मूर्ति भी मिली है। इसके अलावा वैतरणी नदी के दशाश्वमेध घाट में दूसरी सप्तमातृका से पाँच मातृका वाराही, इन्द्राणी, वैष्णवी, कौमारी और माहेश्वरी के अतिरिक्त चामुंडा मूर्ति भी मिली है। पहली सप्तमातृका की वाराही मूर्ति के सिर के अनेक अंग और तीन हाथ नष्ट हो गये हैं। फिर भी मुखाकृति से मालूम होता है कि वाराही बायें हाथ में पकड़े हुए शिशु को वात्सल्य से देख रही है। गले में हार और दूसरे अलंकार हैं। स्तन और बाहु सब हृष्ट-पुष्ट हैं। इस वाराही का वाहन भैंसा है। इसके चित्र नीचे खुदे हुए हैं। दूसरी सप्त-मातृकाएँ कुछ उन्नत स्तर की हैं। मूर्तियों की बाईं जाँघ पर बैठे हुए शिशु वास्तव में मानव की प्रतिकृति हैं। मातृ-मूर्तियाँ दाहिने हाथ से अभय प्रदान करती हैं।

दशाश्वमेध की मातृकाओं के चार हाथ हैं। बाईं जाँघों पर एक बड़े पेटवाला छोटा बच्चा बैठा है। मातृकाएँ बायें हाथ से बच्चों को पकड़े हैं और नीचेवाले दाहिने हाथों से अभय प्रदान करती हैं। ये मूर्तियाँ ऊपरवाले दो हाथों से उनके देवताओं के अस्त्र-शस्त्र पकड़े हुए हैं और नीचे

---

1 Mahabharat, Book III, Chapter 85

चामुण्डामूर्ति वर्णन के अन्तर्गत है। इस मूर्ति की शिरा-प्रशिरा और धमनी काफी स्पष्ट है। श्मशान में शवारूढा, नीचे श्मशान का दृश्य, मत्र शृगाल शव का माम खाते हैं। भयानक दृश्य, श्मशान का चिह्न। (चित्र देखिए)

जाजपुर की चामुण्डा-मूर्तियो में गज-चर्म नही है जो पुरी की मूर्ति मे स्पष्ट रूप में अंकित है।

चामुण्डा मूर्तियाँ अप्राकृतिक होने पर भी जीवन्त और कारुकार्यमय हैं। धमनी और शिरा-प्रशिरा का अकन-कार्य सूक्ष्म कारुकार्य का निदर्शन है। मनुष्य-मस्तिष्क की यह एक विचित्र उद्भावना है। यह एक प्रमाण है कि मनुष्य का मनोभाव कला में रूपान्तरित हुआ है। रक्तबीज मनुष्य के पाप का परिचायक है। पाप और असत् काम बढता था। मनुष्य चामुण्डा के समान प्रतिमावद्ध हो तो पाप और असत् काम का समूल विनाश करना सम्भव है।

सप्तम शताब्दी में ओडिशा की बौद्ध कला और स्थापत्य के बारे में चीनी परिव्राजक ह्वेनसाग ने कई विवरण दिये हैं। वे कहते हैं कि ओडिशा में अनेक बौद्ध हैं। यहाँ लगभग एक सौ बौद्ध मठ हैं। ये सभी महायान पन्थ के हैं। बुद्ध ने जहाँ पर धर्मप्रचार किया था, उस स्थान मे लगभग दस अशोकस्तूप हैं। राज्य के दक्षिण-पश्चिम में एक पर्वत पर (Pu-sie-Po-ki-li) पुष्पगिरि नामक एक मठ है। यह बहुत सुन्दर पत्थर का स्तूप है। इसके उत्तर-पूर्व मे दूसरा एक स्तूप है। यह दूसरे स्तूप से अधिक आश्चर्यजनक है। ये सभी स्तूप आश्चर्यजनक हैं, क्योंकि इन्हे देवो ने तैयार किया है। समुद्र के पास (Che-li-ta-lo) चरित्र नामक स्थान के पाँच मठो में अत्यत सुन्दर मूर्तियो के साथ अनेक मदिर भी थे।[1] सम्भव है कि ह्वेनसाग के ओडिशा-भ्रमण-काल मे जाजपुर ओडिशा की राजधानी रहा हो। जाजपुर के दक्षिण-पश्चिम में उदयगिरि और ललितगिरि है, जिन पर पुष्पगिरि विहार था। निकटस्थ रत्नगिरि पहाड से और इन पर्वतो मे प्राप्त मूर्तियो से स्पष्ट होता है कि इन गिरियो मे बौद्धो का मठ और विहार थे। १९५७-५८[2] ई० में भारत सरकार के प्रत्नतत्त्व विभाग द्वारा रत्नगिरि की खुदाई से ईंटो से बने हुए (४७ × ४७ फीट के) एक स्तूप का आविष्कार किया गया है।

प्रधान स्तूप के चारो ओर अनेक पत्थर-निर्मित छोटे-छोटे स्तूप उत्खनित पडे हैं। अनेक छोटे स्तूपों मे अवलोकितेश्वर, बुद्ध, तारा और वज्रयान के देव-देवी अंकित हैं।[2] इनके अतिरिक्त प्रधान स्तूप में और दूसरे स्थानो मे जम्भल, तारा, लोकेश्वर, अपराजिता, बुद्ध और दूसरी मूर्तियाँ मिली हैं। इसी स्थान मे एक शिलालेख भी मिला है। उसमें "प्रतीत्य-समुत्पाद-सूत्र" लिखा है। इसके अक्षर गुप्तकालीन अक्षरो के समान हैं। ऐसे लेख नालन्दा, दुर्गानगर आदि स्थानों के स्तूपों में लिखे जाते थे। इसके अतिरिक्त पहले से मिले हुए अनेक मूर्तियो में अभिलेख

---

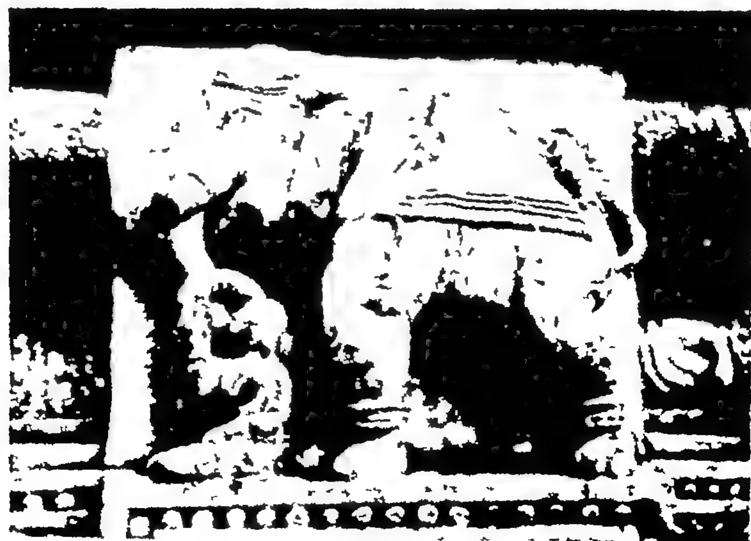
1 Watters Yuan Chwang's Travels in India, Vol. II p 193-194

2 India Archaeology, 1957-58, p 34-40

## कोणार्क के विश्वविमोहनकारी कारुकार्य के विभिन्न दृश्य



ग्यनारायण मर्ति



[illegible]

## कोणार्क के विश्वविमोहनकारी कारुकार्य के विभिन्न दृश्य



अलसकन्या



सूर्यमूर्ति



मजीरा वादनरता



नृत्यरता

## कोणार्क के विश्वविमोहनकारी कारुकार्य के विभिन्न दृश्य



नर्त्तकी



वाद्यरता

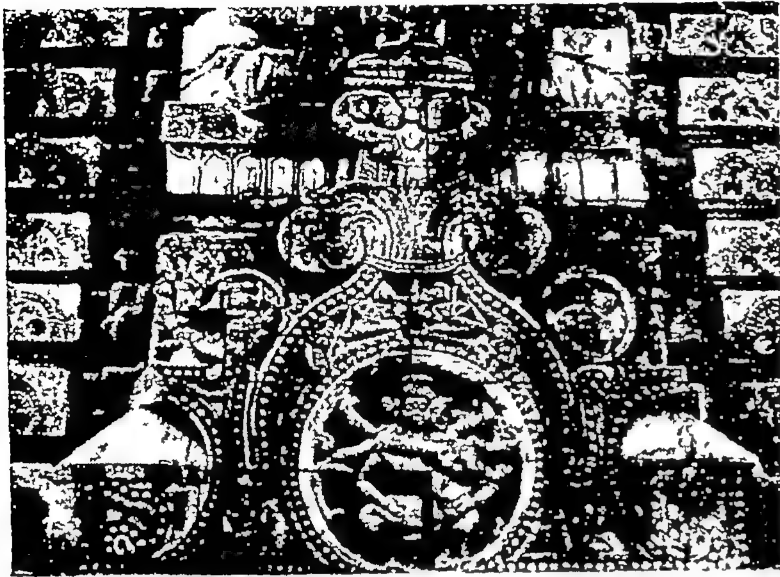


चतुर्मुख शिव

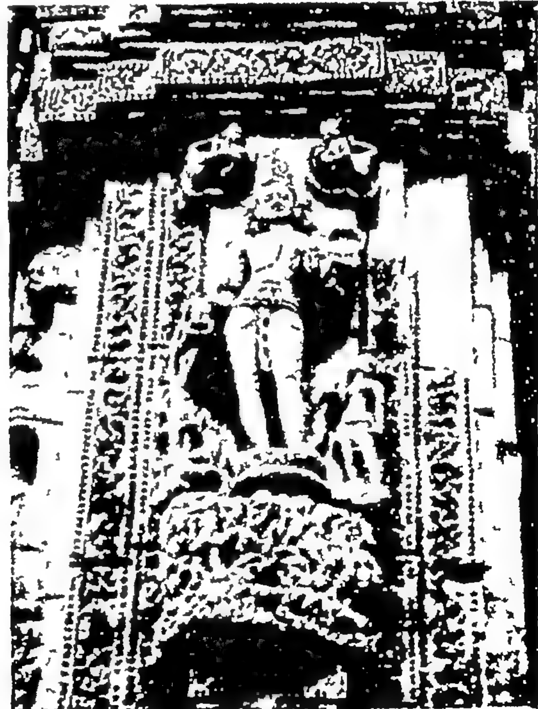


मृदङ्गवादनरता

## भुवनेश्वर के कारुकार्य के कुछ नमूने

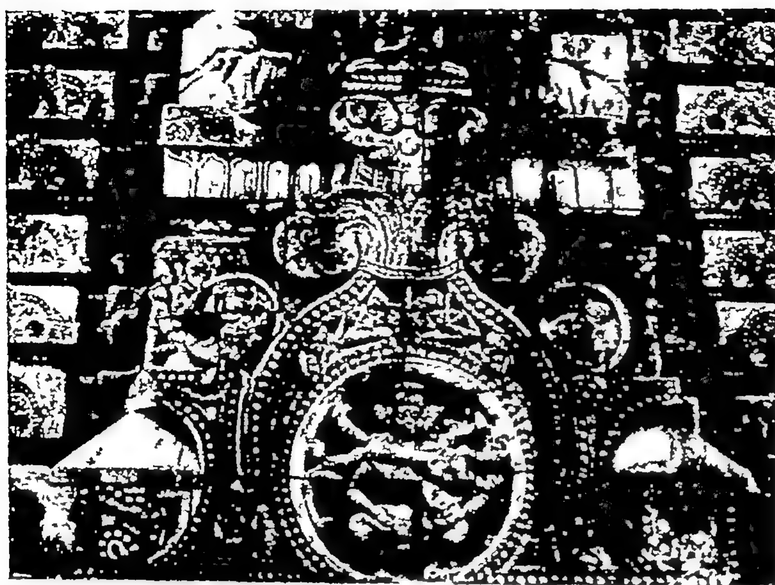


परशुरामेश्वर मन्दिर का एक हिस्सा



वरुणमूर्त्ति ( राजारानी मन्दिर, भुवनेश्वर )

## भुवनेश्वर के कारुकार्य के कुछ नमूने



परशुरामेश्वर मन्दिर का एक हिस्सा



वरुणमूर्ति ( राजारानी मन्दिर, भुवनेश्वर )

है। प्रभेद रहने पर गठन-प्रणाली, भगिमा और कारुकार्य की दृष्टि से यह एक कलाकार-गोष्ठी का काम है, इसमें कुछ सदेह नही है।

इसके वाद दशम शताब्दी में चौद्वार मे अनेक शैवकला और स्थापत्य था। इसका प्रमाण वहाँ प्राप्त आठ शिवमदिरो का अवशिष्टाश है। इसके अतिरिक्त पार्वती, कात्तिकेय आदि की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। ये अधिक उन्नत स्तर की नही हैं। ओडिशा के मदिर इसकी कला और स्थापत्य के निदर्शन हैं। ओडिशा के मदिर भारत की स्थापत्य कला का एक गुरुत्व-पूर्ण अध्याय हैं। मदिरो का कारुकार्य चमत्कारपूर्ण है। भारत के शिल्पशास्त्रो में साधारणत तीन प्रकार के मदिरो का उल्लेख है। यथा—नागर, द्राविड, और वेसर। नागरजातीय मदिर उत्तर भारत में, द्राविड जातीय दक्षिण भारत में, और वेसर दक्षिण-पश्चिम अचल मे देखे जाते हैं। ओडिशा के भुवनेश्वर, पुरी, कोणार्क, वौद, खिचिंग और मुखलिगम का मदिर नागर जातीय हैं फिर भी इनकी गठन-प्रणाली ओडिशा के स्वतत्र शिल्पशास्त्रानुसार है। अत्यन्त प्राचीन मदिर गुप्तकाल के परवर्ती मदिरो के समान शिखरजातीय हैं। इन प्राचीन मदिरो का एकमात्र प्रकोष्ठ शत्रुघ्नेश्वर इसका प्रमाण है। इसके वाद गर्भगृह में जगमोहन जोडे जाने के अनेक मदिर दिखाई पडते हैं। यथा—भुवनेश्वर का परशुरामेश्वर, मुक्तेश्वर, राजाराणी (इन्द्रेश्वर) और वौद्ध का गवराढी मदिर। इसके वाद गर्भगृह, जगमोहन, नाटमडप और भोगमडप, ऐसे ही चार प्रधान अश विशिष्ट मदिर हैं। यथा—भुवनेश्वरस्थ लिगराज और पुरी का जगन्नाथ मदिर। साधारणत ओडिशा में दो प्रकार के मदिर दिखाई देते हैं। यथा—रेखा देउल और पीढ देउल। गर्भगृह रेखा देउल है, जगमोहन और दूसरे सब पीढ देउल हैं। ओडिशा का हरएक मदिर प्रधानतया चार भागो में वाँटा गया है—पिष्ठ, वाड, गडि और मस्तक। इसको फिर अनेक भागो मे वाँटा जाता है। सबके ऊपर कलस और ध्वज रहता है। नीचे स्थूलत ओडिशा के मदिरो में मूर्तिकला, लता, वृक्ष, पशुपक्षी और दूसरे कारुकार्य के वारे में आलोचन किया जायगा। ओडिशा के मदिर और इसकी चित्रकला धर्मभाव को उत्पन्न करते हैं, भगवान् की पूजा और आदर करते हैं। इसलिए उनका वासस्थान मदिर साधारणो के वासस्थानो की अपेक्षा काफी उत्कृष्ट है। तोरण के साथ मुक्तेश्वर, राजाराणी (या इन्द्रेश्वर) और पार्वती मदिर इसके उदाहरण हैं। इन मदिरो का कारुकार्य मनुष्य की इन्द्रिय को आकर्षण करता है और मदिर को देखकर मनुष्य के मनोभाव वदल जाते हैं।[1]

ओडिशा के मदिरो की चित्रकला साधारणत गठनमूलक सादृश्य और आलकारिक है। मूर्ति के साथ छोटे-छोटे स्तम्भ, कोणार्क और लिगराज मदिर के जगमोहन मे जो पीढ हैं, सौन्दर्य-वृद्धि करते हैं। लिगराज मदिर के जगमोहन के पीढ के उत्तरी ओर रामायण और दक्षिणी ओर महाभारत का दृश्य काफी सुदरता के साथ अकित है।[2] ये सभी मदिर की शोभा वृद्धि करने के साथ

---

१ डॉ० मेहताव का ओडिशा इतिहास, २४ सस्करण।

2 Epigraphia Indica Vol XXU I, p 247-48

राजाराणी मदिर के कई दिक्पतियो की मूर्तियाँ काफी चमत्कारपूर्ण है (चित्र देखिए)। मदिरो के वराडे मे अष्ट दिक्पालो के अतिरिक्त अष्ट सखियाँ भी है। साधारणत ये सखियाँ पेड की छाया में त्रिभगी रूप में खडी है। राजाराणी मदिर मे दिखाया जाता है कि वे पेड के साथ जकड उठी है (चित्र देखिए)। लेकिन कोणार्क मदिर में सब सखियाँ बाँसुरी, मृदग, सितार और गिनि वजा रही है।

**नागमूर्ति**—ओडिशा के मदिरो में नाग और नागिन की मूर्तियाँ वहुत है। वहुवा द्वार देश में भी अकित है। राजाराणी (या इन्द्रेश्वर) मदिर के जगमोहन में नाग, और नागिन की दो मूर्तियाँ वहुत चमत्कार रूप में अकित हैं (चित्र देखिए)। नाग और नागिन मूर्तियाँ तीन, पाँच या सात फनो वाली है। नाग और नागिन मूर्तियो की पूंछ सोंछ के समान हैं, लेकिन मुख और शरीर मनुष्य शरीर के समान है। ये सव हाथ जोडकर किसी खम्भे से लिपट रही है। सिर पर फन है। नागपूजा की उत्पत्ति के वारे में पहले आलोचना की गई है।

**गजसिंह**—घुटनो के वल वैठे हुए हाथी पर पीछे की ओर मुख किये शेर वैठा है। ऐसी मूर्ति लगभग हरएक मदिर में दिखाई पडती है (चित्र देखिए)। इसके वाद गजसिंह में यह दिखाई पडता है कि हाथी शुण्ड से मनुष्य को पकडे हुए है। इसके वाद की मूर्ति मे शेर हाथी पर चढा है। सिंह पर कोई पुरुष या स्त्री वैठकर लगाम खीचती है। हाथी देश की वन-सपत्ति के समान है। शेर राज्य की शक्ति है। वह राज्य की सम्पूर्ण शक्ति, देश की धन-सपत्ति का मालिक है। इस वात को कारुकार्य में दिखाया गया है। ये मूर्तियाँ राजाराणी, मुक्तेश्वर, लिंगराज और कोणार्क में काफी सुन्दर रूप मे अकित है।

**कारुकार्य-पूर्ण द्वार**—साधारणत ओडिशा के मदिरो मे सव प्रवेश द्वार कारुकार्य-पूर्ण है। अनेक पशु और मानव मूर्तियो के अतिरिक्त पुष्प, लता, नाग और नाग-कन्याओ की मूर्तियाँ इन द्वारो में शोभा पाती है। समय-समय पर द्वार देश में गजलक्ष्मी या महालक्ष्मी पद्म पर वैठी दिखाई जाती हैं। मुक्तेश्वर मदिर मे गजलक्ष्मी की मूर्ति मदिर के द्वार देश में है (चित्र देखिए)। द्वार देशो के वाईं ओर यमुना और नन्दी तथा दाहिनी ओर गगा और महाकाल की मूर्तियाँ अकित है। गगा और यमुना अपने अपने वाहन मकर और कच्छप पर वैठी है (चित्र देखिए)। चित्र मे दिखाई हुई गगा और यमुना की मूर्तियो को भुवनेश्वर के गगा-यमुना तालाव से उद्धार करके ओडिशा म्यूजियम में रखा गया है। गगा और यमुना की मूर्तियो को द्वार देश में, द्वारपाल रूप में, रखना पहले गुप्तकालीन मदिरो में शुरू हुआ था।

**नवग्रह**—हरएक मदिर के द्वार के ऊपर नवग्रह शिला है। इस शिला में रवि, चन्द्र, मगल, वुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु के चित्र अकित है। ये नवग्रह मनुष्य-जीवन की गति के साथ सपृक्त है, इसलिए नैष्ठिक हिन्दू प्रतिदिन नवग्रह स्तोत्र का पाठ करते है। लोगो का विश्वास है कि इससे वन, जन और जीवन का मगल होता है। मदिर मे नवग्रह रहने का यह कारण माना जाता है कि इससे मदिर का कुछ अनिष्ट नही होगा और मदिर-निर्माता का भी मगल होगा। कोणार्क की नवग्रह मूर्तियाँ सबसे उत्कृष्ट है।



उत्कलीय स्थापत्य तथा भास्कर्य की तुंगिमा कोणार्क का सूर्य मन्दिर

# ओड़िशा के मंदिर

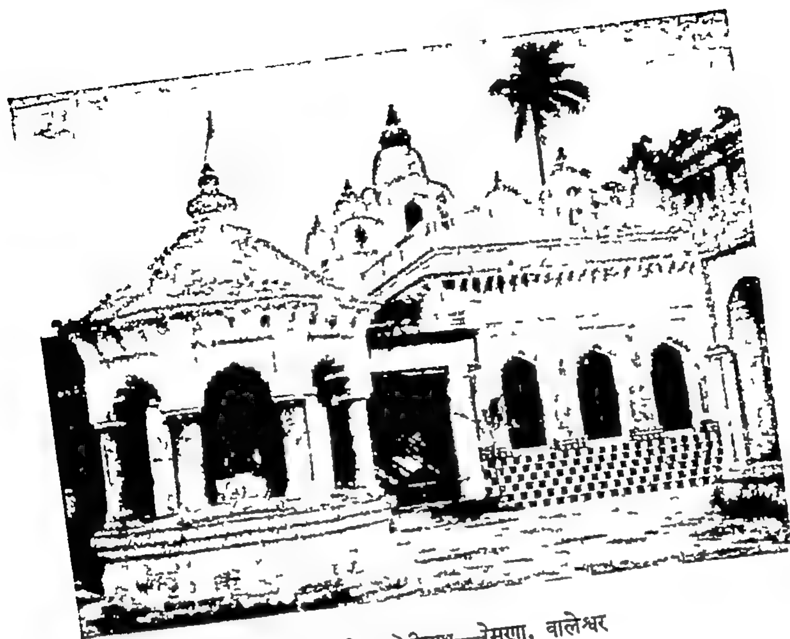
## श्री विपिनविहारी नाथ

आध्यात्मिकवाद, योग और वेदात के आश्रय से महापुरुषो की कल्पना सर्वार्तित और सर्वगत है। वही कल्पना आर्य-सभ्यता में प्राचीन काल से प्रतिष्ठित है। यह भौतिक जगत् उसी अन्तर्यामी परमात्मा का अश स्वरूप है, ऐसी कल्पना है। इसलिए कहा जाता है कि उसके दर्शन को छोडकर भौतिक जगत् में अन्य दर्शन की सभावना नही है। यह भी वर्णित है कि कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनो के अखण्ड पथ के अनुसरण पर ही इस दिव्य दर्शन की उपलब्धि होती है। भक्त्यात्मक कर्म और कर्मात्मक भक्ति का आश्रय करके आर्त्त, जिज्ञासु, अर्यार्थी और ज्ञानियो ने प्रत्येक युग में परमात्मा के साथ का साक्षात् सवन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से, आत्माभिमान छोडकर ध्यान, योग, भजन और वदनादि के द्वारा ब्रह्म-सस्पर्श के अनुभव का पथ सुगम कर दिया है। जीव-जगत् में परमेश्वर के साथ सवध-स्थापन या परमात्मा मे जीवात्मा के विलय के कारण पुनर्जन्म की समाप्ति होती है, इस विषय को केन्द्र वनाकर हिन्दू मनीपियो की चेष्टा मदिर-निर्माण और मूर्ति-गठन में प्रतिफलित हुई है। काल की गति के अनुसार यह मूर्ति-निर्माण और मदिर-गठन की प्रथा निर्दिष्ट अचल में सीमित न होकर उत्तर भारत और दक्षिण भारत के चारो ओर, स्वतत्रता और नूतनत्व के अवलम्वन से, प्रचलित हुई है। वैदिक धर्म परिवहनकारी सकल-पथा-विमुक्त वौद्ध और जैन धर्म को केन्द्र वना कर तादृश स्तूपो और चैत्यो का निर्माण हुआ था।

### मदिर और स्तूप चैत्य मुक्ति का प्रतीक है

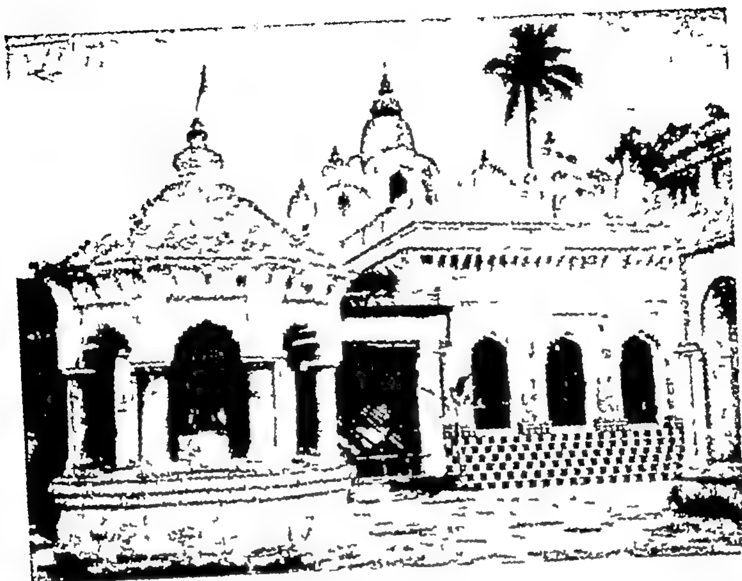
मनुष्य को मुक्ति के निकटवर्ती कराने के लिए और उसको ससार की दुर्गम जटिलता मे वचाने के लिए उपरोक्त धर्मानुष्ठानो की परिकल्पना हुई है। आर्य मनीपियो ने इस प्रकार के मुक्तिपथ का आविष्कार कर सारे समाज को आज तक एक अविच्छिन्न सम्वन्ध मे शृखलित कर रखा है। युग के वाद युग चला आता है, लेकिन आर्य-सभ्यता का मौलिक तत्त्व और परम्परा क्षुण्ण नही हुई है। प्राचीन काल से आज तक देश-प्रेमी और धर्मात्मा राजाओ के कीर्तिकलाप का अनुशीलन करने से मालूम होता है कि उनकी कीर्ति मे शरणापन्न भाव, निष्काम कर्म, विमल ज्ञान, ऐकान्तिक भक्ति एकाधार से सन्निविष्ट थी। इस प्रभाव मे अनुप्राणित हो राजा, राजनन्दिनी तथा राजकर्मचारी आदि कीर्ति-स्थापन में व्रती रहे।

मन्दिरो के गात्र मे प्रकटित विभिन्न विपय-वस्तुओ के सूक्ष्म विश्लेपण से मालूम होता है



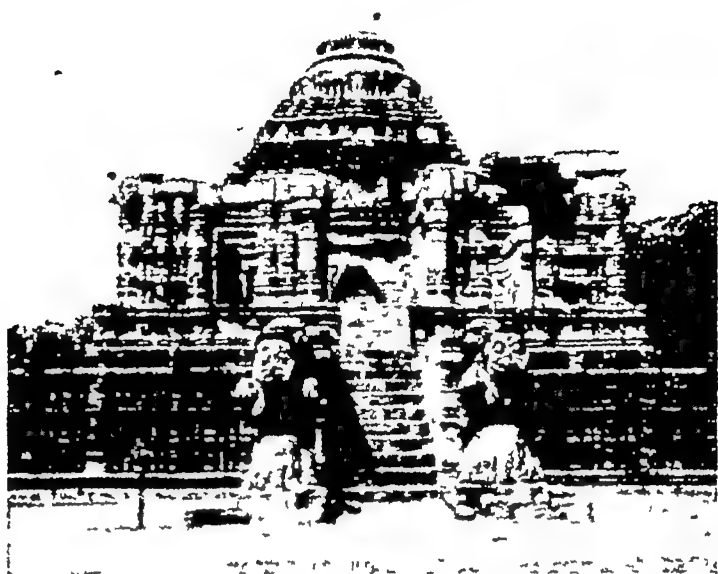
क्षीरचोरा गोपीनाथ—रेमुणा, वालेश्वर

श्री अनन्तवासुदेव मन्दिर, भुवनेश्वर

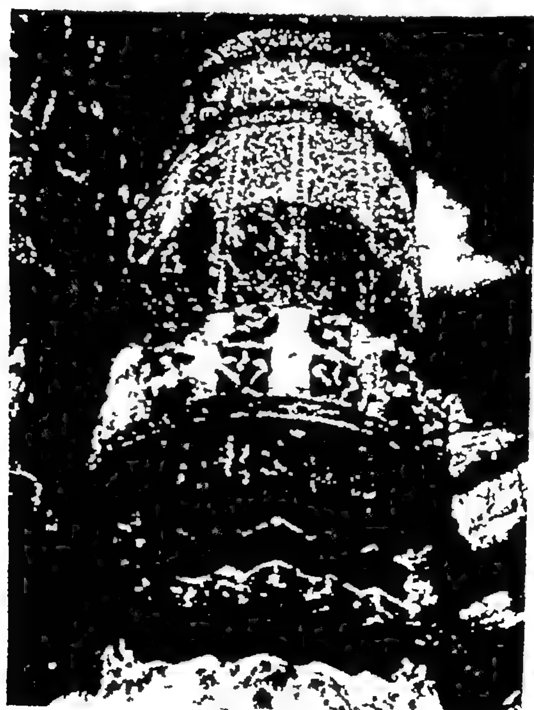


क्षीरचोरा गोपीनाथ—रेमुणा, बालेश्वर

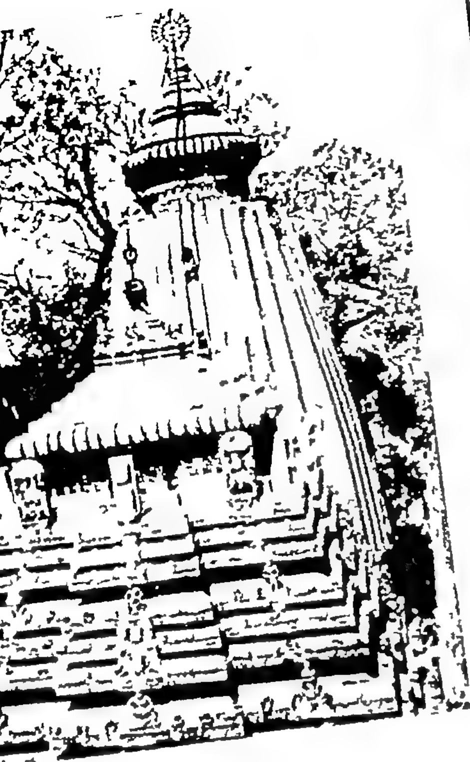
श्री अनन्तवासुदेव मन्दिर, भुवनेश्वर



भास्कर्यमण्डित प्रसिद्ध कोणार्क का सूर्यमन्दिर नाट्य मन्दिर के साथ



सूक्ष्म कारुकार्य

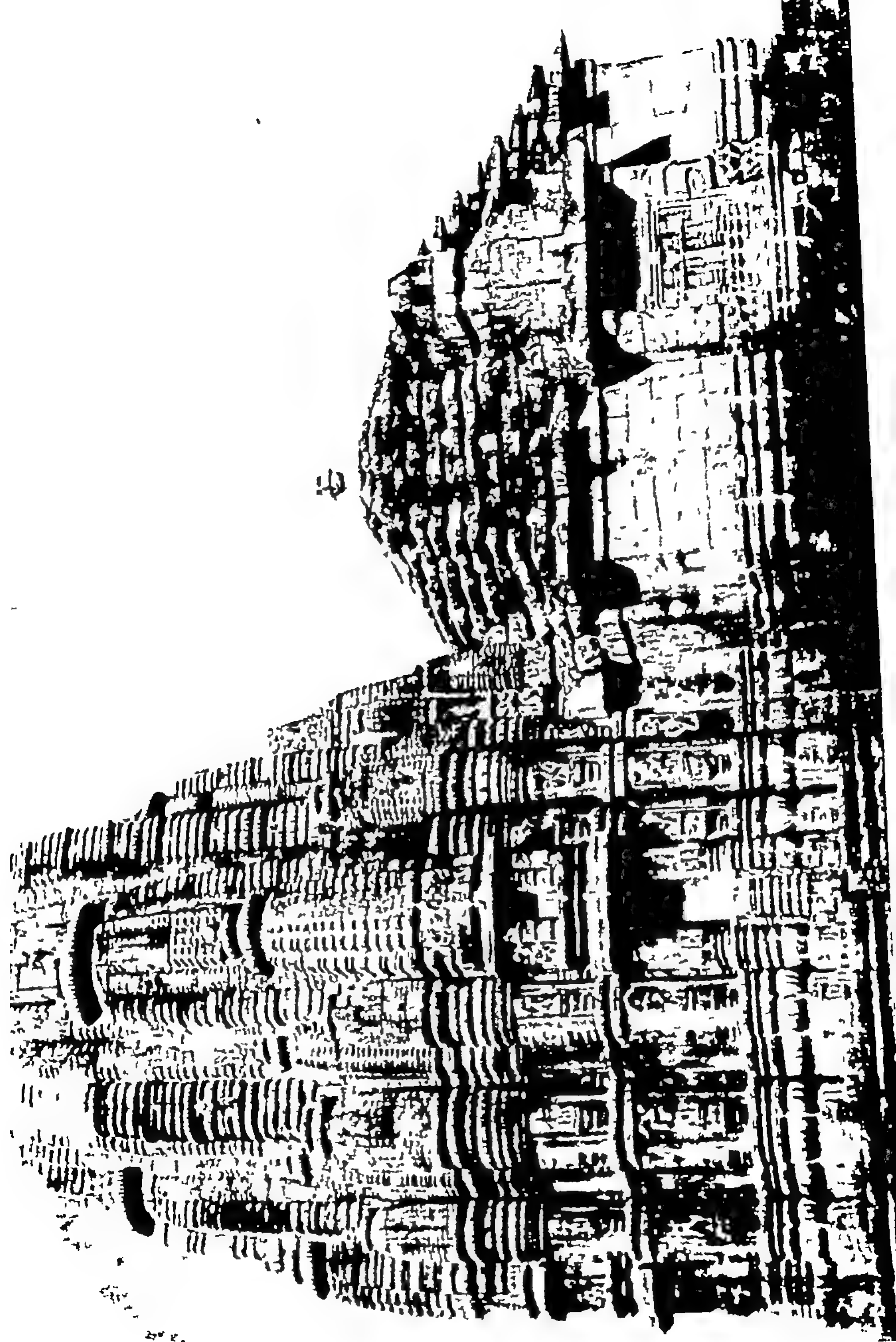


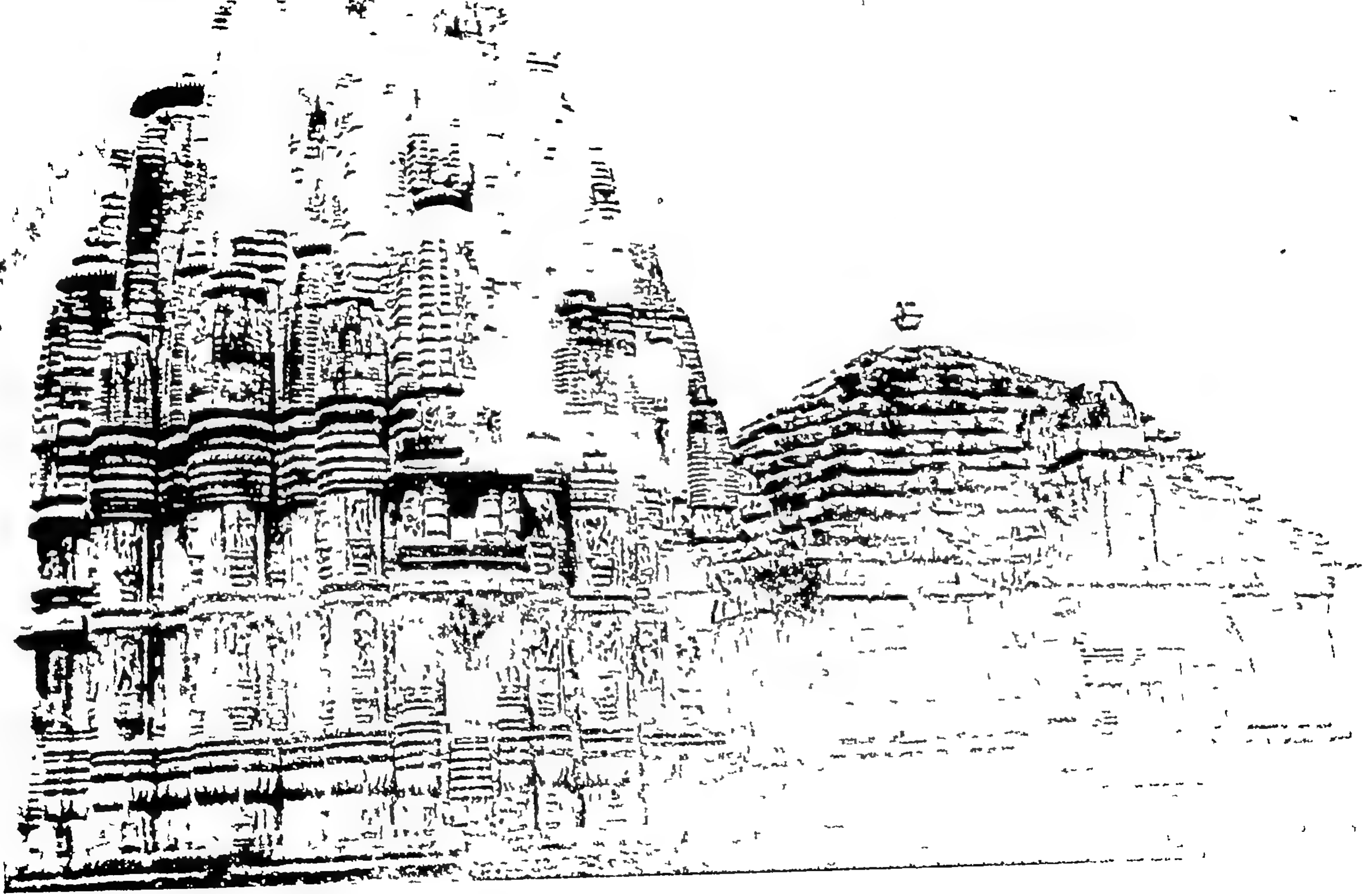
छनियावट तथा मन्दिर

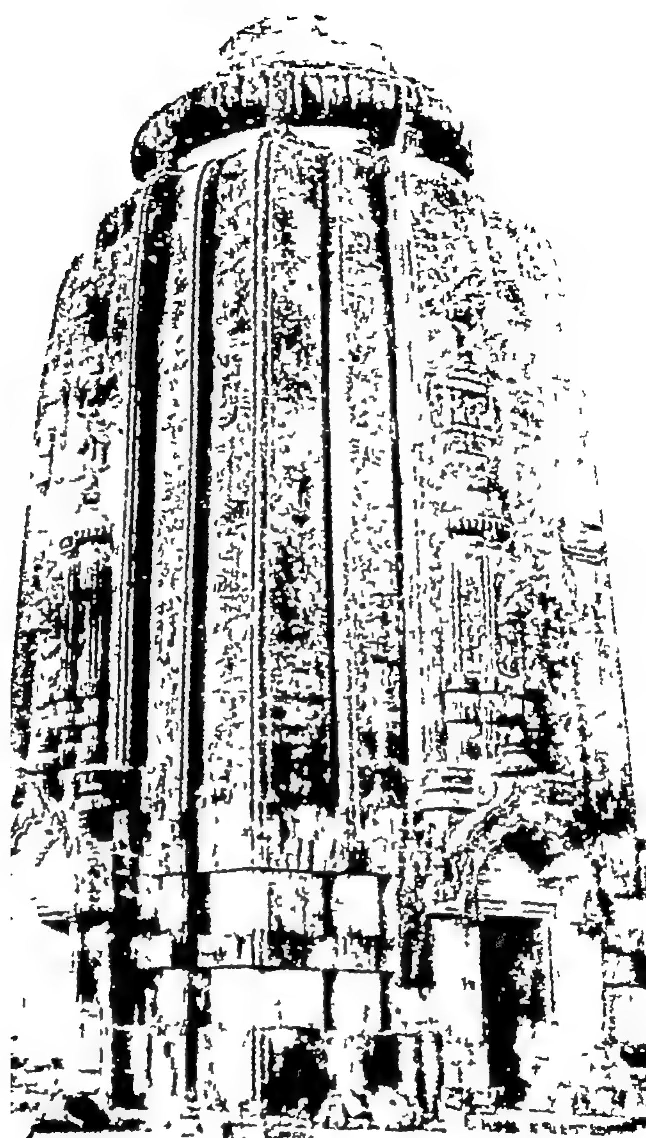


शिवाचरणी की पहाड़ी पर उगा मन्दिर—कलागाहान, क

( नीचे ) श्री धवलेश्वर मन्दिर — कटक



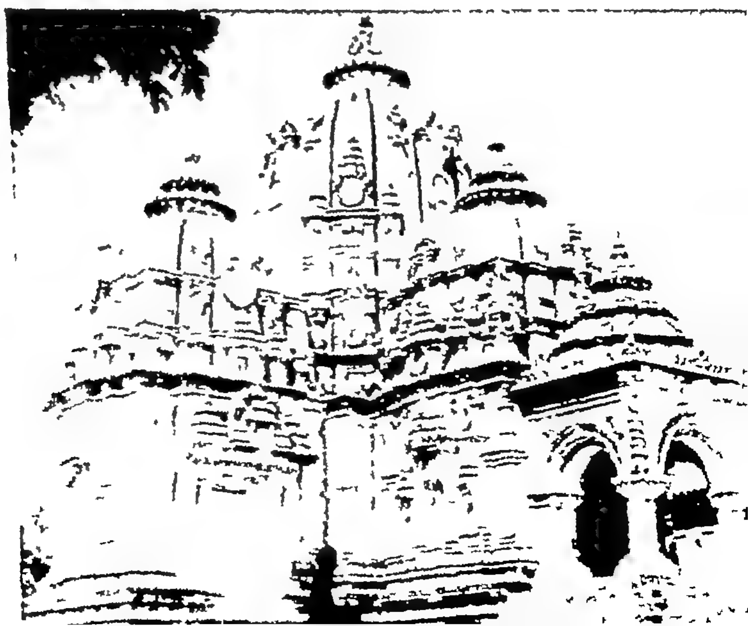






श्री चटेश्वर महादेव—पद्मपुर, कटक

(नीचे) पञ्चमुखी शिव मन्दिर—सोन



पापघ्नपूजक और सर्व-देवायतन (मदिर)-सस्कारक थे। (३) लेकिन आज तक ओडिशा मे प्रथम शताब्दी के बने हुए मदिर दिखाई नही पडते। परन्तु कुशान राजत्वकाल में भी ओडिशा मे मदिर निर्मित होने का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नही हुआ है।

**ओडिशा का गुप्त-युग**—इलाहाबाद में प्राप्त समुद्रगुप्त के अभिलेख, सुमण्डल ताम्र-शासन और बुगुडा ताम्र-शासन से अनुमान किया जाता है कि ईसा के बाद ३४८ से ६०० तक कलिंग मे गुप्तो का आधिपत्य था। यह भी अनुमान किया जाता है कि उस समय से ओडिशा में गुप्तकालीन सस्कृति और सभ्यता का प्रभाव था, क्योकि कपिलप्रसाद मदिर के प्रागण मे सश्लिष्ट गुप्तकालीन नर्तकी और परशुरामेश्वर मदिर की गुप्तकालीन शैली इसकी सूचक है। ये सारी मूर्तियाँ ओडिशा में उसी समय मे मदिर-निर्माण की सूचना देती है। ये सप्तम शताब्दी में निर्मित होते हुए भी, मदिरो के इतिहास का अनुशीलन करने से जान पडता है कि प्राय ओडिशा के सभी राजा शैव थे और उन्होने लुप्तोन्मुखी गुप्तकालीन शैली का कुछ अश ग्रहण करके आचलिक स्वतन्त्र चिन्तन से मदिर-निर्माण किया था। बकाड का निकटवर्ती एक भग्न मदिर और भुवनेश्वर का परशुरामेश्वर मदिर उक्त सिद्धान्त का निदर्शन है।

ओडिशा के इतिहास मे शैलोद्भव राजवश के बाद भौमकर राजवश आरभ होता है। इस वश के राजा रानी बौद्धधर्मावलम्बी और शैव भी थे। अनुमान किया जाता है कि इस भौम राजवश ने प्राय ७३६ से ९३६ तक राजत्व किया था। इसके बाद सम्भवत शैलोद्भव राजाओ ने प्राय ६२४ से ७३६ तक राज्य किया था। इस सुदीर्घ काल मे बने हुए मदिरो का अनुशीलन स्थापत्य विद्या के दृष्टिकोण से गुरुत्वपूर्ण है और इसलिए इनका श्रेणी-विभाजन करना श्रमसाध्य है। मदिरो का श्रेणी-विभाग और निर्माण-काल विभाग, प्रधानत दो मौलिक वस्तुओ पर निर्भर करता है। एक है स्थापत्य-विद्यानुमोदित परिवर्तित रीति, और दूसरी है रुचिसपन्न कारुकार्य-परिवेषण। सिर्फ क्षेत्र तत्त्वघटित नक्शे का आच्छादन पहले के अन्तर्भुक्त है जिसमें सामाजिक या आलकारिक कला का प्रयोजन नहीं है। (मेघेश्वर मदिर इन सबका उदाहरण है) शोभा-वर्धनकारी बहुमुखी खोदे चित्र दूसरे के अन्तर्भुक्त है।

परशुरामेश्वर, स्वर्णजालेश्वर, मोहिनी मार्कण्डेश्वर तथा पातालेश्वर आदि मदिरो का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर मालूम होता है कि उनकी गठन-प्रणाली प्राय समसामयिक है, क्योकि मदिरो का बहिर्भागस्थ चतुष्कोण परिष्कार प्रतीयमान है। फिर भी मदिर का कलेवर धीरे धीरे विषम तक तिर्यक् रूप में गति करके रेख-मदिर गठन में एक स्वतत्र रीति परिलक्षित करता है।

कारुकार्य की दृष्टि से पर्यालोचना करने पर मालूम होता है कि मोहिनी-मदिर स्वर्णजालेश्वर और परशुराम मदिर से भिन्न है। और, पातालेश्वर मदिर इस श्रेणी के अन्तर्भुक्त है।

इस श्रेणी के मदिरो के चारो ओर सुन्दर लता, पत्र तथा देव-देवियो-सबन्धी पौराणिक उपाख्यानो की अवतारणा बिलकुल नहीं है। मिलनेवाले ऐतिहासिक प्रमाणो से अनुमान किया

पौराणिक उपाख्यानो के चित्र-प्रदर्शन ने आंशिक रूप मे बहुत कम स्थान पाया है। मदिर-गात्र में सामाजिक जीवन और दाम्पत्य जीवन के मनोमुग्धकर चित्र अधिक पर्यभूपित हुए। इस काम-प्रयुक्त स्त्री-पुरुषो के सम्भोग से सारे जग की उत्पत्ति हुई है। कामासक्त क्रीडा ही प्राणियो का कारण है। यह लोकायतिक दृष्टि भास्कर्य और कारुकार्य के माध्यम से सभी लोगो के समझने के लिए बहुत प्रकाश रूप से आई है। वेदान्त की क्लिष्ट भाषा मे "जगत् काम-हेतुक और असत्य है" कहकर जो भाव व्यक्त किये गये थे, वे शास्त्रानुमोदित नियम या पद्धति (कामशास्त्र और बृहत् सहिता) के अनुसरण से प्रत्येक जीवन्त चित्र-प्रदर्शन के द्वारा सरल बना दिये गये। इसके अलावा मदिर के बहिर्भाग के चित्रो द्वारा अर्थ और कामान्वेषी मानवो की इहलोक में काम-प्राबल्य सम्भोग की एकमात्र केन्द्रीभूत चिंता है। मदिर के गर्भगृह चित्रशून्य है। इससे पारलौकिक चिंता की महनीयता प्रकट हुई है। इन महान् तत्त्वो के अर्थ-प्रकाशक के रूप मे सोमवशी राजत्व काल के सब मदिर स्थित है। अगर सोमवशी राजत्व मे निर्मित मदिरो का विश्लेषण किया जाय तो ब्रह्मेश्वर मदिर में हम तीन नूतनत्व देख सकते है (१) जगमोहन का अभ्यन्तर युद्ध-यात्रा और युद्ध-दृश्यो के द्वारा सुशोभित है और (२) मदिर के गात्र मे कलश तक स्वभाव-सम्मत सौम्य मूर्तियो की उपस्थापना है। (३) भौमकर युग में खोदी हुई मोटी और नाटी प्रतिकृतियो के अनुकरण से लम्बे और सरल अवयव दिये है। उस समय के मदिरो की गठन-प्रणाली में बहुत उन्नति परिलक्षित होती है। भौमकर युग में मदिर के मूलभाग के चतुष्कोण रूप में स्पष्ट प्रतीयमान होने के भाव को सोमवशी राजाओ द्वारा आलकारिक और बहुकोण-युक्त प्रतिभात किया है और मदिर के बाहर की ओर के निर्माण मे कुछ पुरातन प्रणाली में नूतनत्व लाकर मदिर के बाहरी ओर के सौन्दर्य मे परिवर्धन किया है।

गगयुग—सोमवशी राजाओ के राजत्वकाल के बाद ओडिशा मे गगवश का राजत्व शुरु होता है। इस वश के राजत्व-काल मे ओडिशा में मदिर-निर्माण की कला की अधिक उन्नति हुई है और शोभासम्पादक कारुकार्य का वैचित्र्य नयन-प्रीतिकर रूप मे प्रकट हुआ है। चित्र और कल्पना-प्रसूत नागकन्या, किन्नर, दिक्पाल और देव-देवियो के मुखमडल में आनन्दोद्भासित छलछलाते भाव, कमनीय शरीर, गभीर ध्यानमग्न उपासना के भाव, मनमुग्धकर नृत्य, छद, पोशाक की परिपाटी में असाधारण कलाकौशल और मूर्ति में सजीवता एव रस-उद्दीपन-शक्ति के सचारण द्वारा, शिल्प की स्वाधीनता और उद्भावनी शक्ति की सहायता से, मदिर गात्र का सौंदर्य स्वप्नपुरी मे परिणत है।

मदिर-निर्माण में अतिरिक्त योगकरण—परशुराम मदिर का पर्यवेक्षण करने पर मालूम होता है कि इसके गर्भगृह के साथ जगमोहन सपृक्त रहा है। कई इतिहासज्ञ मानते है कि इसका निर्माण-काल ७वी शताब्दी है, लेकिन जगमोहन के अतिरिक्त और तीन मदिर भुवनेश्वर मे है। इनके नाम है भरतेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, और शत्रुघ्नेश्वर। इन तीनो मदिरों में जगमोहन नही है। इनके प्रवेश-द्वार भी अपेक्षाकृत छोटे है। अगर जगमोहन के अतिरिक्त सब मदिरो को ओडिशा मे मदिर-निर्माण का प्रारम्भ माना जाय तो अनुमान किया जा सकता है कि ये तीनो मदिर ६ठी

उक्त मंदिर-गात्र में खोदित दुर्गा की मूर्ति से मालूम पडती है। इसके अलावा यह भी उपलब्धि होती है कि ओडिशा में तांत्रिक देव-देवियाँ शैव-धर्म की एक शाखा-रूप मे विवेचित होती थी। अगर यह न होता तो मोहिनी और वैताल-मंदिर में पार्श्वदेवता के रूप में पार्वती और महिषासुर-मर्दिनी दुर्गा न होती।

**सातवीं-आठवीं शताब्दी**—ओडिशा मे सातवी-आठवी शताब्दियो में धर्म एक नूतन पर्याय के रूप मे उपनीत हुआ। क्रमश बौद्धधर्म का ह्रास होने लगा। भौमकरयुग की प्रथमावस्था में बौद्धधर्म प्रवल था परन्तु शैवधर्म भी विशेप रूप मे लोकप्रिय वन गया था, क्योकि माधवी देवी आदि भौमकर वश की रानियाँ शिव की उपासिका थी। इस समय में ललितगिरि, उदयगिरि, रत्नगिरि, और दूसरे स्थानो में बौद्ध-विग्रह निर्मित होकर ओडिशा के अनेक गाँवो में पूजे जाने लगे थे। ये तत्कालीन ओडिशा के भास्कर्य और कला के परिचायक माने जा सकते है।

ओडिशा से जैनधर्म भी सपूर्ण रूप से लोप नही हो पाया था। ग्यारहवी शताब्दी मे सोमवशी राजा उद्योतकेशरी ने खडगिरि मे जैनतीर्थंकर की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी।

ओडिशा के भास्कर्य, चारुकला और धर्म-इतिहास में नवी शताब्दी एक प्रधान समय है। बौद्धधर्म के ह्रास होने के साथ ही साथ तन्त्रवाद की लोकप्रियता बढने लगी थी। क्रमश वैष्णव धर्म भी समाज मे आदर पाने लगा। सन् ७१७ में लिखित इन्द्रभूति-प्रणीत ज्ञानसिद्धि नामक पुस्तक के अनुसार जगन्नाथ जी को बौद्ध देवता के रूप में परिगणित किया गया है (प्रणिपत्य जगन्नाथ सर्वजनवरार्च्चित। सर्वबुद्धमय सिद्धिव्यापित गगनोपमम्)। और भी प्रमाणित होता है कि उस समय पुरी या पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्र वैष्णव धर्म के केन्द्रस्थल के रूप मे सुविदित था, और वैष्णव धर्म सुप्रतिष्ठित हुआ था। आठवी शताब्दी मे निर्मित स्वर्णजालेश्वर मंदिर मे रामचद्र जी की मूर्ति इस सिद्धान्त को दृढ करती है। तन्त्र में, आराध्या देवियो मे चामुडा विशेप रूप मे पूजनीय है। भुवनेश्वर का वैताल मंदिर आठवी शताब्दी में वना था। इस मंदिर की आराध्या देवी चामुडा है। इस चामुडा-मंदिर के गात्र में महिषमर्दिनी दुर्गा और पार्वती विद्यमान हैं। इन प्रत्यक्ष प्रमाण से समझा जाता है कि चामुडा-पूजा शैव धर्म के साथ सपृक्त है अर्थात् तन्त्र-पूजा शैव धर्म के साथ सश्लिष्ट है। आठवी शताब्दी में इस तन्त्र-पूजा के प्रमाण के स्वरूप याजपुर की चामुडा, धर्मशाला की सप्तमातृका-मूर्ति, हीरापुर का चउपठी मंदिर और भुवनेश्वर का मोहिनी मंदिर है। ये सभी मूर्तियाँ और मंदिर भौमकर राजत्व में निर्मित हुए है।

शैव, शाक्त और वैष्णव धर्म ग्रहण करनेवालो के समान सूर्य-उपासको का समाज मे बहुत असर पडा था। वैताल मंदिर के सामने के हिस्से पर सूर्य की प्रतिमूर्ति और भद्रक के आस-पास पालिया गाँव का विरचि-नारायण मंदिर इस मत के प्रमाणस्वरूप है।

परशुरामेश्वर, वैताल और राजा-रानी मंदिर मे खोदी हुई लकुलीश-मूर्ति से अनुमान किया जाता है कि ओडिशा में पाशुपत सम्प्रदाय ने शिवपूजा के सश्लेष में विशेप ख्याति प्राप्त की थी।

**दशम-त्रयोदश शताब्दी**—दसवी शताब्दी मे लेकर तेरहवी शताब्दी तक ओडिशा मे प्रचलित धर्म और धर्म मतवाद के इतिहास के साथ मंदिर-निर्माण के बारे मे पर्यालोचन करने पर

# उत्कल की धर्मगति

## पं० विनायक मिश्र

ओडिशा के वैष्णव कवि जगन्नाथ दास ने कहा है—"मनर मूले ए जगत" अर्थात् इस जगत् को जो जैसा सोचते हैं, वे वैसा ही अनुभव करते हैं। इसके बारे में पृथ्वी के सब मनस्तत्त्वविद् भी एकमत हैं। पृथ्वी में विभिन्न मनुष्यों की चिन्ताधारा अलग-अलग होने के कारण धर्म-चिन्ता भी विभिन्न प्रकार की है। सभ्यता के शैशव में धर्म-चिन्ता बहुमुखी होती है। सभ्यता के उन्नत स्तर मे मनुष्य, जगत् के हरएक जाति के पदार्थ में, विभिन्नता का अनुभव करने पर भी वह उस विभिन्नता में भी ऐक्य अनुभव करता है। इसलिए वैशेषिक दर्शन मे विभिन्नता को "व्यक्ति" और ऐक्य को "जाति" आख्या दी गई है। एक गाय में दूसरी गाय से अलग-अलग लक्षण होते हुए भी दोनो गायो में अनेक समान लक्षण होते हैं। इसलिए "गो" एक जाति और काले-सफेद के भेद से गाय के पार्थक्य को व्यक्ति कहा जाता है। इस तरह मनुष्यों की चिन्ताधारा में पार्थक्य होने पर भी उस पार्थक्य में ऐक्य भी है। धर्मचिन्ता का ऐक्य हिन्दुओं की परम आदरणीय भगवद् गीता में प्राञ्जल रूप में प्रतिपादित हुआ है।

आकाशात् पतित तोय यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कार केशव प्रति गच्छति ।।

आकाश से वर्षा का पानी विभिन्न स्थानों में गिरकर आखिर सागर में जा मिलता है। इसी प्रकार विभिन्न लोग विभिन्न देवताओं की आराधना विभिन्न प्रकार से करते हैं फिर भी उससे एक केशव खुश होते हैं।

विभिन्न धर्मो के प्रति सहनशील होना हरएक मनुष्य का कर्तव्य है, यही उद्धृत उपदेश का सार मर्म है। इससे परस्पर के प्रति मैत्री, करुणा आदि उत्पन्न होती है। गीता का उद्धृत मूलमन्त्र भारत का सबल है। यह मन्त्र ओडिशा के जगन्नाथ-धर्म में महीयसी शक्ति-रूप में जाज्वल्यमान रहा है। साम्राज्य-विस्तार के लिए ओडिशा ने प्रतिवेशी राज्यों के साथ कभी युद्ध नहीं किया है। उसने समय समय पर धर्मांध शासकों की पर-धर्म-ध्वंस-कामना के प्रतिरोध में युद्ध में जय पाई है। अशोक ने स्वदेश और विदेश में साम्य मैत्री के प्रचार के लिए धउली की शिक्षा-लिपि में जो उपदेश दिया है उसे आज तक सब जगन्नाथ-सेवक मान कर दूसरे राज्यों में जगन्नाथ-धर्म का प्रचार कर रहे हैं।

नवम शताब्दी में उदयनाचार्य के द्वारा रचित निम्नोद्धृत श्लोक ने पुरी के

और भगवद्गीता के अनुसार गधर्व या नृत्य-गीत-निपुण था। इसलिए खारवेल का कुमार खेल खेलना स्वाभाविक है। बौद्ध चेतीय जातक के अनुसार कपिल चेति राजा के कुलपुरोहित थे और गीता के अनुसार कपिल सिद्धो मे श्रेष्ठ थे, या इनके गुरु थे।

खारवेल की शिलालिपि में सिद्धो को नमस्कार ज्ञापन करने से यह प्रमाणित होता है कि वे कपिल मतावलम्बी थे। प्राणायाम-योगप्रणाली कपिल की नीति पर प्रतिष्ठित थी, और ये सब लोग साधक सिद्ध थे। कपिल के मत से बौद्ध मत उद्भूत था, और रामायण में कपिल को वासुदेव कहा गया है—

ते तु सर्वे महात्मानो भीमवेगा महाबला।
ददृशु कपिल तत्र वासुदेव सनातनम्॥—(१म ४०, २५)

यह अनुमित होता है कि निम्नाकित श्लोक खारवेल की शिलालिपि के वृक्ष चैत्य मे रूपायित हुआ है—

निगमकल्पतरोर्गलित फल शुकमुखादमृतसयुक्तम्।
पिवत भागवतम् रसमालय मुहुरहो रसिका भुवि भावुका॥

पुरी में खारवेल ने वासुदेवपूजा का जीर्ण सस्कार किया था। यह इनकी शिलालिपि के निम्नाकित वाक्य से मालूम होता है—

पियुउगद भनगलीन कासपति जिनपदमवन च।
तेरसव सशत कत केतु भद तितयर देहसघात॥

उद्धृत वाक्य की प्रथम पक्ति के व्यजन वर्णो के पाठोद्धार मे प्राचीन लिपि पाठको मे मतभेद नही है। सिर्फ युक्त स्वर और मात्रा के उद्धार करने और वर्ण को इधर उधर करके यथार्थ पद-पुज की तैयारी में वे लोग एकमत नही है। पूर्वापर अर्थ-सगतियुक्त पाठ कोई उद्धार न कर सकने से किसी का पाठ आज तक निर्दोष रूप में गृहीत नही हुआ है। ऐसी प्राचीन लिपि के पाठोद्धार के लिए साधारणत पाठक लिपिवद्ध किवदन्ती की मदद लेते है। लेकिन पुरी-मदिर के बारे मे पद्म पुराण में जो किवदन्ती है, इसकी ओर आज तक किसी भी पाठक की नजर नहीं गई है। इसी किवदन्ती के अनुसार यह मदिर तृण-वृक्ष-समाकीर्ण होकर छिप गया था, पृथु नामक एक किरात बालक ने इसे देखकर भीलो से कहा तब उन्होंने तृण-वृक्ष उखाड करके मदिर का उद्धार किया था। इसलिए उद्धृत पाठ से ऐसा मालूम होता है कि पियुउग या पृथुदक ने घास (दर्भ) और पेडो (नग) से छिपे हुए जिन पद मदिर को और तेरह सौ वर्ष से नीम काठ से (तिक्त) तैयार केतुभद्र से नश्वर (भर) शरीरपुजो को (सघात) प्रकाश किया। डा० बी० एम० बरुआ ने यह अनुमान किया है कि शिलालिपि की पिथुडवा और पद्मपुराण का महाभारतोक्त पृथूदक एक दूसरे से अभिन्न है, फिर भी उन्होंने पृथुदक का वर्णन-विचार नहीं किया।

वासुदेव नाम का निर्देश करता है। सर्व भूतो मे कौन रहता है? कपिल को रामायण में वासुदेव कहा गया है। वासुदेव सप्रदाय में एकातिका भक्ति प्रचलित है, और महाभारत में "साख्ययोगेन तुल्यो ही धर्म एकान्तमेविते"। साख्य मत के अनुसार प्रकृति सर्वभूत में रहती है। यह प्रकृति प्रजनशक्ति है। इसे समझने के लिए गीता के निम्न श्लोक के तात्पर्य पर विचार करना चाहिए—

मर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तय सम्भवन्ति या।
तासा ब्रह्म महद् योनिरह बीजप्रद पिता ॥—(१४ग, ४)

उद्धृत श्लोक की व्याख्या में प्रसिद्ध दार्शनिक डा० राधाकृष्णन ने लिखा है —

"Prakriti is the mother and God is the father of all living forms As prakriti is also of the nature of God, God is the father and mother of the universe He is the seed and the womb of the universe This conception is utilised in certain forms of worships which are developed out of what some modern puritans deride as abscane phallicism The spirit of God fertilized our lives and makes them what God wants them to be

"The supreme is the seminal reason of the world All being result from the mother through Logoi spermatision or animating souls."

यथाक्रम प्रकृति और ईश्वर सब सजीव रूपो के माता और पिता है। प्रकृति भी ईश्वर का स्वभाव होने के कारण ईश्वर सारे विश्व के पिता और माता है। वे विश्व के बीज और गर्भ है। यही धारणा कई प्रकार की पूजा में दिखाई पडती है। आधुनिक धर्म-सस्कारक दल, जिसे अश्लील लिङ्ग-योनि का प्रतीकवाद कहकर उपहास करते है उसी मे इस पूजा का विकास हुआ है। ईश्वर की आत्मा हमारे जीवन को उर्वर करती है। ईश्वर जैसा चाहता है वैसा ही बनाता है।

परमेश्वर जगत् का शुक्रगत कारण है। ब्रह्म जीवाणु और जीव शक्तिप्रद आत्मा की मदद से भूत पदार्थ के गर्भ में रखने पर नव प्राणी पैदा होते है। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि उद्धृत मत में सिर्फ भारत में नही, सारी पृथ्वी में अपेक्षाकृत सभ्य जातियो में लिङ्ग-पूजा प्रचलित थी। आधुनिक वैज्ञानिको ने विज्ञान के शरीरतत्त्व विभाग में जीवन के जन्म विषय में जो तथ्य आविष्कार किया है, इसके अनुसार साधारण अवस्था में मनुष्यशरीर मे प्रजनन बीजरस वर्तमान नही रहता—स्त्री-पुरुष के सयोग काल में यह पैदा होता है। इसलिए सृष्टि की अव्यवस्था को शून्य कहा गया है। केवल बौद्ध धर्मावलबी लोग ही शून्यवादी नही थे, प्रत्युत शैव, वैष्णव और ब्राह्मण भी शून्यवादी थे। ब्राह्मण लोग आह्निक आराधना में अगन्यास करते वक्त "ख ब्रह्म" इत्यादि सप्तव्याहृतीना ब्रह्म का शून्यरूप मे चिंतन करते है। गगा ने ऊर्ध्व से या आकाश से और विष्णु ने पादाग्र मे अवतरण किया है। इसीलिए वैष्णव धर्मावलम्बी

प्राचीन काल में पुरी में दैत्य लोग रहते थे। अब उनके वंशधर "दइता" नाम से अभिहित है। विष्णुपुराण (२, १७, १८, अ०) से मालूम होता है कि उनमें से कई लोग बौद्ध और कई लोग जैन थे। बौद्ध धर्मावलम्बी हरएक वस्तु को शून्य मानते थे। जैन-धर्मावलम्बी लोगो ने वस्तु को सत् या असत् निरूपण न कर सकने के कारण माना था कि यह स्याद्‌वाद या सत् या असत् हो सकती है। वहाँ विश्वावसु एक दीप्तिमान् पत्थर की पूजा नील माधव के नाम से करने लगे।

शायद यह विश्वावसु महाभारतोक्त रेणुका-गर्भजात पुत्र हो। दैत्य लोग शून्यवादी होकर इन्द्रियपरायण हो गये थे, क्योंकि वे लोग उच्च आकाक्षा नही रखते थे। इन्द्रिय-परायणता के कारण उनका शुक्र तारल्य हुआ था। विश्वावसु के नीलमाधव देवता का अस्तित्व स्वीकार करके जितेन्द्रिय होने से इनके तरल शुक्रविन्दु ने आकार धारण किया। सिर्फ पुरुष का विन्दु सन्तान सृष्टि नही कर सकता है। सन्तान-उत्पत्ति के लिए नारी-शक्ति की भी आवश्यकता है। इसलिए दुर्गा और शिव दोनो ने सिर पर अर्द्ध मात्रा या अर्द्धचन्द्र धारण किया है। इसके वाद यह विधि प्रचलित हुई कि नारी या पुरुष में से कोई एक दूसरे को न वुलाने, "ओ" या स्वीकृति ज्ञापक उत्तर न सुनने पर वल प्रयोग नही किया जायगा।

अब इस विधि के अनुसार जगन्नाथजी की पूजा होती है। ऋक्‌वेद के निम्नाकित मत्र से मालूम होता है कि अनेक बौद्धो और जैनो ने किरण का अस्तित्व स्वीकार करके वस्तु की सत्ता स्वीकार की है। "केतु कृणवन्न केतवे। तोपे मर्या अपेशसे समुपद्‌भिरजायत" सायन की टीका में केतु का अर्थ किरण और तोषे का अर्थ आकृति दिया जाने के कारण सावारणत यह अर्थ किया जाता है कि रात के अन्धकार में किसी वस्तु का तेज या आकृति न मालूम पडने से अकेतव और अपेशस् था। सूर्य की समुसत् या किरण से सभी वस्तुओ के केतु या तेज और नेशस् या आकृति ने प्रकाश पाया है। लेकिन इस मत्र से ब्राह्मण केतु ग्रह की पूजा करने लगे। तब मत्र का अर्थ कुछ भिन्न प्रतीत होता है। हम विश्वास रखते हैं कि ग्रहण के समय सूर्य केतु या चन्द्र का ग्रास करता है। उस वक्त सूर्य या चन्द्र पर जो आशिक कृष्ण वर्ण का आवरण दिखाई पडता है उसे केतु कहते हैं। ग्रहण-काल में आलोक या ज्ञान और अधकार या अज्ञान दोनो एक समान चन्द्र या सूर्य के रूप में अनुभूत होते हैं। भाव पदार्थ स्वीकार न करनेवाले अभाववादी बौद्धो को जैमिनि ने पूर्वमीमासा में कहा है कि भाव पदार्थ के समान अभाव भी एक पदार्थ है। ग्रहण-काल में यह स्पष्ट रूप में हृदयगम होता है। इसलिए अभाववादियो को अनाचार पथ छोडकर सदाचार पथ का अनुसरण करने के लिए स्नान, दान, आदि पवित्र कर्मानुष्ठान किया जाता है। यह केतु कालिय नाग है। इसे श्रीकृष्ण जी ने दलन किया था। लेकिन श्वेतकेतु या शुक्ल नाग वासुदेव नाम से परिचित है। इसे तात्रिक लोग कुडलिनी कहते है। विष्णु अनन्त नाग पर सोते है, शिव नाग को भूषणस्वरूप व्यवहार करते हैं, नाग जैन पार्श्वनाथ का सतक है और वुद्धत्व लाभ करते वक्त नाग ने अमोघसिद्धि या वोधिसत्व की रक्षा की थी इस कारण हम नागधर्म को आर्येतर धर्म कह नही सकते है। ओडिशा में सौ से लेकर अस्सी शूद्र नागगोत्री है। भुवनेश्वर के कपिलेश्वरपुर से ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी की नागमूर्ति आविष्कृत होकर भुवनेश्वर

इन्द्रो मयूर सवृत्तो धर्मराजस्तु वायस ।
कृकलासो - धनाध्यक्षो हसश्च वरुणोऽभवत् ।।

ओडिशा की किंवदन्ती के अनुसार सती के आत्महत्या कर डालने के बाद जब दक्षयज्ञ भग होता था, तब देवताओ और ऋपियो ने पशु-पक्षी का रूप धारण किया था। तत्र साहित्य के अनुसार सती के आग में जल जाने से तत्रपूजा प्रचलित हुई। यह प्रमाण मिलता है कि वेद-रचना-काल में एक हृदयविदारक घटना हुई थी। उसके फलस्वरूप सती आग में जली और दक्षयज्ञ या नागधर्म (प्राणायाम-योग) ध्वस करने की चेष्टा की गई थी। इसका उल्लेख लेखक के अप्रकाशित Indian culture and cult of Jagannath ग्रथ में है। यह इतना ही याद रखना चाहिए कि बुद्धदेव ने उत्कल के तपसमु और मल्लिक को नाखून और केश दिये थे, और रामायण में वर्णित है कि पुरी में नख-लोम-जात वैखानस और वालखिल्य ऋपि रहते थे। ब्रह्मपुराण के अनुसार पुरी में वालखिल्य ऋषि रहते थे। महाभारत में (वन १९७) लिखा है कि नारायण ने कृष्ण केश देवकी को और शुक्ल केश रोहिणी को दिये थे। शायद ये वालखिल्य केशव सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त थे। महाभारत के अनुसार वालखिल्य ऋपि ऊपर की ओर पैर और नीचे की ओर सिर करके डालो में लटक कर सूर्य की मरीचि प्राप्त करते थे। इसलिए ये सव ऊर्ध्वमूल अश्वत्थ वृक्ष थे। गीता में इस अश्वत्थ वृक्ष की सहायता से पुरुषोत्तम योग की व्याख्या की गई है। गीता के उपदेश के अनुसार अश्वत्थ वृक्ष की डाल काटी गई है। वेद में वालखिल्य सूक्त होने से बुद्धदेव के केश देने के बारे में जो किंवदन्ती है वह वेद की परवर्ती नही हो सकती। पुरी की रथयात्रा को जैनो की रथयात्रा के साथ और गुडिया-मडप के उत्सव को रामायणोक्त नदिग्राम में भरत-पादुका-पूजा करने की विधि के साथ तुलना करने के लिए यहाँ अवकाश नही है। वौद्धो की वाशेली अव पुरी की वाशेली साहि में पूजा पाती है। जैनो की विमला और शीतला को अव जगन्नाथ-मदिर में वेदा के अन्दर स्थान मिला है। जिन्होने मूर्तिपूजा की प्रयोजनीयता स्वीकार नही की है, वे अलेख महिमा आदि विभिन्न सप्रदायो के अन्तर्भुक्त है। वे ओडिशा के भागवत धर्मा-वलम्बियो के समान शून्यवादी है। किसी का विश्वेतर ईश्वर-विश्वास नही है। "महिमा" शब्द सस्कृत के महत् शब्द से उत्पन्न हुआ है। साख्य में वुद्धि को महत् कहते हैं। कृष्ण साख्य मतावलम्बी थे। महिमा धर्मावलम्वी लोग शून्यवादी होने पर भी मूर्तिपूजा का विरोध नही करते हैं। कटक जिले के लेम्वाल गाँव में इनकी गद्दी है। इस गद्दी के प्रतिष्ठाता षोडश शताब्दी के अच्युतानन्द दास ने अपने को सुदामा के अवतार-रूप में वर्णन किया है। सुदामा ने "चावल भाजा" (लाई) समर्पण करके श्रीकृष्ण की कृपा पाई थी।

वे चैतन्य सम्प्रदाय के समान ढोल, करताल लेकर राधाकृष्ण के प्रेम-कीर्तन, प्राणायाम, योगाभ्यास या ब्राह्मणो के समान साडम्बर पूजा नही करते थे। वे श्रीकृष्ण का ध्यान शून्य-रूप में करते थे, लेकिन जगन्नाथ दास प्राणायाम-योगाभ्यास करते थे। जगन्नाथ का सम्प्रदाय "अतिवडी" नाम से अभिहित है। यह सप्रदाय ढोल, करताल लेकर चैतन्य का नाम-कीर्तन करता था। लेकिन जीव और ब्रह्म के बीच चैतन्य जी के प्रचार किये हुए भेदाभेद मत को नही

किरण या तेज नही मानते, क्योकि तेज सिर्फ ब्रह्म-रूप का प्रकाशक है। पदार्थों के रूप के अतिरिक्त अन्दर अरूप गुण भी है, इसलिए ये सब शून्य में अलेख या वर्णनातीत एक पदार्थ मानते हैं जिससे विश्व की उत्पत्ति रहना स्वीकार करते हैं। इस सम्प्रदाय के भीम भोई हैं।

शरद-उषुम नाहि रे सुमन शरद उषुम नाहि,
सदा सम्पूर्णा से अरूपा देही सुमन रे। शून्य पुरे छन्ति रहि सुमन रे।

उद्दालक ने वटवीज की परीक्षा द्वारा श्वेतकेतु को समझाया था कि विशाल वट वृक्ष बीज में, सूक्ष्म रूप में, निहित है। इसलिए विश्वास किया जा सकता है कि एक परम सूक्ष्म पदार्थ से विश्व की उत्पत्ति हुई है। बुद्धदेव ने नाखून और केश तपस्सु और भल्लि को दिये थे, इसलिए उन्हें शून्यवादी नही कहा जा सकता। इस धर्म के दूसरे विषय आलोचक के अप्रकाशित Indian culture and cult of Jagannath नामक ग्रन्थ में दिये गये है।

देहातो में श्रमजीवी शूद्र लोग दण्डपूजा करते हैं। जो लोग यह पूजा करने के लिए व्रत ग्रहण करते हैं उन्हें भक्ता या भगता (स० भक्त) कहते हैं। यह पूजा मेरु या मेष सक्रान्ति के दिन समाप्त होती है। पूजा के दिन सख्या भक्तो की सुविधा पर निर्भर करती है। यह पूजा तीन दिन या इक्कीस दिन तक अनुष्ठित हो सकती है। इसमें तेरह भक्त अवश्य रहते हैं। पूजा के दिन वे लोग रोज एक वार हविष्यान्न खा कर स्त्रीससर्ग त्याग करके, पवित्र और निष्ठा पर रहते हैं और दोपहर को प्रखर कडी धूप में खेत जोतने, दौनी करने, खमार में धान रखने आदि कृषि कर्म का अभिनय दिखाते हैं। वे लोग सूर्यास्त के समय नदी या तालाव में नहाने के लिए जाते हैं। नहाने के वाद एक आदमी एक वेंत और दो आदमी चार मशालें लेकर आते हैं। मिट्टी हत्थे के सिरे में चिथडे लपेट कर देवता के रूप में एक आदमी पकडता है। लौटने के वक्त उच्च स्वर में हर एक देहाती की कल्याण कामना करके भीख माँगते हैं। रात को उनके साथ एक यात्रा-दल मिलकर गाँवों में यात्रा दिखाते हैं। यात्रा में पूजा के आख्यान का गीत, अभिनय के रूप में, अभिव्यक्त करते है। आख्यान में उक्त है कि एक दिन एक शवर वन में पक्षी की हत्या करता था। उसकी इस वृत्ति को दूर करने के लिए शिव जी ने यह धर्म प्रवर्तित किया था। लेकिन अभिनय में शवर-शवरी में जो वार्तालाप होता है उससे मालूम होता है कि शवर पार्वत्य जाति की अप्राप्तवयस्का वालिकाओ पर पाशविक अत्याचार करता था। दण्डकारण्य की उत्पत्ति के वारे में रामायण की किंवदन्ती के अनुसार जिस वन में दण्ड नामक एक राजा ने अप्राप्य-वयस्का भृगुकन्या को हरण किया था उस वन को दण्डकारण्य कहते हैं।

हर एक आदिवासी भृगु या एक शिला की पूजा पितृ-चैत्य रूप में करता है, इसलिए भृगुकन्या का अर्थ आदिवासी श्रेणी की वालिका हो सकता है। शायद अपेक्षाकृत चतुर युवक-गण आदिवासी वालिका लेकर इन्द्रिय का अपव्यवहार करते थे। अशोक ने युवको पर दृष्टि रखने के लिए तोपली शासनकर्ता को भी धउली-शिलालेख में आदेश दिया है। इससे मालूम होता

मगला कोठी में या अपने अपने घर, जहाँ कलशी रखी हो वहाँ, स्त्रियाँ और पुरुष एकत्र सोते हैं। कलसी का नल कर्णस्वरूप होने के कारण और छ मास के अन्तर में पूजा की जाने पर यह रामायण में वर्णित छ मास में नीद से उठा हुआ कुम्भकर्ण हो सकता है। यह सत्य हो तो नही कहा जा सकता कि कितने प्राचीन धर्मों ने अब बदलकर कैसा रूप धारण कर लिया है।

ओडिशा में षोडश शताब्दी के आखिरी भाग से सप्तदश शताब्दी के मध्य भाग तक मुसलमान शासन प्रतिष्ठित था। उस वक्त ओडीशा में मुसलमान धर्म प्रचारित हुआ था। सालबेग नामक एक मुसलमान कवि ने भक्ति रस का भजन ओडिया मे बनाया है। अब भी कटक में मुसलमानो के कदम रसूल नामक उपासना-मदिर में हिन्दू लोग पुण्य अर्जन के लिए जाते हैं। ओडिशा में अंग्रेज राजत्व प्रतिष्ठित होने के बाद क्रिश्चियन धर्म प्रचारित हुआ। इस तरह ओडिशा में नाना प्रकार के धर्म-सम्प्रदायो का समावेश हुआ था। लेकिन ओडिशा साम्प्रदायिक-विद्वेष से हमेशा मुक्त रहा है।



मेलो, यात्राओ, पर्वत्यौहारो, विवाह-व्रत और अच्छी मजलिसो मे इनका उपयोग होने लगा। शिक्षित सम्प्रदाय में चर्चा या गवेषणा न होने से सगीत कला धीरे धीरे शास्त्रीय रीति से दूर हट गई, फिर भी 'महारो' और गोटिपुओ के द्वारा ओडीशी नृत्य की परपरा सुरक्षित रही।

काफी अनुसधान के वाद नृत्य के वारे में कई पाण्डुलिपियाँ, तालपत्र पोथियाँ सग्रहीत हो सकी है। इनमें से सगीत अभिनय-दर्पण को सपूर्ण शास्त्रीय मतापेक्षी कहा जा सकता है। इसके लेखक तुग राजवश के राजकुमार यदुनाथ राजसिह है। इस पोथी में सब सस्कृत श्लोक ओडिया लिपि में लिखे हुए है। अभिनयचन्द्रिका नामक एक और नृत्य-सपर्कीय ग्रन्थ मिला है। इसके लेखक 'महेश्वर' महापात्र है। लेखक ने ग्रन्थ की समाप्ति में खेमुण्डि अधिपति नारायण गजपति की प्रशस्ति गाई है। इससे मालूम होता है कि यह लेख सगीत-नारायण-कर्ता नारायण गणपति के राजत्वकाल १७।१८ ई० का है। सगीत-अभिनय-दर्पण का सठीक-काल निर्णय नही हो पाया, फिर भी यह विश्वास किया जाता है कि यह अभिनयचन्द्रिका की पूर्ववर्ती रचना है। अभिनय-चन्द्रिका का वर्णन, अभिनय नामकरण आदि अनेक स्थलो में नाटचशास्त्र से भिन्न है।

लेकिन सगीत-अभिनय-दर्पण में अधिकाश नाटचशास्त्र और सगीत-रत्नाकर का साम्य वर्णन दिखाई पडता है। इनमें समता होने पर भी इसमें उत्कलीय परपरा की विशेषता है। इसके अतिरिक्त मदिर गात्रो में खोदी हुई मूर्तियो की नृत्यभगी के सौसादृश्य का वर्णन इसमें है। इसमें नन्दिकेश्वरकृत अभिनय-दर्पण से जगह जगह अलग शिर, नेत्र, ग्रीवा, और हाथ के काम का वर्णन मिलता है। असयुत और सयुत हाथ को अलग अलग अभिनय-प्रदर्शन में विनियुक्त न करके स्थल-विशेष पर एक या दो हाथो का इसमें उपयोग किया गया है। सगीत-अभिनय-दर्पण की यह विशेषता है कि अभिनेताओ को किस किस कार्य में कैसे विनियोग किया जाय, सिर्फ इतना ही देकर लेखक सन्तुष्ट नही रहे वल्कि किस प्रकार से अभिनय प्रदर्शित हो, इसका भी निर्देश दिया है।

ओडीशी नृत्य उत्कल देश की वृत्ति, भापा, रुचि और रीति-नीति की परपरा वहन करके शास्त्रानुमोदित क्रम से परिचालित है। यह नृत्य आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक इन चार विभागो की रक्षा पूर्ण रूप से करता है। प्रचार और गवेपणा के अभाव के कारण ही वह आज तक विशेष रूप में लोकलोचन में नही आ सका है। लेकिन इसके पुरातनत्व और शास्त्रीयता के वारे में विवाद-विसवाद का अवकाश नही है।

नृत्य-शिक्षा के लिए पात्र को कई परिमाण में पद और नेत्र का अभिनय या चालना रूप सावना करनी पडती है। ये सव देश-प्रचलित नाम के कारण अलग होते हुए भी शास्त्रीय-पद्धति से अलग नही है। यथा—

उठा, वइठा, ठिआ, चालि,
वुडा, भसा, भँडरी, पालि,
ओडीशी नाट र आठ वेलि।

है। उत्कलीय गीत-कवियो और छद-रचयिताओ ने अधिकाश गीतो में कृष्णभक्ति की रचना की है। नृत्य में भी यह देखने को मिलता है। इसलिए ओडीशी नृत्य में नटराज के वदले, नटवर-भगी का प्रचलन देखा जाता है। यह त्रिभग है। ओडीशी नृत्य के पात्र के लिए रग-प्रवेश-काल से त्रिभग-भगिमा में खडे होने की विधि है। इस खडे होने की भगिमा को साधारण प्रचलित भापा में थाई कहते है। यह स्थायीशब्दज है।

वटु नृत्य वटुक या वटुकेश्वर भैरव की आराधना ओडीशी नृत्य का एक अविच्छेद्य अग है। पात्र रग-प्रवेश के वाद पहले भूमि-प्रणाम, विघ्नहरण गणपति-पूजन, वटनृत्य, पल्लवीनृत्य, साभिनय नृत्य के वाद आनन्द नृत्य करने की विधि प्रतिपालित होती है। गीत का एक चरण अभिनय करने के साथ गाने के वाद अन्य चरण प्रारम्भ के मध्य स्थल में जो नृत्य होता है, उसको अभिनयचद्रिका में वटु नृत्य कहा गया है। ओडीशी नृत्य भावाभिनय-प्रधान है। अभिनय को "पारिजा" लक्षण और "अवलय" कहा जाता है।

वटु नृत्य के कई कारणो में कुछ कुछ ताण्डव नृत्य का सम्मिश्रण है। सभवत ओडीशा में गोटिपुअ नृत्य की सृष्टि के वाद से इन सवको स्थान मिला है। पहले ओडीशा में देवदासी या 'माहारी' नाच ही प्रचलित नृत्य था। १६वी शताव्दी के वाद देश की राजनैतिक परिस्थिति हमेशा अस्थिर रही। इस वक्त लड़कियो के वदले लडको को लेकर गोटिपुअ या आखडापिलाओ के नृत्य की सृष्टि हुई। देवपूजा-पद्धति में सिर्फ देवदासियाँ ही नृत्य करती थी। राजा रामचन्द्र देव के समय में 'खोरधा नियोग' नाम के नारी-नृत्य ने खोरधा-राज-दरवार में स्थान पाया था।

रामचन्द्र देव का राजत्व देश की अनिश्चित परिस्थिति में हुआ था। उस वक्त जनता का धन, मान और जीवन सकटापन्न था। जगन्नाथ-मदिर में राजा रामचन्द्र देव ने ही पहले गोटिपुअ नृत्य की प्रथा प्रचलित की थी। गोटिपुअ नृत्य को दूसरी मजलिसो में भी स्थान मिला। सचमुच ये सभी ओडशी नृत्य की परपरा रखते आये है। मुहल्ले के अखाडे या तालीम के स्थानो में योग्य शिक्षक इनको विधिवद्ध रूप में सिखाते थे। लडको को इस नृत्य के वारे में तालीम देते वक्त इन्हें कई प्रकार के वन्ध या भाग सिखाये जाते थे। परन्तु यह वास्तव में ओडीशी नृत्य की विधिवद्ध धारा के अन्तर्भुक्त नहीं है।

यह नृत्य उन्नीसवी शताव्दी तक परपरा की रक्षा करके चले आते थे कि १८४० ई० में ओडिशा का अगच्छेद हुआ। विशिष्ट कला और साहित्य-चर्चा के स्थान गजाम को मद्रास प्रेसीडेन्सी में शामिल कर दिया गया, १९३६ ई० तक (लगभग एक शताव्दी)।

इसी अवस्था में रहने से ओडिशी सगीत और नृत्य कला का पतन हुआ। इस काल में दुर्योग से ओडिशावासी नृत्य, सगीत कला के प्रति नाना कारणो से विरागी रहे। शिक्षित सभ्य-समाज में इसका आदर कम हो गया था, इसीलिए शास्त्रानुमोदित परपरा को अक्षुण्ण रखना कष्टसाध्य हो पडा था। अशिक्षित या अर्धशिक्षित लोग गीत, नृत्य को पेशे या शौकीनी के रूप में ग्रहण करने लगे थे। उधर दक्षिण-विच्छिन्न उत्कल में आन्ध्र के प्रभाव से तत्रत्य वेश्या नृत्य की सरल सहज नृत्य शैली चल पडी। इसीलिए लोगो ने शास्त्रीय रीति का सपूर्ण रूप से अनुसरण करने

★ उत्कल की नृत्यकला ★





ओडिशी नृत्य की विभिन्न मुद्राएँ









उत्कलीय नृत्यकला की विभिन्न मुद्राएँ





मृदङ्ग बजाती हुई एक नर्तकी की मूर्ति

कोणार्क मन्दिर की एक नर्तकी की मूर्ति

★ उत्कल की नृत्यकला ★



ठिम्पापाला



गमकाठिम्पा

## ★ उत्कल की नृत्यकला ★



पुरी का नागा-नृत्य

ओड़िशी-नृत्य ( कला विकाश केन्द्र )

विशेषत्व लेकर सयुक्त हाथ के समान व्यवहृत है। सगीतरत्नाकर ग्रन्थ में इसका समर्थन देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ में "करण" के बारे में विशेष वर्णन नही है।

ओडिशी नृत्य को परपराक्रम में कोई इसे छ और कोई कोई सात भागो मे विभक्त करते हैं। साधारणत छ प्रकार का प्रचलन अधिक है। यथा —

१—पात्रप्रवेश—भूमिप्रणाम

२—गणनाथ या विघ्नराज-पूजन

३—वटु नृत्य

४—पल्लवी नृत्य

५—साभिनय नृत्य

६—प्रान्त नृत्य।

यह तारिक्रम, पहपर या नाटागी रूप में कथित है। वहुत समय से, नाना कारणो से, यह सुप्रतिष्ठित नृत्यकला अवहेलित होती थी। आज उत्कल की विभिन्न पुर-पल्लियो में ओडिशी नृत्य के प्रति जनसमाज का आदर और आग्रह वढ गया है। सभ्य और भद्र समाज की कन्याएँ इसको सीखने लगी है। यह उडीसा ही में नही, वरन् भारत के कोने कोने में एव पृथ्वी के प्रत्येक सभ्य राज्य में चहल-पहल मचा कर प्रत्येक प्राणी में नृत्य उन्माद एव उत्साह भर रहा है। इस समय पुरातन ग्रन्थो को प्रकाशित और उच्च शिक्षा का प्रसार करना हमारा आवश्यक कार्य है।

आशा ही नही वरन् भगवान् जगन्नाथ जी की महती अनुकम्पा से हमें पूर्ण विश्वास है कि ओडिशी नृत्य निकट भविष्य में अपने पूर्ण गौरव के साथ प्रसारित हो जगत् के प्रत्येक प्राणी मे अपूर्व कला, और जीवन की नई ज्योत्स्ना जागृत कर सकेगा।



ला सके हैं। उसके केशविन्यास के लिए कुछ करजी तेल, कान्तिछटा के लिए थोडी सी हल्दी थी।

श्री पखावज के लिए भोग, श्री कुब्जी की लज्जा-निवारण के लिए एक अँगोछा, नृत्यकारी दारुमय तपस्वियो के लिए धुआपत्र पीकाहुका, माताओ की वहिर्देश कल्पे चूना-दोक्ता खैनी न देकर कौन मुहल्लेवाला तीव्र तिरस्कार और लोकनिन्दा से आत्मरक्षा कर सका है!

कमलघटा (एक प्रकार का वडा दीपक) के विस्तृत आधार के लिए कमजोर वाँस के दस-बारह तिपाये तथा स्टेज के ऊपर की छत के लिए भी श्मशान में पडे अरथी के कुछ वाँस इकट्ठे कर लिये गये।

प्रबन्धको को यह सब आयोजन करने के लिए विलकुल सोचने की जरूरत नही पडी है। अभिनेता मानवदेही और दारुदेही गोष्ठियो को विलकुल वाधा नही हुई। परिया, गडुआ ये सब कौतुक विद्या में विख्यात हैं। वे कलावती फिर आमन्त्रित हैं, विशेषत उत्कल में इनकी मर्यादा की अवहेलना नही हो सकती। यह सब दायित्व, सुनाम और सुयश के साथ हम पाठशाला के छात्रो ने समाधान किया कि एकान्त नि स्वार्थ और आशाहीन रूप में नही। केवल प्रथम पक्ति में वैठकर तमाशा देखने के लोभ से। सध्या-आरती समाप्त होने के साथ ही साथ सब कमल-घटाए तेजी से जल उठी। आम-वाग के निसर्ग-सुन्दर चन्द्रालय के नीचे तैलाधार में राख तेजी से जल उठी —

"तिन ता, तिन ता त्रेकेटधिन् तिता,
दुम् दाम्, दुम् दाम् पोड पीठा भारि दाम्
देदम् देदम् चूडाभाजा आलूदम्।'

अब क्या सँभाला जा सकता है सभा को, हमारे पैरो और मुंह को? कही कही से मर्द-औरतें क्षेत्र, मेड, गलियारा सब लांघते हुए, ऊँची नीची, ऊवड खावड जमीन को पार करते हुए क्षुकी, चेमी, भगिन, खवुआ, कीमा, नेपरा नाई और नन्द सेठी आदि भी आ धमके। किसी के कधे पर घास की चटाई और किसी के कधे पर खजूर की चटाई, किसी के हाथ में पान का वटुआ, किसी के हाथ में पानदान। कोई पिच पिच करके रगीन और सुगधित पीक थूकता है। किसी की नाक में वुलाक और नथुनी हिलती है।

सभा के पास कुत्ते इकट्ठे होकर झगडने लगे। अँधेरे में मत्र मारे डर के भाग गये। सब कुबुजी कुचुमुचू शब्द करते हैं। खिटाटिणा धम्! ये कैसा दृश्य? पर्दे के अन्दर कस जी का सैन्य मार्च करता है। उनके कधे पर वन्दूक, कितनी वडी वडी मूँछें, गुलवन्द और सिन्दूर तिलक सँभलो, सँभलो—आये घडियाल, वक, वाघ, वकरी, मोर, हिरन, हिरनी, धवली, श्यामली गाय, नील वर्ण की कुज गलियाँ—

आ रही है यशोदा सिर पर टोकनी लिये जिसमे दही की हांडियां है। छतरी के नीचे राजा नन्द, काँवर पर फकीर परिडा ले आ रहा है दही की हांडियाँ। हाथ में वेणु, सिगा, छडी

में देखा था। मिनार्वा का "मदनभस्म" और कपालकुण्डला मे, लेकिन बंगाली भाषा में। उस समय उत्कल बंग के साथ संयुक्त था, उस समय वह स्वतन्त्र उत्कल नही था।

केन्द्रापाडा में लगभग उस समय का समसामयिक जगदेव थियेटर निकला। शायद यही हमारे युगलबन्दी अचल में उडिया भाषा का प्रथम थियेटर हुआ। उनका नल-दमयन्ती नाटक विशेष सौष्ठव-पूर्ण हुआ था, लेकिन वह भी बंगानुवाद है।

महाराजा वैकुण्ठनाथ दे और सामन्त राधाचरण दास बालेश्वर के दो बडे जमींदार हैं। हर एक की एक गोष्ठी है। घोडे-भैंस-विवाद में क्या, बारबटी क्या, सुनहट दोनो दलों का अभिनय सुन्दर हुआ था कलकत्ते के पास। इसलिए दोनो दलो मे उच्चाङ्ग का देशी, विलायती कन्सर्ट सुनने को मिलता था। उस युग में कन्सर्ट काफी सम्मान लाता था।

गीत वाद्य, नृत्यादि मनोज्ञ होते थे। वक्तृता और प्रकाशभंगी मार्जित प्रणाली की थी। उस वक्त रूप-सज्जा की इतनी उन्नति नही हुई थी। उस वक्त जरी, मखमल, चुमुकी का मोह काफी था।

बारबटी बँगला नाटक अधिक दिखलाता था। सुनहट उत्कल भाषा का पक्षपाती था। ऊषा काव्य को नाटक-आकार में दिखाने की पहली प्रचेष्टा इस सुनहट ने ही हुई थी। स्वर्गीय रामशंकर बाबू, भिखारी बाबू या कामपाल बाबू इस वक्त पुरोभाग मे नही आये थे। शायद उत्कल भारती को नाट्यसाहित्य का पहला अर्घ्य इस मौलिक उडिया नाटक "ऊषा" मे ही था। इस वक्त "विवासिनी" भी नाटक के आकार में प्रकाशित नही हुई थी। सुनहट का नाम अमराक्षरो में रहेगा।

कटक में काजी बाजार के चौधरी परिवार के आनुकूल्य में "जगन्नाथवल्लभ" चन्द्र परिवार के आनुकूल्य में (Friends Union) म्यूनिसिपैलटी में और बाबू घृष्णचन्द्र पालित तथा सरकार बाबुओ के उद्यम मे "ऊषा" क्रमान्वय में तीन दलो का अभ्युदय देखा गया खास कटक में, गणेश घाट में। फलस्वरूप कितने अच्छे कलाकार निकले। जगन्नाथवल्लभ मे साठिया प्रदर्म, गोष्ठ बाबू, पटेल सरकार, बालेश्वर के प्रख्यात मंजिना यदु पण्डा, साधु बाबू, मनिबाबू आदि। "अलीबाबा" का अभिनय बहुत बढिया हुआ था। बार बार अनेक बंगीय नाटक चले। हरेक में सुख्याति मिली। "अबूहुसेन" का एक अनुवाद हुआ था। किसी ने उस कदर्य अनुवाद को पसन्द नही किया। यह नाटक हास्यास्पद हुआ।

Friends Union के अधिकांश कलाकार कलेक्टरी अदालत और कमिश्नरी कार्यालयों मे काम करते थे। इस सम्प्रदाय को "रघुवीर" और "चित्तौर-उद्धार" विपुल स्पन्दन लाया था। भाषागोष्ठी में ख्यातिनामा चित्रशिल्पी बाबू नटबिहारी सरकार, संगीताचार्य खान महम्मद आदि थे। यही से सर्वप्रथम अभिनेत्रियो का समागम हुआ। विधिवत् शनिवार, रविवार और बुधवार के दिन अभिनय चाप, कटलेट चाट से बाजार गरम था। काफी टिकट बेचे गये। खूब चोरी भी हुई और फौजदारी भी हुई। किन्तु यहीं से ओडिया भाषा के नाटकों का प्रारम्भ हुआ, फिर भी वह टिक न सका। लगभग चारो ओर बंगीय नाटकों का अनुवाद चलता था। जिन्होंने

भापा होनी चाहिए। नाटक तमाशा देखनेवाले मदरसे में पाठ पढने के लिए नही आते।

तत्परवर्ती काल में समस्त स्थानो में जागरण की अवस्था दिखाई दी। लगभग एक समय में थोडा आगा-पीछा छोडकर पाँच ख्यातनामी सम्प्रदाय निकले। हरेक ने जो चाहा, कुछ निजस्व स्वतत्र रचना लेकर विकसित हुआ। केन्द्रापाडा से वावू गोविन्दचन्द्र "सुरदेव", पुरी से प्रभुपाद मोहन गोस्वामी और कविचन्द्र काली वावू के दल याजपुर और एडताल के कलावन्तो के साथ रहते समय इन पक्तियो के लेखक की प्रचेष्टा थी। सुरदेव राजवशीय थे। वे वडे विचक्षण एव कलावन्त व्यक्ति थे। युगपत् इतने गुण एक व्यक्ति में वहुत ही कम दिखाई पडते हैं। वे नव रुचि के पुजारी, सुश्री, कालेज छात्र, जैसे खेलाड़ी वैसे ही विचक्षण, चित्रकार, साहित्यिक और स्वरशिल्पी थे। वे दक्षिणी उडीशी, हिन्दी, बंगला और अग्रेजी स्वरालि की खान थे। विभिन्न तथा नाना जातीय स्वर-सम्मेलन से उन्होने गीतो की रचना की थी। प्रत्येक गीत सुन्दर थे। वे ही हमारे सगीत तथा साहित्य क्षेत्र में अनेक तैलगी छटा और तेलगू स्वर लाये थे। उनकी रचना में परिपाटी भी थी। वे प्रकृति-वर्णन में सिद्धहस्त थे। देश का दुर्भाग्य है, वे अल्प समय में विजली की आभा दिखाकर चल वसे। जिन्होने इनका कृतित्व देखा है वे अव भी याद कर रहे हैं।

इनके सव नाटक सिर्फ राधाकृष्ण के वारे में है। कालक्रम से रुचि-परिवर्तन के साथ इनकी ज्योति छूट गई है। ऐसा प्रतीत नही होता कि देशवासी ऐसे एक गुणवान् की पूजा कर सके हैं।

लक्ष्मीकान्त वावू—कान्त कवि का अधिक परिचय देना निष्प्रयोजन है। उनके जातीय सगीतो की वलिष्ठता तथा मधुरता और गोवर गडिया चम्पू में कौतुकी रसिकता दोनो सुन्दर है। आज तक उनके समान व्यग विद्रूप करनेवाला कोई नही निकला है।

वे भद्रक तालपदा के जमींदार थे। उनकी "कालीयदमन" और चन्द्रहास ने यथेष्ट उन्मादना पैदा की। भद्रक हाई स्कूल के सगीत-शिक्षक जगवन्धु वावू, उस्ताद मनमोहन वावू और गोलटेवुल पाला के ख्यातनामा लेखक वाछानिधि वावू के सहयोग से इस दल का सुनाम हुआ। लेकिन असमय में कवि वीमार हो गये। वाछानिधि वावू और मनमोहन वावू भी चले गये। योग्य परिचालक के अभाव के कारण यह दल भी असमय में नष्ट हो गया। उस वक्त नित्यानन्द वावू विलकुल छोटे थे।

राधाकृष्ण के वारे में महाजनो की पद्यावली और गोपाल कृष्ण, वनमाली, अभिमन्यु की कवितागुच्छ का प्रभुपाद श्रीमोहन गोस्वामी ने प्रचार किया। देशवासियो ने उस माला को सर्वोत्कृष्ट आग्रह में ग्रहण किया। शायद उस सगीत ने जीवन-वीणा की असली मर्मतत्री को आघात किया, नचेत् इतने टिकट क्यो विकते थे। दस वर्ष तक देशवासियो को समुज्ज्वल सौरभ से मुग्ध करके वे अन्तर्घ्यान हो गये।

काली वावू भी राधाकृष्ण-गाथा गाने लगे थे। वास्तव में उडिया भापा में जीवन कहाँ है, यह वात काली वावू को मालूम है। वे चिरकाल से निर्मल सुखश्राव्य रचना और स्वर-विन्यास से मुग्ध करते आये हैं और आज भी कर रहे हैं।

पर अश्विनी वावू क्षतिग्रस्त हुए। वूर्त कर्मचारियो और सहयोगियो के कारण उनकी क्षति हुई और वह दल ही नष्ट हो गया।

इसके पश्चात् स्वाधीनता का परवर्ती काल आया। काली वावू के "भात" का आकर्पण कोई नही भूला है। क्या भापा, क्या स्वरविन्यास, क्या अभिनय की परिपाटी तीन विभागो की साम्यरक्षा सिर्फ वे ही कर सके । इस भापा के जीवन के मर्मभेद भी उन्हें मालूम है। लेकिन दल नष्ट हो गया है। नारी-शिल्पियो के सहयोग से और नये युग के श्रेष्ठ कलाकारो के अभ्युदय से "अन्नपूर्णा" और "जनता" दोनो धन्य हुए हैं। रोज कृतित्व की आलोचना और समालोचना सवादपत्रो में निकलती है। हमारी तरह प्राचीन रूढियो की आँखो से, तीक्ष्णतर दृष्टि मे समालोचक देखते हैं। कुछ मन्तव्य देना निष्प्रयोजन है। रूपसज्जा, नाटक तथा अभिनय की धारा स्वाभाविक हो गई है। इम युग की समस्याओ के अनुसार विपय-वस्तु चलती है। अत्यन्त क्षीण वेग से दृष्टिकोण और चिन्ताधारा वदल जाती है। मुहुर्मुहु नये के पीछे नये का अवदान आता है। हमें इतना आनन्द आता है कि हमारा स्थान न्यून न होकर ताल सँभाल कर खडा है। सौभाग्य है, हमारे वच्चे प्रगति-पथ में आगामी शत वर्प की ज्योति देखते हैं। वे निश्चय ही कृतकर्मी और धन्य होगे। प्राचीन के लिए कोई रोता नही। जो गया सो गया, इमकी कोई चिन्ता नही। केवल सस्मरण के लिए दो पुरानी वातें सुनाईं। इसलिए कवि ने कहा है—"पतन अभ्युदय वन्धुर, पथा युगे युगे धावति यात्री। हे चिरसारथि! तव रथचक्रे मुखरित हे के दिवा रात्रि"।



इसी कारण श्रीकृष्ण ने पुरी के पुरुषोत्तम क्षेत्र में वास किया। दूसरा मत यह भी कहता है कि इन्द्रद्युम्न के राज्यकाल में विद्यापति शवर राजा विश्वावसु से नीलमाधव को छीन कर ले आये। जब शवर राजा नही माना और नीलमाधव को ले गया तो स्वप्न हुआ कि समुद्र मे एक काठ तैरता हुआ दिखलाई पडेगा। अत जब लोगो ने उस काठ को पाया तो विश्वकर्मा ने त्रिमूर्ति की सृष्टि की थी। कुछ लोग इसी विष्णु पजर मे बुद्ध के दाँत की भी सम्भावना करते है और कुछ विद्वानो का मत है कि त्रिमूर्ति बौद्ध स्तूपो तथा चैत्यो के ढग पर बनी है किन्तु इसमें सत्यता कही भी नही जान पडती और अन्य मत-मतान्तरो द्वारा यह पूर्णत प्रमाणित हो चुका है कि त्रिमूर्ति में बौद्ध धर्म का प्रभाव नही है लेकिन पूजा का विधि-विधान बौद्धधर्म से अवश्य ही प्रभावित है।

यहाँ पर एकमात्र विष्णु ही आराध्य देव नही थे वरन् कर तथा सोमवशी राजा लोग अन्य देवो—जैसे सूर्य, शिव तथा बुद्ध की भी उपासना करते थे। अशोक द्वारा विजित होने पर उत्कल में सर्वप्रथम नागार्जुन आया और उसने राजा मुञ्ज को बौद्ध बनाकर शून्यवाद का सिद्धान्त स्थापित किया जिसका उत्कलीय धार्मिक विचारो पर बडा गहरा प्रभाव पडा। आगे चलकर यही मध्ययुग मे कुछ परिवर्तन के साथ नास्तिक दर्शन हुआ। आठवी शताब्दी मे यहाँ पर बौद्ध धर्म अपने शिखर पर था और दक्षिण उत्कल के करवशी राजा लोग, विशेषकर क्षेमकर, शिवकर और शुभकर बुद्ध के परम उपासक थे। इन्ही लोगो के समय मे बौद्ध धर्म-मिश्रित विधि से श्री जगन्नाथ जी की पूजा होने लगी थी।

जैसे उत्कलीय वैष्णव धर्म पर बौद्ध धर्म अपनी एक छाप छोड गया उसी प्रकार शैव धर्म भी। मध्ययुगीन राजा जैसे तोपल के मान, कोनगोडा के शैलवशी तथा कलिंग के माथर सभी शिव के उपासक थे। नवी शताब्दी में जब शकराचार्य पुरी आये तो उन्होंने गोवर्धन नामक मठ की स्थापना की और शैव पद्धति पर श्री जगन्नाथ जी की पूजा-आराधना की विधि नियमित की, लेकिन कुछ विधियाँ पूर्व की भाँति बनी ही रही। शकराचार्य के उपदेशो से शैव धर्म की बडी उन्नति हुई और यहाँ पर बहुत से शैव मन्दिरो की स्थापना हुई, जिसका एक उदाहरण भुवनेश्वर का लिंगराज का मन्दिर है। दसवीं शताब्दी मे ययाति महाशिव गुप्त ने परम महेश्वर की उपाधि भी धारण की थी। इससे जान पडता है कि शैव धर्म का कितना प्राबल्य रहा होगा। इसी प्रकार सूर्य, शक्ति और गणेश इत्यादि की भी आराधना होती रही। साम्ब पुराण में कोणार्क की महिमा वर्णित है तथा "मादला पाञ्जी" मे पुरन्दर केसरी के अर्क-क्षेत्र मे मन्दिर बनवाने का वर्णन है। १३वी शताब्दी मे नरसिंह देव प्रथम ने कोणार्क का मन्दिर बनवाया था। इसके अतिरिक्त अन्य मन्दिरो तथा अनन्त गुफा की दीवालो पर भी सूर्य की मूर्तियाँ स्थापित है। इससे प्रमाणित होता है कि यहाँ पर सूर्य की महिमा भी बहुत प्रचलित थी। इसी प्रकार शक्ति की आराधना का भी खूब प्रचार था। प्रख्यात कवि सारला दास शक्ति के अनन्य उपासक थे। वैसे तो पुरी के जगन्नाथ जी के मन्दिर मे तथा अन्य मन्दिरो मे शक्ति की स्थापना है ही किन्तु सबसे प्रसिद्ध जाजपुर में विरजादेवी का मन्दिर है जिसे पीठ क्षेत्र भी मानते है।

से की जाती है जो आत्मा या चित् में वास करती है, जिसके कारण सृष्टि होती है। इसी योगमाया को श्रीकृष्ण ने भी स्वीकार किया है कि वे प्रकृति है और जिसका उद्भव श्रीकृष्ण के शरीर से हुआ है। इसी विन्दु और योगमाया के सयोग से द्वादश अक्षर मत्र का उद्भव हुआ। प्रथम द्वादश अक्षर के पूर्व त्रिवीज अर्थात् क्लीम्, स्लीम् और ह्लीम् का उद्भव हुआ, जिसका बोध इस प्रकार होता है—

| | | |
|---|---|---|
| क्लीम् | स्लीम् | ह्लीम् |
| जगन्नाथ | सुभद्रा | बलराम |
| भगवान् | गुरु | शिष्य |

इसी त्रिवीज से द्वादश मत्र का उद्भव हुआ। जैसे—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

उत्कलीय वैष्णव धर्म मे निर्गुण और सगुण दोनो का सामजस्य होते हुए भी निर्गुण ब्रह्म की भावना से यहाँ का दर्शन अधिक ओतप्रोत है। इस निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गुरु और ज्ञान की आवश्यकता है। शिष्य, गुरु और ज्ञान के द्वारा ही भगवान् को प्राप्त करता है।

अत उपरोक्त त्रिवीज उत्कलीय वैष्णव धर्म मे इस प्रकार माना जाता है—

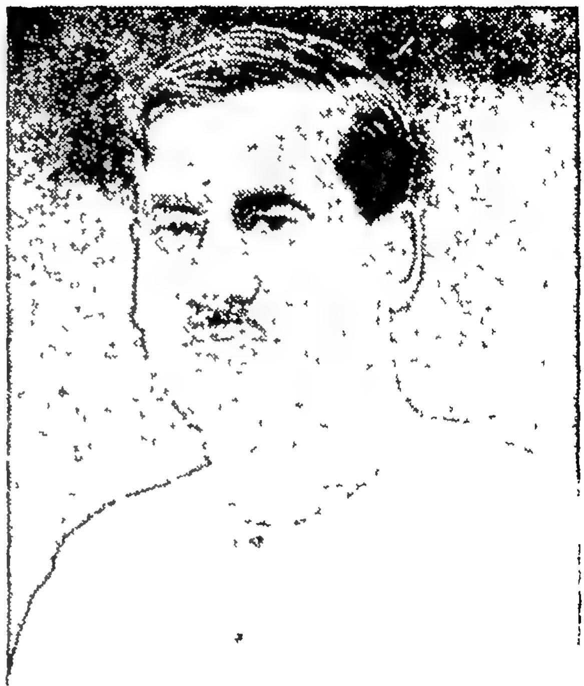
| | | |
|---|---|---|
| ह्लीम् | स्लीम् | क्लीम् |
| बलराम | सुभद्रा | जगन्नाथ |
| शिष्य | गुरु | भगवान् |

अर्थात् शिष्य गुरु के द्वारा ज्ञानार्जन करके भगवान् को प्राप्त करता है। इस दर्शन मे अष्टाग योग की महिमा ही अधिक है। जप, नियम, आसन और प्राणायाम द्वारा ही मन को भगवान् मे रमा देने की लालसा दीखती है। भक्त भगवान् की धारणा में जब समाधिस्थ हो जाता है तब भगवान् की लीला का आस्वादन करता है। उस लीला के आस्वादन के पूर्व भक्त ज्ञानार्जन करता है तथा नाना प्रकार के जप, नियम, आसन और प्राणायाम इत्यादि के द्वारा आत्मशुद्धि करता हुआ ईश्वर में एकमयता का अनुभव करता है। भक्त यत्र, तत्र, मत्र छाया, ज्योति, अवाज, हज, समाधि इत्यादि नाना प्रकार की परिस्थितियो को पार करते हुए ईश्वर का साक्षात्कार करता है। जब जीव परम में मिल गया तो वह ईश्वरीय लीला मे आत्मविभोर होकर भगवान मे एकरस हो जाता है। इसीलिए इसे ज्ञानमिश्रा भक्ति कहते है और यह सिद्धान्त बहुत ही उत्कृष्ट कोटि का माना जाता है। भक्त इसी पिण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन पाता है। इस प्रकार की ज्ञानमिश्रा भक्ति कर्म और ज्ञान-मूलक है। किन्तु यह ज्ञान और धर्म-मूलक भक्ति बहुत

यह सहजिया धर्म भी कहलाया। सभी का ध्यान कृष्ण के लीलाधाम मे ही केन्द्रित हुआ। वे कृष्ण द्वारिका के नही वरन् वृन्दावनविहारी है जिनका चरित एक लौकिक मानव के रूप मे वर्णित है, उसी पर लोगो का ध्यान आश्रित रहा। फलत साधारण जनता इस गौडीय वैष्णव धर्म मे भी अश्लीलता की झलक पाने लगी। इतना होने पर भी यह धर्म सरल और सुगम है इसलिए साधारण जनता में इसकी मान्यता अधिक हुई।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उत्कलीय वैष्णव धर्म नाना प्रकार के धर्मो से प्रभावित होते हुए भी अपनी सत्ता को बनाये हुए है। समय की गति-विधि ने इसमे नाना प्रकार के उलट-फेर किये किन्तु इसका मूलरूप ज्यो का त्यो बना रहा।





श्री राजकृष्ण बोस
मन्त्री, उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक

(८) खेलकूद जैसे ऊँची कूद, लम्बी कूद पोलवाल्ट जैवलिन और शाटपुट तथा हर्डिल।

(९) लाठी द्वारा सामूहिक ड्रिल।

(१०) तैरना, जैसे स्थिर जल मे अनेक प्रकार से तैरना और उतराना नदी मे तैरना तथा समुद्र में तैरना।

(११) वैज्ञानिक ढग से शरीर-मालिश।

(१२) रोग-निवारण के लिए विशेष शारीरिक व्यायाम।

सिद्धान्त सम्बन्धी--

(१) उपरोक्त अभ्यास सम्बन्धी व्यायामो की सिद्धान्त-शिक्षा।

(२) योग तथा प्राणायाम की शिक्षा।

(३) शरीर की बनावट, स्वास्थ्य-पाठ तथा शरीर के काम करने के सिद्धान्त।

(४) ब्रह्मचर्य का महत्त्व।

(५) स्वास्थ्य का मानसिक सम्बन्ध।

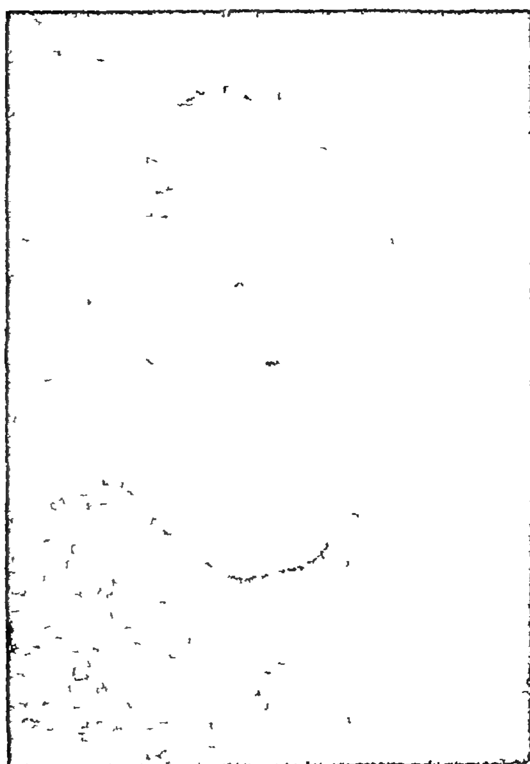
(६) स्वय-सेवको की शिक्षा।

स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद सन् १९४८ ई० मे इसे अपने युवको के कल्याण-कार्य के लिए सरकार से सहायता मिली और सरकार ने यह भी कहा कि वह अपने कार्यक्षेत्र को प्रान्त के अन्य भागो में भी बढावे। यद्यपि खेलकूद के लिए ओडिशा एथलेटिक असोसियेशन नामक सस्था सन् १९३० से ही है किन्तु इसने स्वास्थ्य बनाने तथा उसे सुरक्षित रखने के लिए कुछ भी नही किया है। ओलेम्पिक असोसियेशन ने ओडिशा मे एक स्टेडियम बनवाया है जहाँ खेल-कूद की अनेक प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ होती है। अभी कुछ दिन हुए कि स्पोर्टिंग कौंसिल बनाई गई है और यह आशा की जाती है कि खेल-कूद सम्बन्धी सभी कार्य इसी के द्वारा सचालित होगे।

स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार देशी व्यायामो की वृद्धि और विस्तार के लिए बहुत जोर दे रही है और उन सस्थाओ को, जो देश में व्यायाम आदि का विस्तार कर रही है, मुक्तहस्त से वृत्ति दे रही है। यह आशा की जाती है कि ओडिशा प्रान्त मे सरकार की सहायता से थोडे दिनो मे ही व्यायामशालाएँ प्रत्येक जिले तथा तहसीलो के केन्द्रो मे खुल जायेंगी और प्राचीन काल के "अखाडे" तथा "जगाघर" गाँवो में पुन स्थापित हो जायेंगे।



दुबे जी का जन्म १ जुलाई १९११ को हुआ था। आप एम० ए०, साहित्य-रत्न हैं। वर्धा के आर्ट्स कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर रह चुके हैं। सन् १९३६ से राष्ट्रभाषाप्रचार के महत्त्व के कार्य में आपने अपने को पूर्ण रूप से लगा दिया है। सन् १९४२ से राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति के सहायक मंत्री तथा परीक्षा-मंत्री हैं।



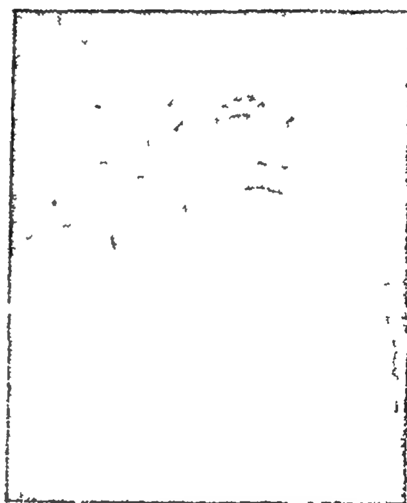
प० रामेश्वरदयाल दुबे

आपकी कविताएँ ओजपूर्ण तथा प्रसादगुणयुक्त होती हैं। आपकी कतिपय रचनाओं में अनूठे ढंग का हास्यरस प्रस्फुटित हुआ है। सुलभ बाल-साहित्य के आप सफल प्रणेता हैं। इधर आपने अनेक एकांकी लिखे हैं, जो सफलता के साथ अभिनीत हो चुके हैं। ग[illegible] हिन्दी गीत "भारत जननी एक हृदय हो" आपकी ही कृति है।

श्री परमानंद आचार्य १९२३ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० एस्-सी० में सम्मान के साथ उत्तीर्ण होकर बूटानी में एम० एस्-सी० में पढते थे। इस समय उन्होंने इंडियन म्यूजियम के प्रत्नतत्व विभाग के सुपरिंटेंडेंट श्री रमाप्रसाद चंद को मयूरभंज के भंजवंश के बारे में सामग्री दी थी।

इतिहास-गवेषणा केंद्र मयूरभंज की राजधानी बारिपदा में स्थापित हुआ। आचार्य का जन्मस्थान मयूरभंज सदर सब-डिवीजन के अंतर्गत बारपडा परगना का वैद्यपुर गाँव है। वहाँ प्राचीन काल से चडक पत्थर या वज्रसूची जातीय प्रस्तरास्त्र मिलते थे। श्री आचार्य बचपन में इनको संग्रह करके खेला करते थे। खिचिंग में काम करते समय श्री चंद्र महाशय से इनका जिक्र किया, जिस पर उन्होंने एक प्रबंध लिखा था।

श्री परमानंद आचार्य की चेष्टा से श्री रमाप्रसाद चंद ने ओडिशा के पुरी, भुवनेश्वर, जाजपुर, चउदवार, ललितगिरि, उदयगिरि और रत्नगिरि आदि प्राचीन स्थानों को घूमकर देखा था। श्री चंद ने पुरी में रहते समय श्री आचार्य की सहायता से मादला पंचांग के विभिन्न पाठों का संग्रह करके एक अँगरेजी प्रबंध लिखा था।



श्री परमानंद आचार्य, बी०एस्-सी०

१९३० ई० से १९४१ तक श्री परमानंद आचार्य खिचिंग के मंदिरों के पुनरुद्धार के काम में लगे हुए थे। खिचिंग के मंदिर जिस तरह पुनर्गठित हुए हैं, वैसा काम उस वक्त भारत में कम दिखाई पडता था।

सब विभागीय कार्यों के साथ ओडिशा और ओडिशा गडजात के ऐतिहासिक प्रत्नतात्त्विक को गठित करने का सुयोग श्री आचार्य को विशेष रूप में मिला था।

मयूरभंज ओडिशा के साथ मिश्रित हुआ। इसके बाद ओडिशा में श्री आचार्य का कर्म-क्षेत्र बढ गया। वे पहले १९५० ई० में ओडिशा सरकार के द्वारा सुपरिंटेंडेंट आफ रिसर्च के रूप में नियुक्त हुए थे। १९५४ ई० में उन्होंने कार्य से अवसर ले लिया। फिर वे ओडिशा सरकार के द्वारा जुलाई १९५५ ई० में सुपरिंटेंडेंट आफ आरचिओलोजी के कार्य में नियुक्त होकर जुलाई १९५८ ई० तक कार्य करते रहे।

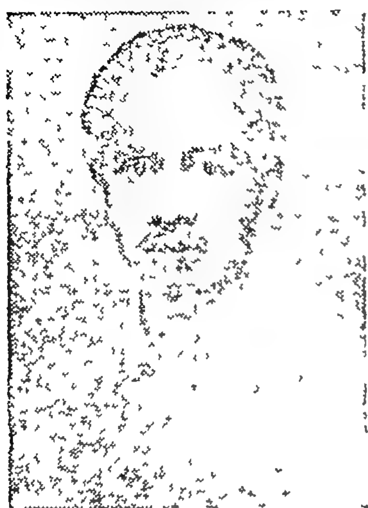
ओडिशा के आधुनिक म्यूजियम और प्रत्नतत्त्व विभाग में उनके कार्यकाल में बहुत उन्नति हुई है।

श्री राजगुरु का जन्म अगस्त सन् १९०३ ई० में पारलाखेमडी में हुआ था। आप आन्ध्र विश्वविद्यालय के "उभयभाषा-प्रवीण" उपाधिधारी हैं। लिपितत्त्व की शिक्षा के लिए आप १९२६ में मद्रास संग्रहालय में और सन् १९३० ई० में कलकत्ता संग्रहालय में कुछ समय तक थे। सन् १९२७ ई० में आपका प्रथम प्रबंध ओडिशा रिसर्च सोसाइटी जर्नल में प्रकाशित हुआ। उसके

श्री सत्यनारायण राजगुरु

बाद सन् १९३० से, धारावाहिक रूप से, आपके अनेक अंग्रेजी प्रबंध आन्ध्र रिसर्च सोसाइटी और बिहार ओडिशा रिसर्च सोसाइटी जर्नलों में प्रकाशित हुए हैं। उस समय ओडिशा के उत्कल-साहित्य, मुकुर, सहकार, नवभारत प्रभृति ओडिआ और अंग्रेजी पत्रिकाओं में आप धारावाहिक रूप से आलोचना करते थे। सन् १९३२ में आपने उत्कल साहित्य समाज की वार्षिक सभा में इतिहास शाखा का सभापतित्व किया था। सन् १९४८ में जब कलिंग ऐतिहासिक सोसाइटी की नींव पड़ी तो आप उसमें साधारण कर्मचारी के रूप में नियुक्त हुए। सन् १९५० से भुवनेश्वर में प्रतिष्ठित ओडिया संग्रहालय में क्यूरेटर के स्थान पर आप काम कर रहे हैं।

आपका जन्म २० अक्टूबर सन् १९२४ को वागशाहि ग्राम (जिला कटक) मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री दिव्यसिह महाति था। आपने रेवेन्सा कालेज कटक से १९४९ में एम० ए० उत्तीर्ण किया। आपने ओडिया एम० ए० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया, एतदर्थ स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। उसी वर्ष से आप उसी कालेज में ओडिया के प्राध्यापक नौ वर्ष तक रहे। इस समय आप वक्शी जगवधु विद्याधर कालेज भुवनेश्वर में ओडिया के प्राध्यापक हैं।



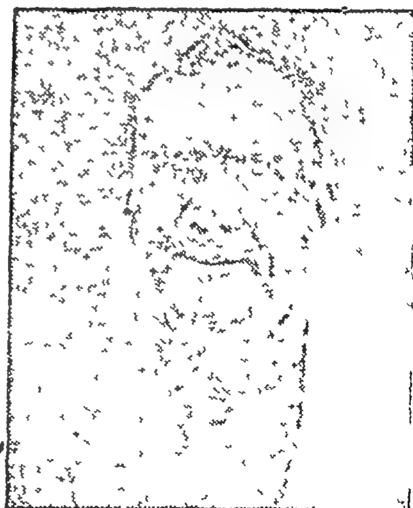
अध्यापक वशीधर महाति, एम०ए०

आप ओडिया के उदीयमान लेखक है। अव तक आपने १-साहित्य और सस्कृति, २-ओडिशा आदिवासी-सस्कृति, ३-ओडिशा में वौद्धधर्म, ४-अभिभापण पुस्तकें लिखी है। इन्होने आदिकवि सारला दास के सारला महाभारत पर विवेचनात्मक विवरण के साथ वहुत से गवेपणात्मक लेख लिखे हैं। सास्कृतिक विषय पर भी इनके अनेक सारगर्भित लेख और आलोचनाएँ है। इन्होने ओडिया के ताडपत्रो पर लिखे शताधिक प्राचीन ग्रथो का सग्रह किया है, और अभी कर रहे हैं। इनका यह प्रयास वडा प्रशसनीय है।



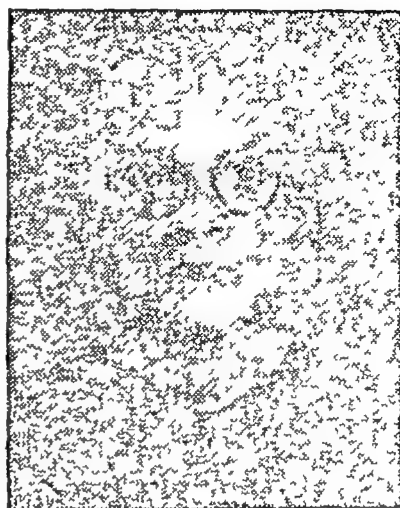
१८८७ ई० मे श्रावण शुक्ल एकादशी, शनिवार को कटक जिले के अन्तर्गत सुखनई परगना के नारणपुर गाँव मे आपका जन्म हुआ था।

पाँच साल की उम्र मे कटक की कनिका राजवाटी मे आपका विद्यारभ हुआ। फिर क्रमश आपने रोमन कैथलिक स्कल से माइनर, मिशन हाईस्कूल से मैट्रिकुलेशन, लदन मिशन सोसायटी भवानीपुर (कलकत्ता) से आइ० ए० सन् १९१२ ई० मे कटक रेवेन्सा कालेज से सस्कृत आनर्स लेकर वी० ए० और अत मे १९१४ ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। विद्यार्थी-जीवन में आप रगमच परिचालना और हॉकी,



डाक्टर आर्तवल्लभ महाति, एम०ए०

आपका जन्म पुरी जिले के अन्तर्गत खुरदा सव-डिवीजन के प्रसिद्ध थॉला गाँव में २० जनवरी १९०१ ई० की रात को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री गोलोककृष्ण पटनायक और माता का नाम श्रीमती राधाराणी देवी था। दुर्भाग्य से पिता अपनी सम्पत्ति से हाथ धो बैठे, इसलिए बचपन से ही कवि को गरीवी का सामना करना पडा था। लँगडे होने के कारण आपकी दुर्गति अधिक बढ गई थी, मगर कष्ट-कण्टको में ही प्रतिभा-कुसुम का अच्छा विकास होता है। यही आपके जीवन मे हुआ था। विभिन्न वृत्ति-परीक्षाओ को योग्यता के साथ उत्तीर्ण करके आपने सन् १९२० ई० में सत्यवादी उच्च अग्रेजी विद्यालय से मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास की। वर्नाक्यूलर व हाईस्कूलो में पढते वक्त से ही आपकी कवि-प्रतिभा का परिचय मिला था। शारीरिक अक्षमता एव अर्थाभाव का मुकाविला करते हुए आप १९२० ई० में रेवेन्सा कालेज में दाखिल हुए। दो साल तक असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपकी पढाई वन्द हो गई थी। आपने १९२३ ई० में फिर कालेज मे पढाई शुरू की और १९२६ ई० में अग्रेजी में आनर्स के साथ ओडिशा में पहले स्थान के अधिकारी वन वी० ए० पास किया। अग्रेजी साहित्य पर आपका असाधारण अधिकार था। आपकी रचनाशैली प्रसिद्ध अग्रेजी साहित्यिक मेकाले की शैली जैसी थी। आपने वी० एल० का अध्ययन किया और उसमें भी सफलता हासिल की।



कवि श्री विच्छन्दचरण पटनायक

इसके वाद पुरी जिले के ओलसिंह उच्च अग्रेजी विद्यालय के आप सहकारी प्रधान शिक्षक हुए। फिर सन् १९३० से आप प्रसिद्ध प्राची समिति के सम्पादक हुए और डाक्टर आर्त्तवल्लभ महान्ति के साथ वहुत से ओडिआ ग्रन्थों के प्रामाणिक सटीक सस्करणो का प्रकाशन किया। आपकी लिखित अग्रेजी रचनाएँ आपकी सम्पादित "प्राची" पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। सन् १९३४ ई० मे प्राची समिति को छोडकर कवि उत्कल साहित्य-समाज के सहकारी सम्पादक तथा सम्पादक वने और अग्रेजी में "वैतरणी" तथा ओडिआ में "जागरण" पत्रिकाओ का सम्पादन किया। सन् १९३८ में श्रीमती नेत्रमणि देवी के साथ आपकी शादी हुई। आपके एक पुत्र और दो कन्याएँ हैं।

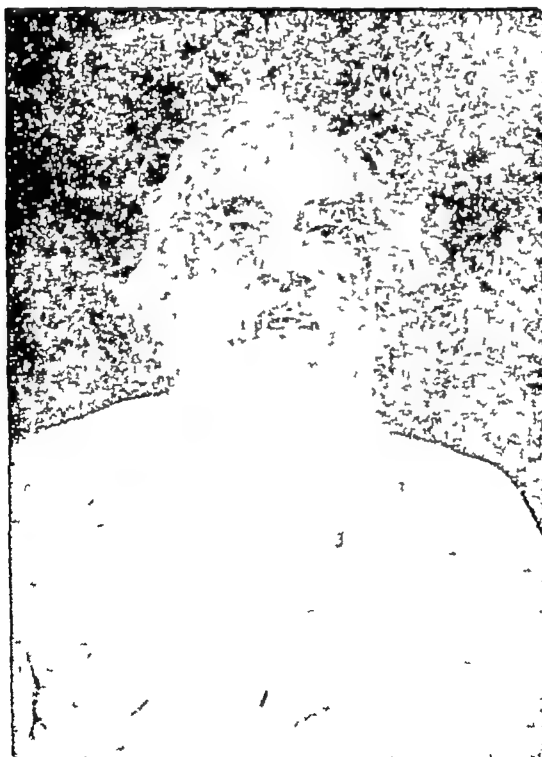
सन् १९४० ई० से १९४२ ई० तक आपने कटक मे वकालत की। सन् १९४७ ई० तक स्वर्गीय गोपालचन्द प्रहराज के रचित भाषाकोष के सम्पादन मे अमूल्य सहायता की थी। आप उत्कल साहित्यसमाज के सव उत्सवो के पुरोधा है। सैकडो प्रतिभाशाली छात्र साहित्यिक आपके

आप बी० ए० में गणित और संस्कृत का अध्ययन करते थे, पर मन का झुकाव ओडिआ साहित्य के प्रति था। साहित्यिक और समालोचनात्मक जीवनयापन के लिए वे कवि मानसिंह और गडनायक के चिर-कृतज्ञ हैं। सन् १९५७ में समालोचना साहित्य में इन्होंने नूतन युग का सूत्रपात किया है। राष्ट्रभाषा पुस्तकभण्डार, कटक के द्वारा इनकी "व्यास कवि फकीरमोहन" पुस्तक प्रकाशित हुई है।

अध्यापक सामन्तराय अभी आधुनिक ओडिआ साहित्य का विराट् इतिहास संकलन कर रहे हैं।



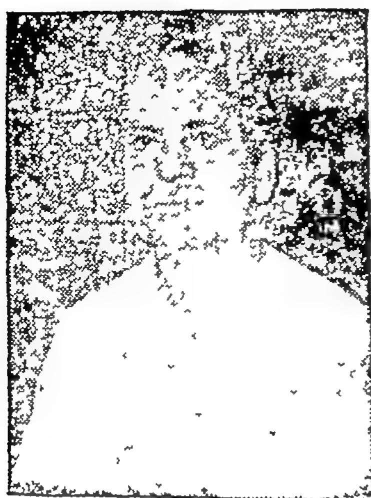
५ अगस्त सन् १८८४ ई० में आप का जन्म पुरी शहर के नजदीक श्रीरामचन्द्र पुर शासन मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री आनन्द दास और माता का नाम श्रीमती हीरा देवी



पण्डित नीलकंठ दास

था। आपने सन् १९०५ ई० में पुरी जिला स्कूल से एन्ट्रेन्स पास किया। फिर सन् १९०७ मे आई० ए० तथा १९०९ में बी० ए० परीक्षाएं उत्तीर्ण कर ली। बी० एल० स्कालरशिप पाकर

आप सबलपुर-निवासी हैं। शिक्षा समाप्त करके कुछ समय तक आप शान्ति-निकेतन

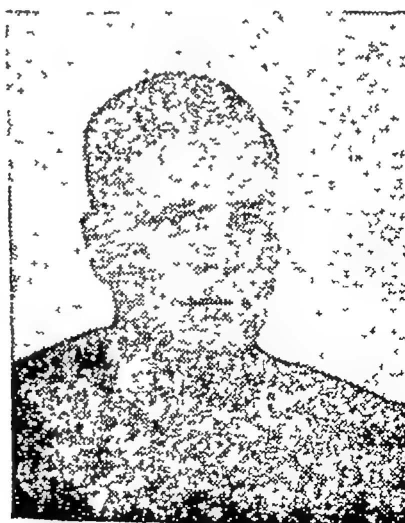


प्राध्यापक श्री प्रह्लाद प्रधान एम०ए०

में अध्यापन का काम करते रहे। तत्पश्चात् संस्कृत के अध्यापक होकर चीन देश में रहे। आजकल आप उत्कलविद्यालय (उड़ीसा) में प्राध्यापक का काम कर रहे हैं।

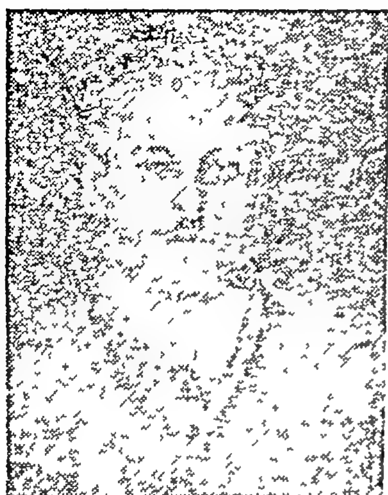


डॉक्टर हरेकृष्णजी महताब का जन्म २१ नवम्बर सन् १८९९ ई० में वालेश्वर जिले



डाक्टर हरेकृष्ण महताब

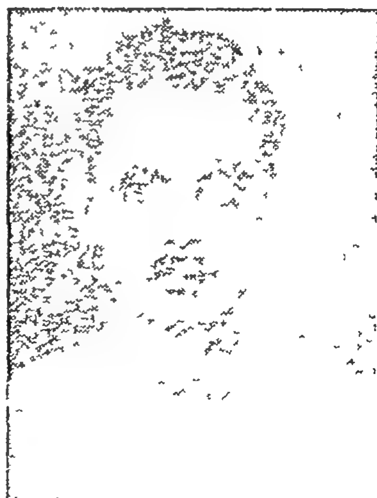
के अगरपाडा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम ...



सन् १९२० मे, मोहनपुर सिकरी नामक गाँव में (विहार के शाहावाद-आरा जिले में) आपका जन्म हुआ। सन् १९४७ में पटना युनीवर्सिटी से एम० ए० किया। अव तक का जीवन अध्यापन मे व्यतीत हुआ है। इन दिनो आप गृह मत्रालय, भारत सरकार की हिन्दी-शिक्षण योजना मे काम कर रहे है। अध्ययन-अध्यापन और लेखन मे आपकी रुचि रहती है। कहानियो के प्रति विशेष आकर्षण है। कहानियाँ यो वहुत सी लिखी पडी है, पर उनका प्रकाशन नही हो सका है, फिर लिखना कभी नही रुकता।

श्री परशुराम सिंह, एम०ए०





श्री हरिमोहनप्रसाद श्रीवास्तव

जन्मस्थान—अर्दली वाजार, वनारस। पारिवारिक स्थिति—मध्यवर्गीय। शिक्षा-दीक्षा काशी में। प्रारभिक शिक्षा—जे० पी० मेहता कालेज। वी० ए० डी० ए० वी० कालेज, एम० ए० काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। रुचि—कविता, कहानी, आलोचना और शोध-सबधी रचनाएँ लिखना।

नागरीप्रचारिणी सभा काशी में वृहद् हिन्दी-कोश के भूतपूर्व सहायक सपादक। सप्रति प्राध्यापक हिन्दी, रेवेन्सा कालेज, कटक।

कृतियाँ—(१) मध्यकालीन हिन्दी गद्य (शोधकृति), (२) कच्ची लोइयाँ (कहानी-सग्रह), (३) अभिजात (रचना सकलन का सपादन), (४) हिन्दी में प्रयुक्त छन्द और उनके मूल स्रोत पर अन्वेषण जारी है।



डाक्टर नवीन कुमार साहु, एम० ए०, पी एच० डी०, कटक रेवेंसा कालेज में इतिहास-अध्यापक हैं। ओडिशा में बौद्ध धर्म आपका निबंध है। आपका लेख यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन की सिफारिश से उत्कल विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है। आपकी किताबें अमेरिका और यूरोप में विशिष्ट इतिहासवेत्ताओं द्वारा प्रशंसित हैं। डाक्टर साहु ने हण्टर, स्टार्लीं, वी स, राजेन्द्रलाल मित्र, आदि के ऐतिहासिक लेखों का संपादन किया है। आपने "भारतीय नौ-



डाक्टर नवीन कुमार साहु

जीवन" नामक एक ओडिया पुस्तक गवेषणापूर्वक लिखी है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भारत सरकार द्वारा विवेचित होकर पुरस्कृत हुआ है। डाक्टर साहु आजकल रेवेंसा कालेज के स्नातकोत्तर वर्ग में प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति एवं ओडिशा का इतिहास तथा संस्कृत पढाते हैं।

के समय अनेक जातीय सगीत लिखकर आपने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की थी। "गीतलहरी" इसी प्रकार का कवितासग्रह है।



सगीतज्ञ श्री श्यामसुदर धीर का जन्म कटक जिले के मधुपुर गढ के राजवश में सन् १८९७ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम जगवधु धीर सामत सिंहार है। सगीत-चर्चा इनका परपरागत गुण है। जगवधु धीर सामत सिंहार मधुपुर राज-परिवार में सगीत-शिक्षक थे। श्यामसुदर जी ने पाँच वर्ष की उम्र में अपने पिता से प्रारभिक शिक्षा के साथ साथ सगीत भी सीखा। मधुपुर के पटायत श्री वलदेवचद्र धीर जगवधु जी से सगीत सीख रहे थे। इसलिए वालक श्यामसुदर का पटायत जी के साथ घनिष्ठ सवध रहा। कुछ दिनो वाद जगवधु जी की मृत्यु हो गई, और पटायत्त साहव कटक के प्रसिद्ध सितार वादक अब्दुल रहमान, गया के भारत-विख्यात उस्ताद श्री हनुमानदास और उनके शिष्य श्री रामप्रसाद चौवे से शास्त्रीय सगीत सीखने लगे। उत्कलीय सगीत सिखानेवालो में भिगारपुर के श्री सत्यवादी साहु और मधुपुर के गायक श्री चैतन्य मिश्र प्रधान हैं। इसके अलावा भारत के कई प्रसिद्ध प्रसिद्ध गायको और वादको तथा कलकत्ता, वनारस, लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली, राजस्थान तथा दक्षिण-भारत की अनेक सगीत सस्थाओ में रहकर पटायत साहव के साथ शिक्षा पाने का सौभाग्य श्यामसुदर जी को मिला। शास्त्रीय रीति में सितार, वेहेला, ऐसराज, स्वरवहार, सरेव, सारगी आदि वजाने और इन वाद्यो के सहारे विभिन्न राग-रागिनियो के साथ ध्रुपद, धमार और खयाल गाने मे इनकी निरविच्छिन्न साधना रही। ओडिशा के पूर्वप्रचलित शास्त्रीय सगीतो की गवेपणा, गायन, पखावज, वायाँ तवला, ढोलक और खोल आदि का वजाना, प्रवृत्तिमार्गी सगीतो के वदले आध्यात्मिक शाति



सगीताचार्य श्री श्यामसुदर धीर

'परशुराम-विजय' आदि नाटको का अभिनय कराया। उसी समय से आपका मन नाटिका-रचना में लग गया।

इसके बाद कलकत्ता, बारिपदा आदि शहरो में भी आपने नृत्य तथा अभिनय दिखाकर उनमें समुचित अभिज्ञता प्राप्त की।

सन् १९२६ ई० में आपने पुरी मे एक रासदल वनाया जो १९४० ई० तक चला। ओडिया कवियो के गीतो और विविध राग-रागिनियो के अनुयायी वन आप नाटक लिखने लगे और सगीत, नाच तथा अभिनय आदि का निर्देश देने लगे। ओडिशा में जब किशोरचन्द्रा नन्द चम्पू का लोप होने जा रहा था तव आपने सन् १९३२ ई० में इसको नाटकीय रूप दिया। इससे आपकी प्रशसा हुई। गीत-गोविन्द के छन्द, मात्रा तथा वृत्त के अनुसार आपने उसकी रचना ओडिया में की और उसका अभिनय कराया। उस समय उत्कल साहित्य समाज के सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप में इसकी विवेचना की गई और आपको पुरस्कार मिला।

सन् १९४० ई० में आपने 'ओडिशा थिएटर्स' खोला और पहले आपने ही रगमच पर सामाजिक नाटको का अभिनय करवाया। जिन पुरुषो तथा नारी शिल्पियो को आपने तालीम दी थी, वे आज स्थानीय दूसरे रगमचो पर ख्यातनामा शिल्पी है।

पहले १९०७-८ ई० में आपने चर्चिका देवी की एक वन्दना लिखकर अपनी माँ को दिखाई। माँ के निर्देशानुसार आपने यह कविता चर्चिका देवी को गाकर सुनाई। यही आपकी सर्वप्रथम रचना है।

आपकी पहली कविता-पुस्तक "कलाहाण्डिआ मेघ" सन् १९१७ ई० में प्रकाशित हुई थी। स्वर्गीय नन्दकिशोर वल, स्वर्गीय मधुसूदन दास तथा स्वर्गीय विश्वनाथ कर आदि प्रमुख साहित्यिको ने आपकी कविता-पुस्तक की प्रशसा की थी। उसके वाद आपने कई नाटक और एकाकी लिखे। कविता, कहानी, अभिधान, सगीत आदि सभी विषयो पर आपकी पुस्तकें है। आपके रचित गीतो की सख्या प्राय ३ हजार है।

नृत्य, सगीत तथा वाद्य-शिक्षा सम्वन्धी कई पुस्तको तथा समालोचनात्मक कई रचनाओ की हस्तलिपियाँ अद्यावधि प्रकाशित नही हुई है।



### श्री जी० यन० माथुर

आप उत्कल सरकार के जगल विभाग में डाइरेक्टर एव सेक्रेटरी है। आप अपना कार्य बडी ही लगन से करते हैं।



### श्री वी० डी० पृष्ठि

आप माइन्स के विशेषज्ञ है। आजकल आप इस विभाग के सेक्रेटरी पद पर है।



कटक जिले के बालिकुदा ग्राम में १५ जुलाई सन् १९२९ ई० में एक जमीदार परिवार में आपका जन्म हुआ। आपके पिता वीर किशोर दास एक प्रसिद्ध सत्याग्रही और कांग्रेस-कर्मी थे। गाँव ही से माइनर पास करके उच्च अंग्रेजी शिक्षा के लिए आप कटक आये। यहाँ कुछ वर्ष पढ करके रेवेन्सा कालेज से बी० ए० पास किया, फिर पोस्ट ग्रेजुएट बनने के लिए लखनऊ गये। वहाँ मानव-विज्ञान में प्रथम स्थान पाकर स्वर्ण पदक पाया। ओडिशा सरकार से वृत्ति लेकर आपने कुछ दिनो तक गवेषणा की। पटना विश्वविद्यालय में सन् १९५२ से १९५४ तक उत्तर स्नातक समाज-विज्ञान विषय के अध्यापक हुए। सन् १९५४ से १९५६ तक राँची-स्थित, बिहार सरकार के द्वारा प्रतिष्ठित, आदिवासी गवेषणा केंद्र के सर्वप्रथम सहकारी निर्देशक थे, और साथ ही निर्देशक का दायित्व भी सँभाला। सन् १९५६ से ओडिशा सरकार के आदिवासी गवेषणा केन्द्र में मुख्य रूप से आप काम कर रहे है। इस समय आप भारत सरकार के मानव-विज्ञान परामर्शदाता के सभ्य रूप में मनोनीत है।



श्री नित्यानद दास

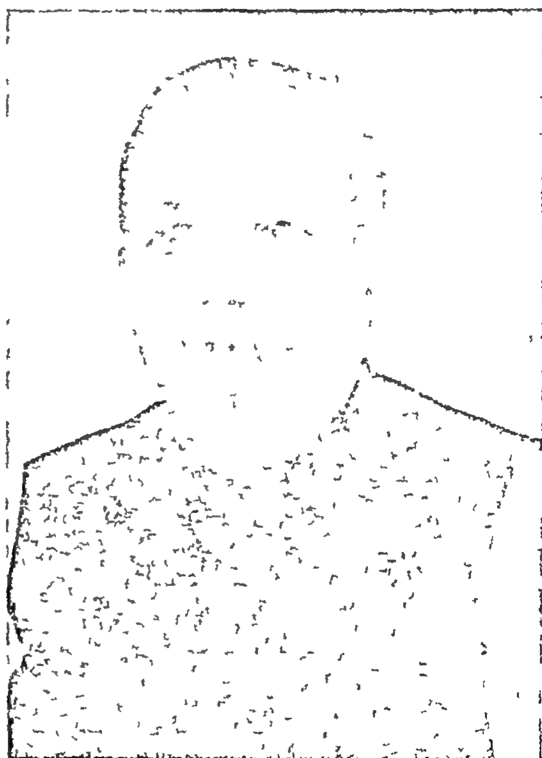


डा० कुजविहारी दास

आप शान्तिनिकेतन में ओडिया भाषा के प्रोफेसर हैं। आप उत्कल प्रान्त के विख्यात लोकगीत-सग्रहकर्त्ता हैं।

❁

आपका जन्म जून सन् १९०६ ई० मे वालेश्वर जिले के कल्याणी ग्राम में एक मध्य-वित्त परिवार में हुआ था। वालेश्वर जिला हाई स्कूल में पहले अध्ययन किया और कृती मेधावी छात्र के रूप से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास किया। स्कूल से छात्रवृत्ति भी मिली। इसके वाद कटक रेवेन्सा कालेज से अग्रेजी साहित्य में "आनर्स" सहित वी० ए० पास करके सव-डिप्टी कलेक्टर होकर सरकारी नौकरी की। इस नौकरी में इनका विशिष्ट प्रभाव हुआ। आप अपने कार्यक्षेत्र में लोकसेवा करना पसद करते हैं। फिर समवाय विभाग में आपकी वदली हो गई। सन् १९४० ई० मे आप समवाय विभाग में कार्य करते हुए इस विभाग के ज्वायट रजिस्ट्रार के पद पर है। समवाय विभाग में रहते समय आप विश्व मिलित जाति-सघ से वृत्ति लेकर उत्तर अमेरिका के कनाडा में समवाय मम्वन्ध की विशेप जानकारी के लिए गये थे।

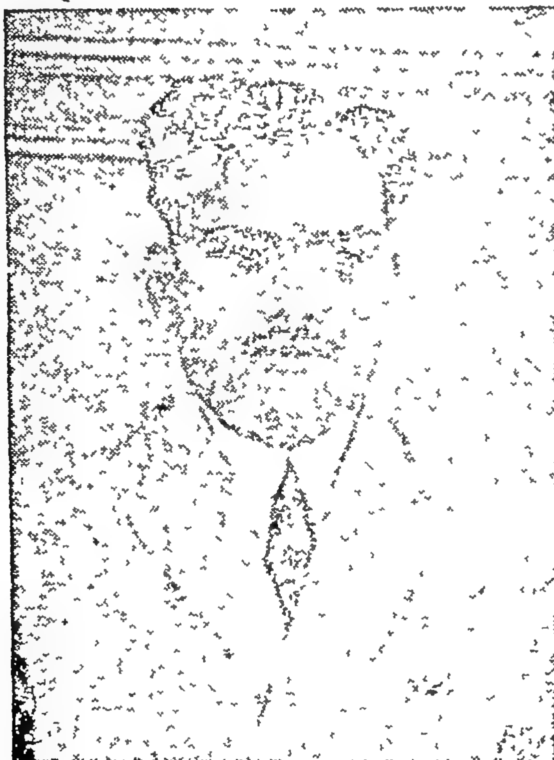


श्री अनन्तप्रसाद पण्डा, वी०ए०

❁

कार्यकर्त्ता हो गये। आप सन् १९४६ ई० में डिप्टी सेक्रेटरी, आई० सी० एस० के समान वेतन पर, रखे गये। नदी विभाग में सेक्रेटरी के स्थान पर सरकार की ओर से आपकी नियुक्ति हुई। इसके वाद सन् १९५८ ई० में आपने कई कार्य संभाले। पारादीप पोर्ट योजना के आप कमिश्नर हुए। आप प्रथम पचवर्षीय योजना ओडिशान्तर्गत हीराकुद डेम योजना में सहयोगी हुए। राउरकेला लोहा कारखाना और Textile पेपर और आलमोनियम आदि कारखानो के निरीक्षक एव सहयोगी रहे। ओडिशान्तर्गत महानदी के मुहाने पर जो पारादीप में वदर स्थान वनाया गया है, वहाँ से जहाज विजगापट्टम और कलकत्ता जाते है। उस विभाग के आप कमिश्नर है।





श्री अर्जुन जोशी एम०ए०

आप गुजराती है। उत्कल में जडियाल में आपका जन्म हुआ था। पटना से एम०ए० करके कुछ रोज तक आप वही म्यूजियम में काम करते रहे। आजकल आप उत्कल प्रान्त म म्यूजियम की देखभाल कर रहे है।



माने गये। कोई भी सरकारी नौकरी की सभावना न देखकर वे दो वर्ष तक कोरियायियर्न और फिर सामान्य श्रमिक कर्मचारी के रूप में नौकरी करके नाट्य और सगीत की विशुद्ध पद्धतियो के आधार पर शिक्षा देने लगे। वे एक स्वदेशी यात्रादल बनाकर उसके माध्यम से चरखा, खादी, कपास, खेती का प्रचार करते थे। उसके साथ यात्रा-अभिनय में गद्य साहित्य का प्रचलन आपने किया। सब नाटको के सौष्ठव में स्वर और साहित्य की नवीनता लाये। पहले छात्र लोग विधिवत शास्त्रीय ढग से कठ साधन करते थे।

बालेश्वर जिले मे बगीय नाटक का प्रभाव प्रबल था। लेकिन एडताल के स्वर्गत जमीदार भूयां भास्करचद्र महापात्र के आश्रय में वहाँ आठ वर्ष तक दल बनाने पर वह रुचि बदल गई। आखिर ओडिया नाटक चारो ओर फैलने लगा। इसके बाद वहाँ से उन्होने स्वर्गत शशिभूषण रथ और बाबू सारथी साहु की प्रचेष्टा से ब्रह्मपुर मे "नाट्य मदिर" बनाया—दक्षिणी कर्नाटकी पद्धति का कुछ ज्ञान अर्जन किया।

उस समय रामशकर बाबू, भिखारी बाबू, कामपाल बाबू, अश्विनी बाबू के नाटक निकले थे, किंतु कोई मनोज्ञ न होने के कारण वे स्वय स्वतत्र रूप में नाटक लिखने लगे। १९४२ ई० के विप्लव तक अखड रूप में जाजपुर और एडताल के कर्मियो के सहयोग से जाजपुर का दल चलता था। प्रतिरोध के कारण कार्य का परिमाण कम होने से और तत्कालीन युद्ध-भय से दल में ठीक काम न करके आप अलग अलग अचलो में उस्ताद रहकर जीविका अर्जन करने लगे।

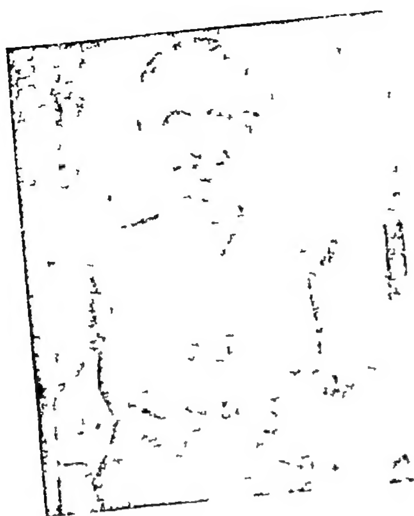
गुणी गुणग्राही महाराजा राजेन्द्रनारायण सिंह देव ने उन्हे आश्रय दिया। वहाँ वे तीन वर्ष मे शताधिक छात्र-छात्राओ को प्राथमिक शिक्षा देकर बस्ता हाई स्कूल के विज्ञान और सगीत शिक्षक के रूप मे कार्य करने लगे। इसके बाद विरजा हाई स्कूल मे बारह वर्ष से विज्ञान-शिक्षक है।

आप हमेशा प्रफुल्ल, निरभिमान, कौतुक-रहस्य-प्रिय, सब श्रेणी के लोगो मे मान्य और प्रीतिभाजन है। आज भी वे हर रोज कुछ न कुछ लिखते पढते रहते है।

वे जाजपुर के श्रेष्ठ विरजा हाट के मालिक है। आपकी व्यवस्था मे वाणिज्य-व्यवसाय प्रभावान्वित है। आपके दो भाई है। एक विचक्षण चिकित्सक है, और दूसरे मुख्तार है।

आपके इकलौते पुत्र बाबू विश्वेश्वर वसु भी सुलेखक है। अब वे कलकत्ता हाईकोर्ट के अधीन मेदिनीपुर के सदर मुन्सिफ है।





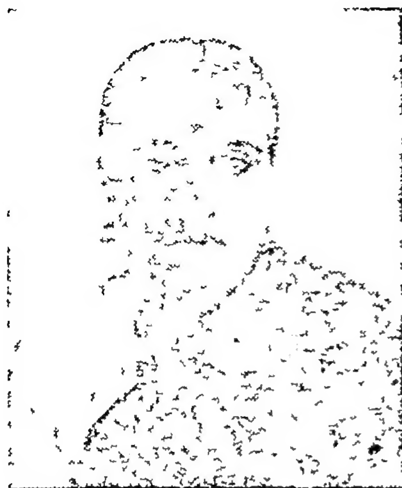
श्री रमाशंकर सिंह, एम०ए०



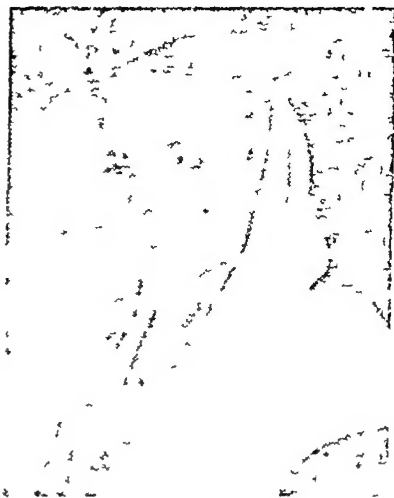
श्री राधामोहन साहु



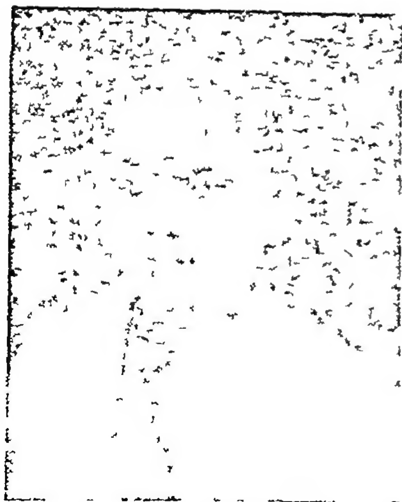
श्री शुकदेव प्रधान



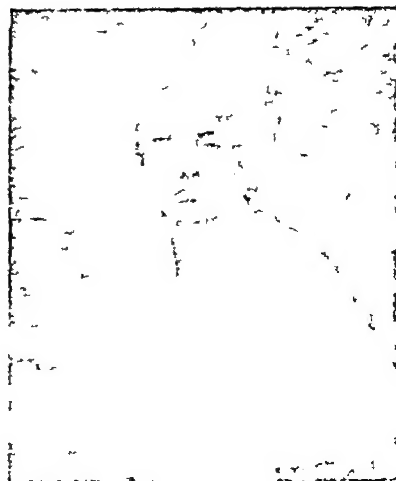
श्रीमती मालती उपाध्याय, एम०ए०



श्रीमती विनीता पाठक, साहित्यरत्न



कुमारी शैलबाला कानूनगो



कुमारी गिरिजा दलबेहरा, राष्ट्रभाषा रत्न